कांग्रेस का इतिहास

[तीसरा खण्ड]

१९४३—१९४७

लेखक

डॉ० बी० पट्टाभि सीतारामय्या
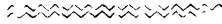
स स्ता सा हि त्य मं ड ल, न ई दि ल्ली

समर्पण

सत्य और अहिंसा के चरणों में, जिनकी भावना ने कांग्रेस का भाग्य-संचालन
किया है और जिनकी सेवा में हिन्दुस्तान के असंख्य पुत्र-पुत्रियों ने
खुशी-खुशी अपनी मातृभूमि की मुक्ति के लिए
महान् त्याग और बलिदान किये हैं।

प्रकाशक की ओर से

डा० पट्टाभि सीतारामय्या लिखित कांग्रेस के इतिहास का तीसरा खण्ड पाठकों के सामने उपस्थित करते हुए हमें जहाँ प्रसन्नता हो रही है वहाँ हम यह भी अनुभव करते हैं कि यह संस्करण बहुत पहले प्रकाशित हो जाना चाहिए था। देर हुई, इसके लिए हम पाठकों की दृष्टि में दोषी तो हैं, परन्तु कुछ कारण ऐसे थे कि जिनके रहते हम अपनी इच्छा पूरी न कर सके। आज के समय में कागज और प्रेस की कठिनाइयों पर किसी का बस नहीं है।

मूल (अंग्रेजी) ग्रन्थ का दूसरा भाग इतना विस्तृत है कि हिन्दी में उसके दो खण्ड (दूसरा और तीसरा) बनाने पड़े हैं। इस तीसरे खण्ड में १९४३ से १९४७ (स्वतंत्रता दिवस) तक का इतिहास आता है। अनुवाद को यथाशक्ति सुबोध और प्रामाणिक बनाने का प्रयत्न किया गया है। हम अपने इस प्रयत्न में कहाँ तक सफल हुए हैं, यह पाठक स्वयं देख सकेंगे।

इस पुस्तक के अनुवाद तथा तैयारी में सर्वश्री बलराज बौरी एम० ए०, राधेश्याम शर्मा, ठाकुर राजबहादुर सिंह आदि बन्धुओं का हमें जो सहयोग मिला है, उसके लिए हम उनके अत्यंत आभारी हैं। उनके अनथक परिश्रम के बिना इसके प्रकाशन में सम्भवतः कुछ और विलम्ब हो जाता।

—मंत्री
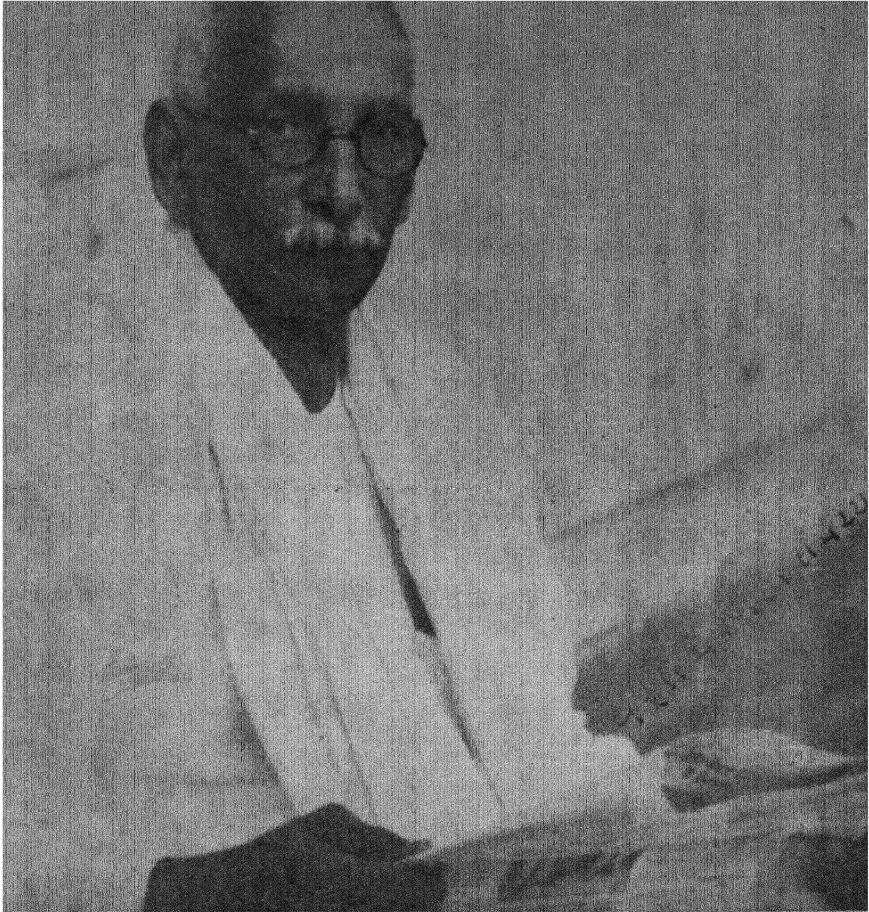
दो शब्द

कांग्रेस के इतिहास का यह तीसरा खंड दूसरे खंड का उत्तर-भाग है।

किसी व्यक्ति के जीवन में स्वर्ण-समारोह एक मंज़िल का निशान है और हीरक-महोत्सव उसकी बढ़ी हुई उम्र का परिचय और उसकी ह्रासोन्मुखी आशाओं का प्रदर्शन। संस्थाओं के लिए यह बात लागू नहीं होती, क्योंकि उनकी उम्र की कोई हद नहीं होती। उनकी शुरूआत तो होती है, पर अंत नहीं। क्या कांग्रेस ऐसी ही संस्था है? नहीं, हालांकि यह एक संस्था है तो भी यह अधिकतर जीवधारी के समान—एक व्यक्ति के समान है; क्योंकि यह १८८५ ई० में एक खास मक़सद के लिए एक हस्ती की शक्ल में बनी थी। इसका उद्देश्य पूरा हो जाने पर इसके जारी रखने की ज़रूरत नहीं रहेगी। दरअसल साठ साल की लम्बी कोशिशों के बाद कांग्रेस संघर्ष करनेवाली जमात नहीं रही, वह तो किसी भी तरह हिन्दुस्तान को विदेशी हकूमत से छुटकारा दिलाने के काम में ही लगी रही। बदक़िस्मती से उसकी पुरज़ोर कोशिशों के बाद भी मक़सद अभीतक हासिल नहीं हो सका है। आशा है कि 'प्लाटिनम'-महामहोत्सव के आने (यानी कांग्रेस के जन्म को ७० साल हो जाने पर) के बाद कांग्रेस अपना निर्धारित काम पूरा कर लेगी।

१९४१ और १९४२ से १९४५ तक जेल की जिन्दगी में काफी फुर्सत मिली जिससे लेखक यह लम्बा इतिहास लिख सका। अवकाश मिलना लिखने की दृष्टि से सुविधा की बात होती है, पर चालू जमाने का इतिहास लिखना कोई सुविधाजनक बात नहीं है। सबसे पहली बात तो इसमें अनुपात समझने की होती है। जो ऐतिहासिक वर्णन किसी ज़माने में काफी महत्त्व के होते हैं, वे भी यकायक अपनी अहमियत और विश्वस्तता खो बैठते हैं। इसीलिए जो इतिहासकार अपने लिखे हुए को छाती से लगाये रहता है, वह अपनी इतिहासकारिता का उपहास कराता है। इस सचाई को ध्यान में रखते हुए ही, जितनी सामग्री प्रकाशित हो रही है उससे दुगनी बड़ी कठोरता से और कुछ अफसोस के साथ अस्वीकार कर दी गई है, यहाँ तक कि पोथी भारी न होने देने के लिए अनेक बहुमूल्य विवरण छोड़ देने पड़े हैं।

जो विद्यार्थी बीते दस साल की घटनाओं का घनिष्ट अध्ययन करना चाहेंगे, वे 'कांग्रेस बुलेटिन' का एक सेट इस खंड के साथ और रख लेंगे तो उनकी इस विषय की पढ़ाई पूरी हो जायगी। यह कहने की ज़रूरत नहीं है कि 'उपद्रवों के लिए कांग्रेस की ज़िम्मेदारी' नामक सरकारी पुस्तिका का जवाब 'गांधीजी का जवाब' भी एक ऐसी पुस्तिका है जो इस विषय को पूरे तौर पर समझने के लिए ज़रूरी है। अगस्त (१९४२ की क्रांति के बाद जो घटनाएं हुई हैं उनकी पूरी फेहरिस्त नहीं दी जा सकी है। उसकी सूचनाएं (अगर वह देनी ही हुई तो) अब भी इकट्ठी करनी हैं। सबसे ज़्यादा दिलचस्प वर्णन वह है जहाँ न्याय और शासन विभागों का संघर्ष होता है। 'हिन्दुस्तान टाइम्स' सम्बद्ध मुक़दमों के बारे में एक बड़ी जिल्द

प्रकाशित कर चुका है। इसके अलावा, उस अवधि की घटनाओं को विषयवार कई लेखकों ने संग्रहीत किया है। इन पृष्ठों में कांग्रेस के दृष्टि-बिन्दु से उसके कार्य-काल का वर्णन किया गया है इसमें अर्थ, व्यापार और उद्योग-सम्बन्धी अध्याय जोड़े जा सकते थे राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के कार्यक्रम आदि को भी जोड़ा जा सकता था। देशी राज्यों के बारे में भी एक अध्याय जोड़ना असंगत न होता, बल्कि उससे इस पुस्तक की उपयोगिता ही बढ़ती। कांग्रेस और लीग के सम्बन्ध जिस भयंकर स्थिति में पहुँच चुके हैं उसके वर्णन के लिए एक अलग ही पुस्तक प्रकाशित करने की ज़रूरत है। बंगाल और उड़ीसा के मनुष्यकृत दुष्काल की विस्तृत गाथा भी कोई बिना आंसू बहाये न पढ़ता। लेकिन इन विषयों का कांग्रेस के इतिहास के साथ सीधा सम्बन्ध खण्डनात्मक मार्ग का अवलम्बन किये बिना न होता। यह, और कितने ही अन्य विषय एकत्र करने पर 'हमारे ज़माने का इतिहास' तैयार हो जाता, 'कांग्रेस का इतिहास' नहीं।

लेखक दो नवयुवक मित्रों—श्री के० वी० आर० संजीवराव और बी० विट्ठल बाबू बी० ए०—को धन्यवाद दिये बिना इस वक्तव्य को पूरा नहीं कर सकता, क्योंकि इन्होंने इसके लिए अपनी कष्टपूर्ण सेवाएं अर्पित की हैं। लिखना आसान है—जिस तरह भवन-निर्माण सरल है, पर उसे सुथरे रूप में पेश करने में बड़े ध्यान और शक्ति की ज़रूरत होती है, जो नौजवान ही दे सकते हैं।

—बी० पट्टाभि सीतारामय्या

नई दिल्ली,
दिसम्बर, १९४६

प्रस्तावना

कांग्रेस का इतिहास मुख्यतः मानवीय इतिहास है। हम इसे गिब्बन के शब्दों में "इन्सान के अपराधों, मूर्खताओं और बदकिस्मतों का लेखा" कैसे मान सकते हैं? हिन्दुस्तान में तो इन तीनों ही बातों की इस इतिहास-काल में बहुत अधिकता रही है। फिर क्या हम इसे लार्ड बेलफ़ोर के शब्दों में छोटे ग्रह में एक के ठंडा हो जाने के संक्षिप्त और अविश्वसनीय प्रसंग' के रूप में वर्णन करें? यह दोनों ही हम काफ़ी तौर पर कर चुके हैं। तो फिर क्या हम ऐक्टम के शब्दों में सारी कहानी का सार "आज़ादी"-जैसी ऊँचे मक़सद की चीज़ हासिल करने के लिए "मानवीय भावनाओं का संघर्ष मात्र" कह लें। हाँ, आज़ादी इस भावना की चाह है। यह कांग्रेस का प्यारा मक़सद है और कांग्रेस ने इस आज़ादी को पूरे तौर पर हासिल करने के लिए अपने भक्तों पर सेवा और कष्टसहन की शर्त लगायी है और तकलीफों को आमंत्रित करके तथा उन्हें बर्दाश्त करते हुए दुश्मनों को अपने ध्येय की न्याय-संगतता का विश्वास दिलाया है। यह सब सच है, पर सवाल यह है कि हमें इतिहास कब लिखना चाहिए—जल्दी में या फुर्सत के समय?

वाल्टर इलियट ने कहा था—"अख़बारनवीसी साहित्य नहीं है। हाँ, उसके औचित्य और शक्ति का प्रदर्शक अवश्य है।" यह समसामयिक 'रिकार्ड' है। इसी भविष्य की जानकारी भी समकालीन पुरुष और स्त्रियों सम्बन्धी है; और किसी विषय की नहीं। इसीलिए इतिहासकार के लिए उसका मूल्य है। यह इतिहास शायद जल्दी में लिखा गया है। यह ठीक ही कहा गया है कि इस ज़माने के इतिहासकार आम तौर से जल्दबाज़ी करते हैं—घटनाओं का तात्कालिक उपयोग करने और 'रायल्टी' वसूल करने के लिए ही वे वैसा करते हैं। 'प्रतिष्ठित लेखक' अनेक कारणों से बहुत-सी बातों के बारे में मीठी बातें करते हैं—जिन में व्यक्ति-विद्वेष, निष्ठा, सुविधाओं के लिए एहसानमन्दी और पाठकों को ख़ुश करने की बातें आदि होती हैं। कुछ भी हो, लेखक की दृष्टि बहुत सीमित है चाहे वह ऊँची हो या नीची। वर्त्तमान दृश्य-बिन्दु का देखना ही मुश्किल है; बीस वर्ष तक इन्तज़ार करने का पुराना विचार अब ठीक नहीं है। आप सचाई को बाद की अपेक्षा मौजूदा ज़माने में आसानी से देख सकते हैं बशर्ते कि आप आवश्यक तथ्य प्राप्त कर सकें। परन्तु बड़ी घटनाओं में से कुछ तथ्य ऐसे हैं जो इतिहास सुनानेवाले की उस योग्यता पर निर्भर करते हैं जो अनुकूल तथ्यों से युक्त हो। मानहानि-सम्बन्धी पुराने कानूनों के होते हुए, ख़ासकर उद्देश्यों के बारे में, बहुत-सी बातों का विवरण नहीं दिया जा सकता। हर शख्स जानता है कि बिना नाम की व्यक्तिगत रायों के ख़ूबसूरत पहलुओं का वर्णन करना भी कितना मुश्किल हो सकता है।

यह भी कहा गया है कि "बड़ी घटनाएँ अपने पीछे सुखद बातें बहुत ही कम छोड़ती हैं।" वह हमारे पुस्तकालयों को तो सजा देती हैं; किन्तु सम-सामयिक इतिहास के बारे में लिखी गई पुस्तकें ऐसी होती हैं जिनमें विचित्र असमताएँ पाई जाती हैं। जैसा कि मेटलैंड ने कहा

है, ऐसा इतिहास लिखने के कुछ गम्भीर प्रयत्न किये गये हैं जिनके सम्बन्ध में विचार करने या दुबारा मूल्याङ्कन का अवसर नहीं मिला और जिनके बाद में लिखे जाने पर अधिक कद्र होती। यह सच है कि सम-सामयिक इतिहासकार को इस व्यंग के द्वारा चिढ़ाया जाता है कि उसकी रचना तो सिर्फ 'अख़बार-नवीसी' है, इतिहास नहीं। लेकिन अगर ऐसा इतिहास-लेखक ईमानदार है और अपना काम जानता है तो उसकी कृति पर ऐसे व्यंग का कोई असर नहीं पड़ सकता।

आख़िर आज का इतिहास कल राजनीति था जो सार्वजनिक आलोचना की ज़बर्दस्त रोशनी से परिपक्व होकर इतिहास बन गया है और इसी तरह आज की राजनीति संशुद्ध और ठोस बनकर कल का इतिहास बन जायगी। इस तरह राजनीति तो इतिहास का अग्रदूत है और इतिहास अपनी दौड़ में अपने रचयिता को इसलिए नहीं भूल सकता कि कहीं वह प्रगति का सच्चा मार्ग न भूल जाय। जब दोनों के अध्ययन समुचित रूप से मिश्रित और अन्तर्सम्बन्धित हों तो ज्ञान के साथ बुद्धि का समावेश हो जाता है और इतिहास-वेत्ता दार्शनिक बन जाता है। यह स्वीकार करना पड़ेगा कि इस प्रकार का सम्मिश्रण कठिन है, यही नहीं बल्कि बहुत कम हो पाता है और यह बात तो आलोचक पर निर्भर करती है कि वह देखे कि इन पृष्ठों में 'पक्षपात और अनुचित आवेश' हैं या नहीं। यूनान के इतिहासकार मिलफ़ोर्ड ने अपने लिए गर्वपूर्वक कहा था कि वह सम-सामयिक इतिहासकार के लिए आवश्यक गुणों से मण्डित है। ऐसे देखना यह चाहिए कि इतिहासकार उस निर्लिप्तता और संतुलन का भाव प्रदर्शित करते हैं या नहीं, और यह कि लार्ड ऐक्टन की शब्दावली में 'ये पृष्ठ याददाश्त पर बोझ और आत्मा के लिए प्रकाश'—चाहे वह कितना ही क्षीण क्यों न हो—प्रदान करते हैं या नहीं।

फिर भी यदि काल लेखक की उक्तियों को पलट दे तो उसे यह याद करके तसल्ली हो सकती है कि उसने ऐसी अनिवार्य सेवा की है, जिसके बिना राजनीतिज्ञ तत्काल जानकारी नहीं हासिल कर सकता और न अपने से पहले के राजनीतिज्ञों की ग़लतियों से फ़ायदा उठाकर अपने तत्कालीन कर्त्तव्य का निश्चय ही कर सकता है। आख़िर, सभी तरह के लोग दो श्रेणियों में विभाजित किये जाते हैं। कुछ तो अपने तजरबे से जानकारी हासिल करते हैं और कुछ ऐसे हैं जो दूसरों के अनुभव से लाभ उठाते हैं। निस्सन्देह इस दूसरे प्रकार के लोग अधिक बुद्धिमान होते हैं और उन्हें मिसाल या चेतावनी के तौर पर सम-सामयिक या चालू ज़माने का इतिहास पढ़ने की आवश्यकता होती है। भावी राष्ट्रीयता के लिए समय-समय पर उसकी सफलताओं का लिपिबद्ध होना आवश्यक है जिससे भावी नेता बदले हुए ज़माने में और परिवर्तित स्थिति के अनुसार अपना रास्ता तय कर सकें, इसलिए हिन्दुस्तान के संघर्ष की कहानी को ऐसे समय पर चालू ज़माने तक की बनाने और पूरी कर देने की साहस-पूर्ण कोशिशें करने की ज़रूरत है, जब कि अंग्रेज जून १९४८ तक हिन्दुस्तान छोड़ जाने की घोषणा कर चुके हैं।

ठीक ही कहा गया है कि "एशिया दुनिया का केन्द्र है।" भौगोलिक दृष्टि से यूरोप उसकी शाखा है, अफ्रीका उप-महाद्वीप है और आस्ट्रेलिया उसका टापू। एशिया एक पुराना महाद्वीप है जो बड़ी परेशानी-भरी तेज़ी से नई परिस्थितियों में फँस गया है। एशिया के भौगोलिक-खण्ड और ऐतिहासिक स्वरूप ऐसा उलझन-भरा नमूना उपस्थित करते हैं जो अपनी ही परम्परा और प्रक्रियाओं से संयुक्त हैं। आधुनिक 'टेकनिक' ने उस नमूने को विध्वस्त कर दिया है। 'अपरिवर्तित पूर्व' की कहावत अब पाश्चात्य अहम्मन्यता की द्योतक रह गई है।

"पश्चिमी सभ्यता के बाहर, पुराने के ख़िलाफ़ नये का जो संघर्ष हुआ है उसका नतीजा यह हुआ है कि एक बड़ी गहरी बेचैनी फैल गई है। एशिया में यह भावना बहुत ज़ोरदार बन गई है। इस परिवर्तन की रफ्तार और इसका विस्तार और कहीं भी इतनी हद तक नहीं पहुंचा है, न वह और जगहों में इतना दुःखद, या ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्व-पूर्ण बन सका है। यह महाद्वीप न केवल उबल रहा है, बल्कि इसमें आग लग चुकी है। एशिया के परिवर्तन का विस्तार बड़ी दूर तक की सरहदों तक हुआ है और करोड़ों मनुष्यों पर उसका प्रभाव है। इसके संघर्ष बड़े प्रबल हुए हैं—दूसरी जगहों की बनिस्बत यहाँ ज्यादा क्षोभ फैला है। हिन्द-महासागर से महाद्वीप के उत्तरी छोर तक यह सब हो रहा है। वैघम कॉर्निश के कथनानुसार भूगोल का सम्बन्ध महत्त्वपूर्ण भूखण्डों से होता है और इतिहास का विशिष्ट युगों से।

इसीलिए किसी देश के ऐतिहासिक भूगोल में हमें निश्चय करना होता है कि उसकी कहानी के कौन-से विशिष्ट युग में अनुकूल परिस्थितियां आई थीं। मौजूदा ज़माने में ऐतिहासिक भूगोल एशिया के हक़ में मालूम पड़ता है। १८४२ से पश्चिमी ताक़तों ने चीन में जो कुछ हासिल किया था वह करीब-करीब सभी खो दिया। आर्थिक दृष्टि से भी अब एशिया दुनिया में मुख्य सामाजिक स्थिति हासिल करने की कोशिश कर रहा है।

१९वीं सदी की शुरूआत का ज़माना ऐसा था जब उपेक्षित भूखण्डों का साबका दुनिया की बड़ी-बड़ी कौमों से पड़ा। इस सम्बन्ध से एशिया का पुनर्स्थापन हो गया और वह अपने आदर्शों की छाप बाहरी दुनिया पर डालने लगा। टैगोर और गांधी एशिया के बौद्धिक प्रसार की मिसालें हैं। सिकन्दर महान् का पूर्व और पश्चिम को मिलाने का स्वप्न पुनर्जीवित हो रहा है। एशिया का समन्वयकारी आदर्श एक ऐसे विकास की ओर ले जा रहा है, जो मुक्ति की दिशा में है। एशिया महाखण्ड अपने भविष्य में विश्वास रखता है और उसका यह भी विश्वास है कि वह संसार को एक सन्देश देगा। उसमें आत्म-चेतनता जग रही है, जो चंगेज़ खां की वह यादगार ताज़ी कर देती है जिसने सबसे पहले एशिया की एकता का आन्दोलन चलाया था। उन भावनाओं को जापान में समुचित उर्वर भूमि मिली। पर सारा एशिया इस बात को महसूस करता है कि कनफ्यूशियस के शब्दों में हम अभी तक अव्यवस्थित हालत में जी रहे हैं, हम उस शांति की मंज़िल से दूर हैं, जिसमे 'कुछ स्थिरता' मिलती है और वह 'अन्तिम शांति की अवस्था' तो अभी हमारी दृष्टि में नहीं आई है।[1]

दुनिया अब जुदा-जुदा कौमों का समूह नहीं है। राष्ट्रीयता को व्यापक अर्थ में अन्तर्राष्ट्रीयता के सिद्धांत में बदल देने पर भी उसे उस दूर तक पहुँचानेवाले परिवर्तनों का प्रतिनिधित्व पर्याप्त रूप में नहीं मिलता जो दूसरे विश्व-व्यापी महायुद्ध ने इसके स्वरूप में ला दिया है। उसी की बदौलत हिन्दुस्तान के साथ एक स्वतंत्र अलग टुकड़े के रूप में बर्ताव नहीं हुआ। इसी कारण दुनिया मि० विन्सटन चर्चिल के इस झांसे से परितुष्ट नहीं हुई कि हिन्दुस्तान का मामला तो इंग्लैण्ड का अपना है और अटलांटिक का समझौता ब्रिटिश साम्राज्यान्तर्गत देशों पर लागू नहीं होगा। हिन्दुस्तान अब ब्रिटिश-भवन का महत्त्वपूर्ण भाग नहीं रहा। यह बात अब आम तौर पर स्वीकार कर ली गई है कि हिन्दुस्तान संसार के धर्मों का सन्धि-स्थल और विश्व-संस्कृति का एक संस्थल है, पर साथ ही यह देश संसार के ध्यान में ध्रुव-

1 एशिया और अमेरिका, जून १९४४, पृष्ठ २७९

तारा बन गया है, और संसार की दिलचस्पी का केन्द्र हो गया है। जिस प्रकार भूमण्डल के उस गोलार्द्ध में अमेरिका है, उसी तरह इस गोलार्द्ध में यह अटलांटिक और प्रशांत महासागर का सन्धि-स्थल है। कन्याकुमारी जाकर आप पवित्र 'केप' के छोर पर खड़े होकर समुद्र की ओर मुंह कीजिए। आपके दाहिने हाथ अरब सागर होगा जो 'केप आव गुडहोप' (अर्थात् अफ्रीका के दक्षिणी छोर पर स्थित आशा अंतरीप) पर जाकर अटलांटिक महासागर से मिलता है, और आपके बायें हाथ की ओर बंगाल की खाड़ी होगी, जो प्रशांत महासागर से जा मिलती है। इस तरह हिन्दुस्तान पूर्व और पश्चिम के मिलने का स्थान है, प्रशांत-स्थित राष्ट्रों की आज़ादी की कुंजी है और अटलांटिक-स्थित राष्ट्रों की मनमानी पर एक नियंत्रण है। हिन्दुस्तान उस चीन के लिए मुख्य द्वार है जिसकी स्वतंत्रता टापू के राष्ट्र जापान द्वारा खतरे में पड़ गई थी और उसने वहां के ४५ करोड़ निवासियों की आज़ादी को संकट में डालने की कोशिश की थी, पर अब खुद विजेता के गर्वीले चरणों पर गिरा पड़ा है। जापानी साम्राज्यवाद के भयंकर रोग की एक दवा आज़ाद चीन है। पर गुलाम हिन्दुस्तान आधे-गुलाम चीन के लिए नहीं लड़ सकता था। या यूरोप को गुलाम नहीं बना सकता था। ऐसी अवस्था में हिन्दुस्तान की आज़ादी नई सामाजिक व्यवस्था का बुनियादी तत्व कायम करेगी और इस देश के चालू सामूहिक संघर्ष का ध्येय ऐसे ही आज़ाद हिन्दुस्तान की स्थापना करना है। इस लड़ाई में अगर हिन्दुस्तान निष्क्रिय दर्शक की तरह बैठा यह देखता रहता कि यहां दूसरे स्वतन्त्र देशों को गुलाम बनाने के वास्ते परिचालित युद्ध में भाग लेने के लिए भाड़े के टट्टू भर्ती किये जा रहे हैं और भारत की अपनी ही आज़ादी-जैसी वर्तमान समस्या की उपेक्षा की जा रही है, तो इस का मतलब भावी विश्व-संकट को निमंत्रण देना होता, क्योंकि बिना आज़ादी हासिल किये हुए हिन्दुस्तान पर लालच-भरी निगाह रखनेवाले नव-शक्ति-संयुक्त पड़ोसी या पड़ोसी के पड़ोसी की लार टपकती। उस समय भारत की अभिनव राजनीति, संसार की आर्थिक परिस्थिति और विविध नैतिक पहलुओं के बाहरी दबाव के कारण कांग्रेस ने एक योजना की कल्पना की और १९४२ में सामूहिक अवज्ञा आरम्भ करने का निश्चय किया। इन पृष्ठों में उस संघर्ष के विभिन्न रूपों और उसके परिणामों का वर्णन है जो बम्बई में ८ अगस्त १९४२ में किये गए फैसले को अमल में लाने के लिए किया गया था। 'भारत-छोड़ो' का नारा इस ऐतिहासिक प्रस्ताव का मूल-बिन्दु था जिसके चारों ओर उसी के अनुसरण में आन्दोलन चलता था। जल्द ही यह लड़ाई का नारा बन गया जिसमें स्त्री-पुरुष और बच्चे सभी समा गये; शहर, कस्बे और गांव सभी जुट गये; पदाधिकारी से किसान तक सभी सम्मिलित हो गये; व्यापारी और कारखानेदार, परिगणित जातियां और आदिम निवासी सभी इस भावना के भंवर में, हंगामा और क्रांति की लहर में आगये। अलग-अलग ज़माने में विभिन्न शताब्दियों में जुदा-जुदा राष्ट्र ऐसे ही प्रभावों में बहते रहे हैं। किसी समय अमेरिका की बारी थी, कभी फ्रांस की, किसी दशाब्द में यूनान की तो कभी जर्मनी की। इन सभी विद्रोहों के कार्य-कारण का तात्विक मूल एक ही था। सरकारों की शरीर-रचना, शासन की अवयव-क्रिया और राजनैतिक जमातों का रोगाणु निदान सभी ज़माने में और सभी मुल्कों में हुआ है।

२

जूलियन हक्सले ने कहा है—"आख़िर इतिहास उन कलाओं में नहीं है जो मानवीय संदर्भों—तथ्यों को निम्नतर स्थान में पहुंचाती है। किसी स्वर से चित्र को उद्बोधन नहीं भी मिल सकता, और चित्र का कोई कहानी कहना भी ज़रूरी नहीं है। पर इतिहास पुरुष, स्त्रियों और

बच्चों—सभी के बारे में होता है। मनुष्य ऐसा प्राणी है जिसका निर्माण मनोविज्ञान के द्वारा होता हैं—चाहे उसे आत्मा कह लीजिए, या और कुछ। इतिहासकार उस निर्णयात्मक आत्मपूरक तत्व की उपेक्षा नहीं कर सकता, जिसके बारे में कवियों और लेखकों के सामान्य अनुभव और भविष्य-वाणी से हमें शिक्षा प्राप्त हुई है। और सब से पहले हमें यह जान लेना चाहिए कि जीवन की विजय और दुःखद घटनाओं का अर्थ पात्र-विशेष पर निर्भर करता है और एक छोटे-से परिवार में ही ऐसे कितने ही प्रकार के मनोवैज्ञानिक विभिन्नताओं के नमूने मिलते हैं। हमारे पूर्वजों ने इनमें से चार को लिखा था—रक्त प्रकृति या आत्माभिमानी, उष्ण प्रकृति या चिड़चिड़े, उदासीन स्वभाव के और मन्दप्रकृति या भोले। आधुनिक विश्लेषण के अनुसार मनुष्य के दो ही प्रकार हैं—एक बहिर्मुखी प्रकृति का और दूसरा अन्तर्मुखी प्रकृति का। इनके अतिरिक्त चार वर्गीकरण और हैं जिनका आधार है—विचार-शक्ति, भावना, अनुभूति और अनुस्मरण। यूरोप के उन सुपरिचित मनोवैज्ञानिक और दैहिक नमूने का सादृश्य हमें अफ्रीका में मिलता है। काला रंग, नीग्रो मुख-मुद्रा और अन्य जातीय चाल-चलन तो आवरणमात्र है। इसके भीतर रस-वाहिका नलिकाओं से हीन मांसपेशी वाले, स्नायविक निर्माण वाले अन्तर्भुक्त मनोवैज्ञानिक आधार वाले विभेद ऐसे हैं जो मानव-जाति की विभिन्नताओं के नमूने के रूप में अफ्रीका में भी देखने में आते हैं और यूरोप में भी।

अक्सर दुनिया में जो लड़ाईयां हुई हैं उनमें शस्त्रास्त्रों और साज-सरंजामों की उत्कृष्टता को ही सबसे ऊंचा महत्व प्राप्त हुआ है। एक इतिहासकार ने कहा है कि मैसेडोनिया के भालों की बदौलत यूनान की संस्कृति एशिया में पहुँची है और स्पेन की तलवार ने रोम को इस योग्य बनाया था कि वह आजकल की दुनिया को अपनी परम्परा प्रदान कर सका है। इसी तरह १६४४ में जर्मनी के 'उड़ानेवाले बमों' द्वारा लड़ाई का पलड़ा ही पलट जानेवाला था, पर वह व्यर्थ हो गया। तो भी तथ्य यह है कि यूरोप के युद्ध-कौशल के अतिरिक्त युद्ध में काम देने वाली और शक्तियां भी होती हैं जिनका वर्णन बेकन ने इस प्रकार किया है—"शारीरिक बल और मानव-मस्तिष्क का फ़ौलाद, चतुरता, साहस, धृष्टता, दृढ़ निश्चय, स्वभाव और श्रम।" इस बात के बावजूद कि बेकन एक दार्शनिक और वैज्ञानिक था, वह सामान्य बुद्धि के स्तर से अधिक ऊँचा नहीं उठ सका और जहां वह उठा वहां वह साहस से बढ़कर और गुणों की कल्पना नहीं कर सका। हिन्दुस्तान में हमने सामान्य स्तर से ऊपर उठकर सत्य और अहिंसा के लिए कष्ट-सहन करते हुए लड़ाई जारी रखी है, और इस तरह हम सत्याग्रह की जिस ऊँचाई पर पहुँचे हैं, उससे निस्सन्देह इतिहास का रूप बदल गया है, और शक्ति और अधिकार, सत्य और झूठ, हिंसा और अहिंसा तथा पशु-बल एवं आत्म-बल के संघर्ष में विजय की सम्भावना भी परिवर्तित हो गई है। जिस युद्ध को संसार का दूसरा महायुद्ध कहा जाता है उसका श्रीगणेश किसी ऊँचे सिद्धांत को लेकर नहीं हुआ था और अटलांटिक का समझौता—जो एक साल बाद हुआ था, टीका-टिप्पणी के बाद भी हिन्दुस्तान और जर्मनी के लिए एक जैसा किसी पर भी लागू न होनेवाला होगा। इससे बीसवीं सदी के आरम्भिक चालीस वर्षों के युद्ध-नायकों का असली रूप प्रकट हो गया। और उस पर भी तुर्रा यह कि यह युद्ध एक सर्वग्राही युद्ध बन गया जिसने खुले रूप में एकाधिकार के द्वारा और मनमाने ढंग से—आयोजित रूप में जनता की सैनिक भर्ती करके युद्ध-संचालन किया और आज़ादी तथा प्रजातन्त्र की सभी ऊँची बातें हवा, भाप और सुन्दर वाक्यालंकार की तरह उड़ गई। जब कष्ट-

ग्रस्तों के दावों पर अपनी नीति की दृष्टि से विचार करने का अवसर आया और चर्चिल की 'अपने पर दृढ़ रहने' की अस्पष्ट बात को कार्यान्वित करने का मौका आया तो ब्रिटेन और हिन्दुस्तान के नामधारी राजद्रोहियों को दण्ड देने, अपने पसन्द की सन्धि करने, निर्वाचन स्थगित करने और समाचारपत्रों तथा पत्र-व्यवहार तक पर कठोर निरीक्षण—सेंसर रखने की नीति बरती गई। यदि युद्ध का यही उद्देश्य था और उसे जीतने के लिए यही ढंग थे, तो हिन्दुस्तान को इस बात के लिए बदनाम नहीं किया जा सकता कि उसने पोलैण्ड, चेकोस्लवाकिया, यूनान और फिनलैण्ड को आज़ाद कराने के उत्तम कार्य में उत्साह और उत्तेजना क्यों नहीं प्रदर्शित की। केवल ब्रिटेन साम्राज्यवादी और अनुदार नहीं है, बल्कि रूस ने भी वह वैदेशिक नीति ग्रहण करली जो ज़ारशाही के शासन के लिए अधिक उपयुक्त होती और सीधे निकोलस द्वितीय-द्वारा परिचालित होने पर अधिक उपयुक्त प्रतीत होती। पोलैण्ड का उद्धार करने के लिए जो युद्ध संचालित किया गया था उसका नतीजा यह हुआ कि उसके टुकड़े हो गये और उसे रूस की निर्दयतापूर्ण इच्छा पर छोड़ दिया गया और उन्होंने मामले को वहीं तक नहीं रखा। रूस ने बसराबिया और बुकोविना, फिनलैण्ड और लटविया तथा इस्टोनिया और लिथुआनिया तक पर आक्रमण किया और डार्डेनिलस के द्वारा मेडिटरेनियम या मृतक सागर पर भी कब्ज़ा जमाने की मांग की। डार्डेनिलस पर रूस का हाथ होने का मतलब था फ़ारस की मौत। इस युद्ध में हिन्दुस्तान को, बिना उससे पूछे या जांचे ही ग्रस्त कर लिया गया। यह वह युद्ध था जो अपने साथ ब्रिटेन के लिए 'भारत-छोड़ो' का नारा लगाया जिसके लिए हिन्दुस्तान को भारी दण्ड भोगना पड़ा—सैकड़ों को बेंत लगाये गये, हज़ार से अधिक को गोली से उड़ा दिया गया, कितने ही हज़ारों को जेल में ठूंस दिया गया और करीब दो करोड़ के सामूहिक जुर्माने वसूल किये गये।

यद्यपि इतिहास का विकास सारे संसार में सामान्य सिद्धांतों पर होता है, विशिष्ट राष्ट्रों, देशों और राज्यों के विकास का मार्ग उनकी अपनी विलक्षण स्थिति में होता है। ख़ासकर हिन्दुस्तान में इन स्थितियों का जन्म और विकास विचित्र रूप में हुआ है। एक ऐसे विस्तृत देश का, जो लम्बाई-चौड़ाई में महाद्वीप के समान और ज़मीन और आकृति में विभिन्न है, लगभग दो सदी तक पराधीन रहना एक ऐसी बात है जिसका उदाहरण आधुनिक इतिहास में नहीं मिल सकता। इसके लिए हमें संसार के इतिहास में बहुत पीछे तक मुड़ना पड़ेगा जब ईसा की आरम्भिक शताब्दियों में रोम ने एक ऐसे साम्राज्य की स्थापना की थी जिसका विस्तार पश्चिम में ब्रिटेन से पूर्व में मिस्र तक था और जो लगभग चार सदियों तक क़ायम रहा था। किन्तु इस पराधीनता के उदाहरण में एक जगह सादृश्य समाप्त हो जाता जब मुक्ति की प्रक्रिया आरम्भ होती है तो हिन्दुस्तान में यह पराधीनता एक ऐसा नितांत विरोधी रूप धारण कर लेती है जैसा संसार के इतिहास में कहीं भी देखने में नहीं आता। हिन्दुस्तान में गत चौथाई सदी से घटनाओं ने जो रूप धारण किया है वह संसार में अद्वितीय है और सत्य और अहिंसा के सिद्धांतों का प्रयोग—जिसे संक्षेप में 'सत्याग्रह' कहते हैं—ऐसा है जिसकी बहुत-सी मंज़िलें और दर्जे हैं जिनके द्वारा राष्ट्रीय क्षोभ—असहयोग से करबन्दी तक सविनय अवज्ञा-आंदोलन के विभिन्न रूपों-द्वारा प्रकाशित किया गया है और युद्ध-काल में हिन्दुस्तान की यह अस्पृहणीय—अप्रत्याशितता—स्थिति बनादी गई है। कांग्रेस की हमेशा यह राय थी कि युद्ध-प्रयत्न में हिन्दुस्तान का भाग लेना इस बात पर निर्भर करना चाहिये कि वह एक स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में उसमें जुटना अपना कर्त्तव्य समझे। इस तरह की मांग लगातार की गई, पर वह फिजूल साबित

हुई। संघर्ष का कारण स्पष्ट था। सविनय-अवज्ञा-आंदोलन के लिए वातावरण तैयार था—जो देश के लड़ने और साहसपूर्वक लड़ने के लिए एकमात्र मार्ग था। जिस प्रकार स्वशासन की योग्यता की कसौटी यह है कि जनता को स्वशासन प्रदान कर दिया जाय, उसी प्रकार संघर्ष के लिए योग्यता की कसौटी यही है कि देश को संघर्ष करने दिया जाय। क्या इंग्लैण्ड १ अगस्त, १९१७ या ३ सितम्बर १९३९ को लड़ाई के लिए तैयार था? जनता जब युद्ध में लग जाती है तो उसे सीख लेती है। हिंसा और अहिंसा दोनों ही प्रकार की लड़ाइयों में यह बात सच है। सवाल सिर्फ उसकी माप-तोल का रह जाता है कि वह व्यक्तिगत हो या सामूहिक। पहले की परीक्षा हो चुकी है और 'क्रिप्स-मिशन' के समय उसका आंशिक परिणाम भी देखने में आया है। दूसरे ने सारी दुनिया को प्रबल वेग से हिला दिया जिसके फलस्वरूप मार्च १९४६ में हिन्दुस्तान में ब्रिटेन से 'मन्त्रि-मण्डल मिशन' आया।

३

इस ऐतिहासिक काल का वर्णन इस पुस्तक में संक्षिप्त रूप में किया गया है। कांग्रेस करीब ३३ महीने जेल में रही और न केवल बिना किसी प्रकार की हानि में पड़े बल्कि इज़्ज़त के साथ बाहर आई। फिर भी इस थोड़े से अन्तर्काल में कितनी ही घटनाएँ गुज़र चुकीं। हम एक ऐसे ज़माने में रहते हैं जब सदियों की तरक्की सघन होकर दशाब्दियों में और दशाब्दियों की बरसों में आ जाती है। कांग्रेस की गिरफ्तारी से व्यापक हलचल फैल गई। पुरानी और नई दोनों ही दुनिया के लोगों ने पूछा कि क्या हिन्दुस्तान को लड़ाई में घसीटने के पहले उससे पूछ लिया गया था, और यह कि क्या ब्रिटिश-सरकार हिन्दुस्तान की जनता के बारे में जैसी होने का दावा करती है वैसी सचमुच है; और अगर ऐसा है तो फिर हिन्दुस्तानियों ने लड़ाई में भाग लेने के विरुद्ध इतना शोर क्यों मचाया? यह प्रश्न भी हुआ कि अगर मुस्लिम लीग और कांग्रेस दोनों ही ने युद्ध की कोशिशों में मदद नहीं की, तो क्या जो रँगरूट फौज में भर्ती हुए हैं वे साम्राज्य के भक्त के रूप में आये हैं या इसे खेल समझ कर इसमें साहसी पुरुषों की तरह शामिल हो गये हैं? अथवा वे लड़ाई के कठिन दिनों में गुज़ारे के लिए पेशेवर सैनिक सिपाही के रूप में भर्ती हुए हैं? एक शब्द में, आज़ादी के लिए हिन्दुस्तान का मामला इस प्रकार व्यापक रूप में विज्ञापित हुआ कि दूसरा महायुद्ध शुरू होने के पहले ऐसा कभी नहीं हुआ था। ब्रिटेन में जो लोग युद्ध-क्षेत्र में जाने से रह गये थे उनकी आवाज़ अभी तक क्षीण तो थी, पर उसमें समानता और न्याय की पुट थी, इसलिए उसमें काफ़ी ज़ोर था। वह युद्ध की घोर ध्वनि और धूलि में भी सुनाई पड़ी। धीरे-धीरे यह लड़ाई सर्वग्राही और सर्वशोषक बन गई।

अमेरिका में लोग दो हिस्सों में बँट गये थे—एक तो राष्ट्रपति रूज़वेल्ट के साथ यह विचार रखते थे कि हिन्दुस्तान ब्रिटेन का निजी मामला है, और एक दूसरा छोटा दल इस विचार का था कि हिन्दुस्तान की आज़ादी जैसी विशाल समस्या पर लड़ाई के दिनों में विचार नहीं हो सकता, उसे लड़ाई खत्म होने तक रुकना चाहिए। तीसरा और सबसे बड़ा दल जनता के उन सीधे-सादे लोगों का था जो चाहते थे कि हिन्दुस्तान को इसी वक्त आज़ादी मिल जानी चाहिए।

जब हिन्दुस्तान ने अमेरिकन और चीनी राष्ट्रों से अपील की तो वह इस बात को जानता था कि ब्रिटेन यह दावा करेगा कि हिन्दुस्तान तो उसका घरेलू मामला है और अन्य राष्ट्रों का हिन्दुस्तान या ब्रिटेन के किसी भी उपनिवेश या अधीनस्थ देश से कोई सम्बन्ध नहीं है। तो भी हिन्दुस्तान और कांग्रेस इस बात से अवगत थे कि ब्रिटेन सभ्य-राष्ट्रों के नक्षत्रमण्डल से अलग

कोई चीज नहीं है और वह अन्य राष्ट्रों के साथ घनिष्ट रूप में अन्तर्सम्बन्धित है। हिन्दुस्तान अपनी शक्ति और कमज़ोरी दोनों को जानता है और वह केवल मानवता के नाम पर बाहरी देशों का हस्तक्षेपमात्र नहीं चाहता। ऐसा होने पर भी तथ्य यह है कि यदि किसी व्यक्ति के साथ उसके ही देश में बुरा बर्ताव होता है, तो अन्तर्राष्ट्रीय कानून उसका बचाव किसी तरह नहीं कर सकता। तो भी किसी भी देश का अपने देशवासियों या उसके किसी हिस्से के प्रति दुर्व्यवहार कभी-कभी इतना घोर होता है (जैसा कि बेलजियन कांगो के मूल निवासियों के साथ हुआ है या टर्की-साम्राज्य-द्वारा आर्मेनियन ईसाइयों के प्रति किया गया) कि ऐसी हालत में दुनिया का लोकमत उससे प्रज्वलित हो उठता है। सामान्य मानवता की भावना दूसरे राष्ट्रों को प्रेरित करती है कि वह ऐसे अत्याचारों का विरोध करें। ज़ारशाही के १६०५ के कार्यक्रम का विरोध करते हुए संयुक्त-राष्ट्र के राज्यमन्त्री रोस्टन ने उन दिनों कहा था—"जो लोग निराशा में हैं उनके लिए यह जानकर प्रोत्साहन मिलेगा कि दुनिया में दोस्ती और हमदर्दी भी है और सभ्य-संसार द्वारा ऐसी क्रूरताओं के प्रति घृणा एवं निन्दा का प्रकाशन उसमें रुकावट पैदा कर सकता है।"

इसलिए अगर हिन्दुस्तान दमन का हाथ रोकने में सफल नहीं हुआ तो उसके शारीरिक कष्टसहन और त्याग उस पूर्ण नैतिक समर्थन-द्वारा अपनी क्षतिपूर्ति कर चुके जो संघर्ष में उसने औरों से प्राप्त किया है, क्योंकि सत्य और अहिंसा के ऊँचे मापदण्ड की दृष्टि से देखते हुए उसका आज़ादी का ध्येय ऐसा ऊँचा है कि वह हिमालय की ऊँचाई से बजता हुआ प्रतिध्वनित होता है, और काबुल के सघन देश में होते हुए मक्का मुअज़्ज़म, मदीना मुनव्वर, फिलस्तीन के सीनाई पर्वत और एशिया माइनर के पामीर तक उसकी आवाज़ पहुँचती है। यही नहीं, आल्प्स के द्वारा वह पच्छिम की ओर और एपीनाइन, पाइरेनीस और एलाबियन की चालकी श्रृङ्खला तक जा पहुँचती है। इसी प्रकार उसकी गूंज काकेशिया और यूराल तक भी पहुँचती है और कितने ही दुर्लंघ्य पहाड़ियों को पार करती हुई नई दुनिया में पहुंच जाती है। हिन्दुस्तान अच्छी तरह जानता है और पहले से जानता आया है कि उसके उद्देश्य की सफलता उसके हाथों में है और 'देशी तलवार और देशी हाथों-द्वारा' ही उसका उद्धार होगा; पर इसने बायरन का युद्ध कृपाण गांधीजी की शांति-पूर्ण सहारे की लाठी से बदल लिया है। हिन्दुस्तान ने युद्ध के लिए नये शस्त्र का प्रयोग करके इतिहास बनाने की कोशिश की है और खून के प्यासे योद्धाओं के रक्त-मांस प्रदर्शन को बदलकर इसे ऊँचाई पर पहुँचा दिया है, जहाँ मानवीय विवेक दैवी आत्मा बन जाता है। बीसवीं सदी ने एक नया ही ध्येय प्राप्त कर लिया और पा लिया है, एक नया झण्डा और नया नेता और इन पृष्ठों में भारत की आज़ादी के पवित्र ध्येय के प्रति संसार की प्रतिक्रिया का वर्णन किया गया है। उसकी आज़ादी के राष्ट्रध्वज के परिवर्तन और स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए भारत के राष्ट्रव्यापी संघर्ष का नेतृत्व करने वाले महात्मा गांधी के महान् उपदेश और उनकी योजना का भी इसमें समावेश है।

विषय-सूची

(खंड दो से आगे)

कांग्रेस का इतिहास

खंड : ३

: १८ :

उपवास

सभी धार्मिक पुस्तकों, साहित्य और इतिहास में आत्म-शुद्धि, आत्म-चेतना और साधारण जनता को सुधारने के उद्देश्य से उपवास की महिमा वर्णन की गई है। लेकिन हमेशा से सन्त-महात्मा और राजनीतिज्ञ समाज के दो पृथक्-पृथक् अंग रहे हैं और जब-कभी उन्हें एक ही सूत्र में बांधने की कोशिश की गई है उनकी मानसिक और नैतिक प्रवृत्तियां अलग-अलग धाराओं में प्रवाहित होती रही हैं। लेकिन इतिहास में गांधीजी ऐसे पहले व्यक्ति हैं जिनमें सन्त और राजनीतिज्ञ का सम्मिश्रण इस प्रकार से हुआ है कि विभिन्न मानव-प्रवृत्तियो के अलग-अलग प्रवाहित होने की आवश्यकता नहीं है। उनके दृष्टिकोण, प्रेम के दायरे और कार्यक्षेत्र में घनिष्ठ सामंजस्य था। इस प्रकार उनकी विचार-धारा और आचरण अर्थात् उनके कथन और आचरण में कोई भेद नहीं था। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि यह एक ही कपड़ा है जो धर्म के ताने और राजनीतिज्ञ के बाने से बुना गया है, जिसमें अर्थशास्त्र और कला की धारियां पड़ी हुई हैं, संस्कृति के बेल-बूटे कढ़े हैं और नैतिकता का 'ब्रोकेड' जड़ा हुआ है। यदि पश्चिम के आजकल के लौकिक राजनीतिज्ञ पूर्व के इस ऊंचे संश्लेषण और सम्मिश्रण को समझने में असमर्थ हैं, तो उन्हें कम-से कम इस आत्मानुशासन को गलत नहीं समझना चाहिए और उपवास के उद्देश्य और उसकी प्रेरक प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में भ्रांत धारणाएं नहीं फैलानी चाहिएं। इसे दबाव डालने का साधन कहना मानो स्वयं अपनी ही निर्भयता पर पर्दा डालना है। किसी दबाव डालनेवाले उपाय में तब तक इतनी ताकत नहीं हो सकती अथवा उसका काफी प्रभाव नहीं पड़ सकता जब तक कि उसका विपक्षी—अर्थात् जिसके विरुद्ध ऐसी कार्रवाई की गई हो (जैसा कि कहा गया है) उसका सफलतापूर्वक प्रतिरोध करता रहता है। चाहे कुछ भी हो, गांधीजी के उपवास ने एक बात स्पष्ट रूप से प्रकट कर दी कि उनके इस उपाय का उद्देश्य अथवा परिणाम किसी पर दबाव डालना नहीं था। उपवास के कारण सत्य की सुप्त शक्तियां जाग्रत हो जाती हैं, इससे मानवता की दबी हुई और शिथिल पड़ी शक्तियों को प्रेरणा मिलती है। इससे न्याय की भावना को प्रोत्साहन मिलता है। जिस व्यक्ति को लक्ष्य में रखकर उपवास किया जाता है, वह यह समझता है कि यह उसी के खिलाफ़ किया गया है और उसे ठेस पहुंचती है, और पराजय अनुभव होती है, क्योंकि स्वयं उसके भीतर एक संघर्ष छिड़ जाता है, जिसके कारण उसकी आत्मा जाग उठती है तथा उसकी न्याय-बुद्धि प्रेरित हो उठती है। उसके भीतर मानो उथल पुथल मच जाती है।

उसके अन्दर की सद् और असद् प्रवृत्तियों के मध्य जो संघर्ष उठ खड़ा होता है, उसके कारण जहां एक ओर वह अपने को अंधकार से प्रकाश में, असत्य से सत्य की ओर और मृत्यु से जीवन की ओर ले जानेवाले उस आध्यात्मिक पुरुष की भूरि-भूरि निन्दा करता है, वहां दूसरी ओर उस व्यक्ति की तुलना वह एक नये अवतार और राजनीतिक शक्ति प्राप्त करने की इच्छा रखनेवाले धर्मगुरु से करता है, हालांकि उसकी यह तुलना सर्वथा अनुचित होती है।

गांधीजी और उनके सहयोगियों को जेल में गए हुए लगभग छः महीने होने को आए थे। बम्बई में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के अधिवेशन में उन्होंने अपने मित्र वाइसराय को पत्र लिखने की घोषणा की थी। स्वतंत्र रहते हुए उन्हें जो बात लिखने की इजाज़त नहीं दी गई थी, उसे उन्होंने आगाखां महल से एक नजरबन्द कैदी की हैसियत से लिखने का साहस किया। उसी वक्त किसी तरह से यह खबर समाचार-पत्रों को भी लग गयी, लेकिन किसी को नहीं मालूम था कि उन्होंने क्या लिखा है और न ही कोई यह कह सकता था कि जो कुछ उन्होंने सितम्बर १९४२ में लिखा है, वह वही-कुछ है जो वे जेल से बाहर रहने पर ९ अगस्त को लिखते। इस दौरान में गांधीजी और उनके अनुयायियों पर अनेक तरह के लांछन और दोष लगाए गए। उन्हें झूठा कहा गया। उनके इरादों और मकसदों के बारे में सन्देह प्रकट किया गया। जनता को बताया गया कि वे चुपचाप आंदोलन की तैयारियां कर रहे थे और उसके लिए उन्होंने ज़रूरी हिदायतें भी जारी की थीं। उन्होंने अनैतिकता से काम लिया, इत्यादि, इत्यादि। इसलिए इन सब बातों का खण्डन करना उनका आवश्यक कर्तव्य हो गया था। लेकिन वे ऐसा करने में स्वतन्त्र नहीं थे, यद्यपि सरकार की तरफ से यह कहा जा रहा था कि उन्हें अपने विचारों का खण्डन-मंडन करने की पूरी स्वतन्त्रता है, परन्तु सिद्धांतप्रिय और सत्य, अहिंसा और प्रेम के पुजारी व्यक्ति के पास एक उच्च शक्ति का, जिसमें उसका अटूट विश्वास है, सहारा लेने के सिवाय और कोई चारा ही नहीं था जिससे कि वह अपने स्रष्टा के सामने अपनी स्थिति रख सके, क्योंकि मानव के सामने अपनी स्थिति स्पष्ट करने के अवसर से उसे वंचित कर दिया गया था। श्री एमरी-द्वारा पादरी जोसेफ़ के साथ गांधीजी की तुलना का सविस्तार उल्लेख अन्यत्र किया गया है।

गांधीजी के उपवास का समाचार पहले-पहल जनता को केवल १० फरवरी और वर्किंग-कमेटी के सदस्यों को अहमदनगर किले में ११ फरवरी को मिला। यह तो सर्वविदित था कि ज्यों ही गांधीजी गिरफ्तार किये जाएंगे वे उपवास करेंगे। परन्तु अन्तिम क्षण में उन्होंने स्वयं ही उसकी पन्द्रह दिन पहले सूचना दे दी थी। यदि उनकी गिरफ्तारी के बाद एक सप्ताह के भीतर ही उनके सेक्रेटरी श्री महादेव देसाई की अचानक मृत्यु न हो गई होती तो वे यह उपवास बहुत पहले ही शुरू कर देते। सरकार ने अपनी विज्ञप्ति में, जिसका उल्लेख आगे किया गया है, यह प्रश्न उठाया कि स्वयं गांधीजी ने अतीत में यह स्वीकार किया है कि उपवास में दूसरे पर दबाव डालने की भावना निहित रहती है। गांधीजी ने यह बात राजकोट के अपने उपवास की एक खास परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए कही थी, परन्तु सरकार ने उसका गलत अर्थ लगाकर उसे एक साधारण वक्तव्य के रूप में उपस्थित किया। इतना ही नहीं, ५ फरवरी १९४३ को लार्ड लिनलिथगो ने गांधीजी को जो पत्र लिखा उसके निम्न पैरे से उन (लिनलिथगो) की निर्भयता और निर्दयता पर प्रकाश पड़ता है :—

"आप इस बात का यकीन रखिए कि कांग्रेस के ऊपर जो इलजाम लगाए गए हैं, उनका

उसे एक-न-एक दिन जवाब देना ही होगा और उस समय आपको और आपके साथियों को, अगर हो सके तो, दुनिया के सामने अपनी सफाई देनी पड़ेगी। और यदि इस दौरान में किसी ऐसी कार्रवाई के जरिये, जिसकी आप इस समय कल्पना कर रहे प्रतीत होते हैं, अपने आपको इस तरह से आसानी से बचा लेना चाहते हैं तो मैं आपको स्पष्ट बता दूं कि फैसला आपके खिलाफ जायगा।"

यह कैसा निन्दनीय आरोप है कि गांधीजी उपवास के जरिये राष्ट्र-द्वारा किये गए 'अपराधों' की जिम्मेदारी से बचने के लिए इस संसार से अपना अस्तित्व ही मिटाने की कोशिश कर रहे हैं।

श्री सी० राजगोपालाचार्य ने ८ मार्च, १९४३ को अपने एक वक्तव्य में उपवास शुरू करने से पहले लिखे गये गांधीजी के पत्र को दबा देने के लिए सरकार की कटु आलोचना करते हुए कहा--"१० फरवरी को जब से गांधी-लिनलिथगो पत्र-व्यवहार प्रकाशित हुआ है, उसकी एक बात समझ में नहीं आ रही। न ही सरकार ने अब तक उसका कोई स्पष्टीकरण किया है। गांधीजी की गिरफ्तारी के बाद देश में जो हिंसा और तोड़-फोड़ की कार्रवाई देखने में आई है, गांधीजी ने २३ सितम्बर, १९४२ के अपने पत्र में उसकी निन्दा की है। अगर उसी समय यह पत्र अथवा उसका सारांश प्रकाशित कर दिया जाता तो जोलोग कांग्रेस और गांधीजी का नाम लेकर ये कार्रवाइयां करते रहे हैं, वे इनके नाम से इतना अनुचित लाभ कदापि न उठा पाते...।"

अब हम कुछ देर के लिए इस पत्र-व्यवहार की समीक्षा करना चाहते हैं। इसकी सब से उल्लेखनीय बात यह है कि इस काम में पहल गांधीजी ने ही की और उन्होंने अपने दो पत्रों में कांग्रेस की स्थिति को पुनः स्पष्ट किया। यद्यपि उनका मुख्य उद्देश्य ८ अगस्त १९४२ की सरकारी विज्ञप्ति का उत्तर देना था, लेकिन प्रसंगवश उन्होंने बम्बई-प्रस्ताव के उद्देश्यों और कार्य-क्षेत्र पर भी प्रकाश डाला। ११ अप्रैल १९४२ के बाद से, जब कि सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने अपना ब्राडकास्ट भाषण दिया था, कांग्रेस को बदनाम करने की प्रथा भी चल पड़ी थी, जिससे कि एक दिन उस पर प्रहार किया जा सके। सरकार ने कांग्रेस पर फिर से यह इलजाम लगाया कि वह सत्ता केवल अपने लिए ही चाहती है। लेकिन शायद उसे यह नहीं मालूम था कि ९ अगस्त के कांग्रेस के प्रस्ताव का मसविदा तैयार करते समय भी गांधीजी और मौलाना आज़ाद ऐसे पत्र-व्यवहार में व्यस्त थे, जिसमें उन्होंने यह बात फिर दोहराई थी कि वे पूरी गम्भीरता के साथ श्री जिन्ना-द्वारा राष्ट्रीय सरकार बनाए जाने का केवल प्रस्ताव ही नहीं कर रहे, बल्कि उसे मंजूर भी करते हैं। इस बीच सरकार अपने दुश्मन को परास्त करने की अपनी सारी सामग्री जुटा चुकी थी। उसकी योजनाएं और तैयारियां पूरी हो चुकी थीं और अब वह शत्रु पर वार करने में देर नहीं करना चाहती थी।

उपवास की प्रगति

भारत और विदेशों के सरकारी और गैर-सरकारी दोनों ही क्षेत्रों में गांधीजी के उपवास की प्रतिक्रिया का संक्षेप में वर्णन करने से पूर्व हमें उपवास की दिन-प्रति-दिन की प्रगति का ज़िक्र करना उचित प्रतीत होता है और अन्त में एक दिन सौभाग्यवश और संसार के करोड़ों लोगों की हार्दिक और सच्ची प्रार्थनाओं के फलस्वरूप गांधीजी इस कठिन परीक्षा में सफलतापूर्वक उत्तीर्ण हो गए और मानव-समाज की और भी अधिक महान् सेवा के लिए उनके प्राणों की रक्षा हो सकी। गांधीजी के उपवास की सूचना जनता को जल्दी-से-जल्दी उसके दूसरे दिन और साधारणतः

तीसरे दिन मिली। सौभाग्यवश श्रीमती कस्तूरबा गांधी और मीराबेन के अतिरिक्त श्रीमती सरोजिनी नायडू भी इस अवसर पर गांधीजी के पास थीं। आगाखां महल से कुछ ही दूर यरवड़ा जेल में डा० गिल्डर भी नजरबन्द थे। इस मौके पर उन्हें ११ फरवरी को आगाखां महल जाने की इजाज़त दे दी गई और इस प्रकार डा० गिल्डर भी गांधीजी के पास पहुँच गए। उपवास के पहले दिन ही गांधीजी का टहलने का कार्यक्रम बन्द हो गया। साथ ही प्रतिदिन सायंकाल महादेव देसाई की समाधि पर उनका जाना भी रुक गया। सब से पहले गांधीजी से मिलने की जिनलोगों को सरकार ने इजाज़त दी, उनमें श्रीमती महादेव देसाई, उनका पुत्र और गांधीजी का एक भतीजा भी था। स्वर्गीय महादेव देसाई की विधवा पत्नी और उनके पुत्र को देखकर निश्चय ही गांधीजी के लिए अपने को संभालना मुश्किल होगया होगा, क्योंकि भारत के इतिहासकी इस महान् दुर्घटना के बाद यह पहला ही मौका था कि गांधीजी श्रीमती देसाई से मिले। बहुत शीघ्र ही गांधीजी को आगाखां महल के अन्दर ही रखा जाना पड़ा और केवल दो घण्टे के लिए हर रोज उन्हें बाहर बरामदे में लाया जाता। उपवास के चौथे दिन तक उनका जी मचलने लगा और उन्हें नींद न आने की वजह से बड़ी बेचैनी होने लगी। गांधीजी के स्वास्थ्य की रोजाना पूरी रिपोर्ट इंस्पेक्टर-जनरल और लेफ्टिनेंट-कर्नल शाह तथा डा० गिल्डर-द्वारा सरकार को भेजी जाती थी। जी मचलने और नींद न आने के कारण १५ फरवरी को उनकी हालत १४ फरवरी की तरह सन्तोष-जनक नहीं थी। बम्बई-सरकार के सर्जन-जनरल को तुरन्त ही पूना भेजा गया। गांधीजी के मित्र और उनके रिश्तेदार पहले ही पूना में एकत्र हो चुके थे और वे उनसे मुलाकात करने के लिए सरकार की आज्ञा की प्रतीक्षा में थे। गांधीजी को यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि प्रोफेसर भंसाली ने उनके साथ सहानुभूति के रूप में अपना उपवास तोड़ दिया है। बेचैनी रहने और पानी पीने में कठिनाई होने के कारण धीरे-धीरे गांधीजी की हालत बिगड़ने लगी। १५ फरवरी को डा० विधानचन्द्र राय भी पूना पहुंच गए और वे ३ मार्च तक। जिस दिन गांधीजी ने उपवास खोला, वहीं रहे। कान-नाक और गले के एक विशेषज्ञ डा० मांडलिक ने भी गांधीजी की परीक्षा की। उपवास के दूसरे सप्ताह में गांधीजी की आम हालत के बारे में चिन्ता रहने लगी। १६ फरवरी के बाद से नित्यप्रति उनकी मालिश की जाने लगी। अगले दिन हृदय-गति मन्द पड़ने लगी। १९ फरवरी की दोपहर तक उनकी हालत यह रही कि यद्यपि वे ९ घण्टे तक की नींद ले चुके थे, फिर भी बेचैनी अनुभव कर रहे थे और उनका मस्तिष्क काम नहीं कर रहा था। उन्हें पेशाब आने में तकलीफ महसूस होने लगी और इस वजह से उनकी हालत के बारे में और भी अधिक चिन्ता होने लगी। गांधीजी के सेक्रेटरी श्री प्यारेलाल की बहन डा० सुशीला नायर भी अन्य डाक्टरों के साथ अब गांधीजी की देख-रेख करने लगीं। और १९ फरवरी के बाद से छः डाक्टरों—श्री एम० डी० डी० गिल्डर, मेजर-जनरल कैण्डी, बम्बई के सर्जन-जनरल, डा० बी० सी० राय, लेफ्टिनेन्ट-कर्नल भण्डारी, आई० जी० पी०, डा० सुशीला नायर और लेफ्टिनेन्ट-कर्नल बी० जे० शाह के हस्ताक्षरों से बम्बई-सरकार की ओर से गांधीजी के स्वास्थ्य के बारे में बुलेटिन प्रकाशित होने लगे। गांधीजी बोलना नहीं चाहते थे और न ही वे अपने दर्शकों से मिलना चाहते थे। यह देखकर डाक्टरों को बड़ी चिन्ता होने लगी। उनके तीसरे पुत्र श्री रामदास ने परिवार सहित उनसे मुलाकात की। गांधीजी की हालत के बारे में स्वयं पूरी-पूरी जानकारी हासिल करने के लिए बम्बई-गवर्नर के सलाहकार श्री० एच० सी० ब्रिस्टाऊ भी पूना पहुंच गए।

नींद न आने की शिकायत यद्यपि बराबर बढ़ती आ रही थी, लेकिन अब गांधीजी दर्शकों

में अधिक दिलचस्पी लेने लगे थे। गांधीजी के मित्रों और सम्बन्धियों को चेतावनी दे दी गई कि वे उनमें मुलाकात न करें और इस प्रकार उन्हें अधिक आराम करने दें। बहुत-से ऐसे व्यक्तियों ने जो पूना पहुँच गए थे, गांधीजी से मुलाकात करने का इरादा छोड़ दिया जिससे कि उनके मस्तिष्क पर बोझ न पड़े। १९ तारीख को गांधीजी को श्री मोदी, श्री सरकार और श्री अणे के इस्तीफे की सूचना दीगई। कहते हैं कि इस पर उनकी एकमात्र प्रतिक्रिया यह थी वे जरा-से मुस्कराए। २० फरवरी के बुलेटिन में बताया गया कि गांधीजी की हालत खराब होगई है और बहुत गम्भीर है। २१ फरवरी को अर्थात् उपवास के बारहवें दिन बताया गया कि वे दिन भर बहुत बेचैन रहे। दोपहर को ४ बजे उनकी हालत खतरनाक होगई और जी मचलने की बीमारी के कारण वे प्रायः बेहोश हो गए। उनकी नब्ज़ इतनी हल्की हो गई कि उसे प्रायः पहचानना कठिन हो गया। बाद में वे नींबू के मीठे रसके साथ पानी पी सकने में समर्थ हो सके। वे खतरे से बाहर हो गए और रात को ५॥ घण्टे सोए। २२ फरवरी को गांधीजी का मौन दिवस था। वे आराम अनुभव कर रहे थे और अधिक प्रसन्न दिखाई देते थे। लेकिन हृदय कमज़ोर था। २२ फरवरी को उन्हें केवल नींद पूरी तरह से नहीं आ सकी। इसके अलावा उनकी हालत में और कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। उनकी आवाज स्पष्ट थी और वे अपने मुलाकातियों के साथ मुस्करा रहे थे। तीसरे सप्ताह का प्रारंभ होने पर पेशाब की शिकायत धीरे-धीरे दूर होने लगी और वे अधिक खुश नज़र आने लगे। संकटपूर्ण स्थिति के बाद पहले दिन २५ फरवरी को गांधीजी बहुत प्रसन्न थे। उस दिन प्रातःकाल उन्होंने स्पंज से स्नान किया और मालिश की। दो दिन तक नींबू का मीठा रस और पानी पीने के बाद गांधीजी ने इसकी मिकदार कम करदी।

२७ तारीख के बुलेटिन में बताया गया कि गांधीजी आज फिर इतने खुश नहीं थे और उदासीन-से दिखाई देते थे, लेकिन अगले दिन वे सजग और अधिक खुश थे। पहली मार्च को फिर सोमवार था। यद्यपि वे खुश दिखाई देते थे और उनमें ताकत आ रही थी, लेकिन मुलाकात करनेवालों के कारण वे जल्दी थकावट महसूस कर रहे थे। ३ मार्च को सुबह ९ बजे गांधीजी ने अपना उपवास खोला। लेकिन सरकार यह बरदाश्त नहीं कर सकती थी कि उस दिन खुशियां मनाई जायँ, इसलिए उसने दर्शकों को उनसे मिलने की इजाज़त नहीं दी। दर्शकों की संख्या कम होने के कारण इस समारोह में अधिक गम्भीरता आगई, लेकिन गांधीजी से मिलनेवालों ने शहर में अन्यत्र एक सभा की जिसमें गांधीजी की दीर्घायु के लिए कामना की गई। इस सभा में श्री अणे भी उपस्थित थे।

इसके बाद गांधीजी के स्वास्थ्य में कोई उल्लेखनीय घटना नहीं हुई। उनका स्वास्थ्य धीरे-धीरे और नियमित रूप से सुधरता गया। जिस दिन गांधीजी गिरफ्तार किए गये थे उनका वज़न १०२ पौंड था, लेकिन उपवास शुरू करने के दिन उनका वजन १०९ पौंड था। उपवास के कारण उनका वजन घटकर ८१ पौंड रह गया था। उपवास खत्म हो जाने के बाद तीन साल के भीतर उनका वजन फिर १०२ पौण्ड हो पाया। लेकिन उसके बाद जितने दिन वे जेल में रहे उनके वजन के बारे में कोई सूचना नहीं मिल सकी।

'गांधीजी की चिन्ताजनक और गम्भीर हालत के दिनों में देशभर में अनेक अफवाहें फैल रही थीं। इनमें से एक अफवाह, जो उपवास समाप्त हो जाने के बाद भी बनी रही और जिसका ऐतिहासिक दृष्टि से उल्लेख न करना या उसे छोड़ देना कठिन है, यह थी कि सरकार ने दाहकर्म-संस्कार के लिए काफी परिमाण में चन्दन की लकड़ी जमा कर रखी थी। एक और

अफवाह यह थी कि सरकार ने राष्ट्रीय शोक-दिवस मनाने और झण्डे आधे झुका देने का फैसला कर लिया था। कहा जाता है कि पहली अफवाह का आधार विदेशी संवाददाता थे, जिन्होंने गांधीजी की हालत बहुत अधिक खराब हो जाने पर भारत-सरकार के एक उच्च अधिकारी से मुलाकात की थी, जिसमें भारतीय सम्वाददाता उपस्थित नहीं थे। कहते हैं कि इस मौके पर उक्त अधिकारी ने विदेशी सम्वाददाताओं को बताया कि भारत-सरकार अपने निश्चय से टस से मस न होने का फैसला कर चुकी है और इस सिलसिले में उसने कहा कि चन्दन की लकड़ी हमारे इस अन्तिम फैसले की प्रतीक है।".. ......('इंडिया अनरिकंसाइल्ड' पृष्ठ २१२......)

इस सम्बन्ध में कांग्रेस के अध्यक्ष ने वर्किंग कमेटी की ओर से अपने 'अज्ञात-वास' से वायसराय के नाम एक पत्र लिखा, जो नीचे दिया जाता है। इस पत्र को यहाँ उद्धृत करना हमें सर्वथा उचित प्रतीत होता है।

"प्रिय लार्ड लिनलिथगो, मेरे सहयोगियों और मैंने कल के और परसों के समाचार-पत्रों में गांधीजी और आपके दरम्यान हाल में हुए पत्र-व्यवहार को पढ़ा है। गांधीजी के नाम आपके पत्र में कांग्रेस के बारे में अनेक जगह पर उल्लेख किया गया है और कांग्रेस-संगठन के ऊपर बारम्बार और गम्भीर आरोप लगाए गए हैं। १३ जनवरी के अपने पत्र में आपने इस बात पर खेद प्रकट किया है कि वर्किंग कमेटी ने हिंसा और कानून-विरुद्ध कार्रवाइयों की निन्दा के बारे में अब तक एक शब्द भी नहीं कहा।

"साधारणतः जब तक हम जेल में नज़रबन्द हैं और देश की जनता तथा बाहरी दुनिया के साथ हमारा संपर्क पूर्णतः कटा हुआ है तब तक हम इस बारे में कुछ भी नहीं कहना चाहते। हमारी नजरबन्दी की जगहको भी एक रहस्य समझा जाता है और किसी दूसरे तक उसकी सूचना भी नहीं पहुँचाई जा सकती। देश की खबरें जानने के लिए हमारे साधन सीमित हैं और हमें पढ़ने के लिए थोड़े-से सिर्फ वे पत्र दिये जाते हैं जो आजकल के नियमों और आर्डिनेन्सों के अंतर्गत केवल सेंसर किए हुए समाचार ही छाप सकते हैं और जिनमें बहुत-सी ऐसी खबरें छापने की मनाही करदी गई है जो हमारे लिए और भारतीय जनता के लिए बड़ा महत्व रखती हैं। इसलिए इन परिस्थितियों में हमारे लिए उन घटनाओं के बारे में अपनी राय ज़ाहिर करना अत्यंत अनुचित प्रतीत होता है जिनके सम्बन्ध में हमें पूरी जानकारी भी नहीं है, विशेषकर जब कि अपनी राय प्रकट करने के लिए भी हमारे पास भारत-सरकार के अलावा और कोई जरिया नहीं है।

"मैं अपने-आपको केवल एक ही प्रश्न तक सीमित रखना चाहता हूं और यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि जहां तक हम लोगों का अलग-अलग और सामूहिक रूप से सम्बन्ध है, हम कांग्रेस की ओर से यह स्पष्ट घोषणा कर देना चाहते हैं कि कांग्रेसके ऊपर लगाया गया आपका यह आरोप कि उसने एक गुप्त हिंसात्मक आंदोलन का संगठन किया था, बिल्कुल निराधार और झूठा है।

"एक देशभक्त अंग्रेज़ और ब्रिटेन की स्वतन्त्रता का प्रेमी होने के नाते आपके लिए भारतीय देशभक्तों और भारत की आज़ादी के पुजारियों की भावनाओं को समझने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए और अपने सम्बन्धों और व्यवहार में हमें एक-दूसरे के साथ ईमानदारी से पेश आना चाहिए। सरकार की शक्ति-शाली प्रचार-व्यवस्था के जरिये उन लोगों पर बिना किसी सबूत के संगीन इलजाम लगाना, जो उनका जवाब देने में असमर्थ हैं, और साथ ही उन्हें सिर्फ वहां

खबरें और दृष्टिकोण पहुंचाना जो उनके प्रतिकूल हैं, कहां का न्याय और ईमानदारी है ? क्या इससे यह साबित हो जाता है कि आपका पक्ष मज़बूत है।

"५ फरवरी के अपने पत्र में आपने लिखा है कि आपके पास ऐसी काफी जानकारी है जिससे यह प्रमाणित होता है कि तोड़-फोड़ का यह आंदोलन अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के नाम पर जारी की गई गुप्त हिदायतों के अनुसार चलाया गया है। हमें नहीं मालूम कि आपकी जानकारी क्या है। लेकिन हमें भली प्रकार मालूम है और हम साधिकार कह सकते हैं कि किसी भी मौके पर अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने इस तरह का आंदोलन शुरू करने की बात नहीं सोची है और न ही उसने इस तरह के कोई गुप्त अथवा दूसरे किस्म के आदेश जारी किये हैं। हमारी गिरफ्तारी के समय अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी को ग़ैर-कानूनी संस्था घोषित कर दिया गया था और प्रायः सभी प्रमुख और जिम्मेदार कांग्रेसियों को, जिनमें अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य भी शामिल हैं, गिरफ्तार कर लिया गया था। साथ ही अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के दफ्तर और कांग्रेस के दूसरे दफ्तरों पर पुलिस ने कब्जा कर लिया था। प्रत्यक्ष है कि उसके बाद से अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी अपना काम किस तरह कर सकती थी।

"आपने उल्लेख किया है कि इस वक्त एक गुप्त कांग्रेस संगठन विद्यमान् है और कांग्रेस वर्किंग कमेटी के एक सदस्य की पत्नी उसकी सदस्या हैं। हमें इस प्रकार के किसी भी संगठन की सूचना नहीं है और न ही हमारे पास यह जानने का कोई ज़रिया है। हमें यक़ीन है कि कोई भी कांग्रेस-संगठन अथवा कोई भी जिम्मेदार कांग्रेस-पुरुष या महिला वास्तव में इस प्रकार की बम-विस्फोट और आतंकपूर्ण घटनाओं के पीछे नहीं हो सकतीं।

"निस्सन्देह कांग्रेस-जन कुछ परिस्थितियों में अपनी योग्यतानुसार सक्रिय प्रतिरोध-आंदोलन को जारी रखना अपना परमावश्यक कर्तव्य समझते हैं। परन्तु आपने जो इलजाम लगाया है उसका इससे किसी किस्म का सम्बन्ध नहीं है। हो सकता है कि औसत सरकारी अधिकारी अथवा पुलिस कर्मचारी के सामने सविनय-अवज्ञा-आंदोलन और बम-विस्फोट की इन घटनाओं में कोई खास फर्क नहीं हो, लेकिन हमें अपने लोगों के बारे में जितनी जानकारी है, उसके आधार पर हम निस्सन्देह कह सकते हैं कि जिम्मेदार कांग्रेस-जन किसी बम-विस्फोट या आतंकपूर्ण कार्रवाई के लिए जनता को प्रोत्साहन नहीं दे सकते।

"गुप्त संगठनों के बारे में बहुत-कुछ कहा गया है और सरकार का दावा है कि इस बारे में उसके पास काफी सबूत मौजूद है, लेकिन उसे वह प्रकट नहीं करना चाहती। क्या मैं आपका ध्यान गांधीजी के गिरफ्तार होने से कुछ घण्टे पहले ८ अगस्त को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के अधिवेशन में दिये गए उनके भाषण की ओर आकर्षित कर सकता हूँ, जिसमें उन्होंने पूरी गम्भीरता के साथ लोगों से हर हालत में अहिंसात्मक बने रहने की ज़ोरदार अपील की थी ? २३ साल पहले कांग्रेस ने अहिंसात्मक नीति को अपनाया था। जनता-द्वारा कभी-कभी उसका उल्लंघन किये जाने के बावजूद इसे इस दिशा में काफी बड़ी सफलता मिली है।

"इस का सबूत आपको भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की अन्य देशों के राष्ट्रीय आन्दोलनों से तुलना करने पर मिल जायगा, जिनका आधार प्रायः हिंसा रही है। निस्संदेह स्वयं आपने भी बहुत-सी परिस्थितियों में, जिन्हें आप उचित समझते हैं, हिंसा का समर्थन किया है। परन्तु कांग्रेस हमेशा से अहिंसा के अपने सिद्धान्त पर अटल रही है और पिछले २३ वर्षों से वह जनता में इसी का प्रचार करती रही है। यदि कांग्रेस अपनी नीति, तरीके और कार्यप्रणाली में इस

सम्बन्ध में कोई परिवर्तन करना चाहेगी तो यह भी अन्य राष्ट्रीय संगठनों की तरह खुले तौर पर और जानबूझ कर ऐसा परिवर्तन करने की घोषणा कर देगी। गुप्तरूप से काम करने की तो बात ही नहीं उठ सकती, क्योंकि अन्य ठोस कारणों के अलावा सार्वजनिक और गुप्त रूप से कार्रवाई करने के फलस्वरूप कोई भी ऐसा संगठन, जिसका आधार खुला और रचनात्मक कार्य करना है, अपने-आपको बदनाम कर लेगा और इस तरह से अपने को निपट मूर्ख साबित कर देगा।

"हो सकता है कि कांग्रेस में बहुत-सी खामियां हों, लेकिन कोई उस पर यह इलजाम नहीं लगा सकता कि अपने उद्देश्यों और आदर्शों की प्राप्ति के लिए उसमें साहस नहीं है।

"मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि आप जरा यह खयाल करके देखिये कि अगर कांग्रेस जानबूझ कर लोगों को हिंसात्मक और तोड़-फोड़ की कार्रवाइयां करने के लिए उभारती या उन्हें प्रोत्साहित करती तो उसका क्या परिणाम होता, क्योंकि कांग्रेस एक बहुत व्यापक और इतनी प्रभावशाली संस्था है कि अब तक जो-कुछ हुआ है वह उससे भी कहीं सौ गुना अधिक संकट पैदा कर सकती थी।

"१९४० की गर्मियों में जब कि फ्रांस का पतन हो चुका था और ब्रिटेन एक अत्यंत संकट-पूर्ण और नाजुक घड़ी से गुजर रहा था, कांग्रेस ने जान-बूझकर कोई प्रत्यक्ष कार्रवाई करने का विचार त्याग दिया, हालांकि वह इससे पूर्व ऐसा करने का विचार कर रही थी और उसके लिए जनता की तरफ से भी जोरदार मांग की जा रही थी। उसने यह इसलिए किया कि वह एक नाजुक अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति से अनुचित लाभ नहीं उठाना चाहती थी और न वह किसी तरीके से नाजी आक्रमण को ही प्रोत्साहन देना चाहती थी। कांग्रेस के लिए उस नाजुक अवसर पर ब्रिटेन को अत्यधिक परेशान करनेवाली परिस्थिति में डाल देना बड़ा सरल था।

"अपनी गिरफ्तारी से कई सप्ताह पहले से हम वर्किंग कमेटी की बैठकों, प्रस्तावों और अन्य तरीकों से यह बात साफ तौर पर कहते चले आ रहे थे कि इस देश में ब्रिटिश सरकार-विरोधी भावना अत्यधिक जोरदार और कटुतापूर्ण हो गई है। केवल हमने ही नहीं, बल्कि बहुत से नरमदली नेताओं ने भी सार्वजनिक रूप से यही कहा कि उन्होंने इस देश में ब्रिटेन के प्रति इतनी अधिक कटुता कभी नहीं देखी थी। जिम्मेदार कांग्रेस-जनों ने इस भावना को शान्तिपूर्ण एवं रचनात्मक दिशाओं में ले जाने की कोशिश की और इसमें उन्हें बहुत काफी सफलता भी मिली। उन्हें इस काम में और भी अधिक सफलता मिलती अगर ऐसी घटनाएं न हो गई होतीं जिनके कारण जनता एकदम बेचैन हो उठी और साथ ही उन सभी प्रमुख नेताओं को उससे अलग कर दिया गया, जो संभवतः इस स्थिति पर काबू पा लेते। जैसी कि हमारी स्थिति है, उसे देखते हुए आपको हमारी अपेक्षा इन घटनाओं की अधिक अच्छी तरह से जानकारी है, लेकिन हमें इतना काफी पता लग चुका जिससे हम यह अनुभव कर सकते हैं कि जनता को सरकारी नीति से कितना धक्का पहुँचा होगा। इन सामूहिक गिरफ्तारियों के तत्काल बाद ही लाठी-चार्जों, अश्रु-गैस और गोली-वर्षा के जरिये सभी प्रकार की सार्वजनिक कार्रवाइयां, सार्वजनिक रूप से अपने विचार प्रकट करने के सभी साधन, निषिद्ध करार दिये गए। गण्यमान्य नेताओं को गिरफ्तार करके उन्हें अज्ञात स्थानों को भेज दिया गया। उनकी बीमारी और मृत्यु की अफवाहों ने जनता के दिलों में अपना घर कर लिया और इसके साथ ही पिछले अगस्त में जो घटनाएं हुईं उनके कारण जनता और भी अधिक उत्तेजित हो उठी।

"उसके बाद जो-कुछ हुआ मैं उसका उल्लेख नहीं करना चाहता, क्योंकि उनपर सोच-विचार करने के लिए हमारे पास पूरी जानकारी की आवश्यकता है, लेकिन मैं चाहता हूं कि आप यह खयाल करके देखें कि हमारी गिरफ्तारियों के बाद से सरकार की ओर से जनता पर जो-कुछ बीती है उसका लोगों के दिलों पर कितना गहरा प्रभाव पड़ा होगा और वे कितने हताश हुए होंगे।

"हाल में जो पत्र-व्यवहार प्रकाशित हुआ है उसके साथ ही सरकार ने एक विज्ञप्ति में एक गश्ती-चिट्ठी का जिक्र किया है, जो कहा जाता है कि आन्ध्रप्रान्तीय कांग्रेस कमेटी की तरफ से जारी की गई थी। हमें इसके बारे में कोई जानकारी नहीं है और हम यह कभी नहीं यकीन कर सकते कि कोई जिम्मेदार कांग्रेस-अधिकारी कांग्रेस के आधारभूत सिद्धान्तों के विरुद्ध इस प्रकार की अनुचित हिदायतें जारी करने का साहस कर सकता है।

"परन्तु इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि सरकारी तौर पर भी इस-बारे में जो-कुछ कहा गया है वह परस्पर-विरोधी है। इसका जिक्र पहले-पहल मद्रास-सरकार ने २९ अगस्त को प्रकाशित की गई अपनी विज्ञप्ति में किया था। इसमें यह बताया गया था कि इस चिट्ठी में अन्य बातों के अलावा पटरियां हटाने की बात भी कही गई थी। इसके दो सप्ताह बाद कामन-सभा में भाषण देते हुए श्री एमरी ने बताया कि उक्त गश्ती-चिट्ठी में यह बात साफ तौर पर कही गई थी कि पटरियां न हटाई जायँ और न ही जान को कोई नुकसान पहुँचाया जाय। यह इस बात का एक दिलचस्प और महत्त्वपूर्ण उदाहरण है कि किस तरह से सबूत पेश करके जनता पर असर डाला जाता है।

"५ फरवरी के अपने पत्र में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के प्रस्ताव का ज़िक्र करते हुए आपने उसके अन्तिम भाग की ओर ध्यान दिलाया है, जिसमें कांग्रेस-जनों को यह अधिकार दिया गया है कि यदि आन्दोलन के नेताओं को गिरफ्तार कर लिया जाय तो उन्हें खुद अपनी विवेक-बुद्धि के अनुसार काम करना चाहिए। आपको यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण प्रतीत हुई है और इसलिए आपने उससे कुछ परिणाम निकाल लिए हैं। साफ जाहिर है कि आपको यह मालूम नहीं कि पिछले सविनय-अवज्ञा-आन्दोलनों के अवसरों पर भी ऐसे ही निर्देश जारी किये गए थे। १९४०-४१ के वैयक्तिक सत्याग्रह-आन्दोलन के दौरान में मैंने बहुत-से अवसरों पर बारंबार ऐसी ही हिदायतें दी थीं। सविनय-अवज्ञा अथवा सत्याग्रह-आन्दोलन का यह एक मुख्य तत्त्व है कि आवश्यकता पड़ने पर, क्योंकि नेताओं के जल्दी ही गिरफ्तार हो जाने की संभावना रहती है, प्रत्येक व्यक्ति को आत्मभरित बन जाना चाहिए। जहां तक वर्तमान आन्दोलन का सवाल है, उसमें तो सविनय-आज्ञा की वह सीमा अभी पहुंची ही नहीं थी।

"यह बड़े आश्चर्य की बात है कि इतने लम्बे पत्रव्यवहार और विभिन्न सरकारी वक्तव्यों में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी-द्वारा पास किये गए प्रस्ताव की अच्छाइयों का जिक्र तक भी नहीं किया गया, जिसमें राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति का विवेचन करने के साथ साथ यह बात स्पष्ट करदी गई थी कि स्वतंत्र भारत अपनी सारी शक्ति लगाकर न केवल आक्रमण का ही मुकाबला करेगा, बल्कि वह विश्व के स्वातंत्र्य-संग्राम में अपने समस्त साधनों को लगा देगा और संयुक्तराष्ट्रों के समकक्ष होकर इसमें भाग लेगा। स्वयं प्रस्ताव में ही यह बात बहुत स्पष्ट रूप से कह दी गई थी मैंने अध्यक्ष की हैसियत से तथा दूसरे लोगों ने भी इसी बात पर बारंबार जोर दिया था।

"आपको यह पता होना चाहिए कि जब से अफ्रीका, एशिया और यूरोप में फासिस्टवाद, तथा जापानियों और नाजीवादने अपना सिर उठाया है, कांग्रेसने निरन्तर और हमेशा उनका विरोध किया है। इस बारे में भारत ही क्या, किसी और जगह के किसी संगठन ने भी इतना जोर नहीं दिया है, जितना कांग्रेस ने।

"अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के अगस्त वाले प्रस्ताव का आधार विशेष रूपसे धुरीराष्ट्र-विरोधी नीति था और उसकी तात्कालिक विशेषता किसी भी आक्रमण के विरुद्ध भारत की रक्षा-व्यवस्था को सुदृढ़ बनाना था। यह बात साफ तौर पर बता दी गई थी, और मैंने भी उस मौके पर इसी पर बार-बार जोर दिया था कि परिवर्त्तन की कसौटी भारत की रक्षा-व्यवस्था और मित्रराष्ट्रों के हाथों को सुदृढ़ बनाना है। शायद आपको यह भी मालूम हो कि वर्तमान ब्रिटिश सरकार के बहुत-से सदस्य भूतकाल में फासिज्म और जापानी सैनिकवाद के जोरदार समर्थक रहे हैं अथवा उन्होंने उनका स्वागत किया है।

"महात्मा गांधी के नाम अपने पत्र के अन्त में आपने कहा है कि एक-न-एक दिन कांग्रेस को इन आरोपों का जवाब देना ही पड़ेगा। हम तो बल्कि ऐसे दिन का स्वागत करेंगे जबकि हम दुनिया के लोगों के सामने इनका जवाब देंगे और इसका फैसला उन्हीं पर छोड़ देंगे। उस दिन दूसरों के अलावा ब्रिटिश सरकार को भी उस पर लगाए गए इलजामों का जवाब देना होगा। मुझे यकीन है कि वह भी उस दिन का स्वागत करेगी।

आपका शुभचिन्तक
अबुलकलाम आजाद।"

भारत-सरकार ने इस पत्र की कोई परवाह नहीं की और उसका कोई उत्तर नहीं दिया। हां, अलबत्ता उसने जेल के सुपरिन्टेंडेन्ट के जरिये मौलाना को यह सूचना भिजवा दी कि उनका खत उसे मिल गया है। परन्तु जिस दिन डा० सैय्यद महमूद अहमदनगर किले के 'नजरबन्द कैम्प' से रिहा होकर बाहर आए तो इस पत्र पर भी प्रकाश पड़ा। उन्होंने यह पत्र पहली नवम्बर को समाचारपत्रों के सुपुर्द कर दिया।

उपवास की प्रतिक्रिया

(क) ब्रिटेन

सौभाग्य से मार्च के पहले सप्ताह में गांधीजी का उपवास समाप्त हो गया। उसके परिणामस्वरूप ब्रिटेन की जनता का ध्यान पुनः भारतीय गतिरोध को दूर करने की ओर आकर्षित हुआ। 'मांचेस्टर गार्जियन' ने अपने एक संपादकीय लेख में लिखा :—

"यह सौभाग्य की बात है कि हमारे और भारत के दरम्यान अन्तिम मैत्री स्थापित होने की आशा से गांधीजी जीवित रहे। परन्तु यह सत्य है कि भारत की राजनीतिक स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ...

"दुनिया पर इस उपवास की जो प्रतिक्रिया हुई उसका हम अध्ययन करना चाहते हैं।

"ब्रिटेन की प्रतिक्रिया विशेषरूप में उल्लेखनीय है। वहां के सभी प्रगतिशील हल्कों और विचारों के लोगों ने इस सम्बन्ध में सहानुभूति प्रकट करने में तत्परता दिखाई। उसके बाद हम अमरीका और अन्त में भारत की प्रतिक्रिया का अध्ययन करेंगे।

"११ फरवरी को प्रकाशित होनेवाले ब्रिटिशपत्रों ने वाइसराय और गांधीजी के पत्र-व्यवहार से यह अर्थ निकाला कि वे इस उपवास-द्वारा उनका वास्तविक उद्देश्य अपनी नजरबन्दी को समाप्त करने के लिए भारत-सरकार पर दबाव डालना है।" 'टाइम्स' ने लिखा:—

"भारतीय स्थिति से कोई भी व्यक्ति संतुष्ट नहीं हो सकता। लेकिन जो लोग इस सम्बन्ध में बहुत कम संतुष्ट हैं वे भी गांधीजी के इस निर्णय पर खेद प्रकट करेंगे ... गांधीजी ने लोगों में राष्ट्रीय जाग्रति पैदा करके अपने देश की अनूठी सेवा की है। परन्तु वे लाखों ही ऐसे व्यक्तियों का विश्वास नहीं प्राप्त कर सके जिन्हें उनके राजनीतिक नेतृत्व में विश्वास ही नहीं है। इसके अलावा वे एक ऐसा आधार-भूत समझौता पैदा करने में भी असफल रहे हैं जिसके बिना भी कोई भी विधान नहीं बनाया जा सकता और जिसे कोई भी बाहरी शक्ति भारत पर नहीं लाद सकती। उनकी वर्तमान चाल से भी उस उद्देश्य की पूर्ति में कोई मदद नहीं मिलती। इसका एकमात्र परिणाम यह होगा कि मतभेद और भी अधिक बढ़ जाएंगे और संभव है कि और नये उपद्रव शुरू हो जायँ। और न ही अब ब्रिटिश नीति की अतीत काल की गलतियां इस मार्ग में रोड़े अटका सकती हैं।"

लन्दन में उपवास की क्या प्रतिक्रिया हुई और ब्रिटेन के समाचारपत्रों ने इस मौके पर चुप्पी क्यों साध ली, इस पर प्रकाश डालते हुए ११ फरवरी का 'अमृत बाजार पत्रिका' के नाम लन्दन से निम्न तार आया, जिसमें कहा गया था :—

"गांधीजी के उपवास के निर्णय की खबर मिलने पर लन्दन के हलके कल पूर्णतः हैरान रह गए। यद्यपि गांधीजी और वाइसराय के दरम्यान ३१-१२-४२ से लिखा पढ़ी हो रही थी, लेकिन ब्रिटेन के राजनीतिक हलके छः सप्ताह तक इस मामले में बिल्कुल अन्धकार में पड़े रहे। परन्तु स्वयं लन्दन के जिम्मेदार हलके यह कह रहे हैं कि गांधीजी के इस निर्णय को मूर्खतापूर्ण नहीं समझ लेना चाहिए। उपवास के कारण पैदा होनेवाली परिस्थिति की गंभीरता को ये लोग खूब अच्छी तरह से अनुभव कर रहे हैं। यह कहा जा रहा था कि अगर गांधीजी इस कठिन परीक्षा में सफल भी हो गए तब भी इसका उनके स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ेगा। लन्दन के हलकों की राय है कि इस बात का फैसला कि क्या उपवास के कारण उपद्रवों को और अधिक प्रोत्साहन मिलेगा, इस पर निर्भर करेगा कि गांधीजी के फैसले की भारतीय जनता पर कैसी मानसिक प्रतिक्रिया हुई है। अब तक भारतीय जनता की प्रतिक्रिया के बारे में भारत से यहां कोई खबर नहीं पहुँची; हां इतना अवश्य पता चला है कि यह खबर सुनते ही बम्बई का शेअर बाजार बन्द होगया। अभी तक यह स्पष्ट नहीं हो सका कि क्या गांधीजी और वाइसराय के दरम्यान होनेवाला समस्त पत्र-व्यवहार भारतीय समाचारपत्रों को दिया गया है अथवा नहीं? यह भी कहा गया है कि भारत-सरकार ही इस बात का निर्णय करेगी कि भारतीय समाचारपत्रों को गांधीजी के उपवास पर सोच-विचार करने और पत्र-व्यवहार प्रकाशित करने की किस हद तक इजाजत दी जाय।"

दूसरी ओर यद्यपि १० तारीख को सुबह ही लन्दन के समाचारपत्रों के पास गांधीजी का संपूर्ण पत्र-व्यवहार पहुँचा दिया गया था, फिर भी वे इस-बारे में चुप रहे और इसे कोई महत्व नहीं दिया। 'टाइम्स' 'डेली टेलिग्राफ' 'डेली स्कैच', को छोड़कर लन्दन के किसी भी दूसरे समाचारपत्र ने गांधीजी के उपवास के बारे में संपादकीय टिप्पणी नहीं लिखी। प्रायः सभी पत्रों ने गांधीजी के उपवास-संबन्धी फैसले को कोई बड़ा महत्त्व नहीं दिया। उनमें से अधिकांश ने तो "गांधीजी की राजनीतिक चाल" शीर्षक से इस समाचार को छापा। डब्लू० एन० ईवर ने इसे "गांधी का महल में उपवास" लिखा। आमतौर पर यह प्रभाव पड़ रहा था कि मानो लन्दन के अधिकांश समाचारपत्रों ने कमसे कम फिलहाल तो गांधीजी के उपवास के सम्बन्ध में चुप्पी साधने की साजिश कर ली हो।

'न्यूज क्रानिकल' और 'डेली टेलिग्राफ' ने वाइसराय और गांधीजी के दरम्यान इस नये पत्र-व्यवहार का विवरण बहुत संक्षेप में छापा।

'न्यू स्टेट्समैन ऐण्ड नेशन' के आलोचक ने १२ फरवरी को शुक्रवार के अंक में इस प्रकार लिखा—"पश्चिम के बहुत कम लोग उपवास के पेचीदा उद्देश्य को समझ सकते हैं, जबकि भारत में उपवास एक साधारण और प्रतिष्ठित प्रथा समझी जाती है। मुझे संदेह है कि इन लोगों को वाइसराय और गांधीजी के विचित्र पत्र-व्यवहार को पढ़ने से अधिक लाभ या जानकारी प्राप्त हो सकेगी। उनमें से प्रत्येक एक दूसरे पर यह इलजाम लगा रहा है कि भारत की वर्तमान हिंसापूर्ण कार्रवाइयों की जिम्मेदारी उसी पर है। वाइसराय की नजरों में उपवास एक राजनीतिक चाल है। जिसके जरिये सरकार को बदनाम करने की कोशिश की जा रही है।"

गांधीजी ने हालके उपद्रवों की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेने से साफ इन्कार कर दिया था, इस पर टिप्पणी करते हुए 'मांचेस्टर गार्जियन' ने लिखा—"......कांग्रेसी नेताओं की गिरफ्तारी के बाद से सरकार ने ऐसी कोई भी कार्रवाई नहीं की जिससे देश के विद्यमान् खिंचाव में कमी हो जाती। स्थिति को सुधारने के लिए न तो कुछ किया गया है और न किया जा रहा है और अब गांधीजी जो उपवास करने जा रहे हैं, भले ही भारत-सरकार उसकी जिम्मेदारी अपने ऊपर न ले, परन्तु हो सकता कि भारत पर उसका व्यापक प्रभाव पड़े।"

पार्लीमेन्ट के बहुत-से मजदूरदली सदस्यों ने भारत की परिस्थिति—विशेषकर उपवास के समय गांधीजी को नजरबन्द रखने के सम्बन्ध में गहरी चिन्ता प्रकट की। वाइसराय की शासन-परिषद् के तीन सदस्यों के इस्तीफे का समाचार मिलने के बाद इनमें से लगभग १५ सदस्यों ने १७ फरवरी को कामन-सभा के कमेटी रूम में एक बैठक की। लन्दन में इंडिया लीग द्वारा आयोजित एक सभा में भाषण देते हुए लार्ड स्ट्रैबोल्गी ने कहा कि अगर कहीं उपवास के परिणाम-स्वरूप गांधीजी की जान जाती रही तो उन्हें आशंका है कि हिन्दुओं के साथ ब्रिटेन के भावी सम्बन्ध बहुत कटु और खतरनाक हो जाएंगे।

कामन-सभा में श्री एमरी से पूछा गया कि क्या उनकी राय में भारतीय गतिरोध को दूर करने के उद्देश्य से सर तेजबहादुर सप्रू और श्री राजगोपालाचार्य-जैसे प्रभावशाली निर्दल नेताओं को गांधीजी से मुलाकात करने की इजाजत देना मुनासिब न होगा? इसके उत्तर में उन्होंने कहा :—

"गांधीजी से मुलाकात करने का प्रश्न मैं सर्वथा भारत-सरकार की मर्जी पर छोड़ देना चहता हूँ।"

मजदूर-दल के सदस्य श्री सोरेन्सन ने पूछा—"क्या श्री एमरी यह नहीं अनुभव करते कि वाइसराय की शासन-परिषद् के तीन सदस्यों के इस्तीफे के बाद नयी परिस्थिति पैदा हो गई है? उसे ध्यान में रखते हुए वे वाइसराय से कहें कि इन मुलाकातों की इजाजत दे दी जाय।"

श्री एमरी—"नहीं महोदय।"

ब्रिटिश पत्रों ने साधारणतः यह कहा कि गांधीजी की गिरफ्तारी की मांग "एक राजनीतिक मांग है" और यदि उसे मान लिया गया तो उसकी वजह से भारत की सुरक्षा के लिए खतरा पैदा हो जाएगा और मित्र-राष्ट्रों को भी नुकसान पहुँचेगा।

२३ फरवरी को कैण्टरबरी के आर्चबिशप ने 'टाइम्स' में एक पत्र लिखा, जिसमें कहा गया था :—

"इस समय हम जिन महत्वपूर्ण विषयों में पहले से ही उलझे हुए हैं, सम्भवतः उनकी वजह से हम भारतीय स्थिति की गम्भीरता को न महसूस कर सकें। यह स्पष्ट है कि राजनीतिक गतिरोध आध्यात्मिक असंतोष और क्षोभ का द्योतक होता है......"

२५ फरवरी को एक शिष्टमण्डल ने, जिसमें श्री कैनन हालैण्ड और पार्लामेंट के मजदूर दल के बहुत-से सदस्य भी शामिल थे, श्री एमरी से भेंट की और उनसे गांधीजी को रिहा करने और गांधीजी तथा कांग्रेसी नेताओं में पारस्परिक संपर्क स्थापित करने की आवश्यकता पर जोर दिया। कामन-सभा में एक प्रश्न का उत्तर देते हुए श्री एमरी ने कहा कि ब्रिटिश-सरकार भारत-सरकार के इस फैसले से पूर्णत. सहमत है कि इस प्रकार गांधीजी-द्वारा बिना शर्त अपनी रिहाई की कोशिशों के आगे घुटने न टेके जायँ।

उपवास की समाप्ति पर बहुत कम ब्रिटिश-पत्रों ने कोई राय जाहिर की। 'डेलीमेल' और 'डेली टेलिग्राफ' ने इसे ब्रिटिश-सरकार की विजय बताया।

उदार-दली पत्र 'स्टार' ने कहा कि उपवास के परिणामस्वरूप भारतीयों की मनोकामना पूरी नहीं हो सकी।

इंडिया लीग-द्वारा आयोजित एक सभा में ३ मार्च को भाषण देते हुए लार्ड स्ट्रैबोल्गी ने कहा कि अब जब कि गांधीजी का उपवास खत्म हो गया है, कांग्रेस के नेताओं और भारत के अन्य समुदायों के साथ तुरन्त ही नये सिरे से समझौते की बात-चीत शुरू कर देनी चाहिए और गांधीजी की रिहाई इस दिशा में पहला कदम हो सकता है।

प्रोफेसर लास्की ने ६ मार्च, १९४३ के 'रेनाल्ड्स न्यूज़' में लिखा : "ब्रिटिश सरकार निस्सन्देह सौभाग्यशालिनी है कि उपवास के दौरान में गांधीजी की मृत्यु नहीं हुई, अगर कहीं ऐसा हो जाता तो हमारे इन दोनों देशों के दरम्यान बहुत भारी गलतफहमी पैदा हो जाती जिसे दूर करना असम्भव हो जाता।" इंडिया लीग-द्वारा ३ मार्च को धन्यवाद-प्रकाशन के रूप में आयोजित एक सभा में भाषण देते हुए लार्ड स्ट्रैबोल्गी ने कहा कि उन्हें प्रसन्नता है और ईश्वर का धन्यवाद करना चाहिए कि गांधीजी ब्रिटेन के एक कैदी के रूप में मरने से बच गए। मिस अगस्था हैरिसन ने कहा कि गांधीजी न केवल भारत की भलाई के लिए ही जीवित रह सके हैं, बल्कि समस्त मानवता के लिए। लार्ड हेरिंगडन, श्री एडवर्ड थामसन, श्री लारेंस हाउसमैन और कैण्टरबरी के डीन ने गांधीजी को तत्काल रिहा कर देने की आवश्यकता पर जोर देते हुए संदेश भेजे।

(ख) अमरीका में प्रतिक्रिया

'शिकागो डेली न्यूज़' के प्रतिनिधि श्री ए० टी० स्टील ने, जो उस समय कराची में थे, "एक मुलाकात में कहा कि 'गांधीजी के उपवास के कारण भारत में जो चिन्ताजनक और गम्भीर परिस्थिति पैदा हो गई है, उसकी वजह से अमरीकी जनता फिर से भारतीय समस्या में दिलचस्पी लेने लगी है। इस समय भारत में अमरीका के समाचारपत्रों और संवादसमितियों के प्रतिनिधियों की भरमार है और वे नित्यप्रति सैकड़ों ही तार गांधीजी के उपवास के सम्बन्ध में अमरीका भेज रहे हैं।"

अमरीका में उपवास की विभिन्न प्रतिक्रिया हुई। अमरीका के सभी प्रमुख पत्रों में गांधीजी के उपवास और वायसराय के साथ उनके पत्र-व्यवहार का विस्तृत विवरण प्रकाशित हुआ। १२ फरवरी तक न्यूयार्क और वाशिंगटन के किसी भी पत्र ने इस सम्बन्ध में कोई टिप्पणी नहीं

की अमरीका की प्रतिनिधि-सभा के सदस्यों ने कहा कि उनके पास गांधीजी की कार्रवाइयों के अध्ययन करने का समय नहीं है और इसलिए वे इस सम्बन्ध में कोई राय प्रकट करने को तैयार नहीं हैं।

गांधीजी के उपवास के सम्बन्ध में २२ फरवरी को अपने संपादकीय लेख में टिप्पणी करते हुए 'न्यूयार्क टाइम्स' ने लिखा :—

"भारत की स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए जिस व्यक्ति ने अपना सारा ही जीवन लगा दिया है, उसकी चरम सीमा अब उपवास में जाकर समाप्त हो रही प्रतीत होती है। पिछले सप्ताह गांधीजी की गम्भीर अवस्था के कारण एक बड़ा संकट पैदा हो गया। वाइसराय की शासन-परिषद् के तीन भारतीय सदस्यों ने उससे इस्तीफा दे दिया। यद्यपि वाइसराय ने गांधीजी को रिहा कर देने से साफ इन्कार कर दिया है, लेकिन सभी दलों की राय है कि अगर कहीं गांधीजी की मृत्यु होगई तो ब्रिटेन के लिए एक बड़ी गम्भीर और पेचीदा समस्या खड़ी हो जाएगी। कुछ अधिकृत सूत्रों ने एकदम और अधिक हिंसात्मक कार्रवाइयों के होने की भविष्यवाणी की है और कुछ दूसरों ने यह कहा है कि लोग इतने शोकाकुल और स्तब्ध होंगे कि वे कुछ भी नहीं कर पाएंगे।"

२० फरवरी को अमरीका के स्वराष्ट्र-मंत्री श्री कार्डेल हल और ब्रिटेन के राजदूत लार्ड हेलीफेक्स ने एक दूसरे से बातचीत की, और श्री हल ने गांधीजी के उपवास से पैदा होनेवाली परिस्थिति के सम्बन्ध में गहरी चिन्ता प्रकट की। उसके बाद वहां कोई और उल्लेखनीय घटना नहीं हुई। अमरीकी सरकार के भारतीय समस्या के विशेषज्ञों का गांधीजी के उपवास में खासतौर पर दिलचस्पी लेना सर्वथा स्वाभाविक था। वे इस बात में विशेष रूप से दिलचस्पी ले रहे थे कि इस उपवास और उसके फलस्वरूप घटनेवाली संभावित दुर्घटना के क्या परिणाम हो सकते हैं। लेकिन अमरीका के अधिकारियों की राय का अन्दाजा हम केवल श्री हल अथवा राष्ट्रपति रूज़वेल्ट के भाषणों से ही लगा सकते थे।

गांधीजी के उपवास की समाप्ति पर ४ मार्च को 'न्यूयार्क टाइम्स' ने अपनी राय प्रकट करते हुए लिखा कि "दोनों ही पक्षों की नैतिक विजय हुई है और आखिरकार यह घटना-क्रम समाप्त हो गया है। लेकिन अब सवाल यह उठता है कि क्या भारतीय परिस्थिति पर फिर से विचार करने के लिए उचित समय आ गया है। हमें यक़ीन है कि ब्रिटेन के बहुत-से लोग अपने आप ये सवाल करेंगे कि क्या महीनों तक प्रतीक्षा करने के बाद अब वह समय नहीं आ गया जबकि इस परिस्थिति पर पुनः विचार किया जाय? क्या इस मामले में ब्रिटेन अब आसानी से पहल नहीं कर सकता?......क्या पुनः उसी जगह से समझौते की बातचीत नहीं शुरू की जा सकती जहां से सर स्टैफर्ड क्रिप्स के भारत जाने से पहले की थी।"

(ग) भारत में प्रतिक्रिया

उपवास के सम्बन्ध में भारत में विभिन्न मत होने की शायद ही कोई कल्पना कर सकता था। भारतीयों के लिए उपवास में कोई जादू और रहस्य छिपा हुआ है। यह हमारी प्राचीन और कुछ हद तक अर्वाचीन परम्पराओं के अनुकूल है। पर ऐंग्लो-इंडियनों का दृष्टिकोण यह नहीं हो सकता। लेकिन फिर भी इनके समाचार-पत्र 'स्टेटस्मैन' ने गांधीजी के व्यक्तित्व की भूरि-भूरि प्रशंसा की; पर राजनीतिज्ञ के रूप में उन्हें भला-बुरा कहा।

उपवास की महत्वपूर्ण और सर्वप्रथम प्रतिक्रिया भारत में यह हुई कि इस नयी परिस्थिति पर सोच-विचार करने के लिए १८ फरवरी को नयी दिल्ली में नेताओं का एक सम्मेलन बुलाया

गया। इसमें भाग लेने के लिए विभिन्न दृष्टिकोण रखनेवाले लगभग १५० प्रमुख नेताओं को, जिनमें श्री जिन्ना भी शामिल थे, बुलावा भेजा गया। लेकिन श्री जिन्ना ने यह कहकर इसमें भाग लेने से इन्कार कर दिया कि "गांधीजी के उपवास के कारण पैदा होनेवाली परिस्थिति पर सोच-विचार करने का काम वास्तव में हिन्दू-नेताओं का है।"

इस सम्बन्ध में सब से पहले अपने विचार प्रकट करनेवाले सार्वजनिक नेता हिन्दू महा-सभा के कार्यवाहक अध्यक्ष डा० श्यामप्रसाद मुकर्जी थे। आपने एक वक्तव्य में कहा– 'महात्मा गांधी के बिना भारतीय समस्या कभी नहीं सुलझ सकती।"

भारतीय व्यापार और उद्योग-संघ के प्रधान श्री जी० एल० मेहता ने वायसराय के नाम अपने तार में कहा —"उपवास करने के बारे में यदि गांधीजी के फैसले में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता था, तो कम-से-कम सरकार को उन्हें बिना शर्त रिहा कर देना चाहिए था। "पण्डित मदन-मोहन मालवीय ने २० फरवरी को ब्रिटेन के प्रधान मंत्री श्री चर्चिल को निम्न तार भेजा :—

"भारत और इंग्लैण्ड के भले के लिए मैं आप से गांधीजी को मुक्त कर देने की यह अंतिम क्षण की अपील करता हूं......यदि कहीं गांधीजी का जीवन जाता रहा तो भारत और इंग्लैण्ड के पारस्परिक मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों के लिए भारी खतरा पैदा हो जायगा।"

श्री आर्थर मूर ने भी एक वक्तव्य में कहा कि इस समय, जब कि गांधीजी का जीवन खतरे में है, सरकार उन्हें छोड़कर कोई खतरा नहीं उठाएगी और न ही उसकी प्रतिष्ठा पर कोई आंच आएगी।

भारत के सभी हिस्सों से गांधीजी को बिना शर्त मुक्त कर देने की असंख्य अपीलें की गईं। इस सम्बन्ध में दो महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय घटनाएं हुईं। गांधीजी की रिहाई के लिए देश भर में असंख्य सभाएं की गईं। इनमें से एक कलकत्ता के न्यायाधीश श्री विश्वास की अध्यक्षता में हुई और दूसरी, नयी दिल्ली में सेक्रेटेरियट की इमारत के सामनेवाले मैदान में भारत-सरकार के सेक्रेटेरियट में काम करनेवाले क्लर्कों की एक सभा थी।

३ मार्च को सुबह के ६ बजे गांधीजी ने संतरे के रस का एक छोटा गिलास और एक चम्मच ग्लूकोस लेकर २१ दिन का अपना उपवास खोला। गांधीजी का यह सत्रहवां—और पांचवां बड़ा—उपवास था। लेकिन जनता और डाक्टरों को उनके किसी भी पिछले उपवास के समय इतनी चिन्ता और भय नहीं हुआ था जितना इस अवसर पर। और विधान चन्द्र राय ने कहा कि "इस बार गांधीजी मृत्यु के सन्निकट पहुंच गए थे।" जब डा० बी० सी० राय का ध्यान गांधीजी के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में सरकार-द्वारा प्रकाशित किये जानेवाले बुलेटिनों की गम्भीरता की ओर आकर्षित किया गया तो उन्होंने कहा कि "महात्माजी ने हम सबको बेवकूफ बना दिया।" कलकत्ता यूनिवर्सिटी के स्टाफ और विद्यार्थियों की एक सभा में भाषण देते हुए डा० विधान चन्द्र राय ने गांधीजी के उस वक्तव्य पर प्रकाश डाला जो उन्होंने उपवास की समाप्ति पर दिया था :—

"मैं नहीं कह सकता कि विधाता ने किस प्रयोजन से मुझे इस अवसर पर बचा लिया है, संभवतः वे मुझसे कोई और काम पूरा कराना चाहते हैं।"

'फ्रेंडस् अम्बुलेंस यूनिट (भारत) के अध्यक्ष श्री होरेस अलग्जेण्डर ने, जो उपवास के समय पूना में थे और इस अर्से में गांधीजी से दो बार मुलाकात कर चुके थे, कहा कि "गांधीजी के उपवास का भले ही कोई और महत्व क्यों न रहा हो किन्तु मेरी राय में इसका सर्वाधिक

महत्त्व यह है कि यह आत्मोत्सर्ग का एक उच्च उदाहरण है। इसके अलावा मेरा विचार है कि भारत और सारे संसार के लोगों के पापों और कपटों के लिए भी उनका यह उपवास आत्मशुद्धि और आत्मोत्सर्ग का द्योतक है......।''

उपवास तो खत्म हो गया, लेकिन सरकार ने एकदम अप्रत्याशित रुख धारण कर लिया। उसने आदेश जारी कर दिया कि उपवास तोड़ने के समय गांधीजी के पुत्रों को छोड़कर और कोई भी व्यक्ति उनके पास नहीं रह सकता और गांधीजी का अथवा ऐसे दूसरे किसी भी व्यक्ति का, जिसकी उन तक पहुंच है, कोई भी वक्तव्य तब तक प्रकाशित नहीं किया जा सकता जब तक कि उसे पहले से प्रांतीय प्रेस-सलाहकार को न दिखला लिया गया हो। यह प्रतिबन्ध छः महीने और २१ दिन तक जारी रहा। उसके बाद एक दिन २४ सितम्बर को अचानक बम्बई-सरकार ने भारत के लोगों को यह घोषणा करके आश्चर्यचकित कर दिया कि उसने अपना वह आदेश वापस ले लिया है जिसमें कहा गया था कि "गांधी का अथवा ऐसे दूसरे किसी भी व्यक्ति का, जिसकी उन तक पहुंच हो---कोई भी वक्तव्य तब तक प्रकाशित नहीं किया जा सकता जब तक कि उसे पहले से प्रांतीय प्रेस-सलाहकार को न दिखला लिया गया हो।'' ऐसे अवसर पर जब कि भारत के आकाश में घटाटोप अंधकार छाया हुआ था, बम्बई-सरकार का यह वक्तव्य बड़ा रहस्यमय प्रतीत होता था। तीन सप्ताह तक लार्ड लिनलिथगो भारत से प्रस्थान करनेवाले थे। उनके नये उत्तराधिकारी अपने विदाई-भाषणों में अपने भावी कार्यक्रम, उसकी कठिनाइयों और खतरों का ज़िक्र करने के साथ-साथ, इस सम्बन्ध में अपनी आशाओं और आकांक्षाओं पर भी प्रकाश डाल रहे थे। इस समय कोई भी व्यक्ति गांधीजी से किसी वक्तव्य की आशा नहीं कर रहा था। ३ मार्च को उन्होंने उपवास खोला था और २ मार्च उनसे मुलाकात करने या कोई बातचीत का अंतिम दिन था। अब इस घटना को हुए छः महीने और इक्कीस दिन हो चुके थे और यदि उनके मित्रों को उनके बारे में कोई वक्तव्य देना भी था तो वह अब तक बिल्कुल बासी और असामयिक पड़ चुका था। तब फिर बम्बई-सरकार ने यह घोषणा क्यों की? उसका असली मकसद क्या था और उसे रेडियो पर इतनी आन-बान के साथ क्योंकर ब्राडकास्ट किया गया था? सवाल उठता है कि आखिर इस सब का मतलब क्या था?

उपवास समाप्त हो गया

आखिर एक दिन यह कठिन परीक्षा पूरी हो गई। यह परीक्षा प्राचीन काल की अग्नि और जल की परीक्षा से कहीं अधिक कठिन थी, क्योंकि यह क्षणिक न होकर चिरकालीन थी, यह आत्म-निर्देशित थी, किसी बाहरी शक्ति-द्वारा निर्देशित नहीं। ब्रिटिश सरकार जो काम करने को तैयार नहीं थी, वह काम गांधीजी के पवित्र दृढ़ निश्चय और विश्वकी उच्च अदालत के सामने उनकी प्रार्थनाओं और अपीलों ने कर दिखाया---अर्थात् गांधीजी मृत्यु के मुंह में जाने से बच गए। यह एक निर्विवाद सत्य है कि दृढ़ विश्वास और धारणा ज्ञान से बड़े हैं और धारणा में आश्चर्यजनक काम करने की शक्ति होती है। गांधीजी के उपवास के बाद फिर वही पुराना सवाल जिसके कारण उन्होंने उपवास किया था, सामने आया। प्रत्येक व्यक्ति यह जानने को उत्सुक और चिंतित था कि अगला कदम क्या होगा? क्या सरकार अब कुछ झुक जायगी और नरम पड़ जायगी? क्या वह अपने किये पर पश्चात्ताप करेगी? क्या उसके कठोर हृदय में परिवर्त्तन हो सकेगा? क्या उसकी मनोवृत्ति में कोई परिवर्तन होगा? क्या वह अपना दुराग्रह छोड़ देगी? इस प्रसंग में हम जार्ज बर्नार्ड शा का एक वक्तव्य उद्धृत करना उचित समझते हैं जो उन्होंने मई

१९४३ के अन्त में दिया था। उन्होंने कहा—"आप मेरा हवाला देकर यह कह सकते हैं कि ब्रिटिश सरकार ने दक्षिण पक्ष (टोरी) के प्रतिक्रियावादी और दुस्साध्य लोगों के कहने में आकर गांधीजी को जेल में बन्द करके एक मूर्खतापूर्ण और भारी भूल की है। इसने ब्रिटेन के धनिकवर्ग के साथ मिलकर हिटलर के खिलाफ इस देश की नैतिक स्थिति बिलकुल खत्म कर दी है। सम्राट् को चाहिए कि वे गांधीजी को बिनाशर्त मुक्त करके उनसे अपने मंत्रिमंडल के मानसिक विकार के लिए क्षमा-याचना करें। इस तरह से जहां तक हो सकेगा भारतीय स्थिति को सुलझाया जा सकेगा।" निस्संदेह ये बड़े महत्त्वपूर्ण शब्द हैं, लेकिन यूरोपीय महाद्वीप पर राजनीतिज्ञता यदि खत्म नहीं हो चुकी थी तो कम से कम उसका दिवाला अवश्य निकल चुका था और जो-कुछ बाकी बचा था उस पर भी पश्चिमी जातियों को उच्च समझने की भावना, सभ्यता और घातक हथियारों से लड़ी जानेवाली लड़ाई का अभिशाप छाया हुआ था।

१९१२ में भारत मंत्री मांटेगू ने 'प्रतिष्ठा' शब्द को अंग्रेजी शब्दकोष से सदा के लिए निकाल फेंकने की जोरदार सलाह दी थी। लेकिन जीवन के शब्दकोष में यह शब्द ज्यों का त्यों कायम है। अंग्रेजों की दृष्टि में समस्त सृष्टि के जीवन की अपेक्षा कानून का अधिक महत्त्व है, यद्यपि जीवन कानून या तर्क की अपेक्षा अधिक पूर्ण, अधिक पेचीदा और अधिक मानवताप्रिय है। इस प्रकार ब्रिटेन और भारत का यह संघर्ष, जिसमें उपवास की सृष्टि हुई, अविरल रूप से और अबाध गति से जारी रहा, और वह न केवल साधन बल्कि साध्य के रूप में भी निरन्तर उग्ररूप धारण किये रहा। अगस्त और सितम्बर में वाइसराय के नाम लिखे गए अपने पत्रों में गांधीजी ने यह बात साफ तौर पर कह दी थी कि वे सरकार-द्वारा उन पर और कांग्रेस पर लगाए गए आरोपों की छान-बीन करने के लिए तैयार हैं और अगर उन्हें इन प्रमाणों से संतोष हो जायगा तो वे अपने को उन दोनों से ही अलग कर लेंगे। परन्तु किसी धमकी अथवा दबाव में आकर प्रस्ताव वापस लेने या हिंसा की निन्दा करने से कोई लाभ नहीं पहुँच सकता। वह तो ऐसे ही होगा जैसे कि पुलिस के सामने जाकर अपराध कबूल कर लिया जाय। परन्तु यदि आप अभियुक्त को मैजिस्ट्रेट अथवा जज के पास ले जाकर उसकी गवाही दर्ज कराएं तो इसका महत्त्व समझ में आ सकता है। ब्रिटिश कानून के अन्तर्गत प्रारम्भिक कार्रवाई का यही तरीका है। किसी ठोस सबूत के आधार पर अगर हिंसात्मक कार्रवाइयों की निन्दा की जाय और प्रस्ताव वापस लिए जाएं तो क्या वह वास्तव में सरकार के लिए अधिक नैतिक महत्त्व की बात न होगी? परन्तु सरकार को तो नैतिक महत्त्व से कोई वास्ता ही न था। ये तो सिर्फ साधु-महात्माओं के कल्पना जगत् की चीजें ठहरीं, जिनके लिए आज की राजनीति में कोई स्थान नहीं है।

श्री चर्चिल को अपनी चिर-आकांक्षित साध पूरी करने का यही तो उचित अवसर मिला था—इस समय वे गांधी और गांधीवाद को कुचलकर रख देना चाहते थे। पश्चिम की आधुनिक युद्धकला के सभी हथियारों का मुकाबला सत्याग्रह के इस शक्तिशाली हथियार से किया जा सकता है। परन्तु यह काम एक पूर्वी राष्ट्र एक महात्मा और राजनीतिज्ञ के नेतृत्व में ही पूरा कर सकता है। ब्रिटेन के लिए यह काफी नहीं था कि गांधीजी बम्बई-प्रस्ताव के समर्थक थे—जिसमें मित्रराष्ट्रों को सैनिक-सहायता देने का वायदा किया गया था। ब्रिटेन को इससे कोई मतलब नहीं था कि गांधीजी कांग्रेस की सब योजनाओं को ताक पर रखकर श्री जिन्ना को राष्ट्रीय सरकार का प्रधान मंत्री बनाकर उसके साथ सहयोग करने को तैयार थे। परन्तु, इतिहास अपनी पुनरावृत्ति अवश्य करता है। ब्रिटेन के लिए यह मार्ग खुला था कि वह अमरीकियों को यहां अपना

उपनिवेश स्थापित करने की इजाज़त देता, परन्तु उसके लिए भी तो "कष्ट सहने पड़ते, खून और पसीना एक कर देना पड़ता।" जब किस्मत ही साथ न दे रही हो तो आप लाख कोशिश करने पर भी अपने को विनाश के मुंह में जाने से नहीं रोक सकते। कहा जाता है कि किसी आयरिश ने गलती से कहा था कि "मैं डूबूंगा; और कोई मुझे नहीं बचाए।" परन्तु ऐसा मालूम होता है कि हाल में जानबुल (अंग्रेज) ने भी आयरलैण्डवालों की इस बुद्धिमत्ता की नकल करली है !

इस उपवास के सम्बन्ध में साधारण दिलचस्पी की भी कुछ बातें हैं। आगाखां महल के दरवाजे पहले तो केवल गांधीजी के परिवारवालों, सम्बन्धियों और उन लोगों के लिए, जिन्हें गांधीजी मिलना चाहते थे, खोले गए थे; लेकिन बाद में सरकार की यह सतर्कता शिथिल पड़ गई और दर्शकों की भारी भीड़ इस तीर्थ-स्थान पर पहुंचने लगी। इसकी वजह यह थो कि साधारणतः यह आशंका प्रकट की जा रही थी कि देश को एक आत्म-बलिदान देखना होगा। सामर्थ्य के अनुसार किये जानेवाले उपवास का क्या अर्थ है और क्या नहीं—इस पर काफी प्रकाश डाला जा चुका था।

'यूनाइटेड प्रेस'को एक विश्वस्त और प्रमुख नेता से, जो कि गांधीजी की मानसिक विचार-धारा से पूर्णत. परिचित है,यह पता चला है कि वाइसराय के नाम गांधीजी ने अपने पत्र में "सामर्थ्य के अनुसार यथाशक्ति" शब्दों द्वारा जिस उपवास की चर्चा की थी, उसका जो यह साधारण अर्थ लगाया गया है कि जब भी वे यह देखेंगे कि उनकी शक्ति उनको जवाब देती जा रही है, वे उपवास छोड़ देंगे, बिलकुल गलत है। पिछली बार सांप्रदायिक निर्णय के सम्बन्ध में जब गांधीजी ने उपवास किया था तो यह कह दिया था कि जब तक कोई संतोषजनक फैसला नहीं होजाएगा तब तक वे आमरण उपवास जारी रखेंगे;परन्तु इस बार इन्होंने कहा था कि वे सामर्थ्य के अनुसार उपवास कर रहे हैं और इसके लिए उन्होंने तीन सप्ताह की अवधि निर्धारित की थी, क्योंकि उनका खयाल था कि इस बार उनकी सामर्थ्य इतनी ही थी। इसलिए यह उपवास उस निर्धारित अवधि तक अवश्य जारी रहना था बशर्ते कि उससे पूर्व उनकी मृत्यु न हो जाती अथवा उन्हें रिहा न कर दिया जाता।

गांधीजी के दर्शकों में उनके पुराने मित्र और सहयोगी कार्यकर्ता थे, जिनमें दो अंग्रेज़ मित्र श्री अलग्जेण्डर और श्री सायमण्ड भी शामिल थे। श्री राजगोपालाचार्य, श्री जी० डी० बिड़ला, श्री भूलाभाई देसाई, श्री मुंशी और श्री के० श्रीनिवासन् को गांधीजी के दर्शकों में देखकर लोग यह खयाल करने लगे थे कि शायद उपवास के अन्तिम भाग में यह बातचीत राजनीतिक रूप धारण करले, और लोगों का यह खयाल सर्वथा निराधार नहीं था, क्योंकि जब वाइसराय से इन मुलाकातों के लिए इजाज़त ली गई थी तो सम्बद्ध नेताओं ने आमतौर पर यह संकेत किया था कि यह आशा अकारण नहीं है कि गतिरोध को दूर करने के लिए और बातचीत संभवतः सफल साबित हो सके। उपवास के सम्बन्ध में एक और छोटी-सी किन्तु महत्वपूर्ण घटना श्री विलियम फिलिप्स का तीन पंक्तियों का एक वक्तव्य था, जिसमें कहा गया था :— "भारतीय स्थिति के विभिन्न विचारणीय पहलुओं पर अमरीका और ब्रिटेन की सरकारों के बड़े-बड़े अधिकारियों-द्वारा सोच विचार किया जा रहा है।" परन्तु पूना के राजनीतिक क्षेत्रों में इस वक्तव्य के प्रति कोई उत्साह नहीं प्रदर्शित किया गया, क्योंकि उन हलकों का कहना था कि "जो-कुछ भी करना है शीघ्र ही किया जाना चाहिए ताकि बाद में पछताना न पड़े।" श्री राजगोपाला-

चार्य गांधीजी के उपवास के सम्बन्ध में श्री फिलिप्स से दूसरी बार सोमवार को मिले। उनसे उनकी पहली भेंट १६ फरवरी को नयी दिल्ली में नेता-सम्मेलन के अवसर पर हुई थी। लोगों ने श्री फिलिप्स के इस वक्तव्य का यह अर्थ लगाया कि उनका इशारा लार्ड हेलीफेक्स और कार्डेल हल में हो रही बातचीत से था, परन्तु बाद में श्री हल के वक्तव्य से इस सम्बन्ध में सब सन्देह दूर हो गए। इस सम्बन्ध में तीसरी दिलचस्प बात यह थी कि बम्बई के स्टाक-एक्सचेंज ने गांधीजी के प्रति अपने प्रेम, श्रद्धा और आदर के रूप में ५०,००० रु० लोगों और पशुओं की सहायता के लिए दिया। इसमें से ३५,००० रु० बीजापुर के दुर्भिक्ष सहायता-समिति को लोगों और पशुओं की सहायता के लिए, ३००० रु० चिमूर सहायता-कोष और ४००० रु० विभिन्न संस्थाओं को पशुओं की सहायता के लिए दिया गया। एक और महत्वपूर्ण परन्तु बेहूदा और बदनाम करने-वाली कहानी यह गढ़ी गई थी कि १० फरवरी से लेकर १२ फरवरी तक, जब कि गांधीजी की हालत बहुत अधिक खतरनाक होगई थी, उन्हें गुप्त रूप से कोई खाद्य दिया गया था। इस सम्बन्ध में हम श्री देवदास गांधी और डा० बी० सी० राय के दो अधिकृत और तथ्यपूर्ण वक्तव्यों का उल्लेख करना सर्वथा उचित समझते हैं।

श्री देवदास गांधी ने गांधीजी से मुलाकात करने के बाद पूना से बम्बई वापस पहुंचकर ७ मार्च को समाचार-पत्रों के नाम निम्न वक्तव्य दिया :—

"......इसके बाद आप मीठे नीबू के रस की कहानी को लीजिए। मुझे ठीक ठीक नहीं मालूम कि यह 'मीठा नीबू' किस फल का नाम है। स्वाभाविक तौर पर एक विदेशी सम्वाददाता ने मुझ से पूछा कि क्या उसका यह खयाल ठीक होगा कि शहद या ग्लूकोस-जैसी कोई चीज इस रस में मिला दी गई होगी। जहां तक मेरी जानकारी है 'मौसमी' और 'संतरे' के लिए अंग्रेजी का सीधा-सादा और खाद्य शब्द 'ओरेंज' इस्तेमाल किया जाता है। और वास्तव में वह मौसमी का रस था जिसे गलती से मीठे नीबू का रस कहा गया है— जो बहुत थोड़ी-सी मात्रा में पानी में दिया गया था और इसके अलावा पानी में और कोई चीज नहीं मिलाई गई। नीबू के रस की जगह संतरे के रस का सेवन उपवास की शर्तों के अनुसार ही किया गया था, क्योंकि दो दिन तक गांधीजी के लिए पानी पीना मुश्किल हो गया था और एक औंस पानी निगलने में उन्हें पांच मिनट लगते थे। मेरा विश्वास है कि उपवास के दिनों में वे प्रतिदिन साठ औंस पानी में औसतन छः औंस से भी कम रस मिलाते थे।"

गांधीजी के उपवास के बाद डा० बी० सी० राय ने निम्न वक्तव्य दिया :—

"इस पृथ्वी पर और स्वर्ग में अनेक ऐसी चीजें हैं जिनकी हम कल्पना तक भी नहीं कर सकते। गांधीजी ने उनकी सेवा-शुश्रूषा करनेवाले डाक्टरों से कह दिया था कि अगर वे बेहोश हो जायें तो उन्हें होश में लाने के लिए या उनकी कमजोरी दूर करने के लिए उन्हें कुछ न दिया जाय और डाक्टरों ने उनकी इच्छा पूरी की। अगर उन्हें पानी पीने मे कठिनाई होती थी तो वे जी मचलने की बीमारी के कारण अपना सिर हिलाकर कह देते थे, परन्तु वे इसमें सोडियम साइट्रेट, पोटाशियम साइट्रेट अथवा कुछ हद तक मीठा नीबू भी मिलाकर पीने को तैयार थे, जिससे कि पानी स्वादिष्ट हो सके। ज्यों ही वे पानी की आवश्यक मात्रा पी सकने के योग्य हो गए उन्होंने उसमें नीबू का रस मिलाना छोड़ दिया......।"

अन्त में हम भारतीय आकांक्षाओं और असमर्थताओं के प्रति अमरीका की गहरी परन्तु संयत दिलचस्पी का जिक्र करना चाहते हैं। गांधीजी के उपवास के कारण अमरीका को अपनी

वास्तविक प्रजातन्त्रीय और मानवीय भावना का प्रदर्शन करने का अवसर मिला। यद्यपि यह सत्य है कि समस्त भारत में सैकड़ों ही लोगों ने, जिनके बारे में जनता को कोई जानकारी नहीं है, पूरे इक्कीस दिन तक प्रायः गांधीजी के साथ ही उपवास किया और इसके अलावा लाखों ही लोगों ने एक दिन से लेकर एक सप्ताह अथवा दस दिन तक सांकेतिक व्रत रखा। परन्तु अमरीका में सहानुभूति के रूप में किया जानेवाला उपवास जितना महत्वपूर्ण था उतना ही अप्रत्याशित भी। इस सम्बन्ध में हिल्डा वाइरम बोल्टर ने पत्रों के नाम अपने एक वक्तव्य में बताया :—

"परन्तु सम्पूर्ण अमरीका में अधिकांश लोग इस बात पर बड़ी बेचैनी प्रकट कर रहे हैं कि उनका मित्र, उनका चचेरा भाई और उनका वर्तमान सहयोगी ब्रिटेन भारतीयों के प्रति वह बर्ताव नहीं कर रहा जिसकी वे उससे आशा करते थे। अमरीका के लोग यद्यपि यह बात जानते हैं कि वे भारत की पेचीदा समस्या पूर्णतः समझने में असमर्थ हैं, फिर भी वे निश्चित रूप से जानते हैं कि इसमें एक नैतिक प्रश्न छिपा हुआ है और इस नैतिक प्रश्न पर वे ब्रिटिश सरकार की वर्तमान नीति का किसी तरह से भी समर्थन करने को तैयार नहीं हैं। भारतीय समस्या के बहुत-से पहलुओं के बारे में अमरीका के लोग कठिनाई में पड़ जाते हैं, परंतु इनके साथ ही उनकी भारतीयों के प्रति पूर्ण सहानुभूति भी है।"

इस्तीफे

बहुधा यह कहा जाता है कि अपने जन्म के बाद, जबसे कांग्रेस ने भारतीय स्वतंत्रता का आंदोलन शुरू किया है अंग्रेज सिर्फ उसके बारे में दो ही बातें समझते हैं—किसी बड़े अधिकारी की हत्या अथवा किसी बड़े अधिकारी का इस्तीफा। परन्तु कांग्रेस इन दोनों ही बातों से साफ इन्कार करती है। न तो कभी उसने किसी की हत्या में हाथ बँटाया और न ही किसी को इस्तीफा देने के लिए प्रोत्साहित किया। इसीलिये उसने सत्याग्रह के अमोघ अस्त्र को अपनाया और पुलिस के लाठी-चार्ज से लेकर उपवास तक कष्ट-सहन करने का कार्यक्रम अपने सामने रखा। यह ठीक है कि भारतीय स्वतंत्रता के इतिहास के प्रारम्भिक युग में सर एस० पी० सिन्हा, सर तेजबहादुर सप्रू, और सर शंकरन् नायर प्रभृति प्रमुख व्यक्तियों ने समय-समय पर सरकार की दमन-नीति के विरोध में वाइसराय की शासन-परिषद् से इस्तीफे दिये। परन्तु १७ फरवरी १९४३ को, जबकि गांधीजी का उपवास शुरू हुए एक सप्ताह हो चुका था, भारत ने अत्यन्त महत्त्वपूर्ण, अत्यन्त आश्चर्यजनक और सामयिक इस्तीफों की घटना भी देखी जबकि सर एस० पी० मोदी, श्री अणे और श्री सरकार ने सरकार-द्वारा गांधीजी को रिहा न करने के विरोध में वाइसराय की शासन-परिषद् से इस्तीफा दे दिया। सरकार की सम्बद्ध विज्ञप्ति और भारत के इन तीनों सपूतों का संयुक्त बयान नीचे दिए जाते हैं:—

"माननीय सर एच० पी० मोदी, के० बी० ई०, माननीय श्री एन० आर० सरकार और माननीय श्री एम० एस० अणे ने वाइसराय की शासन-परिषद् के अपने पदों से स्तीफे दे दिये हैं और हिज़ एक्सीलेन्सी गवर्नर-जनरल ने उनके इस्तीफे स्वीकार कर लिये हैं।

"वाइसराय की शासन-परिषद् से हमारे इस्तीफों के सम्बन्ध में घोषणा की जा चुकी है और स्पष्टीकरण के रूप में हम सिर्फ यह कहना चाहते हैं कि एक प्रश्न के सम्बन्ध में, जो हमारी राय में एक बुनियादी सवाल है (गांधीजी के उपवास के प्रश्न पर की जानेवाली कार्रवाई) हममें कुछ मतभेद हो गये थे और हमने अनुभव किया कि हम और अधिक समय तक अपने पदों पर नहीं बने रह सकते। जितने दिन भी हमें वाइसराय के साथ मिलकर इस देश की शासन-

व्यवस्था चलाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, उस अवधि में उन्होंने हमारे प्रति जो सौजन्य और आदर-भाव प्रदर्शित किया है, उसके लिए हम उनकी हृदय से कद्र करते हैं।"

अभी हमें उपवास के फलस्वरूप घटनेवाली अत्यन्त उल्लेखनीय घटना का जिक्र करना बाकी है। भारत ने गांधीजी की प्राण-रक्षा करने में कोई कसर न उठा रखी। सरकार से किये गए सब अनुरोध और अपीलें विफल रहीं, परन्तु केवल विधाता और उस सर्वशक्तिमान से प्रार्थनाएँ निरन्तर की जाती रहीं। संकट के समय नास्तिक और अनीश्वरवादी में भी दृढ़ विश्वास पैदा हो जाता है और इस अवसर पर दसियों लाखों लोगों ने ईश्वर से प्रार्थनाएँ कीं। परन्तु राष्ट्र को इतने से कैसे संतोष हो सकता था। नेताओं ने सोचा कि उन्हें गांधीजी का जीवन बचाने के लिए संगठित और संयुक्त प्रयास करना होगा, और उन्हें भारत के राजनीतिक गतिरोध की मुख्य समस्या को सुलझाना ही होगा। शान्ति-काल में मनुष्य में औचित्य का जो अभाव रहता है, संकट के समय उसके दूर होजाने की संभावना बनी रहती है। और जहाँतक गांधीजी का सम्बन्ध है वे तो बुद्धिमत्तापूर्ण, विवेकपूर्ण और सत्परामर्श पर ध्यान देने को सदैव तत्पर रहते हैं। तदनुसार उपवास के प्रारम्भिक दिनों में ही देश के गण्यमान्य लोक-प्रिय नेताओं ने १७ फरवरी को नयी दिल्ली में एक सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसमें डेढ़ सौ सदाशय और भद्र पुरुषों ने भाग लिया। अन्त में १९ फरवरी को यह सम्मेलन शुरू हुआ और उसने पूरे जोश से अपना काम प्रारम्भ कर दिया। तदनुसार नेता-सम्मेलन का मसविदा तैयार करने-वाली समिति ने एक प्रस्ताव पास किया जिसमें गांधीजी की रिहाई की मांग की गई थी।

गांधीजी के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में जो चिन्ताजनक समाचार प्राप्त हो रहे थे, उन्हें देखते हुए समिति ने वाइसराय के पास प्रस्तावित प्रस्ताव भेज देने का फैसला किया जिससे कि वे उसके सम्बन्ध में तत्काल कोई कार्रवाई कर सकें। २० फरवरी को उक्त प्रस्ताव सम्मेलन के सामने पेश किया गया और इस प्रस्ताव पर बोलनेवालों में से डा० जयकर, सर महाराजसिंह, सर ए० एच० गज़नवी, डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी, सर तेजबहादुर सप्रू, मास्टर तारासिंह और श्री० एन० एम० जोशी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। समिति ने देश के सभी वर्गों, सम्प्रदायों और धर्मावलम्बियों से रविवार २१ फरवरी को गांधीजी की दीर्घायु के लिये विशेष प्रार्थनाएँ करने की अपील की।

२० फरवरी को सम्मेलन का खुला अधिवेशन सर तेजबहादुर सप्रू की अध्यक्षता में शुरू हुआ और अपने ज़ोरदार भाषण के दौरान में उन्होंने कहा:--

"मेरा यक़ीन है कि ब्रिटिश इतिहास से हमने एक सबक यह सीखा है कि ब्रिटिश सरकार ने हमेशा ही राज-भक्तों से फैसला करने की बजाय विद्रोहियों से समझौता किया है। जब गृहसदस्य महात्मा गांधी को एक विद्रोही बताते हैं तो उससे मुझे निराशा नहीं होती। मुझे अब तक यही आशा है कि एक-न-एक दिन इन्हीं विद्रोहियों के साथ ब्रिटेन समझौता करेगा और उस समय मेरे और आप-जैसे लोगों की तो बात तक भी नहीं पूछी जायगी।......जहाँ तक मेरा व्यक्तिगत सम्बन्ध है मैं इस बारे में अधिक आशावादी नहीं हूँ, क्योंकि अगर सरकार को उन्हें छोड़ना ही होता तो वह इन तीनों सदस्यों के इस्तीफे मंजूर न करती। बहरहाल जो भी स्थिति हो, हमें अपने कर्त्तव्य का पालन करना है। हमें यह साबित करना है कि हम रचनात्मक काम करने के लिए समझौता करने को उत्सुक हैं और हमारी यह ज़ोरदार मांग है कि गांधीजी को तुरन्त मुक्त कर दिया जाय।"

सम्मेलन की स्थायी समिति ने गांधीजी की रिहाई की ज़ोरदार मांग करते हुए प्रधान-मन्त्री श्री चर्चिल के नाम एक समुद्री तार भेजा और उसकी नकल कामन-सभा में विरोधी-दल के नेता श्री आर्थर ग्रीनवुड और उदार-दल के नेता सर पर्सी हैरिस के पास भी भेजी। श्री चर्चिल ने अपनी रोगि-शय्या से उसके जवाब में लिखा:—

"गत अगस्त में भारत-सरकार ने निश्चय किया था कि गांधीजी तथा कांग्रेस के अन्य नेताओं को नज़रबन्द करना चाहिए। इसके कारण पूरी तरह स्पष्ट किये जा चुके हैं और अच्छी तरह समझ लिये गए हैं। उस निर्णय के जो कारण थे, वे अब भी विद्यमान् हैं और अनशन-द्वारा महात्मा गांधी ने अपनी बिना शर्त रिहाई के लिए जो प्रयत्न किया है, उसके सम्बन्ध में भारत की जनता तथा मित्रराष्ट्रों के प्रति अपने कर्त्तव्य पर दृढ़ता से डटे रहने का भारत-सरकार ने जो निश्चय किया है, उसका सम्राट् की सरकार समर्थन करती है। भारत-सरकार का तथा सम्राट् की सरकार का पहला कर्त्तव्य यह है कि वह बाहरी आक्रमण से, जिसका ख़तरा अभी तक मौजूद है, भारत-भूमि की रक्षा करे और भारत को इस योग्य बनावे कि वह मित्र-राष्ट्रों के उद्देश्य की पूर्ति में अपना भाग अदा कर सके। गांधीजी तथा अन्य कांग्रेसी नेताओं में भेद करने का कोई कारण नहीं है। इसलिए सारी ज़िम्मेदारी महात्मा गांधी पर ही है।"

जब हम गांधीजी के इस अनशन के सब पहलुओं पर सोच-विचार करते हैं तो एक बात अस्पष्ट और रहस्यपूर्ण रह जाती है, जिस पर कोई रोशनी नहीं पड़ती। क्या वजह थी कि गांधीजी के २३ सितम्बर १९४२ वाले पत्र को उचित रूप से नहीं प्रचारित किया गया। इस पत्र में गांधीजी ने देश में कथित विध्वंस के बारे में खेद प्रकट किया था। आखिर २९ जून, १९४३ को श्री एमरी के वक्तव्य से यह पहेली कुछ स्पष्ट हो सकी।

कामन-सभा में श्री सोरेन्सन ने यह बात जोर देकर कही कि वाइसराय के नाम गांधीजी के २३ सितम्बर, १९४२ वाले पत्र का, जिसमें उन्होंने हिंसापूर्ण कार्यों की निन्दा की थी, वाइसराय–गांधी पत्र व्यवहार में कोई उल्लेख तक क्यों नहीं किया गया? आपने यह भी पूछा कि आखिर क्या वजह है कि न तो वाइसराय ने और न ही भारत-मंत्री ने इस पत्र के अस्तित्व के बारे में अब तक कोई प्रकाश डाला है? इसके जवाब में श्री एमरी ने कहा :—

"श्री सोरेन्सन को ग़लतफहमी हुई है। सितम्बर में गांधीजी का जो पत्र मिला वह वाइसराय के नाम नहीं था, बल्कि भारत सरकार के गृह विभाग के सेक्रेटरी के नाम था। इस पत्र पर २३ सितम्बर की तारीख लिखी हुई थी और भारत में समाचार-पत्रों को प्रकाशनार्थ जो सामग्री दी गई थी, उसमें भी इसका ज़िक्र इसी ढंग से किया गया था। गांधीजी ने १९ जनवरी के अपने पत्र में इसका उल्लेख अवश्य किया था, परन्तु उनका यह उल्लेख गलत था, क्योंकि उन्होंने इसे २१ सितम्बर का पत्र कहा था, और उसके बाद लन्दन के पत्रों को जो पत्र-व्यवहार प्रकाशनार्थ दिया गया उसमें भी इसका ज़िक्र इसी प्रकार किया गया था। उस पत्र में यद्यपि उन्होंने देश में कथित विध्वंस पर खेद प्रकट किया था, परन्तु उसकी जिम्मेदारी उन्होंने कांग्रेस पर न डालकर सरकार पर ही डाली थी और उन्होंने असंदिग्ध शब्दों में हिंसा की निन्दा नहीं की।"

श्री सोरेन्सेन ने फिर ज़ोर देकर कहा कि श्री राजगोपालाचार्य ने खास तौर पर उसका ज़िक्र करते हुए कहा है कि उसमें गांधीजी ने हिंसात्मक कार्यों की निन्दा की थी—और उन्होंने ऐसा पत्र निश्चित रूप से लिखा था। उन्हों (सोरेन्सन) ने पूछा कि 'क्या वाइसराय को इसकी जानकारी थी? और क्या कारण है कि इस सम्बन्धमें उस वक्त कुछ भी नहीं कहा गया जब कि गांधीजी को इसलिए

आलोचना की जा रही थी कि उन्होंने हिंसापूर्ण कार्यों के बारे में अब तक कोई राय क्यों नहीं जाहिर की ?' श्री एमरी ने इसके उत्तर में कहा :—

"नहीं; या तो श्री राजगोपालाचारी अथवा श्री सोरेन्सेन को गलत सूचित किया गया है—यह गलतफहमी गांधीजी की कलम की भूल से अनजाने में हुई प्रतीत होती है।"

श्री एमरी के वक्तव्य में दो-तीन गलत-बयानियां हैं जिन्हें हम ऐसे ही नहीं छोड़ सकते। पहली बात तो यह है कि निस्संदेह गांधीजी के २३ सितम्बर, १९४२ वाले पत्र का तथाकथित प्रकाशन अवश्य हुआ, परन्तु यह प्रकाशन उस पत्र-व्यवहार के अंग के रूप में किया गया जो गांधीजी का उपवास शुरू हो जाने के चार दिन बाद १४ फरवरी १९४३ को, उनके उपवास के सम्बन्ध में छापा गया था। श्री एमरी के वक्तव्य से कोई व्यक्ति इस भ्रम में पड़ सकता है कि यह पत्र वास्तव में सितम्बर, १९४२ में प्रकाशित हुआ था। अगर यह पत्र उसी वक्त पूरे-का-पूरा छाप दिया जाता तो गांधीजी-द्वारा हिंसात्मक कार्यों की निन्दा का बाहर के लोगों पर अवश्यमेव गहरा प्रभाव पड़ता और उनके ये कार्य शिथिल पड़ जाते। परन्तु श्री एमरी का यह खयाल है कि गांधीजी ने इन कार्यों की असंदिग्ध शब्दों में निन्दा नहीं की थी और उन्होंने केवल कथित शोचनीय विध्वंस का ही ज़िक्र किया। "नहीं, यह बात ऐसी नहीं थी" उन्होंने इससे कहीं अधिक कहा था। उन्होंने घोषणा की कि "कांग्रेस की नीति अब भी स्पष्ट रूप से अहिंसापूर्ण है। और जहां तक तोड़फोड़ का प्रश्न है उन्होंने दावा किया कि निस्संदेह हिंसा को किसी भी खुली कार्रवाई का मुकाबला करने के लिए सरकार के पास काफी साधन हैं। श्री एमरी ने श्री राजगोपालाचार्य का ज़िक्र किया है। इस सम्बन्ध में बेहतर होगा कि हम यहां स्वयं उन्हीं के वक्तव्य को उद्धृत करें जो उन्होंने कामन-सभा में होनेवाले प्रश्नोत्तर से तीन महीने पहले ८ मार्च को समाचार-पत्रों के नाम दिया था। उसमें श्री राजगोपालाचार्य ने कहा :—

"१० फरवरी को जब से गांधी-लिनलिथगो पत्र-व्यवहार प्रकाशित हुआ है उसकी एक उल्लेखनीय बात बहुत परेशानी में डालनेवाली और रहस्यपूर्ण प्रतीत होती है। अधिकारियों की ओर से इसका अब तक कोई स्पष्टीकरण नहीं किया गया। गांधीजी की गिरफ्तारी के बाद तोड़-फोड़ और हिंसा की जो कार्रवाइयां देश में हुई हैं, उनका उन्होंने २३ सितम्बर, १९४२ के भारत-सरकार के नाम अपने पत्र में स्पष्ट रूप से विरोध किया है। अगर यह पत्र अथवा उसका मुख्य अंश उस समय प्रकाशित कर दिया जाता तो वे लोग, जो कांग्रेस और उनके नाम से ऐसे काम कर रहे थे और उन्हें प्रोत्साहन दे रहे थे, उनके नाम से अनुचित लाभ उठाना छोड़ देते। सरकार-द्वारा उस पत्र को दबा देने के परिमाणस्वरूप यह खयाल पैदा होता है कि एक बार जब कि सरकार ने यह समझ लिया है कि उसने स्थिति पर काबू पा लिया। उसने गांधीजी के एहसान के नीचे दबने के बजाय अपना दमन-चक्र जारी रखना अधिक बेहतर समझा। यह कहना मुनासिब होगा कि गांधीजी की राय को अंधकार के पर्दे के पीछे छिपाकर तोड़-फोड़ और दमन-चक्र की एक दूसरे से होड़ लगी हुई थी। जिन लोगों की यह धारणा है कि गांधीजी किसी भी हालत में गुप्त-संगठन और सार्वजनिक संपत्ति के विनाश की इजाज़त नहीं दे सकते थे और जिन्होंने उत्तरोत्तर बढ़ती हुई दमन-नीति की निन्दा की—उन्हें यह शिकायत करने का अधिकार है कि सरकार के नाम गांधीजी का पिछले सितम्बरवाला पत्र दबाया नहीं जाना चाहिए था।

"पिछले नवम्बर में जब वाइसराय से मेरी मुलाकात हुई तो उन्होंने इस बात पर खेद प्रकट किया कि यद्यपि गांधीजी को समाचार-पत्र दिये जाते हैं, फिर भी उन्होंने इन कार्रवाइयों

की निन्दा नहीं की। १२ नवम्बर को, जब कि गांधीजी से मिलने की मेरी प्रार्थना वाइसराय-द्वारा ठुकरा दी गई, मैंने नयी दिल्ली में समाचार-पत्रों के नाम अपने एक वक्तव्य में कहा—'यदि मुझे यह खयाल होता कि गांधीजी से मेरी मुलाकात के फल-स्वरूप उपद्रवों को जरा भी प्रोत्साहन मिल सकता है तो मैं उनसे मुलाकात करने के लिए कभी भी इजाज़त न मांगता। मेरे विचार इतने स्पष्ट और सर्वविदित हैं कि मुझे यह आशा थी कि सिर्फ इसी बात से कि मैं गांधीजी से मुलाकात करने जा रहा हूँ, उपद्रवों में शिथिलता आजाती और उसका स्वाभाविक परिणाम यह होता कि जनता का ध्यान इन उपद्रवों की ओर से हटकर मेरी बातचीत के परिणाम की ओर लग जाता और इसलिए मेरी राय में यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि वाइसराय ने समझौता करने का अवसर प्रदान करने से इन्कार कर दिया है।' अगले ही दिन अपने एक और वक्तव्य में मैंने कहा कि, "बिना कहे गांधीजी से यह आशा करना कि वे जेल के भीतर से इन कार्रवाइयों के बारे में कोई राय जाहिर करें, उचित नहीं प्रतीत होता। और अगर मुझे उनसे मुलाकात करने की इजाज़त मिल जाती तो अन्य बातों के अलावा मेरा इरादा उनसे इस बारे में भी उनकी राय जानने का था। १२ और १३ नवम्बर को जब मैंने ये वक्तव्य दिये थे तो मुझे यह पता ही नहीं था कि वाइसराय के पास २३ सितम्बर का गांधीजी का यह पत्र पहले से ही मौजूद था। अगर यह भी मान लिया जाय कि उक्त पत्र की अन्य बातों और खामियों के कारण ही उसके बारे में वाइसराय के असंतुष्ट और नाराज होने के कारण थे—तब भी अगर वे मुझसे इस बारे में थोड़ा-बहुत भी ज़िक्र कर देते तो बहुत से निर्दोष व्यक्तियों को इतने अधिक कष्ट और मुसीबतों से बचाया जा सकता था।"—('हिन्दू')

२२ फरवरी, १९४३ को नयी दिल्ली में एक पत्र-प्रतिनिधि-सम्मेलन में सर तेजबहादुर सप्रू ने कहा—"अगर यह पत्र उसी समय प्रकाशित कर दिया जाता, तो जनता को पता चल जाता कि अहिंसा के सिद्धांत में गांधीजी का विश्वास पहले की भांति ही दृढ़ बना हुआ है और वे उस पर अडिग बने हुए हैं और उससे राजाजी-जैसे लोगों के हाथ जनता से यह कहने के लिए मज़बूत हो जाते कि जो लोग उपद्रव कर रहे हैं वे गांधीजी के जीवन भर के किये-कराए पर पानी फेर रहे हैं।" ९ मार्च को राजाजी ने इसी बात को फिर दुहराते हुए उचित रूप से ही यह दावा किया कि अगर यह पत्र समय पर प्रकाशित हो जाता तो वे लोग, जो हिंसा में लगे हुए थे "गांधीजी के नाम से अनुचित रूप से लाभ उठाना बन्द कर देते।"

इस पत्र से अच्छे परिणाम निकलने की सम्भावना की जाती थी, परन्तु सरकार अपने ही तरीके से आंदोलन का मुकाबिला करने का दृढ़ निश्चय किये हुए थी। नवम्बर १९४२ में जब श्री राजगोपालाचार्य ने गांधीजी से मुलाकात करने की आज्ञा मांगी तो उनका एक उद्देश्य यह जानना भी था कि अब तक गांधीजी इस बारे में चुपचाप क्यों बैठे हैं। गांधीजी चुप नहीं बैठे थे, परन्तु राजाजी के पास यह जानने का कोई साधन नहीं मौजूद था। श्री एमरी ने इन बातों का उत्तर देने के बजाय यह कहना अधिक बेहतर समझा कि राजाजी, "गांधीजी की कलम की भूल के शिकार" हो गए हैं।

स्मट्स के विचार

श्री कौलस् ने गांधीजी के उपवास के सम्बन्ध में अपने एक लेख में लिखा था :"—हमें इस बात से सतर्क रहना चाहिए कि महात्माजी हमें पुनः बेवकूफ न बना दें।" परन्तु मुडी रौयडेन ने उनका प्रतिवाद करते हुए 'उपवास की विशिष्ट कला' के सम्बन्ध में फील्ड-मार्शल स्मट्स

के विचारों का उद्धरण पेश किया और कहा कि "फील्ड-मार्शल स्मट्स दबाव डालने अथवा दृढ़ विश्वास के इस विचित्र साधन का न तो समर्थन करते हैं और न ही उसकी निन्दा करते हैं।

"अपने उद्देश्य के लिये दूसरों की सहानुभूति और समर्थन प्राप्त करने के लिए वे (गांधी जी) अपने-आपको कष्ट पहुँचाते हैं। जब वे तर्क-द्वारा अथवा समझाने के साधारण तरीके से किसी से अपनी बात नहीं मनवा पाते तो भारत और पूर्व की प्राचीन परम्परा पर आश्रित इस नये तरीके का सहारा लेते हैं। यह एक ऐसी कार्य-प्रणाली है जिस पर राजनीतिक विचारकों को ध्यान देना चाहिए। राजनीतिक साधन के क्षेत्र में यह गांधीजी की विनाशात्मक देन है।

"मैं अन्त में एक बात और कहना चाहता हूँ। बहुत-से लोगों का, जिनमें गाँधीजी के कुछ अभिभावक और समर्थक भी शामिल हैं, उनके कुछ विचारों और काम करने के तरीकों से मतभेद अवश्य रहेगा। उनके काम करने का ढङ्ग व्यक्तिगत है। वह उनका अपना ही निराला ढंग है, और जैसा कि इस मामले में हुआ है, साधारण स्वीकृत मापदण्ड के अनुकूल नहीं है। हमारा उनसे चाहे कितना ही मतभेद क्यों न हो, लेकिन हमें उनकी ईमानदारी और सचाई, उनकी निस्स्वार्थता, और सर्वाधिक उनकी आधारभूत और सार्वभौम मानवता पर कभी सन्देह नहीं हो सकता। वे हमेशा ही एक महान् पुरुष की तरह काम करते हैं, उनमें सभी वर्गों और जातियों के लोगों के लिए गहरी सहानुभूति है, विशेषकर गरीबों के लिए। उनका दृष्टिकोण संकुचित और साम्प्रदायिक नहीं है, बल्कि उसकी विशेषता सार्वभौमिकता और शाश्वत मानवता है जो कि वास्तविक महत्ता की कसौटी है।" ('टाइम एण्ड टाइड' १ मई, १९४३)

गांधीजी के उपवास

(१) १९१८, अहमदाबाद की मिलों में काम करनेवाले मजदूरों की वेतन-वृद्धि के लिए आमरण अनशन, जो तीन दिन बाद समाप्त हो गया।

(२) १९२१, प्रिंस आफ वेल्स की भारत-यात्रा के समय बम्बई में हुए उपद्रवों को शान्त करने के लिए।

हिन्दू-मुस्लिम मतभेदों और देश के विभिन्न भागों में होनेवाले सांप्रदायिक दंगों के कारण १९२४ में गांधीजी को २१ दिन का उपवास करना पड़ा। यह उपवास दिल्ली में उन्होंने मौलाना मुहम्मदअली के निवास-स्थान पर किया। इससे पूर्व भारत के सार्वजनिक जीवन में कभी भी किसी एक व्यक्ति के आत्मोत्सर्ग ने देश के नेताओं के हृदय पर इतना गहरा प्रभाव नहीं डाला था। शीघ्र ही एक सर्वदल-सम्मेलन बुलाया गया और नेताओं के आग्रह करने पर और यह आश्वासन दिलाने पर कि वे अपनी ओर से उन (गांधीजी)के दृढ़ निश्चय को कार्यान्वित करने की भरसक चेष्टा करेंगे और हिंसात्मक कार्रवाइयां करनेवाले सभी व्यक्तियों की निन्दा करेंगे, गांधीजी ने उपवास छोड़ दिया।

नवम्बर १९२५ में गान्धीजी को साबरमती के आश्रम-निवासियों की एक भूल का पता चला जिस पर उन्होंने सात दिन का उपवास किया।

१९३२ में जबकि गांधीजी यरवड़ा जेल में अपनी कैद की सजा भुगत रहे थे, सांप्रदायिक निर्णय की घोषणा की गई। उन्होंने चुनाव के आधार पर हिन्दुओं का विभाजन रोकने के लिए अपने जीवन की बाजी लगा देने की ठान ली। फलतः आमरण व्रत शुरू हुआ। २० सितम्बर के बाद से उन्होंने अन्न न ग्रहण करने का निश्चय किया; सिर्फ नमक अथवा सोडे वाला या उसके बिना पानी पीना था।

इसके पांच दिन बाद ही पूना के समझौते पर दस्तख़त हो गए, जिसके अनुसार वैधानिक संरक्षण दिये जाने का आश्वासन मिल जाने पर अछूतों ने पृथक् निर्वाचन को छोड़ देना मंजूर कर लिया। बाद में प्रकाशित एक सरकारी विज्ञप्ति में अधिकृत रूप से इस समझौते की पुष्टि और समर्थन किया गया। उपवास तोड़ दिया गया और अछूतों की सामाजिक अयोग्यताएँ दूर करने के लिए हरिजन-आंदोलन का जन्म हुआ।

इस उपवास की सफलता के बारे में कोई सन्देह नहीं हो सकता। इसकी वजह से एक निर्धारित वैधानिक निर्णय पलट दिया गया और हिन्दू-समाज को अछूतपन दूर कर देने के लिए एक जोरदार आन्दोलन शुरू कर देना पड़ा। उपवास के कारण जो सुधार हुए वे साधारण परिस्थितियों में सम्भवतः दशकों तक न हो पाते।

इस उपवास को हुए अभी मुश्किल से दो महीने हुए होंगे कि गांधीजी को एक और उपवास करना पड़ा इसलिए कि जेल-अधिकारियों ने अप्पासाहब पटवर्धन को भंगी का काम करने देने से इन्कार कर दिया था। गांधीजी को उपवास शुरू किए हुए अभी दो दिन भी नहीं गुज़रे थे कि अधिकारियों को उनकी बात माननी पड़ी।

इसी बीच हरिजन सुधार का आंदोलन जोरों पर जारी रहा। दूर मालाबार में गुरुवयूर के प्रसिद्ध मन्दिर में हरिजन-प्रवेश पर से प्रतिबन्ध हटा लेने के लिए सत्याग्रह शुरू हुआ। गांधीजी ने घोषणा की कि यदि कट्टर हिन्दुओं ने ये प्रतिबन्ध न उठाये तो उनके लिये उपवास करना अनिवार्य हो जायगा। प्रतिगामी और प्रतिक्रियावादी लोगों को मुंह की खानी पड़ी और गुरुवयूर की जनता ने हरिजनों पर से उक्त प्रतिबन्ध हटा लेने के हक़ में फैसला किया।

परन्तु उसी वर्ष मई में गांधीजी ने आत्म-शुद्धि के लिये २१ दिन का उपवास फिर किया। "इसका उद्देश्य 'आत्म-शुद्धि' है जिससे कि मैं और मेरे सहयोगी हरिजन-सुधार के काम में अधिक सतर्क होकर काम कर सकें।" सरकार ने उसी दिन गान्धीजी को रिहा कर दिया। यह उपवास २९ मई को पूना 'पर्णकुटी' में सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ।

जुलाई १९३४ में एक क्रुद्ध सुधारक ने हरिजन-आंदोलन के एक विरोधी व्यक्ति पर लाठी से हमला किया। गांधीजी को इस हिंसा पर दुःख हुआ और उन्होंने विरोधियों-द्वारा एक-दूसरे के प्रति असहिष्णुता दिखाने पर पश्चात्ताप के रूप में सात दिन का उपवास किया।

गांधीजी का अगला उपवास १९३९ में राजकोट की घटना के सम्बन्ध में, ३ मार्च को शुरू हुआ। यह उपवास काठियावाड़ की इस छोटी-सी रियासत के शासक के ख़िलाफ़ शुरू किया गया था। इस मामले में वाइसराय के हस्तक्षेप के फलस्वरूप सर मौरिस ग्वायर को पंच नियुक्त किया गया और पांचवें दिन उपवास तोड़ दिया गया। सर मौरिस ग्वायर ने गांधीजी के हक़ में फैसला किया। लेकिन दो महीने के बाद गांधीजी ने घोषणा की कि उन्हें इस उपवास में हिंसा का आभास मिला है, इसीलिए यह उपवास निरर्थक और असफल घोषित कर दिया गया।

१९ फरवरी, १९४३ को गांधीजी ने नज़रबन्दी की हालत में आग़ाख़ां महल में 'सामर्थ्य के अनुसार' एक उपवास प्रारम्भ किया। यह उपवास २१ दिन का था।

भंसाली का उपवास

उपवास के समय जनता यह जानने को चिन्तित थी कि गांधीजी को प्रोफेसर भंसाली के साथ सम्पर्क स्थापित करने की इजाज़त दे दी गई है अथवा नहीं? जून १९४४ में प्रकाशित

पत्र-व्यवहार से इस विषय पर प्रकाश पड़ता है। २४-११-४२ को गांधीजी ने बम्बई-सरकार के गृह-विभाग के सेक्रेटरी के नाम निम्न तार भेजा:—

"प्रोफेसर भंसाली, जो एक समय एल्फिन्स्टन कालेज में मेरे साथ पढ़ा करते थे १९२६ में कालेज छोड़कर साबरमती आश्रम में भर्ती हो गए थे। दैनिक समाचार-पत्रों में पता चलता है कि वे कथित चिमूर-कांड के सम्बन्ध में लोगों पर की गई ज्यादतियों के सिलसिले में वर्धा सेवाग्राम आश्रम के पास उपवास कर रहे हैं और पानी तक भी नहीं पी रहे हैं मैं सुपरिन्टेन्डेन्ट के ज़रिये उनके साथ तार-द्वारा सीधा सम्पर्क स्थापित करना चाहता हूं जिससे कि यह जान सकूँ कि उन्होंने यह उपवास क्यों शुरू किया है और उनकी कैसी हालत है। अगर मैंने समझा कि नैतिक आधार पर उनका उपवास अनुचित है तो मैं उनसे उसे छोड़ देने को कहूँगा। मैं मानवता के नाम पर आपसे यह प्रार्थना कर रहा हूँ"—एम० के० गांधी।

२४ नवम्बर के इस तार के जवाब में बम्बई-सरकार ने ३० नवम्बर १९४२ को उन्हें तार भेजा कि—"सरकार आपकी यह प्रार्थना मानने को असमर्थ है कि आपको उनके साथ पत्र-व्यवहार करने की इजाज़त दी जाय। परन्तु यदि आप मानवीय कारणों से उन्हें उपवास छोड़ देने की सलाह देना चाहें तो यह सरकार आपकी सलाह उनतक पहुँचाने का प्रबन्ध कर देगी। गांधीजी को यह तार ३ दिसम्बर के बाद मिला। इस प्रकार अपने संदेश का जवाब मिलने में उन्हें दस दिन लग गए। इसके प्रत्युत्तर में उन्होंने लिखा:—

"मुझे दुःख है कि सरकार ने मेरी प्रार्थना अस्वीकार करदी है। परिस्थितियों के अनुसार उपवास करना मैं उचित ही नहीं समझता, बल्कि आवश्यक भी मानता हूँ। परन्तु जब तक मुझे यह न मालूम हो जाय कि प्रोफेसर भंसाली के पास उपवास करने का उचित कारण नहीं है, तब तक मैं उन्हें उपवास तोड़ने की सलाह नहीं दे सकता। अगर अखबारों की खबर पर विश्वास किया जाय तो उनके उपवास का कारण सर्वथा न्यायोचित है और यदि मुझे अपने मित्र को खोना ही है तो मैं उसके लिए भी तैयार हूँ।"—एम० के० गांधी।

सेवाग्राम आश्रम के निवासी और गांधीजी के यह निकट सहयोगी प्रोफेसर भंसाली पहली नवम्बर को वाइसराय की शासन-परिषद् के सदस्य माननीय श्री एम० एस० अणे की सरकारी कोठी पर पहुँचे ताकि उन्हें मध्यप्रान्त में हुए हाल के उपद्रवों को दरम्यान पुलिस और सेना-द्वारा की गई कथित ज्यादतियों के समाचारों से अवगत करा सकें। प्रोफेसर भंसाली ने श्री अणे को बताया कि मध्यप्रान्त में चिमूर-जैसे स्थान पर जिन घटनाओं के होने का समाचार मिला है, उनसे बड़ा दुःख और कष्ट पहुँचता है। भारत-मंत्री पार्लीमेण्ट को और उसके जरिये बाहरी दुनिया को यह बताने की कोशिश कर रहे थे कि आन्दोलन को दबाने के लिए भारत-सरकार जो कार्रवाइयां कर रही है, उसके लिए उसे वाइसराय की शासन-परिषद् के अधिकांश भारतीय सदस्यों का समर्थन प्राप्त था। इसलिए प्रोफेसर ने श्री अणे से प्रार्थना की कि वे अपने प्रभाव से काम लेकर इन शिकायतों की जांच-पड़ताल के लिए सरकार से कह कर एक समिति नियुक्त कराएं और अगर ये बातें सच्ची हों तो इस बात की व्यवस्था की जाय कि भविष्य में उनकी पुनरावृत्ति न होने पाये।

श्री अणे ने उत्तर दिया कि चिमूर की घटनाओं के सम्बन्ध में बहुत-से लोगों के पत्रों के अलावा नागपुर की महिलाओं की ओर से उनके पास एक अनुरोध-पत्र और इस सम्बन्ध में

डा० मुंजे का वक्तव्य भी मिला है। चूंकि इन घटनाओं को हुए बहुत समय हो चुका है, इसलिए अब उनके बारे में कुछ करना असंभव है।

इस पर प्रोफेसर भंसाली ने श्री अणे से आग्रह किया कि या तो वे खुद चिमूर पहुँचकर घटनास्थल पर जांच-पड़ताल करलें अथवा किसी और व्यक्ति को वहां भेजदें। श्री अणे ने प्रोफेसर भंसाली को साफ जवाब दे दिया कि वे इस तरह की जांच-पड़ताल करने को तैयार नहीं हैं।

इतना ही नहीं, श्री अणे ने इस प्रकार की सभी घटनाओं के लिए गांधीजी और कांग्रेस को यह कहकर उत्तरदायी ठहराया कि "बारंबार चेतावनी दिये जाने पर भी उन्होंने वर्तमान आन्दोलन शुरू किया था। अन्दोलन शुरू करने से पूर्व उन्हें इन सब बातों का खयाल कर लेना चाहिए था।"

प्रोफेसर भंसाली ने कहा कि वे श्री अणे की विचारधारा को समझ गए हैं, परन्तु फिर भी चिमूर की घटनाएं उनके लिए बहुत कष्टदायक हैं। अगर श्री अणे इस मामले में जांच-पड़ताल करने के लिए एक समिति नियुक्त कराने में भी अपने को निस्सहाय और असमर्थ पाते हैं तो उन्हें चाहिये कि वे सरकार से इस्तीफा दे दें और यह स्पष्ट करदें कि वे ऐसे मामलों में सरकार के रुख और नीति का समर्थन नहीं करते।

उसके बाद प्रोफेसर भंसाली के पास सिर्फ उनके सहयोगी श्री बलवन्तसिंह ही रह गए। उन्होंने खाना-पीना छोड़ दिया और दोपहर को मौन-व्रत भी धारण कर लिया। ५-३० बजे के करीब भारत-रक्षा-कानून के अन्तर्गत उन्हें डिप्टी कमिश्नर का एक आदेश प्राप्त हुआ कि वे और श्री बलवन्तसिंह तीन घण्टे के अन्दर-अन्दर दिल्ली प्रान्त की सीमाओं से बाहर चले जाएं, क्योंकि यहां उनकी उपस्थिति अवांछनीय समझी गई है। रात को ६ बजकर ४५ मिनट पर प्रोफेसर भंसाली को गिरफ्तार करके नयी दिल्ली थाने ले जाया गया और वहां से उन्हें वर्धा भेज दिया गया।

इसकी कड़ी आलोचना करते हुए 'हिन्दू' ने अपने एक अग्रलेख में लिखा :—

"श्री अणे से बातचीत करने में प्रोफेसर भंसाली का यह उद्देश्य था कि वे उन पर जोर डाल सकें कि अगस्त के मध्य में मध्यप्रांत के चिमूर गांव में जो उपद्रव हुए थे, उनमें पुलिस और सैनिकों ने जो कार्रवाइयां कीं उसकी जांच-पड़ताल के लिए एक कमेटी बैठाई जाय। उस दुर्घटना में बहुत-से सरकारी कर्मचारी मारे गए और यह कहा जाता है कि बाद में पुलिस और सेना ने वहां पहुंचकर गांव के पुरुषों की सामूहिक गिरफ्तारी करके बलात्कार और लूट का नग्न-नृत्य किया। डा० मुंजे और नागपुर की कुछ महिलाओं ने सितम्बर में चिमूर का दौरा करने के बाद मध्यप्रांत की सरकार का ध्यान इन आरोपों की ओर आकर्षित किया था। अक्तूबर के मध्य में मध्यप्रांत की सरकार ने एक लम्बी विज्ञप्ति प्रकाशित की, जिसमें यह घोषणा की गई थी कि सरकार ने इन आरोपों की जांच-पड़ताल न करने का फैसला किया है और उसने अपने इस निर्णय का औचित्य साबित करने की बेकार कोशिश की।"

अखिल भारतीय कांग्रेस-कमेटी के ८ अगस्त वाले बम्बई-प्रस्ताव के बाद देश में विभिन्न प्रकार की घटनाएं हुईं। सरकार की मनमानी और अनुत्तरदायित्वपूर्ण कार्रवाइयों के विरोध-स्वरूप प्रोफेसर भंसाली का उपवास अहिंसात्मक प्रतिक्रिया और प्रतिरोध के इतिहास में एक अनूठा उदाहरण है। श्री भंसाली के नाम के आगे का 'प्रोफेसर' शब्द इस बात का द्योतक नहीं है कि वे कोई आधुनिक युग के पश्चिमी वेशभूषा-विभूषित और नयी सभ्यता के पुजारी प्रोफेसर हैं।

वे लम्बे कद के सुदृढ़ और गठे हुए शरीर के व्यक्ति हैं, और उनका एकमात्र वस्त्र कोपीन है। उन्हें देखकर कोई यह खयाल कर सकता है कि मानो पागलखाने से कोई पागल अभी बाहर आया हो और स्वास्थ्य-लाभ कर रहा हो, अथवा भीलस्तान या संथाल परगने के जंगलों में रहनेवाला कोई आदिवासी हो, अथवा आप उन्हें सेवा-ग्राम के आश्रम में सुबह के ११ बजे कड़ी धूप में देहात के छोटे-छोटे बच्चों को वर्णमाला सिखाते हुए और ग्राम्य-कहानियां अथवा संसार के आश्चर्यों की कहानियां सुनाते हुए प्राइमरी स्कूल के एक अध्यापक के रूप में पाएंगे, जिसे सरकार की ओर से कोई आर्थिक सहायता नहीं मिलती और जो अपना जीवन-निर्वाह ग्रामीणों-द्वारा दी गई भिक्षा अथवा नाममात्र का भत्ता लेकर कह रहा है और यही उनका असली रूप भी है। जिस प्रकार व्यक्तिगत सत्याग्रह-आंदोलन के अवसर पर पौनार के सन्त श्री विनोबा भावे का नाम दुनिया ने राजनीतिक क्षेत्र में पहली बार सुना था और वे एक अज्ञात आश्रम से बाहर निकलकर एक नेता के रूप में प्रकट हुए, उसी प्रकार श्री भंसाली भी सत्याग्रह के कड़े नियमों के अनुसार ६२ दिन तक उपवास की घोर तपस्या और कठिन-परीक्षा में सफलतापूर्वक उत्तीर्ण होकर ख्याति के क्षेत्र में प्रकट हुए और उस वक्त दुनिया ने जाना कि किस प्रकार एक तपस्वी ने चिमूर की जनता पर किये गए अत्याचारों के विरोध में आत्म-बलिदान का दृढ़ निश्चय कर लिया था। सैनिकों की कथित ज्यादतियों की शिकार स्त्रियों की दारुण-कहानी सुनने के लिए जब कोई तैयार नहीं था, उस समय भंसाली ने आत्माहुति देकर दुनिया का ध्यान इस गांव की निस्सहाय और बेबस जनता की ओर आकर्षित करने का दृढ़ निश्चय किया। जब उन्होंने देखा कि इन गरीब देहातियों की न तो ईश्वर के दरबार में और न ही सरकार के दरबार में कोई सुनवाई हो रही तो उन्होंने दिल्ली आकर श्री अणे को चिमूर-काण्ड से अवगत कराने का निष्फल प्रयत्न किया। उन्होंने श्री अणे को शरण में आने का क्यों निश्चय किया, यह तो प्रत्यक्ष ही है। चिमूर मध्यप्रांत के वर्धा जिले में एक गांव है और यह स्थान बरार में श्री अणे के घर से बहुत दूर नहीं है। साधारणतः देखा गया है कि समान बोली और समान प्रांत के बन्धन तो नागरिकों को एक दूसरे से घनिष्टता के सूत्र में आसानी से बांध देते हैं और उनमें एक-दूसरे के प्रति न केवल स्थानीय दृष्टि से बल्कि मानवीय आधार पर भी गहरी सहानुभूति पाई जाती है। मानवीय श्री अणे ने इस काम में उनकी किसी तरह से भी मदद करने में अपनी असमर्थता प्रकट की और उन्होंने भंसाली से कहा कि उनके लिए चिमूर जाना कठिन है। इतना ही नहीं, प्रोफेसर भंसाली को शीघ्र-से-शीघ्र दिल्ली छोड़कर चले जाने का भी आदेश मिला। और जब उन्होंने उस आदेश को मानने से इन्कार कर दिया तो उन्हें रेल में सवार करके वर्धा पहुँचा दिया गया। २८ नवम्बर की एक सरकारी विज्ञप्ति में कहा गया :—

"यह स्मरण रहे कि प्रोफेसर भंसाली ने दिल्ली से वापस आने पर, जहां वे श्री अणे से चिमूर में सेना की कथित ज्यादतियों के बारे में बातचीत करने गए थे, सरकार-द्वारा इस मामले में जांच-पड़ताल करने से इन्कार कर देने के विरोध में ११ नवम्बर से उपवास शुरू कर दिया। मित्रों-द्वारा आग्रह किये जाने पर भी उन्होंने उपवास के दौरान में पानी पीने से इन्कार कर दिया। पुलिस १३ नवम्बर को उन्हें वापस सेवाग्राम ले आई। प्रोफेसर भंसाली ने १६ नवम्बर को पैदल प्रस्थान किया और वे ६२ मील का फासला तय करके २२ को फिर चिमूर पहुंच गए। २३ नवम्बर को पुलिस उन्हें फिर वापस सेवाग्राम ले आई और २५ तारीख को प्रोफेसर भंसाली

फिर चिमूर के लिए पैदल चल पड़े। २७ नवम्बर को जबकि वे ४५ मील का फासला तय कर चुके थे, पुलिस ने उन्हें फिर पकड़ लिया।"

नागपुर के 'हितवाद' ने ६–१२–४२ को प्रोफेसर भंसाली के नाम श्री अणे का यह तार प्रकाशित किया—"कृपया उपवास छोड़ दीजिये। पवित्र उद्देश्य की सफलता के लिए ईश्वर में विश्वास करके मुझे जो कुछ भी उचित और संभव प्रतीत हो रहा है, मैं कर रहा हूँ।" प्रोफेसर भंसाली ने तार का जवाब देते हुए लिखा कि उनका उद्देश्य पवित्र है और उन्हें आत्म-बलिदान करते हुए प्रसन्नता हो रही है। उन्होंने कहा कि आपको अपने प्रयत्नों में शीघ्र ही सफलता प्राप्त हो। इसके अतिरिक्त प्रोफेसर भंसाली ने श्री अणे से स्वयं चिमूर आने का भी आग्रह किया। १२ दिसम्बर के एक समाचार में बताया गया कि "आज प्रोफेसर भंसाली के उपवास का ३३वां दिन है। वे वर्धा में स्वर्गीय सेठ जमनालाल बजाज के अतिथि-गृह में पड़े हुए हैं। आज सायं श्री के० एम० मुंशी वर्धा के लिए रवाना हो गए जिससे कि वहां जाकर वे उन्हें उपवास छोड़ देने के लिए मना सकें।"

इस संक्षिप्त से समाचार के बाद प्रोफेसर भंसाली के उपवास के बारे में कोई खबर नहीं छपी, हालांकि इस सम्बन्ध में अनेक उल्लेखनीय घटनाएं इस दौरान में हुईं। मध्यप्रान्त की सरकार ने विगत अक्तूबर में समाचारपत्रों के साथ हुए समझौते को ताक पर रखकर यह आदेश जारी कर दिया कि प्रोफेसर भंसाली के उपवास के सम्बन्ध में समाचारपत्रों में कोई समाचार न प्रकाशित किया जाय। अखिल भारतीय समाचारपत्र-संपादक-सम्मेलन ने तुरन्त ही इसका विरोध करते हुए यह निश्चय किया कि नये वर्ष की उपाधियां समाचारपत्रों में न छापी जाएं और ६ जनवरी को हड़ताल की जाय। सरकार ने इसका बदला लिया। परन्तु "अन्त भला सो भला" के अनुसार आखिर एक दिन सुप्रभात में दुनिया को यह समाचार मिला कि प्रोफेसर भंसाली ने इस मामले में डा० खरे के हस्तक्षेप करने पर सरकार और अपने दरम्यान हुए एक समझौते के अनुसार ६३वें दिन, १२ जनवरी १९४३ को अपना उपवास तोड़ दिया है। इस-बारे में सरकारी विज्ञप्ति और सम्बद्ध कागजपत्रों का उल्लेख नीचे किया गया है:—

प्रोफेसर भंसाली के नाम डा० खरे का पत्र—

"प्रिय भंसाली, ८ जनवरी को मैंने आपसे मुलाकात और बातचीत की थी। उसके परिणामस्वरूप मेरी चिमूर की घटनाओं के बारे में हिज एक्सेलेंसी के साथ खुली और स्वतंत्र बातचीत हुई। अब चूंकि समय काफी गुजर चुका है इसलिए जहाँ तक चिमूर में स्त्रियों पर किये गए अत्याचारों की शिकायतों की छानबीन के लिए एक सार्वजनिक जांच पड़ताल समिति नियुक्त करने का प्रश्न है, ऐसा करना शायद संभव न होगा क्योंकि अभियुक्तों की शिनाख्त करने में बड़ी कठिनाई पेश आएगी। मैं आपको यकीन दिला सकता हूँ कि (१) मध्यप्रान्त की सरकार एक विज्ञप्ति प्रकाशित करेगी जिसमें स्पष्ट रूप से यह बताया जाएगा कि साधारणतः चिमूर की स्त्रियों के प्रति कोई दुर्भावना प्रकट करने का सरकार का कोई इरादा नहीं था और शान्ति और व्यवस्था कायम करने में लगे हुए सैनिकों और सिपाहियों में अनुशासन बनाए रखने को सरकार बहुत अधिक महत्व देती है और हमेशा से देती रही है और वह अच्छे अनुशासन की सर्वप्रथम आवश्यक बात स्त्रियों की इज्जत करना और उनके सतीत्व की रक्षा करना समझती है और समझेगी। (२) चिमूर की घटनाओं और भंसाली के मामले में समाचार-पत्रों पर लगाए गए प्रतिबन्ध उठा लिए जाएंगे। (३) विज्ञप्तियों के साथ-साथ समाचार-पत्रों में संबद्ध पत्र भी प्रकाशित किये

जाएंगे। (४) मुझे पता चला है कि अब चिमूर जानेवाले दर्शकों पर कोई प्रतिबन्ध नहीं रहेगा और यदि कोई प्रतिबन्ध हो भी तो उसे उठा लिया जायगा। मैं आपको आश्वासन दिला सकता हूं कि चिमूर के आपके दौरे में माननीय श्री अणे भी आप के साथ रहेंगे और जनता से मिलेंगे और इस मामले में सरकार कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाएगी। यदि आप चाहें तो मुझे भी आपके साथ वहाँ जाने में कोई आपत्ति नहीं होगी। आपने महान् बलिदान किया है, परन्तु उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखते हुए मैं आपसे आग्रह करूंगा कि आप अपना यह वीरतापूर्ण उपवास छोड़ दें।

आपका शुभचिंतक,

डा० खरे"

डा० खरे के नाम प्रोफेसर भंसाली का पत्र :—

"प्रिय खरे, आपके पत्र और कोशिशों के लिए आपका बहुत-बहुत धन्यवाद। मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि सरकार एक विज्ञप्ति जैसा कि आपने बताया है, प्रकाशित करने और चिमूर के समाचारों के सम्बन्ध में अखबारों और चिमूर जानेवाले दर्शकों पर से प्रतिबन्ध उठा लेने को तैयार है। मुझे यह जानकर भी प्रसन्नता हुई कि श्री अणे भी मेरे साथ चिमूर चलेंगे और जनता से बात-चीत करेंगे और इस प्रकार मैंने उनसे जो प्रार्थना की थी उसे भी पूरा करेंगे। एक धार्मिक जीवन व्यतीत करनेवाले व्यक्ति की हैसियत से मेरी हमेशा से यह धारणा रही है कि एक भी स्त्रीके सतीत्व पर आक्रमण करना समाज और ईश्वर के प्रति एक महान् अपराध है। यद्यपि मुझे कुछ सीमित रूप में ही दूसरों तक यह विचार पहुँचाने का अवसर दिया गया है, फिर भी इसके लिए मैं ईश्वर के प्रति आभारी हूं कि उसने मुझे स्त्रियों की प्रतिष्ठा और सतीत्व-जैसे इतने महत्वपूर्ण प्रश्न पर लोगों में जाग्रति पैदा करने का साधन बनाया। जब मैं स्वास्थ-लाभ कर लूंगा तो मुझे श्री अणे और आपके साथ चिमूर की यात्रा करने में बड़ी प्रसन्नता होगी। आपने जो कारण उपस्थित किये हैं, उन्हें देखते हुए मैं इस मामले में जांच-पड़ताल के लिए तक समिति नियुक्त करने की मांग छोड़ देने और उपवास तोड़ देने के लिए तैयार हूं। मुझे आशा है कि मेरे उपवास तोड़ देने के बाद चिमूर के लोगों की सहायता के उद्देश्य अथवा अपने उपवास के सम्बन्ध में मैं जो कुछ कहूंगा उसपर अथवा इस सम्बन्ध में मेरी गतिविधिपर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया जायगा।

आपका शुभचिंतक

भंसाली"

बाद में गांधीजी के उपवास के दौरान में श्री प्रोफेसर भंसाली ने भी उनके साथ सहानुभूति के रूप में उपवास किया, परन्तु कुछ समय बाद ही उन्हें उसे समाप्त कर देनेपर मना लिया गया।

ऊपर यह कहा गया है कि जनता को उनके बारे में कोई जानकारी नहीं थी, परन्तु उनके सम्बन्ध में बहुत-सी जानने योग्य बातें हैं। उन्होने लगभग तीस साल तक लंदन में अध्ययन किया है और वहाँ से लौटने पर वे कुछ समय तक प्रोफेसर रहे और उसके बाद तपस्या करने के लिए हिमालय पर्वतों को चले गए। उन्होंने सात वर्ष तक मौनव्रत धारण किये रखा और बोलने के प्रलोभन से बचने के लिए अपने दोनों होठों में ताँबे के मोटे तार से सूराख करके उन्हें बाध दिया था। हिमालय पर्वत से वापस आकर भी वे सरकण्डे की नलीकी के जरिये आटे और पानी का घोल मिलाकर खाते रहे। वर्षों के बाद गांधीजी ने उन्हें बोलने के लिए राजी कर लिया। उपवास करने से पूर्व वे सेवाग्राम आश्रम में निवास करते थे और सपरेटा दूध और

आलुओं पर निर्वाह कर रहे थे। उनके व्यक्तित्व में कुछ ऐसा आकर्षण है कि उनसे पहली बार मिलनेवाला व्यक्ति भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहेगा। ६२ दिन तक उपवास करके उन्होंने अपने इस व्यक्तित्व को सार्थक कर दिखाया और इस राष्ट्र के जीवन में उनका यह उपवास चिरस्मरणीय रहेगा।

: १९ :

अनशन और उसके बाद

अनशन खत्म हो चुका था। भारत में गांधीजी की प्राण-रक्षा से जितनी खुशी हुई थी उससे अधिक नहीं तो कम-से-कम उतनी ही खुशी ब्रिटेन में इस बात से हुई कि अनशन असफल रहा। भारत के लिए यह जिन्दगी और मौत का सवाल था और ब्रिटेन के लिए सफलता या असफलता का। इस बात के यकीन से कि अनशन असफल रहा, अंग्रेजों की अभिमान-भावना तुष्ट हुई, उन्हें संतोष हुआ और ब्रिटेन और साम्राज्य के एक शत्रु की दुर्गति से उन्हें अमिश्रित हर्ष हुआ। अपने अहिंसा के पथ को गांधी हिंसा के पंथ से ऊपर उठाने की जुर्रत कैसे करता है—उसी हिंसा के पंथ से ऊपर, जिसके अग्रणी के रूप में ब्रिटेन दुनिया भर में नाम कमा चुका है। दुनिया के मुख्तलिफ कोनों से की गयी अपीलों से भी चर्चिल का दिल नहीं पसीजा, क्योंकि वह तो शेक्सपियर के इन शब्दों का हामी है "यह इंग्लैंड कभी किसी हिंसक या अहिंसक विजेता के पैरों पर नहीं झुका और न झुकेगा।" एक ऐसे शक्तिशाली साम्राज्य के खिलाफ, जिसमें सूरज कभी नहीं डूबता, सिर न उठाने का सबक अपनी अधीनता में रहनेवाले एक देश को सिखाने का जो निश्चय ब्रिटेन कर चुका था उसमें धर्माध्यक्षों व पादरियों, विद्वानों व ज्ञानियों, लेखकों व पत्रकारों, कवियों व दार्शनिकों, व्यापारियों व उद्योगपतियों, प्रोफेसरों व प्रिंसिपलों, विद्यार्थियों व अध्यापकों, भूतपूर्व प्रधान मंत्रियों व भूतपूर्व मंत्रियों, विश्वविद्यालयों के वाइस-चांसलरों व प्रो-चांसलरों, लार्डों व दूसरे उपाधिधारियों और जनरलों व फील्डमार्शलों-द्वारा प्रकट किये गये अनेक मतों से भी कोई रद्दो-बदल न हो सका। ब्रिटेन का अभिमान चाहे जितना बढ़ गया हो, लेकिन भारत के सवाल की चर्चा भी दुनिया भर में फैल गयी और इससे संसार के हरेक भाग में दिलचस्पी उत्साह व सहयोग की लहर व्याप्त हो गयी। अनशन के असर का अंदाज आप दो एडवोकेट-जनरलों, दो गवर्नमेंट लीडरों, एक आई० सी० एस० अफसर और वाइसराय की शासन-परिषद् के तीन सदस्यों के इस्तीफे से लगाते हैं या उसके प्रभाव का अनुमान आप नैतिक प्रतिक्रियाओं व संसार के दोनों गोलार्द्धों के राष्ट्रों के मध्य हुए आध्यात्मिक मंथन से वेदों के महापंडित, शिव-भक्ति में बेजोड़, दस सिर और बीस भुजावाले राजा रावण की नज़र में श्रीराम अपने पैरों के नीचे पड़ी धूल के बराबर ही थे; पर हुआ क्या? हिंसा ने हिंसा पर विजय पायी। एक अधिक उन्नत काल में शिवभक्त हिरण्यकश्यप को, जिसने अपने पुत्र प्रह्लाद को ज्वालाओं में झोंका, नदियों में फेंका, हाथियों के पैरों के नीचे कुचलवाया, बिच्छुओं और सांपों से कटवाया—और वह भी सिर्फ इस कारण कि वह विष्णु की पूजा करता था, उसे प्रह्लाद के आगे हार माननी पड़ी, जिसने सभी कष्ट और यातनाओं को सच्ची भक्ति और कर्त्तव्य की भावना से सहन किया और प्रतिहिंसा या बदले की भावना को एक बार भी अपने मन में न आने दिया। हिंसा पर अहिंसा-द्वारा, घृणा पर प्रेम-द्वारा, अंधकार पर प्रकाश-द्वारा और मृत्यु पर जीवन-द्वारा

विजय प्राप्त करने का ही यह एक उदाहरण था। ईश्वर इंसाफ चाहे देर से करे, पर करता जरूर है और तभी मौजूदा से भी विशाल पहले के साम्राज्य आज पुरातत्ववेत्ताओं की खोजों के विषय बने हुए हैं।

आखिर अनशन में ऐसी बुराई ही क्या थी, जिसकी नाकामयाबी पर लोग इतनी खुशियां मनाते? क्या आलोचक यह पसंद करते कि राष्ट्र के दावे को मनवाने के लिए हिंसा होती? हिंसा के हिमायती आज के साम्राज्य-निर्माता ही स्वयं अहिंसा की निन्दा करते हैं—उसी अहिंसा की, जिसकी वे अपने समझौतों में कृषि-सम्बन्धी साधारण शिकायतें दूर कराने के लिए उपयोग किये जाने की इजाजत दे चुके हैं।[1] आपत्ति असल में स्वाधीनता—स्वतंत्रता के दावे के सम्बन्ध में है। राजनीतिक अड़ंगे का स्वरूप साधारण आदमी के लिए बिल्कुल स्पष्ट है। उसके लिए सवाल सीधा-सादा है कि भारत पर किसका शासन होना चाहिए, उसे युद्ध में खींचा जाना चाहिए या नहीं, और यदि खींचा जाना चाहिए तो अपनी मर्जी से एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में या जबर्दस्ती एक गुलाम मुल्क के तौर पर? लेकिन एक गहन राजनीतिज्ञ के लिए सवाल कितनी ही दिक्कतों से भरा है। वह अड़ंगे की राजनीति जानने को उत्सुक है, लेकिन उसकी नैतिक पृष्ठभूमि से उसे कोई सरोकार नहीं। मि० एमरी और ब्रिटिश मंत्रिमंडल की विचारधारा यही है। वे कांग्रेस से कोई सम्पर्क नहीं रखना चाहते। वे उसे केवल कुचलना ही चाहते हैं। उन्होंने कांग्रेस को कैद कर रखा है और अनेक बार प्रश्न किये जाने पर भी उन्होंने अपना एक ही विचार दुहरा दिया है।

भारत का राजनीतिक अड़ंगा इकतर्फा नहीं है। वह एकाएक संयोगवश भी नहीं हुआ। ब्रिटेन ने भारत को उसकी मर्जी के बिना एक ऐसे युद्ध में खींच लिया, जो उसका अपना युद्ध न था। हिन्दुस्तान ने यह कह सकने का अपना दावा पेश किया और अपने इस अधिकार की रक्षा के लिए अहिंसात्मक सत्याग्रह के नियमों को मानते हुए हजारों व्यक्ति जेल गये। यह १९४०–४१ की बात है। इसके बाद हुआ क्रिप्स-कांड, जो ऊपर से देखने से सुलह का प्रयत्न जान पड़ता था, पर निकला कुछ और ही। क्रिप्स-प्रस्ताव नामंजूर होने से भारत और क्रिप्स दोनों का नुकसान हुआ। इधर क्रिप्स को प्रधानमंत्री ने जो महत्वपूर्ण पद दिया था उससे उनका पतन हुआ और उधर भारत फिर कंटकाकीर्ण पथ से चलने को विवश हुआ, क्योंकि क्रिप्स की असफलता को भारतीय संग्राम के एक अध्याय का अंत माना जाने लगा था। युद्ध हिंसापूर्ण हो या अहिंसापूर्ण उसके दरमियान विश्राम का काल अधिक लम्बा नहीं हो सकता। एक न एक पक्ष को आगे बढ़ना या पीछे हटना ही पड़ेगा। क्रिप्स की वापसी के बाद ब्रिटिश सरकार के लिए चुपचाप बैठ रहना स्वाभाविक था, लेकिन राष्ट्र की उन्नति के विचार से कांग्रेस के लिए ऐसा करना उचित न था। भारत-जैसे गुलाम मुल्क के लिए स्वाधीनता के नाम पर लड़ना एक मजाक ही नहीं, बल्कि उस गुलामी को दूसरे माने में मंजूर करना भी था। और कांग्रेस एक सामूहिक सत्याग्रह का आन्दोलन चलाना चाहती थी और उसका कैसा परिणाम होता, यह दुनिया जानती ही है। इसलिए कहा जा सकता है कि कम-से-कम उस समय तो राजनीतिक अड़ंगा दूर होने की कोई आशा न थी। कांग्रेस जिस महत्वपूर्ण स्थिति में थी उसमें लाने के लिए सरकार अन्य राजनीतिक संगठनों को प्रोत्साहन देने को तैयार थी, किन्तु अन्य राजनीतिक संगठन कांग्रेस का स्थान लेने में असमर्थ थे। दूसरे राजनीतिक दल कांग्रेस से सम्पर्क करने को उत्सुक थे, पर सरकार उन्हें इसकी

---

[1] देखिए कांग्रेस का इतिहास, ग्रन्थ १—परिशिष्ट : गांधी-अरविन-समझौता।

भी इजाजत देने को तैयार न थी। तब उन्होंने कांग्रेस पर कई आरोप लगाये। उनका सबसे प्रमुख आरोप यह था कि कांग्रेस राजनीतिक अड़ंगे को दूर होने देना ही नहीं चाहती और इसीलिए वह इस हथकंडे से काम ले रही है। यह सब उसका एक नीचतापूर्ण षड्यंत्र है।

आइये, इस तथ्य को हम अगस्त और सितम्बर, १९४२ में गांधीजी और वाइसराय के बीच हुए पत्र-व्यवहार से, अनशन के समय गांधीजी को छोड़ने के लिए की गई अपीलों और फरवरी १९४३ के नेता-सम्मेलन-द्वारा किये गये अनुरोधों के उत्तरों से ढूंढ निकालें। इनके अतिरिक्त परिस्थिति पर उस उत्तर से भी प्रकाश पड़ता है, जो गांधीजी को उस समय मिला था जब उन्होंने मुसलिम लीग के दिल्लीवाले १९४३ के अधिवेशन में मि० जिन्ना के सुझाव के उत्तर में उनको पत्र लिखने की अनुमति सरकार से मांगी थी। इन उत्तरों पर क्रमशः विचार करना असंगत न होगा। ९ अगस्त की गिरफ्तारियों के बाद सब से पहले मि० एमरी ने ११ सितम्बर को पार्लामेंट में आशा प्रकट की थी कि "निकट-भविष्य में भारतीय एक विधान के सम्बन्ध में समझौता कर सकते हैं, किन्तु सफलता की आशा के बिना बातचीत शुरू करना बड़ी गलती होगी। हमें कांग्रेस के हृदय-परिवर्तन के लिए ठहराना होगा।" ब्रिटिश-सरकार ऐसे किसी भी प्रयत्न का स्वागत करेगी, जिस का उद्देश्य मजबूत और पक्की नींव पर भारत की राष्ट्रीय एकता की इमारत खड़ा करना होगा। २९ सितम्बर, १९४२ को रेडियो पर भाषण करते हुए मि० एमरी ने कहा कि 'एक समुदाय द्वारा जबरन लादे हुए विधान से काम नहीं चल सकता, लेकिन गांधी और उन के इने-गिने साथियों का, जिन का कांग्रेस पर नियंत्रण है, यही मकसद है।"

१० अक्तूबर, १९४२ को भारतीय बिल की बहस के बीच मि० एमरी ने कहा —

"कांग्रेसी नेताओं के साथ भारत-सरकार के बातचीत चलाने या दूसरों को ऐसा करने देने का सवाल तब तक नहीं उठता, जब तक कि उपद्रवों के फिर से उठ खड़े होने की आशा बनी हुई है या जब तक कांग्रेसी नेता गैरकानूनी और क्रान्तिकारी उपायों द्वारा हिन्दुस्तान पर कब्जा जमाने की अपनी नीति से बाज नहीं आते और या जब तक वे हम से व अपने देशवासियों से समझौता करने को तैयार नहीं हो जाते। मौजूदा मिजाज और रुख को देखते हुए कांग्रेस के संतुष्ट होने की कोई आशा नहीं है। ऐसा करने से मुसलमानों व दूसरे दलों के साथ नयी दिक्कतें उठ खड़ी होंगी। असल में समस्या ऐसा विधान खोज निकालने की है, जिसे मुख्तलिफ विचारों के लोग मानने को तैयार हों।" कांग्रेस के हृदय-परिवर्तन से मि० एमरी का यही मतलब था। एक नये विधान का मसला खड़ा कर दिया गया।

कुछ न करने की नीति का औचित्य सिद्ध करते हुए लार्ड-सभा में लार्ड साइमन ने मि० जिन्ना के निम्न शब्द उद्धृत किये—"युद्धकालीन संकट के वक्त हम अस्थायी सरकार बनाने के लिए मजबूर नहीं होना चाहते, क्योंकि ऐसी सरकार कायम करने से मुसलमानों की पाकिस्तान की मांग का गला घुट जायगा।"

गांधीजी से मिलने की इजाजत डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी को न दिये जाने पर मि० एमरी ने २२ अक्तूबर, १९४२ को कहा—"मौजूदा हालत में कांग्रेसी नेताओं के साथ मुलाकात करने की अनुमति देने के लिए मैं तैयार नहीं हूं।"

२६ नवम्बर। "नजरबंद भारतीय नेताओं को सिर्फ घरेलू मामलों पर ही अपने परिवार के व्यक्तियों के साथ लिखा-पढ़ी करने की इजाजत है। वे सार्वजनिक रूप से कोई घोषणा कर

सकते हैं या नहीं—यह उस घोषणा के रूप पर निर्भर है। पार्लीमेंट के सदस्य उन से पत्र-व्यवहार करने पायेंगे या नहीं, यह भारत-सरकार के अधिकार की बात है।"

"गवर्नर जनरल की परिषद् के वर्तमान यूरोपीय सदस्यों को सिर्फ इसी वजह से कायम रखा गया है कि उन के पदों के योग्य भारतीय नहीं मिलते।"

२० अक्तूबर। "रेडियो पर अमरीका के लिए भाषण देते हुए मि० एमरी ने इस समाचार का खंडन किया कि क्रिप्स भारत को राष्ट्रीय सरकार देने को तैयार थे, लेकिन ब्रिटिश-सरकार ने उन की बात नहीं मानी।"

२१ अक्तूबर। "मि० एमरी ने कहा कि 'चर्चिल ने भारत के एटलांटिक अधिकार-पत्र के अंतर्गत आने के दावे से इन्कार न कर के सिर्फ यही कहा था कि भारत के प्रति ब्रिटेन की नीति अधिकारपत्र की धारा ३ के ही अनुसार है और यह सिद्धान्त अब से २५ साल पहले माना जा चुका है।"

२८ अक्तूबर। "कांग्रेसी नेताओं तथा गैर-कांग्रेसी प्रतिनिधियों के मिलने की सुविधा देने का अनुरोध करने पर एमरी ने उसे स्वीकार नहीं किया।"

८ अप्रेल, १९४३। "मि० एमरी ने कहा कि सम्राट् की सरकार राजनीतिक नेताओं-द्वारा समझौते के प्रयत्नों का स्वागत करती है, लेकिन जब तक कांग्रेस के नेताओं से अपने रुख में परिवर्तन का आश्वासन नहीं मिल जाता तब तक उन से मुलाकात की सुविधा नहीं दी जा सकती। दूसरे नेता अक्सर मिलते रहे हैं, किन्तु उन में कोई समझौता नहीं हुआ।"

अनशन के बाद २० मार्च को दिल्ली में नेताओं का जो सम्मेलन हुआ था उस के अध्यक्ष के रूप में डा० सप्रू को उत्तर देते हुए वाइसराय ने सरकार की नीति स्पष्ट करते हुए कहाः—

"यदि दूसरी तरफ गांधीजी पिछले अगस्तवाले कांग्रेस के प्रस्ताव को रद करने और हिंसा के लिए उत्तेजक अपने शब्दों-जैसे 'खुला विद्रोह' आदि की, कांग्रेस अनुयायियों को दी गयी 'करो या मरो' सलाह की और अपने इस कथन की कि नेताओं के हट जाने पर साधारण व्यक्ति स्वयं ही निर्णय करें, निन्दा करने को तैयार हों और साथ ही कांग्रेस और वे भविष्य के लिए ऐसा आश्वासन देने को तैयार हों, जो सरकार को मंजूर हो, तो इस विषय पर आगे विचार किया जा सकता है। परन्तु जब तक ऐसा नहीं होता और कांग्रेस अपने रुख पर कायम रहती है, तब तक सरकार का पहला फर्ज हिन्दुस्तान की जनता के प्रति है और अपने इस फर्ज को वह पूरी तरह से अदा करना चाहती है। यह कहा गया है कि इस तरह फर्ज अदा करने से कटुता और दुर्भावना में वृद्धि होगी। सरकार इस सुझाव को निराधार मानती है और यदि इस में कुछ आधार हो भी तो सरकार अपनी जिम्मेदारी निबाहने के लिए वह मूल्य चुकाने के लिए भी तैयार है।"

मि० एमरी ने जो कुछ कहा उस का क्या मतलब है? शुरू में उनके जवाब कुछ नर्म थे। उन्होंने इस बहाने की आड़ ली कि कांग्रेस को हृदय-परिवर्तन दिखाना चाहिए। यह स्थिति सितम्बर, १९४२ में थी, जब भारत में उपद्रव बढ़ रहे थे और उन में कमी नहीं हुई थी। अक्तूबर और नवम्बर तक अंग्रेजों को उन्हें दबा सकने की अपनी शक्ति में विश्वास हो गया और तभी पार्लीमेंट में उन के उत्तर अधिक कड़े हो गये। सिर्फ भारत-सरकार ही कांग्रेसी नेताओं से सुलह की वार्ता चलाने को तैयार न हो—यही नहीं, बल्कि जब तक कांग्रेसी नेता गैर-कानूनी और क्रान्तिकारी उपायों से हिन्दुस्तान पर कब्जा जमाने की नीति का परित्याग नहीं करते तब तक

वह दूसरों को भी उनसे सुलह की बात चलाने की अनुमति नहीं दे सकती। दूसरे शब्दों में कांग्रेस को सत्याग्रह छोड़ देना चाहिए। यह दूसरा कदम था। साथ ही नये विधान का प्रश्न उठाया गया। क्या यह नहीं मान लिया गया था कि विधान स्वयं भारतीयों ही द्वारा विधान-परिषद् में बैठ कर तैयार किया जायगा? यदि ऐसा था तो मि० एमरी को युवक-वर्ग से और भारतीय विश्वविद्यालयों से यह अपील करने की क्या ज़रूरत थी कि नया विधान रूस, अमरीका, या स्विट्ज़रलैंड के ढंग पर बनना चाहिए। लार्ड बर्कनहेड ने १९२६ में भारत-विधान तैयार करने के लिए चुनौती दी थी। तब नेहरू-समिति नियुक्त हुई, किन्तु वह अपने कार्य में अधिक प्रगति नहीं कर सकी। फिर १९२७ और १९३५ के मध्य १९३५ का कानून पास होने तक १४ सरकारी समितियों और सम्मेलनों की बैठकें हुईं और अब १९४२-४३ में एमरी और उन के अंग्रेज पत्रकार फिर नये विधान का राग अलापने लगे और उधर पार्लामेंट के कुछ सदस्य, जिनमें भारत सरकार के भूतपूर्व अर्थ-सदस्य सर जार्ज शुस्टर भी थे, नये विधान की रूपरेखा तैयार करने के लिए एक कमीशन की जरूरत महसूस करने लगे। तीसरी तरफ लार्ड साइमन ने जिन्ना की यह आपत्ति पेश की कि ब्रिटिश-सरकार पर अस्थायी सरकार कायम करने के लिए जोर डाला जा रहा है। १९२७ से अब तक घटनाओं की समीक्षा करने पर हम इसी नतीजे पर पहुंचते हैं कि स्वतंत्रता चली गयी, पूर्ण औपनिवेशक पद भी चला गया और यहां तक कि केन्द्रीय जिम्मेदारी की भी चर्चा नहीं रही। जब दूसरे राजनीतिक नेता कांग्रेसी नेताओं से मिलने और बात करने को उत्सुक हैं तो मि० एमरी और वाइसराय कहते हैं कि वे कलकत्ता के लाट-पादरी, अमरीका के विलियम फिलिप्स तथा बंगाल के अर्थमंत्री डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी को भी गांधीजी से नहीं मिलने देंगे। इतना ही नहीं, नजरबंद नेता पार्लामेंट के सदस्यों तक को पत्र नहीं लिख सकते—हां, वे चाहें तो अपनी नीति परित्याग करने और पिछले आचरण पर खेद प्रकट करने की सार्वजनिक घोषणा कर सकते हैं। नवम्बर, १९४२ में मि० एमरी एक कदम और बढ़े। पूर्ण स्वाधीनता एक कल्पनामात्र हो गयी। औपनिवेशक-पद एक सुदूर का लक्ष्य हो गया और युद्धकाल में राष्ट्रीय सरकार का तो प्रश्न ही नहीं था। अब सिर्फ एक ही बात रह गयी—वाइसराय की शासन-परिषद् का भारतीयकरण। साथ ही एमरी ने यह भी कहा कि "गृह, अर्थ और युद्ध विभागों के लिए उपयुक्त भारतीय मिलते ही नहीं।" और एमरी ने अधिकारपूर्वक यह भी खंडन कर दिया कि क्रिप्स साहब भारत के लिए राष्ट्रीय सरकार का तोहफा लाये थे। अटलांटिक-अधिकारपत्र के सम्बन्ध में एमरी ने कहा कि ब्रिटेन उसकी तीसरी धारा को २५ वर्ष पहले मान चुका है—सचमुच रूज़वेल्ट को तो यह कल्पना २५ वर्ष बाद जाकर कहीं सूझी! यह सब होने पर भी अप्रैल १९४३ में एमरी साहब फरमाते हैं कि "भारतीय राजनीतिक नेताओं के सुलह करने के प्रयत्नों का स्वागत किया जायगा।" जरा, यह तो बताइये कि समझौता किन और किन के बीच होगा! कांग्रेस और लीग के मध्य और हिन्दू महासभा और सिखों के मध्य? परन्तु समझौता कैसे सम्भव है जब कि उसे करनेवालों में से एक दल जेल में बंद है और दूसरे दलों को उस से मिलने और बात करने की इजाजत नहीं दी जाती। यह वास्तविक अड़ंगा था, जिसका सामना राष्ट्र को करना पड़ा। मि० एमरी ने ३१ मार्च, १९४३ के जिस भाषण में कांग्रेस से गारंटी और आश्वासन की मांग की थी उसी में उन्हों ने गांधीजी पर कीचड़ उछालने का भी प्रयत्न किया था।

३० मार्च, १९४३ को कामन-सभा में भारत-सम्बन्धी बहस आरम्भ करते हुए मि० एमरी

ने कहा—"यह खेद की बात है कि वाइसराय के शासन-परिषद् के तीन सदस्यों ने गांधीजी के अनशन के भावनापूर्ण संकट से अपने आपको प्रभावित होने दिया है। उनके स्थान उन्हीं-जैसे योग्य व्यक्तियों से भर दिये जायंगे। शासन-परिषद् के विस्तार को, जिसे इस्तीफा देनेवाले एक सज्जन श्री अणे महत्वपूर्ण सुधार कह चुके हैं, रद्द न किया जायगा।" वाइसराय से मिलनेवाले निर्दल प्रतिनिधि-मंडल के सम्बन्ध में मि० एमरी ने कहा कि गतवर्ष की असावधानी तथा पराजय-मूलक कार्रवाई के कारण इस वर्ष गांधी के साथ कोई रिआयत करना तब तक के लिए कठिन ही नहीं, खतरनाक भी हो गया जब तक कि उन लोगों की तरफ से अपनी नीति में परिवर्तन करने का स्पष्ट आश्वासन नहीं मिलता, जिन्होंने भारत को इतना दुःख और दर्द दिया है और जो भारत को आधार मानकर होनेवाली लड़ाई के समय भविष्य में फिर मित्र-राष्ट्रीय उद्देश्यों को हानि पहुंचा सकते हैं। अभी गांधी के रुख में परिवर्तन का कोई लक्षण नहीं दिखायी देता।

"ब्रिटेन में प्रतिक्रिया" शीर्षक के नीचे मि० एमरी-द्वारा महात्मा गांधी को फादर जोसेफ से तुलना का उल्लेख किया गया है। यह तुलना भारत-मन्त्री ने अप्रैल १९४३ वाले अपने भाषण में की है। मि० एमरी कहते हैं :—

"कितने ही सदस्यों ने निस्संदेह 'ग्रे एमिनेंस' नामक हाल ही में प्रकाशित पुस्तक को पढ़ा है, जिसमें आल्डुस हक्सले ने फादर जोसेफ-डु-ट्रेम्बले के व्यक्तित्व में गहन रहस्यवादी के साथ एक कूटनीतिज्ञ के मेल का वर्णन किया है। यह व्यक्ति कार्डिनल रिचल्यू का राजनीतिक सलाहकार था और उसी के षड्यंत्रों के परिणामस्वरूप यूरोप में कितने ही साल तक विनाश-कारी युद्ध का दौरदौरा रहा। मेरे लिए सिर्फ यही कहना काफी होगा कि हिन्दुओं में तपस्वियों के प्रति जो एकांगी आस्था होती है उसी के कारण गांधी एक बेजोड़ डिक्टेटर और नेहरू के लफ्जों में भारत के सब से अधिक संगठित, सब से विशाल और सब से धनी राजनीतिक संगठन का स्थायी महा-प्रधान बन गया है।"

श्री अटली ने बहस का उत्तर देते हुए कहा :—

"कामंस-सभा में प्रत्येक व्यक्ति इस बात से सहमत है कि भारत को यथासम्भव शीघ्र ही स्व-शासन प्राप्त करना चाहिए, किन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि शासन किसी एक व्यक्ति या एक जाति के लोगों के हाथ में रहे। भारत में एक परेशानी की बात यह है कि वहां के राज-नीतिक दल ब्रिटेन की राजनीतिक संस्थाओं की तरह संगठित न होकर यूरोप के अन्य देशों की तरह तानाशाही का रूप ग्रहण करते जाते हैं। व्यक्तिगत रूप से लोकतन्त्र में विश्वास होने के कारण मैं किसी प्रसिद्ध सन्त का तानाशाही के उतना ही विरुद्ध हूं, जितना किसी महान् पापी की तानाशाही का हो सकता हूँ। गांधीजी के कार्य भारत के राजनीतिक-दलों के नेताओं की लोक-तंत्री धारणाओं के बिल्कुल विरुद्ध हैं।"

मि० एमरी ने जो कुछ कहा उसका यही मतलब था कि "कांग्रेस के स्वरूप और उसके तरीकों का निर्णयकर्ता एक व्यक्ति गांधी ही है। यहां मैं इस रहस्यपूर्ण व्यक्ति के सम्बन्ध में और कुछ न कहूँगा।" यह कहने के उपरांत भारत-मंत्री ने फादर जोसेफ से गांधीजी के व्यक्तित्व की शरारत-भरी तुलना की।

मि० एमरी की तुलना को समझने के लिए यहां फादर जोसेफ का कुछ हाल बता देना अनुचित न होगा। वह धार्मिक ग्रंथों में पेरिस के फादर जोसेफ और इतिहास में एमिनेंस ग्राइज के रूप में प्रसिद्ध है। उसका चरित-लेखक आल्डुस हक्सले लिखता है "उसके खुरदरे पैर उसे

जिस पथ पर ले गये वह अरबन आठवें का रोम था। बाद में यही मार्ग अगस्त १९१४ और सितम्बर १९३९ की ओर ले गया। आज को पाप और पागलपन से भरी दुनिया जिन सब से महत्वपूर्ण कड़ियों-द्वारा अपने अतीत से बंधी हुई है, उनमें एक तीस वर्षीय युद्ध भी है। इस कड़ी को तैयार करने में कितने ही व्यक्तियों का हाथ था, किन्तु इसके लिए रिचल्यू के सहयोगी फादर जोसेफ से अधिक और किसी ने काम नहीं किया। यदि फादर जोसेफ सिर्फ राजनीतिक कुचक्रों को चलाने की कला में ही सिद्धहस्त होता तो उसके जैसे दूसरे लोगों के मध्य उसे विशेष महत्व देने की कोई आवश्यकता न था। परन्तु पादरी जोसेफ की शक्ति का आधार इस पार्थिव संसार के साधन न थे। उसका केवल बौद्धिक दृष्टि से नहीं, बल्कि व्यक्तिगत अनुभव-द्वारा भी दूसरी दुनिया से साक्षात्कार था। वह स्वर्ग के साम्राज्य का नागरिक बनने के लिए लालायित रहता था और बन भी चुका था।"

फादर जोसेफ केपुचीनी पादरियों के संघ का सदस्य था और यह संघ फ्रांसिस्कन सम्प्रदाय का एक अंग था। फ्रांसिस्कन सम्प्रदाय का जन्म सन् १४२० के लगभग इटली में हुआ था और पोप ने १५३८ में एक विशेष आदेश निकाल कर उसे स्वीकृति प्रदान की थी। इस सम्प्रदाय के संघों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किसी जायदाद का मालिक तक होने का हक न था। संघों को अपनी सब ज़रूरतें भीख मांगकर पूरी करनी पड़ती थीं और मठों में चन्द दिनों से अधिक समय के लिए सामग्री एकत्र करने का अनुमति न थी। किसी पादरी को धन के उपयोग या स्पर्श करने का अधिकार न था। उसे भूरे रंग के कपड़े पहने रहना पड़ता था और बदले न जाने के कारण ये कपड़े गन्दे होकर फट भी जाते थे। फादर जोसेफ को इसीलिए 'ग्रे एमिनेंस' (भूरा पादरी) भी कहा जाता था। इन पादरियों को निर्धनता के कष्टों के साथ कड़े अनुशासन, असंख्य अनशनों और तपस्या के अनगिनत कष्टमय साधनों को भी अपनाना पड़ता था। इस पंथ को चलानेवाला केपुचीन दृढ़व्रती, गरीबों के कष्टों में हिस्सा लेनेवाला और उनका सच्चा सहायक था। कठोर जीवन, स्वेच्छा से निर्धनता को अपनाने और गरीबों की सहायता के लिए तैयार रहने के कारण केपुचीन जनता का प्रेमपात्र था। उद्देश्य जनता के द्वारा परमात्मा की सेवा करना होता है, किन्तु इससे मनुष्य को अभिमान-भावना की तुष्टि होती है। वह संसार को दिखाना चाहता है कि वह कुछ है। वह उच्च सामाजिक मर्यादा और धन के बिना भी अन्य लोगों की अपेक्षा लोकप्रियता में बढ़ सकता है। फादर जोसेफ दूसरा केपुचीन बनना चाहता था। उसे अपने नाना की जमींदारी उत्तराधिकार में मिली थी, किन्तु लार्ड की उपाधि होते हुए भी उसने एक निर्धन पादरी का जीवन व्यतीत करने का निश्चय किया। फादर जोसेफ ने अपनी माता को लिखा था —"यह एक सैनिक का जीवन है, लेकिन अंतर यह है कि जहां सैनिक की मृत्यु मनुष्यता की सेवा में होती है वहां हम ईश्वर की सेवा में जीवित रहने की आशा करते हैं।"

रिचल्यू, राजपरिषद् का सदस्य होने के बाद १६१५ में युद्धमंत्री और विदेशमंत्री नियुक्त हुआ। वह शक्ति का भूखा था और शक्ति उसके पास आती-सी जान भी पड़ी। फादर जोसेफ धर्मयुद्धों को जारी रखने और तुर्की से यूनान को मुक्ति दिलाने का हिमायती था और इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए उसने नेवर्स के ड्यूक से सहायता मांगी। ड्यूक बड़ा महत्वाकांक्षी और कुचक्री व्यक्ति था और इस कार्य की सफलता के लिए अपनी स्थल-सेना तथा नौ-सेना तैयार कर रहा था। फादर जोसेफ का विचार था कि पहले के धर्मयुद्धों में जिस फ्रांस ने प्रमुख भाग लिया वह अब

ऐसा न करे तो यह ऐतिहासिक परम्परा के विरुद्ध ही नहीं बल्कि ईश्वर की इच्छा के भी विरुद्ध होगा। अब "परमात्मा के कार्य फ्रांसीसियों-द्वारा" होने का सवाल न था, बल्कि यह था कि "फ्रांसीसियों के ही कार्य परमात्मा के कार्य हैं।" फादर जोसेफ के पंथ का सार इन फ्रेंच पंक्तियों में है—"यदि आप (परमात्मा) की सेवा के लिए मैं दुनिया को उलट दूं, तो भी मेरी इच्छा की पूर्ति, और मेरे जोश की आग बुझाने के लिए काफी न होगा। मुझे तो अपने को रक्त के समुद्र में डुबो देना चाहिए।" भूरे पादरी (फादर जोसेफ) और सफेद पादरी (गांधीजी) दोनों ही अभिमान से रहित हैं। दोनों ही मानव-समाज के प्रेमी और निर्धनों के सेवक हैं, किन्तु जोसेफ राज-दरबार के षड्यंत्रों में व्यस्त रहा, उसने ३० वर्षीय युद्ध छिड़वाया और रक्त-स्नान भी किया। धर्मयुद्ध के लिए धधकनेवाली उसके हृदय की अग्नि केवल दूसरों के रक्त से ही बुझायी जा सकी और यदि अन्य लोगों का रक्त-स्नान होता तो स्वयं उसी के रक्त से होता। ऐसी अवस्था में युद्ध छेड़नेवाले, एक धूर्त पादरी की तुलना एक ऐसे व्यक्ति से करना, जिसकी सचाई के कारण उसके पास एक ऐसा पत्र नहीं छोड़ा जा सका, जिसे स्वयं लेखक ने वापस ले लिया और जिसकी अहिंसा भारत के किसी अंग्रेज़ के सिर का एक बाल बांका करने के मुकाबले में जान होम देना अधिक उत्तम समझेगी, जानबूझ कर आरोप लगाना ही कहा जा सकता है। फादर जोसेफ भूरे हैं, गांधीजी सफेद हैं। गांधीजी न तो शक्ति-लिप्सा के भूखे राजनीतिज्ञ हैं और न व्यावहारिक रहस्यवादी। इस्लाम और उसके पैगम्बर मोहम्मद के प्रति गांधीजी के जो विचार हैं वे फादर जोसेफ द्वारा 'टरकाइड' में प्रकट किये गये विचारों से बिल्कुल भिन्न हैं। गांधीजी के लिए मोहम्मद साहब के उपदेश अग्रहणीय न होकर स्वर्ग से उतरनेवाले देवदूत जिब्राइल के समान आदरणीय हैं। गांधीजी राजमाताओं तथा उनके पुत्रों का झगड़ा निबटाने में व्यस्त नहीं होते और न निर्दोष नगरों को उजाड़ने में हिचकिचानेवाले सैनिकों को ऐसा करने से रोकनेवाले लोगों के विरुद्ध गांधीजी ने कभी फादर जोसेफ की तरह नारकीय अग्नि की ही सहायता ली है। राष्ट्रीय एकता स्थापित करने के लिए फादर जोसेफ की तरह गांधीजी ने कभी सेनाओं की सहायता नहीं ली, बल्कि राष्ट्रीय अखंडता की रक्षा के लिए वे तो सेनाओं तक के विघटन के लिए तैयार हो गये हैं। गांधीजी को कार्डिनल रिचल्यू-जैसे किसी अधिकारी को ऊपर नहीं उठाना और न संयमित व्यवहार के भीतर अपनी किसी मानसिक कमजोरी को ही छिपाना है। स्वराज्य मिलने पर गांधीजी हिमालय के किसी शिखर पर चले जाना पसंद करेंगे, न कि वस्तुतः विदेश विभाग के प्रधान अधिकारी बनना, जैसा फादर जोसेफ ने किया था। गांधीजी का उद्देश्य शक्ति-लिप्सा नहीं है और न किसी केपुचीन व कार्डिनल के व्यक्तियों को मिलाकर वे कोई षड्यंत्र ही रचना चाहते हैं।

गांधीजी को निकट से जाननेवाला प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि वे उस व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा से रहित हैं जिससे स्वयं फादर जोसेफ भी मुक्त न था और उस अप्रत्यक्ष आकांक्षा से भी, जो किसी सम्प्रदाय, राष्ट्र या दूसरे व्यक्ति की तरफ से होती है। यह दूसरे प्रकार की महत्वाकांक्षा कलुषित होते हुए भी मनुष्य को धोखे में डाले रहती है। फादर जोसेफ को केथलिक सम्प्रदाय, फ्रांस और रिचल्यू की तरफ से महत्वाकांक्षा थी—ऐसी महत्वाकांक्षा जिसके कारण एक तरफ तो वह ईर्ष्या, प्रभुता और अभिमान का उपभोग करता रहे और दूसरी तरफ यह भी अनुभव करता रहे कि वह सिर्फ ईश्वर की मर्जी से ही ऐसा कर रहा है। फादर जोसेफ की तरह गांधीजी सत्पुरुषों को दो तरह के वर्गों में नहीं बांट देते—एक तो ईश्वर की दृष्टि से अच्छे और

दूसरे, मनुष्य की दृष्टि से अच्छे। पहले वर्ग के मनुष्य अपने विरुद्ध किये जानेवाले पाप को तुरंत भुला देते हैं और दूसरे वर्ग के मनुष्य-समाज के विरुद्ध किये जानेवाले पापों का बदला चुकाने में अपनी तमाम ताकत लगा डालते हैं। गांधीजी को न तो दरबार के षड्यंत्रों को रोकना है और न बड़ों-बड़ों के बीच सुलह कराना है। यह सच है कि गांधीजी नैसर्गिक प्रेरणा तथा दैवी मार्ग-प्रदर्शन में विश्वास रखते हैं और यह भी मानते हैं कि कुछ कार्यक्रम उन्हें ईश्वरीय प्रेरणा से प्राप्त हुए हैं। लेकिन गांधीजी के दिमाग में फितूर नहीं उठा करते, जैसे फादर जोसेफ के दिमाग में उठा करते थे और जिन्हें वह ईश्वरीय प्रेरणा कहकर अधिक उपहासास्पद बनाया करता था। आशा की जाती है कि मि० एमरी भारत के युवकों से नया विज्ञान तैयार करने और नये दर्शन का विकास करने के अतिरिक्त मंदिरों तथा गिरजाघरों से ईश्वर को निकाल बाहर करने की मांग नहीं करेंगे।

गांधीजी फादर जोसेफ की तरह विस्तृत क्षेत्र में पत्र-व्यवहार अवश्य करते हैं, किन्तु इसलिए नहीं कि शत्रु की कोई गुप्त बात मालूम हो जाय, बल्कि यह जानने के लिए कि अन्य लोगों के जीवन में सत्य का प्रभाव कहां पड़ता है और कहां नहीं। गांधीजी गुप्तचर पुलिस के प्रधान की तरह कार्य नहीं करते और न दूसरे के रहस्यों का पता लगाने के लिए फादर जोसेफ की तरह धन पानी की तरह बहाते हैं। फादर जोसेफ के सम्बन्ध में हक्सले ने लिखा है—'वह एक ऐसे सम्प्रदाय का पादरी था, जिसमें अपने पंथ की सेवा करने और मानव-समाज की उन्नति के लिए प्रयत्नशील रहने की शपथ लेनी पड़ती थी, किन्तु फादर जोसेफ अपनी समस्त युक्तियों का उपयोग करके और लूसीफर, मेमन तथा बेलिअल-द्वारा काम में लाये गये प्रलोभनों-द्वारा अपने ईसाई भाइयों को झूठ बोलने, अपने वचन से पलट जाने और विश्वासघात करने के लिए मजबूर करता था। अपने राजनीतिक कर्तव्य का पालन करने के लिए उसे वे सब शैतानी कृत्य करने पड़ते थे, जिनसे बिल्कुल विपरीत कार्य करने को शपथ एक पादरी के रूप में वह ले चुका था।" गांधीजी धर्म और राजनीति को पृथक् नहीं मानते। उनके विचार से राजनीति धार्मिक आदर्शों पर आधारित होती है और धर्म की सिद्धि राजनीतिक साधनों-द्वारा सम्भव है। इस प्रकार धर्म और राजनीति किसी सिक्के की सीधी और उलटी सतहें हैं। गांधीजी किसी उद्देश्य और उसे प्राप्त करने के साधन में भेद नहीं करते। फादर जोसेफ को साधन की पर्वाह न थी और वह सिर्फ उद्देश्य का ही ध्यान रखता था। गांधीजी कहते हैं कि यदि साधन का ध्यान रखा जाय तो उद्देश्य की जिम्मेदारी हमारे ऊपर नहीं रह जाती।

इन दोनों व्यक्तियों के चरित्रों का हम जितना ही अध्ययन करते हैं उनके बीच का अंतर उतना ही भारी होता जाता है। कहा गया है कि 'पेरिस और रेटिसबन दोनों ही नगरों में फादर जोसेफ इतना बदनाम हो चुका था कि विदेश-मंत्री नियुक्त होने के बाद, दरबार से जो वह प्रति सप्ताह गैरहाजिर रहता था, इसे उस समय के लोग ठीक नहीं मानते थे। कानाफूसी होती थी कि जिस समय उसे गिरजे में पादरियों के मध्य रहना चाहिए उस समय वह भेष बदलकर नगर में चक्कर लगाया करता था, रिचल्यू की तरफ से जासूसी किया करता था और ऐसे लोगों से मिला करता था जिनसे रात के अंधेरे में किसी गली के मोड़ पर या किसी सराय में ही मिला जा सकता था।" एक गांधी तपस्वी है और दूसरा कुछ और—यह नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार के व्यवहार की उम्मीद और चाहे जिस व्यक्ति से की जा सके, गांधी से नहीं।

अपने जीवन के अंतिम काल में फादर जोसेफ ने अपने एक पत्र में इस बात पर पश्चात्ताप

किया कि ईश्वर की सेवा से विमुख होकर वह पथभ्रष्ट क्यों हुआ? पत्र के अंत में वह लिखता है.--"अब तो मैं विश्वास करने लगा हूं कि दुनिया एक कहानी है और हमारे मूर्तिपूजकों व तुर्कों में कोई भेद नहीं है।" इसके अपनी पुस्तक के अंतिम भाग में लिखता है—"इन पश्चात्ताप-भरे शब्दों को पढ़कर खयाल होने लगता है कि अंत में यह दुखी व्यक्ति अपनी मुक्ति होने में ही संदेह करने लगा था। और इस सब के बावजूद उसे फ्रांसीसी शाही घराने की सेवा के लिए वही घृणित कार्य—यूरोप भर में दुर्भिक्ष, आदमखोरी तथा अवर्णनीय अत्याचार फैलाने का काम करना पड़ा। उसे फिर उन्हीं चिन्ताओं के बीच रहना पड़ा, जिन्होंने उसे यथार्थता के स्वप्न से दूर जा पटका था। उसे फिर राजा, कार्डिनल, राजदूत, गुप्तचर के बीच रहना पड़ा, फिर राजनीतिज्ञों के पापमय अनाचारों में आना पड़ा—फिर एक ऐसी दुनिया में, जिसे वह एक कहानी, एक स्वप्न के रूप में जान चुका था, और शक्ति के संघर्ष में पड़ना पड़ा। उसे फिर पागलों के दो ऐसे दलों के मध्य आना पड़ा, जो समान रूप से बुरे थे और जो हिंसा, धूर्तता, शक्ति और धोखेबाजी के संघर्षों में पड़े हुए थे। और इस प्रकार ईश्वर से विमुख होने के पारितोषिक में उन्होंने उसे एक लाल टोपी देने का वचन दिया था।" गांधीजी फादर जोसेफ के विपरीत दुनिया को एक ही परिवार मानते हैं। वे युद्धों और रक्तपात से घृणा करते हैं। वे अपने विचारों को छिपाकर रखने में असमर्थ हैं और शत्रु तथा मित्र दोनों ही के सामने उन्हें एक ही समान प्रकट करते हैं। उनका जीवन एक खुली पुस्तक के समान है। उनके शब्दों के दोहरे अर्थ नहीं होते। उनके मुख से जो कुछ निकलता है, पवित्र होता है और वे अपने वचन का पालन करते हैं। उनका उद्देश्य अपने देश में राष्ट्रीय भावना का संचार करना रहा है। वे पड़ोसी देशों के प्रति भी कोई बुरा इरादा नहीं रखते। शासन पर धार्मिक प्रभाव डालने के भी वे पक्ष में नहीं हैं। उनके धर्म में मजहब बदलने के लिए कोई स्थान नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति अपने मंदिर, गिरजे या मसजिद में उपासना करने के लिए स्वतंत्र है। परन्तु राष्ट्र को विदेशी शासन के आगे पालतू पशु के समान झुक न जाना चाहिए। व्यक्तियों अथवा समूहों को धार्मिक तथा सांस्कृतिक स्वाधीनता रहने का मतलब यह हुआ कि सम्पूर्ण राष्ट्र आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से एक ही इकाई है और उसकी स्वाधीनता कायम है। यह ठीक ही है कि कोई नौकरशाही, चाहे वह देशी हो या विदेशी, किसी राष्ट्र पर तब तक शासन नहीं कर सकती जब तक कि लोग काहिल न हों। भारत की काहिली और दब्बूपन के ही कारण अंग्रेज नौकरशाही का शासन कायम रहने पाया है। गांधीजी ने भारत की करोड़ों जनता के दब्बूपन, उसकी विनम्र तथा दयनीय संतोषी मनोवृत्ति और उसकी निरीहता का अंत कर दिया है। यही गांधीजी और एमरी का झगड़ा है। एमरी ब्रिटिश भारत में नौकरशाही शासन की शक्ति बढ़ाकर देशी-राज्यों के ५६२ नरेशों को नवजीवन प्रदान करना चाहते हैं। वेस्टफालिया की संधि के बाद प्रशा जर्मनी के शेष १६६ सरदारों पर प्रभुत्व बनाये रहा। ब्रिटेन की राजतंत्र-प्रणाली की शक्ति में अटूट विश्वास रहने के कारण मि० एमरी सिर्फ यही चाहते हैं कि नरेश कहीं आपस में या प्रान्तों के लोगों से न मिल जायँ। फ्रांस के राजाओं की शक्ति क्षीण होने पर १९वीं शताब्दी के अंत तक जर्मन राष्ट्र की एकता का विकास होने लगा। परन्तु रिचल्यू और फादर जोसेफ के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप जर्मनी पर से आस्ट्रिया की प्रभुता का अंत होने पर जर्मनी प्रान्तों का संघ बनने के स्थान पर एक केन्द्रीभूत राज्य बन गया। इसी प्रकार मि० एमरी भी भारतीय संघ के विकास में रोड़ा अटका रहे हैं। जिस प्रकार फादर जोसेफ के प्रयत्नों का परिणाम उलटा हुआ, यानी एक तरफ जर्मन राष्ट्रीयता का विकास और दूसरी तरफ फ्रांसीसी

साम्राज्यवाद का अंत हुआ उसी प्रकार अब भारत में भारतीय राष्ट्रीयता का विकास और ब्रिटिश साम्राज्यवाद का अंत होने जा रहा है। इस प्रकार गांधीजी नहीं, बल्कि स्वयं मि० एमरी ही फादर जोसेफ के पदचिह्नों का अनुसरण कर रहे हैं। गांधीजी की राजनीति शक्ति-लिप्सा न होकर सेवा की राजनीति या हक्सले के शब्दों में 'सतोगुणी' राजनीति है। कहा जा सकता है कि सतोगुणी राजनीति का अब तक किसी भी समाज में बड़े पैमाने पर प्रयोग नहीं किया गया और ऐसी हालत में सन्देह उठ सकता है कि यदि ऐसा प्रयत्न किया गया तो उसे तब तक आंशिक से अधिक सफलता मिलेगी या नहीं जब तक कि सम्बन्धित जन-समाज में से अधिकांश अपने व्यक्तित्व में परिवर्तन नहीं कर लेते। सतोगुणी राजनीति का शक्ति-लिप्सा में भेद यही है कि सतोगुणी राजनीति में हम नैतिकता का ध्यान रखते हुए बहुत बड़े पैमाने पर संगठन करते हैं। यदि इससे भी ठीक माने में देखा जाय तो इस राजनीति में शासन, व्यवसाय, आर्थिक व्यवस्था आदि के विकेन्द्रीकरण का कार्य-क्षमता से मेल करना है, जिससे सम्पूर्ण संघ का कार्य सुगमता से चल सके। ऐसे व्यक्ति को उन उपद्रवों के लिए जिम्मेदार ठहराना, जिनकी वह न तो कल्पना ही कर सकता था और न जिन्हें वह सहन ही कर सकता था, वास्तव में सत्याग्रह, आन्दोलन को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की उपेक्षा कर देना है। १९४२-४३ में जो उपद्रव देखे गये वैसे १९३०, १९३२-३३ या १९४०-४१ के आंदोलनों में नहीं देखे गये थे। अक्सर कहा जाता है कि गांधीजी को अनुमान कर लेना चाहिए था कि उनके आन्दोलन का क्या परिणाम होगा। १९२२ के फरवरी मास में जब जनता की हिंसापूर्ण मनोवृत्ति का परिचय चौरी-चौरा कांड के रूप में मिला था तो गांधीजी ने गुजरात के बारदोली और आनन्द ताल्लुकों में गुजरात के आन्दोलन को चलाने का विचार त्याग दिया था। उस समय के बाद ऐसे कितने ही सफल आन्दोलन हो चुके हैं, जिनमें हिंसा से बिल्कुल ही काम नहीं लिया गया। इनके उदाहरण हैं गुजरात में बारदोली का करबन्दी आन्दोलन और उत्तरी कनाड़ा के सिरसी तथा सिद्दापुर ताल्लुकों का करबन्दी आन्दोलन, यह पिछला आन्दोलन १९३०-३१ के नमक-सत्याग्रह का एक अंग था। एक सावधान तथा अनुभवी व्यक्ति के रूप में गांधीजी को इस आन्दोलन के सम्बन्ध में, जो न तो आरम्भ ही हुआ था और जिसे न होने देने के लिए गांधीजी हर तरह की कोशिश करने को तैयार थे, अहिंसा की आशंका बिल्कुल ही न थी। हुआ सिर्फ यही कि सत्याग्रह-आन्दोलन की चर्चा संसार के आगे आते ही मि० एमरी ने सोचा कि पैरों के निकट जो जन्तु रेंग रहा है उसे तमाम ताकत से कुचल दिया जाय। मि० एमरी सामूहिक गिरफ्तारियों तथा आर्डिनेंसों के द्वारा जन्म से पहले ही आन्दोलन का गला घोंट देना चाहते थे। सच तो यह है कि अपने कार्यों के परिणामस्वरूप हुई बुराइयों का अनुमान मि० एमरी को पहले ही कर लेना चाहिये था, क्योंकि इनके लिए वही जिम्मेदार थे। राजनीतिज्ञ को जो कुछ करना होता है वह करता है, किन्तु हक्सले के विचार से उन कार्यों के सम्बन्ध में मत स्थिर करना इतिहासकार का काम है। उनके शब्दों में "किसी परिस्थिति के विषय में कोई मत स्थिर करते समय पिछले कार्यों और उनके परिणामों-सम्बन्धी लेखों को देखना आवश्यक हो जाता है।" अनियंत्रित दमन तथा अत्याचार के ऐसे परिणाम होते हैं, जिनका समर्थन कोई भी समझदार व्यक्ति नहीं करेगा। मि० एमरी कार्य और कारण के सम्बन्ध की अज्ञानता की दलील नहीं दे सकते। यह आयर्लैंड में हो चुका है। इससे पहले अमरीका में भी यही हुआ है। भारत में आन्दोलन को अहिंसात्मक बनाने के लिए जिस सावधानी से काम लिया गया था, वह अधिकारियों की हिंसा के सामने व्यर्थ सिद्ध हुई।

मि० एमरी जो कुछ हैं उसे देखते उनके द्वारा गांधीजी की फादर जोसेफ से तुलना किये जाने में अचरज की कुछ भी बात नहीं है। राजनीतिज्ञ होने के अतिरिक्त वे एक ऐसे कारबारी व्यक्ति भी हैं, जो गांधीजी के चरित्र की साधुता और उनकी अपने को मिटा देने की मनोवृत्ति को किसी तरह नहीं समझ सकते। जिसका तमाम जीवन कम्पनियां खड़ी करने, दौलत इकट्ठी करने और शक्ति का भण्डार एकत्र करने में बीता हो, वह यदि नैतिक विषयों को न समझ सके तो इसमें किसी को आश्चर्य नहीं होना चाहिये। मन्त्री होने से पूर्व ६६ वर्षीय राइट आनरेबुल लिओपोल्ड चार्ल्स मारिस स्टेनेट एमरी, एम० पी० ब्रिटिश टेबुलेटिंग मशीन कम्पनी लिमिटेड, कैमल लैंड कम्पनी लिमिटेड, फांटे कंसालिडेटेड इन्वेस्टमेंट कम्पनी लिमिटेड, ग्लाउसेस्टर रेलवे करिज एंड वैगन कम्पनी लिमिटेड, इंडस्ट्रियल फाइनेंस एंड इनवेस्टमेंट कम्पनी लिमिटेड, सदर्न रेलवे, साउथ-वेस्ट अफ्रीका कम्पनी, ट्रस्ट एंड लोन आफ कनाडा, तथा गुडइयर एंड रबर कम्पनी संस्थाओं के डाइरेक्टर थे। योग्य, निर्भय और प्रतिक्रियावादी होते हुए मि० एमरी इतने प्रभावोत्पादक वक्ता कैसे हो सके हैं यह एक असाधारण बात है। आपका कद नाटा है और स्वभाव कुछ नीरस है। आपकी दूसरों को परेशान करनेवाली एक विशेषता यह भी है कि आप महत्वपूर्ण बातों के साथ विस्तार की क्षुद्र-से-क्षुद्र बात को भी पूरा महत्व देना चाहते हैं। आप सरकार में पूंजीपतियों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

मेजर एटली ने कांग्रेस पर तानाशाही का जो आरोप लगाया है उसकी जांच होनी आवश्यक है। राजनीति में तानाशाही का यह मतलब होता है कि राजनीतिज्ञ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, जिसमें धर्म भी सम्मिलित है, अनुशासन तथा समानता चाहता है। यह मनोवृत्ति औद्योगिक सभ्यता तथा शक्ति-लिप्सा के कारण उत्पन्न हुई है। कांग्रेस अपने सदस्यों से ४ आने की फीस एक वर्ष के लिए लेती है और उनके हस्ताक्षर "शांतिपूर्ण तथा जायज उपायों द्वारा स्वराज्य की प्राप्ति"—अपने मुख्य सिद्धांत के नीचे करा लेती है। कांग्रेस चाहती है कि इन दोनों शर्तों का पालन वह कड़ाई से करा सके तो कराये। कांग्रेस की कार्यसमिति के सदस्यों के लिए कताई तथा साधारण सदस्यों के लिए खादी पहनना अनिवार्य नहीं है। कार्यसमिति के सदस्यों के लिए हाथ से कता और हाथ ही से बुना वस्त्र पहनना आवश्यक है, जिससे कि मरते हुए खादी-उद्योग में नवजीवन का संचार हो सके। कांग्रेस-समितियों में विदेशी व्यापार करनेवाले कारबारी और मिल-मालिक रहे हैं और वकील, डाक्टर आदि भी रहे हैं। सिर्फ साम्प्रदायिक संस्थाओं के सदस्यों को ही कांग्रेस समितियों से अलग रखा गया है। कांग्रेस में आने पर किसी को भी रोक नहीं है। कांग्रेस के सदस्य ईश्वर में विश्वास, उपासना के ढंग तथा धार्मिक विश्वास के सम्बन्ध में स्वतन्त्र हैं। मेजर एटली कांग्रेस को तानाशाही संस्था शायद इसलिए मानते हैं, कि कांग्रेस-कार्यसमिति प्रांतीय मंत्रि-मण्डलों को नशाबन्दी, ऋणों में कमी करने तथा किसानों को ज़मीन-सम्बन्धी अधिकार देने के सम्बन्ध में कानून पास करने को कहता है। क्या कुछ वर्ष तक लोकप्रिय मंत्रिमण्डलों का मार्ग-प्रदर्शन करना बुरा है? परन्तु मेजर एटली कांग्रेस को तानाशाही संस्था कहने के लिए जो मजबूर हुए हैं उसका मुख्य कारण युद्ध छिड़ने के समय कांग्रेसी-मन्त्रि-मण्डलों का इस्तीफा देना है। वे यही पसन्द करते कि भारत के खुद गुलाम रहने पर भी उसके मंत्रि मण्डल युद्ध-प्रयत्नों में भाग लेते रहते। खाद्य-समस्या चाहे जितनी कठिन होती, चाहे यूनाइटेड किंगडम कमर्शिल कारपोरेशन व्यापार करता होता, चाहे ग्रेडी-कमीशन की रिपोर्ट को रद्दी की टोकरी में फेंक दिया जाता, कीमतें चाहे जितनी चढ़ जातीं, चाहे लोग बिना हथियारों के ही बने रहते,

चाहे भारत भर में तन ढकने के लिए वस्त्र न मिलता और किसी को बड़े उद्योग न चलाने दिया जाता, फिर भी हमारे मन्त्री सैनिक भर्ती करते रहते, युद्ध के लिए धन-संग्रह करते रहते, देश-भक्तिपूर्ण कार्य करनेवाले या सार्वजनिक बुराइयों पर प्रकाश डालनेवाले अपने देशभाइयों को जेलों में बन्द करते रहते और भीड़ों पर बंदूकों तथा मशीनगनों से गोलियां चलवाते रहते। लोकप्रिय मन्त्रि-मण्डल एक इज्जतदार संस्था का प्रतिनिधित्व करते थे और वे यह गन्दा कार्य कभी नहीं कर सकते थे। और तभी राजनीतिक अड़ंगा उत्पन्न हुआ। इसके अतिरिक्त मि० एमरी अपने उसी भाषण में उन लोगों को, जो देश में इतने दुःख और दर्द के लिए जिम्मेदार थे, राजनीति में भाग लेने देने से पूर्व उनसे स्पष्ट तथा सुनिश्चित आश्वासन चाहते थे। वाइसराय चाहते थे कि बम्बई का प्रस्ताव वापस लिया जाय, हिंसा की निन्दा की जाय और ऐसा आश्वासन दिया जाय जो सरकार को मंजूर हो। ये आश्वासन या गारंटियां क्या हो सकती थीं? ये वैसी ही गारंटियां थीं जैसी पुराने अपराधियों से ली जाती हैं, जैसे निर्धारित समय तक अच्छा चाल-चलन रखने के लिए भारी रकमों की जमानतें जमा करना और इन ज़मानतों पर उन धनी उद्योगपतियों के हस्ताक्षर लेना, जो प्रधान मन्त्री के मतानुसार छिपे रूप से रुपया देकर कांग्रेस की सहायता करते हुए राजनीति में अवांछनीय रूप से हस्तक्षेप कर रहे थे। इस प्रकार जब भारत के लिए स्वराज्य के वचनों तथा घोषणाओं को— जो स्वतंत्रता, वेस्ट मिंस्टर कानून के अंतर्गत औपनिवेशिक पद, साम्राज्य से पृथक् होनेका अधिकार तथा युद्ध चलाने के अतिरिक्त राष्ट्रीय सरकार को पूरी सत्ता सौंपने आदि को स्पर्श करती थीं—पूरा करने का वक्त आया तो परिणाम क्या हुआ—वही शून्य तथा नकारात्मक दमन की नीति। इन वचनों को पूरा करने में जिन कठिनाइयों का बहाना किया गया उनमें समझौता न हो सकना, अल्पसंख्यकों तथा रियासतों की समस्याएं और सबसे अधिक संघ-विधान को स्वीकार करने अथवा उसमें सम्मिलित होने पर मुसलमानों की आपत्ति मुख्य थी। इस प्रकार एक ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी, जिसमें आगे बढ़ना या पीछे हटना बिल्कुल असम्भव हो गया। यह स्थिति कांग्रेस द्वारा राष्ट्रीय मांग की पूर्ति के लिए चलाये जानेवाले सत्याग्रह-आन्दोलन के कारण नहीं, बल्कि अंग्रेजों-द्वारा भारत को उसकी मर्जी के बिना युद्ध में फंसा देने के कारण उत्पन्न हुई। लड़ाई के इस आधार को कोई भी इज्जत-दार राष्ट्र मंजूर नहीं कर सकता था। जब युद्ध के उद्देश्यों की व्याख्या करने की मांग की गई और जब यह व्याख्या नहीं की गई तो कांग्रेसी-मंत्रिमंडलों ने अक्तूबर, १९३९ में इस्तीफा दे दिया। तब मुसलमानों का यह तर्क सामने लाया गया कि वे किसी प्रकार के संघ-विधान को स्वीकार न करेंगे। ब्रिटिश सरकार की तरफ से कहा गया कि विभिन्न दलों तथा वर्गों में समझौता होना चाहिए और समझौता न होने तक कोई कदम आगे न बढ़ाने का निश्चय उसने किया। कांग्रेस ने केवल अपनी भाषण-स्वतन्त्रता कायम रखने के लिए व्यक्तिगत सत्याग्रह आरम्भ कर दिया। १८ महीने बाद जब क्रिप्स भारत आये तो उन्होंने स्पष्ट कर दिया कि कांग्रेस और लीग में समझौता होने की हालत में भी रक्षा-विभाग न दिया जायगा। सत्य पर उस समय और भी प्रकाश पड़ा जब सरकार की इस बात को भी मान लिया गया। तब मंत्रिमंडल के संयुक्त उत्तरदायित्व को नहीं माना गया और क्रिप्स के मुंह से 'केबिनेट' शब्द फिर कभी नहीं सुना गया और उसका स्थान "एग्जीक्यूटिव कौंसिल" ने ले लिया। सर स्टैफर्ड क्रिप्स के इंगलैंड चले जाने पर गवर्नर-जनरल की शासन-परिषद् के भारतीय सदस्यों की संख्या बढ़ाकर ११ कर दी गयी। किन्तु पद-ग्रहण करने के १५ दिन के भीतर ही सर सी० पी० रामस्वामी अय्यर के इस्तीफा देने से एक की कमी

हो गयी। एक अन्य स्थान सर रामस्वामी मुदालियर के युद्ध मंत्रिमंडल का सदस्य होकर चले जाने के कारण और भी खाली रहा। इससे एक मनोरंजक कहानी याद आ जाती है, जिसमें एक व्यक्ति ने पंच-पांडवों की संख्या जानने का दावा किया था। उसने संख्या चार बताई, किन्तु यह प्रकट करने के लिए उंगलियां केवल ३ ही दिखायीं, फिर दो उठाई और फिर एक दिखाई और अंत में भूमि पर शून्य खींच दिया। ऐसी एक दूसरी कहानी भी है। एक आदमी के दूसरे पर १०० रुपये उधार थे। चुकाने के समय उसने केवल ६० देने का वचन दिया और इस ६० में से आधी रकम यानी ३० रु० की छूट मांगी। जो ३० बचे उनमें से १० उसने एक मित्र से दिलाये, १० खुद देने का वचन दिया और १० माफ करा लिये। भारत का राजनीतिक अड़ंगा एक दुखद मजाक है, जिसके कारण देश अपना धीरज और साधन दोनों ही गंवा चुका है। पिछले आन्दोलनों के समय डा० सप्रू और श्री जयकर सुलह के कार्य में हिस्सा लेते थे। यह सभी जानते हैं कि बड़ी कठिन परिस्थिति में उन्होंने गांधी-अरविन-वार्ता को भंग होने से बचाया था। परन्तु इस अवसर पर वे भी चुप रहे। निर्दल-नेताओं का जो सम्मेलन व्यक्तिगत सत्याग्रह के दिनों में डा० सप्रू के नेतृत्व में हुआ था वह भी एक या दो बार के अलावा पृष्ठभूमि में ही रहा और इस एक या दो बार उसके प्रयत्नों को भी अन्य संस्थाओं तथा व्यक्तियों की तरह नाकामयाबी ही मिली। फिर भी यह सार्वजनिक रूप से मंजूर करना चाहिए कि डा० सप्रू ने सदा राष्ट्र के आत्म-सम्मान का ध्यान रखा और अपने कार्य तथा राष्ट्र दोनों ही की मर्यादा की रक्षा की। उनके विवेकपूर्ण तथा अधिकारयुक्त शब्दों का उल्लेख हम एक बार फिर उसी तरह करेंगे, जिस तरह फरवरी-मार्च १९४३ में गांधीजी के अनशन के समय उनके कथन का हवाला हम दे चुके हैं। अखिल भारतीय कांग्रेस के बम्बईवाले प्रस्ताव के पास होते ही भारतीय राजनीति के क्षेत्र में एक नये चरित्र का पदार्पण हुआ। यह नया व्यक्ति वास्तव में एक पुराना कांग्रेसजन और सत्याग्रही ही था, जो १९२१, १९३०, १९३२ (दो बार) और १९४०-४१ में जेल जा चुका था। परन्तु अगस्त १९४२ में उसने बिलकुल भिन्न रुख लिया। सच तो यह है कि उसका मतभेद गांधीजी से कुछ पहले का था। जुलाई, १९४० में पूना में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में जो प्रस्ताव पास हुआ था उसके लिए भी वही उत्तरदायी था। इस बैठक में गांधीजी उपस्थित नहीं थे। पूना में जो-कुछ हुआ उस पर बम्बई (अगस्त, १९४०) की कार्रवाई ने स्याही पोत दी और व्यक्तिगत सत्याग्रह का रास्ता खुल गया। हमारे ये मित्र श्री सी० राजगोपालाचार्य हैं। अक्तूबर १९४० में व्यक्तिगत सत्याग्रह का कार्यक्रम पूरा करते हुए श्री राजगोपालाचार्य ने युद्ध विषयक नारा लिखकर सरकार के पास भेजने का मार्ग नहीं लिया, जिसकी गांधीजी और कांग्रेस-कार्यसमिति ने सिफारिश की थी। इसके विपरीत, उन्होंने युद्ध-समितियों के सदस्यों को इस्तीफा देने और युद्ध-प्रयत्न में भाग न लेने को लिखा था। इस प्रकार गांधीजी के द्वारा बतायी दिशा में जाते हुए भी उन्होंने अपना अलग रास्ता बना लिया था। उन्होंने नवम्बर, १९४१ में व्यक्तिगत सत्याग्रह-आन्दोलन खत्म करने के लिए महात्मा गांधी को राजी किया था, जिसका परिणाम था बारदोली का प्रस्ताव। उस दिन से इलाहाबाद की भेंट तक उनका गांधीजी से मतभेद ही रहा। इलाहाबाद में उन्हें अपने विचारों के कारण कार्यसमिति से इस्तीफा देना पड़ा और जुलाई के दूसरे सप्ताह में वे कांग्रेस से ही अलग हो गये। इस तरह अगस्त, १९४२ में वे बम्बई में न थे। परन्तु सी० राजगोपालाचार्य अशान्त और क्रियाशील व्यक्तित्व के हैं और गांधीजी की गिरफ्तारी के दिन उन्होंने कांग्रेस और सरकार की नीति के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये। गांधीजी कार्यसमिति से जिस मार्ग का

अनुसरण करने को कहनेवाले थे उसके विरुद्ध श्री राजगोपालाचारी ने बम्बई की बैठक से पहले भी उन्हें लिखा था।

राजनीतिक अड़ंगे को दूर करने के लिए जो भी प्रयत्न किया गया असफल हुआ। हिन्दुस्तान के अखबारों में ज्यादातर कांग्रेस के समर्थक हैं, लेकिन उनके किये कुछ न हुआ। ब्रिटेन में जो प्रगतिशील व्यक्ति थे उनकी राय नक्कारखाने में तूती की आवाज के समान थी। ब्रिटेन और अमरीका की मैत्री की विशाल चट्टान से भारत-हितैषी अमरीकियों की सहानुभूति भी सिर पटक-पटक कर रह गई। फिर भी मनुष्य का दिल नहीं मानता। प्रकृति के नियम के समान राजनीति में भी खाली स्थान नहीं रहता। इस खाली स्थान को भरने के लिए देश के बड़े-बड़े नेता दौड़ पड़े। युद्ध छिड़ने के समय से उनके सम्मेलन दो बार हो चुके थे और अब की बार सरकार पर जोर डालने के लिए वे अन्तिम प्रयत्न करना चाहते थे। परन्तु हमारे ये माडरेट दोस्त यह महसूस नहीं करते थे कि उनके प्रति सरकार की नीति ऐसी ही है, जैसी गन्ना चूसकर उसका बचा भाग फेंक देने की होती है। फिर भी अखिल भारतीय नेता हिम्मत करके ६ मार्च को एक सम्मेलन में मिले। उसका नतीजा बहुत ही दिलचस्प और सबक सिखानेवाला हुआ।

अखिल भारतीय नेता-सम्मेलन ने निम्न वक्तव्य निकाला :—

'हमारा मत है कि पिछले कुछ महीने की घटनाओं को मद्देनजर रखते हुए सरकार और कांग्रेस को अपनी नीति पर फिर से विचार करना चाहिए। हम में से कुछेक को गांधीजी से हाल ही में जो बातचीत करने का मौका मिला है उस के कारण हमारा विश्वास है कि इस समय सुलह की बातें जरूर कामयाब होंगी। हमारी तरफ से वाइसराय से अनुरोध किया जाना चाहिए कि वे हमारे कुछ प्रतिनिधियों को गांधीजी से मिलने की अनुमति प्रदान करें ताकि हाल की घटनाओं के सम्बन्ध में वे उन की प्रतिक्रिया का प्रमाणित विवरण प्राप्त करके समझौता कराने का प्रयत्न कर सकें।''

इस वक्तव्य पर ३५ नेताओं के हस्ताक्षर थे जिन में सर तेजबहादुर सप्रू, श्री एम० आर० जयकर, श्री भूलाभाई देसाई, श्री सी० राजगोपालाचारी और सर जगदीश प्रसाद के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

बम्बई-प्रस्ताव के सम्बन्ध में एक प्रश्न का उत्तर देते हुए भारत-मंत्री मि० एमरी ने पार्लीमेंट में कहा:—''बम्बईवाले सम्मेलन की विशेषता को मैं भली-भांति जानता हूं'' और उन्होंने प्रश्न का उत्तर एक सप्ताह के भीतर देने का वचन दिया। आशा की जाती थी कि आवश्यक अनुमति मिल जायगी। परन्तु उसकी जगह अप्रैल में वाइसराय का एक लम्बा उत्तर मिला, जिसमें अनुमति देने से इंकार कर दिया गया।

तब वाइसराय के पास एक डेपुटेशन ले जाने का फैसला किया गया। वाइसराय ने १ अप्रैल को चार प्रतिनिधियों के एक डेपुटेशन से मिलना स्वीकार कर लिया, लेकिन साथ ही उन्होंने एक आवेदनपत्र भी भेजने का अनुरोध किया। डेपुटेशन को सूचित किया गया कि डेपुटेशन से अपना आवेदनपत्र पढ़ने को कहा जायगा और फिर वाइसराय अपना उत्तर पढ़ देंगे। दूसरे शब्दों में, इस प्रश्न पर कोई बातचीत न होगी। यह सूचना मिलने पर डेपुटेशन ने स्वयं उपस्थित होने की आवश्यकता न समझी और वाइसराय को सूचित भी कर दिया। वाइसराय ने पहली अप्रैल को आवेदनपत्र का उत्तर भी दे दिया। मि० एमरी ने बाद में कहा कि डेपुटेशन इस शर्त पर वाइसराय से मिलने को तैयार था, किन्तु श्री के० एम० मुंशी ने, जो हाल की घटनाओं से

परिचित थे, पत्रों को सूचित किया कि उन्हें इस कार्य-विधि की सूचना २६ मार्च को मिली थी।

नेताओं के आवेदनपत्र का उत्तर देते हुए वाइसराय ने कहा:—

"...मैं पहले ही बता चुका हूं कि गांधीजी या कांग्रेस की तरफ से मस्तिष्क या हृदय के परिवर्तन का कोई सबूत अभी या पहले नहीं मिला है। अपनी नीति त्यागने का अवसर उन्हें पहले भी था और अब भी है। आप के अच्छे इरादों तथा समस्या के सफल निबटारे के लिए आप की चिन्ता की क़द्र करते हुए भी गांधीजी व कांग्रेसी नेताओं से मिलने की विशेष सुविधा मैं आप को तब तक नहीं दे सकता जब तक परिस्थिति वैसी बनी हुई है जैसी ऊपर बतायी जा चुकी है।

"यदि दूसरी तरफ गांधीजी पिछले अगस्तवाले प्रस्ताव को रद्द करने और हिंसा के लिए उत्तेजक अपने शब्दों-जैसे 'खुला विद्रोह' वगैरह की, कांग्रेसी अनुयायियों को दी गयी 'करो या मरो' सलाह की और अपने इस कथन की कि नेताओं के हट जाने पर नेता स्वयं ही निर्णय करें, निंदा करने को तैयार हों और साथ ही कांग्रेस और गांधीजी भविष्य के लिये ऐसा आश्वासन देने को तैयार हों, जो सरकार को मंजूर हो, तो इस विषय पर आगे विचार किया जा सकता है।......"

इस प्रकार अखिल भारतीय नेताओं द्वारा गांधीजी से सम्बन्ध स्थापित करने के सभी प्रयत्न बेकार सिद्ध हुए।

यह कोई नहीं कह सकता कि श्री राजगोपालाचार्य ने श्री जिन्ना से दो बार बातें करने के बाद जब समझौता होने की आशा दिलाई उस समय उनके पास क्या गुप्त योजना[1] थी। नेता-सम्मेलन के समय समझौते की जो आशा उठी थी, उस पर वाइसराय ने बाहरी नेताओं को गांधीजी से मिलने की अनुमति न दे कर पहले ही तुषारपात कर दिया। किन्तु राजाजी का उत्साह इतने पर भी कम न हुआ और उन्होंने १० मार्च को सर्वदल नेता-सम्मेलन का आयोजन किया। पर इस बार भी नेताओं को गांधीजी से मुलाकात करने की अनुमति नहीं प्राप्त हुई। इसमें कोई शक नहीं कि यह सब किसी भ्रम के कारण हो रहा था। राजाजी शायद यही खयाल करते थे कि समस्या का हल पाकिस्तान की गुत्थी को सहानुभूतिपूर्वक सुलझाने से हो सकता है। पाकिस्तान के विचार को मि० जिन्ना ने कोई शक्ल नहीं दी थी, पर राजाजी कुछ अधिक स्पष्टता से सोचने लगे थे। पाकिस्तान का आधार 'दो राष्ट्र वाला सिद्धान्त' था, जिसे राजाजी ने मंजूर कर लिया था। राजाजी का खयाल था कि पाकिस्तान को जैसे ही माना गया वैसे ही बाकी परिणाम अपने आप निकल आवेंगे। १२ अप्रैल को बंगलौर में मुहम्मद साहब के जन्म-दिवस पर

---

[1]उस समय श्री राजगोपालाचार्य ने श्री जिन्ना से समझौता होने के सम्बन्ध में जिस विश्वास की भावना का परिचय दिया था उसका कारण वह गुर था, जिसे उन्होंने अनशन खत्म होने के समय गांधीजी को दिखाया था और जिस पर उनकी अनुमति ले ली थी। बाद में राजाजी ने यह रहस्य सार्वजनिक रूप से प्रकट भी किया था। गांधीजी की अनुमति मिलने के ही कारण उन्हें विश्वास हो चला था कि पाकिस्तान-योजना के सम्बन्ध में वे कोई उपयोगी सुझाव उपस्थित कर सकेंगे। इस विषय की विस्तृत बातों की चर्चा हम गांधीजी के जेल से छोड़े जाने के बाद सितम्बर १९४४ की घटनाओं का अध्ययन करते समय करेंगे।

राजाजी ने पाकिस्तान के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये। आप ने कहा कि राजनीतिक अड़ंगे को दूर करने का तरीका पाकिस्तान को मान लेना है और यह भी कहा कि पाकिस्तान हिन्दुओं के सामने उसकी इतनी डरावनी शक्ल में रखा गया है कि वे उससे अनावश्यक रूप से भयभीत हो गये हैं। आपने आगे कहा:—

"मैं पाकिस्तान का इसलिए समर्थक हूं कि मैं ऐसे राज्य की स्थापना नहीं चाहता जिस में हिन्दू और मुसलमान दोनों ही का सम्मान न किया जाता हो। मुसलमानों को पाकिस्तान ले लेने दो। यदि हिन्दू-मुसलमानों में समझौता हो जाता है तो देश की रक्षा हो जायगी...यदि अंग्रेजों ने और कोई कठिनाई उठाई तो हम उस पर भी विजय प्राप्त कर लेंगे।...मैं पाकिस्तान का समर्थक हूं, किन्तु मेरे खयाल में कांग्रेस पाकिस्तान को नहीं मानेगी।...कांग्रेस के बाग में फूल लगे हुए हैं, किन्तु बाग के फाटक बंद हैं और मुझे निकट जाकर इन्हें चुनने नहीं दिया जाता।"

अखिल भारतीय मुस्लिम लीग का २४ वां अधिवेशन दिल्ली में १६४३ के ईस्टर-सप्ताह में हुआ था और श्री जिन्ना उसके अध्यक्ष थे। श्री जिन्ना ने अपने भाषण में गांधीजी से अपने को पत्र लिखने का अनुरोध किया था। मि० जिन्ना का यह भाषण बहुत लम्बा था और केवल उस का संक्षेप ही पत्रों में प्रकाशित हुआ था। बाद में मि० जिन्ना ने शिकायत की थी कि ब्रिटिश पत्रों ने उन के भाषण के संक्षिप्त विवरण पर ही अपना मत प्रकट किया है। मि० जिन्ना ने अपने भाषण में कहा था:—

"ब्रिटिश सरकार सभी की उपेक्षा करने की जो नीति बर्त रही है उस से लड़ाई में कामयाबी हासिल नहीं की जा सकती। यह बात जितनी ही जल्दी महसूस कर ली जाय उतनी ही जल्दी इसमे सभी का लाभ होगा। यदि लड़ाई में हमारी हार होती है तो वह इस देश में सरकार की गलत नीति के कारण होगी। भारत की खाद्य-स्थिति, आर्थिक अवस्था तथा मुद्रा-प्रबंध बड़ी संकटपूर्ण स्थिति में पहुंच चुके हैं और इस विषय में सरकार की हाथ-पर हाथ रख कर बैठ रहने की नीति से उस युद्ध-प्रयत्न को हानि पहुंच सकती है, जो लड़ाई में जीत हासिल करने के लिए अत्यावश्यक है।

मुसलिम लीग की नीति में सच्ची परिस्थिति का खयाल रखा गया है। मुझे यह देखकर ताज्जुब हुआ है कि ब्रिटेन के समाचारपत्रों ने "दल के लिए चाल चलने" और "दर्शकों को खुश करने" वगैरहः लफ़्जों का इस्तेमाल किया है। इस से सिर्फ यही जान पड़ता है कि ब्रिटेन को हिन्दुस्तान की वास्तविक स्थिति की जानकारी कितनी कम है।

भाषण का पूरा विवरण दिल्ली के एक अंग्रेजी दैनिक "डॉन' ने, जिस से स्वयं मि० जिन्ना का सम्बन्ध है, प्रकाशित किया था। जहां तक गांधीजी से किये गये अनुरोध का सम्बन्ध है, पूरे विवरण में भी वह उसी तरह दिया हुआ है, जिस तरह वह संक्षिप्त विवरणों में दिया हुआ है। मि० जिन्ना ने कहा था:—

"इसलिए कांग्रेस की स्थिति वैसी ही है, जैसी पहले थी। सिर्फ यह दूसरे शब्दों और दूसरी भाषा में बताई गई है, किन्तु इसका मतलब है अखंड हिन्दुस्तान के आधार पर हिन्दू-राज और इस स्थिति को हम कभी स्वीकार न करेंगे। यदि गांधीजी पाकिस्तान के आधार पर मुसलिम लीग से समझौता करने को तैयार हो जायँ तो मुझ से अधिक और किसी को खुशी न होगी। मैं आप से कहता हूं कि हिन्दू और मुसलमान दोनों ही के लिए वह बड़ा शुभ दिन

होगा। यदि गांधीजी इस का फैसला कर चुके हैं तो उन्हें मुझे सीधा लिखने में दिक्कत ही क्या है? (हर्षध्वनि) वे वाइसराय को पत्र लिख रहे हैं। वे मुझे सीधा क्यों नहीं लिखते? वाइसराय के पास जाने, डेपुटेशन भेजने और उन से पत्र-व्यवहार करने से लाभ ही क्या है? आज गांधी जी को रोकनेवाला कौन है? मैं एक क्षण भी विश्वास नहीं कर सकता—इस देश में यह सरकार चाहे जितनी शक्तिशाली क्यों न हो और हम उसके विरुद्ध चाहे कुछ क्यों न कहें, मैं नहीं मान सकता कि यदि मेरे नाम ऐसा पत्र भेजा जाय तो सरकार उसे रोकने का साहस करेगी। (जोरों की हर्ष-ध्वनि)

"यदि सरकार ने ऐसा कार्य किया तो यह सचमुच बहुत ही गम्भीर बात होगी। परन्तु गांधीजी, कांग्रेस या हिन्दू नेताओं की नीति में परिवर्तन होने का कोई लक्षण मुझे नहीं दिखाई देता।"

यह ऊपर का उद्धरण दिल्ली के 'डॉन' पत्र से लिया गया है।

पाठकों को स्मरण होगा कि जब मि० जिन्ना से गांधीजी के अनशन के दिनों में नेता-सम्मेलन में भाग लेने का अनुरोध किया गया तो उन्होंने यह कहकर सम्मेलन में भाग लेने से इंकार कर दिया था कि गांधीजी ने यह खतरनाक अनशन कांग्रेस की मांग पूरी कराने के लिए किया है और यदि दबाव में आकर इस मांग को स्वीकार कर लिया गया तो इसके परिणाम-स्वरूप मुसलमानों की मांग नष्ट हो जायगी और इस प्रकार सम्मेलन में भाग लेने से भारतीय मुसलमानों के हितों की हानि होगी। गांधीजी ने मि० जिन्ना के भाषण का विवरण समाचारपत्रों में पढ़ते ही उन्हें पत्र लिखने की अनुमति के लिए भारत सरकार को लिखा। पत्र को बाकायदा पूना से बम्बई-सरकार के पास और उसके पास से भारत-सरकार तक पहुंचने में तीन सप्ताह का समय लग गया होगा। मई के अंतिम दिनों में अखबारों में भारत-सरकार की एक विज्ञप्ति प्रकाशित हुई। इससे जनता में बड़ी सनसनी फैल गयी। विज्ञप्ति में यह नहीं बताया गया कि गांधीजी-द्वारा मि० जिन्ना को लिखे गये पत्र में क्या था। उसमें सिर्फ यही कहा गया था कि गांधीजी मि० जिन्ना से मिल कर बड़े प्रसन्न होंगे। भारत-सरकार ने बड़ा निराला और पेचीदा रास्ता अख्तियार किया। उसे या तो गांधीजी का पत्र मि० जिन्ना के पास भेज देना चाहिए था और या उसे रोक लेना चाहिए था। परन्तु सरकार ने इसमें से कुछ भी नहीं किया। सरकार ने यही कहा कि गांधीजी ने इस आशय का अनुरोध किया है, किन्तु दूसरी विज्ञप्ति में बताये गये कारणों से सरकार उस पत्र को मि० जिन्ना के पास भेजने में असमर्थ है। सरकार ने विज्ञप्ति की एक प्रतिलिपि मि० जिन्ना के पास भी भेज दी।

विज्ञप्ति इस प्रकार थी:—

"नई दिल्ली, २६ मई

"भारत-सरकार को गांधीजी से अपना एक पत्र मि० जिन्ना के पास भेजने का अनुरोध प्राप्त हुआ है। इस पत्र में गांधीजी ने मि० जिन्ना से मिलने की इच्छा प्रकट की है।

"गांधीजी से पत्र-व्यवहार तथा मुलाकात के सम्बन्ध में अपनी प्रकट नीति के अनुसार भारत सरकार ने उस पत्र को न भेजने का निश्चय किया है और इसकी सूचना गांधीजी और मि० जिन्ना के पास भेज दी है। सरकार एक ऐसे व्यक्ति को राजनीतिक पत्र-व्यवहार की सुविधा नहीं प्रदान कर सकती, जिसे एक नाजायज सामूहिक आन्दोलन अग्रसर करने के लिए नजरबंद करके रखा गया है—गांधीजी ने इससे इनकार भी नहीं किया है—और इस प्रकार एक संकट काल में

भारत के युद्ध-प्रयत्न को धक्का पहुँचाया है। गांधीजी चाहें तो भारत-सरकार को सन्तोष दिला सकते हैं कि उनके द्वारा देश के सार्वजनिक जीवन में भाग लेने से कोई हानि नहीं होगी, और जब तक वे ऐसा नहीं करते तब तक उनके ऊपर लगाये गये प्रतिबन्धों की जिम्मेदारी खुद उन्हीं पर है।"

गांधीजी के लिखे पत्र को मि० जिन्ना के पास भेजने से इन्कार करने से लन्दन के सरकारी हल्कों में जो प्रतिक्रिया हुई उस पर 'रायटर' के राजनीतिक संवाददाता ने प्रकाश डाला था। उसने लिखा कि "भारत में हुए इस निश्चय का ब्रिटिश-सरकार पूरी तरह समर्थन करेगी। यह सरकारी तौर पर कहा गया कि भारत की हिफाजत और युद्ध सफलतापूर्वक चलाये जाने का महत्व सबसे अधिक होने के कारण गांधीजी या किसी दूसरे नजरबन्द कांग्रेसी नेता को युद्धकाल के दरमियान राजनीतिक बातचीत में भाग लेने की सुविधा तब तक नहीं दी जा सकती जब तक वे युद्ध-प्रयत्न के प्रति असहयोग करने और उसके खिलाफ आन्दोलन करने की नीति का त्याग नहीं करते, या विज्ञप्ति के शब्दों में, जब तक उनके देश के सार्वजनिक जीवन में भाग लेने से हानि का खतरा बना हुआ है।"

इसी नीति के अनुसार राष्ट्रपति रूजवेल्ट के निजी प्रतिनिधि मि० विलियम फिलिप्स, सर तेजबहादुर सप्रू और दूसरे लोगों को गांधीजी से मिलने की इजाजत नहीं दी गयी। भारत-सरकार के इस कार्य के लिए अमरीकी कांग्रेस में दिये मि० चर्चिल के भाषण से और भी प्रकाश पड़ता है।

गांधीजी का पत्र मि० जिन्ना के पास भेजने से इन्कार करने के प्रश्न पर ब्रिटिश पत्र 'मांचेस्टर गार्जियन' ने लिखा—"भारत-सरकार का यह निश्चय अपनी पहले की नीति के अनुसार हो सकता है, लेकिन शासन-कार्य में अपरिवर्तनशीलता ही एकमात्र गुण नहीं होता और न्याय का तकाजा तो यह कहता है कि भारत-सरकार कितनी ही बार अपने वचन से टल गयी है। उन्हें अलग रखने की नीति पर सरकार क्या अनिश्चित काल तक अमल करती रहेगी। अब मि० जिन्ना कह सकते हैं कि मैंने तो गांधीजी से एकता की अपील की थी—और सरकार हमेशा ही दोनों से एका करने को कहती रही है—और सुलह का रास्ता भी निकाला था, जिसे भारत-सरकार ने बन्द कर दिया। गांधीजी कह सकते हैं कि वे जब इस रास्ते पर आगे बढ़ना चाहते थे तो सरकार ने उसे बन्द ही कर दिया। क्या सभी को नाराज करना उचित है? सरकार दूसरे नेताओं को गांधीजी से मिलने की इजाजत क्यों नहीं देती, जिससे देखा जा सके कि क्या परिणाम निकलता है।"

तमाम मुल्क मि० जिन्ना के उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा था। मि० जिन्ना जब दिल्ली में चुनौती देते हुए भाषण दे रहे थे तो क्या वे गांधीजी से पत्र मिलने की आशा रखते थे? मि० जिन्ना को नीचे दिया हुआ उत्तर प्रकाशित करने में कुछ समय लग गया।

गांधीजी का पत्र भेजने से भारत-सरकार के इन्कार करने पर अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के अध्यक्ष मि० एम० ए० जिन्ना ने 'टाइम्स आफ इण्डिया' पत्र को एक वक्तव्य देते हुए कहा—"गांधीजी का यह पत्र मुसलिम लीग को ब्रिटिश सरकार से भिड़ा देने की एक चाल है, ताकि उनकी रिहाई हो सके और उसके बाद वे जैसा चाहें कर सकें।" मि० जिन्ना ने यह भी कहा कि "मैंने अखिल भारतीय मुसलिम लीग के दिल्लीवाले अधिवेशन में जो सुझाव रखे थे उन्हें मंजूर करने या अपनी नीति में परिवर्तन करने की कोई इच्छा गांधीजी की नहीं जान पड़ती।" मि० जिन्ना ने आगे कहा कि "उस भाषण में मैंने कहा था कि अगर गांधीजी मुझे पत्र लिखने, ८ अगस्त को कांग्रेस

के प्रस्ताव में बताये कार्यक्रम को समाप्त करने और इस प्रकार कदम पीछे हटाकर अपनी नीति में परिवर्तन करने और पाकिस्तान के आधार पर समझौता करने को तैयार हों तो हम पिछली बातों को भूलने को तैयार हैं। मेरा अब भी विश्वास है कि गांधीजी के ऐसे पत्र को रोकने की हिम्मत सरकार नहीं कर सकती।"

मि जिन्ना ने अपने वक्तव्य में आगे कहा कि "गांधीजी या किसी भी दूसरे हिन्दू नेता से मिलने के लिए मैं खुशी से तैयार रहा हूं और आगे भी रहूंगा, लेकिन सिर्फ मिलने की इच्छा प्रकट करने के लिए ही पत्र लिखने से मेरा मतलब न था और अब सरकार ने गांधीजी के एक ऐसे ही पत्र को रोक लिया है। मुझे भारत-सरकार के गृह-विभाग के सेक्रेटरी से २४ मई को सूचना मिली है, जिसमें लिखा है कि गांधीजी ने अपने पत्र में सिर्फ मुझसे मिलने की इच्छा प्रकट की है और सरकार ने यह पत्र मेरे पास न भेजने का निश्चय किया है।"

दिल्ली के 'डॉन' में प्रकाशित मि० जिन्ना के भाषण के विवरण तथा खुद जिन्ना साहब द्वारा दिये गये संक्षेप में एक बड़ा भारी फर्क है। पहले विवरण में मि० जिन्ना की मांग सिर्फ यही थी कि गांधीजी पाकिस्तान के आधार पर उन्हें लिखें। इसका मतलब यही हो सकता था कि गांधीजी को पाकिस्तान के सिद्धान्त तथा नीति के सम्बन्ध में बातचीत करने को रजामन्द होना चाहिए। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि जबतक मि० जिन्ना ने पाकिस्तान लफ्ज को दोहराने के सिवा उसके अर्थ या विस्तार के विषय में कुछ भी नहीं कहा था। इसके अलावा, उन्होंने बम्बई-प्रस्ताव वापस लेने और हृदय-परिवर्तन का सबूत देने की बात कहाँ कही थी? शक्तिशाली ब्रिटिश सरकार गांधीजी से हृदय-परिवर्तन को कहती है और उससे भी अधिक शक्तिशाली मि० जिन्ना उसे दोहराते हैं। प्रतिहिंसाशील ब्रिटिश सरकार आश्वासन और गारंटियाँ माँगती है और अधिक प्रतिहिंसाशील मि० जिन्ना कहते हैं कि उन्होंने अपने भाषण में कहा था कि गांधीजी को कदम पीछे हटाने और बम्बईवाले प्रस्ताव के कार्यक्रम तथा नीति में परिवर्तन करने के लिए तैयार रहना चाहिये। क्या उन्होंने मूल भाषण में यह सुझाव पेश किया था? अदालत में उद्धरण देनेवाले ऐसे वकील को यह कह कर रोक दिया जायगा कि पहले यह बात नहीं कही गयी थी। परन्तु प्रश्न यह है कि जब गांधीजी वाइसराय के सामने झुक कर अपनी आजादी पा कर सरकार की अनुमति लिये बिना ही मि० जिन्ना की मालाबार हिल वाली कोठी पर उनसे मिल सकते थे तो उन्हें मुसलिम-लीग के सामने जाकर गिड़गिड़ाने और पश्चात्ताप करने की ज़रूरत ही क्या थी। आश्चर्य की बात है कि मि० जिन्ना की समझ में यह सीधी बात न आई और या यह हो कि उन्होंने अपने को वाइसराय से बड़ा समझा हो और सोचा हो—'वाइसराय आते हैं और चले जाते हैं, पर मैं तो सदा बना ही रहता हूँ।" मि० जिन्ना के वक्तव्य का एक दूसरा पहलू भी ध्यान देने लायक है, उन्होंने शिकायत की है कि गांधीजी का पत्र मुस्लिम-लीग को सरकार से भिड़ा देने की एक चाल थी ताकि इससे गांधीजी की अपनी रिहाई हो सके और इसके बाद वे चाहे जैसा कर सकें। सचमुच बड़ी जबरदस्त चाल थी। पर इसमें मि० जिन्ना को आपत्ति क्या थी? क्या उनका मतलब यह था कि मुसलिम लीग के सरकार से ताल्लुकात इतने दोस्ताना थे कि वह उससे झगड़ा नहीं करना चाहती थी या यह कि गांधीजी की रिहाई में सहायता पहुँचाने के लिए वह उन ताल्लुकात को नहीं बिगाड़ना चाहती थी। यदि पहली बात को सही माना जाय तो क्या हम नहीं देख चुके हैं कि लीग ने किस तरह पूर्ण स्वाधीनता का ढोंग रचा था, किस तरह युद्ध छिड़ने के समय लीगियों को मन्त्रिमण्डलों में जाने से रोका था और

किस तरह रक्षा-परिषद् और राष्ट्रीय युद्ध-मोर्चा में जाने पर प्रतिबन्ध लगाये थे। केन्द्रीय शासन-परिषद् के विस्तार के समय भी क्या मि० एमरी और वाइसराय से लीगियों का झगड़ा नहीं हुआ था? यदि दूसरी बात को सच माना जाय यानी यह कि मुस्लिम-लीग गांधीजी की रिहाई में मदद पहुँचाने के लिए सरकार से अपने सम्बन्ध नहीं बिगाड़ना चाहती थी, तो कहा जा सकता है कि ऐसा कार्य गांधीजी के नैतिक धरातल और जीवन में उनकी नैतिक विचार-धाराओं के बिलकुल विरुद्ध होता। मि० जिन्ना का मतलब शायद यही था कि चूँकि सरकार उन्हें नाराज़ नहीं करना चाहती थी इसलिए उसे मजबूर होकर गांधीजी को छोड़ देना पड़ता।

सच तो यह है कि जिन्ना साहब अपने लिए मि० एमरी की धारणा नहीं बिगाड़ना चाहते। भारतमंत्री की धारणा का पता उनके उस वक्तव्य से चलता है, जो उन्होंने १३ मई, १९४३ को दिया था। मि० एमरी ने कहा था:—

"हमारा इस विषय पर कोई मतभेद नहीं है कि भारत की वैधानिक उन्नति के लिए हिन्दू-मुस्लिम समस्या का निबटारा आवश्यक है। परन्तु मि० जिन्ना के भाषण के जो विवरण मिले हैं उनसे यह ज़ाहिर नहीं होता कि उन्होंने हिन्दुओं-द्वारा माना जा सकनेवाला कोई हल सामने रखा हो। कांग्रेसी नेताओं को जिन कार्यों के कारण नज़रबन्द किया गया है कम-से-कम उनका तो मि० जिन्ना ने समर्थन नहीं किया है। इसके विपरीत उसी भाषण में मि० जिन्ना ने यह तक कह डाला कि 'आज यदि हमारी सरकार होती तो एक शक्तिशाली संगठन को युद्ध-विरोधी आन्दोलन चलाने से रोकने के लिए मैं भी इन लोगों को जेल में डाल देता।' इसलिए सवाल के आखिरी हिस्से का जवाब देने की जरूरत ही नहीं है।"

बाद में हुए पूरक प्रश्नों और उनके उत्तरों से प्रकट होता है कि जहां एक तरफ मि० एमरी का यह खयाल रहा है कि ब्रिटिश-सरकार के विरुद्ध हिन्दू-मुसलमानों की संयुक्त कार्रवाई होने की कोई आशा नहीं है वहां दूसरी तरफ मि० जिन्ना भी विरोध को महत्त्व नहीं देते, क्योंकि वे अपने ही शब्दों में ब्रिटिश-सरकार से झगड़ा नहीं मोल लेना चाहते। सच तो यह है कि मि० एमरी और मि० जिन्ना आंख-मिचौनी खेल रहे हैं। मि० एमरी उन घोषणाओं और गश्ती-चिट्ठियों को भूलने का ढोंग करते हैं, जिन में लीगियों को युद्ध-प्रयत्न में हिस्सा न लेने की हिदायतें दी गयीं गोकि अर्लविंटर्टन को जवाब देते हुए मि० एमरी ने उनकी तरफ संकेत कर दिया था, "सचमुच मि० जिन्नाने वे कठिनाइयां पैदा नहीं कीं।" साथ ही मि० एमरी ने लीग की पिछली नीति पर पर्दा डाला है—वे कहते हैं, "मि० जिन्ना लगातार भारत-सरकार के युद्ध प्रयत्नों का समर्थन करते रहे हैं।" [1] क्या, सचमुच जिन्ना यही करते रहे हैं? राजनीतिज्ञों की याददाश्त कितनी थोड़ी है।

परन्तु सच तो यह है कि मि० जिन्ना अपने वक्तव्य में कुछ ज़रूरत से ज्यादा बढ़ गये थे। गांधीजी के पत्र को सरकार ने जिस हिकारत की नज़र से देखा था उसकी अंग्रेज़ी और उर्दू के पत्रों में एक समान निन्दा की गयी थी। परन्तु जब मि० जिन्ना ने अपने विचार प्रकट

[1] सितम्बर, १९४२ में एक अमरीकी संवाददाता के प्रश्न का उत्तर देते हुए मि० जिन्ना ने कहा था—"मुस्लिमलीग युद्ध-प्रयत्नों का समर्थन नहीं कर रही है। यह नहीं कि लीग सहायता देने की विरोधी या अनिच्छुक है बल्कि स्थिति यह है कि वह उत्साहपूर्ण समर्थन और सहयोग प्रदान करने में असमर्थ है।"

किए तो जनता उनकी ओर मुड़ी और कुछ जबर्दस्त नतीजे दिखाई दिये। इसके अलावा हैदराबाद के डा० लतीफ और दिल्ली के डा० शौकतुल्ला अंसारी जैसे मित्रों ने भी आलोचनाएं कीं कि जब तक जनता यह अनुभव न करे कि उसका देश के शासन में कुछ हिस्सा है तब तक उसके लिए युद्ध जारी रखने में क्या दिलचस्पी हो सकती है। (युद्ध के प्रारम्भ से कांग्रेस यही तो कहती आई थी और अपने बम्बईवाले प्रस्ताव में भी उसने यही मत प्रकट किया था) परन्तु मि० जिन्ना के तर्कों का सब से सम्मानपूर्ण और जोरदार उत्तर भारत-सरकार के अवकाश-प्राप्त आई० सी० एस० सदस्य सर जगदीश प्रसाद ने दिया। आपने कहा :—

"भारत-सरकार-द्वारा महात्मा गांधी को मि० जिन्ना के लिए पत्र लिखने की अनुमति न देने पर मि० जिन्ना ने जो वक्तव्य दिया है वह इस अस्वीकृति से भी अधिक विचारणीय है। कभी-कभी मि० जिन्ना का अनर्गल प्रलाप उन्हें परेशान करनेवाली हालत में डाल देता है। अभी हाल में अपने दिल्लीवाले भाषण में उन्होंने यह असर पैदा करने की कोशिश की थी कि अब वे इतने ताकतवर हो गये हैं कि खुद ब्रिटिश-सरकार भी उन्हें नाराज़ करने की हिम्मत नहीं कर सकती। कायदे-आजम ने महात्मा गांधी को सीधा उन्हीं को लिखने की दावत दी थी और कुछ शान के साथ फरमाया था कि सरकार में इस चिट्ठी को रोकने की जुर्रत नहीं है। चिट्ठी लिखी गयी और उसे रोक लिया गया। अब मि० जिन्ना एक चतुर खिलाड़ी की तरह इस अप्रिय परिस्थिति से बचने के लिए उस पत्र के लेखक की ही निन्दा कर रहे हैं। वे जानते हैं कि वे बिना किसी दिक्कत के ऐसा कर सकते हैं, क्योंकि गांधीजी को जवाब देने का अवसर नहीं मिलेगा।

"परन्तु ज्यादातर लोग जानते हैं कि मि० जिन्ना की ब्रिटिश-सरकार से लड़ाने की कोशिश बेकार है। अपने कुछ देशवासियों के आगे मि० जिन्ना चाहे जितनी डींग हांकें, वे खुद भली-भांति जानते हैं कि ब्रिटिश-सरकार के आगे उनकी एक नहीं चल सकती। वे यह भी जानते हैं कि देश का बँटवारा फिजूल बातों और प्रस्तावों से नहीं हो सकता। इसलिए वे कहते हैं कि अंग्रेज़ों को पाकिस्तान की गारंटी कर देना चाहिए। दूसरे शब्दों में इसका यह अर्थ हुआ कि यदि आवश्यकता पड़े तो ब्रिटेन को देश के बँटवारे के लिए अपनी हथियारी ताकत तक काम में लानी चाहिये। मि० जिन्ना की मौजूदा नीति ब्रिटिश सरकार से झगड़े की नहीं, बल्कि उसकी सहायता से देश का स्थायी विभाजन कराने की है। यदि इसे जान लिया जाय तो फिर यह समझने में कोई कसर न रह जायगी कि मि० जिन्ना पर ब्रिटेन के कुछ लोगों की इतनी कृपा क्यों है। ब्रिटिश-सरकार से झगड़ने की मूर्खता तो मि० जिन्ना के विरोधियों के हिस्से में ही पड़नी चाहिये और यह झगड़ा जितना ही अधिक चलेगा उतनी ही मि० जिन्ना को खुशी होगी। परन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि मि० जिन्ना के दल के बाहर के कुछ प्रमुख व्यक्ति संकट के समय उनसे सहायता मांगने जाते हैं। अपनी लाचारी की हालत में वे खयाल करते हैं कि मि० जिन्ना को राजनीतिक देवता बनाकर उनकी पूजा करने से ही शायद मुल्क को नजात मिल जाय। ये प्रसिद्ध व्यक्ति मि० जिन्ना के पूर्व-इतिहास, उनकी वर्तमान नीति और उनकी भावी आकांक्षाओं को भूल जाते हैं। उनकी करुणाभरी पुकार मि० जिन्ना की अहंभावना को और जाग्रत कर देती है। मि० जिन्ना की तुष्टि असम्भव है। उन्होंने अपनी कड़ी शर्तें पेश करदी हैं। पाकिस्तान मान लो और यह न पूछो कि उसका मतलब क्या है। यह मतलब सिद्धांत को मंजूर कर लेने और ब्रिटिश सरकार की गारंटी मिलने पर ही बताया जा सकता है।

"परन्तु मि० जिन्ना भूल जाते हैं कि २५ करोड़ प्राणी, जिनमें कुछ सब से शक्तिशाली

रियासतें भी हैं, पाकिस्तान की व्याख्या किये बिना देश के बँटवारे को कभी स्वीकार नहीं कर सकते। देश के पांच प्रांतों में ऐसे मुस्लिम लीगी मंत्रि-मण्डल कायम होने पर भी जो मि० जिन्ना के आदेशों को पूरा करने के लिए सदा तैयार रहेंगे, उन्हें कोई भय या आश्चर्य नहीं हुआ है। वे अपने अटूट साहस और धैर्य से विपत्ति का सामना करना भूले नहीं हैं। मि० जिन्ना नजात का दिन मना चुके हैं। किस्मत उन्हें भी नजात दिला सकती है, जिनसे मि० जिन्ना नफरत करते हैं। बहुतों का खयाल है कि विदेशी हमले और भीतरी फूट से हिफाजत का सबसे अच्छा उपाय फौज में काफी हिस्सा पाना है। युद्ध के कारण भर्ती का रास्ता खुल गया है। अक्ल-मन्दी और हिफाजत का तकाजा यही है कि इस मौके से फायदा उठाया जाय। मि० जिन्ना के आगे अपीलें और दरख्वास्तें पेश करने की नीति अब छोड़नी चाहिए। हिन्दुस्तान की जनता मि० जिन्ना के वक्तव्य को चाहे जितना नापसंद क्यों न करे, यह प्रायः निश्चित है कि मि० एमरी कामंस सभा में उद्धृत करके उसे विशेष सम्मान प्रदान करेंगे।

"मि० जिन्ना समुद्र के पार भी जो युद्ध छेड़े हुए हैं उस पर हमें कोई आपत्ति न होनी चाहिए।"

सरकार पर पहला हमला 'डॉन' ने अपने २८ मई के अंक में किया था "क्या भारत-सरकार की यही नीति है कि न खुद कुछ करे और न किसी दूसरे को करने दे?"

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि मि० जिन्ना ने मुस्लिम-लीग के सालाना जलसे के मौके पर दिल्ली में कहा था कि अगर वे देश की हकूमत उनके हाथों में होती तो वे गांधीजी, उनके साथियों और अनुयायियों को ज़रूर ही उपद्रवों का आंदोलन संगठित करने के अपराध में जेल में डाल देते।

हम अपनी आंखें मलकर देखते हैं कि क्या ये वही मुहम्मदअली जिन्ना हैं, जिन्होंने इक्कीस वर्ष पहले बिल्कुल दूसरी ही आवाज़ लगाई थी। यह पुरातत्त्व की खोज मि० ए० एन० हाजीभाई ने की है। निम्न उद्धरण २७ जून, १६४३ के 'बाम्बे क्रानिकल' में प्रकाशित हुआ था:—

"भारत का प्रत्येक नागरिक वर्तमान परिस्थिति को नितान्त अन्यायपूर्ण मानता है। सरकार ने मौजूदा उपायों को कानून और अमन के लिए मुनासिब ठहराया है, जिस पर कोई आपत्ति न होनी चाहिए। परन्तु जब यह बात प्रकट हो जाती है कि बुद्धिमत्तापूर्ण तथा विचार-शील जनमत का सम्मान नहीं किया जाता तब पशुबल या विशेष कानूनों के जोर से भी शांति व व्यवस्था नहीं कायम रह सकती। असहयोग आन्दोलन पुरानी शिकायतों तथा जनमत की अवहेलना के कारण फैले हुए असंतोष का ही बाहरी रूप है। आज तक किसी भी सरकार को जनता से लड़ने में कामयाबी नहीं हुई है। दमन से हालत और भी बिगड़ेगी।......

"अक्सर कहा जाता है कि संयत स्वभाव वाले लोगों को अधिकारियों का समर्थन करना चाहिए। जब पिछले ६ महीने से सरकार ने ऐसे लोगों के कहने पर ध्यान नहीं दिया तो उनके लिए सरकार की तरफदारी और समर्थन करना कैसे सम्भव है?"

ये शब्द मि० जिन्ना ने आज से २० साल पहले अपने एक वक्तव्य में कहे थे, जो उन्होंने लार्ड रीडिंग के शासनकाल में १६२१-२२ में दिया था।

४ जून को कराची से मि० जिन्ना ने पत्रकारों के बीच कहा कि हिन्दू पत्रों ने उन्हें गलत समझा है, उनके भाषण से गलत उद्धरण दिये हैं और जान-बूझकर भ्रम फैलाने का प्रयत्न किया

है। परन्तु वे अब्ज़वी, शौकत अंसारी, हैदराबाद के डा० लतीफ, और इनायतुल्ला खां मशरिकी-जैसे आलोचकों से अपनी रक्षा न कर सके। अल्लामा मशरिकी ने तो यहां तक कहा कि अगर कांग्रेस पाकिस्तान मानने को तैयार है तो फिर उस समझौते की कोई ज़रूरत नहीं है, जिस की मांग मि० जिन्ना ने की है। मशरिकी ने यह भी कहा कि मि० जिन्ना को अपने मूल प्रस्ताव पर ही जमना चाहिए, जिसमें पाकिस्तान की बात तो कही गयी थी, पर बम्बईवाले प्रस्ताव को वापस लेने को नहीं कहा गया था। उर्दू-पत्रों ने एक स्वर से गांधीजी के पत्र के सम्बन्ध में सरकार के रुख की निन्दा की थी और फिर मि० जिन्ना के भी वक्तव्य की छीछालेदर की गयी। इन आलोचनाओं में कहा गया कि मि० जिन्ना के वक्तव्य के परिणाम-स्वरूप दोनों पक्षों में मेल करानेवाले मित्र बड़ी कठिन और परेशानी की हालत में पड़ गये। इसमें भी कोई सन्देह नहीं रहा कि मि० जिन्ना की इस चाल के कारण लीग के नेता भी कुछ चिन्ता में पड़ गये, क्योंकि भारत के अन्य यथार्थवादी राजनीतिज्ञों की तरह वे भी इस राजनीतिक विवाद का अंत करने को उत्सुक हो उठे हैं। वे अपने में किसी कमी का अनुभव करने लगे और यही इस घटना का परिणाम प्रकट में हुआ। साधारण जनता में इसकी प्रतिक्रिया यह हुई कि संघर्ष में भाग लेनेवाले दलों को भी अपनी नीति में परिवर्तन करना चाहिए।

परन्तु हिन्दू-महासभा अपनी खिचड़ी अलग पकाती रही। पांच या छः प्रान्तों में लीगी प्रधान मन्त्रियों को काम करते देखकर उसके, मन में भी उपयुक्त प्रान्तों में महासभाई प्रधान-मंत्रियों की अधीनता में मन्त्रिमण्डल कायम करने, और जहां यह सम्भव न हो वहां अन्य दलों के साथ मिलकर मंत्रिमंडल बनाने, की इच्छा उत्पन्न हो गई। नयी दिल्ली से प्राप्त एक समाचार में कहा गया कि हिन्दू-महासभा वैधानिक कार्यों के नियंत्रण के लिए एक पार्लीमेंटरी-उपसमिति नियुक्त करेगी। यह भी ज्ञात हुआ कि डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी इस उपसमिति के प्रधान होंगे। कांग्रेस के जेल में रहने के दिनों में महासभाइयों की दिलचस्पी चुनाव में बढ़ने के स्थान पर मन्त्रि-मण्डल बनाने में बढ़ना कुछ विचित्र-सा लगता है। इसस प्रकट हो गया कि महासभा की कार्रवाई अपनी स्वाभाविक शक्ति के कारण न होकर कांग्रेस के विरोधियों से मिलकर की जा रही है। १९३७ के आम चुनाव में हिन्दू-महासभा के उम्मीदवारों की असफलता सभी को ज्ञात है। इसके बाद सभा ने उपचुनावों में उम्मीदवार नहीं खड़े किये। श्री सत्यमूर्ति के स्वर्गवास के कारण केन्द्रीय असेम्बली में खाली स्थान के लिए दक्षिण भारत हिन्दूसभा के अध्यक्ष को, जो अखिल भारतीय हिन्दू महासभा के उपाध्यक्ष भी थे, खड़े होने की घोषणा की गयी।

परन्तु ये उम्मीदवार चुनाव में खड़े नहीं हुए। गोकि हिन्दू-महासभा लीग की कट्टर विरोधी रही है, फिर भी उसकी योजना लीग के साथ मिलकर मंत्रिमंडल बनाने की थी। हिन्दू-महासभा ने अपने को 'मुस्लिम लीग का हिन्दू-संस्करण' में बना लिया, जैसा कि उस समय ठीक ही कहा गया था। जहां वह जब-तब कांग्रेस पर मुस्लिम लीग की मांगों के आगे झुकने का आरोप करती रही, वहां वह उन व्यक्तियों की अनुपस्थिति में, जिन्हें निर्वाचकों ने धारासभाओं में अपना सच्चा प्रतिनिधि बना कर भेजा था, लीग के साथ मिलकर लूट का माल बाँटने का षड्यंत्र भी करती रही। यह ध्यान देने योग्य बात है कि सिन्ध के हिन्दूसभाई मन्त्री प्रान्तीय धारासभा में पाकिस्तान के पक्ष में प्रस्ताव पास होने पर तमाशा-सा देखते रहे और उनका विरोध भी प्रभाव-हीन रहा। जब लीगी मंत्री पाकिस्तान के लिए जोरदार प्रचार कर रहे थे उस समय क्या हिन्दू महासभा ने कभी विचार भी किया कि उसके मन्त्रियों को क्या करना चाहिए? यदि विचार किया

था तो संयुक्त उत्तरदायित्व का क्या हुआ ? यदि नहीं, तो पाकिस्तान के विरोध में जो इतना जोर बांधा जा रहा था, वह कहां गया ?

२३ अगस्त, १६४२ को नयी दिल्ली में भाषण करते हुए माननीय डा० अम्बेडकर ने दावा उपस्थित किया कि दलित जातियों के साथ मुसलमानों के समान व्यवहार होना चाहिए। पाठकों को स्मरण होगा कि मि० मेकडानल्ड के साम्प्रदायिक निर्णय में हरिजनों का पृथक् अस्तित्व स्वीकार किया गया था, किन्तु १६३२ में महात्मा गांधी ने 'आमरण अनशन' करके उन्हें फिर हिन्दुओं के साथ मिलाया था।

भारत में ब्राडकास्टिंग के एक भूतपूर्व डाइरेक्टर-जनरल मि० लिओनेल फील्डेनने १८ मार्च को लन्दन की एक सार्वजनिक सभा में भाषण करते हुए कहा कि, "यदि विंस्टन चर्चिल भारत जायँ और वर्तमान परिस्थिति को देखें तो उसे हल करने के लिए वे सर्वोत्तम व्यक्ति सिद्ध होंगे।"

१६४३ की गर्मियों से इंग्लैंड में विभिन्न राजनीतिक दलों के सालाना जलसे हुए। भारत में हुई हलचलों तथा ट्यूनीशिया की विजय में चौथे भारतीय डिवीजन के हिस्से की वजह से भारत का सवाल महत्वपूर्ण बन गया और उस पर इन जलसों में विचार हुआ।

मजदूर दल का सम्मेलन जून के मध्य तक समाप्त हुआ। कई घटनाओं के कारण सम्मेलन का वातावरण गर्म रहा। इनमें पहली घटना थी हरबर्ट मारीसन तथा आर्थर ग्रीनवुड की प्रतियोगिता। दूसरी यह थी कि तीसरे इंटर्नेशनल के भंग होने पर ब्रिटेन की स्थानीय कम्युनिस्ट पार्टी ने मजदूर दल में मिलने के लिए जो दरख्वास्त दी थी, उसे नामंजूर कर दिया गया। लेकिन हिन्दुस्तान के सवाल पर कोई मतभेद न था। १६४२ के अगस्त महीने में मजदूर दल वालों ने इस मसले को जहां छोड़ रखा था वहीं छोड़कर सम्मेलन ने अपना फर्ज पूरा किया। भारत के सम्बन्ध में दो स्थानीय प्रतिनिधियों ने प्रस्ताव उपस्थित किये थे। दल की प्रबन्ध-समिति की तरफ से सुझाव उपस्थित किया गया कि समय की कमी के कारण प्रस्तावों पर बहस न की जाय। इस सुझाव का कई प्रतिनिधियों ने विरोध किया। तब श्री ग्रीनवुड ने इस आधार पर प्रस्ताव वापस लिये जाने पर जोर दिया कि निकट-भविष्य में ही एक संयुक्त समिति में प्रबन्ध समिति की रिपोर्ट को ध्यान में रखते हुए इस सवाल पर विचार किया जायगा।

प्रबन्ध समिति की अन्य कितनी ही रिपोर्टों की तरह सम्मेलन ने हिन्दुस्तान के बारे में भी एक रिपोर्ट बिना बहस के मंजूर की थी। रिपोर्ट में कहा गया था कि भारत सम्बन्धी संयुक्त समिति, जिसमें मजदूर दल की पार्लामेंटरी पार्टी की भारत-समिति और प्रबन्ध-समिति की अंतर्राष्ट्रीय उपसमिति भी, देश की वैधानिक समस्या व क्रिप्स-प्रस्तावों की नामंजूरी के बारे में विचार जारी रखेगी। रिपोर्ट में प्रबन्ध-समिति व ट्रेड-यूनियन कांग्रेस की साधारण परिषद् की १२ अगस्त वाली घोषणा का हवाला दिया गया, जिसमें सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन की निन्दा की गयी और सरकार से कहा गया कि आन्दोलन बन्द किये जाने पर स्व-शासन के सिद्धान्त की रक्षा करने तथा इसे अमल में लाने के लिए सरकार को फौरन बातचीत शुरू करनी चाहिए। तब प्रबन्ध-समिति का आश्वासन मिलने पर उन प्रस्तावों को वापस ले लिया गया। १२ अगस्त, १६४२ वाले प्रस्ताव से स्पष्ट है कि मजदूर दल की प्रबन्ध समिति अभी तक इस भ्रम में पड़ी हुई थी कि कांग्रेस ने ६ अगस्त, १६४२ को सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन शुरू किया था।

भारत के राजनीतिक अड़ंगे के सवाल पर मजदूर-सम्मेलन व ट्रेड-यूनियन कांग्रेस की संयुक्त समिति ने जिस ढंग से काम किया उसे देखकर पार्लामेंट में काम करनेवाले ब्रिटिश मजदूर-

दल की तारीफ नहीं की जा सकती। यदि इस प्रकार की कोई घटना हिन्दुस्तान या किसी उपनिवेश में होती तो तानाशाही ढंग कहकर उसकी निन्दा की जाती और उसे प्रजातन्त्री सरकार के अयोग्य ठहरा दिया जाता। समिति के कुछ सदस्यों की कार्रवाई पर 'अमृत बाजार पत्रिका' के लन्दन-कार्यालय ने लार्ड वेवल की लन्दन से रवानगी के चार दिन बाद १५ अक्तूबर के दिन प्रकाश डाला। 'पत्रिका' के संवाददाता का विवरण नीचे दिया जाता है:—

"मजदूर दल की राष्ट्रीय-प्रबन्ध समिति व पार्लामेंटरी मजदूर दल की भारत-सम्बन्धी संयुक्त समिति की बैठक मंगलवार को अचानक समाप्त हो गयी। बैठक में वामपक्षीय सदस्यों की तरफ से इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया गया कि समिति की अनुमति प्राप्त किये बिना उसके कुछ सदस्य लार्ड वेवल से हिन्दुस्तान के विषय में बातचीत करने कैसे चले गये।

"यहां यह बात ध्यान देने की है कि ५ अक्तूबर की समिति की कार्रवाई इस इरादे से स्थगित कर दी गयी थी कि अगली बैठक में मन्त्रिमंडल के सदस्य मि० एटली और मि० बेविन से हिन्दुस्तान की परिस्थिति के सम्बन्ध में बातचीत करनी चाहिए। उसी बैठक में यह भी निश्चय किया गया कि समिति की तरफ से लार्ड वेवल से एक डपुटेशन मिले और राजनीतिक अड़ंगे को दूर करने के लिए समिति के विचार उपस्थित करे।

"लेकिन मुझे ज्ञात हुआ कि अगली बैठक में मि० रिडले ने घोषणा की कि वे और उनके कुछ मित्र, जिनमें प्रोफेसर लास्की, श्री सोरेंसन और श्री कोवे में से एक भी न था, लार्ड वेवल से मिलकर हिन्दुस्तान की हालत के बारे में बातचीत कर चुके हैं। इस घोषणा का श्री कोवे व दूसरे सदस्यों ने प्रतिवाद किया। गोकि मि० रिडले और उनके साथियों ने यह बताने से इन्कार कर दिया कि लार्ड वेवल व उनके बीच क्या बातें हुईं, फिर भी समिति ने बहुमत से श्री रिडले के कार्य का समर्थन कर दिया।"

ब्रिटेन के मजदूर दल का दृष्टिकोण वहां के साम्राज्यवादियों की अपेक्षा अधिक उन्नत नहीं है। इस दल के लंदनवाले केन्द्र से प्रकाशित होनेवाली उन गश्ती चिट्ठियों से प्रकट होता है, जिनमें कहा गया था कि मजदूर सदस्यों को लंदन में होनेवाली उन भारत-सम्बन्धी सभाओं का समर्थन नहीं करना चाहिये, जो मजदूर दल की नीति के विरुद्ध हों। मजदूर दलवाले अभी तक इस गलतफहमी में पड़े हुए हैं—या वे जानबूझ कर भ्रम पैदा करने की कोशिश करते हैं—कि कांग्रेस देश की जनता के हाथ में अधिकार दिलाने की बात कह कर दरअस्ल अपने लिए अधिकार मांग रही है। यदि ऐसा न होता तो पार्लामेंट के मजदूर सदस्यों को "कांग्रेस को अधिकार दिये जाने का समर्थन न करने की" हिदायत क्यों दी जाती। सामंतवर्ग की ही तरह मजदूरवर्ग में गलत बातों का प्रचार सत्य बातों से छः महीने या एक साल पहले हो जाता है और फिर इन मिथ्या धारणाओं के दूर होने में—यदि वे कभी दूर हो सकें—बहुत समय लग जाता है।

ब्रिटेन के जनमत में एक नयी बात भी देखने में आई है। इंग्लैंड के शासकवर्ग के विचारों की चर्चा करने पर कुछ न्यायप्रिय अंग्रेज कहते हैं कि इंग्लैंड का दिल दुरुस्त है। यह सम्भव है कि उसका दिल दुरुस्त हो और दिमाग भी साफ हो, लेकिन इसमें कुछ भी शक नहीं है कि उसके हाथ कमजोर हैं।

परन्तु मौजूदा हालत को ठीक समझने वाले अंग्रेजों के प्रति न्याय का तकाजा है कि हम उनके विचारों को यहां उद्धृत करें।

एलेक्ट्रिकल ट्रेड यूनियन की प्रेस्टन-शाखा ने प्रस्ताव पास किया था—"हम सरकार से

अनुरोध करते हैं कि वह हिन्दुस्तान में उसकी अपनी सरकार कायम करे।''

स्काटिश ट्रेड यूनियन कांग्रेस ने सर्वसम्मति से अपनी मांग उपस्थित की कि ''भारतीय नेताओं की रिहाई और उनके साथ समझौते की बातें आरम्भ करके हमें फासिज्म के विरुद्ध उनका सहयोग प्राप्त करना चाहिए।''

इसी प्रकार के विचार क्लरिकल एंड एडमिनिस्ट्रेटिव वर्कर्स यूनियन की लंदन तथा केन्द्रीय शाखाओं ने भी प्रकट किये।

उन दिनों भारत के भविष्य के सम्बन्ध में ब्रिटेन में अशान्ति छाई हुई थी। प्रति सप्ताह कोई न कोई नया कार्यक्रम रहता था और भारत मंत्री मि० एमरी उसमें पहुंच ही जाते थे। १० जून को भारतीय चित्रों की एक प्रदर्शनी का उद्घाटन करते हुए उन्होंने कहा—''भारतीय राजनीति की पेचीदी समस्यायें पिछली पीढ़ी में उठी थीं और इसमें कुछ भी संदेह नहीं है कि अगली पीढ़ी आरम्भ होते-होते उनमें ऐसा परिवर्तन हो जायगा कि फिर उन्हें पहचाना भी न जा सकेगा। अंग्रेज भारतीयों के आन्तरिक जीवन को समझकर ही उन्हें समझ सकते हैं और उनके जीवन तथा राजनीतिक क्षेत्र में हिस्सा बँटा सकते हैं। भारत को इस साधारण कृपा के लिए भी उनका आभारी होना चाहिए। यहां यह बात ध्यान देने की है कि इतने दिन बाद भी भारत का सवाल पूरी तरह हल न किया जायगा, बल्कि उसमें ऐसा परिवर्तन किया जायगा, जिससे उसे पहिचाना न जा सके। मि० एमरी के मत से समय बीत जाने पर भी भारतीय समस्या के निबटारे का दिन निकट न आवेगा। जिस तरह मृग-मरीचिका पानी के निकट पहुँचने पर दूर हटती जाती है और फिर प्यास बुझाने को जल दिये बिना अंत में आंख से ओझल हो जाती है उसी तरह हिन्दुस्तान के सवाल के हम जितने ही निकट जाते हैं वह उतना ही दूर होता जाता है। १६४१ में मि० एमरी ने भारतीय समस्या की तुलना पहाड़ की एक चोटी से की थी, जिसे हम ऊपर चढ़ने पर निकट समझने लगते हैं। परन्तु ऊपर चढ़ने पर प्रकट होता है कि चोटी दूर है और अभी चढ़ना बाकी है। लेकिन दो वर्ष बाद भाषण करते हुए मि० एमरी ने बताया कि समस्या का निबटारा एक पीढ़ी बाद होगा। स्पष्ट है कि उनकी योजना राजनीतिक अड़ंगे को युद्धकाल में ही नहीं, बल्कि युद्ध समाप्त होने के ३० वर्ष बाद तक बनाये रखने की थी।

मि० एमरी की इस इच्छा की तुलना श्रीमती आइरिस पोर्टल के एक असाधारण तथा अप्रत्याशित कथन से की जा सकती है। श्रीमती पोर्टल वर्तमान पीढ़ी के विचार से तत्कालीन शिक्षा-मंत्री मि० आर० ए० बटलर की बहन और पिछली पीढ़ी के विचार से मध्यप्रान्त के गवर्नर सर मांटेगू बटलर की पुत्री हैं। यह कथन श्रीमती पोर्टल ने ईस्ट इंडिया असोसियेशन, लंदन की बैठक में मि० एमरी के भाषण से ठीक पहले किया था। श्रीमती पोर्टल ने अपने भाषण में कहा:—

''साधारण अंग्रेज के व्यवहार से अपने जिन सर्वोत्तम गुणों को हम तिलांजलि दे देते हैं, जरा उस पर भी नजर डालिये। यह व्यवहार कुछ तो अज्ञान और कुछ शिष्टाचार के अभाव के कारण होता है। अंग्रेज-समुदाय भारतीयों से कभी विचार-विनिमय नहीं करता। पोलो और ब्रिज से विचारों का जन्म नहीं होता। इसके अतिरिक्त, मिथ्याभिमान की भावना भी बाधा डालती है।

श्रीमती पोर्टल ने इन शब्दों में भारत में अपने २० वर्ष के अनुभव को निचोड़ दिया था। भाषण के अंत में भारत में काम कर चुकनेवाले कुछ वृद्ध अंग्रेजों ने श्रीमती पोर्टल के कथन की

कटु आलोचना की, जिसके जवाब में उन्होंने बड़ी चतुराई से कहा कि मैं यहां नई पीढ़ी के लोगों के रहने की उम्मीद करता थी। इसका मतलब दूसरे शब्दों में यही हुआ कि पुरानी पीढ़ी के लोगों का सुधार असम्भव है।

मि० एमरी ने जिस दिन साम्राज्य कायम रखने के पक्ष में भाषण दिया था उसके दूसरे दिन लार्ड सेमुअल ने अधिक स्पष्टता से विचार प्रकट किये। आपने कहा कि औपनिवेशिक समस्याओं के निबटारे के लिए पार्लीमेंट की एक स्थायी संयुक्त समिति होनी चाहिए। लार्ड सैमुएल ने कहा—"अब वह समय बीत गया है जब साम्राज्य भंग होना उन्नति का लक्षण माना जाता था। संसार में ६८ स्वतंत्र राष्ट्र पहले ही से हैं। हमें उनके एक होने का प्रयत्न करना चाहिए न कि अनेक होने का, क्योंकि राष्ट्रों की संख्या बढ़ने से नयी सीमाएं बनेंगी और झगड़े के नये कारण उत्पन्न होंगे।" आपने अंत में कहा कि अगर बीसवीं शताब्दी में ब्रिटिश साम्राज्य का अंत हुआ तो इक्कीसवीं शताब्दी में एक और साम्राज्य कायम करने की आवश्यकता उठ खड़ी होगी।"

जहां एक तरफ यह विचारधारा चल रही था वहां दूसरी तरफ मजदूर दल की पिछली बेंचों पर बैठनेवाले सात सदस्यों ने "भारतीय स्वाधीनता स्वीकार कराने की अंतर्राष्ट्रीय परिषद्" स्थापित करने की घोषणा की। इस परिषद् का उद्देश्य संयुक्तराष्ट्र संघ से यह गारंटी कराना है कि अटलांटिक अधिकारपत्र के अनुसार जो अधिकार राष्ट्रों के लिए दिये गये हैं वे भारत पर भी लागू होंगे। इस घोषणा पर प्रोफेसर जार्ज केटलिन के भी हस्ताक्षर थे; जो राजनीतिक और वैधानिक विषयों के एक प्रसिद्ध लेखक हैं और कोरनेल विश्वविद्यालय के अध्यापक रह चुके हैं।

भारत के प्रति जो व्यवहार हुआ उसके लिए मजदूर दल नहीं—मजदूरों को दुःख हुआ। १४ से अधिक श्रमजीवी संस्थाओं ने विटसनटाइड सम्मेलन (१३ जून) में प्रस्ताव पेश करने की सूचनाएं भेजीं। एक भी प्रस्ताव में दल के नेताओं की, जो मंत्रिमंडल के सदस्य थे, प्रशंसा नहीं की गयी, बल्कि हिन्दुस्तान का सवाल हल न करने के लिए उनकी निंदा की गयी। उन सभी ने एक स्वर से भारत में फिर से बातचीत शुरू करने का अनुरोध किया और सबसे अधिक इस आवश्यकता पर जोर दिया कि कांग्रेसजनों को जेल से छोड़ दिया जाय। इन प्रस्तावों को भेजनेवालों में दल के वे संगठन भी थे, जो विदेशी तथा घरेलू राजनीति में दल के नेताओं का समर्थन करते आये थे।

जुलाई, १९४३ में इंगलैंड की कितनी ही संस्थाओं ने जिनमें इंडिया लीग, ब्रिटिश कम्यूनिस्ट पार्टी और इंजीनियरों की सम्मिलित यूनियन भी थी, जोरदार शब्दों में भारतीय नेताओं से बातचीत शुरू करने की मांग की और कहा कि उनमें से जो अभी जेलों में हों उन्हें रिहा कर दिया जाय। मेसर्स लिंडसे ड्रमंड ने महात्मा गांधी के उन लेखों, भाषणों तथा वक्तव्यों के चुने हुए अंश एक पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किये, जो उन्होंने अगस्त १९४२ में अपनी गिरफ्तारी से पहिले दिये थे। पुस्तिका में प्रकाशक ने साथ में कोई टिप्पणी या भूमिका तक नहीं दी थी और उसका उद्देश्य सिर्फ जनता का ज्ञान-वर्द्धन था।

सर रिचार्ड आकलैंड के नेतृत्व में जो नई कामनवेल्थ पार्टी संगठित हुई वह भी भारत के सवाल में दिलचस्पी रखनेवाली संस्थाओं के साथ मिल गई। जुलाई के पहले सप्ताह में प्रधानमंत्री चर्चिल ने गिल्ड हाल में एक भाषण दिया। यह भारत के सम्बन्ध में उनका पहिला भाषण था, जिस में उन्होंने प्रतिक्रियावादी रुख नहीं प्रकट किया था। आप ने कहा कि ताज के सुनहले चक्र की अधीनता में जो विभिन्न जातियां आंशिक रूप से विजय-द्वारा, आंशिक रूप से रजामंदी

से, किन्तु अधिकांश में किसी योजना के बिना ही स्वाभाविक रूप से एक दूसरे के जो संपर्क में आ गई हैं इसे मैं 'बृटिश राष्ट्रमंडल और साम्राज्य' की संज्ञा देना ज्यादा पसंद करता हूं। मि० चर्चिल ने आगे कहा— "यह एक असाधारण प्रभाव और भावना है, जिसके कारण कनाडा आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड और दक्षिण अफ्रीका अपने जवानों को समुद्र-पार लड़ने और मरने के लिये भेजते हैं। भारत के विस्तृत उप-महाद्वीप में, जिसे अभी ब्रिटिश राष्ट्रमंडल में पूर्ण संतोष प्राप्त होनेवाला है, कितनी ही लड़ाकू व अन्य जातियां शाही झंडे के नीचे आगयी हैं।" यहाँ 'अभी' से मतलब सप्ताहों या महीनों का नहीं बल्कि वर्षों से है।

बाद में ब्रिटिश कौंसिल आफ चर्चेज ने भी भारत को सहायता का वचन दिया। प्रोफेसर जोड, प्रोफेसर हेरल्ड लास्की, मि० क्लीमेंट डेवीज, आर्क डीकन आफ वेस्टमिनिस्टर, सर रिचार्ड ग्रेगरी, सर अर्नेस्ट बेनेट, प्रोफेसर नारमन बेनविच व बरमिंघम और ब्रेडफोर्ड के बिशप व दूसरे कितने ही प्रमुख व्यक्तियों के हस्ताक्षरों से ६ अगस्त को एक अपील निकाली गयी कि नेताओं की गिरफ्तारी की पहली सालगिरह के अवसर पर भारत-सम्बन्धी नीति में संशोधन किया जाय।

सर आलफ्रेड वाटसन-जैसे कट्टरपंथी ने भी भारत के साथ समानता का व्यवहार किये जाने का अनुरोध किया और कहा कि अब अंग्रेजों को चाहिये कि वे अपने को भारत में "मेहमान" मानें और बड़प्पन की भावना त्याग दें।

भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद की दोहरी प्रवृत्तियां देखने में आती हैं। यहां साम्राज्यवाद प्रायः अंतिम सांस ले रहा है। फिर भी मिटे हुए साम्राज्यवाद व शेष रहे साम्राज्यवाद में निरंतर संघर्ष जारी है। पहिले महायुद्ध में ब्रिटेन को जो-कुछ मिला था उसे बनाये रखने के लिए वह बहुत ही चिन्तित है। 'लाइफ' पत्रिका के सम्पादकों ने उसपर आरोप किया है कि यह युद्ध वह साम्राज्य बनाये रखने के लिए कर रहा है। इसका जवाब ब्रिटेन की तरफ से सिर्फ यही दिया जा सकता है कि वह तो सिर्फ जो-कुछ है उसी को कायम रखना चाहता है। उपनिवेशों की तरफ से लड़ने के के एवज में यह लाभ तो उसे मिलना ही चाहिए। मि० एमरी जब उपनिवेश-मंत्री थे तो उन्होंने कहा था कि ब्रिटेन को उपनिवेशों में बसने के लिए अधिक अच्छी किस्म के अंग्रेज भेजने चाहिए। साम्राज्यवादियों में एमरी और चर्चिल का साथ खूब मिला है। एमरी और लिनलिथगो की जोड़ी भी खूब है। वे जुड़वाँ भाइयों की तरह हैं। उनकी तुलना डेविड और जोनेथन व डेमन और थियास से की जा सकती है। इन के शरीर दो होते हुए भी आत्मा एक है। दो जीभ होते हुए भी आवाज एक ही है। ८ अगस्त, १६४० को लिनलिथगो जो-कुछ कहते हैं वही एमरी १४ अगस्त को कामंस सभा में दोहरा देते हैं। यदि भारत मंत्री १६४३ में गांधीजी व कांग्रेसी नेताओं से "स्पष्ट आश्वासन व प्रभावपूर्ण गारंटी" की मांग करते हैं तो वाइसराय "प्रस्तावों की वापसी, हिंसा की निंदा व राजनीति में फिर से भाग लेने से पूर्व ऐसी गारंटी करने की, जो सरकार को मंजूर हो," मांग करते हैं। चर्चिल, एमरी और लिनलिथगो की आपस में खूब बनती है। चर्चिल के मन में इच्छा उत्पन्न होती है, एमरी योजना बनाते हैं और लिनलिथगो उसे कार्यान्वित करते हैं। ये वस्तुतः ब्रिटिश साम्राज्यवाद के क्रमशः आत्मा, मस्तिष्क और शरीर हैं। वह उत्तरदायी शासन का हामी नहीं है। कनाडा के ठंडे मैदानों व आल्पस के पर्वतों के लिए जो रोयेंदार कोट उपयोगी है वह कलकत्ता और दिल्ली की गर्मी के लायक नहीं है। अगस्त १६१७ में घोषणा करके मांटेगू ने गलती की थी, किन्तु उसका मसविदा चतुर यहूदी ने नहीं, बल्कि अभिमानी अंग्रेज लार्ड कर्जन ने तैयार किया था। १६४५ का कानून तैयार करते समय यह ध्यान रक्खा गया कि

देश के भीतर स्वाधीनता की शुद्ध वायु आने का रास्ता खुला न रह जाय। परन्तु लार्ड लोथियन ने (परमात्मा उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करे) मताधिकार की जो योजना बनाई थी, उस ने गजब कर दिया। ६ करोड़ वोटरों ने अधिकांश सीटों के लिए सिर्फ कांग्रेसजनों को चुनकर ही नहीं भेजा, बल्कि अधिकतर प्रान्तों में शक्ति कांग्रेस के हाथ में आ गयी। कांग्रेस की आँखें शक्ति से चका-चौंध हो गईं और वह पागल हो उठी। चर्चिल कांग्रेस को कुचलना चाहते थे। एमरी ने उसे कैद में डालने की ऐसी योजना बनाई कि प्रान्तों में उस के प्रभाव का नाम-निशान भी न रह जाय। युद्ध-नीति एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त को विजय करते हुए आगे बढ़ने की थी, जिस प्रकार अमरीका ने प्रशान्त-महासागर में जापान से एक-एक कर के द्वीप छीना था। योजना यह थी कि कांग्रेस के जेल से बाहर आने पर देश की हालत यह होनी चाहिए कि पांच प्रान्तों में लीग के मंडल व शेष प्रान्तों में गैर-कांग्रेसी दलों के संयुक्त मंत्रिमंडल काम कर रहे हों, हरिजन कांग्रेस के खिलाफ विद्रोह कर दें, सिख अकेले पड़ जायँ और दक्षिण में जस्टिस पार्टी को फिर से अधिकार प्राप्त हो जाय। ब्रिटिश साम्राज्यवादियों का खयाल था कि प्रान्तों में नयी अवस्था कायम होने पर साधारण कैदियों की तरह कांग्रेसजन भी घर पहुंच कर अपना सत्यानाश देखें और निर्वाचन-क्षेत्रों में समर्थकों के अभाव से चिन्ता में पड़ जायँ। यही विलिंगडन ने १९३४ में सोचा था, किन्तु उन्हों ने आश्चर्य के साथ देखा कि केन्द्रीय असेम्बली के चुनाव में कांग्रेस की अभूतपूर्व विजय रही। सर सैमुएल होर, लार्ड जेटलैंड, और मि० एमरी ने भी १९३६ ३७ में यही ख़याल किया था, किन्तु १९३७ में प्रान्तीय असेम्बलियों के चुनाव में कांग्रेस की फिर जीत रही। चुनाव बड़े खतरनाक होते हैं। यह आशा नहीं की गयी थी कि ६ करोड़ वोटर प्रगतशील शक्तियों का ऐसी खूबी से साथ देंगे और जिन जमींदारों ने तैयारी में कोई कसर न छोड़ी थी, वे इस बुरी तरह पराजित होंगे। इसीलिए प्रान्तीय असेम्बलियों का चुनाव हुए १९४३ में छः वर्ष और १९४५ में आठ वर्ष हो चुके थे। केन्द्रीय असेम्बली का चुनाव १९३४ में हुआ था और १९४५ में उसे ११ वर्ष हो चुके थे। इसीलिए असेम्बलियों की बैठक छः महीने तक नहीं की गयी। जहां ज़रूरत पड़ती थी, ९३ धारा के अनुसार स्थापति सरकारें बजट पास करा लेती थीं। किसी महत्वाकांक्षी नेता को बुला कर प्रधानमंत्री बना देना कठिन न था। सिंध, पंजाब, बंगाल, आसाम और सीमाप्रान्त में लीग की तूती बोल रही थी। उड़ीसा में नेतृत्व के लिए एक ज़मीदार आगे बढ़ा। शेष प्रान्तों में महासभा के हाथों में अधिकार क्यों न सौंप दिया जाय? इस प्रकार शक्ति का बंटवारा नये सिरे से हो। यही सोच कर, नौकरशाही ने खानबहादुरकी उपाधि छोड़ने पर सिंध के प्रधानमंत्री को बर्खास्त कर दिया। असेम्बली के समर्थन से भी अधिक गवर्नर की इच्छा का महत्व था। आइये, सिंध, बंगाल, सीमाप्रान्त तथा अन्य प्रान्तों की परिस्थिति का जरा विस्तार से अध्ययन करें।

: २० :

मन्त्रि-मण्डल

जिन सूबों में लीग की हुकूमत है उनमें सबसे बड़ा होने की वजह से बंगाल की अहमियत सबसे ज्यादा है। दिसम्बर, १९४१ में फजलुल हक ने प्रधानमन्त्री के पद से इस्तीफा दे दिया था और गवर्नर ने उनसे अपनी वज़ारत नये सिरे से कायम करने को कहा था। नयी वज़ारत बनाते समय फजलुल हक ने कुछ लीगी वज़ीरों से अपना पीछा छुड़ाया था और लीग वाले इसे आसानी से नहीं सह सके। उन्होंने डेढ़ साल तक इन्तज़ार किया और इस अरसे में बहुत-कुछ हो गया। लड़ाई बंगाल की पूर्वी सरहद तक आ गई। फेनी और चटगांव जापानी बममारों के निशाने बन गये। अन्न के मसले की वजह से मुल्क के ऐसे दूर-से-दूर हिस्से भी लड़ाई की दिक्कत महसूस करने लगे, जिन्हें शायद ही कभी कोई बममार, टैंक, ब्रेनगन, राइफल, रिवाल्वर या सिपाही देखने को मिला हो। अन्न की बेहद कमी के अलावा वज़ीरों के काम में गवर्नर की रोजमर्रा की दस्तन्दाजी ने भी उनके धीरज का खात्मा कर दिया। मिदनापुर के अत्याचारों व ढाका के गोलीकाण्ड के लिये सार्वजनिक जांच की मांग की गई, जो ठीक ही थी। प्रधानमन्त्री ने जांच कराना मंजूर कर लिया। पर गवर्नर ने जांच की मंजूरी नहीं दी। यह भीतरी झगड़ा नवम्बर के आख़िरी हफ्ते तक इतना बढ़ा कि डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने इस्तीफा दे दिया, जो महान् विचारपति आशुतोष मुखर्जी के पुत्र हैं। जिस तरह पिता ने अपने जमाने में कलकत्ता विश्वविद्यालय की वाइस-चांसलरी बड़ी योग्यता से की थी उसी तरह पुत्र भी अपने वक्त में उसी विश्वविद्यालय के वाइस-चांसलर रह चुके थे।

प्रतिहिंसा की आग धधक रही थी। भावी के लेखे को कौन मेट सकता था। राजनीति, राष्ट्रीयता या साम्प्रदायिकता के बारे में फजलुल हक के कोई सुनिश्चित विचार नहीं थे। १९४०-४१ में ढाका के दंगे से पहले कुछ उत्तेजनापूर्ण भाषण देकर वे बता चुके थे कि मुसलमानों को क्या करना चाहिए और उनमें क्या करने की ताकत है। १९४० में लीग के लाहौरवाले अधिवेशन में पाकिस्तान का प्रस्ताव उन्होंने पेश किया था। कुछ समय तक वे पक्के लीगी बने रहे; पर १९४२ के फरवरी महीने में उन्होंने अपने विचार बदल दिये। बंगाल के अखबारों में एक उग्र विवाद उठ खड़ा हुआ, जिसमें उन्होंने लाहौरवाले प्रस्ताव का मतलब नये सिरे से समझाते हुए कहा कि लीग की योजना बंगाल पर नहीं लागू हो सकती। हक साहब कभी उत्साही लीगी थे, पर अब वे उससे हाथ धोने की चेष्टा कर रहे थे। ऊपर बताये अर्से में फजलुल हक के विरुद्ध जहाँ एक तरफ अनुशासन की कार्रवाई करने का विचार हुआ वहाँ दूसरी तरफ १९४२ के शुरू में उन्होंने फिर से लीग में सम्मिलित होने का प्रयत्न भी किया।

यह बीच का काल समाप्त होने पर प्रधानमन्त्री के रूप में मियां फजलुल हक की स्थिति

कुछ सन्दिग्ध हो गयी। कुछ तो भीतरी हमलों की वजह से और कुछ शासन-सम्बन्धी ऐसे कार्यों के कारण, जो उन्हें करने ही चाहिए थे, दिसम्बर, १९४२ का संकट उत्पन्न हुआ। लीग पार्टी उनके शासन-प्रबन्ध पर ज़ोरदार हमले करने लगी। फिर भी फजलुल हक अपनी जगह पर कायम रहे। उनके पक्षवाले सदस्यों की संख्या कुछ घटी तो जरूर थी, फिर भी २५० की असेम्बली में १५० का बहुमत अभीतक उनके पक्ष में था। यूरोपियन दल ने लीग का साथ देकर परिस्थिति को और भी बिगाड़ दिया। इसके अतिरिक्त, कितनी ही बातों के सम्बन्ध में मि० हक का सरकार से मतभेद हो गया, जिनमें कुछ थीं—अन्न के मसले पर उनका वक्तव्य, उनका यह सीधा जवाब कि कम-से-कम एक जगह रेलवे लाइन पर काम करनेवाले निर्दोष मजदूरों पर गोली चलायी गयी और ढाका के गोलीकांड व मिदनापुर के अत्याचारों के सम्बन्ध में उनके द्वारा दिये गए जांच कराने के वचन। फरवरी, १९४३ में मियां हक को दोतरफे हमलों का सामना करना पड़ रहा था। गवर्नर उनके अधिकारों में जो हस्तक्षेप करते जा रहे थे वह उनके लिए असहनीय होता जा रहा था और दूसरी तरफ वह असेम्बली में इस पर रोशनी भी नहीं डाल सकते थे।

एक सार्वजनिक सभा में भाषण देते हुए मियां हक ने बताया कि पिछली वज़ारत कायम होने के समय से शायद ही कोई ऐसा दिन हुआ हो, जब उनका गवर्नर, विशेष स्वार्थों के प्रतिनिधियों या सरकारी कर्मचारियों से महत्त्वपूर्ण विषयों पर संघर्ष न हुआ हो।

अगस्त, १९४२ में गोलीकांड के बाद ही वे ढाका गये थे और राजनीतिक नजरबन्दों से उसका हाल सुना था। उन्हें खुद जांच की आवश्यकता महसूस हुई थी। असेम्बली के सभी दलों ने जांच की मांग की थी और तब उन्होंने जांच-समिति नियुक्त करने का वचन दे दिया था। मि० हक ने गवर्नर को बताया था कि समिति नियुक्त करने की मांग सभी दलों की तरफ से की गयी थी।

कई बार प्रधानमन्त्री ने समिति के लिए नाम उपस्थित किये, लेकिन गवर्नर ने उन्हें मंजूर नहीं किया और न इस सम्बन्ध में कभी समिति नियुक्त ही हुई।

मिदनापुर की घटनाओं के सम्बन्ध में हक साहब ने कहा कि वे कुछ सरकारी अफसरों के विरुद्ध लगाये गए आरोपों की जांच कराना चाहते हैं। पर गवर्नर ने ट्रिब्युनल नियुक्त करने की इजाज़त नहीं दी।

मि० हक ने यह भी बताया कि शत्रु के हाथ में अन्न न पड़ने देने के विचार से उन जिलों से, जहां फालतू अन्न था, अन्न हटाये जाने का कार्य उनकी अनुमति के बिना ही किया गया।

हक साहब के इस्तीफे और उस इस्तीफे की गवर्नर-द्वारा मंजूरी से असेम्बली में सनसनी फैल गयी। यहां तक कि मुसलिम लीग दल भी, जो मि० हक को हटाने के लिए प्रयत्नशील था, इस आश्चर्यजनक घटना के लिए तैयार न था। जब कांग्रेसी दल के नेता श्री किरणशंकर राय के प्रश्न के उत्तर में प्रधान-मन्त्री ने यह वक्तव्य दिया उस समय मुसलिम लीगी दल के नेता सर नजीमुद्दीन व एच० एस० सुहरवर्दी असेम्बली में उपस्थित न थे। मुस्लिम लीगियों के आश्चर्य का पता केवल इसी बात से लगता है कि मि० हक के इस वक्तव्य को सुनने के बाद उन्होंने किसी किस्म का प्रदर्शन नहीं किया। उनके मित्र यूरोपियनों के भी नेता सभा में उपस्थित नहीं थे और जो यूरोपियन सदस्य उपस्थित थे उनकी संख्या बहुत कम थी।

३० मार्च को मियां फजलुल हक ने बताया कि जब वे गवर्नमेंट हाउस पहुंचे उस समय

उनके इस्तीफे का टाइप किया पत्र तैयार था और उनके पास दो ही रास्ते थे या तो उस पर हस्ताक्षर करना और या अपने बर्खास्त किये जाने के लिए तैयार रहना। गवर्नमेंट हाउस में मि० फजलुल हक को टाइप किये इस्तीफे पर हस्ताक्षर करने को कहा गया—इस घटना पर सरकारी व कांग्रेस दलों ने 'शर्म' 'शर्म' के नारे लगाये।

डा० एन० सान्याल (कांग्रेस) ने कहा—'हम अनुभव करते हैं कि सभा को सर्व-सम्मति से गवर्नर सर जान हर्बर्ट के वापस बुलाये जाने की मांग करनी चाहिए।''

आखिर २९ दिन के इंतजार के बाद बंगाल की वजारत फिर से बनायी गयी, किन्तु अब की बार उसका रूप कुछ और ही था। सर नजीमुद्दीन को, जिन्हें १९४१ के बड़े दिन पर मंत्रिपद से हटाया गया था, बंगाल का प्रधान मंत्री बनाया गया। नये मंत्रि-मण्डल में छः लीगी, तीन हरिजनों के प्रतिनिधि, दो भूतपूर्व कांग्रेसी तथा एक अन्य व्यक्ति था। श्री गोस्वामी और श्री पेन कांग्रेस के टिकट पर असेम्बली में आये थे। पहले वे फारवर्ड ब्लाक में और फिर लीगी वजारत में शामिल हुए।

नयी वजारत में १३ वजीर और १७ पार्लमेंटरी सेक्रेटरी व ह्विप भारी-भारी तनख्वाहों पर रखे गये।

मि० फज़लुल हक को अपने जिन "अपराधों तथा दुर्व्यवहारों" के कारण इस्तीफा देने के लिए बाध्य किया गया उन्हें संक्षेप में इस प्रकार बतया जा सकता है :—

(१) उन्होंने राजनीतिक अड़ंगे को दूर करने व गांधीजी की रिहाई के समर्थन में बंगाल असेम्बली में एक प्रस्ताव पास कराया था।

(२) उन्होंने ढाका-गोली-कांड की खुद जांच की और असेम्बली में उसकी पूरी जांच के लिए समिति नियुक्त करने का वचन दिया था।

(३) उन्होंने मिदनापुर की घटनाओं के सम्बन्ध में भी जांच कराने का वचन दिया था, और।

(४) मुस्लिम लीग के सम्बन्ध में उनकी नीति अनिश्चित थी।

कलकत्ते की एक विशाल सार्वजनिक सभा में मि० फज़लुल हक ने गवर्नमेंट-हाउस में अपने इस्तीफे की कहानी सुनाकर गवर्नर पर विश्वासघात का आरोप लगाया।

हक-कांड की सब से मनोरंजक घटना तो गवर्नमेंट-हाउस में हुई थी। २८ मार्च को सायंकाल ७ बजे गवर्नमेंट हाउस से मि० हक को बुलावा आया कि गवर्नर उनसे मिलना चाहते हैं। मि० हक उस समय अपने साथियों से सलाह-मशविरा कर रहे थे कि मुस्लिम लीगी दल उनकी वजारत के खिलाफ जो अविश्वास का प्रस्ताव लाना चाहता है उसका कैसे सामना किया जाय। मि० हक जानते थे कि प्रस्ताव उपस्थित होने पर उनकी २७ वोटों से साफ जीत होगी।

बुलावा आने पर मि० हक लगभग साढ़े सात बजे गवर्नमेंट हाउस पहुँचे। उन्हें हाउस के निराले कोने के एक कमरे में ले जाया गया। कमरे के दरवाजे बन्द कर दिये गये। भीतर गवर्नर, उनके सेक्रेटरी, मि० विलियम्स तथा मियां हक के अलावा और कोई न था। मि० हक बड़े प्रसन्न थे, क्योंकि वे जानते थे कि किसी भी अविश्वास के प्रस्ताव को वे बड़ी आसानी से गिरा सकते हैं।

इधर-उधर की बात होने के बाद गवर्नर ने मि० हक को इस्तीफा देने के लिए कहा।

इससे मि० हक स्तब्ध रह गये। उन्होंने पूछा कि इस्तीफा देने का सवाल कैसे उठता है, क्योंकि असेम्बली में बहुमत तो उन्हीं के पक्ष में है ?

गवर्नर ने उत्तर दिया कि आपने असेम्बली में भाषण देते हुए जो यह कहा था कि सभी दलों की मिली-जुली सरकार के वास्ते रास्ता साफ करने के लिए मैं इस्तीफा देने को तयार हूँ, उसका मतलब इस्तीफा देना ही हुआ।

मि० हक ने उत्तर दिया कि मैं उसी हालत में इस्तीफा देने को तैयार हो सकता हूँ जब आपके विचार से मिली-जुली सरकार कायम होने की सम्भावना हो। श्री हक का आशय यह था कि अगर उनके अपने पद पर रहने से मिली-जुली सरकार कायम होने में बाधा पड़ती हो तो ऐसी सरकार बनते ही वे इस्तीफा देने को तैयार हैं। श्री हक ने गवर्नर को यह भी सूचित किया कि अभी ऐसी कोई सरकार कायम होने की सम्भावना नहीं है, इसलिए उनके इस्तीफे का सवाल नहीं उठता।

गवर्नर ने अपने जवाब में स्वीकार किया कि अभी मिली-जुली सरकार कायम होने की सम्भावना नहीं है। लेकिन मि० हक के इस्तीफा दिये बिना दूसरे दलों के नेताओं को मिली-जुली वजारत बनाने के लिए नहीं बुलाया जा सकता और इसीलिए उनसे इस्तीफा देने को कहा जा रहा है। गवर्नर ने हक साहब को आश्वासन दिया कि आवश्यकता पड़े बिना वे इस्तीफे को काम में नहीं लावेंगे। इस्तीफे को केवल इसीलिए मांगा जा रहा है ताकि ज़रूरत पड़ने पर उसे दूसरे दलों के नेताओं को दिखाया जा सके।

मि० फजलुलहक ने कहा कि इसका मतलब यही है कि उनसे इस्तीफा विरोधी पक्ष को प्रलोभन देने के लिए ही दिलाया जा रहा है।

२१ दिन बाद २८ अप्रैल, १९४३ को सर नजीमुद्दीन की सरकार कायम हुई। प्रान्तीय असेम्बली की बैठक जुलाई के पहले सप्ताह में हुई। बीच के काल में सर नजीमुद्दीन को अपनी शक्ति बढ़ाने का अवसर मिल गया। इस प्रकार प्रान्तीय असेम्बली में स्पष्ट बहुमत प्राप्त करके उन्होंने अपना कार्य आरम्भ कर दिया, जिस का सब से महत्वपूर्ण भाग बजट पास करना था। असेम्बली के सामने सवाल यह था कि हक वजारत ने बजट की जो १८ मदें पास कर दी थीं उन्हें अधिवेशन भंग होने और बीच में धारा ९३ की व्यवस्था होने के बावजूद पास माना जाय, या पूरे बजट को पास कराने के लिए उन्हें भी फिर से पेश किया जाय ? विरोधी दल ने बजट के पास किये गये भाग के सिलसिले में शेष भाग को पास कराने पर आपत्ति उठाई। बजट सदा एक और अखंड होता है। उस के विभिन्न भागों और विभागों की मदों को सिर्फ सुविधा के ही खयाल से अलग-अलग पास किया जाता है। २८ मार्च की रात को मियां फजलुल हक ने गवर्नर से यह भी कहा था कि बजट के मध्य में उन के इस्तीफे से अनेक कठिनाइयां उठ खड़ी होंगी, क्योंकि बजट के खंड नहीं हो सकते। गवर्नर ने उन की इस आपत्ति पर कोई ध्यान नहीं दिया। इस प्रकार २८ मार्च को गवर्नर ने जो-कुछ किया था उसका फल सर नजीमुद्दीन को ६ जुलाई के दिन उठाना पड़ा। यह फल बड़ा कटु था। गवर्नर ने ९३ धारा के अनुसार जो बजट पास किया तो उसमें पहले पास हुई १८ मदों को भी शामिल कर लिया। इससे सिद्ध हो गया कि उन १८ मदों का पास होना जायज नहीं माना गया। नये प्रधानमंत्री ने इस के विपरीत यह दलील दी कि यदि बजट का एक भाग पास हो चुका है तो उस के शेष भाग को अलग से भी पास किया जा सकता है। इस के अतिरिक्त, जितने दिन गवर्नर ने धारा ९३ के

अनुसार शासन किया उतने दिन में खर्च हुई रकम अनिश्चित थी, जिस के परिणामस्वरूप खजाने में आय और व्यय की रकमों का हिसाब भी अनिश्चित हो गया और जिन मदों में आय और व्यय की रकमें निश्चित न हों, उन का बजट ही कैसे बन सकता है। एक बार आसाम और उड़ीसा में मंत्रियों ने आर्थिक वर्ष के मध्य में पद-ग्रहण किये थे तो वहां आय और व्यय के ठीक-ठीक आंकड़े प्राप्त हुए थे और यदि आसाम और उड़ीसा में आंकड़े मिल गये तो बंगाल में क्यों नहीं मिल सकते? इस विचार से असेम्बली के अध्यक्ष के आगे खंड-बजट पास करने की अनुमति देना असम्भव हो गया। सच तो यह है कि गवर्नर ने मियां फजलुल हक से इस्तीफा दिलाने में जो जल्दबाजी की थी उसी के कारण यह परेशानी हुई। परन्तु गवर्नर के जल्दबाजी करने का भी एक विशेष कारण था, क्योंकि इस्तीफा की बात उठाने के बाद यदि गवर्नर उसे प्राप्त न कर लेते तो मि० हक विश्वास का प्रस्ताव पास करके अपनी स्थिति को सुदृढ़ बना सकते थे। मि० हक ने दिसम्बर १९४१ में जब से अपनी दूसरी वजारत कायम की थी तभी से गवर्नर उन्हें प्रधानमंत्री के पद से हटाने की चेष्टा कर रहे थे, किन्तु यदि मि० हक के पक्ष में विश्वास का प्रस्ताव पास हो जाता—चाहे वह कितने ही अल्प बहुमत से क्यों न होता—तो उनकी रक्षा हो जाती और तब गवर्नर उन्हें कभी भी अपदस्थ नहीं कर पाते। यह लम्बा विवरण यह प्रकट करने के लिए दिया गया है कि तथाकथित मन्त्री-नियंत्रित प्रान्तों में भी गवर्नरों की स्वेच्छाचारिता कितनी अधिक बढ़ी हुई थी।

बंगाल-असेम्बली में जिन दो महत्वपूर्ण घटनाओं ने सनसनी पैदा कर दी थी उन में बजट की समस्या पहली थी। दूसरी घटना मि० फजलुल हक द्वारा गवर्नर की इस स्वेच्छाचारिता-पूर्ण कार्रवाई का रहस्योद्घाटन थी। इससे प्रकट हो गया कि किस तरह उन्होंने कानून और विधान को उठा कर ताक पर रख दिया और सेक्रेटेरियेट की सहायता से निरंकुश शासक की तरह कार्य किया। मि० हक ने २ अगस्त १९४२ को ही सुनिश्चित किन्तु मर्यादापूर्ण शब्दों में अखंडनीय तथ्यों को उपस्थित करके गवर्नर का ध्यान उनके निरंकुश शासन की ओर आकर्षित किया था। मि० हक ने असेम्बली में जो पत्र-व्यवहार पढ़ कर सुनाया वह भी आश्चर्यपूर्ण था। गवर्नर ने अपने मंत्रियों की सलाह के विरुद्ध अपने एक सेक्रेटरी को २० लाख रुपये चावल की खरीद पर व्यय करने का आदेश दिया। उन्हों ने मिदनापुर के कथित अत्याचारों के सम्बन्ध में जांच का वचन देने के लिए प्रधानमंत्री से जवाब तलब किया। ढाका की घटनाओं के सम्बन्ध में प्रधानमंत्री ने जब जांच कराने का आश्वासन दिया तो इस पर भी गवर्नर नाराज हुए। इतना ही नहीं, चटगांव के निकट फेनी में सैनिकों-द्वारा स्त्रियों पर अत्याचार होने का समाचार मिलने पर जब वे स्वयं तहकीकात करने के लिए जाने लगे तो गवर्नर ने इस में भी बाधा डालनी चाही। बंगाल के गवर्नर के इन निरंकुश कार्यों से हमें चार्ल्स दूसरे और जार्ज तीसरे के दिनों का स्मरण हो आता है। इस के लिए कम-से-कम सजा यह होनी चाहिए थी कि गवर्नर को पद से हटा कर इंग्लैंड वापस बुला लिया जाता। परन्तु प्रान्त के प्रधानमंत्री-द्वारा लगाये सभी आरोपों का उत्तर तक देने की जरूरत तक उन्होंने महसूस नहीं की। ऐसे प्रान्तों का मंत्रियों के अधीन होना एक मजाक ही कहा जायगा। और यह कहना कि मि० हक का इस्तीफा तो एक घटना मात्र थी, और भी बुरी बात है, किन्तु मि० एमरी ने यही कहा था। सब से बुरी बात तो यह थी कि मंत्रियों के अधीन कर्मचारी गवर्नर के कहने पर मंत्रियों की मर्जी के खिलाफ आदेश निकालते थे। इन सभी विषयों में, जिन में से एक भी गवर्नर के विशेषाधिकार के अंदर नहीं आता था, गवर्नर का आचरण निरंकुशतापूर्ण तथा व्यक्तिगत शासन ही था। यदि इन में किसी विषय को

गवर्नर के विशेषाधिकार के अंतर्गत मान भी लिया जाय तब भी वे पार्लीमेंट की संयुक्त समिति की इस सिफारिश को नहीं भूल सकते थे, जिस में कहा गया था कि "गवर्नर को निःसंदेह हरेक मामले में निर्णय करने से पहले अपने मंत्रियों से सलाह लेनी पड़ेगी।" इस से प्रकट है कि यह तर्क भी कि अमुक विषय गवर्नर की खास जिम्मेदारी थी, उन्हें दोष से मुक्त नहीं कर सकता, क्योंकि मंत्रियों से सलाह लेना तो उन के लिए लाजिमी ही था। एक बार मंत्रियों की सलाह लेने के बाद ही गवर्नर उस सलाह के विरुद्ध कार्य करने के अधिकारी होते थे। शासन-सुधार-कानून में कहीं भी यह नहीं कहा गया कि गवर्नरों को मंत्रियों की मर्जी के खिलाफ अन्य कर्मचारियों से मिलकर सीधे काम करने की अनुमति है। हमारे कहने का यह मतलब नहीं कि गवर्नर को सेक्रेटरियों या विभागों के प्रधानों से मिलने का हक नहीं है, किन्तु यह जानकारी मंत्रियों की जानकारी में ही होनी चाहिए। मि० हक के आरोप यथार्थ सिद्ध होने पर गवर्नर का बुला लिया जाना ही लाजिमी था।

युद्धकाल में इन स्वाधीन कहे गये प्रान्तों में मंत्रिमंडल गवर्नरों की दया पर और उन्हीं की मर्जी से चल रहे थे। विशेषकर बंगाल में गवर्नर चाहते तो मंत्रियों से सलाह लेते थे, नहीं तो नहीं; और सरकार के निर्णयों पर भी गवर्नर का ही प्रभाव अधिक होता था। जहां हक-वजारत को अनुचित तरीके से हटाया गया—क्योंकि वह अविश्वास का प्रस्ताव पास होने के बाद भंग नहीं हुई थी—और कितने कार्य करने अथवा न करने के लिए उस की निन्दा की गयी, नजीमुद्दीन-वजारत को उन्हीं समस्याओं के हल करने में असमर्थ होने पर भी कायम रहने दिया गया। गवर्नरों का तो यह कहना था कि कोई वजारत रहे या नहीं, उसे गवर्नर का आदेश अवश्य मानना चाहिए। जब तक वजारत गवर्नर की बात मानने को तैयार रहती थी तब तक उस पर कोई आंच नहीं आ सकती थी और जब तक गवर्नर वजारत के पक्ष में रहता था तब तक बहुमत भी उस के साथ होता था। फजलुल हक की वजारत कुछ समय तक गवर्नर के इशारे पर नाचती रही, किन्तु जब उसका धीरज हाथ से छूट गया तभी वह भंग हो गयी और उसका स्थान सर नजीमुद्दीन की वजारत ने लिया। गोकि तीन महीने के शासन-काल में इस वजारत ने सिर्फ ३०० कैदियों को रिहा किया, अन्न की हालत भी फजलुल हक के समय-जैसी ही रही और अन्न की समस्या की चर्चा चलाने पर प्रतिबंध रहा, फिर भी उस के पक्ष में ४८ का बहुमत हो गया, जो यथार्थ में गवर्नर का समर्थन पाने के ही समान था। कांग्रेसी वजारतें ऐसी हालत में कैसे काम करतीं ?

जिस समय बंगाल में फजलुल हक की वजारत को हटाया गया, उस समय प्रान्तीय असेम्बली में बहुमत उसके खिलाफ न था। यह सच है कि उनका बहुमत १५ या २० सदस्यों का—यानी पहले से आधा रह गया था, फिर भी इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि बहुमत उन्हीं के पक्ष में था। बंगाल के गवर्नर स्वर्गीय सर जान हर्बर्ट ने फजलुल हक और उन के दल को अपदस्थ करना ही उचित समझा और उन की गद्दी पर सर नजीमुद्दीन को ला बैठाया। नये प्रधानमंत्री को भी १९४४ के फरवरी व मार्च महीनों में वैसे ही संकट से गुजरना पड़ा। १२ फरवरी, १९४४ को वजारत एक बिल के ढांचेमात्र को १५ के बहुमत से पास करा सकी। पहली मार्च को अर्थ-मंत्री के इस प्रस्ताव पर कि १९४१-४२ में बजट में मंजूर एक रकम से अधिक हुए खर्च को स्वीकार किया जाय, सरकारी पक्ष और विरोधी पक्ष का समर्थन करनेवाले सदस्यों की संख्या बराबर रही और तब केवल अध्यक्ष के एक वोट से ही सर नजीमुद्दीन वजारत

की इज्जत बच सकी। अफवाहें फैल रही थीं कि नये गवर्नर मि० केसी एक मिली-जुली वजारत कायम करना चाहते हैं। यदि बंगाल के युद्ध-क्षेत्र से नजदीक होने के कारण सर जान हर्बर्ट अपने समय में एक मिली-जुली सरकार कायम करना चाहते तो उन्हें कोई दोष नहीं देता। यदि मार्च, १९४४ में मि० केसी मिली-जुली सरकार कायम करने की चेष्टा करते तो वह इसलिए नहीं कि उस समय सर नजीमुद्दीन-वजारत के लिए अल्प बहुमत या बहुमत का अभाव था, बल्कि इसलिए कि युद्ध-जन्य परिस्थितियों का ऐसा तकाजा था।

जून १९४४ में बंगाल का घटनाचक्र एक विशेष दिशा में घूम गया। गवर्नर मि० केसी ने अपनी आंखों से देखा कि बंगाल असेम्बली किसी बड़े प्रान्त की धारा-सभा की अपेक्षा मछली-बाजार ही अधिक जान पड़ती थी। कम-से कम गवर्नर को दो बातें तो साफ समझ में आ गयीं। पहली तो यह कि शिक्षा-बिल का विरोध काफी अधिक था और दूसरी यह कि विरोध सिर्फ हिन्दुओं की तरह से न होकर मिला-जुला था। श्री बी०पी० पेन के विरुद्ध निन्दा का प्रस्ताव ११९ के विरुद्ध सिर्फ १०६ वोटों से ही गिरा था। वोटों के हिसाब से प्रकट हुआ कि ११९ वोटों में से १९ वोट तो सिर्फ यूरोपियनों के ही थे, जिसका मतलब यह हुआ कि यूरोपियनों को छोड़कर सरकार के पक्ष में सिर्फ १०० सदस्य ही थे और उसके विरुद्ध १०६ सदस्य थे। सरकार के पक्ष में जो ११९ सदस्य थे उनमें से १९ यूरोपियनों के अतिरिक्त ३ एंग्लो-इंडियन, ३ मंत्रियों को मिलाकर, ४ सवर्ण हिन्दू, ८० मुसलमान और १३ दलित जातिवाले सदस्य थे। प्रान्तीय असेम्बली में अध्यक्ष को मिलाकर मुस्लिम सदस्यों की संख्या १२३ थी, जिनमें से विरोधी-दल में ४२ थे। दूसरे शब्दों में प्रस्ताव के विरुद्ध पड़े कुल वोटों में ४२ यानी मोटे हिसाब से ४० प्रतिशत मुसलमानों के थे। ये आंकड़े पुरअसर थे। इनके अलावा, मंत्रियों के खिलाफ निन्दा के भी प्रस्ताव उपस्थित किये गये। वजारत के खिलाफ १०६ वोट पड़ना और यूरोपियनों को छोड़कर उसके पक्ष में सिर्फ १०० वोट रह जाना खतरनाक हालत थी। इसलिए गवर्नर ने चुपचाप असेम्बली को स्थगित कर दिया। ऐसा करने में उनका उद्देश्य आखिर क्या था? यह एक स्वाभाविक प्रश्न है? मि० केसी के वक्तव्य से कि मंत्रिमंडल के पक्ष में स्पष्ट बहुमत है, प्रकट हो गया कि गवर्नर महोदय उसके समर्थक हैं और साथ ही यह भी जाहिर हो गया कि मन्त्रिमण्डल इस समय वैसे ही संकट में पड़ा था, जैसे संकट में मि० फजलुल हक का मंत्रिमण्डल सर जान हर्बर्ट के समय पड़ा था। दोनों के बहुमत घट चुके थे और दोनों ही का अस्तित्व यूरोपियनों के वोटों से कायम था। परन्तु जहां स्वर्गीय सर जान हर्बर्ट ने मि० हक को 'बर्खास्त' करने का फैसला किया वहां मि० केसी ने नजीमुद्दीन वजारत का समर्थन करना ही अपना फर्ज समझा। उन्हें इस बात का ध्यान रखना चाहिए था कि असेम्बली स्थगित करने का आदेश अमल में आने से पहले एक दूसरे मंत्री के खिलाफ निन्दा के प्रस्ताव की सूचना मिल चुकी थी, और मि० केसी ने असेम्बली को स्थगित करने के आदेश के साथ जैसा वक्तव्य दिया था, वैसे वक्तव्य से उस प्रस्ताव के विरुद्ध प्रभाव पड़ता था। यदि वे वजारत को संकट से बचाना चाहते थे तो 'स्पष्ट बहुमत की तरफ सदस्यों का ध्यान आकर्षित करने के बजाय उन्हें यह साफ लफ्जों में कह देना चाहिए था। परन्तु एकदम ऐसा फैसला देने से मि० केसी के विरुद्ध अन्याय तो नहीं होता? कहीं ऐसा तो नहीं कि वे शिक्षा-बिल को अनुचित समझकर उसके संशोधन के लिए उत्सुक हों और उसमें जो कमी रह गयी थी उसकी पूर्ति करना चाहते हों और साथ ही मंत्रिमण्डल की भी रक्षा करना चाहते हों? तब तक यह स्पष्ट न था और इसके स्पष्टीकरण के लिए हमें बाद को घटनाओं का इन्तजार करना पड़ेगी!

इस सम्बन्ध में बंगाल के प्रधानमंत्री सर नजीमुद्दीन का वक्तव्य (यह अंश लाहौर के

'ट्रिब्यून' ने अपने ६-१-४५ के अग्रलेख में उद्धृत किया था) महत्वपूर्ण है। आपने एक सभा में भाषण देते हुए स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया कि "वे ऐसे उपायों द्वारा अपने हाथ में शक्ति रखे हुए हैं, जिन्हें उचित नहीं कहा जा सकता और इसीलिए उन्हें यूरोपियनों को खुश रखने के लिए भारी कीमत चुकानी पड़ी है, क्योंकि इसके बिना मौजूदा वजारत एक दिन के लिए भी नहीं रह सकती।

बंगाल में जो परिस्थिति उत्पन्न हुई उसमें यूरोपियनों का खास हाथ था। बीसवीं सदी के शुरू से भारत की व्यवस्थापिका सभाओं में यूरोपियन दल की शक्ति किस प्रकार क्रमशः बढ़ी, इसकी कहानी बड़ी दिलचस्प है। १६०६ के मिंटो-मार्ले के शासन-सुधारों से पूर्व केन्द्रीय व्यवस्थापिका कौंसिल में यूरोपियनों का सिर्फ एक प्रतिनिधि था। नया कानून पास होने पर उनकी सीटें दो कर दी गयीं — एक बम्बई के यूरोपीय व्यापारी-मंडल के लिए और दूसरी कलकत्ता के यूरोपीय व्यापारी-मंडल के लिए, और साथ ही आसाम और मद्रास-जैसे प्रान्तों की व्यवस्थापिका-सभाओं में चाय के बगीचे-जैसे स्वार्थों का भी प्रतिनिधित्व यूरोपियन ही कर रहे थे। यह स्थिति १६१६ के शासन-सुधार-कानून—मांटेगू-चेम्सफोर्ड सुधारों तक रही। नये कानून के अनुसार यूरोपियनों को केन्द्रीय धारासभाओं में १२ तथा प्रान्तीय सभाओं में ४६ सीटें मिलीं। केन्द्र की कुल सीटों में से चुनाव-द्वारा भरी जानेवाली ३ सीटें कौंसिल आफ स्टेट के लिए, और चुनाव-द्वारा भरी जानेवाली ८ सीट असेम्बली के लिए थीं। इनके अतिरिक्त असेम्बली में एक सदस्य यूरोपियन व्यापार-मंडल द्वारा नामजद होकर भी आता था। जब मुडीमेन-समिति नियुक्त हुई तो यूरोपियनों ने केन्द्रीय असेम्बली के लिए एक सीट अपने व्यापारिक स्वार्थों का प्रतिनिधित्व करने के लिए मांगी। इस सम्बन्ध में न तो मुडीमेन-समिति ने और न लोथियन-समिति ने ही कोई सिफारिश की है। यूरोपियन प्रतिनिधित्व की प्रगति नीचे की तालिका[1] में दिखायी गयी है:—

काल	केन्द्र में उच्च धारासभा	केन्द्र में निम्न धारासभा	प्रान्त में उच्च धारासभा	प्रान्त में निम्न धारासभा	कुल जोड़	फुटकर बातें
मांटेगू-चेम्सफोर्ड कानून—१६१६	३	६	×	४६	५८	
साइमन कमीशन १६२६	३	१२ से १४ तक	×	६६	८१ से ८३ तक	सिर्फ सिफारिश करता है
शंकर नायर-समिति—१६३०.	५	२०	×	६१	८६	सिफारिश करती है।
भारतीय शासन विधान—१६३५	७	१४ से १५	×	६६	६६ से ६७ तक	

इस प्रकार स्पष्ट है कि ८७८ गैर-सरकारी सीटों में से, जिनमें अधिकांश चुनाव-द्वारा भरी जाती हैं, ५८ यूरोपियनों को मिली हुई हैं। इसका मतलब यह हुआ कि एक ऐसे समुदाय को, जिसका अनुपात भारत की कुल जनसंख्या में ·०६ प्रतिशत है, ६·५ प्रतिशत प्रतिनिधित्व

[1] देखिये जनवरी १६४४ के 'माडर्न रिव्यू' में एच. डब्ल्यू मुखर्जी, एम० ए०, पी० एच० डी० का लेख—"नान-ऑफिशियल यूरोपियन्स इन इण्डियन लेजिस्लेशन।"

प्राप्त है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत बंगाल की प्रान्तीय असेम्बली में यूरोपियनों को ३० सीटें आईं और ये ३० सदस्य ही फैसला करते हैं कि किस पक्ष में बहुमत रहेगा।

सिंध की गुत्थी

युद्ध छिड़ने के समय से सिंध की राजनीति बड़ी डुलमुल रही है। इस प्रान्त में दूसरे किसी प्रान्त के मुकाबले में मंत्रि-मंडल जल्दी-जल्दी बदले गये। पहले बंदेअली खां का, फिर हिदायतुल्ला का, फिर अल्लाहबख्श का, फिर हिदायतुल्ला का दूसरा और फिर तीसरा—इस तरह कितने ही मंत्रि-मंडल कायम हुए और भंग हुए। सिंध की राजनीतिक अवस्था युद्ध से पूर्व के ब्रिटेन की अवस्था से नहीं, बल्कि युद्ध से पूर्व के फ्रांस की अवस्था से मिलती थी। अल्लाहबख्श का भूत, जो १४ मई, १९४३ को मारे गये थे, अभी तक सिंध सेक्रेटरियेट के इर्द-गिर्द चक्कर लगा रहा था। लगभग उन्हीं दिनों माल-मंत्री मि० गजदर ने इस्तीफा दिया। मृतक प्रधानमंत्री के भाई खानबहादुर मौलाबख्श की चुनाव में जीत होने पर सर गुलामहुसेन हिदायतुल्ला ने उन्हें अपने मंत्रिमंडल में स्थान दिया। इसका उद्देश्य सिंध प्रान्तीय मुस्लिम लीग के अध्यक्ष मि० सैयद के विरोध का सामना करना था। इसके लिए मि० जिन्ना ने एक तरफ तो अपने ही दल के प्रधानमंत्री का विरोध करने के लिए, जिसके परिणामस्वरूप सर गुलाम की हार हो गयी (और इसके बावजूद उन्होंने इस्तीफा नहीं दिया), मि० सैयद की कड़े शब्दों में भर्त्सना की और दूसरी तरफ उन्होंने प्रधानमंत्री सर गुलामहुसेन को बुरा-भला कहा, जिन्होंने गैर-लीगी मुसलमानों के साथ संयुक्त मंत्रिमंडल न बनाने की लीगी नीति के विरुद्ध अपने मंत्रिमंडल में मौलाबख्श को ले लिया। ये मौलाबख्श सिर्फ एक गैर-लीगी ही नहीं, एक ऐसे लीग-विरोधी मुसलमान थे, जिन्होंने लीग में शामिल होने से इन्कार कर दिया था। मि० जिन्ना ने मौलाबख्श को हटाने की जो मांग की थी उसका फल निकला। प्रधानमंत्री ने इस्तीफा देकर अपनी नयी वजारत मौलाबख्श के बिना बनाई और उनके स्थान पर सर गुलाम ने मि० सैयद के एक आदमी को रख लिया। सर गुलाम ने मौलाबख्श को पत्र लिख कर जो यह आश्वासन दिया था कि वे उनसे न तो वजारत से इस्तीफा देने को कहेंगे और न मुस्लिम लीग में सम्मिलित होने का आग्रह करेंगे। उसे उन्होंने भंग कर दिया और अपने कट्टर विरोधी मि० सैयद से सुलह करली। सिंध की लोकतंत्री राजनीति की यह हालत थी। सिंध की पेचीदी राजनीति का एक परिणाम यह भी हुआ कि सीमाप्रान्त में खान अब्दुल गफ्फार खां की रिहाई के बाद सिंध के छः प्रमुख कांग्रेसी जेलों से छोड़ दिये गये। साथ ही यह घोषणा भी की गयी कि सिंध की प्रान्तीय सरकार ने केन्द्रीय सरकार से कांग्रेस कार्यसमिति के भूतपूर्व सदस्य श्री जयरामदास दौलतराम की रिहाई की सिफारिश करदी है। यह घोषणा बड़ी दिलचस्प थी, क्योंकि एक महीने से भी कम दिन पहले इन्हीं गृह-मंत्री ने, जिनके हस्ताक्षर से अब नेताओं की रिहाई हुई थी और सिफारिश की गई थी, एक प्रश्न का उत्तर देते हुए प्रान्तीय असेम्बली में कहा था कि वे तोड़फोड़ के कार्यों के ही नहीं, बल्कि हूरों के उपद्रवों तक के जिम्मेदार हैं।

सीमाप्रान्त की वजारत

मुस्लिम लीग ने अगली वजारत सीमाप्रान्त में बनायी थी। प्रान्तीय असेम्बली में उसका बहुमत होने या न होने का सवाल नहीं था, किन्तु प्रान्तीय लीग ने अचानक ही यह कार्य कर

डाला और फिर उसकी सूचना अपनी केन्द्रीय समिति को दी। डा० खान साहब ने, जो लगातार प्रचार करने पर भी गिरफ्तार नहीं किये गये थे, सरदार औरंगजेब खां को चुनौती दी कि आप कांग्रेसी सदस्यों को जेल से छोड़कर मुकाबला कीजिये। उन्होंने कहा कि कुल ४२ सदस्यों में से, जेल में बंद आठ को मिलाकर कांग्रेस के पक्ष में कुल २३ सदस्य हैं। परन्तु इस तरह की चुनौती व्यर्थ थी, क्योंकि ब्रिटिश सरकार व मुस्लिम लीग आठ कांग्रेसियों के जेल में रहने पर भी शासन-कार्य चलाने को तैयार थीं। कांग्रेस के विरोधियों ने यह चाल जान-बूझ कर उन आठ सदस्यों के जेल जाने के बाद चली थी।

सरहदी सूबे में वजारत कायम करने के लिए तीन दलों—मुसलिम लीग, हिन्दू महासभा और सिखों का सहयोग आवश्यक था। पहला दल तो प्रधान ही था। दूसरे दल के नेता थे रायबहादुर मेहरचन्द खन्ना, जो प्रशान्त-सम्मेलन के प्रतिनिधि के रूप में विदेशों की यात्रा समाप्त करके लौटे ही थे। मेहरचन्द खन्ना और उनके दल ने वजारत में शरीक होने से इन्कार कर दिया। तीसरे दल का रुख संदिग्ध था। इसमें तीन सिख थे। एक तो मर गया, दूसरा कांग्रेसी होने की वजह से वजारत में शरीक नहीं हो सकता था—बस शेष तीसरा वजारत में शरीक हो गया।...इसका विवरण देने से पहले हम एकाध दिलचस्प बातें और बता देना चाहते हैं। सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास ने इंडियन यूनिटी ग्रुप के सदस्य के नाते एक मनोरंजक घटना बताई थी। आपने बताया कि ग्रुप के प्रतिनिधियों ने गोलमेज सम्मेलन में एकता के महत्त्व पर जोर देते हुए कहा कि भारत के हित को साम्प्रदायिकता ही ने सबसे अधिक नुकसान पहुंचाया है और अनुरोध किया कि इस संकट की घड़ी में सब को देश की कठिनाइयों को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। आपने १८५० में प्रकाशित हर्बर्ट एडवर्ड्स के इस कथन का हवाला दिया कि बन्नू के जंगली इलाके पर एक गोली या गोला चलाये बिना किस प्रकार रक्तहीन विजय प्राप्त की गयी। यह कठिन कार्य दो जातियों तथा दो मजहबों के मध्य शक्ति-संतुलन-द्वारा ही सम्भव हो गया। सिख सेना के भय से मुसलमान कबीलेवालों ने मि० एडवर्ड्स के कहने पर उन ४०० किलों को धूल में मिला दिया, जो उस प्रदेश में शक्ति के स्तम्भ थे। और उन्हीं मि० एडवर्ड्स के कहने पर सिखों ने सम्राट् के लिए एक किला खड़ा कर दिया। इस प्रकार बन्नू की घाटी ही नहीं और समस्त हिन्दुस्तान पराधीन हुआ।

अकालियों ने वजारत बनाने के प्रति अपनी नीति में परिवर्तन करने का निश्चय क्यों किया, यह एक पहेली है। वे राष्ट्रीयता के ऊंचे सिंहासन से उतर कर साम्प्रदायिकता की दल-दल में क्यों फंसे? अकालियों के नाम और उन की सफलताओं के साथ जिन वीरतापूर्ण घटनाओं का सम्बन्ध है, उन्हें कौन भूल सकता है? गुरु का बाग में उन्होंने जो यातनाएं सहीं, ननकाना साहब में उन्होंने जो कीमत चुकायी और जिस प्रकार हड्डियों व मांस के लोथड़ों की नींव पर अपने संगठन को खड़ा किया—यह भूलने की चीज थोड़े ही है। १९२१ के खिलाफत आन्दोलन से साइमन कमीशन के बायकाट के निराशापूर्ण दिनों और नमक सत्याग्रह (१९३०-३१) के तूफान तक अकालियों ने हिन्दू व मुसलमानों के साथ जो भाई-चारे का बर्ताव किया वह कभी भुलाया नहीं जा सकता। १९३० में मास्टर तारासिंह अपने ३०००० साथियों के साथ जेल गये और उसी वर्ष कराची कांग्रेस में उन्हें राष्ट्रीय झंडा समिति का एक सदस्य नियुक्त किया गया। तिरंगे झंडे में अब उसके लाल, हरे और केसरिया रंग हिन्दू, मुसलमान व अन्य सम्प्रदायों के प्रतीक नहीं रहे, बल्कि अब उन्हें पवित्रता, समृद्धि और त्याग का प्रतीक माना जाने लगा। मास्टर तारासिंह

ने इस परिवर्तन का हृदय से समर्थन किया। सिख इस परिवर्तन की मांग १६२६ के लाहौर-अधिवेशन से कर रहे थे--शायद तब तक उनकी मांग हिन्दुओं और मुसलमानों के ही समान साम्प्रदायिक आधार पर थी। सिख सदा से यही कहते आये हैं कि वे साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के खिलाफ हैं, किन्तु यदि वह मुसलमानों को दिया जाता है तो उन्हें भी दिया जाना चाहिए। इसीलिए वे रेमजे मेकडानल्ड के साम्प्रदायिक निश्चय के--जिसे गलती से साम्प्रदायिक निर्णय कहा जाता है--कट्टर विरोधी रहे हैं और उन्होंने 'निर्णय' के सम्बन्ध में कांग्रेस की "न समर्थन करने और न विरोध करने" की नीति को मंजूर नहीं किया है। क्या अकाली भी जैसा कि अंग्रेज चाहते थे, पिछले १० साल में साम्प्रदायिकता के रंग में रँग गये और अपने लाभ-हानि को साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से देखने लगे? यदि सिखों को चार बड़े पद मिल जायँ—तब भी क्या इससे उतना लाभ होता, जितना विशुद्ध राष्ट्रीयता के पथ पर चलने से मुकम्मिल आजादी पाने पर होता? अकाली सदा से पूर्ण स्वाधीनता के हिमायती रहे हैं और हजारों की संख्या में कांग्रेस में सम्मिलित होते रहे हैं। उन का पंजाब कांग्रेस समिति पर नियंत्रण रहा है और वे कांग्रेसी उम्मीदवारों के कंधे से कंधा भिड़ा कर "कांग्रेस–अकाली टिकट पर" अपनी सुरक्षित सीटों के चुनाव लड़ चुके हैं। इस के उपरान्त अकालियों की नीति में परिवर्तन हुआ। इसका कारण मुख्यतः अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष से मास्टर तारासिंह का व्यक्तिगत मतभेद होना था, जैसाकि खुद मास्टरजी कह भी चुके हैं। यह मतभेद उन के लाहौर से निर्वासन तथा १६३० में जेल जाने के बाद हुआ था। इन सब सफलताओं के बाद, जिन में अकालियों ने साहस, त्याग तथा सूझबूझ का अच्छा परिचय दिया, पंथ के द्वारा ज्ञानी करतारसिंह के नेतृत्व में सरदार अजीतसिंह का समर्थन करना वास्तव में एक दुःख की बात थी।

पाठकों को स्मरण होगा कि औरंगजेबखां की वजारत कायम होने पर प्रान्तीय असेम्बली के जो कई उप-चुनाव हुए थे उनमें एक असेम्बली के एक सिख-सदस्य की मृत्यु से खाली हुई सीट के लिए हुआ था। कुछ अज्ञात कारणों से यह उप-चुनाव हिन्दू व मुस्लिम सीटों के उप-चुनावों के साथ नहीं हुआ। गोकि सार्वजनिक रूप से इसका कोई कारण नहीं बताया गया, फिर भी उस पर प्रकाश पड़ ही गया। चुनाव २६ फरवरी, १६४४ को हुआ। जिस प्रकार पंजाब में सर सिकंदर हयातखां की मृत्यु होने पर उन के पुत्र मेजर शौकत हयातखां को उन की जगह प्रान्तीय असेम्बली में भेजा गया था उसी प्रकार सीमाप्रान्त में मृतक सिख सदस्य के पुत्र को खाली स्थान के लिए उम्मीदवार बनाया गया। ऐसा उम्मीदवार चुनने के लिए काफी समय तक वार्ता चली जो कांग्रेस और सिख दोनों को मंजूर होता, किन्तु ऐसा कोई समझौता नहीं हो सका। तब चुनाव की प्रतियोगिता हुई और कांग्रेसी उम्मीदवार ने अपने विरोधी सरदार अजीतसिंह के उम्मीदवार को ८१ वोट से हरा दिया। इस घटना का प्रभाव यह हुआ कि सब तरफ से माँग की जाने लगी कि सरदार अजीतसिंह को इस्तीफा देना चाहिए। सरदार अजीतसिंह ने कहा कि यदि यह प्रमाणित हो जाय कि मुझ पर सिखों का विश्वास नहीं रह गया है, तो मैं जरूर इस्तीफा दे दूंगा। इधर यह चर्चा चल ही रही थी कि अचानक यह समाचार फैल गया कि सिख-कांग्रेस विवाद में प्रमुख भाग लेनेवाले, मास्टर तारासिंह ने गुरुद्वारा कमेटी व अकाली शिरोमणि दल की अध्यक्षता से इस्तीफा दे दिया। मास्टरजी से इस्तीफे की मांग इस बिना पर की गयी थी कि वे बहुत समय से अध्यक्ष पद पर रहे हैं; किन्तु उन्होंने पद स्वास्थ्य बिगड़ने के कारण छोड़ा।

१२ मार्च १९४५ को सीमाप्रान्तीय असेम्बली में औरंगजेबखां की वजारत के खिलाफ अविश्वास का प्रस्ताव १८ के विरुद्ध २४ वोटों से पास हो गया।

मार्च के महीने में भारत में कांग्रेस की नीति में पहली बार परिवर्तन दिखाई दिया। औरंगजेबखां को वजारत का हार का बड़ा परिणाम हुआ, जो वैज्ञानिक दृष्टि से होना चाहिए था। गवर्नर को प्रान्त के भूतपूर्व प्रधान मंत्री डा० खान साहब को बुलाना पड़ा, जिनके अविश्वास के प्रस्ताव के कारण औरंगजेबखां के मन्त्रिमंडल का पतन हुआ था। डा० खानसाहब इस परिस्थिति के लिए पहले से ही तैयार थे। एक दूत पहले ही सेवाग्राम जा चुका था, जो गांधीजी से एक पत्र खानसाहब के नाम वापस लाया। पत्र में क्या था, इस का अनुमान किया जा सकता है। गांधीजी ने एक नयी नीति—सब-कुछ स्थानीय लोगों के निर्णय पर छोड़ देने का अनुसरण आरम्भ कर दिया था। डा० खानसाहब ने १६ मार्च को पद ग्रहण करने के बाद बताया कि उन्होंने प्रान्त की जनता की इच्छा के ही अनुसार कार्य किया है। जनता का आदेश था—"लोगों की सेवा करो—यही आप का कर्तव्य है।" गांधीजी ने सीमाप्रान्त के लिए यही नीति निर्धारित की, गोकि यह अक्तूबर, १९३९ में निर्धारित कांग्रेस की अखिल भारतीय नीति के विरुद्ध जान पड़ती थी, जिस के अन्तर्गत युद्ध छिड़ने पर ८ सूबों की वजारतों ने इस्तीफा दिया था। नयी सरकार का पहला कार्य खान अब्दुल गफ्फारखां (जो २६-१०-४२ को गिरफ्तार हुए थे) ८ अन्य प्रमुख कांग्रेसियों तथा २२ नजरबंदों को रिहाई का आदेश निकालना था। इन नजरबंदों में चार एम० एल० ए० भी थे, जिन में एक अताउल्ला साहब तो जेल से निकल कर सीधे मन्त्र पद की शपथ लेने गये।

मन्त्रि-मण्डल के परिवर्तन पर औरंगजेबखां ने जो वक्तव्य दिया वह बड़ा उल्लेखनीय था। उन्होंने कहा कि मन्त्रि-मण्डल चाहे लीग का हो या कांग्रेस का, वह ९३ धारा के शासन से हर हालत में बढ़ कर है। इस वक्तव्य का महत्व समझने के लिए हमें याद करना चाहिए कि कांग्रेसी मंत्रि-मण्डलों के इस्तीफा देने पर मि० जिन्ना ने २२ नवम्बर, १९३९ को मुक्ति-दिवस मनाने को कहा था।

सीमाप्रांत में कांग्रेस के शक्ति-ग्रहण करते ही जनता में प्रतिक्रिया आरम्भ हो गयी। जनता के मस्तिष्क में प्रश्न उठा कि सीमाप्रांत के 'अच्छे' उदाहरण का अनुसरण अन्य प्रांतों को करना चाहिए या नहीं, और इस सवाल को गोपीनाथ बारदोलोई व रोहिणी दत्त-द्वारा आसाम के प्रधानमंत्री सर मुहम्मद सादुल्ला को दी गयी चुनौती के कारण और भी बल प्राप्त हुआ। इस प्रकार १५-६-४५ को कांग्रेस कार्यसमिति की रिहाई से पूर्व ही परिस्थिति ठीक होने लगी।

पंजाब की वजारत

सर सिकन्दरहयात खां की अचानक मृत्यु हो जाने के कारण पंजाब में नयी परिस्थिति पैदा हो गयी। अब तक वे मुस्लिम लीग और हिन्दू-महासभा के खतरों से बचे हुए थे और अपनी निजी लोकप्रियता तथा विचारों की उदारता के कारण वजारत का काम सफलतापूर्वक चलाते जा रहे थे। उनकी मृत्यु से जो स्थान खाली हुआ उसकी पूर्ति कर्नल खिज्रहयात खां ने की। तभी लीग व यूनियनिस्ट पार्टी की शक्तियों में संघर्ष आरम्भ हो गया। मि० जिन्ना पंजाब-वजारत की खुले शब्दों में भर्त्सना कर रहे थे कि उसने लीग के प्रति सचाई का व्यवहार नहीं किया। एक तरफ मि० जिन्ना एक लीगी प्रधान-मंत्री को वजारत कायम करने की इजाजत तब तक नहीं देना चाहते थे जब तक कि वे लीग के आदर्शों पर चलने को तैयार न हों। दूसरी तरफ वजारत के हिन्दू समर्थक लीग के प्रति अधीनता प्रकट करने के नये

आदर्श से चिढ़े हुए थे, क्योंकि नयी स्थिति उस समझौते के विरुद्ध थी जो उनका सर सिकन्दरहयात खां से हुआ था।

जब कि दूसरे प्रांतों में नयी वजारतें कायम हो रही थीं पंजाब में मि० जिन्ना ने एक विजेता के रूप में प्रवेश किया। वे देखना चाहते थे कि पंजाब की वजारत दरअसल एक लीगी वजारत है या नहीं। कर्नल खिज्रहयात खां को वजारत के रंगढंग में तब्दीली करने के लिए तीन महीने का वक्त दिया गया। लेकिन सर छोटूराम पंजाब-वजारत को लीगी वजारत का नाम देने के खिलाफ थे और उन्होंने धमकी दी कि अगर ऐसी कोशिश की गयी तो वे वजारत का साथ देना छोड़ देंगे। कर्नल खिज्र के एक तरफ कुआँ था तो दूसरी तरफ थी खाई। इसी बीच एक वजीर मेजर शौकतहयात खां ने, जो स्वर्गीय सर सिकन्दरहयात खां के पुत्र थे, एक भाषण के बीच एक तरफ कायदे-आजम के लिए और दूसरी तरफ सिकन्दर-जिन्ना समझौते के लिए अपनी वफादारी का इजहार किया। मेजर शौकत ने यह भी कहा कि हाल में जो भाषण उन्होंने दिये हैं उनका आधार यह समझौता ही था, गोकि उसके अर्थ और ही कुछ लगाये गये हैं।

मेजर शौकत के इस कथन की तात्कालिक प्रतिक्रिया यह हुई कि लीग कार्य-समिति के एक खानबहादुर सदस्य ने जोर दिया कि पंजाब वजारत को फौरन ही लीग के लिए वफादारी का सबूत देना चाहिए।

आइये, पंजाब की राजनीतिक घटनाओं की एक समीक्षा कर डालें। जिन्ना साहब पंजाब वजारत को अपनी वफादारी का सबूत देने के लिए तीन महीने का वक्त देते हैं। कर्नल खिज्रहयात खां परिस्थिति में सुधार करने का वचन देते हैं। पी० डब्ल्यू० डी० के वजीर मेजर शौकत इस दुविधा में पड़ते हैं कि स्वर्गीय पिता व मि० जिन्ना में से किस के हुक्म को मानें। अपने पहले सार्वजनिक भाषण में वे साम्प्रदायिकता की निंदा करते हैं। आगाह किये जाने पर वे फिर कह बैठते हैं कि जिन्ना साहब का हर हुक्म मानने को वे तैयार हैं। इससे कायदे-आजम तो खुश हो गये, पर सर छोटूराम बिगड़ पड़े। बस शौकतहयात खां चौकन्ने होकर कहने लगते हैं कि उन्होंने जोकुछ कहा वह जिन्ना-सिकंदर समझौते के ही आधार पर कहा था। इससे मि० जिन्ना खीजकर निम्न वक्तव्य निकालते हैं:—

"इसमें कुछ भी शक नहीं है कि सिकंदर-जिन्ना-समझौते के बाद पंजाब में यूनियनिस्ट पार्टी का अस्तित्व नहीं रह गया। समझौते के अनुसार पंजाब-असेम्बली में एक मुस्लिम लीग पार्टी कायम होने और उसके अखिल भारतीय मुस्लिम लीग व प्रांतीय लीग के नियंत्रण में आने की बात थी। मलिक खिज्रहयात खां ने एक मुस्लिम लीग पार्टी कायम कर दी है।"

जब कि एक तरफ कायदे-आजम उड़ीसा के अलावा दूसरे सूबों में अपनी वजारतें कायम होने का दावा पेश कर रहे थे, उन्हीं दिनों २६ जुलाई को मि० डोबी (मजदूर-दल) ने पार्लामेंट में मिलीजुली वजारतों के बारे में सवाल उठाया। आपने पूछा कि कितनी वजारतें सिर्फ मुस्लिम लीग के आधार पर और कितनी उसके नेतृत्व में काम कर रही हैं? हाल ही में वजीरों में से कितने लीग या दूसरे राजनीतिक दलों में शामिल हुए हैं और कितनों ने असेम्बली की बैठक होने पर अपने साथियों का समर्थन पाया है?

मि० एमरी का जवाब था :—

"जिन छः सूबों में साधारण विधान चल रहा है। उन सभी में मिली-जुली वजारतें काम कर रही हैं। इनमें से पांच के नेता मुस्लिम लीगी हैं। सिंध को छोड़कर, जहां पिछले पतझड़

के मौसम में दो मंत्री लीग में शामिल हुए थे, मुझे ऐसे किसी उदाहरण का पता नहीं है, जहां मुस्लिम वज़ीर हाल ही में मुस्लिम लीग में शामिल हुए हों। सीमाप्रांत में जो वजारत हाल ही में कायम हुई है उसे अभी प्रांतीय असेम्बली के सामने आने का मौका नहीं पड़ा है।"

भारत-मंत्री के इस वक्तव्य से श्री सावरकर को बड़ी राहत मिली, जिन पर आरोप लगाये जा रहे थे कि हिन्दू महासभा के अध्यक्ष की हैसियत से वे लीगी वजारतों को सहायता पहुंचा रहे हैं। मि० जिन्ना ने जो यह घोषणा की थी कि वे या लीग जिन्ना-सिकंदर समझौते को मानने के लिए बाध्य नहीं हैं (और यूनियनिस्ट पार्टी मर चुकी है) वह २० मार्च को असेम्बली के विरोधी पक्ष के मुस्लिम सदस्यों के बीच की थी।

सिकंदर-जिन्ना समझौते का अपना अलग इतिहास है और दूसरी ऐतिहासिक घटनाओं की तरह इसे भी कितनी ही हालतों से गुजरना पड़ा है। मि० जिन्ना ने सवाल उठाया था कि सर सिकंदर के हस्ताक्षर होने के बाद यूनियनिस्ट पार्टी रही ही नहीं। यूनियनिस्टों या लीगियों का दावा चाहे जो हो, इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि खुद समझौते में यूनियनिस्ट पार्टी बनी रहने की बात मंजूर ही नहीं की गयी, बल्कि दोहराई भी गई थी। साथ ही एक दूसरे तथ्य से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि यूनियनिस्ट पार्टी के मुस्लिम सदस्यों के कंधों पर अपनी पार्टी व मुसलिम लीग दोनों ही के लिए वफादार होने की जिम्मेदारी आ गई। साथ ही यह भी जान लेना चाहिए कि प्रभाव व अधिकार के क्षेत्रों को अलग भी कर दिया गया था। सर सिकंदर को अखिल भारतीय मामलों में लीग का हुक्म मानना था, लेकिन प्रान्तीय मामलों में वे स्वतंत्र थे और लीग के लिए उनकी कोई जिम्मेदारी नहीं थी। इस प्रकार लीग और यूनियनिस्ट पार्टी के प्रभाव व अधिकार के क्षेत्रों का साफ साफ उल्लेख कर दिया गया था।

गोकि खिज्रहयातखां ने मुसलिम लीग के मंच पर आकर पाकिस्तान का समर्थन पहली बार किया, फिर भी मंत्रिमंडल का पुनर्निर्माण करने या कम-से-कम उसे लीग के पथ पर लाने का मि० जिन्ना का प्रयत्न असफल हो गया। जिन्ना साहब की न्यूनतम मांग यही थी कि मंत्रिमंडल का नाम यूनियनिस्ट से लीगी कर दिया जाय; किन्तु पंजाब का मुस्लिम लोकमत यूनियनिस्ट पार्टी भंग करने या सर छोटूराम वगैरह से ताल्लुक तोड़ने के खिलाफ था। सर सिकंदर मि० जिन्ना से बातें करके सहयोग के सिद्धान्त पहले ही निर्धारित कर चुके थे। भारी बाढ़ आनेपर तिनके को केवल झुक जाना पड़ता है और लहर चली जाने के बाद वह फिर अपना सिर उठा लेता है। सर सिकंदर के समय यह बाढ़ कभी नहीं आई और उनकी मृत्यु के एक साल बाद जब वह आई तो तिनके ने उसी पुरानी नीति से काम लिया।

अपनी धमकी पूरी करने के लिए मि० जिन्ना तीन महीने बाद २० अप्रैल को लाहौर आये। उसी समय प्रभावशाली सिख सरदारों ने एक वक्तव्य निकाला कि मुस्लिम लीग के नाम से जो सरकार बनेगी, चाहे वह मिली-जुली ही क्यों न हो, उससे वे कोई सम्बन्ध न रखेंगे। मि० जिन्ना के आगमन से कुछ पहले हिन्दू, मुसलिम और सिख जाटों ने अपने एक सम्मेलन में सर छोटूराम का अनुसरण करने की शपथ ली थी। सम्मेलन के अध्यक्ष एक खानबहादुर मुसलमान सज्जन थे, जिन्होंने कहा कि वह पहले जाट और बाद में मुसलमान हैं। इस सम्मेलन में सर छोटूराम को रहबरे-आज़म की उपाधि से विभूषित किया गया।

यहां पंजाब की विभिन्न जातियों तथा यूनियनिस्ट पार्टी के जन्म, विकास और सफलता के सम्बन्ध में कुछ कह देना असंगत न होगा। पंजाब के सम्बन्ध में यह बात बहुत कम लोग

जानते हैं कि हिन्दुओं की तरह सिखों और मुसलमानों में भी जाट होते हैं। पंजाब, संयुक्तप्रान्त व दिल्ली के कुछ प्रदेशों में जाटों की अधिकता है। १९२८ में एक प्रस्ताव था कि पंजाब के हरियाना डिवीजन, अम्बाला डिवीजन, दिल्ली प्रान्त व संयुक्तप्रान्त के मेरठ डिवीजन को मिलाकर एक जाट प्रान्त बनाया जाय। सिखों में अधिकांश जाट ही हैं। मुसलमानों में भी बहुत से जाट हैं। हिन्दू, मुसलिम व सिख जाटों की संख्या कुल मिलाकर डेढ़ करोड़ के लगभग है। १९२८ में दिल्ली में जाटों का एक सम्मेलन हुआ था, जिसके स्वागताध्यक्ष एक अवकाशप्राप्त सेशन जज मुहम्मद हुसेन और अध्यक्ष सर छोटूराम थे। उन्होंने नये प्रान्त का नाम जाट प्रान्त रखा और मि० आसफअली द्वारा तैयार की गयी नये प्रान्त की योजना सम्मेलन में स्वीकार की गयी। यह योजना सर फजले हुसेन के आगे उपस्थित की गयी। सर फजले ने योजना की प्रशंसा की, किन्तु कहा कि यह अभी कार्यान्वित नहीं की जा सकती। सर फजले हुसेन-जैसे राजनीतिज्ञ किसी देश में कभी-कभी ही पैदा होते हैं। वे भविष्य का अनुमान कर सकते थे। वे जाटों की जातीय भावना से परिचित थे और यह भी जानते थे कि इस भावना-द्वारा धर्म और प्रान्त के भेदभाव को मिटाया जा सकता है। इसलिए उन्होंने हिंदू, मुसलमान और सिखों के एक संयुक्त दल का संगठन किया। सर फजले के बाद सर सिकंदर इस दल के नेता बने। इनके बाद कर्नल खिज्रहयात खां प्रधानमंत्री बने और उन्हें सर छोटूराम का समर्थन प्राप्त हुआ। यूनियनिस्ट पार्टी हर तरीके से राजनीतिक दल था। उसके भवन का निर्माण मजबूत नींव पर किया गया और उसकी दीवारें चौड़ी व सुदृढ़ बनायी गयीं, जिन्हें गिरा देने के लिए मि० जिन्ना उत्सुक थे। वे दूसरी बार लाहौर गये। यूनियनिस्ट दल को भंग करने की अपनी शक्ति में कायदे-आजम का अपार विश्वास था और वे यह भी खयाल करते थे कि यदि यूनियनिस्टों के गढ़ को गिराया न जा सके तो कम-से-कम उसके नाम को बदला ही जा सकता है, जिस तरह किसी मकान को खरीदने पर या नगर को जीत लेने पर उसका नाम बदल दिया जाता है। परन्तु यह तभी हो सकता है जब उसमें रहनेवाले लोग नाम बदलने के लिए रजामंद हों और राजी न होने की हालत में उनके द्वारा विरोध किया जाना भी स्वाभाविक ही है। झगड़ा देखने में तो छोटा था, किन्तु वास्तव में वह एक आधारभूत तथ्य के लिए था। प्रश्न था कि शासन के पीछे धार्मिक शक्ति होनी चाहिए या जातीय बल? इस प्रश्न का एक ही उत्तर हो सकता था और वह वाइसराय ने पंजाब-सरकार की सफलता की प्रशंसा-द्वारा दिया था। यही उत्तर पंजाब के गवर्नर सर हर्बर्ट एमर्सन ने उस समय दिया था, जब उन्होंने कहा था कि पंजाब को प्रधान मंत्री के झंडे के नीचे एकत्र होकर उनकी शक्ति बढ़ानी चाहिए।

एक देश द्वारा दूसरे देश की विजय एक साधारण-सी बात है। अधिक गम्भीर तथा कष्टकर बात जनता पर विजय पाना है। पहली विजय एक सैनिक घटना और दूसरी एक मानसिक प्रक्रिया है। पहली शरीर पर विजय और दूसरी नैतिक विजय है। मि० जिन्ना को पंजाब-रूपी दुलहिन पर विजय पाने में सात वर्ष लग गये। फिर भी उन्होंने उस पर सिर्फ अधिकार ही किया, उसके हृदय पर विजय नहीं पाई। हृदय पर विजय पाने के लिए ही वे लाहौर आये थे। कायदे आजम ने मीठी-मीठी बातें करके और धमकाकर प्रयत्न किया कि वह अपने स्वर्गीय स्वामी सर सिकन्दरहयात खां की याद भुला दे और नये प्रेमी मि० जिन्ना का वरण करले। अब समय आ गया था जब उसे इस नये प्रेमी को स्वामी व पति के रूप में स्वीकार कर लेना चाहिए था।

यही वास्तविक कठिनाई उत्पन्न हुई। यह ठीक है कि एक दिन ७२ पुर्जों की खानापुरी हुई और यूनियनिस्ट दल के मुस्लिम सदस्य अपने को लीगी कहने लगे। पर यही काफी न था। समय बदल चुका था। पुराने नेता मर चुके थे। पुराने नारों से अब काम चलना कठिन था। यूनियनिस्ट पार्टी मर चुकी थी, फिर भी उसमें कुछ जान बाकी थी। अब लीग का जमाना था। इसलिए सभी सदस्यों को नाम से व दरअसल शब्द व भावना, वचन व व्यवहार से लीगी होना चाहिए। यह जिन्ना की मांग थी, जिसे कभी मंजूर नहीं किया गया था। दुर्भाग्यवश प्रधानमंत्री के पिता की मृत्यु से भी इसमें बाधा पड़ी। पर सर छोटूराम लीग के आगे जरा भी न झुके। सिख मंत्रियों ने यूनियनिस्ट पार्टी से सम्बन्ध रखने का अपना दावा वापिस ले लिया। हरिजनों ने भी लीग के समर्थन का आश्वासन दिया। यदि कर्नल खिज्रहयात खां पुराने और नये, यूनियनिस्ट पार्टी और मुस्लिम लीग, सर छोटूराम और कायदे आजम, लीग के मंच पर पाकिस्तान का राग अलापने और सेक्रेटरियेट में हिन्दुस्तान की हिमायत करने के बीच बाधा बनकर आ जाते हैं तो उनके बिना भी पंजाब का काम चल सकता है। इसके अलावा योग्य पिता का एक योग्य पुत्र भी मौजूद है। यह सच है कि पिता ने कायदे-आजम का अनुशासन पूरी तरह नहीं माना था, फिर भी मेजर शौकतहयातखां से काम चल सकता है, क्योंकि युवा होने के कारण उन्हें प्रभावित करना उतना कठिन नहीं है। जाटों का स्थान सच्चे हिन्दू मंत्री ले सकते हैं और इसके लिए श्री सावरकर की सहायता ली जा सकती है। हरिजनों की सहायता तो बहुत ही अमूल्य है, क्योंकि समाज के अत्याचारों व पिछली पीढ़ियों की मूर्खता के कारण वह अब तक सुलभ न थी। मि० जिन्ना के विचार बहुत-कुछ ऐसे ही थे, जब वे लाहौर से दिल्ली लौट रहे थे। परन्तु उन्होंने अपने विचार, अपना आन्दोलन, अपनी चिन्ता, अपना निश्चय, अपनी सफलता व असफलता, अपनी आशाएं व अपनी योजनाएँ कुछ उग्र रूप में उपस्थित कीं। उन्होंने सोचा कि मैं पंजाब की खुशामद-दरामद बहुत कर चुका हूँ और अब आगे यह मूर्खता न करूंगा। अब मैं अपनी शक्ति की आजमाइश करूंगा और इस बल-प्रयोग में या तो उसे मिटा दूंगा और या खुद मिट जाऊंगा। इन विचारों से प्रभावित होकर कायदे-आजम ने पंजाब की वजारत व असेम्बली को अल्टीमेटम दिया कि २० अप्रैल को लाहौर वापिस आने तक उन्हें इस सवाल का आखिरी फैसला कर लेना चाहिए।

किसी किले पर चढ़ाई करते समय जिस तरह ढोल और तुरहियां बजती हैं, वैसा ही गुलगपाड़ा जिन्ना की लाहौर-यात्रा के समय हुआ। हिटलर ने घोषणा की थी कि वह स्टालिनग्राड पर विजय पाना चाहता है और पायेगा; किन्तु अन्त में उसे असफलता हुई। मि० जिन्ना ने घोषणा की कि वे अपने तूफानी हमले से यूनियनिस्ट पार्टी को भंग करके उसका सदा के लिए खात्मा कर देंगे, किन्तु दुर्गपति कर्नल खिज्रहयात खां तिवाना ने, जो अनावश्यक बातों की अपेक्षा कार्य में अधिक विश्वास रखते हैं, दुश्मन को गहरी शिकस्त दी और लाहौर के किले को अछूता रखा। सच तो यह है सत्य उन्हीं के पक्ष में था और जिसके पक्ष में सत्य होता है उस में दैत्य की शक्ति आ जाती है और वह अपने असंख्य शत्रुओं का भी सामना कर लेता है। पंजाब की परिस्थिति का अध्ययन करने के लिए हमें कुछ ऐसी बातों का ध्यान रखना चाहिये, जिनका विशेष महत्व था:—

(१) क्या यूनियनिस्ट पार्टी के सदस्यों का अपने पुराने दल में बने रहना उचित था, जिसके अनुशासन में रहकर उन्होंने चुनाव लड़ा और जीता था? इस प्रश्न का उत्तर केवल 'हां' में ही दिया जा सकता है। चुनाव के यदि कुछ मुस्लिम सदस्य दल को छोड़कर मुस्लिम लीग में शामिल हो जाते हैं तो कम-से-कम अपनी पहली जिम्मेदारियों से वे इंकार नहीं कर सकते।

(२) इन मुस्लिम सदस्यों के कंधों पर नयी जिम्मेदारियां वही आईं जो स्वर्गीय सर सिकन्दरहयात खां ने सिकंदर-जिन्ना समझौते के अनुसार लेना मंजूर किया था।

(३) क्या वह समझौता अब भी कायम था? हां, वह तब तक कायम रहा, जब तक १९३७ में निर्वाचित सदस्यों के स्थान पर नयी चुनाव-व्यवस्था के अनुसार नया चुनाव नहीं हुआ। नया चुनाव होने पर यूनियनिस्ट पार्टी को समाप्त करने का समय आ सकता है।

(४) पंजाब असेम्बली में शौकतहयात खां कैसे चुने गये? वे यूनियनिस्ट पार्टी व मुस्लिम लीग के मिले जुले टिकट पर चुने गये थे। या कहा जाय कि उन्हें सिकंदर-जिन्ना समझौते के अनुसार मुस्लिम लीग टिकट मिला था क्योंकि लीग ने यूनियनिस्ट पार्टी के सदस्यों के नाम अपने रजिस्टर में दर्ज कर लिये थे। कर्नल खिज्रहयात खां ने यह भी जाहिर कर दिया था कि शौकतहयात खां को सचमुच ही मिला-जुला टिकट दिया गया था और इसीलिए मि० जिन्ना ने उनके पक्ष में कोई वक्तव्य नहीं निकाला था।

(५) अपनी पार्टी का नाम मुस्लिम लीग पार्टी रखने से इन्कार करके क्या खिज्रने सहयोगियों को दिये अपने वचनों का निर्वाह किया था? हाँ, जब तक खिज्र अपने मुस्लिम साथियों के साथ यूनियनिस्ट पार्टी से इस्तीफा देकर बाकायदा लीग पार्टी में नहीं चले जाते तब तक उन्हें वचनों का निर्वाह करना ही चाहिए था। मि० जिन्ना को भी खिज्रहयात खां से यही मांग करनी चाहिए थी। परन्तु किसी न किसी वजह से मि० जिन्ना ने ऐसी मांग न की, क्योंकि उसके खिज्र द्वारा स्वीकार की जाने की कुछ भी आशा न थी। तीन गैर-मुस्लिम सदस्यों ने भी उनसे यही करने को कहा था, जिसे वे साफ उड़ा गये। ये बातें इस प्रकार थीं:—(१) अखिल भारतीय नीति के आधार पर एक मिली-जुली लीगी सरकार की स्थापना, (२) युद्धकाल तक के लिए पाकिस्तान व उसके सिद्धान्तों का त्याग, और (३) लीग युद्ध में बिना किसी शर्त के सहायता प्रदान करे।

इन माँगों का मि० जिन्ना ने कोई साफ-साफ उत्तर नहीं दिया। उन की तरफ से सूचित किया गया कि पहली और दूसरी बातें तो उठती ही नहीं और तीसरी, यानी युद्ध के सम्बन्ध में लीग पहले ही युद्ध प्रयत्नों में बाधा न डालने की नीति का अनुसरण करती रही है। मि० जिन्ना के इस कथन से तीनों मंत्रियों ने यही परिणाम निकाला कि वे समझौता नहीं करना चाहते। जहां तक शौकतहयात खां के सिकंदर-जिन्ना समझौते को मानने की बात है उनके २० जुलाई, १९४३ के वक्तव्य से इसकी साफ पुष्टि होती है।

पंजाब मंत्रिमंडल के इतिहास में मेजर शौकतहयातखां की बर्खास्तगी एक बड़ी सनसनीपूर्ण घटना थी।

अपनी स्थिति का स्पष्टीकरण करते हुए शौकतहयातखां ने कहा, "मेरा ध्यान समाचार-पत्रों में प्रकाशित मेरे हाल के भाषण की आलोचनाओं की तरफ दिलाया गया है। ये आलोचनाएं गलत हैं और उन में मेरी स्थिति को ठीक ही तरह समझा नहीं गया है। मैं अपने आलोचकों

को बता देना चाहता हूं कि मेरे कथन का मतलब जिन्ना-सिकंदर-समझौते व माननीय खिज्र-हयात तिवाना-द्वारा दिल्ली में ७ मार्च को दिये गये वक्तव्य को दृष्टि में रखते हुए ही लगाना चाहिए। मुझे दुःख सिर्फ इसी बात का है कि मैंने अपने भाषणों में यह साफ-साफ नहीं कहा था कि मैंने जो कुछ कहा उसका अर्थ उपर्युक्त समझौते और वक्तव्य को ध्यान में रखते हुए ही लगाना चाहिए। मैंने समझा था कि पंजाबी लोग, जिन के बीच में मैं बोल रहा था, इसी आधार पर उस का मतलब लगावेंगे। मेरा यह अंदाज गलत था, क्योंकि लोगों ने मेरे भाषणों का ऐसा मतलब लगाया, जो मेरी मंशा के खिलाफ था। इस तरह यह बिल्कुल स्पष्ट है कि मैं अपने स्वर्गीय पिता की नीति पर ही, जिसे उन के योग्य उत्तराधिकारी ने जारी रखा है, चलता रहूँगा।"

८ नवम्बर, १९४३ को मुस्लिम लीग पार्टी की बैठक में मेजर शौकतहयातखां ने दल के नियमों में सिकंदर-जिन्ना-समझौता शामिल करने के पक्ष में अपना वोट दिया।

मेजर शौकतहयातखां का यह मामला एक पहेली रहा है, जिस पर उन्हें प्रकाश डालना चाहिए था।

सभी बातों पर विचार कर लेने के बाद हम इसी परिणाम पर पहुँचते हैं कि मि० जिन्ना जिस तरह टेलीफोन पर बातें करते समय प्रधानमंत्री खिज्रहयातखां से नाराज हो गये थे उसी तरह स्यालकोट के पंजाब प्रान्तीय मुस्लिम लीग सम्मेलन में भी उन्होंने अपने स्वभाव की उग्रता का परिचय दिया था। उच्च सांस्कृतिक व्यवहार की बात छोड़ दी जाय तो कम-से-कम साधारण शिष्टाचार के विचार से ही उन्हें यह कहने से पहले कि मैं यूनियनिस्ट पार्टी का गला घोंट कर उसे दफना दूंगा, या शौकतहयात का मामला वैसा ही है जैसा उन्होंने बताया है और पंजाब के गवर्नर को बर्खास्त कर देना चाहिए, दो या तीन बार नहीं बल्कि दस बार सोच-विचार कर लेना चाहिए था। मि० जिन्ना के ये दोनों कथन असामयिक और असंगत ही नहीं थे, बल्कि अपने को बड़ा मानने की प्रवृत्ति, निर्णय कर सकने की प्रतिभा का अभाव और बुद्धिमता व दूरदर्शिता की कमी के ही परिणाम थे, जिससे क्रोधी तथा चुनौती देनेवाली मुस्लिम राजनीति को भी बचना चाहिए। अपनी जल्दबाजी और अहंकता से विरोधी को उलटी दिशा में धकेल देना न तो कूटनीतिज्ञता है और न चतुराई ही। यह उस हालत में और भी अनुचित था, जब कर्नल खिज्रहयातखां १२ मई, १९४४ को दिल्ली में विशेष समिति के सामने अपनी सफाई देने के लिए उपस्थित होनेवाले थे। चुनौती और प्रति-चुनौती परस्पर प्रोत्साहन प्रदान करती हैं। कर्नल खिज्र के मामले पर विचार होने से ठीक दो दिन पहले मोटे-मोटे शीर्षकों में यह समाचार प्रकाशित हुआ कि "शौकतहयातखां पर अन्याय व अनुचित कार्रवाई के लिए मामला चलाया जायगा या नहीं।" घटनाएं जिस प्रकार की हुई थीं उन पर कोई खेद प्रकट किये बिना नहीं रह सकता था—विशेषकर इसलिए और भी कि एक उच्च घराने के युवक के सैनिक व गैर-सैनिक जीवन का तो अचानक अंत हो ही गया था, साथ ही उसके उच्च कुल को भी धब्बा लग रहा था।

कहा जा सकता है कि स्यालकोट जिन्ना साहब का स्टालिनग्राड ही सिद्ध हुआ। वे स्यालकोट के सम्मेलन में सिंह के समान गर्जे। आपने पंजाब के गवर्नर को बर्खास्त किये जाने और उसके प्रधान मंत्री का सिर उड़ा देने की मांग की। आपने यूनियनिस्ट पार्टी की हत्या करके उसे दफना देने का भी इरादा जाहिर किया। परन्तु वे वस्तुस्थिति से बिल्कुल अपरिचित भी न थे। तभी तो उन्होंने सिक्खों से अपनी शर्तें पेश करने का अनुरोध किया। मि० जिन्ना ने यह भी

कहा कि सिक्खों-द्वारा मिले-जुले लीगी मंत्रिमंडल के समर्थन का मतलब यह कभी न लगाया जायगा कि वे पाकिस्तान के भी हामी हैं। अंग्रेजों से उन्होंने प्रश्न किया कि मैं (मि० जिन्ना) ने युद्ध-प्रयत्नों का विरोध कब किया? कायदे-आजम ने इंग्लैंड, अमरीका, भारत तथा अन्य देशों की जनता में इस प्रचार पर नाराजी प्रकट की कि मुस्लिम लीग युद्ध-प्रयत्नों तथा युद्ध के सफलता-पूर्वक चलाये जाने के विरुद्ध है।

लेकिन पिछले तीन वर्षों में जो-कुछ हुआ उसकी याद जनता भूली न थी। स्यालकोट-सम्मेलन अप्रैल १९४४ के अंत में हुआ था। यदि लीग के १९४० के लाहौर वाले अधिवेशन से लेकर अब तक के वक्तव्यों, प्रस्तावों और मुलाकातों का अध्ययन किया जाता तो उनमें पाठक की दृष्टि ऐसे विचारों, मतों व नीतियों पर पड़ती, जिन्हें परस्पर असंगत ही कहा जायगा। लीग की कार्यसमिति ने १५ और १६ जून १९४० को एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास किया था। इसके कुछ ही सप्ताह बाद मि० जिन्ना ने २६ सितम्बर, १९४१ को कहा कि लीग की बात मानी न जाने के कारण वे वाइसराय की कोई सहायता नहीं कर सकते। जिन्ना साहब ने सभी बातें गम्भीरतापूर्वक कही थीं। बाद में कायदे-आजम ने किस तरह सर सिकंदरहयातखां को वाइसराय-द्वारा स्थापित नेशनल डिफेंस कौंसिल से इस्तीफा देने को मजबूर किया था—यह भी मि० जिन्ना और ब्रिटिश सरकार को स्मरण ही होगा। बंगाल के प्रधानमंत्री मि० फजलुल हक से मि० जिन्ना के तात्कालिक झगड़े का मुख्य कारण यही था कि कायदे-आजम के आदेश पर उन्होंने डिफेंस कौंसिल से इस्तीफा नहीं दिया था। इससे भी अधिक, क्या मुस्लिम लीग ने अपने मंत्रियों तथा अपनी प्रान्तीय व अन्य समितियों को प्रान्तीय युद्ध-समितियों में शामिल होने से रोका न था? और फिर वह पत्र-व्यवहार भी मौजूद है, जिसमें मि० जिन्ना ने वाइसराय लार्ड लिनलिथगो से साफ लफ्जों में कह दिया था कि लीग सरकार के युद्ध-प्रयत्नों में तब तक सहयोग नहीं दे सकती जब तक उसकी पाकिस्तान की मांग मंजूर नहीं की जाती। फिर भी इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि इन सब रुकावटों के बावजूद लीग के नेताओं ने युद्ध-प्रयत्न में सहायता पहुँचाने से हाथ नहीं खींचा था। लीग के किसी भी प्रतिष्ठित नेता ने युद्ध-प्रयत्नों के समर्थन में कभी कोई भाषण नहीं दिया। यदि वे ऐसा करते तो निश्चय ही लीग के प्रस्तावों के विरुद्ध कार्य करते। यदि अब वे युद्ध-प्रयत्नों के विरुद्ध कुछ कहते हैं तो वे साथ ही यह पूछने की जुर्रत नहीं कर सकते कि लीग या मि० जिन्ना युद्ध-प्रयत्नों के खिलाफ कब थे?

उड़ीसा

पहले उड़ीसा में कांग्रेस का बहुमत था। कांग्रेस के कुछ सदस्य जेल में रहने के समय पार्लेकामेडी के महाराज के नेतृत्व में अल्पसंख्यक दल ने एक मंत्रिमंडल कायम किया। यह मन्त्रिमण्डल थोड़े ही समय तक चला, किन्तु उसके मौजूद रहने की अवधि के भीतर १९४३ में ही एक विचित्र घटना हुई। मार्च, १९४२ में एक कांग्रेसी उम्मीदवार ने प्रान्तीय असेम्बली के एक उप-चुनाव में भाग लिया। उसे अपने दल का पूरा समर्थन प्राप्त था और वह २०७ के विरुद्ध ९४६ वोटों से चुन लिया गया। लोकतन्त्र के सिद्धान्तों के अनुसार माना जाता है कि उप-चुनाव के परिणाम से लोकमत का अन्दाज लगता है और वही इस उप-चुनाव से भी प्रकट हुआ। परन्तु उप-चुनाव के इस परिणाम के विरुद्ध एक अर्जी दी गयी और गवर्नर ने एक डिस्ट्रिक्ट जज व दो वकीलों का एक ट्रिब्यूनल इस अर्जी पर विचार करने के लिए नियुक्त कर दिया। अर्जी पर विचार करते समय ही ट्रिब्यूनल ने भूतपूर्व प्रधानमन्त्री श्री वी. विश्वनाथदास के नाम आदेश

जारी कर दिया कि वे तुरन्त हाजिर होकर बतावें कि नियमित से अधिक खर्च करने के कारण उनके विरुद्ध कार्रवाई क्यों न की जाय। गोकि श्री दास ने कितनी ही बार अनुरोध किया कि उन्हें अपनी सफाई देने की सुविधा दी जाय, किन्तु सुनवाई से सिर्फ पांच दिन पहले अपने वकील से एक घंटा मिल सकने के अलावा उन्हें और कोई सुविधा नहीं दी गई। उन्हें ट्रिब्युनल के सामने जाने तक की इजाजत नहीं मिली। परिणाम यह हुआ कि गवर्नर ने उन्हें छः साल तक असेम्बली का सदस्य होने के अयोग्य ठहरा दिया और उनकी सीट को खाली घोषित कर दिया गया।

इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय बात यह है कि चुनाव के सम्बन्ध में जो अर्जी दी गयी थी वह न तो उनके विरुद्ध थी और न वे उम्मीदवार के 'एजेंट' ही थे। फिर भी उन्हें प्रायः यही माना गया और दंडित किया गया। श्री दास ने वाइसराय के सम्मुख एक अर्जी दायर करके प्रार्थना की कि मामले को फेडरल कोर्ट के आगे उपस्थित करने की अनुमति दी जाय। श्री दास की आपत्ति यह थी कि गवर्नर ने धारा २०३ के (०) के सम्बन्ध में जो नियम बनाये वे उन्होंने तत्कालीन मंत्रिमंडल की सलाह के बिना बनाये थे, जबकि कायदे से उन्हें उसकी सलाह लेनी चाहिए थी। उनकी दूसरी आपत्ति यह थी कि चुनाव-कमिश्नरों में से दो हाईकोर्ट के जज नहीं बन सकते थे और इसलिए कहा जा सकता है कि ट्रिब्यूनल की नियुक्ति ठीक तरह नहीं हुई। कुछ अन्य अनियमित कार्य भी हुए। धारा २०३ इस प्रकार है:—

(१) यदि गवर्नर-जनरल कभी अनुभव करे कि कानून का कोई ऐसा प्रश्न उपस्थित हुआ है अथवा उपस्थित हो सकता है, जिसका सार्वजनिक महत्व है और जिसे उचित मंतव्य प्राप्त करने के लिए फेडरल कोर्ट के सिपुर्द किया जाना चाहिए तो वह उसे रिपोर्ट पेश करने के लिए फेडरल कोर्ट के सिपुर्द कर सकता है और कोर्ट जो सुनवाई करना उचित समझे, वह करके गवर्नर-जनरल के सामने अपनी रिपोर्ट पेश कर सकता है।

(२) इस धारा के अन्तर्गत केवल सुनवायी के समय उपस्थित अधिकांश जजों की रजामन्दी से ही कोई रिपोर्ट पेश की जा सकती है, किन्तु जिस भी जज का मतभेद हो वह अपना मत अलग से प्रकट कर सकेगा।

१६४४ के आरम्भ में अफवाहें फैलाई गई कि उड़ीसा-असेम्बली के कितने ही सदस्यों ने जेल से खाद्य-समस्या पर सहयोग करने तथा तत्कालिन मंत्रिमंडल का समर्थन करने की इच्छा प्रकट की है। यहां तक कहा गया कि ऐसे सदस्यों की संख्या सात है, किन्तु बाद में यह समाचार असत्य प्रमाणित हुआ।

आसाम

अब हम आसाम को लेते हैं। आसाम उन प्रान्तों में नहीं है, जिनमें १६३७ में कांग्रेस का बहुमत था। परन्तु सर सादुल्ला के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास होने पर जब उनके मन्त्रिमण्डल का पतन हो गया तब बार्दोलोई मन्त्रिमण्डल उसकी जगह कायम हुआ, जिसमें प्रधानमन्त्री बार्दोलोई तथा एक अन्य मंत्री ही कांग्रेसजन थे। कुछ अन्य मंत्री कांग्रेस में सम्मिलित हो गये थे। जब बार्दोलोई ने अन्य कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों के साथ १६३६ में इस्तीफा दिया तो सादुल्ला-मन्त्रिमण्डल फिर कायम हुआ और उसने अपनी शक्ति बढ़ा ली।

१२ मार्च, १६४५ को आसाम-मन्त्रिमण्डल प्रान्तीय असेम्बली में हार गया और उसे इस्तीफा देना पड़ा।

फिर सरकारी पक्ष ने मिली-जुली वजारत बनाने के लिए कांग्रेसी दल की शर्तें स्वीकार कर

र्थीं। निश्चय हुआ कि नयी वजारत को सभी दलों का समर्थन तथा विश्वास प्राप्त हो। सरकारी दल ने सर सादुल्ला को विरोधी दल से अन्य विषय तय करने का भी अधिकार दे दिया। जिन शर्तों को स्वीकार किया गया उनमें राजनीतिक कैदियों की रिहाई, सार्वजनिक सभाओं तथा जुलूसों से रोक हटाया जाना तथा सरकार की नाज वसूल करने तथा उसे उपलब्ध करने की नीति में परिवर्तन मुख्य थीं। भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री गोपीनाथ बार्दोलोई ने सर मुहम्मद सादुल्ला से तय कर लिया था कि यदि उपर्युक्त शर्तें मान ली जायँ तो कांग्रेस पद-ग्रहण न करके भी मौजूदा वजारत का नैतिक समर्थन करने को तैयार हो जायगी। बाद में यह समझौता भंग होगया और शिमला-सम्मेलन के समय आशा की जाने लगी कि आसाम में मिली-जुली कांग्रेसी वजारत कायम हो सकेगी।

१९४३ और १९४४ में स्पष्ट हो गया कि राजनीतिक अड़ंगा दूर करने के जिन प्रयत्नों को सरकार से प्रोत्साहन मिल रहा था उनका मुख्य उद्देश्य प्रान्तों में वजारतें कायम करना था। इरादा यह था कि सूबों में वजारतें कायम होने के बाद कहा जायगा कि राजनीतिक अड़ंगा समाप्त हो गया। मध्यप्रान्त में वार्ता लीगी व गैर-लीगी मुसलमानों के एक ही वजारत में शामिल करने में कठिनाई होने के कारण भंग हो गयी। इसके अलावा लीग किसी ऐसी वजारत में भी शामिल नहीं होना चाहती थी, जिसमें कांग्रेस और हिन्दू महासभा का सहयोग प्राप्त न हो। मध्यप्रान्त, बिहार, संयुक्तप्रान्त और मद्रास में मंत्रिमंडल कायम करने का कोई बाकायदा प्रयत्न नहीं किया गया और जो हलके प्रयत्न किये गये वे सफल नहीं हुए। सर विजय ने, जो अंतर्कालीन सरकार में (मार्च से जून १९३७ तक) न्यायमंत्री थे, वजारत कायम करने के प्रयत्नों को ऐसी हालत में, जबकि नेता जेलों में हैं, बेईमानी बताया। आपने कहा कि कांग्रेस के राजी होने से पहले वजारत में हिस्सा लेना बिल्कुल दूसरी ही बात थी। बम्बई व्यापार-मंडल की बैठक में भाषण करते हुए बम्बई के गवर्नर ने कहा,—

"जब उन्नति और सद्भावना की प्रतीक—वैधानिक सरकार फिर से कायम होगी तो उसका मैं स्वागत करूंगा।"

मद्रास में फिर से कांग्रेसी वजारत कायम करने का सवाल उठाया गया और २७ दिसम्बर, १९४५ को प्रान्तीय असेम्बली के हरिजन सदस्यों का एक सम्मेलन हुआ, जिस में उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक डेपुटेशन के रूप में गांधीजी से मिलने का निश्चय किया गया। सम्मेलन ने गांधीजी का ध्यान विशेष रूप से हरिजनों के हितों की ओर आकर्षित किया और कहा कि गांधीजी हरिजन सदस्यों को गैर-हरिजन कांग्रेसी सदस्यों के साथ मंत्रिमंडल बनाने में सहायता प्रदान करें। साथ ही गांधीजी के नेतृत्व में पूर्ण विश्वास प्रकट किया गया और उन के स्वास्थ्य-लाभ के लिए ईश्वर से प्रार्थना की गयी। सम्मेलन में कांग्रेस के नेताओं—विशेषकर कार्यसमिति के सदस्यों—की तुरंत रिहाई की मांग की गयी, जिससे राजनीतिक अड़ंगे के दूर होने का रास्ता साफ हो सके।

कांग्रेस तथा गांधीजी के नेतृत्व में विश्वास तो सर्वसम्मति से प्रकट किया गया, किन्तु मंत्रिमंडल बनाने के औचित्य के प्रश्न पर सदस्यों में काफी मतभेद था। परन्तु यह स्वीकार किया गया कि हरिजनों के हितों की रक्षा सिर्फ कांग्रेस के समर्थन से ही हो सकती है, इसलिए मिली-जुली वजारत कायम करने के प्रस्ताव के लिए कांग्रेसी अ-हरिजन सदस्यों का समर्थन आवश्यक है।

मद्रास में कांग्रेसी वजारत कायम करने के प्रयत्न का श्रीगणेश जिन हरिजन सदस्यों ने किया था उनका कहना था कि कांग्रेस दल ने हरिजन सदस्यों को हरिजन-हितों से सम्बन्ध रखनेवाले विषयों में स्वतंत्र मत रखने की जो आजादी दे रखी है उससे उन्हें लाभ उठाना चाहिए। मद्रास के भूतपूर्व मेयर श्री जे० शिवशंघम् के पत्र का गांधीजी ने जो उत्तर दिया था उस का भी हवाला उन्होंने दिया। श्री शिवशंघम् ने मद्रास में लोकप्रिय सरकार की आवश्यकता बताते हुए कहा था कि कांग्रेसी मंत्रिमंडल के इस्तीफा देने के समय से हरिजनों के हित-सम्बन्धी कार्यों, जैसे मंदिर-प्रवेश व मादक वस्तु-निषेध आदि की उपेक्षा होती रही है।

गांधीजी ने पत्र का उत्तर देते हुए कहा था कि हरिजनों को वही करना चाहिए, जिसे वे अपने हित में सर्वोत्तम समझें। सम्मेलन में कहा गया कि लोकप्रिय सरकार कितने ही तरीकों से हरिजनों की अवस्था में सुधार कर सकती है। गांधीजी के पास डेपुटेशन भेजने का प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया। साथ ही यह भी स्पष्ट कर दिया गया कि हरिजन सदस्य गांधीजी की सलाह के अनुसार कार्य करेंगे।—[एसोशियेटेड प्रेस।]

बिहार

वजारत बनाने में बिहार को कोई अधिक सफलता नहीं हुई। बिहार असेम्बली में विरोधी दल के नेता श्री सी० पी० एन० सिंह ने ५ जून को अपने एक वक्तव्य में कहा:—

"बिहार असेम्बली में विरोधी दल के नेता की हैसियत से सब से पहले मुझे ही नयी परिस्थिति के सम्बन्ध में जनता को सूचित करना चाहिए था, किन्तु जल्दबाजी करने या जनता को उत्तेजित करने की आदत न होने के कारण मैं ने समाचारपत्रों में कुछ प्रकाशित नहीं कराया। मैं अधिकारपूर्वक कह सकता हूँ कि गवर्नर द्वारा मि० यूनुस को मंत्रिमंडल बनाने के लिए बुलाने का समाचार बिल्कुल निराधार है।

"जहां तक मुझे ज्ञात हुआ है मि० यूनूस २५ मई के लगभग गवर्नर से रांची में मिले थे। वहां उन्होंने गवर्नर से कहा कि एसेम्बली के कुछ लोगों के मिलकर गुट बनानेसे स्थायी सरकार नहीं कायम हो सकती। तब गवर्नर ने मुझे सूचित किया। मैं असेम्बली के सदस्यों तथा जनता को बता देना चाहता हूं कि विरोधी दल के नेता को मंत्रिमंडल बनाने का अवसर देने की जो वैधानिक परम्परा है उसे सर्वथा त्याग नहीं दिया गया है। प्रान्त के शासन में जनता के सहयोग-द्वारा वर्तमान अड़ंगों को दूर करने के लिए मैं कुछ भी उठा नहीं रखूंगा और इस दृष्टि से अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न होते ही जनता को तुरंत सूचित करूंगा।"—[एसोशियेटेड प्रेस और यूनाइटेड प्रेस।]

मंत्रिमंडलों का निर्माण

प्रान्तीय असेम्बलियों के कांग्रेसी सदस्यों तथा कांग्रेसी नेताओं के जेल में बंद होने के कारण अन्य राजनीतिक दलों को मंत्रिमंडलों के निर्माण के लिए खुला मैदान मिल गया। इसी कारण हिन्दू महासभा और मुसलिम लीग में एक विरोधी सहयोग भी स्थापित हो गया। १९३७ के आम चुनाव में ७३,१९.४४५ मुस्लिम वोटों में लीग को केवल ३, २१, ७७२ वोट यानी कुल डाले गये मुस्लिम वोटों में से उसे सिर्फ ४.४ प्रतिशत वोट ही मिले थे। ९२ प्रतिशत मुस्लिम आबादीवाले सीमाप्रान्त में लीग को कुल मुस्लिम वोटों में से सिर्फ ५ प्रतिशत ही प्राप्त हुए थे। फिर भी सरकार की कृपा से सीमा के प्रान्तों में लीगी प्रधानमंत्रियों या लीगी विचारवाले प्रधानमंत्रियों के नेतृत्व में मंत्रिमंडल बनने के लिए खिचड़ी पकने लगी। यह दृश्य

हिन्दू महासभा के लिए असहनीय था। इसलिए चुनाव में लीग से अधिक असफल होने के बावजूद हिन्दू महासभा के नेता हिन्दू बहुमतवाले प्रान्तों में मीठे सपने देखने लगे। जब कि लीग को सरकार की स्वीकृति १९३७ में मिली थी, महासभा को अपना प्रमाणपत्र अगस्त, १९४० में वाइसराय के दस्तखत और एमरी की स्वीकृति से प्राप्त हुआ। सरकार ने हिंदू धर्म और इस्लाम दोनों ही को भारतीय राजनीति के अशान्त समुद्र में एक-दूसरे के विरुद्ध अपनी शक्ति बढ़ाने का अधिकारपत्र दे दिया। इससे उनकी अपनी हानि होती थी, पर सरकार की प्रभुता और शक्ति में वृद्धि हुई।

हिन्दू महासभा तो खुले-आम जूठन से पेट भरने के लिए आगे बढ़ी और उधर मुस्लिम लीग, जो भारत की स्वाधीनता को अपना ध्येय बना चुकी थी, अंग्रेजों की सहायता और उन्हीं के संरक्षण में सिर्फ मुसलमानों की स्वाधीनता का प्रयत्न करने लगी। दोनों ही ने वजारतें कायम करने में अपनी ताकतें लगा दीं। जब कि लीग गवर्नर-जनरल व गवर्नरों की सहायता से अपनी शक्ति बढ़ा रही थी, हिन्दू महासभा के अध्यक्ष ने ६ जून, १९४३ को अपना आन्दोलन आरम्भ कर दिया। जिस हिन्दू जाति ने श्री सावरकर को ३,००,००० रु० की थैली भेंट की—जिस का उद्देश्य स्पष्टतः महा-सभाई उम्मीदवारों के चुनाव का खर्च निकालना था—उसे उन्होंने यह तोहफा दिया। उन्होंने नये मंत्रिमंडल कायम करने के लिए निम्न आदेश-पत्र निकाला:—

"हिंदू-अल्पसंख्यावाले जिन भी प्रान्तों में मुस्लिम मंत्रिमंडल अनिवार्य जान पड़े—चाहे यह मंत्रिमंडल लीग के नेतृत्व में बन रहा हो या नहीं—और हिन्दू-हितों की रक्षा उन मंत्रिमंडलों में शरीक होने से होती हो, वहां हिन्दू महासभाइयों को मंत्रिमंडल में अधिक-से-अधिक स्थान प्राप्त करने तथा अल्पसंख्यक हिन्दुओं के हितों की रक्षा करने की चेष्टा करनी चाहिए। यदि न्यायोचित तथा देशभक्तिपूर्ण उद्देश्यों को सामने रखकर संयुक्त मंत्रिमंडल बनाये जायँ तो इससे सिर्फ लाभ ही नहीं होगा, बल्कि साथ मिलकर काम करने की आदत पड़ेगी, परायेपन की भावना दूर होगी और धर्म व जाति के भेद रहते हुए भी एकता की तरफ प्रगति हो सकेगी।"

मंत्रिमंडल कायम करने के लिए हिन्दू महासभा को जिन सिद्धान्तों पर चलना चाहिए उनका स्पष्टीकरण करते हुए श्री सावरकर आगे कहते हैं:—"मुस्लिम मंत्रिमंडल जब भी पाकिस्तान या अलग होने के लिए आत्मनिर्णय के सिद्धान्त का समर्थन करे तभी हिन्दू महासभा के प्रतिनिधियों को उसका विरोध करना चाहिए। मंत्रिमंडल संयुक्त रूप से जो भी हिन्दू-विरोधी कार्य करे उसके विरुद्ध प्रान्तीय सभाओं को आन्दोलन करने के लिए स्वतंत्र रहना चाहिए और जिन हिन्दू मंत्रियों ने हिन्दू-विरोधी कार्यों का विरोध किया हो उन्हें इस्तीफा देने को न कहना चाहिए। हमें अपने सामने यह सिद्धान्त रखना चाहिए कि मंत्रिमंडल के पूर्ण बहिष्कार से हिन्दू-हितों की हानि ही होने की सम्भावना अधिक है। वर्तमान परिस्थिति में हिन्दू महासभा को अधिक-से-अधिक महत्त्वपूर्ण स्थानों पर कब्जा कर लेना चाहिए ताकि भविष्य में विधान-निर्माण करते समय लीग और कांग्रेस के साथ-साथ वह भी हिन्दू-दल के रूप में अपने अधिकारों का दावा उपस्थित कर सके।"

श्री सावरकर ने इस बात पर भी जोर दिया कि किसी मंत्रिमंडल को सिर्फ इसीलिए कि उसका प्रधानमंत्री या अधिकांश सदस्य मुस्लिम लीगी या मुसलमान हैं, 'लीगी मंत्रिमंडल' या 'मुस्लिम मंत्रिमंडल' न कहना चाहिये। यदि मंत्रिमंडल में हिन्दूसभाई या हिन्दू-मंत्री हैं तो उसे संयुक्त या मिला-जुला मंत्रिमंडल ही कहा जायगा। कांग्रेसी-मंत्रिमंडलों को 'कांग्रेसी' कहा

जाना तो ठीक था, क्योंकि उसके प्रत्येक सदस्य को कांग्रेस के सिद्धान्तों पर हस्ताक्षर करना पड़ता था।

श्री सावरकर ने इस बात पर भी जोर दिया कि हिंदू-बहुमतवाले प्रान्तों में हिन्दूसभाइयों व अन्य हिन्दुओं को मिलकर मिली-जुली वजारतें कायम करनी चाहिएं। पाकिस्तान या प्रान्तों के पृथक् होने के प्रश्न को मंत्रियों के अधिकार के बाहर छोड़ देना चाहिए ताकि उसका निर्णय युद्ध के बाद किया जा सके। लीग के सदस्यों व दूसरे मुसलमानों को वजारत में शामिल होने के लिए बुलाना तो चाहिए, किन्तु उनकी संख्या का अनुपात प्रान्त में मुसलमानों के अनुपात से अधिक न होना चाहिए। हिन्दू बहुसंख्यक प्रान्तों में प्रधानमंत्री सदा हिंदू ही होना चाहिए, जो अहिन्दुओं के हितों की तरह हिन्दुओं के हितों की रक्षा करने का वचन खुले शब्दों में दे सके। वक्तव्य के अंत में श्री सावरकर ने कहा कि मैंने मंत्रिमंडल-निर्माण करने के मुख्य सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला है किन्तु विस्तार की बातें प्रान्तीय हिन्दू सभाओं के निर्णय पर छोड़ी जा सकती हैं।

हिन्दू महासभा के ऊपर दिये गये व मुस्लिम लीग के आदेशों में लोकतंत्री सिद्धान्तों का ध्यान तनिक भी नहीं रखा गया है। प्रान्त में गवर्नर ही ईश्वर है। चीफ सेक्रेटरी प्रधान पुजारी है। जुलाई, १९३७ में वजारत बनाते समय वायसराय ने कांग्रेस को जो आश्वासन दिये थे उनकी भी कोई चर्चा नहीं की गयी है। ये आश्वासन सिर्फ कांग्रेस को ही नहीं, बल्कि देश भर को दिये गये थे। जिन मुस्लिम-बहुमतवाले चार प्रान्तों ने जुलाई, १९३७ में वजारतें कायम की थीं उन्हें भी सात कांग्रेसी प्रान्तों के समान ही आश्वासन पूरे करने की मांग करने का हक था। परन्तु लीग या महासभा ने यह प्रश्न उठाना उचित नहीं समझा, क्योंकि दोनों ही संस्थाएं वजारतें कायम करने या उन्हें कायम रखने में गवर्नर-जनरल, गवर्नर व नौकरशाही के हथियारों का काम कर रही थीं। इन साम्प्रदायिक दलों ने लोकतंत्रवाद की धज्जियां उड़ा दीं, क्योंकि धारासभाओं के बहुमत की आवाज को गवर्नरों की आवाज ने क्षीण कर दिया था। प्रान्तीय स्वाधीनता का भी दिवाला निकल गया, क्योंकि कांग्रेस-द्वारा प्राप्त आश्वासनों की बलि चढ़ा दी गयी। संयुक्त उत्तरदायित्व भी नहीं रहा, क्योंकि मंत्रियों का एक दल पाकिस्तान का समर्थक था और दूसरा इसका विरोधी था। कांग्रेस ने जिस अट्टालिका को चौथाई शताब्दी के कठिन परिश्रम से खड़ा किया था उसे साम्प्रदायवादियों ने साम्राज्यवादियों के सहयोग से साल भर में ही धराशायी कर दिया।

वजारतें बनाने की इस कशमकश के बीच श्री एम० एन० राय ने एक बिलकुल नये ही सिद्धान्त को जन्म दिया। उन्होंने कहा कि चूंकि असेम्बलियों के कांग्रेसी-सदस्यों ने अपने को कानून की पहुँच के बाहर कर लिया है और जो कांग्रेसी मुक्त हैं वे दूसरे दलों में सम्मिलित नहीं होंगे, इसलिए गवर्नरों को जनता के वास्तविक प्रतिनिधियों में से मंत्रियों का चुनाव करना चाहिए। आपका मत था कि धारासभाओं में चुने गये लोग केवल उस १० प्रतिशत जनता का ही प्रतिनिधित्व करते हैं, जिसे मताधिकार प्राप्त है। इसलिए गवर्नरों को अधिकार उन लोगों को सौंपने चाहिएं, जो शेष जनता के प्रतिनिधित्व का दावा करते हैं, क्योंकि वास्तविक प्रतिनिधि वही हैं। यह सुझाव इतनी चतुराईपूर्वक किया गया कि यदि श्री राय जनता का वास्तविक प्रतिनिधित्व करनेवाली संस्थाओं—नेशनल डेमोक्रेटिक पार्टी व आल इंडिया लेबर फेडरेशन का नाम न लेते तो सुझाव को उसके नग्न-रूप में देख सकना असम्भव हो जाता।

संयुक्तप्रान्त, बिहार व मध्यप्रान्त और फिर अंत में मद्रास व बम्बई प्रान्तों में वजारतें कायम करने की कोशिशों को इतनी भी कामयाबी नहीं हुई। वहां लोकमत कांग्रेस के पक्ष में रहा

और नयी वजारतें कायम करने के प्रयत्नों की निंदा की गयी। 'सर्वेन्ट्स आफ इंडिया सोसाइटी'-जैसी नर्म तथा संयत विचारवाली संस्था ने जून, १९४४ के दूसरे सप्ताह में होनेवाली अपनी वार्षिक बैठक में राजनीतिक परिस्थिति, तत्कालीन गति-अवरोध, नयी वजारतें कायम करने और समाचारपत्रों में इस सम्बन्ध में होनेवाले आन्दोलन पर विचार किया। सोसाइटी ने अपने प्रस्ताव में धारा ९३ के अनुसार शासित कुछ प्रान्तों में बहुमत प्राप्त किये बिना ऐसे मंत्रिमंडल कायम करने के प्रयत्नों की निंदा की, जो गवर्नरों की सहायता से और कांग्रेसजनों की अनुपस्थिति में ही कायम रह सकते हैं। ऐसी वजारतों में मंत्री गैर-सरकारी सलाहकार से अधिक और कुछ न होंगे, क्योंकि वे अपने पदों पर बहुमत की जगह सरकारी समर्थन के बल पर कायम रह सकेंगे। इन मंत्रिमंडलों की स्थापना से अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भ्रम फैलेगा और ऐसा लगेगा जैसे प्रान्त में लोकतंत्र-वादी शासन चल रहा हो। धारा ९३ को समाप्त करने का एकमात्र तरीका प्रान्तों में आम चुनाव करना और उस चुनाव के नतीजे को देखकर वजारतें कायम करना ही है।

जबकि तटस्थ दलों का मत इस प्रकार प्रकट हो रहा था, कांग्रेसी मत बिहार व मध्यप्रान्त में ऐसे अनियमित मंत्रिमंडल स्थापित करने के विरुद्ध प्रकट हुआ। अब सभी कांग्रेसी सदस्य जेलों में नहीं थे। कुछ अपनी मियाद खत्म कर चुके थे, कुछ नजरबंदी से छूट चुके थे, कुछ जेल गये नहीं थे और कुछ को सरकार ही ने गिरफ्तार नहीं किया था। बिहार व मध्यप्रान्त में जो कांग्रेसी एम. एल. ए. जेलों के बाहर थे उन्हें चेतावनी मिल चुकी थी कि उन्हें व्यक्तिगत रूप से कुछ न करके मिलकर और सलाह करके ही कोई कार्य करना चाहिए। जून के मध्य में बिहार असेम्बली के कांग्रेसी सदस्यों का एक सम्मेलन हुआ और उसमें मंत्रिमंडल बनाने से इन्कार कर दिया गया। इसी प्रकार नागपुर से श्री कालप्पा ने एक वक्तव्य प्रकाशित करके वजारत कायम करने से इन्कार कर दिया।

: २१ :

लिनलिथगो गये

विदेशी सरकार मुसीबत के वक्त एक दिमागी चाल यह चलती है कि वह जनता का ध्यान नाराजी की वजह से हटा कर किसी ऐसी बात की तरफ खींचती है, जिस की ओर वह सहज ही में आकर्षित हो जाय। ऐसे वक्त जब कि सब का रोष एक ऐसे वाइसराय के व्यक्तित्व में केन्द्रित हो, जो अपने कार्यकाल का ज्योढ़ा वक्त पूरा कर चुका हो, अखबारों में उसके उत्तराधिकारी के चुनाव की चर्चा बार-बार होने से उस रोष में कमी होने को कुछ तो आशा की ही जा सकती है। कम-से-कम लोग इस सोच-विचार में तो पड़ ही सकते हैं कि शायद नया वाइसराय इस से अच्छा हो या वह नयी नीति पर ही अमल करने लगे। नये वाइसराय में क्या गुण होने चाहिएं और जिन लोगों के नाम अखबारों में लिये जा रहे हैं उन में ये गुण कहां तक मौजूद हैं? उसे स्वतंत्र विचार, सूझबूझ, हिम्मत और इतनी सहानुभूतिवाला व्यक्ति होना चाहिए कि वह दुखते हुए घावों और नासूरों को भर सके। क्या नया वाइसराय ऐसे स्वाधीन भारत की नींव रख सकेगा, जो युद्ध के बाद ब्रिटेन से दोस्ती बनाये रखे। क्या वह हिन्दुस्तानियों के ही हाथों में उस इमारत को तैयार करने का काम छोड़ेगा, जिस में उन्हें रहना है, या वह इंग्लैंड के उस कट्टरपंथी दल की परम्परा पर ही चलेगा, जो सदा से साम्राज्यवाद और पूंजीवाद का हामी रहा है? उस समय लार्ड लिनलिथगो के उत्तराधिकारी के लिए कितने ही नाम लिये जा रहे थे। लेकिन चुना वह गया, जिसकी आशा सब से कम थी।

सर आर्किबाल्ड वेवल अवकाश ग्रहण करनेवाले वाइसराय की अधीनता में प्रधान सेनापति के रूप में काम कर चुके थे। इसने लार्ड कार्नवालिस के मि० डुंडास के नाम उस पत्र की याद आती है, जिस में उन्होंने बताया था कि भारत के गवर्नर-जनरल में किन बातों का होना जरूरी है। लार्ड कार्नवालिस ने लिखा था:—

"गवर्नर-जनरल के पद पर ऐसे व्यक्ति की नियुक्ति होनी चाहिए, जो न तो कभी खुद सिविल सर्विस में रहा हो और न जिस का उस के सदस्यों से सम्पर्क रहा हो, जो अपने दूसरे साथियों की तुलना में पद की दृष्टि से काफी ऊंचा हो और जिसे इंगलैंड में सरकार का समर्थन प्राप्त हो।" इस पत्र के लंदन पहुंचने से पूर्व ही सर जान शोर को नियुक्ति कर दी गयी और उन के लगभग १०१ साल बाद सर आर्किबाल्ड वेवल को वाइसराय व गवर्नर-जनरल नियुक्त किया गया।

१९१० में सम्राट् एडवर्ड सातवें ने लार्ड मिंटो के बाद लार्ड किचनर को हिन्दुस्तान का वाइसराय बनाने के लिए बहुत जोर डाला था, किन्तु लार्ड मार्ले ने उच्च राजनीतिक पद पर एक योद्धा को नियुक्त करने का सिद्धान्त स्वीकार नहीं किया। लार्ड मार्ले ने सम्राट् को लिखा कि

शासन-सुधार जारी करने के लिए अपने सब से बड़े सेनानी को भेजने से ये सुधार मजाक ही जान पड़ेंगे। परन्तु इस बार सुधार जारी करने के लिए नहीं, बल्कि सुधारों और क्रान्ति के एक युग का श्रीगणेश करने के लिए—हिन्दुस्तान को ब्रिटेन की गुलामी से छुटकारा दिलाने के लिए लार्ड वेवल की नियुक्ति की गयी। लार्ड मार्ले की विचारधारा का प्रभाव १९३९ तक था और स्वयं वेवल भी उससे अछूते नहीं थे। यह लार्ड वेवल-द्वारा इसी वर्ष केम्ब्रिज के विद्यार्थियों के आगे कहे गये इन शब्दों से जाना जा सकता है:—

"राजनीतिज्ञ को दूसरे के तर्क को काट कर उसे अपने मत का बनाना पड़ता है और इसीलिए उसे खुद भी दूसरे की आलोचना और तर्क सुनने के लिए तैयार रहना पड़ता है यानी उसके विचार सुनिश्चित नहीं होते। इसके विपरीत एक सैनिक, जो आदेश देता है और बिना सोचे-समझे खुद भी दूसरे के आदेश का पालन करता है, अपना मस्तिष्क सुदृढ़, अनुशासित तथा सुनिश्चित रखता है।

"इसलिए राजनीतिज्ञ और सैनिक के पेशों को अदल-बदल पिछली सदी के साथ ही खत्म हो गयी...। अब कोई व्यक्ति दोनों पेशों में एक साथ जाने का विचार नहीं कर सकता।"

इस तरह, लार्ड कार्नवालिस-द्वारा दिये गये कारणों के अलावा यह एक और भी दलील लार्ड वेवल की नियुक्ति के खिलाफ था। पर नागरिक वेवल ने सैनिक वेवल को गलत साबित कर दिया। अब सवाल था कि यह लेखक और चरितकार, यह योद्धा और रणनीति-विशारद, यह बहुभाषा-भाषी, जो स्टालिन से रूसी भाषा में बातचीत कर चुका है और रूसी भाषा में ही रूस में व्याख्यान दे चुका है, और यह फील्ड-मार्शल, जो सिंगापुर के पतन से ३६ घंटे पहले टूटी पसली लिये जान बचा कर भाग चुका है—भारत को निराशा के उस गड्ढे से निकालने के लिए क्या करेगा, जिस में उस के अब तक के अभिमानी शासकों ने उसे डाल रखा है।

एक बार फिर जुलाई १९४३ के अंतिम सप्ताह में मि॰ एमरी ने पार्लिमेंट में अपनी असलियत दिखायी और बताया कि उन के मत से ब्रिटिश लोकतंत्र का सच्चा स्वरूप क्या है। आपने भारत-सरकार के इस निश्चय का हवाला दिया कि "गांधीजी की गिरफ्तारी की परिस्थितियों को देखते हुए उन्हें भारत या इंग्लैंड में अपने विचार प्रकट करने की सुविधा नहीं दी जा सकती" और कहा कि खुद वे भी इस निश्चय से पूरी तरह सहमत हैं। मि॰ सॉरेंसन ने पूछा कि ऐसी हालत में ब्रिटेन की जनता भारत की परिस्थिति के बारे में गांधीजी के विचार किस प्रकार जान सकती है? लेकिन मि॰ एमरी का मुंह बंद नहीं हुआ और उन्होंने उत्तर दिया कि ब्रिटेन की जनता को गांधीजी के विचार जानना आवश्यक नहीं है। यदि एक मंत्री पार्लीमेंट के सदस्यों को ऐसा उत्तर दे सकता है—उन्हीं सदस्यों को जिन के प्रति ब्रिटेन के अलिखित विधान के मुताबिक वह जिम्मेदार है—तो अंदाज लगाया जा सकता है कि युद्ध के वर्षों में ब्रिटिश लोकतंत्र पतन के कितने गहरे गर्त में गिर चुका था। परन्तु मि॰ एमरी का मत उस समय कुछ और ही था जब गांधीजी के अनशन से पहले और बाद का पत्र-व्यवहार प्रकाशित किया गया था—जब इंग्लैंड और हिन्दुस्तान दोनों ही में गांधीजी के अप्रैल से अगस्त, १९४२ तक के लेखों और भाषणों के उद्धरण एक पुस्तिका के रूप में वितरित किये गये थे। किसी आदमी पर आरोप लगाना और उन आरोपों के उत्तर में दिये गये वक्तव्यों को दबा देना निश्चय ही लोकतंत्रवाद नहीं है—लोकतंत्रवाद ही क्यों, मामूली आदमी के नुक्तानज़र से यह इंसाफ भी नहीं है।

केन्द्रीय असेम्बली जुलाई के आखिरी हफ्ते में शुरू हुई और लोगों का ध्यान सबसे अधिक भारत-सरकार से गांधीजी के पत्र-व्यवहार की ओर गया। इसके अलावा, असेम्बली के सदस्यों में यह भावना बढ़ने लगी कि सरकार असेम्बली को कानून बनानेवाली सभा के बजाय एक प्रार्थना करनेवाली संस्था ही अधिक मानती है। इस भावना का मुख्य कारण सदस्यों की यह आशंका थी कि असेम्बली की बैठक के दिनों में भी कहीं गवर्नर-जनरल कोई नया आर्डिनेंस न निकाल दें। इतना ही नहीं, असेम्बली के अधिवेशन से सभी विवादास्पद सवालों को अलग रखा गया था। अन्न की मुसीबत व दक्षिण अफ्रिका के भारतीय विरोधी कानूनों पर भी विचार सिर्फ खास दिन ही होना था, जिससे ऐसी बहसों का कोई नतीजा न निकले। जब सरदार मंगलसिंह ने, जो कुछ ही दिन पहले इस शर्त पर जेल से छूटे थे कि वे पांच या अधिक व्यक्तियों की सभा में भाग न लेंगे, सवाल उठाया कि उनका असेम्बली में आना कहीं अनियमित न ठहराया जाय और उसमें भाषण देने के लिए उन पर मुकदमा न चलाया जाय—तो कुछ मजाक ही रहा। एक दूसरे सदस्य कैलाशबिहारी लाल पहले कांग्रेसी सदस्य थे, किन्तु अब दूसरे पक्ष में चले गये थे। उन्होंने कहा कि मैं अभी जेल से लौटा हूं, जहां मैंने पढ़ा था कि मेरा भाई फरार है, जब कि दरअसल वह जेल में मेरे ही साथ था।

असेम्बली का काम स्थगित करने के प्रस्तावों को पेश करने की इजाजत नहीं दी गयी। राजनीतिक बंदियों के प्रति दुर्व्यवहार के सम्बन्ध में जो प्रस्ताव बजट-अधिवेशन से चला आ रहा था, वह ३८ के विरुद्ध ४८ वोटों से गिर गया—यहां तक उसमें संशोधन करने का श्री जोशी का प्रस्ताव भी स्पीकर के वोट से गिर गया।

२ अगस्त को केन्द्रीय असेम्बली व कौंसिल आफ स्टेट के मिले-जुले जलसे में वाइसराय का वह भाषण हुआ, जिसकी इतने दिनों से धूम मची हुई थी। बस, पहाड़ खोदा, चूहा निकला। गांधीजी व दूसरे नेताओं की गिरफ्तारी की पहली साल-गिरह के ठीक एक हफ्ता पहले वाइसराय यह भाषण कर रहे थे। इसके अलावा, उन्हें हिन्दुस्तान से रवाना होने से पहले विदाई भी लेनी थी। देश की तत्कालीन परिस्थिति पर निर्दल नेता-सम्मेलन की स्थायी समिति ने २३ जुलाई को अपनी दिल्लीवाली बैठक में अच्छा प्रकाश डाला था। समिति ने एक वक्तव्य प्रकाशित करके सरकार तथा कांग्रेस दोनों ही से अपीलें की थीं। सरकार से गांधीजी को छोड़ देने की अपील की गयी थी और कांग्रेस से अन्य दलों से मिल कर ऐसे उपाय करने का अनुरोध किया गया था, जिनके परिणामस्वरूप केन्द्र और प्रान्तों में ऐसी सरकारों की स्थापना हो सके, जो "युद्ध चलाने में अधिक-से-अधिक सहयोग प्रदान कर सकें और घबराहट, समाज-विरोधी कार्य व शत्रु-प्रचार के विरुद्ध घरेलू मोर्चा संगठित कर सकें।" देश के नरम विचारवाले लोग युद्ध छिड़ने व कांग्रेसी नेताओं की गिरफ्तारियों के समय से पहली बार नहीं, बल्कि शायद दसवीं बार ऐसी मांग कर चुके थे और इसमें कुछ आश्चर्य भी न था। वास्तव में देश की परिस्थिति गम्भीर थी। तुर्की-मिशन, भूमि-पर्यटक दल या लुई फिशर ने चाहे जो-कुछ क्यों न कहा हो, देश में भाषण की स्वतन्त्रता का अभाव था। ब्रिटेन, तुर्की और अमरीका-द्वारा अपने यहां की जनता का (जिसके स्वार्थ अपनी सरकारों के स्वार्थों के समान ही थे) मुंह बन्द करना एक बात है और ब्रिटेन-जैसे विदेशी राष्ट्र-द्वारा भारत की जबान पर ताला लगाना बिलकुल भिन्न है। बड़ी संख्या में लोगों को नजरबन्द करके उनकी वैयक्तिक स्वतन्त्रता पर भारी हमला किया गया था। सरकार ने न्यायालयों के फसलों के विरुद्ध आर्डिनेंस जारी किये और अनियमित ठहराये आर्डिनेंसों को फिर से जायज

किया। जिस समय लार्ड लिनलिथगो पद से अवकाश लेकर अपने साढ़े सात वर्ष के कार्य का सिंहावलोकन करते हुए विदाई ले रहे थे उस समय देश के राष्ट्रीय जीवन या उसके अभाव की निम्न विशेषताएं दिखायी दे रही थीं। ज्यादातर सूबों में दफा ९३ का शासन चल रहा था और जिन सूबों में वजारतें काम कर रही थीं उनमें भी शासन प्रायः गवर्नरों का ही था। केन्द्रीय असेम्बली की बैठक के समय भी आर्डिनेंस निकाले जाते थे। अन्न का प्रबन्ध बहुत बुरा था। मि० एमरी से लेकर सर सुलतान अहमद तक अधिकारियों ने कितनी ही बार कहा कि देश में अन्न की कमी नहीं है और फिर सरकार ने खुद ही चावल के निर्यात् पर रोक लगायी। इसी तरह कपड़े का भी कुप्रबन्ध रहा। कलकत्ते की स्वास्थ्य व सफाई-सम्बन्धी हालत असहनीय थी। सड़कों की पटरियों पर लाशें सड़ती थीं और सफाई की लारियां सरकार के कब्जे में चले जाने के कारण टट्टियां कितने ही दिनों तक साफ नहीं होती थीं। पूर्वी बंगाल में सेना ने किसानों की नावें छीन ली थीं और वे नदियों के पार जाने में असमर्थ थे। बंगाल में चावल का मूल्य ३५ रु० मन तक पहुंच चुका था, जबकि बेजवाड़ा में वह सिर्फ ८ रु० मन ही था। चावल के निर्यात् की तरह पहले मुद्रा-बाहुल्य की बात का खंडन किया गया और फिर उसे स्वीकार किया गया। देश में सभी तरफ अकाल और बाढ़ का दौरदौरा था। सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि सरकार व जनता में विरोध की भावना लगातार बढ़ती जाती थी। जहां तक वैधानिक समस्या का सम्बन्ध है, गति-अवरोध पहले ही के समान बना हुआ था। नवीनता सिर्फ मि० चर्चिल का एक भाषण था, जिसमें उन्होंने अपने हमेशा के रुख को एक क्षण के लिए त्याग कर भारत के बारे में फरमाया था कि "इस विशाल महाद्वीप को हाल ही में ब्रिटिश राष्ट्र-मंडल में पूर्ण सन्तोष प्राप्त होगा।" इस घोषणा से कुछ ही पूर्व लार्ड वेवल ने, जो उस समय सिर्फ सर आर्किबाल्ड वेवल थे, कहा था कि भारत की राजनीतिक उन्नति में युद्ध के कारण बाधा नहीं पड़ी है और मुझपर भारत का जो ऋण है, उसे चुका सकने की मुझे पूरी आशा है। इस कथन से लोगों को उम्मीद हो चली थी कि शायद नये वायसराय सुलह के युग का श्रीगणेश करें। इसी समय खबर मिली कि ब्रिटेन में युद्ध-मंत्रिमंडल का १० महीने तक सदस्य रह चुकने के बाद सर रामस्वामी मुदालियर ने भारत के लिए रवाना होने से पूर्व लन्दन में कहा कि हिन्दुस्तान वापस पहुँचने पर वे "वायसराय के मंत्रि-मंडल की स्थापना और उसका भारतीयकरण करने" के लिए सप्रू, जयकर, कुंजरू वगैरह निर्दल नेताओं से मिलेंगे।

एक बात और भी स्मरण रखने की है जिस घोषणा में सर आर्किबाल्ड वेवल के वायसराय और सर क्लॉड आकिनलेक के प्रधान सेनापति नियुक्त किये जाने की सूचना दी गयी थी, उसी में पूर्वी एशिया-कमान स्थापित करने और नये प्रधान सेनापति को प्रशान्त महासागर के युद्ध की जिम्मेदारी से मुक्त करने की असाधारण बात भी थी। सशस्त्र सेनाओं के संचालन की जिम्मेदारी छीन लेने से नये प्रधान सेनापति का कार्य देश के भीतर की सुरक्षा तक सीमित रह गया और भारत-सरकार की भी जिम्मेदारी इससे अधिक कुछ न रह गयी। भारत-सरकार का काम सिर्फ फौज को भर्ती करके उसे नये कमान में भेजना ही रह गया। क्या यह व्यवस्था उस बाधा को दूर करने के लिए की गयी, जिसके कारण क्रिप्स-वार्ता भंग हुई थी ? पूर्वी एशिया-कमान की स्थापना सिर्फ युद्धकाल के लिए थी। उद्देश्य शायद यह था कि युद्ध के संचालन व नये रक्षा-सदस्य की जिम्मेदारी में कहीं संघर्ष न छिड़ जाय। परन्तु इससे भी वाइसराय के खुद ही अपने प्रधान मंत्री होने की व्यवस्था में कोई अन्तर नहीं पड़ा। लार्ड सैमुएल इस व्यवस्था की

लार्ड सभा की एक बहस में निंदा कर चुके थे। अफवाह यह भी थी कि शायद वाइसराय की शासन-परिषद् के एक उच्च भारतीय सदस्य को 'मंत्रिमंडल' की कार्रवाई होने के समय अध्यक्ष का स्थान ग्रहण करने को कहा जाय, किन्तु इससे क्या लाभ होता। शासन-परिषद् का चाहे जितना भी भारतीयकरण क्यों न किया जाता, वह मंत्रिमंडल कैसे बन सकती थी।

इस स्थल पर यह बता देना लाभकर होगा कि हमारी राष्ट्रीय मांग क्या थी और इस मांग तक ऊपर बताये गये प्रस्ताव या निर्दल नेताओं की योजना नहीं पहुँचती थी। हमारी राष्ट्रीय मांग तो यह थी कि ब्रिटेन पहले तो भारत की स्वाधीनता की घोषणा करे और फिर भारत व इंग्लैंड के मध्य एक सन्धि हो, जिसमें वर्तमान परिस्थिति तथा स्वतन्त्र भारत के मध्य के परिवर्तन-काल की सब बातें निश्चित की जायँ। इस मध्य के काल में एक अस्थायी सरकार रहे, जो युद्ध-संचालन में बाधा खड़ी न करने का वचन दे और युद्ध-संचालन का कार्य पहले की व्यवस्था के अनुसार प्रधान सेनापति की देख-रेख में और बाद में हुई व्यवस्था के अनुसार पूर्वी एशिया कमान की देख-रेख में होता रहे।

वाइसराय के भाषण से कांग्रेसजनों को नहीं—क्योंकि वे तो लार्ड लिनलिथगो के व्यक्तित्व से कुछ भी उम्मीद न रखने का सबक सीख चुके थे—बल्कि सम्पूर्ण भारत की दृष्टि से यहां की जनता व ब्रिटेन के प्रगतिशील अखबारों को बड़ी निराशा हुई। यह बड़ा निरुद्देश्य और नीरस भाषण था। दरअसल इस भाषण में लार्ड लिनलिथगो ने अपने कुछ न कर सकने का रोना रोया और साथ ही दलों, वर्गों, सम्प्रदायों व देश के महत्वपूर्ण अंगों के सिर भी दोष मढ़ा, लेकिन इस बार उनके कथन में निन्दा की ध्वनि न थी। उस समय ठीक ही कहा गया था कि भाषण की विशेषता उसमें कही हुई बातों के कारण नहीं, बल्कि छोड़ी गयी बातों के कारण थी। एक कहानी प्रसिद्ध है कि एक बार रोमन सम्राटों की मूर्तियों का जुलूस निकाला गया, किन्तु इनमें सीजर की मूर्ति न थी। उस समय सम्राटों के महत्व का अन्दाज उन मूर्तियों को देख कर नहीं लगाया जो जुलूस में मौजूद थीं, बल्कि उस मूर्ति के कारण जो जुलूस में उपस्थित न थी। यदि वाइसराय ने गांधीजी के बारे में कुछ नहीं कहा तो इससे गांधीजी का महत्व थोड़े ही कम हुआ, बल्कि वह और भी प्रकाश में आ गया। 'मांचेस्टर गार्जियन' ने उस समय ठीक ही लिखा था:—

"वाइसराय ने इस बात का उल्लेख किये बिना ही कि गांधीजी व कांग्रेसी नेता जेलों में हैं और उन्हें बाहर के नेताओं से मिलने की इजाजत नहीं है, और यह कि गांधीजी को खुद भी बाहरवाले नेताओं को पत्र लिखने की सुविधा नहीं प्राप्त है, अपने कार्यकाल की समीक्षा करने का प्रयत्न किया है। परन्तु इस छूट से भाषण का अधिकांश महत्व जाता रहा है। और फिर ध्वनि यही है कि राजनीतिक गुत्थी सुलझाने के लिए सरकार को नहीं बल्कि भारतीय नेताओं को ही प्रयत्न करना चाहिए।"

वाइसराय का कहना यह था कि १९३५ की योजना तो अच्छी थी किन्तु युद्ध व सम्बन्धित दलों में समझौता न हो सकने से उसे अमल में नहीं लाया जा सका। स्मरण किया जा सकता है कि कांग्रेसी प्रान्तों में वजारतें जुलाई १९३९ में कायम हुई थीं। कांग्रेस संघ के आदर्श के विरुद्ध कभी न थी—उस का विरोध तो ऊपर बताई वजहों से १९३५ के कानूनवाली योजना से था। यदि कानून के दूसरे भाग को अमल में लाने का कोई खास तौर पर विरोधी था तो नरेश ही थे, जिन्हों ने अनेक आपत्तियां उठाईं। कम-से-कम प्रान्तों में तो उन्नति का कार्य जारी रह सकता था, किन्तु यहां मुस्लिम लीग की आपत्ति सामने लाई गई। पर क्या

कांग्रेस और हिन्दुओं के विशाल जनसमूह ने रेमजे मेकडानल्ड के साम्प्रदायिक निश्चय का विरोध नहीं किया था। तो भी उसे देश के सिर पर जबरन लाद दिया गया। यदि ब्रिटिश अधिकारी क्रमशः शक्ति त्यागना चाहते तो वे रियासतों को बाद में शामिल होने के लिए छोड़ कर प्रान्तों के संघ की स्थापना कर सकते थे। क्या वे आशा करते थे कि ५६२ रियासतें की १९३५ की योजना स्वीकार करने तक प्रान्त उस शुभ-घड़ी की प्रतीक्षा करते हुए बैठे रहेंगे? कम-से-कम इस रुख से ईमानदारी तो जाहिर नहीं होती।

और जब वाइसराय ने सभी दलों को एका करने को कहा तो उनका मतलब किस-किस दल से था? यहां हमें लार्ड हेली-द्वारा कही बातें याद आ जाती हैं? क्या सभी दलों में कांग्रेस भी आ जाती है? यदि कांग्रेस भी उनमें आती है, तो प्रश्न उठता है कि मि० एमरी के शब्दों में जब "सब से बड़ा, सब से व्यापक आधार पर संगठित और सबसे अधिक अनुशासित" दल जेलों में बंद हो तो पार्टियों का यह मिलन किस प्रकार सम्भव है? शायद वाइसराय को यह कहने का साहस नहीं हुआ कि कांग्रेस को छोड़ देना चाहिए। जहां वाइसराय के मन में कपट है, भारतमंत्री स्पष्टवक्ता हैं।

अब हम वाइसराय-द्वारा कही हुई बातों पर कुछ विस्तार से विचार कर सकते हैं। गवर्नर-जनरल की शासन-परिषद् के सदस्यों की संख्या ७ से १४ कर देने—जिन में एक यूरोपियन को मिला कर ११ गैर-सरकारी और एक सरकारी को मिला कर ४ यूरोपियन हैं—से अधिक और कुछ न करने के दोष से वाइसराय अपने और अपने 'घर की सरकार" को मुक्त करते हैं। शासन-परिषद् का यह विस्तार दो बार में हुआ— पहली बार तो उस समय जब व्यक्तिगत सत्याग्रह चल रहा था और दूसरी बार उस समय जब अगस्त १९४२ का अगस्त-वाला प्रस्ताव पास किया जानेवाला था। इस विस्तार को व्यक्तियों के चुनाव की दृष्टि से देखा जाय या विभागों के बँटवारे की दृष्टि से—यह थी एक प्रतिक्रियापूर्ण कार्रवाई ही, जिस का उद्देश्य सिर्फ भारतीयकरण का एक दिखावामात्र करना था। यहां तक कि वाइसराय के भाषण देते समय भी उन की शासन-परिषद् के दो महत्वपूर्ण विभाग—गृह और अर्थ सरकारी कर्मचारियों के अधिकार में थे और एक तीसरा, यातायात् विभाग एक गैर-सरकारी यूरोपियन के हाथ में था। १९४३ के अगस्त महीने में आंशिक भारतीयकरण की बातें करना मिंटो-मार्ले सुधारों की याद दिलाता है। उन दिनों सर सत्येन्द्र प्रसन्न सिनहा और डा० सप्रू को बुलाया गया था, और उन्होंने सिद्धान्त के प्रश्न पर इस्तीफा दे कर साहस का प्रदर्शन किया था। यहां तक कि लार्ड लिनलिथगो-द्वारा की गयी नियुक्तियों में भी चार व्यक्ति राष्ट्रीय आत्म-सम्मान का खयाल करनेवाले निकले और उन्हों ने मतभेद होने पर इस्तीफे दे दिये। ये व्यक्ति सर सी० पी० रामस्वामी अय्यर (जिन्होंने १५ दिन पद पर रहने के बाद उसे त्याग दिया), सर होमी मोदी, श्री एन० आर० सरकार और श्री एम० एस० अणे थे। वाइसराय ने गांधीजी के अनशन के दिनों में ही भारत के नये पद की व्याख्या की थी। इस पद का विकास तो मांटेगू के समय से ही हो रहा था, जब भारतीयों को ब्रिटिश युद्ध-मंत्रिमंडल में लिया जाने लगा था। बाद में भारतीय प्रतिनिधियों ने वार्साई-संधि पर भी हस्ताक्षर किये। फिर उन्हें १९१७ और १९२२ के साम्राज्य-सम्मेलनों तथा १९२६ के स्वाधीन उपनिवेश सम्मेलन में भी आमंत्रित किया गया। १९३१ में भारत-मंत्री कमांडर वेजवुड बेन ने कहा था कि भारत में तो औपनिवेशक पद के ही अनुसार काम हो रहा है। अब वाशिंगटन और चुंगकिंग में भारतीय-प्रतिनिधि नियुक्त होने के

कारण इस पद का बखान किया जाता है। आश्चर्य है कि भारत के प्रगतिशील पद का परिचय देते समय वाइसराय ने लंका में श्री अणे के एजेंट-जनरल नियुक्त किये जाने का हवाला नहीं दिया। गोकि श्री अणे अपनी नियुक्ति को भारत की पद-वृद्धि का परिचायक कह चुके थे। क्या इसका कारण यही था कि लंका ब्रिटेन का उपनिवेश है और उस की तुलना में चीन व अमरीका में भारत के प्रतिनिधित्व का कहीं अधिक महत्त्व है। यदि ऐसा ही है तो श्री-अणे का दावा भी अतिरंजित ही जान पड़ता है। पूर्व या पश्चिम में कोई नौकरी मिल जाने से पद की वृद्धि नहीं हो जाती। पद मुख्यतः देश के भीतर की चीज है और जो वस्तु अपनी सीमाओं के भीतर भारत के पास नहीं है वह उसे बाहर से नहीं प्राप्त हो सकती। जिस भारत को स्वराज्य या स्वाधीनता नहीं प्राप्त है वह पराधीन ही कहा जायगा, चाहे संसार के राष्ट्रों के मध्य कितना ही पहना-उढ़ा कर उस का प्रदर्शन क्यों न किया जाय।

वाइसराय ने एक विरोधाभासपूर्ण वक्तव्य यह भी दिया कि भारत की यह "फूट सम्राट् की सरकार-द्वारा अधिकार दे देने की इच्छा के अभाव के कारण न होकर उस इच्छा के मौजूद रहने के कारण ही है।" इस तथ्य को न समझने का आरोप कांग्रेस के विरुद्ध किया जाना भले ही सत्य हो, किन्तु क्या मुस्लिम लीग भी इसकी उतनी ही दोषी नहीं है? क्या लीग के अध्यक्ष मि० जिन्ना और उसके सेक्रेटरी नवाबजादा लियाकतअली खां ने दिल्ली में होनेवाले उसके चौबीसवें अधिवेशन (अप्रैल १६४३) में भारतीयों के हाथों में अधिकार न दिये जाने की शिकायत नहीं की थी? और वाइसराय कहते हैं कि भारत के राजनीतिक दल आपसी फूट के कारण कोई रचनात्मक सुझाव भी उपस्थित नहीं कर पाये हैं। क्या कांग्रेस के अध्यक्ष यह घोषणा सार्वजनिक रूप से नहीं कर चुके हैं कि राष्ट्रीय-शासन मुस्लिम-लीग के हाथों में सौंप दिया जाय और क्या गांधीजी नहीं कह चुके हैं कि कांग्रेस ऐसी सरकार के साथ सहयोग करेगी?

परन्तु लार्ड लिनलिथगो ने जनता के सामने एक ऐसे चित्र का उद्घाटन किया, जिसे वे अपने मस्तिष्क के कनवास पर न जाने कब से तैयार कर रहे थे। आप ने कहा कि अस्थायी सरकार तो सिर्फ परिवर्तनशील व अस्थायी ही होती है। "अंतर्कालीन वैधानिक परिवर्तन समझौते तथा साधारण कार्रवाइयों-द्वारा तैयार किये गये विधान का स्थान नहीं ले सकते और साधारण कार्रवाई के अनुसार विधान युद्ध के दिनों में तैयार नहीं किया जा सकता।" दूसरे लफ्जों में आधी रोटी पूरी रोटी के बराबर नहीं है। चूंकि पूरी रोटी युद्ध के कारण तैयार नहीं हो सकती इसलिए राष्ट्र को पूरी और आधी दोनों ही रोटियों से वंचित रहना चाहिए। समस्या के व्यावहारिक हल में सैद्धान्तिक कठिनाइयों से न कभी बाधा पड़ी है और न पड़नी चाहिए।

फिर वाइसराय का कहना क्या था। "यदि भारत में कुछ भी उन्नति होनी है तो भारत के सार्वजनिक नेताओं को इकट्ठे हो कर उस के लिए रास्ता साफ करना चाहिए।" प्रश्न उठ सकता है कि कांग्रेसजनों के जेल में रहने के समय ये सार्वजनिक व्यक्ति और कौन हो सकते हैं? मि० एमरी ने कामन सभा में उत्तर देते हुए साफ लफ्जों में इस गुत्थी को सुलझा दिया था, "जहां तक मिशनरियों के इस सुझाव का सम्बन्ध है कि जो राजनीतिक बंदी वैध उपायों से काम लेना चाहें उन्हें छोड़ दिया जाय,—यह कहा जा सकता है कि बंदियों-द्वारा भिन्न उपाय चुनने और उन्हें न त्यागने के निश्चय के ही कारण गांधीजी व कांग्रेसी नेताओं को इतने अधिक समय तक जेलों में रहना पड़ा है।"

इस उत्तर का मतलब तो यही हो सकता है कि कांग्रेस को बिल्कुल छोड़ दिया जाय और

हिन्दू महासभा, मुस्लिम लीग, सिख खालसा व हरिजनों की संस्था इकट्ठी होकर एक ऐसा विधान बनावें, जिसमें अखंड हिन्दुस्तान, पाकिस्तान, आजाद पंजाब और हरिजनिस्तान के मध्य समझौता किया गया हो और इस नींव पर स्वराज्य के भवन का निर्माण किया गया हो। यह विजय का नशा, और साम्राज्यवाद की कामयाबी की भावना ही लार्ड लिनलिथगो के मुँह से निर्दोष तथा सीधे जान पड़नेवाले इन लफ्जों से उन की व्याख्या कराती है, जिनका प्रत्यक्ष रूप से मतलब यही है कि "तुमसे जो बने सो करो" पहिये पर बैठी हुई एक मक्खी के प्रयत्नों से हमारा साम्राज्य अछूता ही रहा—उसे जरा आंच नहीं पहुँची। कांग्रेस, गांधीजी, बम्बईवाले प्रस्ताव वगैरह के उल्लेख न करने का मतलब यह था और मि० एमरी द्वारा कांग्रेस सभा में दिये गये उत्तरों का भी यही सार था। "कांग्रेस ने एक अनैतिक मार्ग ग्रहण करके अपने को अलग कर लिया और यदि उसके परिणामस्वरूप उसे गैरकानूनी करार कर दिया जाय तो इसमें और किसका दोष है? बीसवीं शताब्दी के वाइसरायों के मध्य यदि लार्ड कर्जन ने प्राचीन भवन कानून के लिये, लार्ड मिंटो ने पृथक् निर्वाचन-द्वारा हिन्दू मुस्लिम गुत्थी सुलझाने के लिए, लार्ड हार्डिञ्ज ने दक्षिण अफ्रीका की समस्या हल करने के लिए, लार्ड चेम्सफोर्ड ने जलियानवाला बाग के लिए, लार्ड रिडिंग ने न्याय के नाम पर 'रिवर्स कौंसिल' जारी करने के लिए, लार्ड अरविन ने गांधी-अरविन समझौते के लिए, लार्ड विलिंगडन ने वृद्धावस्था के लिए अपने-अपने शासन कालों को चिरस्मरणीय बना दिया है तो लार्ड लिनलिथगो का काल उनके लम्बे-लम्बे वाक्यों, छोटी से छोटी समस्याओं का कठिन हल देर से निकालने, महत्वपूर्ण प्रश्नों का सामना करने में असमर्थता दिखाने और साढ़े सात वर्ष तक भारत की राजनीतिक गुत्थी सुलझाने की चेष्टा करते रहने पर उसके रहस्य को समझने में उनकी असफलता के लिए याद किया जायगा। वे इस देश से कुछ दर्द ले कर—और हमें आशा करनी चाहिए कि कुछ सद्बुद्धि भी लेकर विदा हुए हैं। यहां से जाते समय उन्होंने जो यह सबक सीखा है उसे उन्हें दूसरों को भी सिखा देना चाहिए—"मनुष्यों की तरह राष्ट्रों पर भी सबकुछ मिला कर ही असर पड़ता है। फुसलाने व क्रूरतापूर्ण दमन के नये से नये तरीके भी इस तथ्य में कोई परिवर्तन नहीं कर सकते कि शांति के समान ही युद्ध के समय भी राष्ट्र अपने वचनों तथा कार्यों-द्वारा दुनिया पर अपने विचार प्रकट करते हैं। और अधिक प्रभावपूर्ण तरीकों से विचार प्रकट करते हैं।" बीता हुआ समय और चूके हुए अवसर फिर नहीं आते। लार्ड लिनलिथगो को इतिहास का सदा सबक नहीं भूलना चाहिए था। उन्हें अपने पूर्ववर्तियों तथा राजनीतिज्ञों से सबक लेना चाहिए था, जिन्हों ने नये राष्ट्रों की राष्ट्रीयता से वैसे ही धोखा खाया था, जिस प्रकार कोई व्यक्ति सन्तानोत्पत्ति के समय के कष्टों को साधारण बीमारी समझ बैठता है। लार्ड लिनलिथगो को यह पुरानी शिक्षा स्मरण रखनी चाहिए थी:—

"जब मानव जाति के इतिहास में कोई महान् परिवर्तन होता है तो लोगों के दिमाग उसी तरफ लग जाते हैं—उनकी भावना उसी दिशा में झुक जाती है। प्रत्येक भय और प्रत्येक आशा उसे आगे बढ़ाती है। इंसान की जिन्दगी में आनेवाली इस जबर्दस्त लहर के खिलाफ जो भी उठेगा उसे ऐसा जान पड़ेगा, जैसे वह किसी इंसानी चीज की नहीं बल्कि खुद ईश्वर के किसी हुक्म की उदूली कर रहा है। ऐसे लोग दृढ़ और संकल्पी न होकर, नीच मनोवृत्तिवाले हठी ही कहलायेंगे।"

वाइसराय के दो अगस्तवाले भाषण की अखबारों में जैसी प्रतिक्रिया हुई वैसी इससे पहले वाइसराय के किसी भाषण की नहीं हुई। किसी ने खुले लफ्जों में और किसी ने दबी आवाज

में उसकी निंदा की। लंदन का 'टाइम्स' पत्र बम्बई के अगस्तवाले प्रस्ताव के समय से एक तरफ बृटिश व भारतीय सरकार के और दूसरी तरफ कांग्रेस के मध्य एक संतुलित रुख लेता आया था। वह भी वाइसराय के भाषण के बारे में चुप रहा। जाहिर है कि उसके पास भाषण की तारीफ के लिए कोई लफ्ज न था और बुरा लफ्ज कहने के लिए वह तैयार न था।

८ अगस्त को गांधीजी की गिरफ्तारी को एक साल समाप्त होनेवाला था। इस अवसर पर अगर भारत में नहीं, तो कम से कम इंग्लैंड में कुछ हलचल हुई। ब्रिटिश पत्रों में वर्ष समाप्त होने और वाइसराय के भाषण पर कुछ महत्वपूर्ण टिप्पणियां लिखी गयीं। गांधीजी की गिरफ्तारी की सालगिरह के मौके पर सरकार को भय होने लगा कि वहीं पिछले साल की ही तरह इस साल भी उपद्रव न छिड़ जाय। इसलिए सरकार को जिन व्यक्तियों से गड़बड़ होने की उम्मीद थी उन्हें हजारों की तादादों में गिरफ्तार कर लिया गया। सालगिरह से दो दिन पहले बम्बई में ३०० व्यक्ति गिरफ्तार किये गये और फिर प्रायः सब के सब छोड़ भी दिये गये। भारत में जहां-जहां सभा करने की मुनादी न थी, वहां-वहां सभायें हुईं, और इन सभाओं में राजनीतिक बंदियों और विशेषकर गांधीजी व कांग्रेस-नेताओं की रिहाई की मांग की गयी। लंदन में भी कितनी सभाएं हुईं, जिनमें से एक में स्वाधीनता के अनन्य प्रेमी सोरेंसन ने कहा, कि भारत की परिस्थिति से सामना करने के लिए आध्यात्मिक साहस की जरूरत है। सालगिरह के मौके पर श्रीमती सरोजनी नायडू ने, जिन्हें कई महीने पहले ही छोड़ दिया गया था और जो उस समय भी बीमार थीं, समाचारपत्रों के लिए निम्न वक्तव्य दिया:—

"महात्मा गांधी व कार्य-समिति के गिरफ्तार हो जाने पर कांग्रेस कार्यकर्ताओं के मध्य कुछ भ्रम फैल गया है और विचारों का कुछ संघर्ष भी शुरू हो गया है, क्योंकि इस समय न तो उन्हें कोई निश्चित आदेश ही प्राप्त है और न उनका नेतृत्व ही इस समय हो रहा है। यदि किसी के मन में कोई सन्देह रह गया हो तो उसे दूर करने के लिए मैं यह बता देना चाहती हूं कि कार्य-समिति या अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने कांग्रेस के भीतर के किसी वर्ग या समूह को कांग्रेस की ओर से घोषणापत्र निकालने या नयी नीति निर्धारित करने का न तो अधिकार ही दिया है और न—जैसा कि कभी-कभी कहा जाता है किन्तु जिस पर मैं विश्वास नहीं करती—कांग्रेस के नाम उसके सिद्धान्तों और परम्पराओं के विरुद्ध गुप्त कार्यों को प्रोत्साहन ही दिया जा सकता है।"

इस समय छोटे-बड़े, अंग्रेज भारतीय, इंग्लैंड, हिन्दुस्तान व अमरीका—सभी तरफ से भारत की राजनीतिक परिस्थिति के सम्बन्ध में विचार प्रकट किये जाने लगे थे, क्योंकि एक तो नये वाइसराय आ रहे थे और दूसरे देश में अव्यवस्था चलते हुए एक वर्ष समाप्त हो चुका था। आन्दोलन वापस लेने तथा वाइसराय के सिंहासन तक नतमस्तक होकर पहुँचने के कट्टरपन्थी रुख का हवाला ऊपर दिया जा चुका है। अन्य लोगों ने जैसे इसी तर्क की पुष्टि के लिए कहना शुरू किया कि गांधीजी ने अपने साथियों की सलाह के खिलाफ खिलाफत का पक्ष लेकर व सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन छेड़कर बड़ी भारी भूल की थी। ये लोग यह भी भूल जाते थे कि कुछ ही समय पूर्व कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल काम कर रहे थे, जिन्हें युद्ध छिड़ने के समय जानबूझ कर समाप्त किया गया था। इससे उन्हें क्या मतलब—उन्हें तो कभी असहयोग की निन्दा करके, कभी खद्दर को बुरा-भला कहकर, कभी कांग्रेसी वजारतों की गांधीजी द्वारा हिमायत की जाने बात उठाकर अपने दिल का गुबार ही निकालना था।

यह भारत के लिए सौभाग्य की बात है कि ऐसे विचार रखनेवाले भारतीय महानुभावों

की तुलना में आर्थर मूर-जैसे महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व के लोग भी सामने आते रहे हैं। ये सज्जन पहले 'स्टेट्समैन' के सम्पादक थे। उन्होंने अपनी अन्तर्भेदिनी दृष्टि-द्वारा समस्या का विश्लेषण करके उसे हल करने का रास्ता निकाल लिया। लाहौर के 'ट्रिब्यून' में एक विशेष लेख लिखकर उन्होंने कहा कि भविष्य की तुलना में वर्तमान का महत्त्व ही अधिक है। आपने कांग्रेस के इस रुख का समर्थन किया कि उसकी तात्कालिक उत्तरदायित्व की मांग पूरी करने से साम्प्रदायिक प्रतियोगिता समाप्त हो जाती है और भावी वैधानिक योजना की जो बात वाइसराय ने उठायी है उससे देश में आपसी झगड़े फैलने की सम्भावना है। इससे कोई इन्कार नहीं करता कि देश के भविष्य के सम्बन्ध में सम्राट् की सरकार के इरादे के विषय में उठनेवाले संदेहों को दूर करने के लिए वाइसराय तैयार थे। मि० मूर ने लिखा—"हरेक मुसीबत के वक्त भविष्य की तुलना में वर्तमान ही अधिक महत्त्वपूर्ण होता है और वर्तमान में सही कदम उठा कर ही भविष्य के सन्देहों को दूर किया जा सकता है।" इन्हीं दिनों (अगस्त १९४३) महामाननीय शास्त्रीजी ने शान्ति-सम्मेलन में गांधीजी के उपस्थित होने पर जोर दिया।

वाइसराय के भाषण से कुछ पहले प्रकाशित हुई प्रशान्त-सम्मेलन की रिपोर्ट को देखने से समझा जा सकता है कि सर रामस्वामी मुदालियर के लंदन में प्रकट किये गये विचारों तथा कराची पहुंचने पर उनकी मुलाकात का विवरण प्रकाशित करने का उद्देश्य ब्रिटिश-मंत्रिमंडल-द्वारा ग्रहण किये गये सीमित दृष्टिकोण के लिए भूमि तैयार करना था। प्रशान्त-सम्मेलन की सिफारिशों व उसके फैसलों का हवाला देकर मंत्रिमंडल अपनी स्थिति मजबूत करना चाहता था। इसीलिए प्रशान्त-सम्मेलन को गैर-सरकारी संस्था भी बताया जा रहा था, गोकि उसमें सरकारी प्रतिनिधि उपस्थित थे। सर रामस्वामी मुदालियर और सर मुहम्मद जफरुल्ला खां को सरकारी प्रतिनिधि माना गया या नहीं, यह स्पष्ट नहीं है; किन्तु एक 'भारतीय प्रतिनिधि'-द्वारा सम्मेलन की कार्रवाई तथा भारतीय गोलमेज बैठक में प्रकट किये गये प्रतिक्रियावादी विचार इन्हीं दो महानुभावों में से किसी एक के थे। पूर्ण अधिवेशन में जो निश्चय हुए वे इसी भारतीय प्रतिनिधि के प्रतिक्रियावादी विचारों के परिणाम थे, गोकि अमरीका व कनाडा के प्रतिनिधियों ने इन विचारों की विपरीत दिशा में अधिक जोर दिया था। इन प्रतिनिधियों की इस रूप में जितनी ही तारीफ की जाय थोड़ी है कि उन्होंने साम्राज्यवादी विचारों का प्रभाव अपने पर न पड़ने दिया और इसलिए भी कि वे एक पराधीन देश के उच्च पद पर रहनेवाले खुशामदी व्यक्तियों के विचारों से भ्रम में नहीं पड़ गये।

प्रशान्त-सम्मेलन की प्रारम्भिक रिपोर्ट देखने से प्रकट हो जाता है कि इन भारतीय प्रतिनिधियों की अपेक्षा अमरीका व कनाडा के प्रतिनिधि ही राजनीतिक अड़ंगे को दूर करने के लिए अधिक उत्सुक थे। सुदूर क्वेबेक जाने के लिए भारतीय प्रतिनिधियों का चुनाव जिस प्रकार किया गया था उसे देखते हुए उनसे यही आशा की जा सकती थी। वाइसराय की शासन-परिषद् का भारतीयकरण प्रगतिशील कदम तो जरूर जान पड़ा होगा; लेकिन उसकी असली अहमियत भी किसी की नजर से छिपी न होगी। एक जांच-कमीशन की नियुक्ति और उसका मार्ग-प्रदर्शन करने के लिए संयुक्त-राष्ट्र-संघ की एक सलाहकार-समिति की सिफारिशें उन लोगों के लिए भले ही पर्याप्त हों, जिन्हें भारत के हाल के इतिहास का कुछ ज्ञान न हो; किन्तु उन लोगों के लिए, जो साइमन कमीशन, चारों गोलमेज परिषदों, शिक्षा-सम्बन्धी हर्टजोग-समिति, आर्थिक-व्यवस्था सम्बन्धी ओटो रायफील्ड-समिति, देशी राज्यों सम्बन्धी बटलर-समिति, लोथियन मताधिकार समिति, संयुक्त पार्लीमेंटरी समिति वगैरह के काम को १९२७ से १९३५ तक देख चुके हैं,

लिए प्रशान्त-सम्मेलन की यह नयी समिति भी निरुद्देश्य ही थी। किसी भारतीय के लिए क्वेबेक-जैसे सुदूर स्थान में जाकर अपने ऐसे मतभेदों का प्रदर्शन करना—जो न तो सदा से चले आये हैं और न अनिवार्य ही हैं और जिन्हें हमारे कुछ अदूरदर्शी देशवासियों व स्वार्थी विदेशियों ने बनाये रखा है—एक ऐसा दृश्य था, जिसमें उन्हें छोड़ कर और कोई भाग नहीं ले सकता था। परन्तु यह कहना कि जब तक कांग्रेस पर गांधीजी का प्रभाव रहेगा तब तक कांग्रेस, सरकार के साथ सहयोग न करेगी, बम्बई के ८ अगस्त वाले प्रस्ताव की उपेक्षा करता था, जिसमें मित्रराष्ट्रों को सशस्त्र सहायता तक देने का वचन दिया गया था। परन्तु सीमा का अतिक्रमण तो उस समय हुआ जब कहा गया कि भारत सरकार का संचालन वाइसराय नहीं, बल्कि उनकी शासन-परिषद् करती है, जो शब्द और भावना दोनों ही के विचार से गलत था। संयुक्त राष्ट्र-संघ के फैसले, कांग्रेसी नेताओं की रिहाई और सत्याग्रह बन्द करने के सुझाव तो अमरीका व कनाडा के प्रतिनिधियों ने उपस्थित किये। परन्तु उन्हें कितना आश्चर्य हुआ होगा जब संयुक्त-राष्ट्र संघ के मध्यस्थ बनने या उसके द्वारा फैसला किये जाने के प्रस्ताव पर यह कहकर आपत्ति उठाई गयी कि अल्पसंख्यक उसका विरोध करेंगे और उन्होंने कहा कि हम अन्धाधुन्ध कांग्रेस का समर्थन नहीं कर रहे हैं; हमारा उद्देश्य तो सिर्फ राजनीतिक गतिरोध को दूर करना ही है। यह तो स्पष्ट था ही कि झगड़े में एक पक्ष अल्पसंख्यकों का भी था और गतिरोध दूर करने के जो भी उपाय किये जाते उनमें अल्पसंख्यकों से सलाह लेकर उन्हें तुष्ट करना भी लाजिमी ही था। इसी प्रकार अमरीका व कनाडा के प्रतिनिधियों के इस सुझाव पर भी कि वाइसराय की शासन-परिषद् को जिम्मेदार बनाया जाय, आपत्ति उठाई गयी। यह पहला ही मौका न था जब भारतीयों को इंग्लैंड और अमरीका में अपने उन्हीं मतभेदों का प्रदर्शन करने के लिए आमंत्रित किया गया था, जिन्हें बढ़ाने का प्रोत्साहन उन्हें अपने देश में दिया जाता रहा है।

प्रशान्त-सम्मेलन की सिफारिशों का क्या असर हुआ? भारत की राजनीतिक समस्या वहीं रही, जहां वह पहले थी। युद्धकाल में वाइसराय की शासन-परिषद् की तीन बाकी सीटों के भारतीयकरण से ज्यादा और खतरा नहीं उठाया जा सकता था और इसका भी श्रीगणेश नया वाइसराय नहीं करनेवाला था। यही कारण जान पड़ता है कि लार्ड लिनलिथगो ने अपना विदाई का भाषण देते समय इस विषय की चर्चा नहीं उठाई थी। बात यह थी कि ब्रिटिश-मंत्रिमंडल भारत में उत्तरदायी शासन कायम करने के पक्ष में नहीं जान पड़ता था। इंग्लैंड में वहां के कितने ही विद्वान् व राजनीतिज्ञ, मजदूर व लिबरल दलों के पत्र, केंटरबरी, यार्क व ब्रेडफर्ड के बिशप और भारत के मिशनरी, जो यह कितनी ही बार कह चुके थे कि कांग्रेस का सहयोग प्राप्त करने से युद्ध-प्रयत्नों में वृद्धि होगी, इस विचार से ब्रिटिश-मंत्रिमंडल सहमत न था। यह कितनी ही बार कहा जा चुका था कि सेना में भर्ती की संख्या ५०,००० मासिक तक थी और बम्बई में अगस्तवाला प्रस्ताव पास होने के बाद के दो महीनों से तो भर्ती की संख्या ७०,००० मासिक तक पहुंच गयी थी। फिर साज-सामान की कमी की वजह से भर्ती कम कर देनी पड़ी। साज-सामान की यह कमी इतनी बढ़ गयी कि रंगरूटों को काठ की बंदूकों से ट्रेनिंग दी जाने लगी। इस तरह रंगरूटों की कमी न होने के कारण कांग्रेस के सहयोग की कुछ दरकार न रही। कांग्रेस साज-सामान के निर्माण में भी ऐसी कोई जरूरत पूरी नहीं करती, जो नौकरशाही खुद न कर सकती हो। फिर रहा ही क्या? क्या कांग्रेस जनता या किसानों से सरकार को धन दिला सकती थी। कांग्रेस यह भी करने में असमर्थ थी, क्योंकि उस के मत से किसानों का पहले ही खूब

शोषण किया जा चुका था। जब अधिक रंगरूटों की जरूरत न थी, अधिक युद्ध-सामग्री तैयार नहीं की जा सकती थी और अधिक धन मिलने का भी सवाल न था, तो फिर कांग्रेस युद्ध-प्रयत्नों की प्रगति के लिए क्या कर सकती थी? सिर्फ नैतिक सहयोग का सवाल था। सिर्फ कांग्रेस ही राष्ट्र को महसूस करा सकती थी कि युद्ध उस का अपना युद्ध है और लड़ना प्रत्येक व्यक्ति का राष्ट्रीय कर्तव्य है। लेकिन ऐसी दुनिया में, जिस में नैतिक दृष्टिकोण का अधिक महत्व न हो, रुपया, आना और पाइयों व मन, सेर और छटांकों के रूप में इसकी क्या-कुछ उपयोगिता हुई? नहीं, कुछ नहीं। एक ऐसे राष्ट्र के लिए कुछ भी नहीं, जिसका विश्वास लड़ने-भिड़ने और खून-खराबी में रहा है। एक ऐसे साम्राज्यवाद के लिए कुछ भी नहीं, जो केवल बड़ी सेनाओं में ही विश्वास रखता है। ऐसी जाति के लिए कुछ भी नहीं, जो विशुद्ध पशुबल की उपासक है और जो अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों का निर्णायक भी इसी पशुबल को समझती है। इसीलिए कहा जा सकता है कि प्रशान्त सम्मेलन एक नाटकमात्र था और जिन्हें गैर-सरकारी प्रतिनिधि कहा जाता था वे नामजद किये हुए सरकारी व गैर-सरकारी व्यक्ति थे। ब्रिटिश-मंत्रिमंडल और उस के आदेश में चलनेवाली भारत-सरकार ने इनके लिए जो सामग्री तैयार करदी थी वही इनका 'स्वतंत्र मत' था। भारत में वाइसराय के भाषण के एक सप्ताह के भीतर ही इन प्रतिनिधियों ने अपनी सिफारिशें उपस्थित कर दीं। एक प्रारम्भिक कमीशन नियुक्त किया जाय और इस कमीशन की देखरेख में एक विधान-परिषद् काम करे। स्पष्ट था कि यह विधान-परिषद् उसी हालत में अपना काम वास्तविक रूप से कर सकती है, जब वह एक राष्ट्रीय सरकार की देख-रेख में एकत्र हो। प्रशान्त-सम्मेलन ने राष्ट्रीय-सरकार की मुसीबत को यह कह कर टाल दिया कि राष्ट्रीय-सरकार को किसी न किसीके प्रति जिम्मेदार होना चाहिए। सवाल उठाया गया कि उसकी यह जिम्मेदारी किसके प्रति हो? केन्द्रीय असेम्बली का नया चुनाव हो सकता था। जब कनाडा, आस्ट्रेलिया और दक्षिण अफ्रीका में चुनाव हुए और युद्ध में सम्मिलित होने या न होने के प्रश्न पर ही विरोधी दलों ने अपनी ताकत की आजमाइश की, तो और वह भी १९४३ के जुलाई व अगस्त महीनों में, फिर हिंदुस्तान में ही आम चुनाव करने में क्या कठिनाई थी? इस आम चुनाव के परिणामस्वरूप जो नयी केन्द्रीय धारासभा होती उसी के प्रति वाइसराय का मंत्रिमंडल जिम्मेदार हो सकता था। दुर्भाग्यवश इस तर्क को आगे बढ़ाने के लिए कांग्रेस के प्रतिनिधि प्रशान्त-सम्मेलन में उपस्थित न थे और सभी ने उनकी अनुपस्थिति पर खेद प्रकट किया। परन्तु ब्रिटेन पर इन प्रार्थनाओं का क्या असर पड़ सकता था? मि० एमरी इस बीच कई बार बोले, पर उनके विचार में कोई अंतर नहीं आया था। ब्रिटिश मस्तिष्क तथा मनोवृत्ति की यह विशेषता है कि जब व्यावहारिक जगत् की बातें होती हैं तो वह आदर्श की तरफ भागता है और जब आदर्श की बातें होती हैं तो वह व्यावहारिक क्षेत्र में उतर आता है। बृटेन हमेशा दुहरा चित्र उपस्थित करता है। इस चित्र के एक तरफ तो रहता है साम्राज्यवाद, और दूसरी तरफ उपनिवेशों व पराधीन प्रदेशों के लिए स्व-शासन। हमें चित्र के दोनों पहलू देखने चाहिए। साम्राज्यवाद वाली तरफ एक ब्रिटिश व्यापारी—लार्ड घराने का व्यक्ति अपनी सम्पत्ति का उपभोग करता दिखाई देता है। इसे उलटिये तो चित्र की दूसरी तरफ आप को वह एक लोकतंत्रवादी दिखाई देता है, जो उपनिवेशों के लिए स्व-शासन तथा भारत के लिए स्वाधीनता के सिद्धान्त को मान चुका है और जो हमें साम्राज्य तथा व्यापार की हानि के लिए बड़े-बड़े आंसू बहाता दिखाई देता है। इस प्रकार एक औसत अंग्रेज—और मि० एमरी एक औसत अंग्रेज ही हैं—में आदर्शवाद व

यथार्थता, तात्कालिकता व सुदूर, सिद्धान्त व काम निकालने की प्रवृत्ति और जीवित व क्रियाशील वर्तमान तथा अनिश्चित व काल्पनिक भविष्य के मध्य निरन्तर संघर्ष चलता रहता है। दूसरे शब्दों में यह संघर्ष पादरी व राजनीतिज्ञ, कवि व योद्धा और दार्शनिक व नीतिकार के मध्य सदा चलता रहता है। यही कारण है कि हमें मंत्रियों के वर्ग दिखाई पड़ते हैं— चर्चिल, जोमिंसन हिक्स और एफ० ई० स्मिथ एक वर्ग में और मार्ले, रोनाल्डशे और एमरी दूसरे वर्ग में आते हैं। मि० एमरी का अंग्रेजी गद्य पर असाधारण अधिकार है। आदर्शवाद की ऊंची उड़ान के भीतर व्यवहारिक त्रुटियों को छिपाने तथा कवित्वमय कल्पनाओं के बीच गगनमंडल की सैर करने और रोमांटिक गहराइयों में उतरने की कला में आप दक्ष हैं। परन्तु मनोहर शब्दावली से राजनीतिक गतिरोध दूर नहीं होते।

मनोनीत वाइसराय ने १६ सितम्बर को अपने सम्मान में पिलग्रिमों के द्वारा दिये गये एक भोज के अवसर पर अपने भावी कार्यक्रम की एक झलक दी। पिलग्रिम सोसाइटी का सम्बन्ध ब्रिटेन और अमरीका दोनों ही राष्ट्रों से है। परन्तु आज के पिलग्रिम (यात्री) उन पिलग्रिम पिताओं के समान धार्मिक यात्री नहीं हैं, जो १७ वीं शताब्दी में धार्मिक स्वतंत्रता की खोज में रवाना हुए थे। लार्ड वेवल ने कहा कि इधर हमारे हृदयों से धार्मिक खोज की भावना का अभाव हो चला है। यह अच्छा ही है कि लार्ड वेवल को बनयन की यह चेतावनी स्मरण हो आयी कि "कोई भी बाधा हमारे हृदयों से जिज्ञासा के भाव को नष्ट न कर पायेगी" पिलग्रिम (यात्री) का कर्तव्य सत्य की खोज में लगे रहना है। सत्य अहिंसा ही में है, हिंसा में नहीं। लोभ, अनुचित आकांक्षा तथा शक्तिशाली-द्वारा अशक्त पर अत्याचार हिंसा है। कमजोरों के प्रति अपना फर्ज पूरा करना, दूसरों से प्रेम करना और उनके लिए रूजवेल्ट की चारों स्वाधीनताओं को स्वीकार कर लेना अहिंसा है। यदि भारत के प्रति लार्ड वेवल का प्रेम वास्तव में एक जिज्ञासु की भांति सत्य की खोज है तो वे अपने गुरु लार्ड एलेनबी के, जिन की मिस्रवाली सफलताएं प्रसिद्ध हैं, आदर्श का अनुसरण कर सकते हैं।

भारत में इस भाषण को विशेष महत्व नहीं दिया गया। फिर भी कहा जा सकता है कि अनुसरण करने के लिए लार्ड वेवल को एक आदर्श मिल गया?

इसके उपरान्त ईस्ट इंडिया एसोसियेशन में भी लार्ड वेवल के सम्मान में एक समारोह हुआ। लार्ड महोदय ने सामने आनेवाली कठिनाइयों व खतरों का जिक्र किया और साथ ही इस बात पर प्रसन्नता प्रकट की कि इंग्लैंड की सभी वर्ग की जनता में भारत के प्रति सद्भावना वर्तमान है। आपने यह भी कहा कि इस समय भारत के सामने एक बड़ा अवसर है। यदि मैं भारत को सन्मार्ग पर लाने में उसकी कुछ सहायता कर सकूं तो इस से अधिक अभिमान और प्रसन्नता की बात मेरे लिए और कोई न होगी। मि० एमरी ने चेतावनी देते हुए कहा कि एक चतुर हाथी पुल पर पैर रखने से पहले उसकी जांच कर लेता है। लार्ड वेवल ने उत्तर में कहा कि चतुर हाथी अपने लिए पुल आप खोज लेता है। लार्ड महोदय का यह कथन खूब रहा। उनका मतलब था कि वे मौजूदा पुल की पर्वाह नहीं करते, क्योंकि वह पहले ही से कमजोर व अनुपयुक्त है। संगठित भारत का भार तो नया पुल ही वहन कर सकता है और वे स्वयं इस पुल का निर्माण करेंगे।

एक के बाद दूसरी दावत हुई। अगली दावत रायल एम्पायर सोसाइटी की तरफ से थी। लार्ड वेवल के भाषणों में लार्ड कर्जन के भाषणों की तरह विभिन्नता नहीं थी। उनकी सब से

बड़ी विशेषता थी कि सुननेवालों को बार-बार सावधान करना और उन्हें भ्रम में पड़ने से इस प्रकार बचाना था:—"हमें जिन खतरों व कठिनाइयों का सामना करना है उन्हें मैं पूरी तरह महसूस करता हूँ।" "युद्ध में भारत के प्रयत्नों के लिए मित्रराष्ट्र उसके ऋणी हैं।" "परन्तु हमें महसूस करना चाहिए कि भारत की यातायात्-प्रणाली व आर्थिक व्यवस्था को कितने अधिक दबाव में काम करना पड़ा है और साथ ही हमें इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि कहीं हम उनके ऊपर इतना भार न रख दें कि उसे उठाने में वे असमर्थ ही जायँ।" "भारत जाते समय एक महान् उत्तरदायित्व के साथ मैं उस के महान् भविष्य का भी अनुभव करता हूं।" "अब तो सब से बड़ी आवश्यकता उसके नेताओं को सन्मार्ग पर लाने की है।"

लार्ड वेवल को अपनी उपाधि जिस विंचेस्टर के लिए मिली वहां उन्होंने एक नयी बात भी कही—"भारत में हमने व्यवहार करने और एक या दो बार निर्णय करने में गलतियां की हैं, किन्तु ये गलतियां हम ने लोभ या भय से प्रेरित होकर नहीं की हैं। दूसरी तरफ भारत को शान्ति प्रदान करके, उसमें राष्ट्रीयता की भावना प्रोत्साहित करके और उसे स्वतंत्रता व स्वाधीनता के पथ पर ले जाकर हमने उसका जो कल्याण किया है, इसे अच्छे शासन व सुप्रबंध का एक सर्वोत्तम नमूना कहा जा सकता है।" साथ ही लार्ड वेवल हमें फिर सावधान करते हैं— "अभी क्षितिज धूमिल और पथ अंधकारपूर्ण जान पड़ता है। यदि हम भारत को कुछ आगे और बढ़ा सकें तो फिर उसे हम अपने उज्ज्वल भविष्य की तरफ अपने-आप बढ़ने के लिए छोड़ सकते हैं।"

दिल्ली में नये वाइसराय की नियुक्ति से ब्रिटेन में मजदूर दल एक बड़ी कठिनाई में पड़ गया। अनुदार-दलवाले तो स्पष्ट रूप से अपरिवर्तनवादी, प्रतिक्रियावादी और पिछड़े हुए थे और मि० चर्चिल के नेतृत्व में घोषित कर ही चुके थे कि वे साम्राज्य का दिवाला निकालने के पक्ष में किसी भी तरह नहीं हैं। उदारदलवाले सिर्फ नाम के ही उदार थे और उनकी संख्या भी पर्याप्त न थी। जिस मजदूर-दल ने दो बार हकूमत संभाली थी वह अपने को अनुदार-दल के बीच घिरा और कमज़ोर पा रहा था। दल में तीन वर्ग थे। सब से प्रभावशाली वर्ग नर्म विचार-वालों का था और उसके नेता एटली, मारीसन, बेविन, ग्रीनवुड और रिडले थे। मध्यवर्ग के नेता सोरेंसन और बायें या उग्र वर्ग के नेता श्री कोवे थे। मजदूर दल में पहले वर्ग का ही जोर अधिक था और वह हिन्दुस्तान के सवाल पर सरकार को किसी परेशानी में नहीं डालना चाहता था। इसीलिए इस वर्ग का एक डेपुटेशन लार्ड वेवल से मिला और उन्हें बताया कि राजनीतिक अड़ंगा दूर करने का जो भी प्रयत्न वे करेंगे उसका पूरा समर्थन मजदूर-दल करेगा। इसलिए मजदूर दल वालों ने और कुछ नहीं तो कम-से-कम यह जाहिर तो कर ही दिया कि नकारात्मक प्रतिक्रियावाद ब्रिटेन के विचारों का सच्चा प्रतीक नहीं है, इसलिए आगे कदम उठाकर वे विरोधी दलवालों को खुश ही करेंगे। इसके विपरीत, मध्यम वर्ग नकारात्मक नीति से संतुष्ट होनेवाला न था। वह ब्रिटेन की यह नैतिक जिम्मेदारी महसूस करता था कि परिस्थिति को विषम बनाने-वाले कारणों को हटाना और भारत की आकांक्षाओं व मांगों को पूरी करने के लिए प्रयत्नशील होना उसी का काम है। वह यह भी कहता था कि परिस्थिति बदल जाने और सुदूरपूर्व के युद्ध के रुख में परिवर्तन के कारण कांग्रेसी नेता भी अपनी नीति में रद्दोबदल करने की ज़रूरत महसूस कर सकते हैं। मजदूर-दल का मध्यम वर्ग नया विधान लागू होने तक ऐसी अस्थायी सरकार की स्थापना पर जोर देना चाहता था, जिसके प्रति वाइसराय अपना नकारात्मक अधिकार काम में

न ला सके। मि० कोने का दृष्टिकोण कांग्रेस के प्रति रिआयत करने का नहीं, बल्कि उसके अधिकारों का था। वे भारत की स्वतन्त्रता की घोषणा करने, राष्ट्रीय-सरकार की तुरंत स्थापना व राजनीतिक बंदियों की रिहाई और सद्भावना बढ़ाने के अन्य उपाय करने के पक्ष में थे।

जब कि एक तरफ मजदूर-दल को कार्यसमिति तथा पार्लीमेंटरी समिति की भारत-सम्बंधी उप-समिति में विचार हो रहा था, दूसरी तरफ ट्रेड यूनियन-दल मुकाबले में अच्छे दृष्टिकोण का परिचय दे रहा था। ट्रेड यूनियन-दल के नेता मि० डोबी ने भारत-सम्बन्धी नीति में परिवर्तन की मांग जोरदार शब्दों में उपस्थित की और कहा कि भारत का दुर्भिक्ष बहुत कुछ शासन-सम्बंधी अव्यवस्था व जनता का सहयोग प्राप्त न करने के कारण हुआ है।

लार्ड वेवल के भारत के लिए विदा होने का समय आने पर इंग्लैंड के अपरिवर्तनवादी लोग भी भारत के लिए अपना फर्ज महसूस करने लगे। इस बार पादरियों की उत्सुकता विशेष रूप से उल्लेखनीय थी। भारत के मिशनरियों-द्वारा भेजी गयी सूचना के आधार पर मेथडिस्ट गिरजा की एक जिला शाखा-द्वारा पास किया गया एक प्रस्ताव मि० एमरी के पास भेज दिया गया। प्रस्ताव के सम्बन्ध में मि० एमरी ने कहा :—

"मैंने उल्लिखित प्रस्ताव को देखा है। मुझे विश्वास है कि नये वाइसराय विभिन्न सम्प्रदायों के मध्य सद्भावना स्थापित करने का प्रयत्न करेंगे, किन्तु राजनीतिक समस्या का हल खास तौर पर राजनीतिक नेताओं के दृष्टिकोण पर ही निर्भर है।"

पादरियों को भारत के प्रति अपने कर्तव्य का भली प्रकार ज्ञान रहा है। भारत के गतिरोध और कटुता पर उन्हें सदा से खेद रहा है।

लार्ड वेवल जिस दिन दिल्ली पहुंचे उसी दिन मि० एमरी ने 'संडे-टाइम्स' के राजनीतिक संवाददाता से मुलाकात करते हुए भारत में हाल के वर्षों की समीक्षा करते हुए भविष्य की तरफ रुख किया। भारत से सर स्टेफर्ड क्रिप्स की रवानगी के समय से मि० एमरी ने क्रिप्स-प्रस्तावों के सम्बन्ध में पहली बार चर्चा उठाते हुए कहा कि प्रस्ताव अभी तक कायम हैं।

२८ अक्तूबर को पार्लीमेंट में अन्न के बारे में सवाल-जवाब के दौरान में श्री सोरेंसन ने मि० एमरी से प्रश्न किया कि कांग्रेसी नेताओं से कोई वार्ता हुई या नहीं और क्या उनसे बातचीत छिड़ना उचित न होगा? मि० एमरी ने उत्तर दिया :—

"चार साल पहले कांग्रेस ने जान-बूझकर प्रांतीय शासन की जिम्मेदारी से हाथ खींच लिया था और उसी समय से वह युद्ध-प्रयत्न को असफल बना देने का प्रयत्न करती रही है।

"जब तक कांग्रेसी नेता अपनी नीति को स्पष्ट नहीं कर देते तब तक उनके हाथ में इस भारी समस्या की जिम्मेदारी देना उचित नहीं जान पड़ता।"

दुनिया में हरेक बात की आखिरी सीमा होती है—यहां तक कि लार्ड लिनलिथगो की साढ़े सात साल की वाइसरायी की भी, जो एक तरफ उन्हें खुद कम थका देनेवाली नहीं सिद्ध हुई, और दूसरी तरफ भारत भी उससे ऊब उठा। भारत में उनका शासन इस बात की सब से बड़ी चेतावनी है कि किसी देश का शासन किस प्रकार आरम्भ नहीं करना चाहिए।

प्रो० एडवर्ड्स ने 'न्यू स्टेट्समेन एंड नेशन' में लार्ड लिनलिथगो पर इसी शीर्षक से एक लेख (१२ दिसम्बर, १९४३ को) निकला था। लेख के कुछ अंश इस प्रकार हैं :—

"भारत में दस वर्ष पहले काम कर चुकनेवाले लार्ड विलिंग्डन ने वाइसराय नियुक्त होने पर अपने पहले भाषण में विधान के अंतर्गत रहकर शासन करनेवाला भारत का पहला

वाइसराय बनने की आशा प्रकट की थी। परन्तु हिन्दुस्तान का अपेक्षाकृत कम अनुभव रखनेवाले लार्ड लिनलिथगो ने कार्य-आरम्भ करने के घण्टे भर के ही भीतर एक धर्मगुरु की तरह उपदेश दे डाला कि वे देश से प्रेम किये जाने की आशा करते हैं और साथ ही यह भी बता डाला कि देश को क्या करना चाहिए। उन्होंने आदेश निकाला कि उनके भाषण के अंश देश भर में जगह-जगह चौखटों में लगाकर टांग दिये जायें और मई के मध्य में एक सब से गर्म दिन को पुलिस और सेना को परेड के लिए बुलाया जाय और अफसर उन अंशों को फिर से पढ़कर सब को सुनावें।

"उन्हें कार्य-भार संभाले अभी एक पखवारा भी नहीं हुआ था कि उन्होंने एक बटालियन का बटालियन बर्खास्त कर दिया। कारण यह था कि उन्होंने—जैसा कि उनका ख्याल था—कुछ सिपाहियों को बड़े तड़के सिगरेट पीते और ताश खेलते हुए देख लिया था।"

एक पखवारे बाद ब्यूरो आफ पब्लिक इंफर्मेशन से निम्न पत्र भारत के एक दैनिक पत्र के नाम भेजा गया था :—

"मुझे वाइसराय के प्राइवेट सेक्रेटरी से ज्ञात हुआ है कि श्रीमान् (वाइसराय) को यह देखकर आश्चर्य हुआ है कि......कोर्ट सर्कुलर को किस भांति प्रकाशित करता है। उसे "सोशल एंड पर्सनल" शीर्षक के अन्य व्यक्तियों की गतिविधि के संवादों के साथ ही प्रकाशित किया जाता है। मुझे सूचित किया गया है कि श्रीमान् के मतानुसार......जैसे पत्र को कोर्ट सर्कुलर लंदन के 'टाइम्स' की ही भांति उद्धृत करना चाहिए। उस पत्र में कोर्ट सर्कुलर के प्रति 'सोशल एंड पर्सनल' से भिन्न व्यवहार किया जाता है। प्रांतीय गवर्नमेंट-हाउसों की घोषणाओं के साथ उसके प्रकाशित किये जाने पर कोई आपत्ति नहीं हो सकती, किन्तु श्रीमान् का मत है कि अन्य संवादों के साथ (ऐसे कुछ संवादों पर साथ की कटिंग में नयी स्याही-द्वारा निशान लगाया गया है) उसका प्रकाशित किया जाना अवांछनीय है।

"सम्बद्ध पत्र में संवादों के दूसरे सर्वोत्तम पृष्ठ पर एक कालम के ऊपर वह सर्कुलर प्रकाशित होता रहा है। जिन संवादों पर लाल स्याही से निशान लगा है उनका सम्बन्ध ऐसे व्यक्तियों से है जैसे भारत-सरकार के एक उच्च सदस्य तथा एक भारतीय राजनीतिज्ञ आदि। लंदन 'टाइम्स' के मुकाबले में यहां कोर्ट सर्कुलर का भेद करने के लिए बारीक लाइन या रूल का उपयोग किया जाता है। लार्ड लिनलिथगो ने दिल्ली के गरीब पशु-पालकों के लाभ के लिए तीन नस्ल बढ़ाने के सांड़ दिये थे और गैर-सरकारी लोगों से इस उदाहरण का अनुसरण करने को कहा था। परन्तु उन्हें स्वयं यह दावा करने की अनुमति देने की कोई आवश्यकता न थी, क्योंकि यह उन्हीं की सूझबूझ न थी। उदाहरण के लिए पिछले ८ वर्षों में पंजाब सरकार ४,५०० नस्ल बढ़ानेवाले सांड़ निश्शुल्क दे चुकी है। सरकारी वक्तव्यों में स्कूली बालकों को निश्शुल्क दूध देने की योजना का 'वाइसराय द्वारा उद्घाटन' होना कहा गया था। वाइसराय होने से पूर्व श्रीमान् सिन्ध में एक ऐसी योजना को अमल में आते हुए देख चुके थे।

"उस समय भारत में औसत व्यक्ति की आय का अनुमान ५ पौंड से ६ पौंड वार्षिक तक लगाया जाता था। वाइसराय का वेतन लगभग २०,००० पौंड (२,५६,३०० रु०) और भत्ता लगभग ३००० पौंड वार्षिक था। वेतन से चौगुनी धनराशि वाइसराय को अपने कर्मचारी-मंडल, दौरे व दूसरे खर्चों के लिए मिलती है। लार्ड विलिंगडन के अवकाश ग्रहण करने से एक साल

पहले और लार्ड लिनलिथगो के दूसरे वर्ष में दो मदों का खर्च क्रमशः इस प्रकार था:—

	१९३४-३५	१९३७-३८
	(पौंडों में)	
१. प्राइवेट सेक्रेटरी का कर्मचारी-मंडल	१४,५१६	२६,०२३
२. वाइसराय के दौरे	२३,१५६	३६,०००

"कुछ करदाताओं को यह देख कर आश्चर्य होता था कि लार्ड लिनलिथगो अक्तूबर, १९३६ में एक भारतीय नरेश के यहां जब गैर-सरकारी तरीके पर १० दिन के लिए मिलने गये तो उन्हें अपने साथ ९९ व्यक्ति ले जाने की और एक महीने बाद जब दूसरी रियासत में उससे भी कम दिनों के लिए मिलने गये तो १२४ व्यक्ति ले जाने की क्या आवश्यकता पड़ी ?

"लार्ड लिनलिथगो ने अपने पहले भाषण में ही कहा था कि सरकारी नीति को प्रकट करने और उसका औचित्य सिद्ध करने के लिए उपयुक्त स्थान केन्द्रीय असेम्बली ही है।

"लार्ड लिनलिथगो के पद-ग्रहण करने पर केन्द्रीय असेम्बली के पहले अधिवेशन में ही प्रस्तावों पर बहस न होने देने में उन्होंने पिछले सभी रिकार्डों को तोड़ डाला। उन्होंने एक दर्जन के लगभग कार्य-स्थगित-प्रस्तावों को रोक दिया, जो सदा केन्द्रीय क्षेत्र की अपेक्षा प्रांतीय क्षेत्र के नहीं होते थे। उन्होंने असेम्बली की रिपोर्टों को विशेष स्थान देने के लिए उपस्थित किये जानेवाले एक बिल पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया था।

"१९३७ की वसन्त ऋतु में जब कांग्रेस पद-ग्रहण करने के लिए सौदा तय करने में लगी थी, लार्ड लिनलिथगो देहरादून व शिमला जाने से पूर्व बरेली जिले में शिकार करने चले गये। पर यह भी सम्भव है कि वे प्रतीक्षा कर रहे हों कि समय बीतने पर कांग्रेस-जनों की आन्तरिक शक्तियों के घात-प्रतिघात से परिस्थिति कुछ सुधर जाय, जैसी कि वह सुधरी भी। फिर १२ सप्ताह बाद उन्होंने भाषण दिया और कहा कि जो कुछ भी वे बोलेंगे "संक्षिप्त भाषा" में बोलेंगे। जरा देखिये तो सही यह भाषण वाइसराय ने उन लोगों के लिए दिया, जिनकी मातृ-भाषा अँग्रेजी न थी:—

"पार्लामेंट की युक्ति और हम सब का, जो भारत में सम्राट् के सेवक हैं और जिनके कन्धों पर कानून को अमल में लाने की जिम्मेदारी है, उद्देश्य यह होना चाहिए और है कि प्रत्येक प्रांत और सम्पूर्ण भारत के सुधार और उन्नति के लिए निर्वाचित प्रतिनिधियों से व्यवहार में अधिक से अधिक सम्भव सहयोग होता रहे और कानून के अनुसार लागू अल्पसंख्यकों के प्रति विशेष तथा अन्य जिम्मेदारियों को पूरी करते हुए ऐसे मत-संघर्ष से बचना चाहिए, जिसके परिणाम-स्वरूप शासन की व्यवस्था अनावश्यक रूप से भंग होने की सम्भावना हो या जिससे गवर्नर व मन्त्रियों की उस सफल साझेदारी के टूटने की आशंका हो जो कानून का आधार है या उस आदर्श पर कुठाराघात होता हो, जिसकी प्राप्ति भारतमंत्री, गवर्नर-जनरल तथा प्रांतीय गवर्नर सभी चाहते हैं।"

इस में हम वाइसराय महोदय के सब से अन्तिम उस भाषण का भी एक वाक्य जोड़ देना चाहते हैं, जो उन्होंने रवानगी से पहले १४ अक्तूबर को नरेन्द्र-मण्डल में दिया था:—

"अस्तु, इस महान्-पद को, जिस पर रहने का मुझे सम्मान प्राप्त है, छोड़ते समय मैं आज यहां श्रीमान् से और आपके द्वारा समस्त नरेशवर्ग तथा उन सभी से, जो रियासतों में अपने अधिकार व स्वतन्त्रता का उपयोग करते हैं, अपील करता हूं कि रियासतों के नरेशों को जो

उत्तम अवसर प्राप्त है, वह व्यर्थ न जाने पाये और इससे दूरदर्शितापूर्वक पूरा लाभ उठाया जाय और ऐसा करते समय नये-पुराने का ऐसा अच्छा मेल हो, और सच्ची देशभक्ति के आगे संकुचित निजी तथा स्थानीय स्वार्थों का इस प्रकार दमन किया जाय कि देशी राज्यों के ब्रिटिश भारत से निकटतम सहयोग-द्वारा देश-भर के भविष्य का निर्माण हो सके और अपनी इस शानदार विरासत के लिए स्थिरता प्राप्त करने में भारत के नरेशों के भाग का भावी पीढ़ियां कृतज्ञतापूर्वक स्मरण कर सकें ।''

भारत से लार्ड लिनलिथगो की विदाई द्वारा १८५७ के गदर के समय से अबतक की वाइसरायी का सब से लम्बा काल समाप्त हो गया। दरअसल लार्ड लिनलिथगो का कार्यकाल दूसरे किसी भी वाइसराय की तुलना में अधिक था। लार्ड लिनलिथगो भारत में लार्ड कर्जन की अपेक्षा छः महीने ज्यादा रहे थे। लार्ड कर्जन का काल प्रतिवर्ष बढ़ाये जाने की बजाय पूरे पांच साल के लिए बढ़ा दिया गया था। लार्ड लिनलिथगो के कार्य-काल का दूसरा महत्व यह था कि दूसरे वाइसरायों की अपेक्षा उनका कार्यकाल सबसे अधिक नाटकीय था। नाटक जिस तरह सुखांत हो सकता है उसी तरह दुःखान्त भी हो सकता है। लार्ड लिनलिथगो जिस नाटक के नायक थे वह दुखांत ही था। वे देखने में हृष्ट-पुष्ट, स्वभाव से अज्ञानी, राजनीति में कट्टरपंथी, दृष्टिकोण में साम्राज्यवादी, कुछ अभिमानी और रीति-रिवाज को बहुत माननेवाले व्यक्ति थे। उन तक पहुंचना कठिन था। उनके व्यवहार में शिष्टाचार की मात्रा अधिक होती थी और वे दूसरों से मिलना-जुलना कम पसंद करते थे। बात को संक्षेप में कहना पसंद होने पर भी वे उसे घुमा-फिराकर ही कह पाते थे। कभी-कभी उनके कार्य निरुद्देश्य तथा प्रभावहीन हुआ करते थे। उनके कार्य सहानुभूतिहीन हुआ करते थे, और यदकदा उनसे हृदयहीनता भी टपकती थी। स्पष्टवादिता के अभाव के कारण लोग उनके इरादों पर संदेह करने लगे थे। यह शक यहां तक बढ़ा कि जब वह भारत की भौगोलिक और आर्थिक एकता पर जोर देते थे और देश में संघ-विधान स्थापित करने का आग्रह करते थे तो लोग आश्चर्य करते थे, क्योंकि उन्होंने अपनी नीति के द्वारा देश में हिन्दू-मुसलमानों के बीच, प्रांतों और रियासतों के बीच, सवर्ण हिन्दुओं और परिगणित जातियों के बीच और प्रांतों व परिगणित प्रदेशों के बीच जिस भेदभाव को प्रोत्साहन दिया था उससे उनके एकता करने के आग्रह का समर्थन नहीं होता था। लार्ड लिनलिथगो ने नरेशों को बढ़ावा देकर उनका कांग्रेस के नहीं, बल्कि लोकतंत्रवाद के भी विरुद्ध उपयोग किया। आपने मुस्लिम लीग के मुकाबले में अगस्त १९४० में हिन्दू महासभा को स्वीकृति प्रदान की ताकि कहा जा सके—और मि० एमरी ने कहा भी था—कि लीग और कांग्रेस में समझौता हो जाने पर हिन्दू महासभा के दावों पर विचार करना पड़ेगा। आपने अपनी शासन-परिषद् में ऐसे व्यक्तियों को रखा जो कांग्रेस के कट्टर विरोधी थे या उसे छोड़ चुके थे। उन्होंने मि० एमरी के शब्दों में ''देश के सब से महत्त्वपूर्ण राजनीतिक दल के नेताओं को जेल में ठूँस दिया और फिर यह शिकायत भी की कि वे मुस्लिम लीग से समझौता नहीं करते।'' उन्हों ने कांग्रेसी नेताओं और लीगी नेताओं के बीच चिट्ठी-पत्री तक बंद कर दी और फिर आरोप किया कि वे मेल-मिलाप नहीं करते। उन्हों ने अगस्त १९४२ में महात्मा गांधी को मुलाकात करने की इजाजत नहीं दी और उनकी सरकार ने सेना व पुलिस की हिंसा के कारण देश में असाधारण उपद्रव फैलाने दिये। बंगाल और उड़ीसा में जब लाखों व्यक्ति भुखमरी के शिकार हो रहे थे तो लार्ड लिनलिथगो ने उनकी सहानुभूति में न तो एक शब्द कहा और न कोई अपील ही निकाली। अपने कार्यकाल के अंतिम दिनों में लाट साहब १६ अक्टूबर को

"सबवर्सिव एक्टिविटीज़ आर्डिनेन्स" के रूप में हिन्दुस्तान को अपना आखिरी तोहफा दिया।

भारत की आर्थिक व्यवस्था व राजनीति से पिछला सम्बन्ध होने के कारण लार्ड लिनलिथगो से वाइसराय का पद सँभालने के समय जो आशा की गई थी वह पूरी नहीं हुई। महात्मा गांधी से मैत्री का जो दावा उन्होंने किया था उसके पीछे शत्रुता की भावना छिपी हुई थी। वाइसराय भवन की सीढ़ियों पर गांधीजी से किये गये मैत्री के दावे को बाद में उन्होंने अपने कार्यों से गलत सिद्ध कर दिया। उन्होंने भारत को एक ऐसे युद्ध में, जो उसका अपना युद्ध न था, व्यवस्थापिका सभा को सूचित किये बिना ही फँसा दिया। लार्ड लिनलिथगो के इस कार्य की लंदन के 'टाइम्स' तक ने निंदा की। उन्होंने २१ दिन के अनशन के अवसर पर गांधीजी को आगाखां महल में उन के भाग्य के भरोसे छोड़ दिया। इस अनशन के बाद गांधीजी के जीवित बचे रहने पर जनता ने लार्ड लिनलिथगो की भावना का जो अनुमान लगाया होगा उसकी कल्पना की जा सकती है। केन्द्रीय असेम्बली से सलाह लिये बिना और पहले दिये गये आश्वासन के विरुद्ध उन्होंने मिस्र और सिंगापुर को भारतीय सैनिक भेजे। क्रिप्स-प्रस्तावों का विस्तार करके कांग्रेस की मांगे पूरी किये जाने पर आपने इस्तीफा देने की धमकी दे दी थी। आपने श्रीराजगोपालाचार्य को न तो गांधीजी से मिलने ही दिया और न उनकी प्रातिनिधिक स्थिति को ही स्वीकार किया। निर्दल-नेता-सम्मेलन की तरफ से अपना वक्तव्य पढ़ने और फिर उसका उत्तर चुपचाप सुनने को कहकर उन्होंने डा० सप्रू का अपमान किया। गांधीजी ने जब सद्भावना प्रकट करने के लिए एक पत्र मि० जिन्ना को लिखा तो लार्ड लिनलिथगो ने उसे रोक दिया। सब से बड़ा विरोधाभास तो यह है कि जिस वाइसराय का कृषि से इतना सम्बन्ध रहा उसी के काल में बहुत दिनों से भूली हुई दुर्भिक्ष की विभीषिका का सामना देश को करना पड़ा।

वे अपने पीछे इतिहासकार के लिए निराशाओं व निरर्थक प्रयत्नों का लेखा और उत्तराधिकारी के लिए असुविधापूर्ण विरासत छोड़ गये और इस तरह उन्होंने भारतीय समुद्रतट से नहीं—बल्कि दिल्ली की कब्रों से विदाई ली। उनका न किसी ने सम्मान किया, न किसी ने उनके लिए आंसू बहाये और न किसी ने उनके गुणानुवाद ही गाये।

: २२ :

वेवल आये

दिल्ली में लार्ड लुई माउंटबेटन के अक्तूबर के दूसरे सप्ताह में अचानक पहुंचने के बाद १८ अक्तूबर, १९४३ को लार्ड वेवल भी पहुँच गये। लार्ड वेवल का आगमन अप्रत्याशित न था, किन्तु इस पद का कार्य-भार संभालने के लिए वायुयान-द्वारा भारत पहुँचनेवाले आप पहले वाइसराय थे। लंदन से रवाना होते समय आपने पत्र-प्रतिनिधियों से कहा था--"मेरे सामने इस वक्त एक बहुत बड़ा सवाल है।" इससे जाहिर होता है कि भारत के वाइसराय का पद-ग्रहण करते समय लार्ड वेवल अपनी जिम्मेदारी कितनी अधिक महसूस कर रहे थे। इस सवाल की एक झलक मि० एमरी ने उस समय पार्लामेंट में दी थी, जब उन्होंने आशा प्रकट की थी कि नये वाइसराय विभिन्न सम्प्रदायों के मध्य सद्-भावना स्थापित करने के लिए अधिक-से-अधिक प्रयत्न करेंगे। यह जाहिर था कि सवाल बहुत टेढ़ा और नाजुक था। यह कठिनाई पिछले वाइसराय ने उत्पन्न करदी थी। यह भाव प्रकट किये बिना ही कि पुरानी नीति में परिवर्तन किया जा रहा है, नयी नीति आरम्भ करने के लिए असाधारण राजनीतिज्ञता अपेक्षित थी--खासकर एक ऐसे व्यक्ति के लिए जो पिछले वाइसराय की अधीनता में काम कर चुका हो। यह कार्य सहल न था, किन्तु उसे करने के लिए जिस आत्म-विश्वास, विवेक और दृष्टिकोण की आवश्यकता थी, वह उनमें भरपूर था।

लार्ड वेवल ने इंग्लैंड में कहा था कि उनके मस्तिष्क में इस समय तीन बातें हैं, जिनमें सब से पहली युद्ध में विजय प्राप्त करना है। अब जरा भारत के मुख्य सवाल से हटकर हमें अपनी दृष्टि उस परिस्थिति पर डालनी चाहिए, जो उस समय थी। ब्रिटेन में भाषण करते समय लार्ड वेवल ने युद्ध में विजय प्राप्त करने को पहली आवश्यकता बताया था। उन्होंने दूसरा स्थान आर्थिक और सामाजिक सुधारों को दिया था, किन्तु भारतीय समस्या को ठीक तरह समझ लेने के बाद इसमें कुछ भी शक नहीं रह जाता कि हिन्दुस्तान में इन सुधारों को उसकी राजनीतिक समस्या से न तो अलग ही किया जा सकता है और न उसे उनसे अधिक महत्व ही दिया जा सकता है। अब वे दिन नहीं रह गये थे जब अंग्रेज भारत की जनता के हित-साधन का दावा पेश करके अपने कार्यों की सफाई दे सकते थे। इसी तरह अब वे दिन भी लद चुके थे जब अंग्रेज अपने को एक अनिच्छुक राष्ट्र का संरक्षक कहकर सिर्फ 'रक्षितों' का हित-साधन न करके 'संरक्षकों' का भी उल्लू सीधा करते थे। भारतीय सवाल के निबटारे से साम्प्रदायिक एकता का प्रत्यक्ष सम्बन्ध न था। जान-बूझकर पैदा किये गये मतभेद न तो अपने-आप मिट सकते थे और न उनके बने रहने से एक अधिक महत्वपूर्ण काम के होने में कोई बाधा ही पड़ सकती थी। यदि मतभेद दूर करने की बात को महत्व दिया भी जाय तो इस दिशा में भी कांग्रेसी नेताओं के छुटकारे के बिना कोई प्रगति होनी असम्भव थी।

लार्ड वेवल ने भारत आकर गवर्नमेंट हाउस के उस राजकीय शिष्टाचार को कम कर दिया, जिसका लार्ड लिनलिथगो को इतना चाव था। इसी शिष्टाचार के सम्बन्ध में विलियम पामर ने वारेन हेस्टिंग्स को अपने ४ नवम्बर, १८१३ वाले पत्र में लिखा था--"...समाज गवर्नर के प्रति विनम्र व्यवहार करने और स्वयं स्वतंत्रता का उपभोग करने का आदी रहा है और वह राजा और प्रजा के ..सम्बन्ध को पसंद नहीं करेगा।......यहां की व्यवस्था बिल्कुल राजसी ढंग पर है। जो भी हो, यह परिवर्तन एकाएक कर दिया गया है।" लार्ड वेवल जब भारत आये तो उन्हें हेस्टिंग्स के समय का राजसी ढंग मिला। वे इसे खत्म या कम कर देना चाहते थे।

मि० एमरी की मुलाकात

लार्ड वेवल १७ अक्तूबर को भारत पहुंचे थे। उसी दिन मि० एमरी ने कांग्रेस के विरुद्ध अपने आरोपों को दोहराया था ताकि कहीं हम या लार्ड वेवल उन्हें भूल न जायँ। अपनी इस मुलाकात से मि० एमरी ने सब जिम्मेदारी कांग्रेस पर ही लाद दी थी। उनके आरोप इस प्रकार थे :--

"(१) कांग्रेस, योजना के संघवाले हिस्से का आरम्भ से ही विरोध करती आयी है, (२) कांग्रेस ने रियासतों में असंतोष पैदा करके नरेशों की हिचकिचाहट बढ़ादी है, और (३) मुसलमान अब तक संघ-योजना के विरुद्ध नहीं थे, किन्तु प्रांतों में कांग्रेस के तानाशाही रंगढंग देखकर वे भी उसके कट्टर-विरोधी हो गये हैं।" मि० एमरी ने यह भी कहा कि इस आशंका के कारण कि केन्द्र में कांग्रेसी मंत्री केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा के प्रति जिम्मेदार मंत्रियों के रूप में काम न करके कांग्रेस-कार्यसमिति और गांधीजी के आदेशों के अनुसार कार्य करेंगे, मुस्लिम लीग व नरेश दोनों ही १९३५ के विधान की संघ-योजना के विरुद्ध हो गये। इन पुराने आरोपों का यहां उत्तर देने की आवश्यकता नहीं है।

साथ ही मि० एमरी ने पहली बार स्वीकार किया कि देश के सब से महत्वपूर्ण राजनीतिक दल के जेल में बंद होने के कारण उसका दूसरे दलों से बातचीत चलाना असम्भव हो गया है। आपने कहा--"लार्ड लिनलिथगो का विचार ठीक है कि जो लोग युद्ध के समय खुलेआम विद्रोह का प्रोत्साहन देने के लिए तैयार थे उन्हें यह सुविधा नहीं मिल सकती।" इसके उपरांत भारत-मंत्री ने वह निर्णय सुनाया, जो उन्होंने लार्ड लिनलिथगो के साथ मिलकर किया था :—

"उन्हें अपने पिछले कार्यों के लिए पश्चात्ताप करना चाहिए और इसके बाद ही उन्हें भारत के भावी विधान के निर्माण में हिस्सा लेने की अनुमति दी जा सकती है।

इसके बाद उन्होंने भविष्य के बारे में कहा :—

"अब यह देखना शेष है कि विदेश में हमारी विजय के साथ ही भारत की आंतरिक स्थिति में ऐसा सुधार होता है या नहीं, जिससे कि भारतीय नेताओं को आपस में समझौता करने के के लिए राजी किया जा सके, क्योंकि इसी आधार पर शासन की स्थायी व्यवस्था खड़ी की जा सकती है। यदि ऐसी प्रगति हुई तो निस्संदेह वाइसराय, सम्राट् की सरकार और भारतीय जनता उसमें प्रोत्साहन प्रदान करेगी।"

ऊपर जो कुछ उद्धरण दिये गये हैं उनसे स्पष्ट है कि 'नेताओं' से भारत-मंत्री का तात्पर्य उन लोगों से नहीं था, जो बाहर थे, किन्तु उनसे था जो जेलों में थे। परन्तु इस पहेली

का कुछ उत्तर नये वाइसराय को नहीं मिला कि जेल से बाहर आये बिना कांग्रेसी नेता अन्य लोगों से समझौता कैसे कर पायेंगे ?

यदि सच पूछा जाय तो भारतमंत्री का यह वक्तव्य लार्ड वेवल के नाम एक आदेश-पत्र था, जिसमें लार्ड वेवल को कांग्रेस के विरुद्ध चेतावनी दी गयी थी और गांधीजी व दूसरे कांग्रेसी नेताओं के क्षमा-प्रार्थना करने और अगस्तवाले प्रस्ताव को वापस लेने तक वाइसराय को अपने विशेषाधिकारों से काम लेने को कहा गया था।

इसी सम्बन्ध में महामाननीय वी० एस० शास्त्री ने मि० एमरी, लार्ड वेवल व गांधीजी के नाम तीन खुले पत्र लिखे। वे उन्होंने स्याही की जगह अपने लहू से लिखे थे। इनमें उन्होंने अपनी आत्मा निकाल कर रखदी थी और अनुरोध किया था कि इन तीनों व्यक्तियों को अपने अवसर व अधिकारों का उपयोग भारत व ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल की गौरव-वृद्धि के लिए करना चाहिए। शास्त्रीजी ने एमरी को वर्साई की संधि का स्मरण दिलाया था और कहा था कि मित्र-राष्ट्रों ने जर्मनी को जिस प्रकार अपमानित किया उसका परिणाम प्रतिहिंसा व प्रतिशोध की नीति के रूप में दिखाई दिया। शास्त्रीजी ने लार्ड वेवल से मि० एमरी की सलाह न मानने तथा गतिरोध समाप्त करने का उपाय शीघ्र करने का अनुरोध किया। उन्होंने गांधीजी से "एक योजना तथा एक नीति" पर जमे रहने के सिद्धांत को त्यागने तथा समय के अनुसार नीति में परिवर्तन करने के हनुमानजी के उपदेश पर चलने का अनुरोध किया —

"छोटे-से-छोटे उद्देश्य की सिद्धि के लिए भी कोई एक योजना काफी नहीं है। सफलता केवल उसी को मिल सकती है, जो विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न योजनाओं से काम लेता है।"

लार्ड वेवल-द्वारा वाइसराय का पद सँभालते ही लोगों ने अनेक सुझाव व अनुरोध उपस्थित करने आरम्भ कर दिए, जिनमें कहा गया कि उन्हें अपने तत्कालिक कार्यक्रम में क्या शामिल करना चाहिए और क्या नहीं। सर फ्रेडरिक जेम्स ने अन्न के सवाल की तरफ ध्यान दिलाकर यूरोपियनों का मत प्रकट किया। २३ अक्तूबर को बंगलोर के यूरोपियन असोसियेशन में भाषण देते हुए सर फ्रेडरिक जेम्स ने यह गम्भीर चेतावनी दी :—

"नये वाइसराय के आगमन से अगला राजनीतिक कदम उठाने के सम्बन्ध में तरह-तरह के अनुमान किये जाने लगे हैं, किन्तु अगर लार्ड वेवल देश के लिए समुचित अन्न का प्रबन्ध कर सकें तो यह किसी भी राजनीतिक कदम की अपेक्षा मित्रराष्ट्रीय उद्देश्यों व भारत के लिए अधिक महत्वपूर्ण होगा।"

यदि एक आवाज गतिरोध समाप्त करने के प्रयत्नों के विरुद्ध आई तो कितनी ही आवाजें ऐसे प्रयत्न आरम्भ किये जाने के पक्ष में उठीं। पृथ्वी पर शांति और मनुष्य-जाति में सद्भावना की वृद्धि के लिए भी बहुत-कुछ कहा गया। लाहौर की मेथडिस्ट चर्च-शाखा के सुपरिन्टेन्डेन्ट रेवरेंड क्लाइड बी० स्टट्ज़ ने जो यह कहा कि भारतीय जनता को अन्यायपूर्ण सभ्यता के विरुद्ध विद्रोह करने पर मजबूर करने की जिम्मेदारी एक हद तक ईसाइयों के धार्मिक सिद्धांतों पर है, यह किसी कदर ठीक ही था। नई दुनिया के राष्ट्रों में स्थान पाने के भारत के दावे का भी आपने समर्थन किया। लार्ड हैलिफेक्स जैसे यह कहते कभी नहीं थकते कि अंग्रेज़ भारत के संरक्षक हैं, उसी प्रकार डेवनशायर के ड्यूक और लार्ड क्रेबोर्न कहते आये हैं कि अंग्रेज़ों का उद्देश्य भारत में साम्राज्य स्थापित करने का कभी न था, उसकी स्थापना तो ऐतिहासिक आवश्यकता के

कारण हुई। इन महानुभावों के लिए १२ जून, १९४३ के 'न्यू स्टेट्समैन' के कालमों का निम्न उद्धरण उपयोगी है :—

"अपने २९ मई वाले अंक में 'आलोचक' ने लार्ड एल्टन के इस कथन का हवाला दिया है कि अंग्रेज जब भारत गये तो उनका वहां कोई साम्राज्य स्थापित करने का इरादा न था। लार्ड एल्टन ने यही बात 'डेली स्केच' के भी एक लेख में कही थी। मैंने तब उस पत्र के सम्पादक के पास ईस्ट इंडिया कम्पनी के डाइरेक्टरों-द्वारा १९८७ में अपने मद्रास-स्थित एजेंट के नाम लिखे गये पत्र से एक उद्धरण भेजा था। एजेंट को सैनिक व ग़ैर-सैनिक शक्ति-द्वारा ऐसी नीति का अनुसरण करने को कहा गया था जिससे भारी आय हो सके और भारत में अंग्रेज़ों का एक बड़ा उपनिवेश स्थायी आधार पर कायम किया जा सके।" यह उद्धरण के० एस० शेलवंकर की 'भारत की समस्या' नामक पुस्तक से लिया गया था।

लार्ड वेवल ने क्या किया ?

बिना मांगे, परम्परावश या शिष्टाचार के कारण जो सलाह दी जाती है उससे लोग बहुत कम प्रभावित होते हैं और लार्ड वेवल को भी इसका अपवाद न होना चाहिए था। यह स्वाभाविक है कि उनके अपने विचार, अपने सिद्धांत, कर्तव्य के सम्बन्ध में अपनी निजी भावना और अपनी रुचि होगी। इसलिए यदि सब से अधिक उनका ध्यान बंगाल की भुखमरी की तरफ गया तो सब से पहले उन्हें इसी समस्या को हाथ में लेना था। लार्ड वेवल ने स्वास्थ्य-जांच तथा उन्नति समिति की बैठक के लिए (जो २६ अक्तूबर, १९४३ को शुरू हुई थी) जो संदेश दिया था उसमें उन्होंने गन्दी बस्तियों तथा उनमें रहनेवालों को नये सिरे से बसाने की समस्या, जल का प्रबंध, सफाई की व्यवस्था, मलेरिया-निवारण के लिए-देशी कीटाणुनाशक दवाओं का प्रयोग, मच्छरदानियों का अधिक उपयोग, स्कूलों में दवाखाने खोलने, अधिक डाक्टर उपलब्ध करने, गांवों में डाक्टरों व नर्सों का प्रबन्ध करने, देशी दवाओं को प्रोत्साहन देने और अनुसंधान-संगठनों की चर्चा की थी।

वाइसराय ने इंग्लैंड से रवाना होते समय जो दूसरा उद्देश्य अपने सामने रखा था उसकी कुछ झलक मिलने लगी थी। एक अन्य महत्वपूर्ण बात बंगाल के पीड़ितों के लिए दी गयी रकमों की व्यवस्था के लिए एक विशेष कोष का खोला जाना था। भारतमंत्री, लंदन के मेयर और भारतीय हाई कमिश्नर ने इंग्लैंड में अपील निकाल कर बंगाल की सहायता के लिए खोले गये वाइसराय के कोष में धन देने का अनुरोध किया था। लंका की सरकार ने वाइसराय को इस कोष के लिए २७ लाख रुपये भेजे थे। दूसरा अच्छा कार्य २४ अक्तूबर को लार्ड वेवल की अविज्ञापित कलकत्ता-यात्रा थी। परिणामों के अलावा, इसकी सभी तरफ़ कद्र की गयी—खास तौर पर जेल में बन्द उन कांग्रेसी बंदियों द्वारा जो सींखचों के भीतर रहकर बंगाल की बरबादी का दृश्य दीनतापूर्वक देख रहे थे और जिसकी तरफ शासन-व्यवस्था का प्रधान होते हुए भी युद्ध-प्रयत्न में व्यस्त वाइसराय ने कुछ ध्यान नहीं दिया था। युद्ध-प्रयत्न ही बंगाल की भुखमरी का एक कारण था और इस अवसर पर वाइसराय ने जिस निर्दयता तथा अमानुषिकता का परिचय दिया था उसकी एक औसत मनुष्य से आशा नहीं की जा सकती। नये वाइसराय ने प्रधान सेनापति को सब से बुरी तरह प्रभावित जिलों के लिए सेना के साधन–विशेषकर अन्न के यातायात के लिए—उपलब्ध करने, सहायता के केन्द्र खोलने और इन केन्द्रों के लिए अन्न का संकलन करने का आदेश दिया। इन उपायों की सूचना २८ अक्तूबर को पत्र-प्रतिनिधियों के एक सम्मेलन

में दी गयी और इसी में योजना को कार्यान्वित करने के कार्यक्रम पर भी प्रकाश डाला गया।

लार्ड वेवल के कार्यकाल की एक विशेष घटना गवर्नरों का वाइसराय से परामर्श के लिए एकत्र होना भी थी। पिछले दस वर्षों में वाइसराय के लिए गवर्नरों को परामर्श के लिए बुला भेजना एक साधारण घटना हो गयी थी। ऐसा उस समय विशेष रूप से किया जाता था जब दमनकारी उपाय करना होता था या उन्हें हटाना होता था। परन्तु उन दिनों गवर्नर वाइसराय से दो-दो या तीन-तीन की टोलियों में मिलते थे। नवम्बर, १९४३ के गवर्नर-सम्मेलन की सब से बड़ी विशेषता यह थी कि ग्यारह-के-ग्यारह गवर्नर दिल्ली में उपस्थित हुए और ऐसे सम्मेलन बीस महीनों में तीन हुए। इन सम्मेलनों के अवसर पर घोषणा की जाती थी कि सिर्फ अन्न की परिस्थिति पर ही विचार हुआ। परन्तु प्रश्न उठता है कि क्या गवर्नर अन्न की परिस्थिति को इतना निकट से जानते थे कि अन्न विभाग के मंत्री या सेक्रेटरी तथा प्रादेशिक अन्न-कमिश्नर की सलाह के बिना समस्या पर गम्भीरतापूर्वक विचार कर सकते थे। इसलिए कहा जा सकता है कि इन घोषणाओं से सम्मेलनों का महत्व कुछ घट ही जाता था।

वाइसराय ने गवर्नरों के सम्मेलनों-द्वारा प्रांतों की राजनीतिक व आर्थिक अवस्था का जो अध्ययन शुरू किया था उसे उन्होंने प्रांतों की राजधानियों के दौरों-द्वारा पूरा करना शुरू कर दिया। लार्ड वेवल कलकत्ता की यात्रा तो पहले ही समाप्त कर चुके थे। इसके बाद आप लाहौर गये। गवर्नर-सम्मेलनों के सम्बन्ध में पार्लामेंट में किये गए एक प्रश्न-द्वारा पूछा गया कि क्या उनमें राजनीतिक बंदियों की रिहाई की समस्या पर भी विचार हुआ था। मि० एमरी ने उत्तर दिया कि सम्मेलनों में मुख्यतः अन्न-परिस्थिति व युद्धोत्तर पुनर्निर्माण की समस्याओं पर विचार हुआ और शासन-सम्बन्धी कुछ निर्णय भी किए गये, किन्तु राजनीतिक बंदियों की रिहाई के बारे में कोई निर्णय नहीं हुआ। भारतमंत्री का ध्यान लेबनान के राष्ट्रपति व मंत्रियों की रिहाई की तरफ आकर्षित किया गया और अनुरोध किया गया कि भारतीय बंदियों को रिहा करके क्या वे भी इस अच्छे उदाहरण का अनुसरण करेंगे। मि० एमरी ने कहा कि दोनों बातों में कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि मि० एमरी को दोनों बातों में सम्बन्ध न जान पड़े तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। सच भी था, क्योंकि लेबनान के आंदोलनकारियों का अहिंसा से कोई ताल्लुक न था, अपने राष्ट्रपति की रक्षा के लिए उन्होंने बालू के बोरों की रोक बनायी थी और फ्रांस की औपनिवेशिक सेना को उन तक पहुँचने में काफी समय लग गया था। लेबानीज लोगों के पास हथियारों की कमी न थी और पहाड़ियों के पीछे जाकर उन्होंने आजाद फ्रांसीसी सेना पर समय-समय पर हमले करने की भी तैयारी करली थी। इसके अतिरिक्त, भारत और लेबनान के बीच का सम्बन्ध चाहे साम्राज्यवादी ब्रिटेन के मनचले राजनीतिज्ञों को भले ही न जान पड़े किन्तु साधारण व्यक्ति की नजरों से वह छिपा नहीं रह सकता। दोनों देशों में विदेशी साम्राज्यवाद का संघर्ष जनता की शक्तियों से चल रहा था। लेबनान में अंग्रेज मध्यस्थ का काम कर सकते थे, किन्तु भारत के झगड़े में वे खुद ही एक पक्ष थे और जब कोई खुद किसी झगड़े मे होता है तो उसका विवेक नष्ट हो जाता है।

वाइसराय द्वारा प्रांतीय राजधानियों के दौरे के समय भी राजनीतिक गतिरोध समाप्त करने की योजनाओं की चर्चा चली। इस सम्बन्ध में कौंसिल आफ स्टेट में जो प्रस्ताव उपस्थित किया गया वह विशेष रूप से मनोरंजक था, क्योंकि मि० हुसेन इमाम ने उसका समर्थन किया। ऐसा करने से पूर्व उन्होंने निश्चय ही लोगों से इजाजत ले ली होगी। सच तो यह है कि सरकार की

नीति से कोई खुश न था। लीग को कांग्रेस की मांग के राजनीतिक खंडहरों में दबी पड़ी रहने से क्या संतोष हो सकता था ? एक राजनीतिक मूर्ति-भंजक भी काम की चीज प्राप्त करने के लिए भग्नावशेषों की छानबीन करने लगता है। कौंसिल आफ स्टेट में भी यही हुआ। और सरकार ने भी इस बार "प्रस्ताव वापस लेने," "नीति में परिवर्तन करने" या "गारंटी मांगने" की बात नहीं दुहरायी।

राजनीतिक समस्या के बारे में कुछ न कहने की वाइसराय की नीति से सिर्फ कांग्रेसी समाचार-पत्र ही ऊब नहीं उठे थे। 'स्टेट्समैन' में दिसम्बर के पहले सप्ताह में 'दारुल-सलीम' ने अपने 'साप्ताहिक नोटों' में इस बारे में अपनी झुंझलाहट प्रकट की कि गतिरोध समाप्त करने के लिए कुछ भी नहीं किया गया। वाइसराय की शासन-परिषद् में दो और सीटों के भारतीयकरण किये जाने की खबर के बारे में उसने कहा कि यह तो राजनीतिक अड़ंगे को समाप्त करने के बजाय उस पर मुहर लगाने के समान होगा। जहां लेखक ने एक तरफ बंगाल की अन्न समस्या की तरफ ध्यान देने, उसके लिए अधिक अन्न उपलब्ध करने और उस अन्न के यातायात् का उत्तम प्रबंध करने के लिए वायसराय की तारीफ की वहां दूसरी तरफ यह भी कहा कि मनुष्य के लिए सिर्फ भोजन ही आवश्यक नहीं होता। भारत का शिक्षित समाज इधर काफी समय से अन्य चीजों का भूखा भी रहा है।

खुद मुस्लिम लीग के सम्बन्ध में भी लेखक ने कुछ बड़ी मनोरंजक बातें कहीं:—

"इस परिस्थिति में मुस्लिम लीग की स्थिति बड़ी कठिन हो जाती है। उसकी कौंसिल की बैठकों के मध्य-काल में लीग का युवकवर्ग किसी-न-किसी दिशा में आगे बढ़ने के लिए अशान्त हो उठता है। वे हाई कमांड पर दबाव डालने और यहां तक कि उसे मजबूर करने के ख़याल से आते हैं। पर हरेक बार उन्हें कायदे-आजम मौजूदा हालत से आगाह करते हैं। परिणाम यह होता है कि कांग्रेस के ही समान लीग में भी निराशा छा जाती है। इस गड़बड़ के लिए गांधी जी जिम्मेदार हैं।" 'स्टेट्समेन' (७ दिसम्बर)।

यह सच है कि वाइसराय ने गवर्नरों का सम्मेलन जल्दी ही बुलाया, पर उस का कुछ भी परिणाम न निकला। लोकमत में अशान्ति के लक्षण दिखाई देने लगे। लोग सोचने लगे कि वाइसराय के विचारों में कोई ऐसी बात नहीं थी, जिस से राष्ट्र के राजनीतिक आदर्शों की तुष्टि हो सके। बंगाल के लिए अन्न उपलब्ध करने की समस्या की बहुत समय से उपेक्षा की गयी थी और वाइसराय ने उसकी तरफ ध्यान देकर सिर्फ अपने साधारण कर्तव्य का पालन किया। सैनिक दस्तों, हवाई स्टेशनों और ट्रेनिंग स्कूलों का मुआयना वाइसराय की बजाय प्रधान सेनापति का ही कर्तव्य अधिक था। लार्ड वेवल ने पंजाब के दौरे में फील्डमार्शल की वर्दी पहन कर अपनी सैनिक अभिरुचि का ही परिचय दिया।

लेकिन लार्ड वेवल के सार्वजनिक आचरण में एक परिवर्तन दिखाई दिया। उन्होंने अखिल-भारतीय समाचारपत्र-सम्पादक-सम्मेलन की स्थायी समिति को एक भोज दिया। यह समाचारपत्रों के लिए सद्भावनापूर्ण संकेत था। वाइसराय ने समिति के एक सदस्य को बताया कि उन्हें इंग्लैंड व भारत से परामर्श के कितने ही पत्र मिले हैं। उन्होंने यह भी कहा कि अपनी तरफ से कुछ कहने से पहले मैं इन विचारों का अध्ययन करना चाहता हूं।

मुस्लिम लीग

एक बार फिर १९४३ के नवम्बर महीने में मुस्लिम लीग की कौंसिल व कार्यसमिति की

बैठकें दिल्ली में हुईं। अप्रैल के महीने में लीग के पूरे अधिवेशन में जैसी चुनौतियां और धमकियां दी गयी थीं वैसी इस बार नहीं दी गयीं। पिछले १२ महीनों में जो लाभ हुए थे उनकी हिफाजत की ही तरफ इस बार अधिक ध्यान दिया गया था। कहा गया कि लीग के प्रभाव में पांच वजारतें काम कर रही हैं। पांचों प्रधान मंत्रियों को लीग के अध्यक्ष व कार्य-समिति के सदस्यों से मिलने के लिए बुलाया गया। जनता यह भी नहीं जानती थी कि पांचों प्रान्तों के लिए राजनीतिक व आर्थिक सुधार के क्या कार्यक्रम तैयार किये गये हैं। फिर भी यह जाना जा सकता था कि दल के संगठन को सब से अधिक महत्त्व दिया गया। लीग अब तक कांग्रेस के संगठन की निन्दा करती थी, लेकिन अब उसने अपना भी संगठन कांग्रेस के ढंग पर किया। लीग की कार्यसमिति को समाचारपत्र 'हाई कमांड' कहने लगे। कांग्रेस ने अपनी कार्य-समिति के लिए इस शब्द का प्रयोग किये जाने का प्रतिवाद किया था, लेकिन लीग ने इसका बुरा नहीं माना। कहा गया कि सभी लीगी प्रान्तों को एक नीति, एक कार्यक्रम और एक ही अनुशासन का पालन करना चाहिए। 'स्टेट्समैन' ने मि० जिन्ना की तुलना गांधीजी से की और कहा कि मि० जिन्ना की नीति प्रत्यक्ष है, जबकि गांधीजी अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डालते हैं। उस ने समस्त शक्ति एक स्थान में केन्द्रित होने को भी बुरा बताया।

सच तो यह था कि वस्तुस्थिति को देखते हुए इन दोनों संगठनों की आपस में तुलना नहीं हो सकती। कांग्रेस की सदस्यता सब के लिए खुली थी। लीग के सदस्य केवल एकधर्म-वाले ही हो सकते थे। कांग्रेस का प्रतिबंध सिर्फ यही था कि किसी साम्प्रदायिक संस्था की समिति का सदस्य कांग्रेस की किसी समिति का सदस्य नहीं बन सकता। खाकसारों के लीग का सदस्य न बनने देने की तुलना इस से नहीं की जा सकती कि लीगी सदस्य कांग्रेस की किसी समिति के सदस्य नहीं बन सकते। लीग मुसलमानों की संस्था थी और फिर भी वह कुछ मुसलमानों को ऐसे कारणों से अलग रखती थी, जिन्हें राष्ट्रीय अथवा साम्प्रदायिक आधार पर नहीं समझा जा सकता। यह तो सिर्फ मि० जिन्ना बनाम अल्लामा मशरिकी के नेतृत्व का सवाल था एक खाकसार ने मि० जिन्ना पर जो हमला किया उसमें किसी केन्द्रीय साजिश का हाथ न था वह एक जल्द उत्तेजित हो उठनेवाले व्यक्ति का उन्मादपूर्ण कार्य ही था। फिर भी बड़े जोरदार शब्दों में इस बात का प्रतिवाद किया गया कि हमले का उपर्युक्त निश्चय से कुछ भी सम्बन्ध न था।

जहां तक वजारतों का सवाल है वहाँ तक यह कहा जा सकता है कि पंजाब, सिंध, सीमाप्रान्त, बंगाल और आसाम में से किसी एक भी प्रान्त की असेम्बली में मूल लीगी सदस्यों का बहुमत नहीं था। पंजाब में मिली-जुली वजारत थी, जिस के सम्बन्ध में मि० जिन्ना ने घोषणा की कि सर सिकंदरहयात खां की मृत्यु और उन के स्थान पर कर्नल खिज्रहयात खां की नियुक्ति से जिन्ना-सिकन्दर समझौते का अंत हो गया। दूसरी तरफ हिन्दू, मुसलमान और सिखों के संयुक्त प्रयत्नों पर बने यूनियनिस्ट दल का उतने ही जोर से कहना था कि समझौता बना हुआ है और अखिल भारतीय प्रश्नों के अतिरिक्त प्रान्तीय प्रश्नों पर वजारत समझौते की शर्तों को मानने के लिए मजबूर है। सिंध में लीग के अधिकार ग्रहण करने की बात नाम के लिए भी सही न थी। सर गुलाम हुसेन हिदायतुल्ला लीग के सदस्य नहीं थे। प्रधान नियुक्त होने के समय हिदायतुल्ला सिर्फ लीग से बाहर ही न थे, बल्कि उनके विरुद्ध अनुशासन की कार्रवाई भी होने-वाली थी। इससे भी अधिक सत्य तो यह बात थी कि उन्होंने जिस स्थान की पूर्ति की थी वह

अल्लाहबख्श के उपाधि लौटाने पर उनकी बर्खास्तगी के कारण खाली हुआ था। इतनी ही अनुचित स्थिति में स्वर्गीय सर जार्ज हर्बर्ट ने फजलुल हक को बर्खास्त किया था। इस समस्या के सम्बन्ध में जब पार्लीमेंट में सवालों की झड़ी लग गयी तो मि० एमरी उनका सामना करने में असमर्थ हो गये और उन की चुप्पी ने स्पष्ट कर दिया कि बंगाल के प्रधान मंत्री ने लोकतंत्री प्रथा के अनुसार इस्तीफा नहीं दिया, बल्कि उन्हें जबरन बर्खास्त किया गया। इस प्रकार गवर्नर में जो विश्वास किया गया था उसका ठीक उपयोग नहीं किया गया। और नयी वजारत कायम होने पर बहुमत उसके पक्ष में न था। परन्तु लोग शक्ति के केन्द्रबिंदु के चारों तरफ इकट्ठे होने लगते हैं।

सीमा प्रान्त में भी कहानी ऐसी ही करुण थी। १० कांग्रेसी सदस्यों के जेल में रहने पर भी लीगी वजारत कायम की गयी। गोकि मृत्यु या नजरबन्दी के कारण खाली हुए स्थानों के उप-चुनावों को वजारत की सुविधा के अनुसार स्थगित रखा गया, फिर भी वजारत का धारा-सभा में बहुमत नहीं हुआ। इसके बाद १२,०० नजरबन्दों तथा सुरक्षा-बंदियों को छोड़ दिया गया, किन्तु असेम्बली के कांग्रेसी सदस्यों को कुछ समय तक नहीं छोड़ा गया। कांग्रेसी सदस्यों के छूटते ही औरंगजेब-वजारत ने इस्तीफा दे दिया और प्रान्त में फिर कांग्रेसी शासन कायम हो गया।

पांचवाँ प्रान्त आसाम था, जिस में ९३ धारा का शासन समाप्त होने पर सर सादुल्ला खां प्रधान मन्त्री बने।

पांचों वजारतें ब्रिटिश सरकार के कृपापूर्ण प्रभाव से कायम हुई थीं। सरकार ने युद्धकाल में वजारतें कायम करके राजनीतिक अड़ंगा भङ्ग करने और कांग्रेस का सफाया करने की सोची थी। इन पांच प्रान्तों से बाहर और कहीं भी ब्रिटिश सरकार का यह षड्यंत्र सफल नहीं होसका।[1]

मि० जिन्ना को ब्रिटिश सरकार से कुछ खरी बातें कहनी थीं। उन्हें दिसम्बर, १९४२ में लार्ड लिनलिथगो का कलकत्ता में दिया गया वह भाषण नहीं भाया था, जिसमें उन्होंने भौगोलिक एकता बनाये रखने का अनुरोध किया था और अक्तूबर १९४३ में, उन्हीं वाइ-सराय का नरेन्द्र-मंडल में दिया गया वह भाषण ही अच्छा लगा था, जिसमें उन्होंने नरेशों से संघ-योजना स्वीकार करने की अपील की थी। मि० जिन्ना ने अधिकार त्यागने की अनिच्छा के लिए भी ब्रिटिश सरकार की हलकी आलोचना की, जो अधिक-से-अधिक उस बड़े लड़के की भावना के समान जान पड़ती थी, जो बाप के न मरने या अधिकार छोड़ने की प्रवृत्ति के कारण उतावला हो उठता है।

ब्रिटिश सरकार ने हिन्दुस्तान के सवाल को जो ताक पर रख दिया था उस पर मुसल-मानों में आम असंतोष फैलने लगा था। यह लीग की कौंसिल व कार्यसमिति के सदस्यों के रुख से स्पष्ट था। यही मुस्लिम एम० एल० ए० के आचरण व पत्रकारों के लेखों से जाहिर होता था। इतना ही नहीं, मुस्लिम समाज में वास्तविक राष्ट्रीय जागृति के स्पष्ट लक्षण दिखायी देने लगे। मुसलमान बंगाल के दुर्भिक्ष को ध्यान में रखते हुए अपने यहां रामकृष्ण मिशन जैसी संस्था होने की भी आवश्यकता अनुभव करने लगे।

इन्हीं दिनों (५ नवम्बर, १०४३ को) लार्ड सभा में लार्ड स्ट्रेबोलगी ने भारत पर 'स्टेचूट

---

१ इन मंत्रिमंडलों के सम्बन्ध में विस्तृत बातें जानने के लिए मंत्रिमण्डल-सम्बन्धी अध्याय देखिये।

आफ वेस्टमिनिस्टर' अमल में लाने का एक बिल पेश करने की अनुमति मांगी। सरकार की तरफ से लार्ड क्रेबोर्न ने बिल के प्रथम वाचन का विरोध किया। आपने कहा कि किसी बिल के प्रथम वाचन का विरोध किया जाना एक अनहोनी घटना है, किन्तु 'स्टेचूट आफ वेस्टमिनिस्टर'-जैसे महत्वपूर्ण कानून को प्रभावित करने के लिए एक लार्ड-द्वारा बिल उपस्थित किया जाना भी उतना ही अनुपयुक्त है। ऐसा बिल स्वाधीन उपनिवेशों से परामर्श करने के उपरान्त सिर्फ सरकार-द्वारा ही उपस्थित किया जा सकता है। निस्संदेह लार्ड स्ट्रेबोलगी ने यह परामर्श नहीं किया है। परामर्श किये बिना स्टेचूट में संशोधन करना ऐसा ही है जैसे कुछ हिस्सेदार दूसरे हिस्सेदारों से सलाह लिये बिना ही नये हिस्सेदार रखना चाहते हों। लार्ड क्रेबोर्न ने अंत में कहा—"मेरी समझ में नहीं आता कि लार्ड स्ट्रेबोलगी ने इस विषय पर अपने विचार प्रकट करने के लिए यह विचित्र तरीका कैसे चुना। निश्चय ही सभा इस बिल को आगे न बढ़ने देगी।" और सचमुच बिल आगे नहीं बढ़ने दिया गया।

स्टेचूट को १९३१ में १९२६ व १९३० में हुए साम्राज्य-सम्मेलनों के प्रस्तावों को अमल में लाने के लिए पास किया गया था। स्टेचूट में एक तरफ तो थी ब्रिटिश पार्लमेंट और दूसरी तरफ कनाडा, आस्ट्रिया, न्यूजीलैंड, दक्षिण अफ्रीका, आयरिश फ्री स्टेट व न्यूफाउंडलैंड (स्वाधीन उपनिवेश) थे। वास्तव में यह तो इंग्लैंड व उपर्युक्त उपनिवेशों में से प्रत्येक के साथ हुई एक संधि थी। छः संधियां अलग-अलग करने के स्थान पर एक स्टेचूट पास कर दिया गया, जिसमें सभी स्वाधीन उपनिवेशों ने भाग लिया। परन्तु स्टेचूट के द्वारा उपनिवेशों का एक-दूसरे के प्रति सम्बन्ध नहीं स्थापित हुआ। अस्तु, बिल लार्ड सभा में अस्वीकृत हुआ।

इस मनोरंजक तथा अप्रत्याशित घटना पर प्रकाश डालते समय उसके परिणाम से भी अधिक उस समय की राजनीतिक परिस्थिति की तरफ ध्यान जाता है। सरकार-द्वारा उस बिल को खुद उपस्थित करने की बात का समर्थन लार्ड क्रेबोर्न की भाषा या उनके रुख से नहीं होता। पर उनके इस कथन के सम्बन्ध में कि जब नये हिस्सेदार बढ़ाये जा रहे हों तो दूसरे हिस्सेदारों से सलाह लेनी चाहिए, हम कुछ कहना चाहते हैं। हम पूछते हैं कि जब दक्षिण अफ्रीका को साम्राज्य में सम्मिलित किया गया था, जब भारत के सम्बन्ध में सर स्टेफर्ड क्रिप्स ने अपने प्रस्ताव किये—क्या तब दूसरे स्वाधीन उपनिवेशों से सलाह ली गयी थी? यह तो लार्ड क्रेबोर्न का एक गढ़ा हुआ तर्क ही था। १९३१ में कमांडर वेजवुड बेन ने भारत मंत्री की हैसियत से जो कहा था कि भारत पहले ही औपनिवेशिक पद का उपभोग कर रहा है—इस कथन को ही लीजिये। या वर्साई की संधि पर भारतीयों के हस्ताक्षर होने और १९२६ के साम्राज्य-सम्मेलन में भारतीयों-द्वारा भाग लेने को ही लीजिये। और स्वाधीन उपनिवेश की व्याख्या ही क्या की गयी है। स्वाधीन उपनिवेश ब्रिटिश राष्ट्रमंडल में, जिसे ब्रिटिश साम्राज्य कहा जाता है, सम्राट् के प्रति राजभक्ति की कड़ी से बंधे हैं और आन्तरिक मामलों में कोई भी स्वाधीन उपनिवेश दूसरे के अधीन नहीं है। इस प्रकार उन्हें एकता के सूत्र में बांधनेवाली वस्तु केवल सम्राट् के प्रति राजभक्ति ही है। इसके लिए परामर्श की आवश्यकता ही क्या है? और भारत खुद उस राजभक्ति का भार उठाने को तैयार नहीं है। सच तो यह है कि बिल को टालने की नीयत होने के कारण लार्ड क्रेबोर्न कुछ जरूरत से ज्यादा कह गये।

इस बीच भारत की तरफ से दुनिया के कितने ही देशों में एजेंट-जनरल व हाई कमिश्नर नियुक्त किये गए। जब कि एक तरफ लार्ड क्रेबोर्न भारत को नया स्वाधीन उपनिवेश घोषित

किये जाने के प्रयत्न का विरोध कर रहे थे वहां दूसरी तरफ स्वतन्त्र देशों, स्वाधीन उपनिवेशों तथा साधारण उपनिवेशों से भारत के सम्बन्धों में परिवर्तन किया जा रहा था। नये कूटनीतिक सम्बन्ध कायम किये जा रहे थे और पुरानों को मज़बूत किया जा रहा था। युद्धकाल में अमरीका में भारत के दो अफसर एजेंट-जनरल व हाई कमिश्नर रहे थे। दक्षिण अफ्रीका में भारत का एजेंट-जनरल पहले ही था। अमरीका में भारत के प्रतिनिधियों की नियुक्ति हो चुकने पर मि० अणे को लंका में एजेंट और श्री मेनन को चीन में हाई कमिश्नर नियुक्त किया गया। इसके कुछ ही समय बाद कनाडा और आस्ट्रेलिया ने भारत में अपने हाई कमिश्नर नियुक्त करने का निश्चय किया। तब भारत की तरफ से वैसा ही करने का विचार किया गया और नवम्बर, १९४३ में सर आर० पी० परांजपे को आस्ट्रेलिया में भारत का हाई कमिश्नर बनाने की घोषणा करदी गयी। इस प्रकार जहां एक तरफ स्वाधीन उपनिवेशों के साथ भारत के सम्बन्ध अधिक निकट होते जा रहे थे वहां दूसरी तरफ स्वाधीन उपनिवेशों में साम्राज्य के मामलों में हिस्सा लेने की उत्सुकता बढ़ गयी थी।

इस बीच सर जेम्स ग्रिग, जो भारत में वाइसराय की शासन-परिषद् के अर्थ-सदस्य रह चुके थे, आक्सफोर्ड गये। साफ जाहिर था कि उनका उद्देश्य भारत के बारे में अमरीकी लोक-मत की आवाज को दबाना था। सर जेम्स ग्रिग ने कहा—"निस्सन्देह भारत के सम्बन्ध में अमरीका में बड़ा अज्ञान व भ्रम फैला हुआ है। उदाहरण के लिए अमरीका में लोग यही सोचते हैं कि इंडियन नेशनल कांग्रेस उनकी अपनी कांग्रेस के ही समान प्रतिनिधित्वपूर्ण व्यवस्थापिका सभा है। अमरीका में लोग गांधीजी को संत भी मानते हैं" कांग्रेस के बारे में अमरीका में कोई भ्रम हो या नहीं, लेकिन यह जाहिर है कि सर जेम्स ग्रिग ने अपने इन लफ्जों से जरूर भ्रम फैलाने का प्रयत्न किया, क्योंकि यदि अमरीकी लोग भारतीय कांग्रेस को अपनी पार्लमेंट के समान मानते तो अमरीका की तरह भारत में भी कोई राजनीतिक समस्या नहीं होती। सच तो यह है कि अंग्रेज़ भारत से हटने में जो आनाकानी कर रहे थे उससे अमरीका में प्रबल लोकमत उत्पन्न होने की वजह से सर जेम्स ग्रिग तथा उनके अन्य मन्त्री-साथियों में कुछ घबराहट पैदा हो गयी थी और इसीलिए सर जेम्स ग्रिग को युद्ध-कार्यालय से आक्सफोर्ड के लिए भेजा गया था। सर जेम्स ग्रिग के भाषण का यहां उत्तर देने की आवश्यकता नहीं है। उन्होंने कांग्रेस को बदनाम करने के लिए सिर्फ चर्चिल के आंकड़े दिये और कांग्रेस पर तानाशाही का आरोप करने के लिए एमरी व कूपलैंड के तर्क दुहरा दिये। इन आरोपों का उत्तर सितम्बर, १९४२ में चर्चिल के पार्लमेंट-वाले भाषणों, मि० एमरी के भाषणों व कूपलैंड की पुस्तकों की चर्चा के साथ दिया गया है। सर जेम्स का यह कार्य तो कामन-सभा में क्विंटन होग द्वारा की गयी उनकी प्रशंसा के बिल्कुल अनुरूप है। उन्होंने कहा था—"सर जेम्स ग्रिग कबूतरखाने में ही जन्मे और पले, दफ्तरी काम की उन्हें ट्रेनिंग मिली और अब युद्ध-कार्यालय में वे जवान हुए।" और क्विंटन होग यह भी कह सकते थे कि "आक्सफोर्ड में उन्हें मुक्ति मिली।"

मि० एमरी

लार्ड वेवल के भारत पहुंचने के कुछ सप्ताह के अंदर ही 'साम्राज्य' के इतिहास की कुछ महत्वपूर्ण घटनाएं होने लगीं। ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल में परिवर्तन की जो अफवाहें उड़ रही थीं उनमें मि० एमरी, सर जेम्स ग्रिग और लार्ड साइमन के नाम भी लिए जा रहे थे। मि० एमरी ने चेम्बरलेन-सरकार के सम्बन्ध में क्रॉमवेल के जिन शब्दों का (जो क्रॉमवेल ने दीर्घकालीन

पार्लीमेंट से कहे थे) उद्धरण दिया था अब उन्हीं शब्दों का प्रयोग स्वयं मि० एमरी के लिए किया जा रहा था। ये शब्द इस प्रकार थे—"आप बहुत समय तक यहां रह चुके हैं और आपने कोई भी अच्छा काम नहीं किया। मैं कहता हूं कि अब आप चले जाइये और फिर कभी अपना मुंह न दिखाइये। परमात्मा के लिए चले जाइये।" मि० एमरी ने पार्लीमेंट में जो सफेद झूठ कहे उन्हीं में एक यह भी था कि हिन्दुस्तान अपनी ज़रूरत के लिए कुनैन पैदा कर लेता है। यहां यह ध्यान देने की बात है कि मि० एमरी ने यह कथन अचानक या पत्र-प्रतिनिधियों के दबाव डालने पर नहीं, बल्कि एक लिखित उत्तर को पढ़ते समय किया था। मि० एमरी से प्रश्न किया गया कि जब जहाजों की कमी के कारण कुनैन-जैसी अत्यावश्यक वस्तु को भारत नहीं भेजा गया तो शराब वहां क्यों और कैसे भेजी गयी? मि० एमरी ने कहा कि "भारत को शराब भेजने पर जो प्रतिबंध था उसे सितम्बर में उठा लिया गया था। शराब भारत को कुनैन के एवज में नहीं भेजी गयी। कुनैन भारत में ही उत्पन्न होती है और भारत में उसकी कमी नहीं है।" जरा सोचिये तो कि यह उत्तर उस समय दिया गया था जब कुनैन के अभाव में हजारों व लाखों आदमी मलेरिया से पीड़ित होकर मर रहे थे और वायुयानों-द्वारा विदेशों से कुनैन मंगायी जा रही थी। वस्तुस्थिति यह थी कि भारत में कुल ८०,००० पौंड कुनैन होती है जब कि यहां खपत लगभग २,७०,००० पौंड वार्षिक है। यह सच है कि उस समय कुनैन का ७५ प्रतिशत राशन में था, किन्तु इससे मलेरिया में वृद्धि हो रही थी। अंत में मि०एमरी ने अपने निर्वाचकों को इतना क्षुब्ध कर दिया कि उन्होंने उनसे इस्तीफा देने की मांग की। बंगाल के दुर्भिक्ष के सम्बन्ध में जो बहस हुई उससे तो उनकी और भी बदनामी हुई। भारत की राजनीतिक समस्या से भी अधिक बंगाल में भुखमरी से मरनेवाले व्यक्तियों की संख्या, अन्न की मात्रा के आंकड़ों, अभाव के कारणों, परिस्थिति में सुधार के उपायों, तथा भुखमरी की जिम्मेदारी के सम्बन्ध में मि० एमरी का सफेद झूठ प्रकाश में आ गया। लार्ड लिनलिथगो की लापरवाही पर आपने सफलतापूर्वक पर्दा डाला। ये दोनों मिलकर 'लंडन-रहस्य' के डा० थर्सटन और डा० कोपरास की तरह काम करने लगे। किन्तु जैसा कि अब्राहम लिंकन कह गये हैं, कोई व्यक्ति सभी को और हमेशा धोखा नहीं दे सकता। और जब हिसाब चुकता करने का वक्त आया तो मि० एमरी की कलई कामन-सभा के दूसरे सदस्यों, ब्रिटेन के पत्रों व उनके अपने निर्वाचकों के आगे खुल गयी। परन्तु यह भी अच्छा ही हुआ कि उनका कार्यकाल समाप्त हो गया। १८३६ में आगरा के नये बनाये गये प्रांत में भारी अकाल पड़ा था। और उसमें लगभग ८,००,००० मनुष्यों की बलि चढ़ी थी। इस अकाल की चर्चा करते हुए के नामक लेखक लिखता है :—

"भारत में अकाल एक ऐसी विपत्ति है, जिसमें मनुष्य की राजनीतिज्ञता भी कुछ नहीं कर सकती और न उसे किसी प्रकार कम ही किया जा सकता है।"

लगभग १०७ साल बाद मि० एमरी के मुंह से भी यही शब्द निकले। एडवर्ड थाम्पसन का कहना है. कि "अकाल में हस्तक्षेप करना ईश्वर की इच्छा में बाधा डालना होता।" १८३६ वाले अकाल को देखकर मेटकाफ बड़े दुःखी हुए थे, पर उनके विचार से "इस विनाश से बचने के लिए मनुष्य कुछ कर नहीं सकता।" लेकिन लार्ड आकलैंड इस मत को नहीं मानते थे और उन्होंने उपलब्ध साधनों से अकाल के निवारण का प्रयत्न ही नहीं किया, बल्कि अकाल-सम्बंधी जांच की वह कार्रवाई आरम्भ करदी, जिसके कारण भारत-सरकार की अकाल-नीति का बाद में सूत्रपात हुआ। मि० एमरी के विरुद्ध इस सम्बन्ध में बहुत बड़ा आरोप लगाया जा सकता है।

अन्न की समस्या पर मि० एमरी ने जिस अकर्मण्यता व कायरता का परिचय दिया वह १९४३ के बाद बढ़ती ही गयी। उन्होंने जो यह कहा था कि सम्पूर्ण भारत की दृष्टि से अन्न की कमी नहीं है, उसका सब से पहला खंडन सम्राट् के भाषण में "भारत में अन्न की भारी कमी" के हवाले से हुआ। बंगाल-सरकार अपने प्रभुओं के मत को दुहराकर संतोष कर लेती थी और इसी को भारत-सरकार के खाद्य-विभाग के सदस्य सर अज़ीज़ुल हक और फिर उनके उत्तराधिकारी सर ज्वाला-प्रसाद श्रीवास्तव ने दुहराया। परन्तु बंगाल-सरकार ने जो अनाज जमाकर रखा उसपर बाद में प्रकाश पड़ा। इन मानव-निर्मित अकाल की तह में वितरण का कुप्रबंध सब से अधिक था। आवश्यकता वाइसराय को बदलकर उनके स्थान पर लार्ड वेवल-जैसे किसी व्यक्ति के नियुक्त करने की थी। अकाल पड़ने से कई महीने पहले जब कुछ दूरदर्शी व्यक्तियों ने मि०एमरी का ध्यान इस आनेवाली मुसीबत की तरफ आकर्षित किया तो वे चकरा गये। १७ अक्तूबर, १९४३ को जब मि० सोरेंसन ने उनका ध्यान हैजा फैलने व दवाओं की आवश्यकता की तरफ आकर्षित किया तो उन्होंने कहा कि इसकी आवश्यकता ही नहीं है। जरा मि० एमरी का दुस्साहस तो देखिये कि उन्होंने अकाल की चेतावनियों या बीमारी के हो हल्ले की तरफ ध्यान देना उचित नहीं समझा। एक ऐसे व्यक्ति की तरह जिसे सन्देह व शुबहा करने का मर्ज हो, मि० एमरी सदा यही सोचते रहे—यही संदेह करते रहे कि भारत के राजनीतिक-दलों में फूट पड़ी है। इस सन्देह के भूत ने दूसरे किसी विचार को उनके दिमाग़ में ठहरने ही न दिया। इंग्लैंड में उन्हें कुछ ऐसे साथी मिल गये थे, जो उनके हरेक संदेह व कठिनाई का समर्थन कर देते थे। हिन्दुस्तान में उन्हें ग्यारह ऐसे व्यक्ति मिले थे, जो उन्हीं के सुर-में-सुर मिलाते थे, जो उनकी तरफ से ढोल पीटने में खुद उन्हीं को मात देते थे। मि० एमरी को उनके पद से हटाने की भी एक मांग थी, किन्तु एमरी—मि० लिओपोल्ड एमरी—को हटाना साधारण बात नहीं थी। इन सत्तरसाला एमरी ने दिखा दिया कि लार्ड जेटलैंड उनसे अच्छे थे। यदि चुनाव अनुदार दलवाले जीत जाते तो कौन कह सकता है कि लार्ड क्रेबोर्न या आलीवर स्टेनली, जो डॉमिनियन व औपनिवेशिक विभागों में रह चुके हैं, मि० एमरी को अपने-सा अच्छा प्रमाणित न कर देते? सौभाग्यवश ऐसा नहीं हुआ। पर हिन्दुस्तान का सवाल मि० एमरी के हटने या न हटने का नहीं था—वह तो शक्ति व अधिकार के सिंहासन से इंग्लैंड के हटने का था।

बेचारे ईश्वर को अपने पापों के बीच घसीटने की अपेक्षा मि० एमरी का हिन्दुस्तान के मामले में चुप रहना कहीं अच्छा था। लार्ड लिनलिथगो ने जो आदर्श अपने सामने रखा था, उसी पर उनके आक़ा को भी चलना चाहिये था। लिनलिथगो ने हिन्दुस्तान से बिदा होने से पहले कई महीनों तक अपनी जीभ में ताला लगा रखा था। जब अंग्रेज़ों ने बर्मा को हिन्दुस्तान से अलग किया था तब क्या वे नहीं जानते थे कि इससे इस मुल्क में चावल की कमी पड़ जायगी? क्या ईश्वर ने बंगाल के गवर्नर को लोगों से उनकी नावें छीनने के लिए मजबूर किया था? क्या उसी के कारिन्दों ने कमीवाले क्षेत्रों में पहुँचकर चावल खरीदा था, जिससे जनता की इतनी हानि हुई। क्या ईश्वर ने ही देश में नोटों की संख्या बढ़ाकर मूल्यों में वृद्धि की थी? क्या ईश्वर ने ही भारत के व्यवसाय तथा स्थल व समुद्री यातायात् की उन्नति के मार्ग में रोड़े अटकाये थे?

जब मि० एमरी ने ईश्वर का नाम अकाल व महामारियों के सिलसिले में लिया है तो प्रश्न उठता है कि उसी ईश्वर ने मि० एमरी व लार्ड लिनलिथगो को शासन व सुप्रबंध के विषय में नेक सलाह क्यों नहीं दी?

जब कि एक तरफ वाइसराय राजनीतिक मसले पर बिल्कुल चुप्पी साधे हुए थे वहां दूसरी तरफ गतिरोध को दूर करने के लिए सभी तरफ से जो दबाव डाला जा रहा था उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती थी। इस सम्बन्ध में जो अनुरोध व अपीलें की जा रही थीं और जो प्रतिवाद व चुनौतियां दी जा रही थीं उनका मि० एमरी से उत्तर पाने की आशा की जाती थी। यह दिसम्बर, १९४३ की बात है। २८ नवम्बर को सम्राट् का जो भाषण हुआ था उससे भारतीय नेताओं को नहीं, बल्कि पार्लामेंट के कुछ प्रगतिशील सदस्यों--विशेषकर मजदूर सदस्य मि० स्लोन को बड़ी निराशा हुई थी। सर स्टेनली रीड ने तो भारत की राजनीतिक समस्या का उल्लेख न होने के कारण भाषण में संशोधन का भी प्रस्ताव किया था।

इन तथा दूसरी आलोचनाओं का मि० एमरी ने सोच-विचार कर जवाब दिया। पर इस सोच विचार से उनके स्वभाव या प्रकृति में कोई अन्तर नहीं आ सकता था। बात को टाल देने या उसके बारे में गलतफहमी पैदा करने को जो उनकी आदत पड़ गयी थी उसका क्या इलाज था? निस्संकोच सच बात से इंकार कर देने पर क्या किया जाता? उन्होंने पहले ही कह दिया था कि "बंगाल का अकाल मुख्यतः ईश्वर का ही कार्य है।" इस तरह उन्होंने बेचारे ईश्वर को बंगाल के पापी अनाज जमा करनेवालों की ही श्रेणी में ला बैठाया।

अभी तक हमारे खयाल में भारत के अकाल के लिए आदमी के नसीब को (जिसे दूसरे लफ्ज़ों में 'मि० एमरी का ईश्वर' भी कहा जा सकता है) जिम्मेदार माननेवाले आसाम के भूतपूर्व प्रधानमंत्री सर सादुल्ला खां ही थे। अब मि० एमरी भी उन्हीं की कोटि में आ गये। उन्होंने कहा कि भारत में प्रांतीय स्वातंत्र्य शासन उसी सीमा तक है जिस सीमा तक वह अमरीका के राज्यों (प्रांतों) में है। प्रांतों के इन अधिकारों से कोई रद्दोबदल नहीं की गयी है और युद्ध की कठिनाइयों के बावजूद इन अधिकारों को कायम रखा जा रहा है। ये दिक्कतें बच्चे के दांत निकलने के समय हानेवाली कै, बुखार, दस्त वग़ैरह परेशानियों की तरह हैं, जिनसे कभी-कभी मृत्यु तक हो जाती है। उनका सामना तो करना ही पड़ेगा। अफसोस तो यह है कि मि० एमरी ने जिस बात का पता ६००० मील की दूरी से लगा लिया, हिन्दुस्तान नजदीक से भी उसका पता न लगा सका और वह बात यह थी कि १९४२ के अंत में अकाल का अनुमान कर लिया गया था और उससे बचाव का प्रबंध कर लिया गया था और साथ ही यह भी कि "बंगाल के अकाल का मुख्य कारण पाला मार जाने की वजह से वहां को चावल की फसल बिगड़ जाना भी था, जिसका पता अप्रत्याशित कारणों से बहुत देर से लगा।" मालूम नहीं किस बात का पता नहीं लग सका—पाला पड़ने का या फसल बिगड़ने का? ब्रिटेन भर की राजनीतिक व औद्योगिक संस्थाएं मि० एमरी की भारत-सम्बन्धी नीति--विशेषकर उनके अकाल-सम्बन्धी कुप्रबंध के विरोध में प्रस्ताव पास कर रही थीं। हाल ही में जिन संस्थाओं ने मि० एमरी के अपदस्थ करने का अनुरोध करते हुए प्रस्ताव पास किये थे उनमें मांचेस्टर नगर-मज़दूर-दल, ग्रीनफर्ड की सम्मिलित इंजीनियर्स यूनियन, ट्रांसपोर्ट जनरल वर्कर्स की नम्बर १ हल्के की समिति, म्यूनिसिपल कर्मचारी यूनियन की बर्नले शाखा, राज-मजूरों की सम्मिलित यूनियन की सेंट ऑलबंस शाखा और लेनार्क खनक यूनियन की केस्टन शाखा मुख्य थीं। बरमिंघम अनुदार संघकी तरफ से होनेवाली एक सभा में जब मि० एमरी व्याख्यान देने गये तो उन पर बेहद आवाजकशी की गयी। यहाँ तक कि पुलिस न होती तो गम्भीर उपद्रव हो जाता और अंत में मि० एमरी को भाषण दिये बिना ही सभा से उठकर चले जाना पड़ा। कई मिनट तक

भारतमंत्री ने सभा से शान्त हो जाने की प्रार्थना की, लेकिन लोग चुप न हुए और अन्त में सभा भंग हो गयी। ट्रांसपोर्ट एंड जनरल वर्कर्स यूनियन ने, जिसे संसार की सबसे बड़ी ट्रेड यूनियन कहा जा सकता है, सर्वसम्मति से मि० एमरी के इस्तीफे की मांग की।

लार्ड वेवल के शासन के पहले छः महीने भारत के लिए और खुद लार्ड वेवल के लिए परीक्षा के दिन थे। राजनीतिक परिस्थिति में सुधार के लिए लोकमत की मांग दिन-प्रतिदिन जोर पकड़ती जा रही थी और उन्होंने अभी तक इस दिशा में कुछ भी नहीं किया था। श्री राजगोपालाचार्य का प्रस्ताव था कि क्रिप्स-योजना पर फिर से विचार किया जाय। श्री एन० आर० सरकार ने क्रिप्स-प्रस्तावों के ही आधार पर कांग्रेस को नयी नीति ग्रहण करने की सलाह दी। महामाननीय शास्त्रीजी ने भारत को स्वाधीनताप्राप्त उपनिवेश माने जाने का अनुरोध किया।

इन्हीं दिनों ११ दिसम्बर को चीन के सूचना विभाग के एक अधिकारी श्री सी० एल० स्या ने एक भोज के अवसर पर भाषण करते हुए पश्चिमी महाशक्तियों को इन शब्दों में चेतावनी दी—"एशिया के राष्ट्र स्वाधीनता के लिए जो प्रयत्न कर रहे हैं उन्हें पश्चिमी राष्ट्रों को संजीदगी से देखना चाहिए। एशिया भर की जनता—वह चाहे शिक्षित हो या अशिक्षित—इस बात को सावधानीपूर्वक देख रही है कि पुराने लोकतन्त्रवादी जो कहते हैं उसका मतलब भी वही है या और कुछ ?

"कल के एशिया की ये विशेषताएं मुख्य हैं। इनमें पहली है—स्वाधीन होने की सर्वोपरि कामना। एशियावासी इसे अपना स्वाधीनता-संग्राम कहते हैं। स्वाधीनता की यह भूख जब पैदा हो गयी है तो वह शान्त होकर ही दम लेगी। दूसरी विशेषता यह है कि कल का एशिया उन्नत, प्रगतिशील तथा अनेक मनोरंजक सम्भावनाओं से पूर्ण होगा। जब हमारा भाग्य हमारे हाथों में है तो हम अपने यहां से निर्धनता, अज्ञान और अत्याचार की जड़ खोदकर ही दम लेंगे।"

इंग्लैंड में मजदूर दल चुप न था। लंदन से १६ दिसम्बर को चली एक खबर में कहा गया कि दल के सम्मेलन में मि० आर्थर ग्रीनवुड ने जो वादा किया था कि कार्य-समिति भारत-के सवाल पर फिर से विचार करेगी, उस के परिणामस्वरूप काफी कार्रवाई हुई।

कलकत्ता के असोशियेटेड चेम्बर्स आफ कामर्स के वार्षिक अधिवेशन में ही वाइसराय अक्सर महत्वपूर्ण घोषणाएँ करते रहे हैं। अधिवेशन का समय निकट आने के कारण राजनीतिज्ञों ने राज-नीतिक समस्या को हल करने के लिए अनेक सुझाव पेश करने आरम्भ कर दिये।

ब्रिटिश समाचार-पत्रों में एक खबर छपी कि चांगकाई शेक ने चुंगकिंग से महात्मा-गांधी और जवाहरलाल नेहरू को पत्र लिख कर जापान को पराजित करने के लिए युद्ध में सहयोग करने के लिए कहा है। चांगकाई शेक से परिचित लोगों ने कहा कि वे सिर्फ एक पक्ष से अपील नहीं कर सकते। फरवरी, १९४२ में विदाई के समय दिये गये संदेश में भी चांग-काई शेक ने दोनों ही पक्षों से अपील की थी। यह अपील ब्रिटिश सरकार और भारतीय राष्ट्र दोनों ही से की गयी थी। भारत से कहा गया था कि उसे विश्व की स्वाधीनता के लिए मित्र-राष्ट्रों का साथ देना चाहिए। ब्रिटिश सरकार से कहा गया था कि उसे मांगे बिना ही भारतीय राष्ट्र को वास्तविक राजनीतिक अधिकार प्रदान कर देना चाहिए ताकि वह अपनी आध्यात्मिक व नैतिक शक्ति का विकास कर सके। जनरल चांगकाई शेक की अपील उस अज्ञात किले, जिसमें कार्यसमिति कैद थी, या आगाखां महल तक नहीं पहुंच सकी। गांधीजी व उन के साथियों

को स्वाधीनता के स्थान पर अंग्रेजों ने बेड़ियाँ ही दीं। इस प्रकार भारत की स्वाधीनता के सिपाहियों का जेल की अंधेरी कोठरियों में दूसरा बड़ा दिन और दूसरा नया वर्ष गुजर गया।

च्यांगकाई शेक के पत्रों का संवाद छपा ही था कि वाइसराय उड़ीसा और आसाम का दौरा समाप्त करके कलकत्ता आये और उन्होंने २० दिसम्बर को असोशियेटेड चेम्बर्स आफ कामर्स के वार्षिक अधिवेशन में भाषण दिया:--

"मैंने भारत की वैधानिक तथा राजनीतिक समस्याओं के बारे में कुछ नहीं कहा है—इसलिए नहीं कि ये समस्याएं हमेशा मेरे दिमाग में नहीं रहतीं, इसलिए भी नहीं कि भारत की स्वशासन-सम्बन्धी आकांक्षाओं के प्रति मेरी सहानुभूति न हो और इसलिए भी नहीं कि मेरे विचार में युद्ध के दरमियान राजनीतिक प्रगति होना असम्भव है उसी तरह जिस तरह मैं यह नहीं सोच सकता कि युद्ध के खत्म होने से ही राजनीतिक अड़ंगे का कोई हल निकल आवेगा, बल्कि इसलिए कि मेरा विश्वास है कि उनके सम्बन्ध में कुछ कहकर मैं उनके निबटारे का रास्ता साफ नहीं कर सकता। अभी तो मैं अपनी शक्ति उस काम में ही लगाना चाहता हूँ जो मेरे सामने है। इस समय भारत के पास संकल्प-शक्ति और बुद्धिमत्ता का जो खजाना है उसका उपयोग उसे युद्ध में विजय प्राप्त करने, घरेलू आर्थिक मोर्चे का संगठन करने और शान्ति की तैयारी करने में ही लगा देना चाहिए।

"भारत का भविष्य इन महान् समस्याओं पर ही निर्भर है और इन समस्याओं को निबटाने के लिए मुझे प्रत्येक इच्छुक व्यक्ति के सहयोग की जरूरत है। यह तो मेरा विश्वास नहीं है कि शासन-सम्बन्धी कार्यों से राजनीतिक मतभेदों का निबटारा होना सम्भव है, किन्तु यह विश्वास अवश्य है कि शासन-सम्बन्धी महान् लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए यदि हम अभी ऐसे समय सहयोग करेंगे, जबकि देश के लिये संकट उपस्थित है, और उन लक्ष्यों के सम्बन्ध में सहयोग करेंगे जिनके बारे में विभिन्न राजनीतिक दलों के बीच कोई मतभेद नहीं है, तो हम ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करने के लिए बहुत-कुछ कर सकेंगे, जिसमें राजनीतिक गतिरोध का हल हो सकेगा। सरकार के प्रधान और भारत के पुराने और सच्चे दोस्त के नाते मैं अपने कार्यकाल में देश को उसके उज्जवल भविष्य की ओर ले जाने के लिए भरपूर प्रयत्न करूंगा। हमारा रास्ता न तो सरल है और न उसे छोटा करने के लिए पगडंडियां ही हैं। फिर भी यदि हम अपनी समस्याओं के निबटारे के लिए मिलकर प्रयत्न करें तो उज्जवल भविष्य के सम्बन्ध में हम निश्चिन्त हो सकते हैं।"

इस भाषण की भारतीय पत्रों तथा जनता ने वैसी ही कटु आलोचना की, जैसी कि ऐसे भाषणों की हुआ करती है। वाइसराय ने जो यह कहा कि 'अभी राजनीतिक समस्याओं के निबटारे के सम्बन्ध में कुछ कहकर उनका हल आसान नहीं बनाया जा सकता," इससे उनका मतलब क्या था? कुछ ने 'कहने' व दूसरों ने 'अभी' पर ज्यादा जोर दिया। यदि कहना ठीक न था तो कम-से-कम कुछ 'करना' तो चाहिए था। यदि अभी कुछ नहीं होना था तो 'भविष्य' का इंतजार किया जा सकता था। इस प्रकार अगले वर्ष (१९४४) को १५ फरवरी तक राष्ट्र को इंतजार में रखा गया। इस दिन वाइसराय को केन्द्रीय धारासभाओं के संयुक्त अधिवेशन में भाषण देना था। राजनीतिक कार्यक्रम पर प्रकाश डालने के लिए व्यापारियों के मंच की अपेक्षा दिल्ली अधिक उपयुक्त स्थान था। वाइसराय ने भाषण का राजनीति से सम्बन्ध रखनेवाला अंश यह आशा प्रगट करते हुए समाप्त किया कि यदि शासन-प्रबंध के क्षेत्र में सहयोग प्राप्त किया जा सकता है तो राजनीतिक अड़ंगे को समाप्त करने के अनुरूप परिस्थितियों का भी जन्म दिया जा सकता

है। यह भी स्पष्ट नहीं था कि वाइसराय किसके सहयोग की बात सोच रहे थे। उन्होंने सहयोग का अनुरोध न करके सिर्फ यही कहा कि उसका स्वागत किया जायगा। यह सहयोग उन्हें कहां से प्राप्त होगा, यह लार्ड वेवल ने स्पष्ट नहीं किया। कांग्रेस से मतलब था ही नहीं, क्योंकि वह सींखचों के भीतर बंद थी। यदि उनका मतलब गैर-कांग्रेसियों से था तो कम-से-कम उनका सहयोग तो उन्हें अपनी शासन-परिषद् के ११ सदस्यों से पहले ही प्राप्त था। इन ११ सदस्यों में कांग्रेस से निकाले हुए, कांग्रेस-विरोधी लोग, प्रतिक्रियावादी हरिजन, साम्प्रदायिक नेता, उद्योग-पति, मुर्दा जस्टिस पार्टी के सदस्य और कुछ ऐसे मुसलमान थे, जो अपना एक पैर लीग में और दूसरा उससे बाहर रखते थे। यह स्पष्ट था कि वाइसराय इस गोरखधंधों से खुश न थे। वे जनता के वास्तविक प्रतिनिधियों से सहयोग प्राप्त करने की आशा कर रहे थे और जब तक राज-नीतिक अड़ंगा बना था तब तक सहयोग प्राप्त करना असम्भव था। इस तरह यह तो भूलभुलैयां ही था। सहयोग एक ऐसा साधन था, जिसके द्वारा अड़ंगों को दूर किया जा सकता था और जबतक अड़गे को दूर नहीं किया जाता तबतक सहयोग कैसे मिल सकता था। लार्ड वेवल ने आगे बढ़ने के लिए मार्ग साफ करने का विचार किया, क्योंकि ऐसा किये बिना सहयोग की बात भी अनुचित थी। सहयोग को मांग न करना भी अच्छा ही हुआ, क्योंकि वे भलीभांति जानते थे कि सहयोग के मार्ग की बाधाएं हटाये बिना वह किसी भी तरह प्राप्त नहीं हो सकता।

फरवरी, १६४४ के कुछ दिन बीत चुके थे। वाइसराय केन्द्रीय धारासभाओं के संयुक्त अधिवेशन में भाषण देनेवाले थे। हरेक की यही आशा थी कि इस भाषण में वे राजनीतिक परिस्थिति के विषय में कोई महत्वपूर्ण घोषणा करेंगे। राजनीतिक गतिरोध अभी बना हुआ था और कलकत्ते में वे कह चुके थे कि अभी कुछ कहने से परिस्थिति के हल को आसान नहीं बनाया जा सकता। यह भी सम्भव था कि मि० एमरी ने समस्या का हल करने की कोई योजना भेज दी हो, जिसे अब वाइसराय थोड़ी-थोड़ी करके अमल में लाने जा रहे हों। परन्तु उच्च अंग्रेज कर्म-चारियों में घबराहट फैली हुई थी—न जाने वेवल क्या करने जा रहे हैं! जिस तरह भारतीयों के मन में योजना के खोखलेपन का भय लगा हुआ था उसी तरह उच्च अंग्रेज कर्मचारी उसके ठोस होने की सम्भावना से भयभीत थे। ब्रिटेन में कितने ही शक्तिशाली गुट प्रगतिशील उपायों को निष्फल करने के लिए षड्यंत्र कर रहे थे। उनके उर्वर मस्तिष्क एक ऐसे राजनीतिक संगठन की कल्पना कर रहे थे, जिसकी सहायता से साम्राज्य को कायम रखते हुए भारत की स्वाधीनता के मार्ग में रोड़े अटकाये जा सकें। प्रांतों में नये प्रदेश सम्मिलित करने की योजना प्रोफेसर कूप-लैंड की थी। लार्ड हेली प्रादेशिक गुट संगठित किये जाने की बात कह रहे थे। भारतमंत्री मि० एमरी ऐसी शासन-परिषदों की बात सोच रहे थे, जिन्हें हटाया न जा सकेगा।

यदि सर ज्याफ्री-डि-मोंटमोरेंसी ने "साम्राज्य की पवित्र थाती" की चर्चा उठायी तो उन्हें दोष नहीं दिया जा सकता, क्योंकि छोटे लोग बड़ों के मुंह से निकली बातों को दोहरा दिया करते हैं। मि० चर्चिल ने ही साम्राज्य का नाम 'साम्राज्य व राष्ट्रमंडल' रखा था, जिससे प्रकट हो गया कि साम्राज्यवाद अभी जीवित है। लार्ड हेलीफैक्स भी भारत को एक थाती के रूप में स्मरण कर चुके हैं। इसलिए कहा जा सकता है कि पंजाब के भूतपूर्व गवर्नर ने तो सिर्फ प्रधान मंत्री के साम्राज्य को ही पवित्र बताया है।

चाहे सर ज्याफ्री डि मोंटमोरेंसी ने यह कहा हो कि ऐसा कोई दल या दलों का गुट नहीं है, जिसे ब्रिटेन अपने अधिकार सौंप सके या पंजाब के भूतपूर्व गवर्नर सर हेनरी क्रेक ने भारत की

स्वाधीनता के मार्ग में रोड़ा अटकाने के लिए देशी रियासतों का भूत खड़ा किया हो अथवा मद्रास के भूतपूर्व गवर्नर लार्ड एर्सकिन ने साम्प्रदायिक एकता के अभाव पर जोर दिया हो-- सभी इस सम्बन्ध में सहमत हैं कि ब्रिटेन को भारत का शासन-सूत्र अपने हाथ में रखना चाहिए और उसके पास इतने अधिकार होने चाहिएं कि ज़रूरत पड़ने पर अल्पसंख्यकों की रक्षा की जा सके और शासन-व्यवस्था को भंग होने से बचाया जा सके। दूसरे शब्दों में ब्रिटेन को भारत में एक अनिश्चित समय तक रहना चाहिए ताकि यहां के विभिन्न दल एक-दूसरे को हड़प न जायं। इन भूतपूर्व गवर्नरों के अतिरिक्त श्री प्रो० एम० एडवर्ड-जैसे पत्रकार-जगत् में काम करनेवाले राजनीतिज्ञ भी बोले, जिन्होंने 'वर्ल्ड रिव्यू' में लेख लिखकर सुझाव उपस्थित किया कि ब्रिटेन को दिल्ली अपने अधिकार में रखना चाहिए और वहां से हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के बीच शांति बनाये रखनी चाहिए और देश भर की रक्षा का भार भी उसे अपने ही कंधों पर बनाये रखना चाहिए। ऐसा सुझाव पेश करके इन सज्जन ने बड़ी कृपा की, क्योंकि हिन्दुस्तान या पाकिस्तान में से कोई भी अपनी अलग रक्षा-प्रणाली का खर्च उठाने में असमर्थ रहता। इसीलिए इन दो स्वाधीन उपनिवेशों के मध्य एक तीसरी शक्ति को बनाये रखने का प्रस्ताव किया गया। अच्छा, अब देखिये कि स्वाधीन उपनिवेश क्या कहते हैं? आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड के प्रधान मंत्रियों ने, जो दोनों-के-दोनों ही मज़दूर-दलवाले थे, साम्राज्य की रक्षा व्यवस्था के लिए संगठन स्थापित करने की बात स्वीकार की और यह भी माना कि इस संगठन की अधीनता में प्रादेशिक रक्षा-परिषद् काम करती रहेंगी, और साथ ही उन्होंने प्रशांत महासागर में बड़े-बड़े प्रदेशों का शासनादेश प्राप्त करने की अपनी योजनाएं भी उपस्थित करदीं। उपनिवेशों तथा अधीन प्रदेशों पर सत्ता जमाने में स्वाधीन उपनिवेशों के इंग्लैंड के साथ हिस्सा देने की बात १९१६-१७ से चल रही थी और १९४४ में तो यह इस सीमा तक बढ़ी कि एक आस्ट्रेलियन--मि० रिचार्ड केसी को बंगाल का गवर्नर नियुक्त किया गया और न्यूजीलैंड व आस्ट्रेलिया के प्रधानमंत्री नये प्रदेशों पर अधिकार जमाने की बात सोचने लगे।

सिर्फ स्वाधीन उपनिवेशों के राजनीतिज्ञ ही भारतीय विषयों में अपनी टांग नहीं अड़ा रहे थे। अवकाशप्राप्त ब्रिटिश-अफसर तथा प्रांतों के गवर्नर भी समय-समय पर चिल्ल-पों मचा रहे थे। पंजाब के भूतपूर्व गवर्नर सर हेनरी क्रेक ने कहा कि सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने उनसे ये लफ्ज कहे थे :--

"जब मैंने नरेशों से कहा कि हम अपनी सब जिम्मेदारी से मुक्त हो भारत छोड़कर बाहर जानेवाले हैं और अब भविष्य में आपको कांग्रेस से ताल्लुक जोड़ना पड़ेगा, तो उनमें बड़ा भय और निराशा छा गई।"

इस आधार पर उन्होंने यह परिणाम निकाला कि अंग्रेज़ों को अभी भारत में बने रहना चाहिए। मद्रास के गवर्नर लार्ड एर्सकिन ने कहा:--

"अभी कितने ही वर्ष तक भारतीय-सरकार के ऊपर एक अधिकारी रखना पड़ेगा, जिसके हाथ में अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा तथा विधान चलाये रखने की जिम्मेदारी रहेगी।"

ब्रिटिश पत्रों में इन प्रतिक्रियापूर्ण वक्तव्यों को तो प्रमुख स्थान दिया गया, किन्तु भारत की आर्थिक व कृषि-सम्बन्धी परिस्थिति पर थोड़ा भी प्रकाश न डाला गया। अमरीका का लोकमत कुछ तटस्थ लेखकों की पुस्तकों-द्वारा प्रकट हुआ, किन्तु इन लेखकों का राजनीतिक

प्रभाव अधिक न था।

अन्य वर्षों की तरह १९४४ में भी स्वाधीनता-दिवस आया। श्रीमती सरोजिनी नायडू स्वास्थ्य बिगड़ने के कारण २१ मार्च, १९४३ को जेल से छूटी थीं। करीब १० महीने बाद ७ जनवरी, १९४४ को श्रीमती नायडू ने अपना मुँह खोला। पिछले साल की तरह इस वर्ष भी स्वाधीनता-दिवस के अवसर पर देश भर में गिरफ्तारियां हुईं, किन्तु इनकी संख्या पिछले साल से कम थी। स्वाधीनता-दिवस-समारोह के सिलसिले में सिर्फ बम्बई में लगभग ६० गिरफ्तारियां हुईं, जिनमें १७ महिलाएं, १ बालिका व १ बालक था। दूसरी जगहों में भी लोगों को पकड़ा गया।

स्वाधीनता-दिवस की प्रतिज्ञा में समय-समय पर रद्दोबदल होता रहा है। गोकि भाषा में परिवर्तन कर दिया गया था फिर भी विदेशी चंगुल से छुटकारा पाकर स्वाधीनता की प्राप्ति करने के राष्ट्र के दृढ़ संकल्प में कोई कमी नहीं हुई थी। यह संकल्प बराबर हमारे सामने उस प्रकाश-स्तम्भ के समान रहा, जो अंधकार, तूफान, समुद्री चट्टानों व बर्फीले पहाड़ों के बीच भटकते हुए जहाजों को बन्दरगाह का रास्ता दिखाता है। यद्यपि कार्य-समिति के सदस्य स्वाधीनता-समारोह में भाग लेने के लिए जनता के मध्य उपस्थित न थे; फिर भी साधारण कांग्रेसजन ने झंडे को ऊंचा रखा था। और जहां दिवस मनाने पर पाबंदी नहीं थी वहां सार्वजनिक रूप से और जहां पाबंदी थी वहां अपने घरों में सदा ही इस पवित्र त्यौहार को मनाया गया था, क्योंकि घरों में कड़े-से-कड़े कानून और अत्याचारी से अत्याचारी शासक की पहुँच नहीं हो सकती। नौकरशाही ने मद्रास, बम्बई, दिल्ली, आसाम, बिहार और संयुक्तप्रान्त में स्वाधीनता समारोह पर रोक लगा रखी थी किन्तु एक लोकप्रिय सरकार को यह पाबंदी लगाने का फ़ख़ सिर्फ सिंध में ही हासिल हुआ था।

सिंध सरकार ने जनता के लिए यह आदेश निकाला.—

"प्रतिज्ञा को पढ़ना, या प्रकाशित करना या स्वाधीनता-दिवस मनाने के लिए अपील करना क्रिमिनल ला एमेंडमेंट ऐक्ट के अंतर्गत जुर्म माना जायगा और यह जुर्म करनेवाले पर मुकदमा चलाया जायगा।"

२६ जनवरी को लाहौर स्टेशन पर पहुँचने के समय पंजाब सरकार ने श्रीमती सरोजिनी नायडू के खिलाफ यह हुक्म जारी किया:—

"१९४४ की पाबंदी व नजरबंदी आर्डिनेंस की धारा ३ की पहली उपधारा के अनुसार प्राप्त अधिकारों से अंतर्गत पंजाब के गवर्नर श्रीमती नायडू को आदेश देते हैं कि (१) वे लाहौर के जिला मजिस्ट्रेट की इजाजत लिये बिना विशुद्ध धार्मिक जलूस या सभा को छोड़कर दूसरे किसी ऐसे जलूस या सभा में भाग न लें, जिसमें ५ या उससे अधिक व्यक्ति उपस्थित हों, (२) सार्वजनिक रूप से कोई भाषण न दें, और (३) लाहौर के जिला मजिस्ट्रेट की लिखित अनुमति के बिना किसी अखबार के लिये कोई लेख न भेजें।"

आदेश चीफ सेक्रेटरी की तरफ से आना चाहिए था, किन्तु उस पर पंजाब पुलिस के सी० आई० डी विभाग के डिप्टी इंस्पेक्टर-जनरल की तरफ से घसीटाराम नामक व्यक्ति के हस्ताक्षर थे। कहा जाता है कि घसीटाराम डिप्टी इंस्पेक्टर-जनरल सी० आई० डी० के दफ्तर में एक कर्मचारी था।

जब यह आदेश श्रीमती नायडू को पढ़कर सुनाया गया तो उन्हों ने उसकी पीठ पर लिख

दिया कि अपने डाक्टर की हिदायत के मुताबिक मेरा इरादा पहले ही से किसी सभा में भाषण करने या जुलूस में भाग लेने का नहीं है और इसीलिए जहां तक मेरा सम्बन्ध है मेरे लिए आदेश का अस्तित्व न होने के समान है।

आदेश पर हस्ताक्षर करने के बाद जब वे अपने डिब्बे से बाहर निकलीं तो उनके मुंह से सहसा निकल पड़ा—"पंजाब बड़ा दिलचस्प सूबा है और यहां की पुलिस तो और भी दिलचस्प है।"

बाद में श्रीमती नायडू ने बताया कि महात्मा गांधी के अनशन के समय मैंने आगाखां पैलेस से भारत-सरकार के होम डिपार्टमेंट के पास एक सूचना निम्न आशय की भेजी थी:—

"कांग्रेस कार्य-समिति की सदस्या की हैसियत से मैं जानती हूँ कि समिति ने न तो कभी हिंसात्मक कार्यों को आरम्भ ही किया और न कभी व्यक्तियों या समूहों को हिंसात्मक कार्रवाई करने पर माफ ही किया।" होम डिपार्टमेंट की तरफ से इस पत्र की सिर्फ स्वीकृति ही भेजी गयी, कुछ जवाब नहीं दिया गया। अब-यह भी ज्ञात हुआ है कि श्रीमती नायडू के सामने ही जब डा० विधानचन्द्र राय ने गांधीजी से पूछा कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बम्बईवाली बैठक में 'करो या मरो' वाला भाषण करते समय आपके मन में हिंसा का भाव था या नहीं ? तो उन्होंने कुछ जोश में आकर कहा था—"क्या आपका खयाल है कि पचास साल बाद अहिंसा के सम्बन्ध में अपने जीवन भर का काम मैं नष्ट कर सकता हूँ ?"

२४ जनवरी को श्रीमती सरोजिनी नायडू ने दिल्ली में पत्र-प्रतिनिधियों के एक सम्मेलन में भाषण करते हुए सरकार के इस आरोप की धज्जियां उड़ा दीं कि गांधीजी ने वर्धा से ही कार्य-समिति को क्रिप्स-प्रस्तावों को नामंजूर करने की सलाह दी थी। गांधीजी ने क्रिप्स से मिलने पर उनसे जो-कुछ कहा था उसका भी श्रीमती नायडू ने हवाला दिया। गांधीजी ने कहा था—"भारतीयों के विचारों को प्रभावित करने के लिए ये प्रस्ताव पेश करके आपने बहुत बुरा काम किया।" इस प्रकार गांधीजी ने अप्रत्यक्ष रूप से अपने उन तथाकथित 'शब्दों' का भी खंडन किया (जिन्हें उद्धृत करने का लोभ खुद सरकार तक संवरण न कर सकी) कि क्रिप्स-प्रस्ताव "दिवालिये बैंक के नाम बीती मियाद का चेक" है। ये शब्द ऐसे हैं, जो गांधीजी ने कभी नहीं कहे और न कभी वे कह ही सकते हैं। श्रीमती नायडू ने कितनी ही महत्वपूर्ण बातों की याद दिलायी, जिनमें एक यह थी कि क्रिप्स ने आरम्भ में मंत्रिमंडल-प्रणाली के आधार पर बातचीत शुरू की थी और दूसरी यह कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक के दरमियान ही मि० जिन्ना को पत्र लिखकर मौ० आजाद ने प्रस्ताव किया था कि केन्द्र में लीग के मंत्रिमंडल बनाने पर कांग्रेस को कुछ भी आपत्ति नहीं है। श्रीमती नायडू ने यह भी बताया कि महात्मा गांधी ने अनशन से पहले वाइसराय को लिखा था कि आप आगा खां महल में सरकार की तरफ से कोई ऐसा व्यक्ति भेजदें, जो मुझे विश्वास दिला सके कि मेरा आचरण ठीक न था और ऐसा करने के बाद सरकार मुझे कार्य-समिति के सम्पर्क में करदे। श्रीमती नायडू ने सवाल उठाया कि सर तेज बहादुर सप्रू, डा० जयकर, श्री राजगोपालाचार्य और मि० फिलिप्स को गांधीजी से क्यों नहीं मिलने दिया गया ? श्रीमती नायडू ने उन कांग्रेसजनों का जिक्र किया, जो दुविधा में पड़े हुए थे और उनका भी, जो असम्मानजनक तरीके से कांग्रेसी नेताओं की रिहाई के लिए जोर दे रहे थे। श्रीमती नायडू ने अभिमानपूर्वक सरकार से अपनी गलती ठीक करने को कहा। इस तरह श्रीमती नायडू ने कांग्रेस की ठीक स्थिति का स्पष्टीकरण किया और बताया कि गांधीजी

तुरन्त कोई आन्दोलन नहीं चलाना चाहते थे। इरादा यह था कि बातचीत-द्वारा सफलता न होने पर कभी भविष्य में इस प्रकार की कोई कार्रवाई की जायगी। श्रीमती नायडू ने समझौता कराने के लिए यह भी कहा कि "अब सरकार के लिए पिछली गलतियों में सुधार करने का वक्त आ गया है और इसके लिए उसे कोई कदम आगे उठाना चाहिए। हमारी तरफ से कदम उठाया जा चुका है। यदि सरकार गांधीजी से और लोगों को मिलने दे तथा कार्य-समिति के सदस्य भी गांधीजी से मिलकर देश की परिस्थिति के सम्बन्ध में विचार-विनिमय कर सकें तो अवस्था में सुधार का मार्ग निकाला जा सकता है।"

सरोजिनी देवी के इस वक्तव्य से दो लाभ हुए—एक तो राष्ट्रीय आन्दोलन के सम्बंध में जो गलतफहमी फैली हुई थी वह दूर हो गयी और दूसरे राष्ट्र की मांग का स्वरूप स्पष्ट हो गया। यह तो बिलकुल स्पष्ट ही था कि कांग्रेस जापानी आक्रमण के विरुद्ध थी और अपने ढंग से उसका सामना करने को भी तैयार थी। पक्षपात से रहित होकर विचार किया जाय तो यह भी जाहिर था कि कांग्रेस फौरन कोई आंदोलन नहीं छेड़ना चाहती थी, बल्कि उसका इरादा वाइसराय से गांधीजी की मुलाकात का नतीजा देखने के लिए ठहरने का था। इन दो बातों पर जोर देने के बाद श्रीमती सरोजिनी नायडू ने उन दोनों बुनियादी मांगों की तरफ सरकार का ध्यान आकर्षित किया, जिनका त्याग करने को कांग्रेस किसी तरह तैयार नहीं थी और उसकी ये मांगें थीं—स्वाधीनता की प्राप्ति और उसके प्रमाणस्वरूप युद्धकाल में एक राष्ट्रीय सरकार की स्थापना। कांग्रेस का यह भी दृढ़ विचार था कि उसका बचपन बीत चुका है और इसीलिए अब उसे किसी के संरक्षण की जरूरत नहीं है। इस सम्बन्ध में एक पठान की उक्ति याद आती है, जिसने माउंट स्टुअर्ट एलफिंस्टन से कहा था—"हमें रक्तपात होते रहने पर आपत्ति नहीं है, किंतु किसी स्वामी की अधीनता में रहने पर आपत्ति है।"

समय बीत रहा था और ऐसा जान पड़ रहा था कि जिन लोगों ने लार्ड वेवल से राजनीतिक अड़ंगे को दूर करने की आशा की थी उन्हें निराशा होगी। वाइसराय ने सुशासन और सामाजिक व आर्थिक सुधारों पर जोर दिया, गंदी बस्तियों का निरीक्षण किया, स्वस्थ्य-समिति नियुक्त की और शिक्षा-योजनाओं को प्रोत्साहन दिया, किंतु भारतीय जनता ने इन विषयों में कुछ भी दिलचस्पी न ली। कुछ लोगों ने मनहूस वक्तव्य भी दिये, जिनमें एक सर रामस्वामी मुदालियर का था। उन्हों ने जनवरी १९४४ में कानपुर में कहा कि राजनीतिक गतिरोध खासकर वैधानिक है। उन्हों ने यह भी सुझाव पेश किया कि राजनीतिक तथा व्यापारिक स्वार्थों का विचार किये बिना विचारशील व्यक्तियों को समस्या का नया हल पेश करना चाहिए। उन्हों ने कहा कि वर्तमान परिस्थिति में युद्ध चलने तक राष्ट्रीय सरकार की स्थापना नहीं हो सकती। यह भी स्पष्ट हो गया कि अगस्त-प्रस्ताव के वापस लेने, पिछले कार्यों के लिए अफसोस जाहिर करने या भविष्य के लिए वचन देने से किसी भी तरह भारतीयों के हाथों में शक्ति नहीं आ सकती। अधिक-से-अधिक कैदियों को जेल से छोड़ा जा सकता है—बस इससे अधिक और कुछ नहीं। अधिकारियों का खयाल था कि कैदियों की रिहाई सैनिक व गैर-सैनिक शासन में परेशानियां पैदा कर देंगी। परन्तु भारत-सरकार का यह विचार भी गलत था, क्योंकि भारत सरकार के खुद कितनी भी प्रांतीय सरकारों से झगड़े चल रहे थे। भारत-सरकार का बंगाल के मंत्रिमंडल से मतभेद तो बिलकुल ही साफ था।

जब एक तरफ बंगाल के खाद्य विभाग के मंत्री श्री सुहरावर्दी और भारत-सरकार के खाद्य-

सदस्य सर जे०पी० श्रीवास्तव में कहा-सुनी हो रही थी तो दूसरी तरफ सरोजनी देवी को दिल्ली और लाहौर-यात्रा के सम्बंध में होम डिपार्टमेंट की कार्रवाई बड़ी ही घृणित थी। श्रीमती नायडू के वक्तव्य का दिल्ली के पत्रों में प्रकाशन नौकरशाही की आंखों में बहुत ही खटका। बजाय इसके कि उन गलतफहमियों को, जिनके कारण सरकार को दमनकारी नीति का अनुसरण करना पड़ा था, दूर करने का स्वागत किया जाता, सरकार ने वक्तव्य देनेवाली देवी और उसे प्रकाशित करनेवाले पत्रों को दंड देना ही उचित समझा। दिल्ली के चीफ कमिश्नर के आदेश से,जो सिर्फ भारत-सरकार के कहने से निकाला गया था, नगर के प्रमुख दो दैनिकों "हिन्दुस्तान टाइम्स" व "नेशनल काल" से कहा गया कि "८ अगस्त, १९४२ के बाद श्री एम० के० गांधी या गैर-कानूनी संस्था घोषित की गयी कांग्रेस कार्य-समिति के किसी सदस्य के वक्तव्य या उनके सम्बंध में दिये किसी वक्तव्य को इन दोनों में से किसी पत्र में प्रकाशित होना हो तो दिल्ली के स्पेशल प्रेस एडवाइजर के सामने पेश करना पड़ेगा और वह उसकी मंजूरी के बिना छप न सकेगा।" प्रकाशन से पहले समाचारों का सेंसर करने का यह आदेश उस समझौते के विरुद्ध था, जो सरकार-द्वारा आल इंडिया न्यूजपेपर्स एडीटर्स कान्फ्रेंस के अक्तूबर १९४२ के प्रस्ताव को स्वीकार कर लेने के कारण हुआ था। कान्फरेंस के प्रस्ताव में आंदोलन या उपद्रवों के समाचार छापने के सम्बंध में अखबारों ने खुद ही संयम से काम लेने का वचन दिया था। परंतु प्रस्ताव में आलोचना छापने का जिक्र न था। पिछले वाइसराय लार्ड लिनलिथगो-द्वारा की गयी प्रशंसा और आल इंडिया न्यूजपेपर्स एडिटर्स कान्फ्रेंस द्वारा मद्रास में उसकी सहर्ष स्वीकृति का यही मतलब था। जब कि एक तरफ समाचारों के प्रति ऐसा व्यवहार किया गया वहां अब जरा सरोजिनी देवी के नाम निकाले गये आदेश को भी देखिये। जब कि २६ जनवरी को वे दिल्ली से लाहौर अपनी बहन से मिलने गयी थीं, भारत-सरकार ने उन पर सार्वजनिक सभाओं या जलसों में भाग न लेने और भारत भर में कहीं भी अखबारों में कुछ भी न छपाने का हुक्म तामील किया। अब आर्डिनेंसों का शासन देश की नागरिक स्वतन्त्रता के लिए खतरा बन गया था। यह ठीक है कि जो राष्ट्र स्वाधीन नहीं है,उसकी नागरिक स्वतन्त्रता ही कुछ नहीं होती। परन्तु अंग्रेज जो दावा किया करते हैं कि उन्होंने भारत में कानून का शासन जारी किया उसे ध्यान में रख कर कभी-कभी मन निरुद्देश्य ही प्रश्न करने लगता है कि आखिर इस देश में नागरिक स्वतन्त्रता कितनी है ? सरोजनी देवी के नाम निकाले गये आदेश के सम्बन्ध में ७ फरवरी को केन्द्रीय असेम्बली में एक जोरदार बहस हुई। सर रेजिनाल्ड मैक्सवेल ने अपनी सफाई में यही कहा है कि सरकार श्रीमती नायडू की बीमारी से इतनी जल्दी और इतनी पूरी तरह से अच्छी होने की आशा नहीं करती थी। गृह सदस्य ने बहस के बीच यह भी कहा कि स्वाधीनता-दिवस मनाये जानेपर लगायी गई पाबंदी स्वाधीनताके विरुद्ध न होकर कांग्रेसी प्रतिज्ञा के विरुद्ध है,जो राजद्रोहपूर्ण है। गोकि प्रस्ताव के पक्ष में ४०,और विपक्ष में ४२ वोट थे, फिर भी जनमत की नैतिक विजय हुई और सरकार हारने से बाल-बाल बची। लेकिन इस बहस से सरकार की मनोवृत्ति जितनी प्रकट हो गयी उतनी और किसी बात से नहीं हुई। सर रेजिनाल्ड मैक्सवेल ने यह भी कहा कि सरकार ने कांग्रेस पर जापान का पक्ष लेने का आरोप कभी नहीं किया। यह बात टोटेनहेमवाली पुस्तिका में प्रकाशित बातों के बावजूद कही गयी। सरकार की तरफ से सफाई में कहा गया कि जापान का पक्ष न लेने की बात सिर्फ पंडित जवाहरलाल के लिए कही गयी है। इसी प्रकार जब-जब पार्लामेंट में मि० एमरी को चुनौती दी गयी कि वे कांग्रेसी नेताओं पर मुकदमे चलायें तो एमरी ने इस आश्चर्यजनक तर्क का सहारा लिया कि पुस्तिका में कांग्रेस

पर जापानियों का पक्ष लेने का आरोप कहीं भी नहीं किया गया।

सरकार कुछ समय तक तो टाल-मटोल करती रही। फिर, पहले ब्रिटिश पार्लमेंट में और बाद में भारत में केन्द्रीय असेम्बली में उसे कहना ही पड़ा। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, सर रेजिनाल्ड मैक्सवेल ने केन्द्रीय असेम्बली में बताया कि सरकार ने कांग्रेस पर जापानियों का पक्ष लेने का आरोप कभी नहीं किया। प्रश्न यह है कि मि० विंस्टन चर्चिल को उस सरकार का एक अंग माना जा सकता है या नहीं, जो कभी ब्रिटेन और भारत पर शासन करती थी। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बम्बईवाली बैठक में अगस्तवाला प्रस्ताव पास होने के कुछ ही समय बाद १० सितम्बर, १९४२ को मि० चर्चिल ने कामन सभा में एक भाषण दिया। आपने कहा—"अब कांग्रेस ने गांधीजी की अहिंसा की नीति को एक तरह से त्याग दिया है। अब उसने एक ऐसी नीति को अपनाया है, जिसे गांधीजी ने खुले शब्दों में क्रान्तिकारी आंदोलन कहा है। इस आंदोलन का उद्देश्य रेल और तार के यातायात्-सम्बन्धों को भंग करना, अव्यवस्था फैलाना, दूकानें लूटना, पुलिस पर छुटपुट हमले करना और साथ-ही-साथ कुछ लोमहर्षक घटनाएं करके उन जापानी आक्रमणकारियों के विरुद्ध संगठित की जाने वाली रक्षा-व्यवस्था में बाधा उपस्थित करना रहा है, जो आसाम की सीमा तथा बंगाल की खाड़ी के पूर्व में पहुँच गये हैं। यह भी सम्भव है कि कांग्रेस ये कार्य जापानी जासूसों की मदद से और जापानी सेनापतियों-द्वारा बताये सैनिक महत्व के स्थानों पर खासतौर से कर रही हो। यह उल्लेखनीय है कि आसाम की सीमा पर बंगाल की रक्षा करनेवाली भारतीय सेना के यातायात्-मार्गों पर विशेषरूप से हमला किया गया है। यदि इसे कांग्रेस के विरुद्ध जापानियों के प्रति पक्षपात का आरोप नहीं कहा जा सकता तो फिर यही कहा जा सकता है कि राजनीति का सत्य से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है, बल्कि सत्य तो यह है कि राजनीति का सार सत्य को प्रकट करने में नहीं बल्कि उसे छिपाने में है। परन्तु संतोष की बात है कि ब्रिटिश अधिकारियों को भारत के विरुद्ध इस आरोप का खंडन ही करना पड़ा है और यह खंडन भी सबसे पहले भारतमंत्री मि० एमरी ने ही पार्लमेंट में किया।

सर चिमनलाल सीतलवाद के योग्य पुत्र श्री एम० सी० सीतलवाद ने ८ अगस्त की घटनाओं के बाद ही बम्बई-सरकार के एडवोकेट-जनरल पद का त्याग किया था। जनवरी १९४४ में नागरिक स्वतंत्रता सम्मेलन के अध्यक्ष-पद से भाषण देते हुए आपने बताया कि आर्डिनेंस-राज के कारण देश में कैसा उत्पात हो रहा है—और वास्तव में उस समय मुल्क में १३२ आर्डिनेंस लागू थे। आलोचक कहा करते हैं कि ये आर्डिनेंस जैसे भारत में थीं वैसे ही इंग्लैंड में भी थे। हम मानते हैं। हम यह भी मानते हैं कि शायद इंगलैंड में भारत से अधिक बुरे आर्डिनेंस अमल में लाये जा रहे थे, किन्तु इंगलैंड में नागरिक स्वतंत्रता में कमी वहां की राष्ट्रीय सरकार-द्वारा की गयी थी। इसी तरह यदि भारत में भी राष्ट्रीय सरकार होती तो आर्डिनेंस को अपनी अच्छाई-बुराई के अतिरिक्त दूसरी शिकायत कोई नहीं करता। परन्तु हिन्दुस्तान में तो किसी बाधा या रुकावट के बिना ही हम से नागरिक अधिकारों को छीना जा रहा है। आप चाहे सरोजिनी देवी पर लगाये गये प्रतिबंधों को लें या अमृतसर में अकारण किये गये लाठी-चार्ज को लें—इस लाठीचार्ज को हाईकोर्ट के एक अवकाश प्राप्त जज ने, एक अवकाश प्राप्त डिस्ट्रिक्ट जज तथा एक प्रमुख वकील ने अनुचित और अन्यायपूर्ण बताया था—यही कहना पड़ेगा कि भारत में आर्डिनेंस-शासन निरंकुश वैयक्तिक और तानाशाही शासन ही होता है।

*

: २३ :

वेवल बोले

वेवल आये; वेवल ने देखा; पर वेवल परिस्थिति पर विजयी नहीं हुए। यह तो वही किस्सा हुआ कि पहाड़ खोदा और चुहिया निकली। और यह वही चुहिया थी, जो लिनलिथगो, एमरी और चर्चिल के प्रयत्नों से निकल सकती थी। अंतर सिर्फ यह था कि जहां मरे बच्चे को फेंक दिया जाता है वहां इस चुहिया को नकली सांस दिलाकर जिलाने का प्रयत्न किया जाने लगा। इसके लिए हम लार्ड वेवल को दोष नहीं दे सकते; किन्तु हमें खेद तो सिर्फ इतना ही है कि उनके भाषणों को देखते हुए परिणाम अधिक नहीं निकला। यदि जमीन उपजाऊ होती है तो फसल भी अच्छी और अधिक होती है। राजनीतिज्ञ में हाथ की तेजी व दिमाग़ की उत्तमता के अलावा हृदय की विशालता भी होनी चाहिए, तभी वह नये विचार दे सकता है या योजना में क्रांतिकारी परिवर्तन ला सकता है। परिस्थिति की अनुकूलता के लिए प्रतीक्षा करना बुरा नहीं है। प्रार्थना भी की जा सकती है। परन्तु प्रतीक्षा और प्रार्थना तभी कारगर हो सकती है, जब कि हृदय में भी परिवर्तन हुआ हो। यह हृदय का परिवर्तन लार्ड वेवल में नहीं दिखायी दिया। और फिर वे तो एक ऐसी शासन व्यवस्था के प्रधान थे, जो ब्रिटिश मंत्रिमंडल के प्रति उत्तरदायी थी और उसकी एक शाखामात्र थी। जब नदी के उद्गम में ही पानी गंदा है तो आगे जाकर वह निर्मल कैसे हो सकता है।

लार्ड वेवल ने इन दिक्कतों के साथ नया काम अपने हाथ में लिया था। बड़ी-बड़ी आशाएं करने और फिर निराशा के गर्त में गिरने का कारण यही था कि प्रार्थना करने की आदी भारतीय जनता लार्ड एलेनबी के चरितलेखक से कुछ उम्मीदें बांधने लगी थी। परन्तु किसी मृतक की प्रशंसा में कुछ कहने का यह मतलब नहीं है कि उसके दिखाये रास्ते पर प्रशंसा करनेवाला भी चलेगा। इस दृष्टिकोण से लार्ड वेवल का कार्य निराशापूर्ण ही नहीं, निश्चित असफलता का भी था। वे देश को प्रगति के पथ पर अग्रसर करने में सफल नहीं हुए। उनकी शासन-परिषद् का नाटक पहले के समान होता रहा और लार्ड वेवल इस बात से संतुष्ट बने रहे कि वे उसमें बड़े योग्य व्यक्ति हैं। यह शासन-परिषद् ज्यादा-से-ज्यादा शासन-प्रबन्ध का संचालन और अमन व कानून की हिफाजत तो कर ही सकती थी। जहां तक प्रगति का सवाल है, महत्त्व दिशा का होता है, न कि लक्ष्य का। दिशा गलत होने पर लक्ष्य पर नहीं पहुँचा जा सकता। लार्ड वेवल ने अपने पूर्वाधिकारी-द्वारा निर्धारित दिशा में ही चलना उचित समझा। परिणाम यह हुआ कि गतिरोध दूर करने की समस्या को वे किसी नये दृष्टिकोण से देखने में असमर्थ रहे। जब मि० एमरी ने लंदन में कहा था कि एक चतुर हाथी को पुल पर पैर रखने से पहले ही उसे आजमा लेना चाहिए, तो लार्ड वेवल ने इसमें तुरंत परिवर्तन कर लिया था कि चतुर हाथी को पहले अपना

रास्ता जान लेना चाहिए। पुल सड़क पर ही है। पर यदि रास्ता बदल जाता है तो पुल आजमाने का सवाल ही नहीं उठता। आशा की गयी थी कि लार्ड वेवल अपने लिए नया रास्ता चुन कर उसी पर चलेंगे। एक महीने भर भटकने के बाद वे फिर पुराने रास्ते पर आ गये और इस रास्ते पर ही वह पुल पड़ता था, जो ले जाये जानेवाले सामान को देखते हुए बहुत कमजोर था।

इस के अतिरिक्त, सैनिक लक्ष्य को सामाजिक व आर्थिक समस्याओं से अलग करके और इन दोनों को राजनीतिक क्षेत्र से पृथक् करके लार्ड वेवल ने अपनी समझदारी का परिचय दिया। यदि देखा जाय तो हमारा जीवन सैनिक, सामाजिक व आर्थिक और राजनीतिक अंगों का मिश्रण है। सेना भोजन के बिना नहीं रह सकती, किन्तु सिर्फ भोजन से ही सेना का काम नहीं चल सकता। निस्संदेह सैनिकों को भूख लगती है, किन्तु उनके भीतर वह देशभक्ति की भावना और आत्मा भी होती है, जो उन्हें युद्ध के लिए प्रेरित करती है। ये चीज़ें बाजार में नहीं मिलतीं और न भोजन की उपादेयता के रूप में ही उनका महत्त्व आंका जा सकता है। इनका जन्म तो राष्ट्रों और सरकारों के संतुलन और स्वाधीनता की प्रेरणा-द्वारा ही हो सकता है। यहीं लार्ड वेवल को असफलता मिली, क्योंकि युद्ध में सफलता प्राप्त करने और सामाजिक व आर्थिक सुधारों का राष्ट्र के प्रतिनिधि के रूप में लड़नेवाले सैनिकों के राजनीतिक भविष्य से घनिष्ट सम्बन्ध था। पश्चिम के लोग इन समस्याओं को अलग से देखने के आदी रहे हैं और लार्ड वेवल ने अपनी इस राष्ट्रीय कमज़ोरी के कारण राजनीतिक समस्या को अपने हाथ से निकल जाने दिया। कभी उन्होंने "भारत की गरीब जनता का निर्धनता से उद्धार करने, उसे अस्वास्थ्य से छुटकारा दिलाने, उसे अज्ञान से छुड़ाकर समझदार बनाने--और यह एक बैलगाड़ी की रफ्तार से नहीं, बल्कि जीप गाड़ी की रफ्तार से"—का बीड़ा उठाया। इससे ब्रिटिश प्रकाशन-विभाग के ब्रेंडन ब्रेकन-द्वारा दी गयी इस खबर की पुष्टि हो गयी कि युद्धकाल में भारत की वैधानिक समस्या को जहां-का-तहां ही रखा जायगा। तब होगा क्या ? भारत का शासन वर्तमान प्रणाली के अनुसार होता रहेगा और भारतीय सरकार नया विधान बनने तक ब्रिटिश पार्लामेंट के प्रति जिम्मेदार रहेगी। वाइसराय महोदय ने यह भी बताया कि उनकी शासन-परिषद् में भारतीयों का बहुमत है और ये सब-के-सब 'प्रसिद्ध और देशभक्त' हैं और 'बड़ी योग्यता' से शासन-कार्य चला रहे हैं। परन्तु राजनीतिक भविष्य का क्या हुआ ? लार्ड वेवल ने कहा कि आर्थिक सुधारों की तुलना में राजनीतिक भविष्य की योजना बनाना कहीं अधिक कठिन है। परन्तु एक बात निर्विवाद है। प्रायः हरेक अंग्रेज़ सम्राट् की वर्तमान सरकार और ब्रिटेन की भावी किसी भी सरकार की यह हृदय से कामना है कि भारत सुखी और समृद्ध हो, उसमें एकता की स्थापना हो और उसे अपना शासन आप सँभालने का अधिकार प्राप्त हो। अंग्रेज़ यह भी चाहते हैं कि ऐसा जल्दी ही हो; किन्तु युद्ध सफलतापूर्वक समाप्त हो जाना चाहिए और साथ ही नये विधान में सैनिकों तथा श्रमजीवियों, अल्पसंख्यकों और रियासतों के हित सुरक्षित रहने चाहिएं। इतना ही नहीं, वाइसराय ने यह भी कह दिया कि भारत के मुख्य दलों में समझौता हो जाना चाहिए, क्योंकि ऐसा हुए बिना प्रगति की आशा नहीं की जा सकती।

ऊपर जिस योजना की कल्पना की गयी है, वह क्रिप्स-योजना ही है। "भारतीय लोकमत के जो नेता इस आधार पर शासन-कार्य में सहयोग प्रदान करना चाहें उनके लिए द्वार अभी तक खुला हुआ है, किन्तु उन लोगों में युद्ध में हाथ बँटाने और भारत की भलाई करने की वास्तविक इच्छा होनी चाहिए।"

अब भारत के नजरबन्द नेताओं की रिहाई का प्रश्न उठता है। उन्हें तब तक रिहा नहीं किया जा सकता जब तक उनके सहयोग करने की इच्छा के लक्षण प्रकट नहीं होते। वाइसराय ने सुझाव पेश किया कि व्यक्ति-विशेष को 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव की निन्दा करके भावी कार्यों में सहयोग प्रदान करना चाहिए। ये भावी कार्य क्या थे ? इनमें एक सबसे महत्त्वपूर्ण कुछ भारतीयों द्वारा देश की वैधानिक समस्याओं की छानबीन था। वाइसराय ने यह भी नहीं बताया था कि भारतीयों की अधिकारपूर्ण समिति की नियुक्ति कौन करेगा ? इस समिति को अधिकार सरकार से प्राप्त होगा या सदस्यों की अपनी-अपनी संस्थाओं से ? यदि नियुक्ति सरकार-द्वारा होनी है तो लाभ क्या है ? साइमन कमीशन के समय से १९३५ के एक्ट तक १४ सम्मेलन और समितियां कार्य करके असफल हो चुकी थीं। यदि प्रतिनिधित्व संस्थाओं की तरफ से होना है तो प्रश्न उठता है कि कांग्रेस का प्रतिनिधित्व होगा या नहीं ? यदि कांग्रेस का प्रतिनिधित्व होता है, तो समितियां गैरकानूनी होने पर, और नेताओं के जेल में बन्द रहने पर, वे काम कैसे कर सकती हैं ? वाइसराय ने परिस्थिति पर संक्षेप में विचार प्रकट करते हुए कहा—"हम देश के भविष्य का निर्णय तब तक नहीं कर सकते, जब तक ब्रिटिश और भारतीय राष्ट्रों में सहयोग नहीं होता—जब तक कि भारतीय राष्ट्र के अंतर्गत हिन्दू-मुसलमान, अन्य अल्पसंख्यक तथा रियासतों के मध्य पारस्परिक समझौता नहीं होता। वाइसराय जानते थे कि देश के कितने ही दल सहयोग के लिए तैयार हैं, किन्तु एक ऐसा भी महत्त्वपूर्ण दल है, जो बिलकुल अलग है। मैं मानता हूं कि इस दल में योग्यता तथा सदाशयता की कमी नहीं है, किन्तु उसकी वर्तमान नीति और उपाय अव्यावहारिक तथा अनुर्वर है। भारत की मौजूदा तथा भावी समस्याओं के निबटारे के लिए मैं इस दल का सहयोग पाने को उत्सुक हूं। जब तक यह नहीं माना जाता कि असहयोग तथा बाधा डालने की नीति गलत व हानिकर थी और उस नीति को वापस नहीं लिया जाता तब तक उन लोगों की रिहाई नहीं की जा सकती, जो ८ अगस्त, १९४२ वाली घोषणा के लिए जिम्मेदार थे।" वाइसराय कांग्रेसजनों से आत्मसमर्पण नहीं चाहते थे, फिर भी उन्होंने यह अनुभव नहीं किया कि गलती स्वीकार करने और अपने निर्णय को वापस लेने का यही मतलब होता है। वाइसराय और सरकार कांग्रेसी नेताओं पर मुकदमे चलाने को तो तैयार न थी, किन्तु वे दोनों उनसे अपराध मंजूर कराना चाहते थे और निर्णय वापस लेने का आग्रह करते थे। यह मांग करते समय वाइसराय शायद महसूस नहीं करते थे कि कांग्रेसजनों के लिए अपनी रिहाई के लिए अपराध स्वीकार करना और पिछली नीति को त्यागने का वचन देना कितना अपमानजनक है। कभी-कभी अखबार पढ़नेवाले को भी यह स्पष्ट हो गया कि लार्ड वेवल अपने प्रभु की आवाज में बोल रहे हैं और लार्ड लिनलिथगो के लम्बे-लम्बे वाक्यों में कहे गये विचारों को अपने स्पष्ट और छोटे वाक्यों-द्वारा प्रकट कर रहे हैं। उनके भाषणों में सूझबूझ तथा विवेक का अभाव जान पड़ता था। यदि ऐसा न होता तो कांग्रेस-जैसी महान् संस्था के सदस्यों को विद्रोह करने और 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव वापस लेने की सलाह न दी जाती। यही मुस्लिम लीगी प्रधान मंत्रियों को रक्षा-परिषद् का सदस्य नामजद करके लार्ड लिनलिथगो ने किया था। इस कार्य पर मुस्लिम लीग के अध्यक्ष क्रुद्ध भी हुए थे। अब लार्ड वेवल भी ऐसा ही एक कार्य करना चाहते थे। प्रेम और युद्ध की नीति में फुसलाने को स्थान भले ही हो, किन्तु सत्याग्रह में उसके लिए तनिक भी स्थान नहीं है। गोकि वाइसराय ऊपर से कांग्रेसजनों की रिहाई की अनिच्छा प्रकट कर रहे थे, फिर भी वे अपनी अवधि के भीतर ही कांग्रेसजनों को छोड़ कर अपने सिर से बदनामी का टीका मिटा कर

आगे की उन्नति के लिए रास्ता साफ करना चाहते थे । प्रत्येक वाइसराय का यह क्षम्य अभिमान तथा प्रशंसनीय आकांक्षा रही है कि वह इतिहास के पृष्ठों पर अपना स्थायी स्थान छोड़ जाय । वाइसराय के रूप में लार्ड लिनलिथगो कुछ दुःखी और निराश होकर ही भारत से विदा हुए थे । कम-से-कम उन्हें इस बात से तो धीरज मिल सकता था कि नाकामयाबी ने उनका पल्ला मीयाद खत्म होने के दिनों में ही पकड़ा था । परन्तु लार्ड वेवल के साथ यह बात न थी । उन्होंने अपने पूर्वाधिकारी से यह दुर्भाग्य प्राप्त किया था । इसीलिए उन्होंने सहयोग प्राप्त करने के लिए प्रयत्न आरम्भ कर दिया, किन्तु वे सहयोग की कीमत चुकाने को तैयार न थे । वे तो अपनी ही शर्तों पर सहयोग चाहते थे या कम-से-कम बदनामी के कारण को मिटाने के लिए उत्सुक थे। सर रेजिनाल्ड मैक्सवेल ने श्रीमती सरोजिनी नायडू के वक्तव्य का यही मतलब लगाया कि कांग्रेस सिर्फ अपनी शर्तों पर ही सहयोग करेगी । इसलिए वेवल को सहयोग के सम्बन्ध में काफी निराशा हो गयी । तब उन्होंने कहा कि कांग्रेसजन चाहे सरकारों में भाग न लें, किन्तु उन्हें देश की भावी समस्याओं में तो भाग लेना ही चाहिए । दूसरे शब्दों में वाइसराय कांग्रेस को जेल के बाहर ही नहीं, बल्कि सेक्रेटरियेट से भी बाहर रखने को उत्सुक थे । सिंध में बच्चों का एक गीत है, जो वर्तमान परिस्थिति पर पूरी तरह लागू होता है:--

"कूसा मूसा, राय बहादुर,
बाहर निकलो, बात सुनावें,
बीबीजी मैं खोद-खोद किया मंदिर
तुम बात करो मैं सुनता अंदर"

बिल्ली ने चूहे से अपने बिल से बाहर निकल कर एक बात सुनने को कहा । चूहा उत्तर देता है--"मैंने खोद-खोद कर मंदिर बना लिया है । तुम बोलो मैं भीतर से ही सुनूंगा ।" कांग्रेस से लार्ड वेवल कहते हैं--खु"दा के वास्ते, जरा बाहर आजाओ । मुझे तुम से एक बात कहनी है ।" कांग्रेस जवाब देती है--"मैं तो यहां १८ महीने रह चुकी हूँ और जेल ही को मैंने अपना घर बना लिया है । तुम बोलो, हम भीतर से सुनेंगे ।" इस प्रकार गतिरोध बना हुआ है । सब-कुछ देख सुन लेने के बाद हम भी इसी परिणाम पर पहुंचे कि लार्ड वेवल के भाषण में अंतिम निश्चय करने का भाव नहीं प्रकट हुआ । उन्होंने कहा --

'मैं अपने पद पर लगभग पांच महीने बिता चुका हूँ और भारत के इतिहास की इस महत्वपूर्ण घड़ी में जो भी सलाह मैं आपको दे सकूँगा दूंगा । आप उन्हें मेरे अंतिम विचार भी न मानिये । मैं तो नये सम्पर्क उत्पन्न करने और नया ज्ञान प्राप्त करने में ही विश्वास करता हूँ । परन्तु उनसे कुछ ऐसे सिद्धान्तों पर प्रकाश पड़ता है, जिनके आधार पर भारत की उन्नति के लिए कार्य किया जाना चाहिए ।"

यदि लार्ड वेवल को ब्रिज का खेल खेलना था तो उन्हें तुरप बोलकर अपना रंग बता देना चाहिए था । इसकी जगह वे 'छ. हुक्म' बोलकर हकबका गये, अपने साथी के पत्ते पर तुरप लगाकर दूसरी गलती की और दुश्मन के सभी हाथ बन जाने दिये । पहले तुरप बोलना और फिर बिना तुरप का खेल खेलते हुए 'ग्रांडस्लेम' बनाने की कोशिश का परिणाम बाजी हाथ से निकल जाना ही हो सकता था । अब पत्ते फिर बांटे जाने के अलावा और कोई रास्ता न था । दूसरी बार पत्ते बँटने पर लार्ड वेवल को अपनी मर्यादा व देश की स्वाधीनता की दृष्टि से क्या मिलना था--यह कौन बता सकता था ? लार्ड वेवल ने लुई फिशर के हाथ में

एलेनबी के जीवन-चरित सम्बन्धी अपनी पुस्तक के उस अध्याय की हस्तलिपि दे दी, जिसमें १६२२ के राजनीतिक संकट का सुन्दर गद्य में वर्णन किया गया है। उसमें यह भी बताया गया है कि लार्ड एलेनबी ने किस प्रकार ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल से संघर्ष किया और किस प्रकार प्रधान-मन्त्री लायड जार्ज, विदेशमंत्री लार्ड कर्जन तथा अन्य सभी मंत्रियों ने उनका विरोध किया। मिस्र की स्वाधीनता के सब से कट्टर विरोधी चर्चिल भी उस मन्त्रिमण्डल में थे। लार्ड वेवल ने इन घटनाओं की चर्चा करते समय यह अनुमान नहीं किया था कि एक दिन इन्हीं चर्चिल (प्रधानमन्त्री) और उनके साथ भारतमंत्री मि० एमरी से वैसा ही संघर्ष खुद उन्हें भी करना पड़ेगा। लार्ड जेटलैंड से मि० एमरी तक और लार्ड लिनलिथगो से वाइकाउंट वेवल तक देश के दोनों प्रमुख राजनीतिक दलों की एकता पर जोर डाला जाता रहा है। वाइसरायों या भारत-मन्त्रियों के लिए यह कोई नयी सूझ न थी। ५ जुलाई, १८२० को मेटकाफ ने अपने एक पत्र में लिखा था—"मालकम तथा कुछ अन्य लोग मुस्लिम स्वार्थों को हिन्दुओं और विशेषकर मराठों के विरुद्ध करने की योजना पर जोर देते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि शक्ति-संतुलन पर निर्भर रहने का समय अब बीत चुका है। साथ ही मुसलमानों की शक्ति बढ़ाने की नीति भी ठीक नहीं है। सच तो यह है कि हमें अधिक-से-अधिक प्रदेश अपने अधिकार में करके अपने को दूसरी सभी शक्तियों के ऊपर घोषित कर देना चाहिए"—(एडवर्ड थाम्पसन।)

१८२० में देश की रक्षा का प्रश्न था और अब १६४४ में भी वह उसकी रक्षा का ही प्रश्न है।

लार्ड लिनलिथगो की तरह लार्ड वेवल के भाषण की भी, भारत के लिए नकारात्मक और इसी कारण इंग्लैंड के लिए ठोस, उपयोगिता थी। उनके भाषण की उपयोगिता दुहरी कैसे थी, इसके स्पष्टीकरण के लिए यहां "श्यूइंग अप आफ दि ब्लैंको प्रोज्नेट" की भूमिका से बर्नार्ड शा के निम्न शब्द देना असंगत न होगा—"चार्ल्स डिकेन्स ने लिटिल डोरियट में कहा है, जो अंग्रेजी भाषा में हमारी वर्गीय शासन-प्रणाली का सब से ठीक और सच्चा अध्ययन है, कि जब कोई बुराई इस सीमा तक पहुँच जाती है कि उसके सम्बन्ध में कुछ-न-कुछ किये बिना काम नहीं चलता तो हमारे पार्लामेंटेरियन ऐसा कोई तरीका खोज निकालते हैं, जिससे उस मामले में कुछ भी न करना पड़े, जिसे दूसरे लफ्जों में यही कहा जा सकता है कि वे ऐसे सुधारों की घोषणा करते हैं, जिनसे परिस्थिति वही रहती है जैसी पहले थी या उससे भी कुछ बुरी हो जाती है।

ब्रिटिश मंत्रिमण्डल से लार्ड एलेनबी के संघर्ष और मिस्र की स्वाधीनता में उनके हिस्सा बँटाने की लार्ड वेवल ने जो प्रशंसा की थी उसकी तरफ से ध्यान हटाने का प्रयत्न भारत के अंग्रेजों ने किया। उनकी तरफ कहा गया कि मिस्र की नीति भारत में लागू न किये जाने के दो कारण हैं। पहला तो यह कि १६१४-१८ का महायुद्ध समाप्त होने के काफी बाद जनरल एलेनबी से मिस्री मामले अपने हाथ में लेने को कहा गया था। दूसरी कठिनाई यह बताई गयी कि मिस्र में जनरल एलेनबी के सामने कठिनाई उत्पन्न करनेवाली ऐसी कोई संस्था न थी, जैसी भारत में मुस्लिम लीग है।

परन्तु हम तो यही कहेंगे कि लार्ड वेवल की नियुक्ति के समय युद्ध छिड़ा रहना तो इस बात का और भी कारण था कि सरकार नैतिक व आर्थिक सहायता प्राप्त करके अपनी शक्ति बढ़ाती—विशेषकर इस हालत में और भी जब कि कांग्रेस-कार्य-समिति ने जुलाई, १६४२ में

(वर्धा में) तथा अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने अगस्त, १९४२ में (बम्बई में) बिना किसी शर्त के सहायता देने को कहा था। भारत के सभी दल—लीग और कांग्रेस, मुसलमान और हिन्दू, कौंसिलों तथा असेम्बलियों के सदस्य तथा सर्वसाधारण—कह चुके थे कि ब्रिटेन को भारत में शक्ति का परित्याग कर देना चाहिए। यह शक्ति किसे और किस प्रकार दी जाय, इस समस्या का निबटारा यदि ब्रिटेन सद्भावनापूर्वक करना चाहता तो कोई दिक्कत नहीं उठती थी। कांग्रेस यह तो लिखकर दे चुकी है कि सरकार चाहे तो मुस्लिम लीग को शासन की बागडोर सौंप सकती है।

युद्ध और उसमें हिस्सा लेने के सवाल पर भी कांग्रेस ने किसी सन्देह की गुंजाइश नहीं छोड़ी थी, क्योंकि बम्बई में उसने जो घोषणा की वह स्पष्ट, जोरदार और बिना किसी शर्त के थी।

यदि अंग्रेज़ों में गतिरोध दूर करने की इच्छा होती तो इसमें कठिनाई कुछ भी न थी। भारत में तथा इंग्लैंड और अमरीका के विवेकशील हलकों में यह बात समान रूप से अनुभव की जाती थी। भारत में सर जगदीशप्रसाद, डा० सप्रू और प्रोफेसर वाडिया-जैसे व्यक्तियों के स्पष्ट वक्तव्य मौजूद थे। अमरीका का लोकमत कभी औचित्य की तरफ और कभी अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अपनी आवश्यकता की तरफ झुकता था।

भारत के सम्बन्ध में इंग्लैंड का लोकमत इतना संतुष्ट न था। भारत में दिलचस्पी रखनेवाले लोगों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही थी और उनमें गतिरोध दूर करने के लिए कुछ हलचल-सी दिखायी देने लगी थी। सभी तरफ धीरज का अंत होने लगा था और अधैर्य नहीं तो कम-से-कम लोगों में आश्चर्य फैलने लगा था। नेताओं की जेल से रिहाई के बारे में सरकार की घोषणाएं खास तौर पर क्षुब्ध कर देनेवाली जान पड़ती थीं। जो लोग नेताओं की रिहाई के विरुद्ध थे उन्हें जेल से बाहरवाले नेताओं के साथ जेल के भीतरवाले नेताओं का सम्मेलन कराने का प्रस्ताव मूर्खतापूर्ण लगता था। उधर भारत में नरम-से-नरम विचारवाले नेता देश में बढ़ती हुई राजनीतिक कटुता को देख रहे थे और महसूस कर रहे थे कि यदि वाइसराय ने राजनीतिक विचारों से भरे हुए भारतीयों को संतुष्ट करने के लिए कुछ न किया तो यह असंतोष और भी बढ़ जायगा। उधर इंग्लैंड में पादरी लोग इस आशंका से चिन्तित हो रहे थे कि कहीं भारत में नाराजी इतनी अधिक न फैल जाय कि बाद में अनेक प्रयत्न करने पर भी उसे दूर न किया जा सके।

भारत में इंग्लैंड की नीति दक्षिण-पूर्वी एशिया में जापान की नीति के ही समान थी, जिसका आधार यह था कि भविष्य में साम्राज्य के विभिन्न देश मिल-जुलकर समृद्धि का उपभोग करेंगे, किन्तु अभी उन्हें जैसे बने वैसे निर्वाह करना चाहिए। लार्ड वेवल ने कनाडा में अंग्रेज़ों व फ्रांसीसियों में हुई एकता का हवाला दिया। इस समस्या का हल हुए १०० वर्ष के लगभग व्यतीत हो चुके थे और ब्रिटिश इतिहास में उसका उल्लेख भी मिलता है।

१९४४ का बजट

राजनीति में कभी-कभी ऐसे लोगों को मिलकर काम करना पड़ता है, जिन्हें मामूली तौर पर एक-दूसरे के विरुद्ध ही कहा जायगा। इन विरोधी दलों में विचारों या सिद्धांतों का मेल नहीं होता, बल्कि किसी तीसरे दल के विरोधी होने के कारण उनका हित एक-दूसरे से मिल जाता है। ऐसी घटनाएं बजट के समय दिखायी देती हैं। गोकि ऐसी घटनाएं अचानक होती हैं फिर भी उनमें उचित दिशा में उन्नति के लक्षण दिखाई देते हैं। ५६ व्यक्तियों ने बजट के विरुद्ध और

५५ ने सरकार के पक्ष में वोट दिये। इन ५५ व्यक्तियों में ३७ नामजद और १८ निर्वाचित थे। १८ निर्वाचित व्यक्तियों में से ९ यूरोपीय और ९ भारतीय थे। ९ भारतीयों के नाम इस प्रकार थे—(१) सर बी० एन० चंद्रावरकर, (२) सर हलीम गजनवी, (३) आनन्द मोहनदास, (४) भाई परमानन्द, (५) नीलकंठदास, (६) सर कावसजी जहांगीर, (७) भागचंद सोनी, (८) मोहम्मद शब्बल, (९) जमनादास मेहता।

समय बीतने पर कितनी ही कटु बातें भूल जाती हैं, क्योंकि समय के साथ अनुभव बढ़ता है और यह अनुभव विभिन्न तरीके का होता है। कांग्रेस व लीग के एक-दूसरे के निकट आने के लक्षण दिखायी देने लगे थे और लाहौर में कायदे-आजम भी अपने ढंग से इसका पूर्वाभास देने लगे थे। २३ मार्च को लीग के मन्त्री सर यामीन खां ने केन्द्रीय असेम्बली में भारत-रक्षा-नियमों में संशोधन करने के लिए असेम्बली की एक समिति नियुक्त करने का प्रस्ताव किया। इस दौरान में उन्होंने एक वक्तव्य दिया। यह वक्तव्य उन्होंने असेम्बली में कांग्रेस व लीग दलों की एकता के सम्बन्ध में एक सदस्य के प्रश्न करने पर दिया था। इसका उद्देश्य दुनिया को यही दिखाना था कि कांग्रेस या लीग में से एक को भी सरकार पर विश्वास नहीं है। यह एकता की तरफ एक कदम आगे जाता था। इस सम्बन्ध में सर फ्रेडरिक जेम्स के आश्चर्य प्रकट करने पर सर यामीन ने कहा—"क्या १९४० से पूर्व कोई रूस और इंग्लैंड के मिलने की कल्पना कर सकता था? कुछ परिस्थितियां ही ऐसी थीं जिन्होंने अलग हुए देशों को एक-दूसरे से मिला दिया।" आपने यह भी कहा कि सरकार को करतूतों ने ही कांग्रेस और लीग को मिला दिया है। सर यामीन खां ने अर्थ-सदस्य को उत्तर देते हुए कहा कि सरकार ने जो कुछ किया है उसके लिए वे उसके आभारी हैं। "सरकार ने अपने इन कुकृत्यों से प्रकट कर दिया है कि विभिन्न-दलों से मिलने का वह जो अनुरोध करती है उसके भीतर मुख्य उद्देश्य उनके मतभेदों से अनुचित लाभ उठाना ही होता है। सरकार का उद्देश्य यही होता है कि भारत के लोग कभी एक न हों और अगर वे एक होने जा रहे हों तो उनमें फूट डालने के लिए कुछ-न-कुछ करना ही चाहिए।"

सर यामीन खां ने ऐसा कह कर सिर्फ अर्थ-सदस्य या ब्रिटिश सरकार को ही ताना नहीं दिया। उन्हों ने अंग्रेजों के कूढ़ दिमाग में एक तथ्य भरने का प्रयत्न भी किया। अक्सर कहा जाता है कि भारतीयों की आदत तर्क देने और सुनने की है, जब कि अंग्रेज तथ्यों पर विश्वास करते हैं। यहां इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि सर यामीन खां का ध्यान तर्क और तथ्य दोनों की ही तरफ था।

कई सप्ताह की जबानी लड़ाई के बाद केन्द्रीय असेम्बली में वोट लेने का दिन आया और वोट के पक्ष में ५५ और विपक्ष में ५६ वोट आये। कांग्रेस दल के नेता श्री भूलाभाई देसाई तीन साल की अनुपस्थिति के बाद असेम्बली में आये थे और तीन वर्ष पूर्व की तरह इस बार भी उन्हों ने कांग्रेस की नीति का स्पष्टीकरण किया। उन्होंने कहा कि युद्ध में सहयोग राष्ट्रीय सरकार की स्थापना पर ही होना सम्भव है। इसी प्रकार नवाबजादा लियाकत अली खां ने साफ शब्दों में विचार प्रकट किये। सर जर्मी रेजमेन ने आशा प्रकट की कि कांग्रेस और लीग मिल कर राष्ट्रीय सरकार की स्थापना करें, किन्तु उनकी यह इच्छा धोखेबाजी के अलावा और क्या थी। सरकार की नीति पर रोशनी डालते हुए नवाबजादा लियाकतअली खां कह चुके थे कि सरकार की नीति दलों के बीच फूट बनाये रखना ही है। बजट को सिर्फ पहली ही बार नामंजूर नहीं किया गया था। परन्तु भारत-सरकार प्रतिनिधित्वपूर्ण शासन-प्रणाली के इस तथ्य में विश्वास थोड़े ही करती

थी कि "शिकायतें रफा करने से पहले आर्थिक मंजूरी न दी जाय" बल्कि वह तो यही मानती थी कि "आर्थिक मंजूरी आदि शिकायतें अभी रफा न होंगी ।"

बजट की नामंजूरी में उल्लेखनीय कुछ भी न था, गोकि ऐसा न होना खेदजनक बात होती। एक उल्लेखनीय बात यह थी कि मि० जिन्ना न तो असेम्बली में आये ही थे और न उन्हों ने भाषण या वोट ही दिया था ।

इस प्रकार असेम्बली का यह अधिवेशन प्रसन्नतापूर्वक समाप्त हुआ । कांग्रेस और लीग ने सिर्फ मिल कर दुश्मन को हो शिकस्त नहीं दी थी, बल्कि कांग्रेस की तरफ से भूलाभाई देसाई ने लीगी व स्वतंत्र सदस्यों को जो दावतें दीं और नवाबजादा ने कांग्रेसियों व स्वतंत्र सदस्यों को जो दावतें दीं उनमें भी मेल-मिलाप के दृश्य दिखाई दिये । साथीपन की यह भावना बढ़ना अच्छा ही था, क्योंकि सद्‌भावना के बढ़ने से विभिन्न दलों के मनमुटाव दूर होने का रास्ता खुल सकता था । श्रीमती सरोजिनी नायडू ने इस मेल-मिलाप में आगे बढ़ कर भाग लिया । भारतीय राजनीति में वे सदा ही शांतिदूत रही हैं ।

बजट ने भारत को एक जरूरी नैतिक सबक दिया । अदरक तथा तमाखू और सुपारी के करों में वृद्धि से सरकार के खिलाफ कुछ कम नाराजगी नहीं फैली थी । परन्तु जब रेल-किराये में २५ प्रतिशत की वृद्धि की गयी--गोकि उससे प्राप्त होनेवाली १० करोड़ की आय युद्ध के बाद तीसरे दर्जे के मुसाफिरों की हालत में सुधार के लिए अलग जमा कर दी गयी--तो सभी तरफ से इस प्रस्ताव का जोरदार विरोध हुआ और अन्त में सरकार ने उसे वापस ले लिया ।

चाहे राज्य हो या परिवार उनके प्रबन्धकों में बहुतों दिन से यह तरीका चला आया है कि जब मौजूदा अधिकारों और सुविधाओं में विस्तार की मांग बढ़ जाती है तो एक नयी शिकायत पैदा हो जाती है । इस सम्बन्ध में एक दिलचस्प कहानी दी जाती है। एक यहूदी के १० बच्चे थे और उसकी परेशानी यह थी कि अपने छोटे-से घर में वह उन सबको कैसे रखे । एक मित्र से अपनी परेशानी कहने पर उस मित्र ने उसे सलाह दी कि कुछ मेहमान रख लो । यहूदी पहले तो चकराया, पर मित्र के कहने पर उस ने यह सलाह मान ली और मेहमानों के रखने पर उसकी परेशानी और बढ़ गयी, जैसा कि होना था। तब मित्र ने घर के भीतर पशु भी घुसा लेने का अनुरोध किया। बेचारे यहूदी ने यह भी किया । अब हालत और भी बदतर हुई । तब मित्र ने घर के भीतर कुछ सामान भर लेने को कहा । यहूदी ने बड़बड़ाते हुए सामान भी उसी घर में भर लिया और साथ ही उसके कष्ट भी बढ़ गये । अब की बार उसी मित्र ने उसे सामान निकाल बाहर करने की सलाह दी । इससे कुछ आराम मिला । तब उसे पशु बाहर करने को कहा गया । परिस्थिति में और भी सुधार हुआ । अंत में उससे मेहमानों को विदा करने को कहा गया । अब हालत उसे काफी अच्छी मालूम हुई और जिस मकान में रहना उसके लिए कठिन हो रहा था उसी में उसकी गुजर-बसर मजे में होने लगी ।

इसी तरह सरकार पुरानी शिकायतें रफा करने के बजाय नयी शिकायतें पैदा कर देती है और फिर आन्दोलन करने पर इन नयी शिकायतों को दूर करके मूल मांग से जनता का ध्यान हटाने में सफल हो जाती है ।

वेवल की प्रतीक्षा

वाइसराय के भाषण पर अनेक व्यक्तियों ने अपने मत दिये । केन्द्रीय धारासभाओं के समक्ष लार्ड वेवल का भाषण हुए एक पखवारा बीत चुका था, पर अभी देश को उसके सम्बन्ध में

मि० जिन्ना की प्रतिक्रिया का कुछ पता नहीं चला था। अपनी आदत के मुताबिक मि० जिन्ना कहीं एक महीने बाद वाइसराय या भारतमंत्री के भाषण पर मत प्रकट किया करते हैं। परन्तु 'न्यूज़ क्रानिकल' के दिल्ली के प्रतिनिधि के मि० जिन्ना से मुलाकात करने की वजह से इस बार लोगों को अधिक प्रतीक्षा न करनी पड़ी। यह मुलाकात २६ फरवरी को हुई और उसमें मि० जिन्ना स्पष्ट और जोरदार शब्दों में बोले। मि० जिन्ना के पिछले वक्तव्यों और मुलाकातों के बावजूद पाकिस्तान-योजना पर अभी तक अस्पष्टता और रहस्य का पर्दा पड़ा हुआ था, किन्तु इस मुलाकात में यह पर्दा हट गया। मि० जिन्ना ने अपनी मुलाकात में कहा कि पाकिस्तान दिये जाने के तीन महीने बाद कांग्रेस की शेखी जाती रहेगी। किन्तु पाकिस्तान की कल्पना स्पष्ट होने, उसकी लम्बाई और चौड़ाई प्रकट होने, उसकी जनसंख्या और क्षेत्रफल जाहिर होने, उसकी स्थापना करने और उसे कायम रखनेवाली शक्ति पर कुछ प्रकाश पड़ने से पहले ही खुद मि० जिन्ना की शेखी का खात्मा हो गया।

मि० एम० ए० जिन्ना ने देश की राजनीतिक अवस्था पर विचार प्रकट करते हुए 'न्यूज़ क्रानिकल' लंदन के प्रतिनिधि को जो वक्तव्य दिया, वह इस प्रकार है:--

मि० जिन्ना ने कहा--"सरकार वर्तमान परिस्थिति से संतुष्ट जान पड़ती है और वह कोई कदम नहीं उठाना चाहती। कांग्रेस गैर-कानूनी घोषित कर दी गयी है और उसने अपनी तरफ से किसी हृदय-परिवर्तन का परिचय नहीं दिया है।"

प्रश्न— 'सरकार कांग्रेस से बातचीत क्यों नहीं शुरू करता? या वह श्री राजगोपालाचार्य-जैसे किसी व्यक्ति को, जिसने आपकी पाकिस्तान की मांग के सिद्धांत को--हिन्दू और मुसलमानों के दो पृथक् राज्यों को मान लिया है, गांधीजी से मिलकर उन्हें अपने मत में परिवर्तन करने के लिए राजी करने का मौका क्यों नहीं देती?"

मि० जिन्ना--"इसका मतलब यह हुआ कि जब तक गांधीजी को राजी नहीं किया जाता तबतक सरकार हमारी उचित मांग को स्वीकार न करेगी। यह तर्क हम नहीं मान सकते। जहां तक सरकार का सम्बन्ध है, मैं नहीं कह सकता कि उसकी नीति क्या है; किन्तु यदि सरकार आपके सुझाव को मान ले तो इसका मतलब यह होगा कि जीत कांग्रेस की हुई है और सरकार कांग्रेस के बिना आगे नहीं बढ़ सकती।"

प्रश्न--"किया क्या जाय?"

मि० जिन्ना--"यदि ब्रिटिश सरकार सच्चे हृदय से भारत में शान्ति स्थापित करने को उत्सुक है तो उसे भारत को दो स्वाधीन राष्ट्रों में बांट देना चाहिए--पाकिस्तान मुसलमानों के लिए, जिसमें देश का एक चौथाई भाग शरीक होगा, और हिन्दुस्तान हिन्दुओं के लिए जिसमें समस्त भारत का तीन-चौथाई भाग होगा।"

प्रश्न--"परन्तु भारत को दो देशों में बांटकर कमजोर बनाना या शत्रु के आक्रमण का शिकार बना देना कभी वाञ्छनीय नहीं हो सकता।"

मि० जिन्ना—"मैं नहीं मानता कि भारत को जबर्दस्ती एक रखकर उसे अधिक सुरक्षित बनाया जा सकता है। सच तो यह है कि इस हालत में उस पर आक्रमण का खतरा ज्यादा होगा, क्योंकि हिन्दू और मुसलमानों में कभी सद्भावना नहीं हो सकती। हिन्दू और मुसलमानों के लिए एक ही देश में रहना या शासन संघ में सहयोग करना असम्भव है। न्यूफाउन्डलैंड को पूर्ण स्वाधीनता प्रदान करने का वचन दिया गया है। यदि छोटा-सा न्यूफाउण्डलैंड उसी महाद्वीप

में अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाये रख सकता है, जिसमें कनाडा है, तो पाकिस्तान भी अकेला रहकर अपनी उन्नति कर सकेगा, क्योंकि उसकी जनसंख्या ७ करोड़ से ८ करोड़ तक यानी ब्रिटेन से दुगनी होगी। रूस में १६ स्वाधीन राज्य कायम किये गये हैं, किन्तु इससे रूस अपने को कमजोर नहीं मानता। ब्रिटेन वर्षों से हिन्दुस्तान को एक राष्ट्र का रूप देने के लिए प्रयत्नशील रहा है, किन्तु उसे असफलता ही मिली है। अब उसे भारत में दो राष्ट्रों का अस्तित्व मान लेना चाहिए।"

प्रश्न—"पर आप जानते हैं कि कांग्रेस और हिन्दू इसे कभी न मानेंगे। यदि सरकार इस प्रकार की कोई योजना अमल में लाती है तो हिन्दू और कांग्रेस सत्याग्रह शुरू कर देते हैं और तब हिंसा और गृहयुद्ध की सम्भावना उत्पन्न हो जाती है।"

मि० जिन्ना—"नहीं, ऐसा कुछ नहीं होगा। यदि ब्रिटिश सरकार पाकिस्तान और हिन्दुस्तान अलग-अलग कायम कर दे तो कांग्रेस और हिन्दू उसे तीन महीने के भीतर स्वीकार कर लेंगे। दूसरे लफ्जों में सरकार चाहे तो कांग्रेस की शेखी कुछ ही समय में भुला सकती है। सच तो यह है कि मुस्लिम बहुमतवाले पांच प्रान्तों में पाकिस्तान के सिद्धान्त के अनुसार पहले ही कार्य हो रहा है। इसके मुस्लिम लीगी मंत्रिमंडलों में हिन्दू मंत्री भी कार्य कर रहे हैं। पाकिस्तान से सभी का लाभ है। निश्चय ही हिन्दुओं को इसमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए, क्योंकि तीन-चौथाई भारत पर उनका अधिकार रहेगा। उनका देश भूमि और जनसंख्या के विचार से रूस और चीन को छोड़ संसार में सबसे विशाल होगा।"

प्रश्न—परन्तु गृहयुद्ध छिड़ने में कोई कसर न रहेगी। आप एक भारतीय अल्सटर को जन्म देंगे, जिस पर हिन्दू अखंड भारत का नारा उठाकर आक्रमण कर सकते हैं।"

मि० जिन्ना—"इससे मैं सहमत नहीं हूँ। परन्तु नये विधान के अंतर्गत एक परिवर्तनकाल भी होगा। और इस काल में, जहाँ तक सशस्त्र सेना और विदेशी सम्बन्धों का ताल्लुक है, ब्रिटिश सत्ता सर्वोपरि रहेगी। परिवर्तन-काल की लम्बाई इस बात पर निर्भर रहेगी कि दोनों राष्ट्र ब्रिटेन के साथ अपने सम्बन्ध तय करने में कितना समय लगाते हैं। अन्त में दोनों भारतीय राष्ट्र ब्रिटेन से उसी प्रकार संधि करेंगे, जिस प्रकार मिस्र ने स्वाधीनताप्राप्त करते समय की थी।"

प्रश्न—"यदि उस समय ब्रिटेन ने तर्क उपस्थित किया कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान पड़ोसियों के रूप में नहीं रह सकते और भारत से अपना अधिकार न हटाया तब क्या होगा?"

मि० जिन्ना—"यह हो सकता है, पर इसकी सम्भावना नहीं जान पड़ती। यदि ऐसा हुआ भी तो हमें वह आंतरिक स्वाधीनता मिली होगी, जिससे आजकल हम वंचित हैं। एक पृथक् राष्ट्र और स्वाधीन उपनिवेश के रूप में हम ब्रिटिश सरकार से समझौता करने की उत्तम स्थिति में रहेंगे जो कम-से-कम वर्तमान गतिरोध से तो अच्छी ही होगी।"

प्रश्न—"जब ब्रिटेन यह कहता है कि वह भारत को जल्दी-से-जल्दी स्वाधीनता देना चाहता है तो क्या आप उस पर विश्वास करते हैं?"

मि० जिन्ना—"मैं ब्रिटेन की नेकनीयती पर उस वक्त यकीन करूंगा जब वह भारत का बंटवारा करके हिन्दू और मुसलमान दोनों को आजादी देगा। १८५८ में जान ब्राइट ने कहा था—इंग्लैंड कब तक हिन्दुस्तान पर हकूमत करना चाहता है? क्या साधारण बुद्धि रखनेवाला कोई व्यक्ति विश्वास कर सकता है कि भारत-जैसा विशाल देश, जिसमें बीस विभिन्न राष्ट्र और बीसियों विभिन्न भाषाएं हैं, कभी एक, अखंड साम्राज्य के रूप में रह सकता है?"

प्रश्न--"क्या आप दिल्ली में वाइसराय से मिलेंगे ?"

मि० जिन्ना'--'यदि वाइसराय मुझसे मिलना चाहेंगे तो मैं उनसे बड़ी प्रसन्नतापूर्वक मिलूंगा। किन्तु अभी जो कुछ कह चुका हूँ उससे अधिक मैं और कुछ नहीं कर सकता।'

मि० जिन्ना से जो प्रश्न किये गये थे वे ऐसे थे कि उनका वही उत्तर दिया जा सकता था, जो मि० जिन्ना ने वास्तव में दिया था। ये उत्तर निश्चित और स्पष्ट थे, जबकि मि० जिन्ना के पिछले कथन अस्पष्ट व अनिश्चित हुआ करते थे। १७ फरवरी, १९४४ को मि० जिन्ना ने मांग की थी कि अंग्रेजों को भारत का बँटवारा करके चले जाना चाहिए और लार्ड वेवल का भाषण एक प्रकार से मि० जिन्ना की उस मांग का जवाब था। लार्ड वेवल ने अपने इस भाषण में "भौगोलिक एकता" कायम रखने का अनुरोध किया था। मि० जिन्ना ने 'न्यूज़ क्रानिकल' के प्रतिनिधि को जो वक्तव्य दिया उसमें उन्होंने अपना विचार बदलकर यह कर दिया कि "देश का बँटवारा करके यहीं बने रहो।" यह नारा लीग के स्वाधीनता के ध्येय की सबसे बड़ी आलोचना है। जरूरत पड़ने पर अंग्रेज भारत में ही रह जायंगे और हिन्दुस्तान से पाकिस्तान की रक्षा करेंगे। मि० जिन्ना को यह भी विश्वास था कि यदि पाकिस्तान की स्थापना की गयी तो कांग्रेस और हिन्दू न तो सत्याग्रह करेंगे और न गृहयुद्ध ही छेड़ेंगे। मि० जिन्ना का मतलब दूसरे शब्दों में यही था कि अल्पसंख्यक बहुसंख्यकों को जबर्दस्ती अपनी बात मानने के लिए विवश करेंगे। परन्तु चलिये हम स्थिति को उलट दें। लीग अंतर्कालीन सरकार पर इसलिए आपत्ति कर रही थी कि उसमें शासन-संघ की झलक थी, पर कांग्रेस अंतर्कालीन सरकार स्थापित किये जाने के पक्ष में थी। एक क्षण के लिये मान लीजिये कि कांग्रेस कहती कि "राष्ट्रीय सरकार की स्थापना करो, मुस्लिम लीग उसे मान लेगी और इस तरह लीग की शेखी खत्म हो जायगी" तो क्या यह लीग और उसके नेता को अच्छा लगता ? कम-से-कम इस अवस्था में एक यह लाभ तो था कि अल्पसंख्यक समुदाय-द्वारा बहुसंख्यक समुदाय को विवश करने की स्थिति तो उत्पन्न न होती। दबाव डालने की अवस्था में एक तो दबाव डालता है और दूसरा दबाया जाता है। दोनों ही दलों को हानि उठानी पड़ती है, किन्तु लाभ तीसरे दल को होता है, जो दोनों मूर्ख दलों को लड़ते हुए देखता हुआ अलग खड़ा रहता है। जबकि एक मछली दूसरी से तालाब में उलझती रहती है, चील नीले आकाश में उड़ती हुई शिकार के लिए घात लगा लेती है। इसी प्रकार दो बिल्लियों का झगड़ा चुकानेवाले बंदर का लाभ होता है। मि० जिन्ना की योजना यह थी कि बहुसंख्यक समुदाय को दबाया जाय और अंग्रेज पहले देश का बँटवारा करें और फिर उस बँटवारे को कायम रखने के लिए यहीं बने रहें। इस घटना का पाठक के मन पर नाटकीय प्रभाव पड़ता है और उसमें स्वाभाविकता का अभाव दिखायी देता है।

यह आश्चर्यजनक तथा अप्रत्याशित करतब दिखाने के बाद क्या लोगों के लिए यह कहना अनुचित था कि मि० जिन्ना भारत में अंग्रेजों के इशारे पर चल रहे हैं और लीग ब्रिटेन की दोस्ती का पार्ट अदा कर रही है। यदि लीग ने एकता की जगह बँटवारे को पसंद किया तो इसके समर्थन में कुछ कह सकने की गुंजाइश है, किन्तु जब उसने स्वाधीनता और स्वतंत्रता की तुलना में पराधीनता और दासत्व को पसंद किया--गोकि लीग का ध्येय स्वाधीनता घोषित किया जा चुका है--तो कांग्रेस के विरुद्ध यह शिकायत करने का कुछ भी आधार नहीं रह जाता कि उसका बम्बईवाला प्रस्ताव लीग के विरुद्ध था। जबकि ब्रिटेन भारत को पृथक् होने के अधिकार के साथ स्वाधीन औपनिवेशिक पद दे रहा था तो एक साम्प्रदायिक संगठन ब्रिटेन से भारत में अनिश्चित काल तक रहने

का अनुरोध कर रहा था। इसे हिन्दुस्तान या पाकिस्तान कुछ भी क्यों न कहा जाय—यह तो सचमुच इंगलिस्तान ही था।

कांग्रेस ने सर स्टेफर्ड क्रिप्स के आगमन के समय दिल्ली में एक प्रस्ताव पास करके अपना यह निश्चय जाहिर किया था कि "वह किसी प्रदेश की जनता को उसकी मर्जी के खिलाफ भारतीय संघ में सम्मिलित करने की स्थिति की कल्पना नहीं कर सकती।" परन्तु मि० जिन्ना इससे संतुष्ट नहीं हुए। इस स्थिति की तुलना फिलिस्तीन की वेलिंग वाली घटना से की जा सकती है। उसमें न तो यहूदी अरबों को अप्रत्यक्ष स्वीकृति को मानते थे और न अरब ही खुले शब्दों में स्वीकृति देते थे। इसी तरह न तो मुस्लिम लीग ही कांग्रेस-द्वारा सिद्धांत की अप्रत्यक्ष स्वीकृति को मानने को तैयार हुई और न कांग्रेस ने ही साफ लफ्जों में स्वीकृति प्रदान की।

अंग्रेजों ने यह अनुभव नहीं किया कि लेबनान के १९४४ वाले दंगों के ही समान भारत में १९४२ के उपद्रवों की जिम्मेदारी लादने की अपेक्षा राजनीतिक अड़ंगे को दूर करना कहीं अधिक महत्वपूर्ण था। कांग्रेस या कांग्रेसजनों से बम्बई के प्रस्ताव को वापस लेने की जो मांग बार-बार की जा रही थी उससे तो यही जाहिर होता था कि ब्रिटेन में राजनीतिक समस्या को हल करने की तुलना में इसी पर ज्यादा जोर दिया जा रहा था। एक के बाद एक घटनाएं होती चली जा रही थीं और परिस्थिति में भी परिवर्तन हो चला था, किन्तु सरकार ने ऐसा कोई कदम नहीं उठाया, जिससे राजनीतिक वार्ता का रास्ता साफ होता। अगस्त, १९४० में अल्पसंख्यकों से समझौते की बात उठायी गयी। फिर क्रिप्स-योजना आयी। अंत में बम्बई का प्रस्ताव वापस लेने, पिछले कार्यों के लिए खेद प्रकट करने और भविष्य के लिए वचन देने की शर्तें पेश की गयीं। इतना ही नहीं, कांग्रेसजनों-द्वारा बम्बईवाले प्रस्ताव की निंदा, कांग्रेस-द्वारा संयुक्त रूप से युद्ध-प्रयत्न में सहयोग और नया विधान बनने तक वाइसराय की शासन-परिषद् कायम रखने की बातें हमारे सामने आईं। वास्तव में जब कभी भी राजनीतिक गुत्थी को सुलझाने का कोई रास्ता निकलता था तभी सरकार कोई-न-कोई नयी समस्या खड़ी कर देती। सरकार की यह प्रवृत्ति आखिर में इस हद तक पहुंची कि सर रेजिनाल्ड मैक्सवेल ने राजनीतिक अड़ंगे के अस्तित्व से ही इन्कार कर दिया।

अब भारत-सरकार खुलकर मनमानी करने लगी। उसकी तरफ से कहा जाने लगा कि निन्दा के प्रस्तावों से कुछ भी लाभ नहीं है, बल्कि इनके कारण तो सरकार की ग़ैर-जिम्मेदारी में वृद्धि ही होगी। अधिक खेदजनक नज़ारा तो शासन-परिषद् के भारतीय सदस्यों की वे करतूतें थीं, जिनके द्वारा वे खुद अपने अंग्रेज सहयोगियों के काम काटने लगे। यदि सर रामस्वामी मुदालियर शासन-परिषद् में अपनी दुबारा नियुक्ति की चर्चा न करते तो कांग्रेस पर कीचड़ उछालने के उनके प्रयत्न इतने दयनीय न होते। आपने कहा—"पांच वर्ष तक शासन-परिषद् का सदस्य रहने के बाद यदि कोई व्यक्ति अपने पद के दूसरे कार्यकाल को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करे तो इसे असाधारण बात ही कही जायगी—इसलिए नहीं कि पिछले पांच वर्ष में उसे बहुत कुछ बुरा-भला सुनना पड़ा है, बल्कि इसलिए कि अगर वह ईमानदारी से काम करता रहा है तो उसे इस काल में चिंताओं और परेशानियों का असह्य भार उठाना पड़ता होगा। यही कठिनाई थी। क्या शासन-परिषद् के भारतीय सदस्य यह अनुभव नहीं करते थे कि राष्ट्र को स्वाधीनता से वंचित रखना, उसे एक ऐसे युद्ध में ढकेल देना जो उसका अपना नहीं था, राष्ट्रीय सरकार की स्थापना की अनुमति न देना और जले पर नमक छिड़कने के समान जाति, धर्म और राजनीतिक पद को राजनीतिक

प्रगति की बाधाएं बताना साम्राज्यवाद की वही पुरानी चालें न थीं, जिन्हें हम लार्ड डरहम से लार्ड वेवल तक देखते आ रहे हैं? वेवल और लिनालिथगो, एमरी और जेटलैंड, चर्चिल और चेम्बरलेन तो साम्राज्यवाद की मशीन को चलानेवाले थे ही, पर उस मशीन के पहिये पर बैठी एक मक्खी यदि सोचे कि वही मशीन को चलाती है तो क्या इसे उचित कहा जा सकता है? सर रामस्वामी मुदालियर ने ही तो कहा था कि राष्ट्रीय सरकार की स्थापना अगले २५ वर्ष तक न होनी चाहिए।

वार्षिक बजट में कमी के कई प्रस्ताव पास हो गये। कांग्रेस के एक प्रस्ताव के अनुसार वाइसराय की शासन-परिषद् का ही खर्च नामंजूर कर दिया गया। इतना ही नहीं, अर्थ विभाग के लिए जो रकम मांगी गई थी उसे भी मंजूर करने से इन्कार कर दिया गया। यह कारवाई उस हालत में हुई जब कि कांग्रेस के कुल ४६ सदस्यों में से सभा में सिर्फ १६ ही उपस्थित थे। बजट-अधिवेशन में ही जब सरकार के विरुद्ध निंदा के सात प्रस्ताव पास हो गये तो सरकार खुल कर निरंकुशता के क्षेत्र में उतर आई। अर्थ-सदस्य सर जर्मी रेजमेन ने कहा कि सरकार जानती है कि सभा का बहुमत उस के पक्ष में नहीं है। सर जर्मी के शब्द ये थे :—

"सभा में बहुमत न होना सरकार के लिए कोई नयी बात नहीं है। यदि लोग राजनीतिक उद्देश्यों से प्रेरित होकर कार्य करते हैं तो प्रत्येक दिन तो क्या प्रत्येक घण्टे वोट लिये जाने का मनहूस दृश्य दिखायी दे सकता है।

"इससे सरकार या विरोधी पक्ष में जिम्मेदारी की भावना आती है या नहीं—इसका निर्णय मैं सदस्यों पर छोड़ता हूं। यदि सरकार को हराने का कोई भी अवसर आता है तो उससे लाभ उठाने की सम्भावना ही अधिक रहती है। परिणाम यह होता है कि सभी तरफ गैर-जिम्मेदारी ही फैल जाती है।"

इसी बीच कांग्रेस और लीग में सद्भावना अप्रत्याशित रूप से बढ़ने लगी। समाचार-पत्रों ने इस भावना को और भी बढ़ाया और सभी तरफ आशा बढ़ती हुई दिखायी देने लगी। भूलाभाई देसाई ने जो पार्टी दी थी उसमें वे खुद, सरोजिनीदेवी, नवाबजादा लियाकतअली खां और सर यामीन खां के साथ एक ही मेज पर बैठे थे। अखबारों में तो यहां तक छप गया था कि दोनों दलों में कितनी ही महत्वपूर्ण बातों के सम्बन्ध में समझौता हो गया है। उधर वाइसराय ने ६१ दिनों में भारत के ग्यारहों प्रांतों का दौरा कर लिया था। इस दौरे का मुख्य उद्देश्य खाद्य-स्थिति का अध्ययन करना और साथ ही देश के विभिन्न भागों में सैनिक स्थिति को देखना भी था। इस दौरे में लार्ड वेवल ने राजनीतिक समस्या पर न तो कुछ कहा और न मद्रास में श्री राजगोपालाचार्य से हुई बातचीत के अतिरिक्त किसी राजनीतिक वार्ता में ही भाग लिया।

लार्ड वेवल को भारत आये हुए छः महीने और वाइसराय के पद पर उनकी नियुक्ति की घोषणा हुए एक साल का समय बीत चुका था। उन्हें भारतीय राजनीति का अनुभव भी कम न था, क्योंकि इंग्लैंड में भारतमंत्री के कार्यालय में रहकर उन्हें साम्राज्यवाद के रहस्यों का ज्ञान पूरी तरह से हो चुका था। वहीं सर रामस्वामी मुदालियर ने वाइसराय को अपनी विज्ञता और जी-हजूरी से प्रभावित किया होगा और वहीं वे पांच साल तक फिर सदस्य बनाये जाने के हकदार हुए होंगे।

इस प्रकार लार्ड वेवल अपने कार्यकाल का दसवां हिस्सा इन छः महीनों में समाप्त कर चुके थे। देश की आर्थिक, सामाजिक, सैनिक और राजनीतिक समस्याओं का निकट से अध्ययन

करने के लिए उन्होंने कोई प्रयत्न बाकी न छोड़ा था। गोकि सैनिक क्षेत्र में ख्याति प्राप्त करने का समय नहीं रहा था, फिर भी सैनिक विषयों में लार्ड वेवल की दिलचस्पी बनी रही। अगर्चे वे फील्डमार्शल की वर्दी छोड़ने की बात कह चुके थे फिर भी दौरों के मध्य वे सैनिक मामलों में विशेष दिलचस्पी लेते थे। तुरन्त निर्णय करने और उन निर्णयों को अमल में लाने के अपने सहज गुण और संकटपूर्ण परिस्थितियों का सामना करने के लिए अपनी शासन-सम्बन्धी योग्यता का वे परिचय दे चुके थे। आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में ठीक स्थिति का पता लगाने और किये गये निश्चयों को अमल में लाने की दिशा में भी उन्हें बहुत काम करना था। वे स्वास्थ्य के सम्बन्ध में सर जोसेफ भोर की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त कर चुके थे। सड़क बनवाने व वैज्ञानिक शोध के विषय में भी समितियां नियुक्त की जा चुकी थीं। लार्ड लिनलिथगो के समय में सर जान सार्जेन्ट-द्वारा तैयार की गयी शिक्षा-योजना भी अमल में आने का इंतजार हो रहा था; परन्तु लार्ड वेवल ने शिक्षा की तुलना में सड़कों के विस्तार को तरजीह देकर अपने साम्राज्य-वादी दृष्टिकोण का परिचय दिया। राजनीतिक समस्या के विषय में वे वही साधारण बातें कहकर चुप रह गये, जिनकी चर्चा ऊपर हो चुकी है। साफ जान पड़ता था कि अभी वे आगे नहीं बढ़ना चाहते थे।

परन्तु राजनीतिक गतिरोध के सम्बंध में लार्ड वेवल का दृष्टिकोण मानने के लिए भारत, इंग्लैंड या अमरीका का लोकमत तैयार न था। हिन्दुस्तान के वयोवृद्ध राजनीतिक अपने शांति-पूर्ण जीवन को त्यागकर सोई हुई ताकतों को जगाने और कुछ न करने की नीति के खतरे से आगाह करने के लिए मैदान में आ गये थे। जिन महामाननीय शास्त्रीजी का एक-एक शब्द अंग्रेज़ों के लिए बाइबिल के सिद्धांतों के समान मान्य था और जिन्हें सी० एम० का सम्मान प्राप्त हो चुका था (जो बंगाल के गवर्नर मि० केसी को बाद में दिया गया) वे अपनी उस सहज स्पष्टता, तेजस्विता और दूरदर्शिता के साथ बोले, जिसके लिए वे यूरोप और अमरीका में एक ही जैसे प्रसिद्ध थे। उनका मकसद सिर्फ गांधीजी की रिहाई या राजनीतिक अड़ंगे को दूर करना न होकर कुछ आगे की बातों का खयाल करना था। वे युद्ध व शांति की आगामी समस्याओं का विचार कर रहे थे। वे एक ऐसे भविष्य के निर्माण की बात सोच रहे थे, जिसमें संघर्ष को समाप्त करके सद्भावना स्थापित होती थी। इसके उपरांत भारत के वयोवृद्ध मनीषी महामना पंडित मदनमोहन मालवीय ने भी गांधीजी और उनके साथियों की रिहाई की विवेकपूर्ण मांग उपस्थित की। उन्होंने अपनी मांग उस उत्तर पर आधारित की, जो सरकार-द्वारा लगाये गये आरोपों के सम्बन्ध में गांधीजी ने दिया था। श्रद्धेय पंडितजी मार्च के महीने में एक सर्वदल सम्मेलन करना चाहते थे, किन्तु बाद में निर्दल-सम्मेलन ही सर तेज बहादुर सप्रू की अध्यक्षता में ७ और ८ अप्रैल को लखनऊ में हुआ। इस सम्मेलन ने अपने प्रस्तावों-द्वारा सभी दलों का प्रतिनिधित्व करनेवाली राष्ट्रीय सरकार की स्थापना के अतिरिक्त सूबों में मिलीजुली वजारतें कायम करने, व्यवस्थापिका सभाओं का नया चुनाव करने और साम्प्रदायिक समझौता करने के लिए कांग्रेसी नेताओं की बिना किसी शर्त रिहाई का अनुरोध किया। सर तेज बहादुर सप्रू ने, जो केन्द्रीय-सरकार के कानून-सदस्य रह चुके थे और इस सम्मेलन के सभापति भी थे, संदेह प्रकट किया कि सम्मेलन को अपने उद्देश्य की प्राप्ति में शायद सफलता न मिले, क्योंकि सरकार के विचार के अनुसार सम्मेलन में भाग लेनेवाले नेताओं के अनुयायी नहीं हैं, और जिन लोगों के अनुयायी मौजूद हैं, वे जेलों में बन्द हैं।

अब महसूस किया जा सकता है कि इस समय लंदन में कितनी ही संस्थाएं--जैसे इंडिया लीग, मजदूर सम्मेलन, ट्रेड यूनियन सम्मेलन, स्वतन्त्र मजदूर-दल सम्मेलन और कामनवेल्थ ग्रुप सम्मेलन आदि—जो प्रयत्न कर रही थीं वे कितने बेकार थे। ये सब उच्च आदर्श, गहरी नेकनीयती और विशुद्ध न्याय-भावना का प्रतिनिधित्व कर रही थीं, किन्तु वे सब-की-सब ब्रिटेन के कट्टरपंथी समुदायके आगे अशक्त थीं। ब्रिटेनका कट्टरपंथी समुदाय चंद परिवारों तक सीमित है और शासन-शक्ति के साथ साम्राज्य की पूंजी, व्यवसाय और व्यापार भी उसी के हाथों में केन्द्रित है।

जब कि एक तरफ इस प्रकार की संस्थाएं अपनी आवाज शासकों के कानों तक पहुंचाने का प्रयत्न कर रही थीं,जेल के बाहर के कांग्रेसियों--विशेषकर संयुक्तप्रांत के कांग्रेसियों ने मिल कर महात्मा गांधी के नेतृत्व में विश्वास प्रकट किया और रचनात्मक कार्यक्रम को आगे बढ़ाने की आवश्यकता पर जोर दिया।

इन्हीं दिनों चीन से अमरीका जाते हुए डा० लिन-यु-तांग भारत आये। उनके आगमन में भारतीयों ने बड़ी दिलचस्पी ली, किंतु खेद यही रहा कि वे अधिक समय यहां ठहर नहीं सके।

लंदन में साम्राज्य के अन्य भागों के गुलगपाड़े के बीच भारत भी समाचारपत्रों तथा सभाओं के द्वारा ध्यान आकर्षित किये रहा।

जैसे इन सब चेतावनियों का उत्तर देने के ही लिए मि० एमरी ने १८ अप्रैल, १९४४ को पार्लामेंट में एक वक्तव्य दिया। आपने कहा—"भारत सरकार की शासन-व्यवस्था को पंगु बनाने के लिए जो सामूहिक आंदोलन किया गया था उसके लिए प्रायः निश्चय ही कांग्रेसी नेता जिम्मेदार थे।" जब मि० सोरेंसन ने पूछा कि "क्या सचमुच ही कांग्रेसियों ने इस आन्दोलन को उकसाया था" तो मि० एमरी ने कहा–"हां, बिल्कुल निश्चय ही।" इस प्रकार जबकि "प्रायः निश्चय" कुछ सेकण्डों में "बिल्कुल निश्चय" हो गया तो समझा जा सकता है कि उनके द्वारा किया गया आरोप कहां तक सत्य हो सकता है?

मि० एमरी ने बड़े अभिमानपूर्वक उड़ीसा और सीमाप्रांत में पार्लामेंटरी शासन चलाने का जिक्र किया। परन्तु सच बात तो यह थी कि उड़ीसा में ६० में से २० और सीमाप्रांत में ६७ में से २७ व्यक्ति शासन के जिम्मेदार थे। मि० एमरी का भाषण बहुत ही क्षुब्ध कर देनेवाला था। श्री पेथिक लारेंस ने (जो १९४५ में भारतमंत्री हुए) कहा कि मि० एमरी ने अपने भाषण की तीक्ष्णता का तनिक भी अनुभव नहीं किया और सिर्फ एक इसी बात से प्रकट हो गया कि वे अपने पद के कितने अनुपयुक्त हैं।

सात कांग्रेसी प्रांतों में लोकप्रिय शासन समाप्त होने के समय से ही प्रतिवर्ष अप्रैल के महीने में ब्रिटिश पार्लामेंट में ९३ धारा का शासन जारी रखने के सम्बन्ध में बहस होती रही है। भारतीय शासन के ऐक्ट की धारा ९३ सम्बन्धी बिल पर बहस होने के उपरांत ब्रिटिश साम्राज्य के विभिन्न भागों के मध्य शांति के समय एकता कायम रखने के सम्बंध में बहस हुई। इस संबंध में प्रस्ताव कामन-सभा के एक मजदूर सदस्य श्री शिनवेल ने उपस्थित किया, जिनका झुकाव बाद की घटनाओं से अनुदार दल तथा साम्राज्य बनाये रखने की तरफ प्रकट हुआ। मि० शिनवेल ने बिना किसी संकोच के १० नवम्बर, १९४२ वाली श्री चर्चिल की उस घोषणा का समर्थन किया, जिसमें साम्राज्य को बनाये रखने को बात कही गयी थी।

मि० शिनवेल ने जोरदार शब्दों में कहा कि भारत की समस्या राजनीतिक नहीं, आर्थिक है। मि० शिनवेल के कथन के औचित्य के सम्बंध में कुछ मत प्रकट किये बिना ही भारतमंत्री

जान मोर्ले के एक वैसे ही कथन की ओर ध्यान आकृष्ट किया जा सकता है कि भारत की समस्या राजनीतिक नहीं जातीय है। परंतु क्या मि० शिनवेल ने यह अनुभव नहीं किया कि राजनीतिक स्वाधीनता के बिना आर्थिक उन्नति असम्भव है। क्या उन्होंने कभी ऐसा साम्राज्य देखा है जिस का उद्देश्य उपनिवेशों में अपने तैयार माल के लिए मंडियां और कच्ची सामग्री की खोज रहा हो और साथ ही उन उपनिवेशों को आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो? चाहे विदेशी पूंजी की भरमार, बाजार में सस्ते व तैयार विदेशी माल की खपत, कच्ची सामग्री के शोषण, देश के बाहर रजिस्ट्री की हुई कम्पनियों द्वारा देश के व्यवसाय पर अधिकार जमाने और स्थानीय कानूनों और मुद्रा-सम्बन्धी नियंत्रणों से बचने की चालें हों अथवा व्यापारिक संरक्षणों के बहाने अधीन देश के व्यवसायों पर एकाधिकार स्थापित कर लेने के हथकंडे हों—वास्तविक सत्य तो यही है कि राजनीतिक प्रभुत्व ही आर्थिक पराधीनता या आर्थिक स्वतंत्रता का फैसला करता है। और मि० शिनवेल भारत की समस्या को जब राजनीतिक नहीं आर्थिक बताते हैं तो वे जानबूझ कर गलत-बयानी करते हैं। जब इंग्लैंड में सर स्टेफर्ड क्रिप्स जैसे व्यक्ति मुनाफा कमाने पर प्रतिबंध लगाने की बात कहते हैं ताकि काम की उचित अवस्थाएं हों तो भारत-जैसे देश को अपने कच्चे माल की हिफाजत करने, आयात रोकने, जकात पर नियंत्रण करने, रेलों के महसूलों की देख-रेख करने और मुद्रा व विनिमय-प्रणालियों पर नियंत्रण रखने के लिए और भी कितना स्वतंत्र होने की आवश्यकता है? ब्रिटेन इन्हीं सब जरियों से भारत में अपनी आर्थिक नीति बनाता है। मजदूर-दल के कट्टरपंथी सदस्य मि० शिनवेल ने भारत के संबन्ध में यही कहा और सच भी यही है कि परमात्मा भारत की अपने ऐसे मित्रों से रक्षा करे, यही अच्छा है।

भारतीय राजनीति के संबन्ध में कामन-सभा में एक और चर्चा हुई। इधर पार्लमेंट के कुछ सदस्यों के दिमाग पर ब्राह्मणों का भूत सवार हो गया। सर हर्बर्ट विलियम्स ने कहा कि भारत से अंग्रेजों का राज्य समाप्त हो जाने पर उस देश को संसार के सबसे कठोर—ब्राह्मणों के शासन में रहना पड़ेगा। मि० चर्चिल ने आशा प्रकट की कि युद्ध के बाद भारत स्वाधीन उपनिवेश का पद प्राप्त कर लेगा। हमें रेमजे मेकडानल्ड के वे शब्द खूब याद हैं, जो उन्होंने प्रथम गोल-मेज-परिषद् के अन्त में कहे थे, कि कुछ वर्षों में नहीं, बल्कि कुछ महीनों में साम्राज्य में एक नया स्वाधीन उपनिवेश जुड़ जायगा। सर पर्सी रिस ने आश्चर्य प्रकट किया कि जिस भारत को छटे स्वाधीन उपनिवेशों का पद प्राप्त करना है इसकी तरफ आधघण्टे की बहस में कुछ भी ध्यान न दिया गया और यदि २५ सदस्यों की परिषद में उसकी चर्चा एक बार कर भी दी गयी तो इससे लाभ ही क्या है। बहस में अनुदार दल की तरफ से सर हर्बर्ट विलियम्स ने विचार प्रकट किया, जिन्हें ब्राह्मणों के भूत ने भयभीत कर रखा था। आपने कहा कि क्रिप्स-योजना की अस्वीकृति ठीक ही हुई, क्योंकि उसकी किसी ने भी प्रशंसा नहीं की। विरोधी दल के नेता ने कहा कि अनुदार दल ने ब्रिटिश साम्राज्य के विकास को आदर्श-सम्बन्धी उच्च रूप दिया है। वह उसे सत्य और सुन्दर का प्रतीक मानता है, जब कि हमारे मत से वह लुटेरेपन का ही परिणाम है। आपने यह भी कहा कि अतीत में ब्रिटेन अपने उपनिवेशों का बुरी तरह शोषण करता रहा है पर अंत में शिनवेल, एमरी और ग्रीनवुड सभी इस एक ही परिणाम पर पहुँचे कि अंग्रेजों के व्यापार की वृद्धि ही उनकी एकमात्र नीति होनी चाहिए।

: २४ :

वेवल ने कदम उठाया

आखिर चमत्कार हुआ; लेकिन उसका एक दु:खद पहलू भी था। दूसरी परिस्थितियों में गांधीजी की रिहाई एक खुशी की घटना ही मानी जाती और कहा जाता कि ब्रिटेन के युद्ध मन्त्रि-मंडल ने एक बुद्धिमत्तापूर्ण काम किया। पर सच तो यह था कि गांधीजी की रिहाई उनकी बीमारी और आसन्न-सकट के कारण हुई। एक सप्ताह पहले उनकी तन्दुरुस्ती बिगड़ने के बारे में जो समाचार छपे उनके कारण देश भर में घबराहट फैल गयी और वाइसराय के पास रिहाई के लिए तार-पर-तार पहुंचने लगे। वेवल ने कार्रवाई की, और तुरन्त की। वाइसराय के रूप में उनकी नियुक्ति की घोषणा १६ जून को हुई थी। घोषणा के चार महीने बाद ६ अक्तूबर को वे भारत पहुंचे थे। अब इस बात को भी पूरे छः महीने बीत चुके थे और गांधीजी की रिहाई में देरी होने के कारण भारतीय जनता व ब्रिटेन और अमरीका के दूरदर्शी लोग अशान्त हो उठे थे। जब मनुष्य कुछ-न कर सका तो जैसे प्रकृति उसकी मदद के लिये आई। नये वाइसराय के कार्यकाल के छः महीने खत्म हो रहे थे कि गांधीजी १४ अप्रैल को बीमार होगये। उनके स्वास्थ्य के सम्बन्ध में जो पहला बुलेटिन निकला उसमें डरानेवाली कोई बात न थी। पर उसी दिन उनकी हालत एकाएक बिगड़ने की सूचना भी मिली। पार्लमेंट में गांधीजी के स्वास्थ्य के बारे में एक सवाल भी किया गया, जिसके जवाब में मि० एमरी ने कहा कि गांधीजी की बीमारी ऐसी संगीन नहीं है कि उन्हें फौरन रिहा किया जाय। ऐसा जान पड़ता था जैसे अधिकारी गांधीजी की हालत बिगड़ने का इन्तजार ही कर रहे थे ताकि सिंदबाद जहाजी के समान अपने कंधे पर बैठे बुड्ढे-जैसे इस अभिशाप को वे भी अपने कंधे से उतार कर फेंक सकें। इसमें कोई शक नहीं कि चर्चिल, एमरी और वेवल किसी-न-किसी तरह राजनीतिक अड़ंगे को दूर करने के लिए उत्सुक थे। पर उनकी एक भी मांग पूरी नहीं हो रही थी। दूसरे तरीकों के नाकामयाब होने पर वाइसराय के रुख में भी कुछ परिवर्तन होने लगा था और अब वे इस पर उतर आये थे कि कांग्रेसजनों को खुद ही फैसला करके व्यक्तिगत रूप से बम्बईवाले प्रस्ताव के विरुद्ध मत प्रकट करना चाहिये। परन्तु कांग्रेसजन जितना ही विचार करते थे उतना ही प्रस्ताव पर कायम रहने का उनका इरादा पक्का होता था। इतना ही नहीं, एक आर्डिनेंस के अंतर्गत कांग्रेसजनों पर कुछ आरोप लगाये गये, किन्तु उनका कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुआ। तब क्या होना चाहिये? १५ जनवरी से ६ महीने के लिए नजरबंदी के जो आदेश दिये गये थे वे समाप्त हो रहे थे और बन्दियों को आदेशों की अवधि बढ़ाये बिना जेलों में नहीं रखा जा सकता था। इस कठिनाई को हल करने के लिए प्रकृति या ईश्वर का वरद हस्त आगे बढ़ा। पहले जो बुलेटिन जल्दबाजी में प्रकाशित किया गया उसमें "चिन्ता की कोई बात नहीं" और "सब ठीक है" की ध्वनि थी। इसके बाद जो सूचना प्रकाशित हुई उसमें घबराहट थी और एकाएक आगाखां महल का फाटक खोल दिया गया। ६ मई, १६४४

के दिन गांधीजी को उनके दल के साथ आज़ाद करके पर्णकुटी पहुंचा दिया गया, जो पूना में लेडी ठाकरसी का प्रसिद्ध निवास-स्थान है। गांधीजी पहली बार १९२२ में जेल गये थे और "अपेंडिसाइटिस" के आपरेशन के बाद रिहा कर दिये गये थे। उस समय वे अपने छः वर्ष के कारावास-काल में से सिर्फ दो वर्ष ही काट पाये थे। १९३० के आंदोलन में गिरफ्तार होने के बाद २६ जनवरी, १९३१ को उन्हें रिहा किया गया था ताकि लार्ड हेलिफैक्स से समझौते की वार्ता चला सकें। ४ जून, १९३२ को उन्हें फिर गिरफ्तार किया गया। इस बार आमरण-अनशन आरम्भ करके उन्होंने इतिहास का निर्माण किया। इस अनशन के ही परिणामस्वरूप पूना का समझौता हुआ। गांधीजी ने जेल से हरिजन-आंदोलन चलाने का अपना हक पेश किया और इस समझौते को भंग किये जाने पर फिर अनशन किया। इस बार उनकी हालत ऐसी नाजुक हो गयी कि सरकार को उन्हें छोड़ना पड़ा। उस समय भी गांधीजी इसी 'पर्णकुटी' में आकर रहे थे और इस बार भी यह कुटी उनके आगमन से पवित्र हुई, और यहीं उन्होंने स्वास्थ्य-लाभ किया।

इस समय देश की जो राजनीतिक व साम्प्रदायिक हालत थी उस पर एक दृष्टि डालना असंगत न होगा। गांधीजी की बीमारी शुरू होने के ही समय यानी १३ अप्रैल को जापानी भारत की उत्तर-पूर्वी सीमा पर बढ़ आये। उधर पंजाब में मि० जिन्ना की परेशानी बढ़ रही थी। उन्होंने अप्रैल की २० तारीख को पहुंचने की धमकी दी थी और १८ तारीख को बम्बई से चल पड़े। पंजाब की इन घटनाओं की चर्चा हम एक पिछले अध्याय में कर चुके हैं।

सात मई को उत्तर-पूर्वी सीमा के निकट कोहिमा में, मध्य में पूना में और उत्तर-पश्चिम में लाहौर में क्या परिस्थिति थी? जापानियों ने कोहिमा पर अधिकार कर लिया और वे कुछ समय मित्र सेनाओं-द्वारा घिरे रहे। घटनाचक्र अप्रत्याशित दिशा में घूमने लगा। पूना में बन्दियों का सरताज तो आजाद हुआ ही, साथ ही उसे जेल में डालनेवाले भी आजाद होगये, क्योंकि राजनीतिक परिस्थिति की विषमता से अधिकारी चिन्तित थे और गांधीजी का स्वास्थ्य बिगड़ने पर वह बुरी होती दिखायी देती थी। उत्तर-पश्चिम में मि० जिन्ना ने हमला किया था, पर कम-से-कम अभी तो उनकी योजना निष्फल हो चुकी थी और वे हथियार डाल देने के लिए मजबूर होचुके थे। भारत के इतिहास की इन तीनों घटनाओं पर एक ही शीर्षक दिया जा सकता था—"आक्रमणकारी पर आक्रमण।" अप्रैल, १९४३ में गांधीजी के अनशन के बाद मि० जिन्ना ने जो-कुछ कहा था जरा उसे भी स्मरण कीजिये। अपने दिल्लीवाले भाषण में उन्होंने कहा था कि "गांधीजी के सरकार को पत्र लिखने में कोई लाभ नहीं है। इसकी बजाय यदि वे मुझे (मि० जिन्ना को) पत्र लिखें तो सरकार उसे रोकने की हिम्मत नहीं करेगी। बाद में जब गांधीजी ने मि० जिन्ना को पत्र लिखा और सरकार ने उसे रोका तो कायदे-आजम ने अपनी इस पराजय पर यह कह कर पर्दा डाला कि गांधीजी को पहले बम्बई का प्रस्ताव वापस लेना चाहिए और दूसरे पाकिस्तान का सिद्धान्त मान लेना चाहिए और यदि तब वे कोई पत्र लिखें तो ऐसे पत्रको रोकने की सरकार कोई हिम्मत न करेगी। परन्तु मि० जिन्ना में यह समझने की बुद्धि न थी जो चौथे दर्जे का बालक समझ लेता, कि यदि गांधीजी बम्बईवाले प्रस्ताव को वापस लेने को तैयार होते तो उन्हें मि० जिन्ना की सद्भावना प्राप्त करने के लिए ठहरने की जरूरत न पड़ती। लेकिन जिन्ना साहब के दिमाग का पारा तो लिनलिथगो से प्रोत्साहन प्राप्त करने के कारण इतना ऊँचा चढ़ा हुआ था कि वे लीग के सिंहासन पर बैठे हुए प्रधान मंत्रियों को आदेश दे रहे थे और एक ऐसे राजनीतिक दल से अपने सिद्धान्तों में परिवर्तन करने को कह रहे थे, जो अपनी तत्कालीन स्थिति पर

लीग के प्रभाव या उसके प्रसिद्ध अध्यक्ष के समर्थन के बिना ही पहुँच सका था। उनमें सौजन्य या शिष्टाचार की कमी इस सीमा तक पहुंच चुकी थी कि उन्होंने न तो अल्लाहबख्श की हत्या की निन्दा में एक लफ़्ज़ कहा था और न जेल में कस्तूरबा की मृत्यु पर शोक प्रकट करना ही उचित समझा था। परन्तु इन गांधीजी का क्या किया जाय, जो बम्बई-प्रस्ताव को वापस लिये या पाकिस्तान का सिद्धान्त माने बिना ब्रिटिश सरकार के उदर को फाड़कर बाहर निकल आये! अब जरा इस चित्र से इस चित्र की तुलना कीजिये। एक तरफ गांधीजी धैर्य और आस्था विनम्रता और सौजन्य, सत्य और अहिंसा के प्रतीक थे और दूसरी तरफ कायदे-आजम मिथ्या अभिमान, अहंकार, तानाशाही मनोवृत्ति, कूटनीति और दावपेंच की मूर्ति बने हुए थे। राजनीतिक गतिरोध दूर करने के लिए चर्चिल भले ही कोई रास्ता निकालने को उत्सुक हों, चाहे एमरी भी इस सम्बन्ध में चिन्तित हों, चाहे वेवल ही इसके लिए परेशान हों, किन्तु मि० जिन्ना अपनी स्थिति से एक इंच हटने या अपनी शर्तों के बाहर समस्या के निबटारे के लिए जरा उँगली हिलाने अथवा परिस्थिति में सुधार के लिए गांधीजी की रिहाई के समर्थन में एक लफ़्ज़ कहने को तैयार न थे।

अब गांधीजी की रिहाई के बारे में कुछ बातें कहने का अवसर आ गया है। जिम्मेदार अधिकारियों के काम करने के तरीके में कुछ मनुष्यता की कमी रह जाती है। अधिकार और जिम्मेदारी केन्द्रीय व प्रांतीय-सरकार के मध्य बँटी होने के कारण जहां मामूली हालत में एक-मत, एक दृष्टिकोण और अच्छे या बुरे एक ही फैसले से काम चल सकता था वहां गांधीजी के मामले में हमेशा दो की ज़रूरत पड़ा करती थी। सचमुच एक म्यान में दो तलवार पड़ी हुई थीं। ऐसी हालत में उनके एक-दूसरी से टकराने की सम्भावना हमेशा रहती थी—और वह भी ऐसी हालत में जब कि ब्रिटेन और भारत के मध्य पहले ही एक गम्भीर संघर्ष छिड़ा हुआ था।

कस्तूरबा गांधी का देहावसान २४ फरवरी, १९४४ को हुआ। यह साधारण आदमी के समझ की बात थी—नहीं, इंसानियत का तकाजा था कि ७५ साल के इस वृद्ध बंदी को उस स्थल से हटा दिया जाता, जहां उसकी साठ वर्ष की चिर-संगिनी पत्नी बा और तीस वर्ष के साथी और सेक्रेटरी महादेव की समाधियां उसकी नज़र के हमेशा सामने रहती थीं और उसके मस्तिष्क में भावना का सागर उठाया करती थीं। ऐसी विपत्तियों में पड़कर दूसरे किसी भी व्यक्ति का अन्त हो चुका होता और गांधीजी का तो और भी। गांधीजी ने इन दोनों घटनाओं को जिस दार्शनिक भवितव्यता की भावना से सहा होगा उसकी उन पर ऐसी गहरी और भीतरी प्रतिक्रिया हुई होगी कि इसका बाहर से पता लगाना प्रायः असम्भव था। साधारण गँवार जब दहाड़ मारकर रो पड़ता है तो उसके शोक का सागर रिक्त हो जाता है और फिर उसके मनुष्य के अन्तर को फोड़कर बाहर निकलने की सम्भावना नहीं रह जाती।

पारिवारिक सम्बन्ध व प्रेम की जानकारी रखनेवाला कोई भी व्यक्ति गांधीजी का तबादला वहां से अन्यत्र करा देता, जहां उनके मस्तिष्क में स्मृतियों को आने से रोकना असम्भव था। जब कस्तूरबा २४ फरवरी को मरीं तो गांधीजी का वहां से १५ मार्च को हटाया जाना कोई असम्भव बात न थी। बजाय इसके सर रेजिनाल्ड मैक्सवेल ने २८ मार्च को एक सवाल के जवाब में सिर्फ इतना ही कहा कि सरकार तबादले के बारे में सोच-विचार करेगी। ५ अप्रैल को जेलों के इंस्पेक्टर-जनरल अहमदनगर किले में आये और उन्होंने सम्भवतः गांधीजी और उनके दल को उसी इमारत में रखना तय किया होगा, जिसमें कार्य-समिति के दूसरे सदस्य थे। फिर उन्हें १० अप्रैल तक

अहमदनगर किला क्यों नहीं ले जाया गया ? इस देरी की वजह से सरकारी दफ्तरों का ढीलापन और दुहरी हकूमत थी। पर मलेरिया किसी की पर्वाह नहीं करता—यहां तक कि मैक्सवेल और ब्रिस्टोवी की भी नहीं। रोग का कीटाणु सरकारी अफसर से अधिक शक्तिशाली होता है और जो काम बड़े-से-बड़े अफसरों से नहीं हुआ वह उसने कर दिखाया।

गांधीजी की रिहाई का सभी जगह स्वागत किया गया। अमरीका में इसके बाद कांग्रेसी नेताओं के छुटकारे तथा राजनीतिक अड़ंगे को दूर करने का नया प्रयत्न होने की आशा करना भी स्वाभाविक ही था। अब हवा किस तरफ बहने लगी थी, यह इससे जाहिर है कि हिन्दुस्तान के एक अधगोरे अखबार ने लिखा कि "गांधीजी की रिहाई नैतिक व राजनीतिक दृष्टि से उचित ही थी।" एक-दूसरे अधगोरे अखबार ने सलाह दी कि गांधीजी को अब कम-से-कम कुछ समय के लिए समझौता कर लेना चाहिए। उसने यह भी कहा कि पाकिस्तान के सिद्धांत पर विचार करने के लिए गांधीजी चाहे जितने उत्सुक क्यों न हों, किन्तु वे उसे स्वीकार नहीं कर सकते, क्योंकि उन्हें अपने सम्प्रदाय का भी तो विचार करना है। उसने यह भी कहा कि गांधीजी जो भी रचनात्मक प्रयत्न करेंगे उसमें लार्ड वेवल पूरी तरह सहयोग करेंगे। सभी तरफ से राजनीतिक गतिरोध दूर करने की इच्छा प्रकट की जा रही थी और कहा जा रहा था कि यदि गांधीजी चाहें तो ऐसा कर सकते हैं। ऊपर जिन अखबारों की चर्चा की जा चुकी है उनमें से पहले 'स्टेट्समैन' ने आगे कहा —"परन्तु हमें समझौते की दीर्घकालीन सम्भावनाएं राजनीतिक क्षेत्र में अच्छी ही जान पड़ती हैं। राजनीतिक के रूप में गांधीजी की व्यवहार-बुद्धि उच्च-कोटि की है। इस दृष्टि से उन्हे जान लेना चाहिए कि उनके नेतृत्व में कांग्रेस ने अगस्त, १९४२ में युद्ध के संकटकाल में अपने ऊपर सामूहिक सत्याग्रह चलाने की जो जिम्मेदारी ली थी वह यदि नैतिक दृष्टि से अनुचित नहीं तो कम-से-कम राजनीतिक दृष्टि से दोषपूर्ण थी।" 'स्टेट्समेन' के इस कथन में यह ध्वनि निकलती है कि नैतिक दृष्टि से कांग्रेस का कदम बिल्कुल गलत न था।

इस प्रकार गांधीजीने आगाखां महल में अपने कमरे से फाटक के बाहर जो चन्द कदम रखे उससे भारतीय राजनीति का केन्द्रविन्दु एक ही झटके से वहां पहुंच गया। इससे पता चलता है कि उस समय देशकी राजनीतिक अवस्था कैसी नाजुक थी और शारीरिक दृष्टि से वजन एक मन से कुछ अधिक होने पर भी राजनीतिक तराजू के लिए वे कितने वजनदार साबित हुए। कहा जाता है कि योगी अपना वजन ४० सेर घटा या बढ़ा सकता है। हाड़, मांस और चाम का वजन तो मन, सेर और छटांक में आंका जा सकता है किन्तु उस भावना का, जो राष्ट्र को अनुप्राणित करती है, उस आस्था का, जो भारी पर्वतों को हिला देती है, वजन असीम है। अशक्त, रक्तहीन, खून के दबाव की कमी से पीड़ित, २१ महीने के कारावास के बाद छोड़े गये गांधीजी का ऐसा ही वजन था। अब वह 'पर्णकुटी' के उन्मुक्त वायुमण्डल में सांस लेने को आज़ाद थे--अब वह आगाखां महल से बाहर आ गये थे, जिसमें उन्होंने जेल के रूप में प्रवेश किया और समाधि-भवन के रूप में छोड़ा।

गांधीजी की रिहाई के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण, किन्तु मनोरंजक बात और भी है। इसका श्रेय किसे दिया जाय ? और न छोड़े जाने के परिणामस्वरूप यदि कोई दुर्घटना हो जाती तो उसके लिये कौन जिम्मेदार होता ? रिहाई के एक या दो दिन पहले मि० एमरी ने कहा था कि जेल के भीतर और बाहरवाले कांग्रेसजनों में सम्पर्क कायम करने की इजाजत वे नहीं दे सकते। रिहाई से पूर्व, इसकी सब जिम्मेदारी उन्होंने वाइसराय के कंधे पर डाल दी थी। रिहाई

से कुछ समय पूर्व वाइसराय दिल्ली में मौजूद न थे और यह भी नहीं बताया गया कि वह कहां गये हैं। उस समय शासन-परिषद् के भी सिर्फ दो ही सदस्य दिल्ली में मौजूद थे। यदि जिम्मेदारी वाइसराय की थी, जैसाकि मि० एमरी ने कहा था, तो वह सिर्फ भारतमंत्री, युद्ध-मंत्रिमंडल और प्रधानमंत्री के ही प्रति न थी, बल्कि उनकी अपनी परिषद् से भी उसका कुछ ताल्लुक था। लार्ड वेवल के पूर्वाधिकारी ने जो यह कहा था कि ९ अगस्त, १९४२ को गांधीजी की गिरफ्तारी का शासन-परिषद् के सभी सदस्यों ने समर्थन किया वह केवल अर्द्ध-सत्य था। पाठकों को सम्भवतः स्मरण होगा कि सर सी० पी० रामस्वामी अय्यर ने पद-ग्रहण करने के एक पखवारे के भीतर जो इस्तीफा दिया उसका एक कारण यह भी था कि ९ अगस्त, १९४२ को गांधीजी की गिरफ्तारी का फैसला हो जाने के कारण राजनीतिक समस्या के निबटारे के इरादे से गांधीजी से मिलने की उनकी योजना अधूरी रह गयी। यह भी बड़े गौरव के साथ घोषित किया गया था कि फरवरी, १९४३ के अनशन के समय गांधीजी को न छोड़ने का निश्चय भी परिषद् के अधिकांश भारतीय सदस्यों की रजामंदी से हुआ था और तीन अल्पमतवाले भारतीय सदस्यों को इसी प्रश्न पर इस्तीफा भी देना पड़ा था। फिर इन "प्रसिद्ध और देशभक्त" भारतीय सदस्यों की स्थिति ६ मई १९४४ के दिन गांधीजी की रिहाई के सम्बन्ध में क्या थी? वाइसराय दिल्ली से बाहर थे और उन्होंने इन "प्रसिद्ध और देशभक्त" व्यक्तियों की सलाह के बिना ही फैसला किया। अभी हाल में डा० खान ने कहा था कि वे सरकार के एक अधिकारी के रूप में नहीं, बल्कि खुद सरकार के ही नाते बोल रहे हैं। प्रश्न यह था कि रिहाई के सम्बन्ध में सरकार से सलाह ली गयी या नहीं?

अब क्या हो? गांधीजी की रिहाई के बाद भारत में ही नहीं, इंग्लैंड और अमरीका में भी यही सवाल उठाया जा रहा था। न्यूयार्क के 'ईवनिंग टाइम्स' ने साफ लफ्जों में मंजूर किया कि सेंसर की कड़ाई के कारण अमरीकावालों को गांधीजी की गिरफ्तारी के समय की असली हालत मालूम नहीं हो सकी। रिहाई सिर्फ 'डाक्टरी कारणों' से हुई है, इस बहाने को किसी ने महत्व न दिया और एक-एक करके सभी पत्रों ने यही मत प्रकट किया कि अधिकारी अवसर मिलते ही इस कटु जिम्मेदारी से मुक्त होना चाहते थे। जिस प्रकार सर ओसवाल्ड मोसले को फ्लेबिटिस के कारण मुक्त किया गया उसी प्रकार गांधीजी को मलेरिया, खून की कमी व रक्त के दबाव आदि के कारण रिहा किया गया। जो भी हो, कम-से-कम सभी इस विषय में तो एकमत थे कि कार्य-समिति के सभी सदस्यों को तुरंत रिहा किया जाय और इस तरह समझौते का एक और प्रयत्न किया जाय। जापान के विरुद्ध सर्वांगीण युद्ध चलाने के लिए सिर्फ सेना में भर्ती करना ही काफी न था। यह बात भी ध्यान देने की थी कि इस बार जापान का हमला सीमा की मुठभेड़ न होकर भारत का पूरा आक्रमण ही था। इस बार एक जापानी वायुयान-वाहक और कुछ क्रूजर तथा विध्वंसक जहाजों का काफिला दिखाई देने का सवाल न था, जैसाकि ६ अप्रैल १९४२ को हुआ था, बल्कि इस बार तो जापानी आसाम और बंगाल के हिस्सों में घुस आये थे और स्थिति पहले के मुकाबले में कहीं ज्यादा संगीन थी।

खैर, गांधीजी जिन किन्हीं भी कारणों से रिहा हुए हों, अब वे आजाद थे। अब उनकी तंदुरुस्ती सुधर चली थी—या कम-से-कम ऐसी हो गयी थी कि मामूली कामकाज कर सकें। अब उस राजनीतिक वार्ता को फिर से चलाना, जो ९ अगस्त १९४२ को एकाएक भंग कर दी गयी थी, ब्रिटिश सरकार का ही काम था। साधारण तौर पर यह भी विश्वास किया जाता था कि जिस तरह महात्मा गांधी ने गांधी-अरविन-वार्ता और समझौते से पूर्व १४ फरवरी, १९३१ को

लार्ड अरविन को पत्र लिखकर बातचीत शुरू की थी, उसी तरह इस बार भी गांधीजी वाइसराय को निजी तौर पर पत्र लिखकर उस जगह से वार्ता आरम्भ करेंगे, जहां से वह भंग हुई थी। साथ ही यह भी विश्वास किया जाता था कि लार्ड लिनलिथगो के समय जिन मतभेदों के कारण समझौता नहीं हो रहा था उनकी बाधा लार्ड वेवल के सामने नहीं उठानी चाहिए। सर स्टेफर्ड क्रिप्स के आगमन के समय एक बार भी यह नहीं कहा गया—परोक्ष रूप से भी नहीं—कि एकता के अभाव में उनकी योजना अमल में नहीं लाई जायगी। सर स्टेफर्ड क्रिप्स रूस में सफलता प्राप्त करके लौटे ही थे और वे इस बात से भी परिचित थे कि भारत की दशा उस समय जारशाही रूस के ही बहुत कुछ समान थी। सर स्टेफर्ड यह भी जानते थे कि भारत अभाव, भुखमरी, निरक्षरता तथा साम्प्रदायिकता की जिन व्याधियों से पीड़ित था, वे जारशाही रूस में भी वर्तमान थीं और जार के रहते उन्हें मिटाया नहीं जा सका।

सर स्टेफर्ड क्रिप्स ने इसीलिए प्रस्ताव किया कि युद्ध समाप्त होने पर भारत में ब्रिटेन के निरंकुश शासन का अन्त कर दिया जाय। उनकी योजना का मुख्य उद्देश्य भारत को पूर्ण स्वराज्य के साथ ही अपना विधान तैयार करने की आज़ादी देना भी था। अप्रैल के आरम्भ में भारत के राष्ट्रीय-जीवन के उन महत्वपूर्ण अंगों पर जोर नहीं दिया गया था, जिनको पहले ८ अगस्त, १९४० की घोषणा में और फिर बाद में कांग्रेस की योजना की असफलता के लिए जिम्मेदार ठहराने के उद्देश्य से महत्व प्रदान किया गया था। सर स्टेफर्ड ने अपने दिल्ली पहुँचने के एक सप्ताह बाद ३० मार्च, १९४२ को रेडियो पर भाषण करते हुए भारत की भौगोलिक एकता तथा विभाजन और संघवाद तथा केन्द्रीकरण के विभिन्न आदर्शों का ज़िक्र किया और कहा :—

"इन तथा दूसरे कितने ही सुझावों पर सोच-विचार और बहस की जा सकती है, किन्तु अपने भावी शासन के लिए उपयुक्त प्रणाली चुनने का कार्य किसी बाहरी अधिकारी का न होकर खुद भारतीय जनता का ही है।"

इसलिए स्पष्ट है कि इस परिस्थिति में न तो अंग्रेज़ों के लिए विभिन्न सम्प्रदायों के बीच पहले समझौता होने की शर्त उपस्थित करना उचित था और न मुस्लिम लीग ही ब्रिटिश-सरकार से पाकिस्तान स्थापित करने की अपील कर सकती थी। इतना ही नहीं, मुसलमानों में सिर्फ मुस्लिम लीग ही प्रतिनिधित्व प्राप्त करने का दावा नहीं कर सकती थी, क्योंकि नेशनल मुस्लिम कान्फ्रेंस, खाकसार, जमीयतुल उलेमा, अहरार और मोमिन एक स्वर से पाकिस्तान के विरोधी थे। अब ब्रिटिश सरकार के पास पिछले २१ महीनों के इतिहास को भुलाकर राजनीतिक समस्या पर गम्भीरतापूर्वक विचार न करने का और कोई बहाना न था। जहां तक गांधीजी का सम्बन्ध था, उनके रुख का अंदाज ९ अगस्त १९४२ से पहले की उनकी मनोवृत्ति से लगाया जा सकता है। यदि वे और उनके साथी गिरफ्तार न कर लिये जाते तो निश्चय ही वे वाइसराय को पत्र लिखते। परन्तु गिरफ्तार हो जाने के कारण वे ऐसा न कर सके। इस तरह ६ मई, १९४४ को उन्होंने अपने को एक ऐसी लड़ाई के सेनापति की स्थिति में पाया, जो कभी शुरू ही नहीं हुई। अब रक्त और आँसुओं से सने इन इक्कीस महीनों का कोई अस्तित्व ही न था और गांधीजी वाइसराय के आगे अपने विचार बिना किसी बाधा के जाहिर कर सकते थे। मि० एमरी ने रिहाई के स्वास्थ्य-सम्बन्धी कारणों पर कामन-सभा में जो इतना जोर दिया था उससे गांधीजी की आजादी में कोई बाधा नहीं पड़ सकती थी। सच्ची बात तो यह थी कि गांधीजी की रिहाई उनकी शारीरिक

अवस्था के कारण नहीं, बल्कि भारत की बदली हुई परिस्थिति की वजह से हुई थी और लार्ड हैलिफेक्स ने भी यही मत प्रकट किया था। लार्ड हैलिफेक्स तक के मुंह से कभी-कभी सच बात निकल पड़ती है, गोकि कभी-कभी वे सत्य पर पर्दा डालते हैं, जैसे कि उन्होंने एक बार कहा कि अंदरूनी झगड़ों के कारण भारत व फिलिस्तीन-जैसे मुल्कों को आत्म-निर्णय का अधिकार नहीं हो सकता। हिन्दुस्तान की हालत में जो तब्दीली आ गयी थी वह तो इतनी साफ थी कि उसे बताने के लिए लार्ड हैलिफेक्स के कुछ कहने की जरूरत न थी। यह बदली हुई परिस्थिति ही तो थी, जिसमें जापानी, जिन्हें भारत की उत्तर-पूर्वी सीमा से एक सप्ताह में निकाल दिया जाना चाहिए था, दो महीने तक बने रहे। इस बदली हुई परिस्थिति में वाइसराय से कुछ कहने का गांधीजी का अधिकार था—उनका कर्तव्य था। अपने आदर्श लार्ड एलेनबी की तरह लार्ड वेवल अपने मन में सोच सकते थे—"जिन्दगी में मुझे इससे अधिक कठिन परिस्थिति का सामना नहीं करन पड़ा। कभी-कभी मैं असम्भव स्थिति में पड़ जाता हूं और फिर मुझे उससे जल्दी-से-जल्दी निकलना पड़ता है।" सचमुच ब्रिटिश-सरकार लार्ड एलेनबी को जो आदेश देती थी उनको अमल में लाना असम्भव होता था। पहली कठिनाई तो यह थी कि मिस्र एक संरक्षित राज्य था, जब कि भारत अधीन राज्य है। यदि एक तरफ लार्ड एलेनबी को इंग्लैंड में अनिच्छुक ब्रिटिश मंत्रियों से और काहिरा में एक कट्टरपंथी शासक से मिस्र के लिए स्वाधीनता और वैध शासन प्राप्त करने के लिए झगड़ना पड़ता था, तो दूसरी तरफ लार्ड वेवल को एमरी और चर्चिल-जैसे अनिच्छुक मंत्रियों से सुलझना पड़ा था। जहां लार्ड एलेनबी को अपनी मांगें पूरी कराने के लिए इस्तीफा देना पड़ा वहां लार्ड वेवल का काम कुछ आसानी से हो गया। ऐसी परिस्थितियों में यदि लोग यह खयाल करने लगें कि सिर्फ गांधीजी की रिहाई काफी नहीं है और इसके बाद कांग्रेसी नेताओं की रिहाई और राजनीतिक वार्ता की शुरूआत होनी चाहिए तो आश्चर्य ही क्या है ? परन्तु दूसरी तरफ से ये विचार प्रकट किए गये—"गांधीजी के सामने अन्दरूनी झगड़ों को मिटाने और जहां मुमकिन हो वहां युद्धकालीन सरकारों को जनमत के अधिक पास ले जाने का बेमिसाल मौका पैदा हुआ है। आशा की जाती है कि गांधीजी सिर्फ तन्दुरुस्ती की नियामत ही हासिल नहीं करेंगे बल्कि देश के सर्वोत्तम हितों को भी आगे बढ़ावेंगे।" 'टाइम्स आफ इण्डिया' के इन विचारों का 'स्टेट्समैन' ने अधिक उत्साह से समर्थन किया। उसी 'स्टेट्समैन' ने जो पिछले २१ महीनों से कांग्रेस की नीति की कटु आलोचना कर रहा था।

'स्टेट्समैन' ने कहा कि, "इससे सिर्फ भारत के करोड़ों प्राणियों को ही खुशी न होगी, बल्कि मौजूदा हालत में नैतिक व राजनीतिक दृष्टि से यही ठीक भी है। सरकार की कार्रवाई शुरू में दूसरे कांग्रेसजनों की रिहाई के ही समान है और अभी राजनीतिक आधार न होने पर भी इस क्षेत्र में आगे जाकर इसकी सम्भावनाएं बहुत अधिक हैं। राजनीतिज्ञ के रूप में गांधीजी की व्यावहारिक बुद्धि उच्च कोटि की है। इस दृष्टि से उन्हें जान लेना चाहिए कि उनके नेतृत्व में कांग्रेस ने अगस्त, १९४२ में युद्ध के संकटकाल में अपने ऊपर सामूहिक सत्याग्रह चलाने की जो जिम्मेदारी ली थी वह यदि नैतिक दृष्टि से अनुचित नहीं तो कम-से-कम राजनीतिक दृष्टि से दोषपूर्ण थी। लार्ड वेवल की तरह गांधीजी का व्यक्तित्व एक से अधिक बार इतना ऊंचा अवश्य उठ गया है कि उन्होंने सार्वजनिक रूप से अपनी गलतियों को मान लिया है।"

गांधीजी की रिहाई के बाद गतिरोध दूर करने के लिए ठोस कार्रवाई करने के लिए ब्रिटिश व अमरीकी लोकमत की आवाज अधिक स्पष्ट थी। वहां के अखबारों व सार्वजनिक

व्यक्तियों ने एकस्वर से नीति के परिवर्तन पर जोर दिया।

इस समय समाचार-पत्रों में जो होहल्ला मचा हुआ था उसके बीच लंदन के 'टाइम्स' ने, जो पिछले २१ महीनों में कभी सहानुभूति, कभी मौखिक समर्थन और कभी खुली शत्रुता का रुख दिखाता आ रहा था, अपने दिल्ली-संवाददाता-द्वारा भेजा हुआ एक शरारत-भरा विवरण प्रकाशित किया, जिसका ठक्कर बापा ने तुरन्त ही करारा उत्तर दिया।

कस्तूरबा गांधी राष्ट्रीय स्मारक कोष के मन्त्री श्री ए० वी० ठक्कर ने १३ मई को समाचार-पत्रों के लिए निम्न वक्तव्य दिया है :—

"मेरा ध्यान 'बाम्बे क्रॉनिकल' में प्रकाशित एक खबर की तरफ दिलाया गया है, जिसमें लन्दन के 'टाइम्स' में उसके नयी दिल्ली-सम्वाददाता-द्वारा भेजे गये कस्तूरबा गांधी राष्ट्रीय स्मारक कोष की आलोचना का हवाला दिया गया है। 'टाइम्स' के नयीदिल्ली-संवाददाता ने आरोप किया है कि गांधीजी ने कोष के संचालक-मण्डल की अध्यक्षता कांग्रेस-कार्य को पुनरुज्जीवित करने के इरादे से स्वीकार की है। गोकि पहले भी महात्मा गांधी के बारे में कितना ही भ्रम फैलाया जा चुका है, फिर भी मैं यह आशा नहीं करता था कि डाक्टरों की राय पर रिहा होने के इतने जल्दी ही गांधीजी पर ऐसा नीचतापूर्ण आक्रमण किया जायगा।

"मैं जनता का ध्यान इस बात की तरफ आकर्षित करना चाहता हूँ कि कोष के लिए अपीलकर्ताओं ने ६ मार्च को ही आशा प्रकट की थी कि जेल से छूटने पर गांधीजी के लिए ट्रस्ट की अध्यक्षता स्वीकार करना सम्भव हो सकेगा। 'लंदन टाइम्स' के नयीदिल्ली-स्थित संवाददाता को ज्ञात होना चाहिए कि १० मई को ट्रस्टियों की बैठक के बाद जो यह घोषणा की गयी कि गांधीजी ने ट्रस्ट की अध्यक्षता स्वीकार करली है, वह वास्तव में दो महीने पूर्व प्रकट की गयी इच्छा की ही पूर्ति है।

"यहां मैं साथ ही यह भी बता देना चाहता हूँ कि गांधीजी इस ट्रस्ट के अध्यक्ष होने के अनिच्छुक थे और उन्होंने तो सिर्फ ट्रस्टियों का मन रखने के लिए ही उसकी अध्यक्षता स्वीकार की है। कोष में धन-संग्रह करने के लिए गांधीजी के विशेष प्रयत्नों की भी कोई आवश्यकता नहीं है। कोष के लिए धन एकत्र करने का कार्य सफलतापूर्वक चल रहा है और संवाददाता को जानना चाहिए कि स्वर्गीया श्री कस्तूरबा की स्मृति के प्रति भारत की भावना के प्रति संदेह कभी न था और निश्चय ही २ अक्तूबर से पूर्व ७५ लाख की पूरी रकम अवश्य एकत्र हो जायगी।

"मैं यह भी कह देना चाहता हूं कि धन-संग्रह के कार्य में लगी हुई समितियों पर जो यह आरोप लगाया गया है कि वे मुख्यतः कांग्रेस का हित अग्रसर कर रही हैं, एक जिम्मेदार पत्रकार को शोभा नहीं देता। स्वर्गीया कस्तूरबा देश भर की श्रद्धा-पात्र थीं और उनकी स्मृति को स्थायी बनाने के इस कार्य में लगे हुए विभिन्न राजनीतिक विचारों के स्त्री-पुरुषों ने संवाददाता के इस कार्य पर नाराजी प्रकट की है।

"राजनीतिक मतों तथा आदर्शों के प्रचार के लिए गांधीजी अप्रत्यक्ष साधनों का सहारा कभी नहीं लेते। इस सम्बन्ध में उनकी नेकनीयती दुनिया भर मानती है। फिर भी मुझे विश्वास है कि 'टाइम्स' का संवाददाता अपने मूल विवरण में यह संशोधन अवश्य कर देगा, क्योंकि इससे पत्र के लाखों पाठकों में गलतफहमी फैलने की सम्भावना है।"

गांधीजी को आगाखां महल से रिहाई का आदेश जब सुनाया गया तो उनके मस्तिष्क पर इसकी क्या प्रतिक्रिया हुई, इसकी एक झलक गांधीजी के सेक्रेटरी श्री प्यारेलाल के उस लेख

से मिलती है, जो उन्होंने 'आगाखां महल में आखिरी दिन' शीर्षक से लिखा था और 'यूनाइटेड प्रेस' की मार्फत प्रकाशित हुआ था।

श्री प्यारेलाल लिखते हैं—"गतवर्ष छ: मई के कितने ही दिन और सप्ताह पहले गांधीजी के आगाखां महल से हटाये जाने की अफवाहें फैल चुकी थीं । ५ मई के सुबह जेलों के इन्सपेक्टर-जनरल जब वहां आये तो कुछ बता नहीं रहे थे । उन्होंने सिर्फ इतना ही पूछा कि क्या डाक्टरों के मत से गांधीजी मोटर या रेल-द्वारा १०० मील की यात्रा का श्रम सहन कर सकेंगे ।

"गांधीजी सरकार से लगातार अपने को आगाखां महल से हटाने का अनुरोध करते आ रहे थे । गांधीजी को दुःख इस बात का था कि उनके लिए इतनी बड़ी कोठी का किराया दिया जाता है, गोकि 'टाइम्स' ने इसे एक ऐसा बेहूदा बंगला बताया है, जो फौज से घिरा रहता था। गांधीजी अपनी पीड़ा को इन शब्दों में प्रकट करते थे--वे अपना धन थोड़े ही खर्च कर रहे हैं। यह धन तो मेरा--देश के गरीबों का है । जब लाखों व्यक्ति भूख से जान दे रहे हों तब इस धन का अपव्यय पाप है । और फिर सरकार को इतने पहरेदार रखने की भी क्या जरूरत है ? क्या वे नहीं जानते कि मैं भागने का नहीं हूँ ।

"समाचारपत्रों को देखने से पता चलता था कि इस स्थान का सम्बन्ध दो स्वर्गीय स्वजनों से होने के कारण बाहरवाले मित्र गांधीजी के वहां से हटाये जाने का आन्दोलन कर रहे थे । दूसरे जेल के अधिकारी इसलिए भी चिन्तित थे कि वहां मलेरिया का जोर अधिक था। इसलिए हम सभी तबादले की आशा कर रहे थे । तरह-तरह की बातें फैली हुई थीं ? क्या सरकार गांधीजी को किसी साधारण जेल में ले जायगी या वह हमें अलग-अलग कर देगी ? क्या बापू का स्वास्थ्य इन तबादलों के श्रम को बर्दाश्त कर सकेगा ?

"आगाखां पैलेस में गांधीजी को छोड़कर हरेक आदमी इसी दुविधा में पड़ा था। गांधीजी को सिर्फ एक ही बात की चिन्ता थी कि उनके कारण राष्ट्र के मत्थे इतना खर्च न होना चाहिए। और रिहाई की बात तो हमारे दिमाग में ही नहीं आई थी। हमें विश्वास था कि सरकार गांधीजी को स्वास्थ्य की बिना पर कभी न छोड़ेगी।

"करीब ५ बजे हम से कहा गया, यरवदा जेल से जो कैदी हमारे लिए काम करने आते थे उन्हें हमें जल्दी बिदा कर देना चाहिए । उनके जाते ही स्थानीय सुपरिंटेंडेंट के साथ जेलों के इन्सपेक्टर-जनरल गांधीजी के कमरे में आये। गांधीजी के स्वास्थ्य का हाल पूछ चुकने पर उन्होंने कहा कि गांधीजी अपने दल के साथ अगले दिन सुबह आठ बजे बिना किसी शर्त के छोड़ दिये जायँगे । गांधीजी चकरा गये । उन्होंने कहा—क्या आप मजाक तो नहीं कर रहे ? जेलों के इन्सपेक्टर-जनरल ने कहा—नहीं, मैं ठीक ही कह रहा हूँ। यदि आप चाहें तो स्वास्थ्य सुधरने तक कुछ समय के लिए यहां बने रह सकते हैं। पहरेदारों को कल हटा लिया जायगा और तब आपके मित्र आजादी से आपके पास आ सकेंगे या आपही चाहें तो पूना या बम्बई में अपने किसी मित्र के यहां जाकर ठहर सकते हैं। निजी तौर पर मैं तो आपको यहां न ठहरने की ही सलाह दूंगा। यह फौजी हलका है । यहां भीड़ दर्शन वगैरह के लिए आवेगी तो ऐसी कोई मुठभेड़ हो सकती है, जो आपके लिए दुःखद हो ।

"इस बीच में गांधीजी संभल गये। वे मुस्कराये और अपनी सहज विनोदशीलता से, जिसे उन्होंने कठिन-से-कठिन समय में भी नहीं छोड़ा था, कहा—'अगर मैं पूना में रहा तो मेरे रेल-

किराये का क्या होगा ?' जेलों के इन्स्पेक्टर-जनरल बोले—'वह आपको पूना से रवाना होते समय मिल जायगा ।' गांधीजी ने उत्तर दिया–'अच्छा, तब मैं पूना दो या तीन दिन ठहरूंगा ।'

"उस दिन अपने कंधे से जिम्मेदारी हटने के कारण सब से अधिक खुशी सुपरिंटेंडेंट व जेलों के इन्सपेक्टर-जनरल को हुई ।

"इसके कुछ ही समय बाद जेलों के इंस्पेक्टर-जनरल चले गये । हम लोग सब नजरबंद कैम्प में भोजन करने चले गये । वह सायंकाल ६ और ७ के मध्य का समय था। जब मैं वापस आया तो गांधीजी गहरे सोच-विचार में निमग्न थे। वे कुछ दुखी दिखाई दिये । जेल में बीमार होना उनकी नजर में एक बड़ा भारी पाप था और बीमारी के कारण रिहा होने पर वे प्रसन्न नहीं थे । वे बोले—'क्या वे मुझे सचमुच बीमार होने के कारण छोड़ रहे हैं ?' फिर कुछ संयत होकर उन्होंने कहा—'खैर, जो कुछ वे कहें वही मुझे मानना चाहिए।'

"हमने जेल में सात साल रहने की तैयारी करली थी । गांधीजी अक्सर कहा करते थे कि उन्हें युद्ध के बाद ही रिहाई की उम्मीद है । चूंकि युद्ध समाप्त होने की हाल में कोई आशा न थी इसलिए वे सात साल जेल में रहने की उम्मीद करते थे और इन सात वर्षों में से २१ महीने हम बिता चुके थे । इसलिए अधिक समय तक ठहरने के लिए हमने जो चीजें इकट्ठी की थीं, उन्हें बांधना पड़ा। सब से कठिन कार्य किताबों, दवा की शीशियों और कागजपत्र का बांधना था। दवा की शीशियाँ बा की बीमारी में इकट्ठी हो गयी थीं। गांधीजी का आदेश ८ बजे सुबह से पहले सब कुछ तैयार हो जाने का था । वे बोले—आठ बजे के बाद मैं आपको एक मिनट भी न दूंगा।"

"जबकि हम रात भर सामान बांधने में व्यस्त थे,गांधीजी चारपाईपर पड़े गम्भीर चिंतन में लगे रहे। हरेक की आंख उनकी ओर लगी हुई थी। देश उनसे कितनी ही आशाएं बांधे हुए था। अब जब कि उन्हें बीमारी के कारण छोड़ा जा रहा था वे उन आशाओं को कैसे पूरी करें ।

"सुबह प्रार्थना ५ बजे हुई, जिसमें सबने नहा-धोकर भाग लिया। इसके बाद गांधीजी ने जेल से सरकार के लिए आखिरी पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने वह भूमि प्राप्त करने का अनुरोध किया, जिस पर बा और महादेवभाई का अंतिम संस्कार हुआ था। गांधीजी ने लिखा था—'यह भूमि अर्पित होचुकी है और रिवाज के मुताबिक उसे और किसी काम में नहीं लगाया जा सकता।'

"हम बंदियों के रूप में समाधियों के प्रति अंतिम श्रद्धांजलि चढ़ाने गये। उनमें हमारी दो प्यारी आत्माएं सो रही थीं। मैं सोच रहा था कि यदि हमारी रिहाई तीन महीने पहले हो जाती तो हम बा को भी अपने साथ ले जाते । एकाएक मुझे खयाल आया कि बा में सब से अधिक मातृत्व की भावना थी । वे महादेव को हमेशा के लिए अकेला छोड़ कर कैसे जा सकती थीं और इसीलिए वहां रह गयीं । हमने अपने-अपने फूल चढ़ा दिये और प्रार्थना के बाद घर वापस आ गये। कांटेदार तार का फाटक बन्द हुआ और पहरेदार फिर अपनी जगह पर आ गया। तब तक साढ़े सात बज गये। पहरेदारों को ८बजे तक और पहरा देना था।

"७ बज कर ४५ मिनट पर जेलों के इंस्पेक्टर जनरल आये। गांधीजी ने बाहर जाने के लिए छड़ी उठाई ही थी कि इन्स्पेक्टर-जनरल बोले— नहीं महात्माजी, कुछ मिनट ठहरिये ।'

"हम सब बरामदे में ठहर गये। ठीक आठ बजे इंस्पेक्टर-जनरल के पीछे हम चल पड़े। उन्होंने गांधीजी और डा० सुशीला को अपनी मोटर में बैठाया और हम बाकी लोग दूसरी मोटर में

बैठ कर पीछे-पीछे चले । उस जगह ८० सप्ताह बिताने के बाद हम कांटेदार तारों के घेरे से बाहर निकले। डिस्ट्रिक्ट कमिश्नर और पुलिस कमिश्नर हमें बिदा करने आये थे।"

"जैसे ही इन्स्पेक्टर जनरल की मोटर कांटेदार तार के घेरे से बाहर हुई पुलिस अफसर ने उसे ठहराया, मुझे बाद में ज्ञात हुआ कि डा० सुशीला को नोटिस दिया गया था कि उन्हें जेल में रहने के समय की बातों की चर्चा बाद में न करनी चाहिए। गांधीजीने डा० सुशीला से इस पर हस्ताक्षर करने को कहा, और पूछा—'मेरे नाम ऐसी ही नोटिस क्यों नहीं है ?'"

"ऐसा कोई नोटिस न था। शायद अधिकारियों को भय था कि गांधीजी के नाम यदि नोटिस तलब किया गया तो वे शायद रिहाई से ही इन्कार कर दें । बादवाले लोगों पर भी वैसा ही नोटिस तलब किया गया। सभी ने पहले नोटिस पर दस्तखत करने पर आपत्ति की, किन्तु किसी ने तर्क उपस्थित किया कि नोटिस पर दस्तखत करने का यह मतलब तो नहीं हुआ कि उसमें लगाया गया प्रतिबन्ध स्वीकार कर लिया गया? गांधीजी ने इस नोटिस को तनिक भी महत्व नहीं दिया 'आदेश इतने अस्पष्ट और व्यापक ढंग से लिखा गया है कि उसके पालन करने की किसी से भी आशा नहीं की जा सकती। हम पता लगायेंगे कि इस का क्या मतलब है।' इन शब्दों के साथ उन्हों ने बाद में डा० गिल्डर से कहा कि बम्बई सरकार से इसका स्पष्टीकरण कराइये ।

"कार पर्णकुटी की तरफ चली जा रही थी, किन्तु गांधीजी विचार में निमग्न थे । उन्हें बा की याद आ रही थी। वही जेल से बाहर आने के लिए सब से अधिक उत्सुक थीं। वे हमसे पहले बाहर जरूर हो गयीं, पर ऐसा वह भी नहीं चाहती थीं। गांधीजी ने धीरे से कहा—'इससे अच्छी उनकी और क्या मृत्यु हो सकती थी ! बा और महादेव दोनों ही ने अपने को स्वतन्त्रता की वेदी पर उत्सर्ग कर दिया। वे अमर हो गये। यदि जेल से बाहर मृत्यु होती तो क्या उन्हें यह गौरव प्राप्त हो सकता ।'"

गांधीजी की रिहाई और उसके बाद

गांधीजी की रिहाई से देश के हजारों हितेच्छुओं को परिस्थिति में सुधार के लिए अपने-अपने नुस्खे लेकर आगे बढ़ने का मौका मिल गया। इनमें अधिकांश का उद्देश्य लार्ड वेवल को राह दिखाना था, जो इस बीच में खुद बड़े कुशल शासक हो चले थे। गांधीजी की रिहाई के समय खबर छपी थी कि वाइसराय न तो दिल्ली में ही हैं और न यही पता है कि वे कहां हैं। रिहाई के दो सप्ताह बाद अखबारों में यह अफवाह प्रकाशित हुई कि लाट साहब गांधीजी की रिहाई का आदेश प्राप्त करने लिए इंगलैंड गये थे और अब वहीं गतिरोध दूर करने के विषय में युद्ध मंत्रिमण्डल से बातें कर रहे हैं। इस अफवाह के आधार में दो बातें मुख्य थीं—पहली तो यह कि लार्ड वेवल बड़े कर्मठ व्यक्ति हैं और दूसरे यह भी कि जनता उनसे बहुत बड़ी बातें करने की उम्मीद रखती है । गांधीजी की रिहाई ही कोई छोटी बात न थी। उनकी इंग्लैंड-यात्रा की कल्पना लार्ड एलेनबी के उदाहरण को स्मरण रख कर की गयी थी, जो इंग्लैंड गये थे और मंत्रिमण्डल से झगड़ा करके अंत में जगलुल पाशा को रिहा कराने में सफल हुए थे।

जब एक तरफ वाइसराय को अनेक सलाहें दी जा रही थीं, वहां दूसरी तरफ गांधीजी से स्वास्थ्य-लाभ करने के बाद मि० जिन्ना से मिलने का अनुरोध भी किया जा रहा था। इस संबंध में अल्लामा मशरिकी ने जब तार-द्वारा गांधीजी से अनुरोध किया तो गांधीजी ने कहा कि मि० जिन्ना के लिए उनका पिछले वर्ष का निमंत्रण कायम है और वे उनसे मिलने के लिए हमेशा तैयार हैं।

इससे मुस्लिम लीग के मुखपत्र 'डॉन' को मि० जिन्ना के नाम गांधीजी के ५ मई १९४३ वाले उस पत्र को प्रकाशित करने के लिए अनुरोध करने का अवसर मिल गया, जो उन्होंने अपने अनशन के बाद वाइसराय की मारफत लिखा था, किन्तु जिसे उस समय भेजा नहीं गया था ।

यवरडा के नजरबन्द कैम्प से ४ मई, १९४३ के दिन गांधीजी ने जो पत्र लिखा वह इस प्रकार था:—

"प्रिय कायदे-आजम—मेरे जेल में पहुँचने के बाद जब सरकार ने मुझ से पूछा कि मैं किन पत्रों को पढ़ना चाहता हूँ, तो मैंने उनकी सूची में 'डॉन' को सम्मिलित कर लिया था। अब यह पत्र मैं प्रायः बराबर पाता रहता हूं। वह जब भी आता है, मैं उसे सावधानी से पढ़ाता हूं। मैंने 'डॉन' में प्रकाशित लीग के अधिवेशन की कार्यवाही को सावधानीपूर्वक पढ़ा है। आपने जो मुझे लिखने को आमन्त्रित किया था उससे मैं अवगत हो चुका हूं और इसलिए यह पत्र लिख रहा हूं ।

"मैं आपके निमन्त्रण का स्वागत करता हूं। मेरी राय पत्रव्यवहार करने की जगह आपसे मिलने की है। लेकिन आप जैसा चाहें वैसा करने के लिए मैं तैयार हूँ ।

"मुझे आशा है कि यह पत्र आपके पास भेज दिया जायगा और यदि आप मेरे सुझाव को मानने को तैयार होंगे तो सरकार आपको मुझ तक पहुँचने की सुविधा दे देगी ।

"एक बात और कह दूँ। आपके निमंत्रण में 'यदि' की ध्वनि है। क्या आपका मतलब है कि मैं आपको हृदय-परिवर्तन होने की ही हालत में लिखूं। परन्तु मनुष्यों के हृदय की बात तो सिर्फ परमात्मा ही जानता है।

"मैं तो चाहता हूँ कि आप मुझसे--मैं जैसा भी हूं—मिलें।

"साम्प्रदायिक समस्या का कोई हल निकालने का संकल्प करके ही हम इस महान् प्रश्न को अपने हाथ में क्यों न लें और फिर उससे सम्बन्ध और दिलचस्पी रखनेवाले सभी लोगों से उसे स्वीकार करा लेवें।"

समझ में नहीं आता कि 'डॉन' इस पत्र के प्रकाशित किये जाने के लिए इतना उत्सुक क्यों था। साफ है कि लीग की तरफवाले जान गये थे कि पत्र में क्या है या कम-से-कम उसमें पाकिस्तान के सिद्धांत को मान नहीं लिया गया है। यदि ऐसा था, तो समस्या हल न हुई होती तो इस दिशा में कुछ प्रगति तो होनी चाहिए थी। सच तो यह था कि समय मि० जिन्ना के प्रतिकूल था। पंजाब में उन्होंने मुँह की खाई थी। अब भारत-सरकार ने मि० जिन्ना से सलाह लेने की बात तो दूर रही, उन्हें सूचित किये बिना ही गांधीजी को रिहा कर दिया था। मि० जिन्ना की रटना लगातार यही थी—"अगस्तवाले प्रस्ताव को वापस लो और मुझे लिखो।" अब मि० जिन्ना क्या करें, जब एक तरफ पंजाब के प्रधानमन्त्री ने उनकी बात नहीं मानी और दूसरी तरफ भारत सरकार या कहिये वाइसराय ने उनकी उपेक्षा कर दी । इस सब के बावजूद लोग जिन्ना साहब से गांधीजी से मिलने का अनुरोध कर रहे थे। यह सच ही था कि गांधीजी से मिलने जाना उनकी कार्यप्रणाली के विरुद्ध था, पर साथ ही वे ऐसा सोच भी नहीं सकते थे। उन्होंने गांधीजी के प्रति उनकी पत्नी की मृत्यु के सम्बन्ध में एक अक्षर कहना उचित नहीं समझा, जबकि वाइसराय और लार्ड हैलिफैक्स तक इस सम्बन्ध में शोक प्रकट करना नहीं भूले थे। अब अल्लामा मशरिकी ने फिर कहना शुरू कर दिया था कि मि० जिन्ना को गांधीजी से मिलना चाहिए। इस समय गांधीजी का वह पत्र जिसका हवाला उन्होंने मशरिकी को दिये अपने तार में दिया था, प्रकाशित होने से प्रकट

हो जाता है कि उसमें कोई भी बात मानी नहीं गयी है। लेकिन 'डॉन' को पता चल गया होगा कि उससे गांधीजी घाटे में नहीं रहे। सच तो यह है कि इस "अर्द्ध-नग्न फकीर" को गलत सिद्ध करने में अभी तक किसी को सफलता नहीं मिली है। यही तो चीज है, जिसमें वह लाजवाब है। सच तो यह है कि वही दूसरे को गलत सिद्ध कर देता है। यही बात गांधीजी के ५ मई, १९४३ वाले पत्र से जाहिर होती है। गांधीजी कहते हैं कि वे 'डान' को नियमित रूप से पढ़ते हैं और उन्होंने लीग के दिल्लीवाले अधिवेशन की कार्यवाही भी पढ़ी है। मि० जिन्ना का निमन्त्रण पढ़ते ही गांधीजी तुरन्त उसका उत्तर देते हैं। निमन्त्रण एक शर्त के साथ है, किन्तु गांधीजी उस शर्त को नहीं मानते और कहते हैं कि किसी के दिल में क्या है यह नहीं जाना जा सकता। इसे तो सिर्फ परमात्मा ही जान सकता है। फिर वे कहते हैं कि जैसा भी मैं हूं, उससे मि० जिन्ना बात करें। और वे वही हैं जैसे हमेशा से रहे हैं। तब "डॉन" को निराशा हुई और उसने पत्र को "मृत पत्र" बताया। क्या 'डान' यह आशा कर रहा था कि गांधीजी पाकिस्तान का सिद्धांत मान लेंगे और चूंकि उन्होंने उसे नहीं माना इसलिए यह उनकी शैतानी है। 'डान' ने कहा कि अब समस्या पर नये दृष्टिकोण से विचार होना चाहिए। मि० जिन्ना इस सम्बन्ध में कुछ कहना नहीं चाहते थे। वे अपने ढंग से कुछ करने के लिए अवसर देख रहे थे।

देश के संस्कृत तथा राष्ट्रवादी मुसलमानों में कुछ ऐसी शक्तियां अवश्य थीं, जो जिन्नावाद से समझौता करने के खिलाफ थीं। प्रोफेसर मजीद भी एक ऐसे ही राष्ट्रवादी मुसलमान हैं। उन्होंने एक पत्र इस सम्बन्ध में प्रकाशित किया।

इस दिशा में अखिल-भारतीय मुस्लिम मजलिस ने भी कदम बढ़ाया, गोकि डा० लतीफ ने उसके पहले अधिवेशन में कहा कि मुसलमानों के लिए लीग में रह कर काम करना ही उत्तम होगा।

गांधीजी की रिहाई पर कामन-सभा का भी ध्यान गया। मि० शिनवेल ने कहा कि गांधीजी की रिहाई सिर्फ कुछ समय के लिए है।

मि० शिनवेल के इस कथन में कुछ विरोधाभास भले ही जान पड़ता हो, किन्तु वास्तव में वह था नहीं। गोकि सरकार ने गांधीजी को बिना शर्त के छोड़ा था, किन्तु शिनवेल ने उनकी रिहाई को जो कुछ समय के लिए बताया था उसका कारण यह था कि वे गांधीजी की मनोवृत्ति से भली प्रकार परिचित थे। गांधीजी अपनी स्वतन्त्रता पर लगे प्रतिबन्धों को सहन करनेवाले थोड़े ही हैं। बाद में निस्संदेह गांधीजी वाइसराय से अपने विचार प्रकट करने के लिए पत्र लिखते, इस पत्र में वे नये प्रस्ताव करते, खुद वाइसराय से मिलने की इच्छा प्रकट करते या कार्यसमिति से अनुमति मांगते और अनुमति न मिलने पर जेल जाने के लिए उनका रास्ता साफ हो जाता। सरकार गांधीजी से कह चुकी थी कि 'न्यूज क्रानिकल' पत्र के लिए जो भी वक्तव्य देंगे उसका सेंसर कराना आवश्यक होगा। यह उन पर पहला वार था। दूसरा गांधीजी के प्रस्ताव का वाइसराय-द्वारा उत्तर होता और इसीसे इस बात का फैसला हो जाता कि गांधीजी की रिहाई थोड़े समय के लिए है या सदा के लिए।

गांधीजी ने कहा कि मैं अपने जेल-जीवन व राजनीतिक परिस्थिति के बारे में तब तक कोई वक्तव्य न दूंगा जब तक यह विश्वास न हो जाय कि वक्तव्य में कोई काट-छांट न की जायगी। यह ठीक है कि यह प्रतिबंध गांधीजी के वक्तव्यों के खिलाफ न था, किन्तु उन्हें इस बात का कोई आश्वासन नहीं दिया गया कि सेंसर के साधारण नियमों के अन्तर्गत देश से बाहर जाने-

वाले उनके वक्तव्यों में कोई काट छांट न की जायगी।

स्थिति यह थी कि भारत से बाहर जानेवाले सभी तारों और पत्रों के सेंसर होने का नियम था और सरकार गांधीजी के साथ भी इस सम्बन्ध में कोई रियायत करने को तैयार न थी।

१९४२-४३ के उपद्रवों के लिए कांग्रेस की जिम्मेदारी' शीर्षक से एक पुस्तिका भारत-सरकार ने फरवरी, १९४३ में प्रकाशित की थी। 'न्यूज क्रॉनिकल' के बम्बई-स्थित संवाददाता ने जब उस पुस्तिका के बारे में सात सवाल गांधीजी के आगे पेश किये तो उन्होंने ही उनका जवाब तुरन्त चन्द लफ्जों में दिया। उन्होंने दृढ़तापूर्वक कहा—"इन सभी आरोपों के मेरे पास पूरे और स्पष्ट उत्तर हैं। यदि मुझे सवालों का जवाब देने की अनुमति मिली तो अच्छा होते ही मैं उत्तर ज़रूर दूंगा।"

सवालों में सरकारी पत्रिका में लगाये गये इन दो आरोपों की चर्चा थी—(१) ८ अगस्त वाले प्रस्ताव से पहले ही गांधीजी जापान से सुलह की वार्ता चलाने का इरादा प्रकट कर चुके थे; (२) कांग्रेस पहले ही पराजयमूलक दृष्टिकोण बना चुकी थी। ये दोनों आरोप पुस्तिका के पृष्ठ ११ पर थे। सवालों में कहा गया कि इन आरोपों के आधार पर ही यह धारणा बनी है कि गांधीजी जापानियों के पक्षपाती हैं और उनकी गिरफ्तारी पर जो उपद्रव हुए उनकी भी पहले से तैयारी की गयी थी।

गांधीजी इन आरोपों से बड़े क्षुब्ध हुए। यह जान पड़ा कि संसार के लोकमत के आगे वे अपनी और कांग्रेस की सफाई देने के लिए पूरी तरह तैयार हैं। यह बात उल्लेखनीय है कि स्वास्थ्य-लाभ करने के बाद उन्हें अपने आज़ाद बने रहने का भरोसा नहीं है।

चूंकि सरकारी विज्ञप्ति में गांधीजी की रिहाई स्वास्थ्य बिगड़ने के कारण हुई कही गयी है इसलिए विश्वास किया जाता है कि अच्छा होने पर वे सरकार से अपने को फिर नजर-बन्द करने का अनुरोध करेंगे।

लार्ड हेलिफेक्स को अमरीका में ब्रिटेन की तरफ से प्रचार करने के कारण ही ८ जून, १९४४ को अर्ल बनाया गया। यह स्मरण रखने की बात है कि गांधीजी और कार्य समिति की गिरफ्तारी के दिन (९ अगस्त १९४२) और गांधीजी की रिहाई के दिन (६ मई, १९४४) लार्ड हैलिफेक्स ने वक्तव्य दिये। लार्ड हैलिफेक्स ने वाशिंगटन में भाषण देते हुए यह भी कहा कि अटलांटिक अधिकार-पत्र में ऐसी कोई बात नहीं है जो आधी शताब्दी से ब्रिटेन की नीति के अन्तर्गत न आ गयी हो।

लार्ड महोदय ने यह भी कहा—"भारत और फिलिस्तीन के लिए आत्म-निर्णय के सिद्धांत से काम न चलेगा, क्योंकि उनमें धार्मिक व जातीय समस्याएं मौजूद हैं।"

'इंग्लिश प्रोवर्ब्स एण्ड प्रोवर्बियल फ्रेज़ेज़' पुस्तक के पृष्ठ २९९ में ये शब्द आये हैं—"फ्राम हिल, हल एण्ड हेलिफेक्स गुड गाड डेलिवर अस"—अर्थात् पहाड़ी, जहाज के पेंदे और हेलिफेक्स से परमात्मा हमारी रक्षा करो। इस उद्धरण के लिए १२९४ का वर्ष दिया गया है। ये शब्द हमारे हेलिफेक्स की प्रशंसा में ही कहे गये हैं।

अब हमारे लिए देश की राजनीतिक परिस्थिति पर एक विहंगम दृष्टि डालना अनुचित न होगा। यह राजनीतिक परिस्थिति गांधीजी की रिहाई के कारण उत्पन्न हुई थी। यह उतनी ही प्राकृतिक थी, जितना उषाकाल के बाद सूर्य का निकलना या पश्चिम में चन्द्रमा का अस्त होना।

यह भी एक विधाता का विधान ही था कि पंजाब में वहां के प्रधानमन्त्री की विजय हुई थी और कायदे-आजम को मुंह की खानी पड़ी थी।

परिस्थिति का एक दूसरा पहलू सर आर्देशिर दलाल की गवर्नर-जनरल की शासन-परिषद् में नियुक्ति थी, जिन्होंने पाकिस्तान के जवाब में एक नयी स्कीम बनायी थी और अन्य उद्योग-पतियों के साथ मिलकर बम्बई-योजना पर संयुक्त रूप से हस्ताक्षर किये थे। इन दोनों ही योजनाओं को लीगी नेता लीग की योजनाओं व लीग के हितों के विरुद्ध घोषित कर चुके थे।

इन दिनों की एक तीसरी घटना राष्ट्रीय युद्ध मोर्चा का राष्ट्रीय कल्याण मोर्चा के रूप में परिवर्तन था। इस नयी स्थितिमें उसका अध्यक्ष-पद एक भारतीयको दिया गया। पहले उसके अध्यक्ष एक अवकाशप्राप्त आई० सी० एस० मि० ग्रिफिथ्स थे, जो मिदनापुर में खूब नाम कमा चुके थे।

गांधीजी और कार्य-समिति की रिहाई की मांग जिस लगन और हठ के साथ की जा रही थी वह भारत के ११४ सम्पादकों और ब्रिटेन के २८ सम्पादकों के हस्ताक्षर से भेजे गये प्रार्थना-पत्र के रूप में अपनी चरम सीमा को पहुँच गयी। कारण यह दिया गया था कि गांधीजी व दूसरे नेताओं की रिहाईसे हिन्दू-मुस्लिम एकता का रास्ता साफ होगा और राजनीतिक अड़ंगे को दूर करने व युद्ध-प्रयत्न में सहयोग प्राप्त करने की दिशा में प्रगति होगी।

१५ जून को पार्लमेंट में कहा गया कि गांधीजी की रिहाई के बाद कांग्रेस के दूसरे नेताओं को रिहा करने की समस्या पर विचार होना चाहिए। इसके जवाब में मि० एमरी ने कहा :—

"गांधीजी की रिहाई का, जिन्हें सिर्फ स्वास्थ्य बिगड़ने के कारण छोड़ा गया है, कांग्रेस के दूसरे नेताओं की नज़रबन्दी से कोई सम्बन्ध नहीं है। १ मई को कुल नजरबन्दों की संख्या ३, ५०८ थी।"

कांग्रेस कार्यसमिति के सदस्य अपनी गिरफ्तारी के स्थान से बाहरवालों-द्वारा किये गये अपनी रिहाई के प्रभावहीन प्रयत्नों को बड़ी दिलचस्पी के साथ देख रहे थे। उनके विचार स्पेंजर के 'मेन एण्ड टेक्निक्स' के निम्न शब्दों में प्रकट किये जा सकते हैं :—

"हमने इस युग में जन्म लिया है। हमारे सामने जो रास्ता है उस पर हमें बहादुरी से चलना ही पड़ेगा। हमारा फर्ज़ बिना किसी आशा के अपनी स्थिति पर जमे रहना है—उस रोमन सैनिक के समान,जिसकी हड्डियां पोम्पियाई नगर के अवशेष में दरवाजे के बाहर मिली थीं। सैनिक को अपनी ड्यूटी से हटने का आदेश नहीं मिला था और इसी बीच विसूवियस ज्वालामुखी का विस्फोट शुरू हो गया था। यही महानता है। यही कुलीनता है। एक सम्मानित मृत्यु प्राप्त करना मनुष्य का ऐसा अधिकार है, जिसे उससे कोई छीन नहीं सकता।"

हमारी शांति में सिर्फ जून, १९४४ के मध्य प्रकाशित एक पत्र से ही बाधा पड़ी। कहा गया कि यह पत्र बिहार के भूतपूर्व शिक्षामंत्री डा० सैयद महमूद ने अपने कम्युनिस्ट पुत्र को लिखा है। यह भी कहा गया कि पत्र में जापान-विरोधी भावना के सम्बन्ध में किले के भीतर के लोगों के मत को प्रकट किया गया है। उस समय पत्र में लिखी हुई बातों के दो विवरण लोगों के सामने आये। इनमें से पहले में प्रकट किया गया कि पत्र में जाहिर किये गये विचार डा० सैयद महमूद के निजी हैं और दूसरे से ध्वनि निकलती थी कि विचार उनके साथियों के भी हैं। बाहरवालों ने इसकी जो आलोचना की उसका सार यही था कि "इन लोगों का भी धीरज छूट रहा है" और बाद में रेडियो पर भी इसकी समीक्षा की गयी। सचमुच नौकरशाही को यह खयाल करके बड़ी प्रसन्नता हुई होगी कि हमारे धैर्य में यह कमी शीघ्र ही उसके अन्त का रूप धारण कर सकती है।

गांधीजी की रिहाई को तीन हफ्ते से अधिक समय बीत चुका था। उनके अगले कदम के बारे में इन तीन हफ्तों में तरह-तरह की अटकलबाजियां लगायी गयीं। एक अनुमान यह भी था कि मई के आखिर में वे एक ऐसा वक्तव्य देंगे, जिसके परिणामस्वरूप सब कांग्रेसी नेता छोड़ दिये जायंगे। कुछ तो यहां तक सोचने लगे कि गांधीजी बम्बईवाला प्रस्ताव वापस ले लेंगे। परन्तु गांधीजी चट्टान के समान अडिग थे और १३ मई को उन्होंने डाक्टर जयकर के नाम लिखा अपना निम्न पत्र प्रकाशित कर दिया:—

"जुहू, २० मई, १९४४

प्रिय डा० जयकर,

देश मुझसे बहुत कुछ आशा करता है। मैं नहीं जानता कि मेरी इस रिहाई के बारे में आपकी क्या राय है। सच यह है कि इससे मुझे खुशी नहीं हुई है। मैं तो इसके कारण लज्जित हूँ। मुझे बीमार न पड़ना चाहिए था। मेरा खयाल है कि मौजूदा कमज़ोरी दूर होते ही सरकार मुझे फिर जेल भेज देगी। और अगर वह मुझे गिरफ्तार न करे तो मैं क्या करूँ ?

"मैं अगस्तवाला प्रस्ताव वापस नहीं ले सकता? जैसा कि आप कह चुके हैं, वह दोषहीन है। उसके समर्थन के बारे में शायद आपका मत मुझसे न मिले, लेकिन मुझे तो वह प्राणों के समान प्रिय है। मैं २९ तारीख तक चुप हूं। इस बीच, क्या मैं आपके पास प्यारेलाल को भेजूं ? यह भी आपके स्वास्थ्य पर निर्भर रहेगा, क्योंकि मैं जानता हूं कि आपकी भी तन्दुरुस्ती ठीक नहीं है।

आपका शुभचिंतक—

(हस्ताक्षर) एम० के० गांधी।"

सप्रू, जयकर और शास्त्री जैसे लिबरल नेताओं को दोस्ताना तौर पर सलाह-मशविरे के लिए बुलाकर गांधीजी इन "प्रसिद्ध तथा योग्य" व्यक्तियों के प्रति अपने कर्तव्य का पालन कर रहे थे। ये सभी राजनीतिज्ञ इस दो वर्ष के काल में कांग्रेस के साथ थे। इस बार लिबरल, सर्वदल नेता, निर्दल नेता, भारतीय ईसाई, जमय्यतुल-उलेमा वगैरह सभी कांग्रेस के साथ थे। गांधीजी का यह पत्र, जिस में उन्होंने अगस्तवाला प्रस्ताव वापस लेने से इन्कार किया है, 'बरमिंघम पोस्ट' में प्रकाशित हुआ। इस अखबार ने लिखा—"गांधीजी देश के हित के लिए अपने जिस प्रभाव का उपयोग कर सकते थे—और जिस के लिए एक समय वे तैयार भी थे—अपने इस प्रभाव से उन्होंने बाकायदा इन्कार कर दिया है। बुराई के लिए गांधीजी के प्रभाव को रोकना लाजिमी है, पर यह रोक इस प्रकार लगनी चाहिए कि वे शहीद न बन सकें, जो उनकी आकांक्षा जान पड़ती है। थोड़े में यही कहा जा सकता है कि गांधीजी को आजाद छोड़ देना चाहिए, किन्तु साथ ही यह देखरेख भी रखनी चाहिए कि वे फिर पहले की तरह हिन्दुस्तान की शान्ति के लिए खतरा न बन सकें। अभी हिन्दुस्तान में उनका जितना कम प्रभाव रहेगा उतना ही अच्छा है। इस सम्बन्ध में ब्रिटेन के उन लोगों की बहुत जिम्मेदारी है, जो गांधीजी के निजी गुणों से प्रभावित हो कर उनके असाधारण प्रभाव पर ज़ोर दिया करते हैं। रचनात्मक दृष्टि से कहा जा सकता है कि सरकार कुछ उन हिन्दू नेताओं की तरफ ज्यादा ध्यान दे कर, जो गांधीजी के कारण प्रकाश में नहीं आ पाते, गांधीजी के प्रभाव का दिवाला निकाल सकती है। ऐसे नेताओं में राजगोपालाचार्य का नाम सब से आगे आता है।"

इस पत्र में, जो प्रकाशित होने के लिये न था, ऐसी कोई बात न थी, जिसे छिपाया

जाता। जल्दी या देर में दुनिया व भारत-सरकार को मालूम हो ही जाता कि गांधीजी का विचार क्या है। जो लोग गांधीजी को नजदीक से जानते थे उन्हें यह ज़ाहिर हो जाना चाहिये था कि गांधीजी बम्बई के अगस्त १९४२ वाले प्रस्ताव से एक इंच पीछे न हटेंगे। गांधीजी की यह बीमारी उन की अपनी सहज प्रसन्न मुद्रा व आलोचकों के छिछोरेपन के कारण अधिक नहीं जान पड़ती थी, किन्तु वास्तव में वह काफी अधिक थी। अपने पत्र में गांधीजी ने पहले तो इस बीमारी का हवाला दिया और फिर अगस्त १९४२ वाले प्रस्ताव की चर्चा उठाई, जिसे वापस लेने पर लार्ड वेवल जोर दे रहे थे। महामाननीय श्री एम० आर० जयकर ने इस प्रस्ताव को जो 'दोषहीन' बताया था उसका हवाला ऊपर के पत्र में दिया ही जा चुका है।

पत्र के प्रकाशित होते ही जनता का ध्यान उस की तरफ केन्द्रित हो गया, क्योंकि उस में उन दिनों की सब से महत्वपूर्ण समस्या के विषय में मत प्रकट किया गया था। गांधीजी की रिहाई से यह आशा नहीं की गयी थी कि प्रस्ताव वापस लेकर या आत्म-समर्पण करके राजनीतिक कैदियों को छुटकारा दिलाया जायगा, बल्कि यह सोचा गया था कि गांधीजी कोई ऐसा रास्ता जरूर निकाल लेंगे, जिससे किसी भी पक्ष के घुटने टेके बिना ही कांग्रेसी नेताओं की रिहाई हो सकेगी और राजनीतिक अड़ंगे को दूर किया जा सकेगा। यदि एक तरफ जनता को गांधीजी की सूझबूझ और शक्ति पर इतना भरोसा था तो दूसरी तरफ अपनी आशंकाओं से उत्पन्न अधैर्य पर लगाम लगाकर वह कुछ धीरज का परिचय क्यों न दे सकी ? क्या सचमुच जनता की यही आशा थी कि गांधीजी अगस्त १९४२ के प्रस्ताव को वापस ले कर कांग्रेस को आत्महत्या करने को विवश करेंगे ? नहीं, उसका खयाल था कि कोई-न-कोई बीच का रास्ता निकल आयेगा। यदि यह रास्ता निकलना था तो उसके लिए गांधीजी और सरकार दोनों को ही प्रयत्न करना था और जब तक सफलता नहीं मिलती तब तक दोनों ही दलों को अपनी उसी स्थिति पर रहना था, जिस पर वे ८ अगस्त, १९४२ को थे। परन्तु कुछ व्यक्तियों का ईमान्दारी से खयाल था कि १ जून १९४४ को परिस्थिति ८ अगस्त, १९४२ से बिलकुल भिन्न थी। इस के अलावा, जापानियों के भारी और बहुमुखी हमले की भी आशंका थी। परन्तु बहुत से लोगों का खयाल था कि यह हमला केवल सीमित मात्रा में होगा। इस सम्बन्ध में मतभेद की गुंजाइश होने के अतिरिक्त यह बात स्पष्ट थी कि जहां तक कांग्रेस का सम्बन्ध था, उस की आशा या योजना कम या अधिक कितनी भी मात्रा में भारत पर जापान के हमले पर—यह बड़ा या छोटा कैसा ही क्यों न हो—निर्भर न थी। कांग्रेस के सामने समस्या थी कि वह ऐसी पृष्ठभूमि तैयार करे, जिसमें ऊंचे दर्जे का युद्ध-प्रयत्न हो सके और जिस में नेता जनता से अधिक त्याग और सेवा प्राप्त कर सकें। अगस्त, १९४२ या अप्रैल १९४२ में जो समस्या, जो लक्ष्य या जो उद्देश्य हमारे सामने था वही जून, १९४४ में भी था। गांधीजी ने शुरूआत ठीक की या नहीं—इसका अनुमान हमें इस पत्र से नहीं लगाना चाहिए। सम्भवतः इसीलिए पत्र प्रकाशित करने से पूर्व सेक्रेटरी प्यारेलाल ने प्रारम्भ में एक चेतावनी देना उचित समझा था कि इस में से पाठकों को कोई गहरा अर्थ निकालने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए, क्योंकि यह तो मित्र के नाम लिखा गया एक निजी पत्र था और प्रकाशित करने के खयाल से नहीं लिखा गया था। यह पत्र वास्तव में विचार आते ही एकाएक लिख दिया गया था और उसे हमें वाइसराय को लिखे गये पत्र की तरह अधिकार-पूर्ण बना कर नहीं पढ़ना चाहिए। ऐसा कर के हम पत्र के लेखक के प्रति अन्याय करेंगे।

ब्रिटेन और अमरीका में बहुत पहले ही महसूस कर लिया गया कि गांधीजी की रिहाई

करके सरकार सिर्फ एक वृद्ध की मृत्यु की जिम्मेदारी से ही नहीं बचना चाहती थी। दरअसल रिहाई के परिणाम-स्वरूप गांधीजी भारत के राजनीतिक क्षेत्र में एकाएक आ गये और परिस्थिति के देखते हुए जो-कुछ आवश्यक था वह करने का अवसर उन्हें मिल गया। गांधीजी का पहला कदम अपने उस पत्र को प्रकाशित करना था। उनका दूसरा कदम जनवरी से अप्रैल तक के (यानी रिहाई से चार महीने पहले तक के) अपने और लार्ड वेवल के पत्र-व्यवहार व अन्य कागजों को प्रकाशित करना था।

अभी वह पत्र-व्यवहार प्रकाशित होने से रह ही गया था, जो गांधीजी ने जुलाई १९४३ से सरकार के साथ किया था। उन्होंने ३ मार्च, १९४३ को अनशन तोड़ा था। 'उपद्रवों के लिए कांग्रेस की जिम्मेदारी' पुस्तिका २२ फरवरी को प्रकाशित हुई। यह वह समय था जब गांधीजी का अनशन जोरों से चल रहा था और उनका जीवन अधर में लटका हुआ था। अनशन भंग करने के दो दिन बाद उन्होंने पुस्तिका की एक प्रति मांगी और वह उन्हें अप्रैल के महीने में मिली। गांधीजी ने बड़ी मेहनत से उसका उत्तर जुलाई में तैयार किया और उसे भारत-सरकार के पास भेज दिया। सरकार अक्तूबर तक चुप रही, फिर १४ अक्टूबर को सर रिचार्ड टोटेनहम ने उन्हें अपना अपमानजनक व घृणित उत्तर भेजा। इस समय तक लार्ड लिनलिथगो को गांधीजी अपना उत्तर भेज चुके थे और सम्भवतः लार्ड लिनलिथगो भारत से रवाना होने से पूर्व गांधीजी को उनके उत्तर का प्रति-उत्तर भेजने का आदेश दे गये थे। और जैसी कि आशा की जा सकती है उस प्रति-उत्तर में लार्ड महोदय का शाहाना तरीका और ध्वनि साफ झलकती थी।

इस पत्र-व्यवहार में दिलचस्पी की बात सिर्फ यही थी कि उस में गांधीजी ने कार्य-समिति से सम्पर्क स्थापित करने का अपना अनुरोध दोहराया था। उन्होंने अपने २६ अक्तूबर १९४३ के पत्र में लिखा था:—

> "उन से मेरी बातचीत का सरकार के दृष्टिकोण से कुछ महत्त्व हो सकता है। इसीलिए मैं अनुरोध दुबारा कर रहा हूं। परन्तु यदि सरकार मुझ पर यकीन नहीं करती तो मेरे इस प्रस्ताव की कुछ भी उपयोगिता नहीं है। इस कठिनाई के बावजूद जो मैं अच्छा समझूं और जिसे मैं युद्ध-प्रयत्न के लिए उपयोगी समझूं, उसे फिर दोहराना सत्याग्रही के नाते मेरा फर्ज है।"

यदि गांधीजी ने जुलाई में अपना उत्तर दिया तो ऐसा करके उन्होंने देरी नहीं की। अपना फर्ज अदा करने में उन्हें सिर्फ शीघ्रता का ही खयाल नहीं रखना था, बल्कि इधर-उधर फैले उन असंख्य लेखों, मुलाकातों के विवरणों तथा वक्तव्यों को संकलित करना था, जिनमें से सरकार ने चुन-चुन कर वाक्यों का उद्धरण देकर अपने आरोपों के आधार के रूप में उपस्थित किया था। इसके अलावा, गांधीजी सर रेजिनाल्ड मैक्सवेल, लार्ड सेमुअल व मि० बटलर की उन भारी गलतियों को सुधारने में भी व्यस्त थे, जिनके आधार पर उन्होंने १९४२ और १९४३ में क्रमशः भारत की केन्द्रीय असेम्बली, लार्ड सभा और कामंस सभा में राजनीतिक परिस्थिति व कस्तूरबा की बीमारी के बारे में भाषण दिये थे।

प्रकाशित पत्र-व्यवहार से दोनों पक्षों के दृष्टिकोण पर काफी रोशनी पड़ती है। इसमें हमें दृष्टिकोण की भिन्नता और समानता दोनों ही मिलती है, जैसा स्वाभाविक है। दोनों पक्ष इस बात पर सहमत हैं कि भारत को ब्रिटेन का मित्र बना रहना चाहिए और सरकार ने यह सब सामग्री संक्षिप्त रूप में प्रकाशित कर दी। दोनों पक्ष यह भी मानते हैं कि इस दोस्ती का नतीजा

युद्ध-प्रयत्न में सहयोग के रूप में दिखाई देना चाहिए । इन पत्रों में गांधीजी ने अपने व्यक्तित्व को बिलकुल दबा दिया था और वे कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में बोल रहे थे । वेवल पूरी तरह से वाइसराय के रूप में बोल रहे थे। वेवल सहयोग का अनुरोध करते थे । गांधीजी अपनी रजामंदी जाहिर करते थे । परन्तु इन दोनों महान् प्रतिपक्षियों की दृष्टि में सहयोग के अर्थ अलग-अलग हैं । गांधीजी के लिए सहयोग का अर्थ अंग्रेजों से समानता के आधार पर व्यवहार है । लार्ड वेवल चाहते हैं कि भारत अधीनता में रहकर ही सहयोग करे । समानता मशीनी या बीज-गणित की बराबरी नहीं है । यह तो एक मानसिक अवस्था है, जिस में दोनों दल परस्पर विश्वास करते हैं । विश्वास से विश्वास बढ़ता है और आपस के विश्वास से एक-दूसरे के लिए आदर की भावना होती है, जो समानता या बराबरी की नींव है और उसका सच्चा सबूत भी है । लार्ड वेवल ने अपनी सरकार के पुराने आरोपों को दोहराया- 'भारत को, देश की रक्षा करने में अंग्रेजों के सामर्थ्य पर भरोसा नहीं रह गया और वह (भारत) हमारी सैनिक कठिनाइयों से अनुचित लाभ उठाना चाहता था ।'' आश्चर्य की बात है कि लार्ड वेवल जैसे चतुर राजनीतिज्ञ भी अपने दोनों आरोपों के विरोधाभास को नहीं जान पाये । जिन लोगों को भारत की रक्षा करने में अंग्रेजों के सामर्थ्य पर विश्वास नहीं रह गया था उन्हें ब्रिटिश सरकार से सौदा पटाने में लाभ ही क्या हो सकता था । एक कहानी प्रसिद्ध है कि तरांतुम का एक अमीर आदमी किसी राक्षस से बोला कि यदि वह उसे देश का सब से धनी व्यक्ति बना दे तो वह अपनी आत्मा राक्षस को दे देगा । राक्षस ने कहा कि यदि सब से धनी व्यक्ति किसी दूसरे को ही बनना है तो वह आत्मा लेकर क्या करेगा । सवाल यह था कि कांग्रेस को एक ऐसी शक्ति से समझौता करके क्या मिलता, जिसके द्वारा देश की रक्षा के सामर्थ्य में उसे विश्वास नहीं रह गया था । कांग्रेस ने यह कहा था, इसमें कुछ भी शक नहीं है । कांग्रेस को विश्वास नहीं था कि ब्रिटेन अकेला भारत की रक्षा कर सकेगा, क्योंकि बर्मा, मलाया और सिंगापुर की रक्षा वह जनता की सहायता के बिना करने में असमर्थ रहा था । यही कारण था कि कांग्रेस आर्थिक और नैतिक सहायता दे रही थी । उसकी शर्त सिर्फ यही थी कि उसे ऐसी स्थिति में कर दिया जाय, जिसमें रह कर वह जनता में उत्साह भर सके । यह स्थिति स्वाधीनता और समानता की थी, पराधीनता और गुलामी की नहीं । एक पराधीन देश को ऐसी स्वाधीनता देने का मतलब यह था कि अंग्रेज इस पर से अपनी सत्ता हटा लेते । दूसरे शब्दों में जिस अधिकार का प्रयोग ब्रिटेन भारत के ऊपर कर रहा था उसका प्रयोग अब भारत खुद ही करता । युद्ध-प्रयत्न में भाग लेने के लिए जापानियों के विरुद्ध, साथ ही अंग्रेजों की विदेशी सत्ता के भी विरुद्ध, भारत की यह न्यूनतम मांग थी ।

स्वाधीनता की प्राप्ति के बाद अर्थशास्त्र और राजनीति में सामंजस्य स्थापित होता है । अभी तक ब्रिटिश सरकार ही भारत के लिए सोच-विचार करती थी, योजना बनाती थी, उस योजना को कार्यान्वित करती थी और उसकी रक्षा करती थी । परन्तु जब संरक्षित देश स्वाधीनता प्राप्त करने और खुद ही सोच-विचार करने, योजना बनाने, उस योजना को कार्यान्वित करने और अपनी रक्षा आप कर सकने का दावा करने लगता है तो संरक्षक देश की जिम्मेदारी समाप्त हो जाती है । इसलिए जब कि भारत स्वाधीनता का इन्तजार कर रहा था लार्ड वेवल-द्वारा आर्थिक-सुधार की कार्रवाई साम्राज्यवाद के पृष्ठपोषित मार्ग पर चलने के ही समान थी । इसीलिए वाइसराय और उनके साथियों-द्वारा मुद्रा-बाहुल्य को रोकने, स्टर्लिंग पावना की समस्या को तय करने और ब्रिटेन व भारत के मध्य युद्ध-व्यय के बटवारे में संशोधन के विरोध के प्रयत्नों को देखकर हँसी

आती थी । परन्तु लार्ड वेवल में इतना साहस और इतनी नेकनीयती जरूर थी कि उन्होंने गांधीजी के आगे यह मंजूर कर लिया कि वे उन पर या कांग्रेस पर "जापानियों की जानबूझकर सहायता करने" का आरोप नहीं करते । लार्ड लिनलिथगो और उनके साथियों व मि० एमरी ने जो भद्दे आरोप किये थे यह उसके बिलकुल विरुद्ध था । परन्तु इन सब के बावजूद सब से महत्वपूर्ण बात यह थी कि गांधीजी ने लार्ड वेवल से अपने को कार्य समिति के सम्पर्क में करने का जो अनुरोध किया था वह समस्या जहां-की-तहां बनी रही और लार्ड वेवल ने अपने २८ मार्च, १९४४ वाले पत्र में उसका जिक्र तक नहीं किया । यह साधारण समझदारी की बात है, जैसा कि गांधीजी ने भी कहा था, कि एक सार्वजनिक संस्था में सर्वसम्मति से जो निर्णय होते हैं उनमें किसी एक व्यक्ति-द्वारा परिवर्तन नहीं हो सकता और इसमें अंतःकरण का भी कोई प्रश्न नहीं उठता, जैसाकि लार्ड वेवल ने कहा था । सच तो यह है कि सरकार गांधीजी को कार्य-समिति के पास भेज रही थी और वे अहमदनगर किले में ५ मई, १९४४ को पहुँचनेवाले थे । परन्तु इसी बीच गांधीजी बीमार पड़ गये और तब उन्हें ६ मई को छोड़ दिया गया । परन्तु जब तक लार्ड वेवल और उनके स्वामियों की रजामन्दी नहीं होती और गांधीजी के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन का वह दूषित अर्थ नहीं त्यागा जाता, जो पहले किया गया था, तब तक ब्रिटेन और भारत के मध्य परस्पर आदान-प्रदान के आधार पर सद्भावना की स्थापना कैसे हो सकती थी ।

लार्ड वेवल को भारत की अधिकांश जनता के सहयोग का भरोसा था । सरकार को जो सहयोग प्राप्त हुआ उसे भारतीय जनता का सहयोग नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वह इतनी निर्धन, इतनी अज्ञान और इतनी भयग्रस्त है कि उसके द्वारा सरकारी कर्मचारियों के आदेशों की अवज्ञा करने का कोई सवाल ही नहीं उठता । सहयोग की बात तो दरकिनार, क्या उस जनता को 'अधिकांश' कहा जा सकता है ? यदि सचमुच सरकार को अधिकांश जनता का समर्थन प्राप्त था तो लार्ड वेवल आम चुनाव क्यों नहीं करते थे ? सर फीरोजखां नून ने रायल एम्पायर सोसाइटी, लंदन में युद्ध-मंत्रिमण्डल के एक सदस्य के रूप में भाषण करते हुए उस समय सत्य को प्रकट किया जब एक वृद्ध सज्जन ने बीच में उठकर सवाल किया कि भारत में आम चुनाव क्यों नहीं किये जाते । सर फीरोज खां नून ने साफ लफ़्जों में उत्तर दिया—"इसलिए कि आम-चुनाव में कांग्रेसजन ही चुने जायँगे ।" यह बात सच है ! सच बात सिर्फ बच्चों के मुंह से नहीं निकलती; वह नौकरशाही के कठपुतलों के मुंह से भी निकलती है । एक बुद्धिमान तथा चतुर व्यक्ति के रूप में लार्ड वेवल को जानना चाहिए था—और वे जानते भी थे--कि अधिकांश वोटर सरकार के पक्ष में नहीं, बल्कि कांग्रेसियों के पक्ष में थे । 'अधिकांश जनता' की यथार्थता तो यह थी, कि 'सहयोग' की 'वास्तविकता' पर भी विचार होना चाहिए था । लार्ड वेवल एक ऐसे दल से सहयोग की मांग पर रहे थे, जिसमें योग्यता व सदाशयता की कमी न थी । इसके जवाब में गांधीजी ने जनता के प्रतिनिधियों से सरकार के सहयोग की मांग की । जब अधिकांश जनता कांग्रेस के साथ थी तो सरकार को ही जनता के नेताओं से सहयोग करना चाहिए था । परन्तु खतरा यह था कि इस सहयोग के बीच सिद्धान्तों का गला घोट दिया जाता । यह भी संदेह था कि यदि 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव को स्वीकार करके उसके अनुसार कार्य किया जाता तो संसार भर में उसकी व्यापक प्रतिक्रिया होती । इसका मतलब होता कि युद्ध जिन उद्देश्यों के लिए लड़ा गया उन्हें ब्रिटेन ने स्वीकार कर लिया और उस साम्राज्यवाद का त्याग कर दिया, जो युद्ध का मूल कारण होता है । इस प्रकार गांधीजी के शब्द युद्धों को समाप्त करने के लिए लड़े जाने

वाले युद्ध के प्रयत्नों में हिस्सा बँटाते । यदि कहा जाता है कि परिस्थितियां बाधा उपस्थित करती हैं तो उत्तर दिया जा सकता है कि जहां तक दार्शनिक और आदर्शवादी गांधी का संबन्ध है, मौजूदा परिस्थितियां चिरसत्य सिद्धान्तों के अनुसरण के मार्ग में कभी बाधा नहीं उपस्थित करतीं ।

सिर्फ इतना ही नहीं । 'स्टेटसमेन' कह चुका था कि अगस्त, १६४२ का प्रस्ताव भले ही नैतिक दृष्टि से दोषहीन हो, किन्तु व्यावहारिक दृष्ठि से अनुचित था। गांधीजी ने 'भारत छोड़ो' नारे को "समस्त मानव समाज की पृष्ठभूमि का ध्यान रखते हुए मैत्रीपूर्ण भावना का प्रतीक" माना था । इस सम्बन्ध में फरवरी और अप्रैल १६४४ के मध्य हुए गांधीजी व लार्ड वेवल के पत्र-व्यवहार पर अपने मत प्रकट करते हुए 'स्टेट्समैन' ने लिखा था:—"भारत में अधिक दिलचस्पी न रखनेवाले अन्य कितने ही व्यक्ति गांधीजी की तरह यह महसूस करने लगे हैं, जिसे संयुक्त राष्ट्रों के नेताओं ने देरी से महसूस किया है, कि युद्ध कोई पृथक् या असम्बद्ध घटना नहीं है, बल्कि एक संसार-व्यापी परिवर्तन की सूचना है। यह परिवर्तन या तो तानाशाही अथवा लोकतंत्रवादी दिशा में,होगा या बिलकुल होगा ही नहीं और इस दशा में युद्ध का होना अनिवार्य है। अटलांटिक अधिकारपत्र से अधिक महत्वपूर्ण घोषणा अभी तक दूसरी नहीं हुई है। अब इसकी फुटकर बातें तय हो जानी चाहिएँ ।"

: २५ :

वेवल का नुस्खा

जब भारत-सरकार कोई कार्य करती है तो उसकी गति घोंघा से तेज नहीं होती और उस की दिशा केंकड़े के समान अनिश्चित होती है। दूसरे लफ्जों में यह कार्रवाई न तो तेजी से होती है और न ठीक ही। इससे पार्लमेंट के सदस्य डब्ल्यू० जे० ब्राउन की उस उक्ति की याद आ जाती है, जो उन्होंने विदेश कार्यालय के सुधार के बारे में की थी। मार्च, १६४३ में इस सम्बन्ध में प्रकाशित किये गये श्वेत पत्र की आलोचना करते हुए उन्होंने कहा था-"यह विचारपत्र राजनीतिक क्षेत्र में पुराने तरीके की कार्रवाई का सबसे विचित्र ऐतिहासिक नमूना है। इस सभा तथा भावी पीढ़ियों को बताने के लिए मैं इस कार्य-प्रणाली की व्याख्या इन शब्दों में करना चाहता हूं। इस का पहला तरीका है—तब तक आगे न बढ़ो जब तक कि मजबूर न हो जाओ; दूसरा तरीका—जब बढ़ने के लिए मजबूर हो जाओ तो कम से कम आगे बढ़ो; तीसरा तरीका—जब आगे बढ़ो तो जाहिर करो कि तुम कोई कृपा कर रहे हो; और चौथा तरीका—आगे कभी न बढ़ो बल्कि बगलों की तरफ हिल कर रह जाओ। -इस विचारपत्र में भी यही किया गया है।" और भारत-सरकार क्या करती है? अक्तूबर, १६३६ में जब उससे युद्ध-उद्देश्य बताने को कहा गया, तो उसने कहा कि जब युद्ध-उद्देश्यों की व्याख्या यूरोप में ही नहीं हुई तो भारत में उन पर अमल करने की बात पर तो और भी कम रोशनी डाली जा सकती है। ऊपर बताये तरीकों में से पहला है—आगे कतई न बढ़ना। इसके बाद कम-से-कम आगे बढ़ने की दूसरी अवस्था अगस्त, १६४० में उस समय आई, जब भारत-सरकार ने कहा कि १० करोड़ मुसलमानों, ५ करोड़ हरिजनों और देशी राज्यों की रजामंदी के बिना कुछ नहीं हो सकता, लेकिन, हां वाइसराय की शासन-परिषद् का भारतीयकरण जरूर हो सकता है। यह मंजूर न हुआ और व्यक्तिगत सत्याग्रह छिड़ा, जिसका परिणाम यह हुआ कि तीसरी अवस्था आ गई, जब क्रिप्स भारत में आये और सरकार ने भारत को औपनिवेशिक पद देने का प्रस्ताव किया और साथ ही उसे साम्राज्य के प्रति अपना रुख निश्चित करने का भी अधिकार दिया। यही नहीं, रियासतों के सम्बन्ध में जो प्रस्ताव किये गये उनमें जनता की बजाय राजाओं को प्रधानता दी गई, प्रांतों को भारतीय संघ से पृथक् होने का अधिकार दिया गया। रक्षा और युद्ध-विभागों को प्रधान सेनापति की अधीनता में सुरक्षित रखा गया और विधान-परिषद् का प्रस्ताव करके कृपा का ढोंग किया गया। इन्हें नामंजूर कर दिया गया और तब चौथी अवस्था आई, जिसमें सरकार आगे बढ़ने के बजाय बगलों की ओर हिलने लगी। वाइसराय शासन-परिषद् में क्रमशः १६४१, १६४२ और १६४३ में भारतीयकरण की प्रगति हुई। अन्तिम बार "न्यू स्टेट्समैन ऐण्ड नेशन" ने लिखा :—

"गांधीजीके अनशनके समय कई हिन्दू-सदस्यों के इस्तीफे के परिणामस्वरूप शासन-परिषद् में खाली हुए स्थानों को वाइसराय ने हाल ही में भरा है। नये सदस्य अधिक प्रभावशाली व्यक्ति

नहीं जान पड़ते, किन्तु परिषद् के वर्तमान रूप से हिन्दुओं और मुसलमानों में समानता सम्बन्धी मि० जिन्ना के आदर्श की प्राप्ति हो गयी है । जब एक बार यह परम्परा कायम हो जायगी तो अल्पसंख्यक समुदाय उसे अपना निहित अधिकार मानने लगेगा । यह एक ऐसा परिवर्तन है, जो असावधानीपूर्वक हुआ है ।"

भारतीय समस्या बहुमुखी है, जिससे अनेकों दलों का सम्बन्ध है और प्रत्येक दल एवं व्यक्ति की अधीनता में है । इस समस्या के निबटारे के लिए अंग्रेजों का शक्ति-त्याग भी आवश्यक है । अंग्रेजों ने देश में इतना फूट फैला दी है कि लोग एक सम्प्रदाय और दूसरे सम्प्रदाय, बहुसंख्यक समुदाय और अल्पसंख्यक समुदाय, नरेशों और प्रजा के बीच खाई बनी रहना एक साधारण अवस्था समझने लगे हैं । इसलिए ६ मई को जब गांधीजी छूटे तो उन्हें राजनीतिक गतिरोध दूर करने के लिए कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में अंग्रेजों के प्रतिनिधि लार्ड वेवल और लीग के प्रतिनिधि मि० जिन्ना से बातें करनी पड़ीं ।

लार्ड वेवल ने गांधीजी को जेल में बहुत कुछ आत्मतुष्टि की भावना से प्रेरित हो कर लिखा था कि उन्हें अधिकांश भारतीयों का सहयोग पहले से ही प्राप्त है । हमें यह कहने की जरूरत नहीं है कि यह सहयोग कैसा था । हम तो 'न्यू स्टेट्समैन' (२२ अप्रैल,१९४४) के फैसले को ही मान लेते हैं, जिसमें उसने भारत में कैदियों की रिहाई और भारतमन्त्री के कार्यालय को स्वाधीन उपनिवेश विभाग में मिलाने की आवश्यकता पर जोर दिया था । परन्तु गांधीजी से पत्र-व्यवहार में लार्ड वेवल ने सुलह का गलत तरीका अख्तियार किया। वे चाहते थे कि गांधीजी व कार्य-समिति ही पहल करें । बेशक लार्ड वेवल ने टोटेनहम-द्वारा की गई मांग व पिछले कार्यों के लिए अफसोस जाहिर करना और भविष्य के लिए अच्छा आचरण रखने का वचन देना—त्याग दिया था । लार्ड महोदय ने २८ मार्च, १९४४ को लिखा थाः—

"मेरा विश्वास है कि भारत के कल्याण के लिए कांग्रेस सब से बड़ी सहायता यही कर सकती है कि वह असहयोग की नीति का त्याग कर दे और अन्य भारतीय दलों के साथ मिलकर देश की राजनीतिक और आर्थिक प्रगति करने में अंग्रेजों की मदद करे । मेरे ख़याल में आप भारत की सबसे बड़ी सेवा इस सहयोग की सलाह देकर ही कर सकते हैं ।"

१७ फरवरी, १९४४ को केन्द्रीय धारा-सभाओं के आगे भाषण करते हुए लार्ड वेवल ने जो-कुछ कहा उसे यहां स्मरण किया जा सकता है । इस भाषण में वाइसराय ने पहले-पहल राजनीति के विषय में ज़बान खोली थी । आपने कहा था कि "जब तक असहयोग और अड़ंगा लगाने की नीति का त्याग नहीं किया जाता तब तक मैं कांग्रेस कार्यसमिति की रिहाई की सलाह नहीं दे सकता । १९४३ में लंदन में बर्मा के गवर्नर सर रेजिनाल्ड डोर्मनस्मिथ ने बताया था कि अंग्रेजों के प्रति दक्षिण-पूर्वी एशिया के लोगों के क्या विचार थे । आप ने कहा था, " संसार के इस भाग में हमारे इरादों या कार्यों पर विश्वास नहीं किया जाता । इस की वजह खोज निकालनी कठिन नहीं है । हम बर्मा-जैसे देशों को अपने राजनीतिक गुर की बातें तब तक सुनाते गये जब तक कि जनता उस गुर से बिल्कुल ऊब गयी और इस गुर को अंग्रेजों का कुछ न करने का तरीका मानने लगी ।"

हालत यह थी जबकि गांधीजी ने अपनी रिहाई के ४० दिन बाद १७ जून को लार्ड वेवल से कार्यसमिति के सदस्यों से मिलने की मांग की और कहा कि इस के मंजूर न होने की अवस्था में उन्हें ही स्वयं वाइसराय से मिलने दिया जाय ताकि वे उन्हें कार्यसमिति के सदस्यों से मिल

का महत्व बता सकें। लार्ड वेवल ने गांधीजी का यह अनुरोध अस्वीकार कर दिया और जवाब में लिखा कि यदि कोई रचनात्मक सुझाव उपस्थित करना हो तो वह आप को स्वास्थ्य-लाभ करने पर ही करना चाहिए। लार्ड वेवल के इस उत्तर से भारत में किसी को आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि ४ मई को भारतमंत्री मि० एमरी भी कामंस सभा में कह चुके थे कि गांधीजी को कार्य-समिति के सदस्यों से मिलने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

गांधीजी जब-कभी भी कैद से छोड़े गये हैं तभी उन्होंने राजनीतिक अड़ंगे को समाप्त करने या उस गुत्थी को सुलझाने की चेष्टा की है, जिस के परिणामस्वरूप कि उन्हें सत्याग्रह आरम्भ करना पड़ा था और जेल जाना पड़ा। कांग्रेस के इतिहास को जाननेवाले भली-भांति परिचित हैं कि जब २६ जनवरी, १९३१ को गांधीजी नमक-सत्याग्रह के बाद अपने २६ साथियों के साथ रिहा किये गये, तो उन्हों ने १३ फरवरी को लार्ड अरविन को पत्र लिख कर मनुष्य के नाते मुलाकात की इजाजत मांगी थी। इतिहास यह भी बता चुका है कि यह मुलाकात कितनी कामयाब हुई। इसी तरह गांधीजी ने १७ जून को लार्ड वेवल के पास पत्र लिख कर कार्य-समिति के सदस्यों से मिलने की इजाजत मांगी और लिखा कि यदि यह न हो सके तो कोई फैसला करने से पहले आप हो मुझ से मिल लें। पत्र इस प्रकार है:—

"नेचर क्योर क्लिनिक,
६, टोडीवाला रोड,
पूना, १७ जून, १९४४

प्रिय मित्र,

यदि यह पत्र एक ऐसे काम के सम्बन्ध में न होता, जिसमें आप व्यस्त हैं, तो मैं आपको पत्र लिखकर कभी कष्ट न देता।

गोकि इसकी कोई वजह नहीं है, फिर भी देश भर और शायद बाहरवाले भी सर्वसाधारण के लिए मुझसे कोई ठोस कार्य करने की उम्मीद रखते हैं। खेद है कि मुझे स्वास्थ्य-लाभ करने में इतना समय लग रहा है। लेकिन, बिल्कुल अच्छा होने पर भी मैं कांग्रेस की कार्य-समिति के विचार जाने बिना क्या कर सकता था? कैदी की हैसियत से मैंने उससे मिलने की इजाज़त मांगी थी। अब एक आजाद व्यक्ति का हैसियत से फिर मैं उससे मिलने की इजाज़त मांगता हूँ। यदि इस विषय में कोई फैसला करने से पहले आप मुझसे मिलना मंजूर करलें तो डाक्टरों के लम्बी सफर की इजाज़त देते ही जहां भी आप चाहेंगे वहीं आने के लिए मैं खुशी से तैयार हो जाऊँगा।

नजरबन्दी की हालत में मेरे और आपके बीच जो पत्र-व्यवहार हुआ था उसे मैंने कुछ मित्रों के बीच निजी उपयोग के लिए वितरित कर दिया है। परन्तु मैं महसूस करता हूँ और यही इंसाफ का तकाजा है कि सरकार उन पत्रों को प्रकाशित करने की इजाज़त दे दे।

३० तारीख तक मेरा पता वही होगा, जैसा कि ऊपर लिखा है।

आपका शुभचिन्तक—
मो० क० गांधी।"

इस पत्र का लार्ड वेवल ने २२ जून, १९४४ वाले अपने पत्र में उत्तर दिया। वाइसराय का पत्र यह है:—

"वाइसराय भवन,
नयी दिल्ली,
२२ जून, १९४४।

प्रिय गांधीजी,

आपका १७ जून का पत्र मिला। पिछले पत्र-व्यवहार में हम दोनों के दृष्टिकोण में जो उग्र मतभेद प्रकट हुआ है उसे देखते हुए मैं महसूस करता हूं कि अभी हमारे मिलने से कोई लाभ न होगा और उससे केवल ऐसी आशाएं ही उत्पन्न होंगी, जो पूरी नहीं हो सकतीं।

यही बात आपके द्वारा कार्यसमिति से मिलने के सम्बन्ध में कही जा सकती है। आप 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव के प्रति सार्वजनिक रूप से अपनी सहमति प्रकट कर चुके हैं, जिसे मैं भविष्य के लिए संगत तर्क या व्यावहारिक नीति नहीं मानता।

यदि स्वास्थ्य-लाभ और सोच-विचार करने के बाद आप भारत के हित के लिए निश्चित और रचनात्मक नीति का सुझाव पेश कर सकें तो मैं खुशी से उस पर विचार करूंगा।

चूंकि आप मुझसे पूछे बिना अपने और मेरे बीच हुए पत्र-व्यवहार को वितरित कर चुके हैं और वह समाचार-पत्रों में भी प्रकाशित हो चुका है इसलिए मैंने आपकी नजरबंदी के समय लिखे गये सभी राजनीतिक-पत्रों को प्रकाशित करने का आदेश दे दिया है।

आपका शुभचिंतक—
वेवल।"

यदि लार्ड वेवल के पत्रों और भाषणों से उनके स्वभाव का पता लगाया जाय तो प्रकट होता है कि वे किसी निश्चय पर तो जल्दी पहुँच जाते हैं, किन्तु आगे जाकर अपने मस्तिष्क को प्रभावित होने से नहीं बचा सकते। १७फरवरी, १६४४ को केन्द्रीय धारा सभाओं के संयुक्त अधिवेशन में भाषण करते हुए आपने कहा कि मैंने जो भी विचार प्रकट किये हैं ये मेरे पहले उठनेवाले विचार हैं और इनमें परिवर्तन हो सकता है। गांधीजी को लिखे इस पत्र में उन्होंने शुरू में अपने और गांधीजी के बीच "उग्र मतभेद" की चर्चा की है और कहा है कि उसके कारण मिलने से कोई लाभ न होगा; किन्तु पत्र के अंत में उन्होंने उदारतापूर्वक गांधीजी के स्वास्थ्य लाभ करने का ज़िक्र किया है और कहा है कि गांधीजी "सोच-विचार करने के बाद" किसी निश्चित और रचनात्मक नीति का सुझाव उपस्थित करें। गांधीजी को सोच-विचार करने में अधिक समय नहीं लगा। उन्हें न तो कोई गुत्थी सुलझानी थी और न राजनीति की पेचीदगियों में ही पड़ना था, क्योंकि गांधीजी सत्य के जिस पथ का अनुसरण करते हैं वह सीधा है और अहिंसा की रणनीति भी सरल ही है।

गांधीजी की रिहाई से भारत और कांग्रेस के इतिहास में एक नये अध्याय का श्रीगणेश हुआ था। जनता और सरकार दोनों ही को उनसे बहुत कुछ आशाएं थीं। जनता चाहती थी कि गांधीजी जादू की छड़ी घुमाकर निराशा की परिस्थिति का अन्त करके उसके स्थान पर आशा और विश्वास का संचार करदें। सरकार चाहती थी कि वे व्यक्तिगत और राष्ट्रीय आत्म-सम्मान को त्याग कर सत्य और अहिंसा के अपने चिर-सिद्धांतों की बलि चढ़ा दें और पराजित पक्ष की भांति राजनीति के अलावा अन्य राष्ट्रीय कल्याणकारी क्षेत्रों में अपना सहयोग प्रदान करें। गांधीजी ने जनता से कहा कि उनके पास ऐसा कोई पारस पत्थर नहीं है जो जनता की शिथिल मानसिक स्थिति के लोहे को सोने में बदल सके और न कोई ऐसा जीवनदायी अमृत ही, जो उदास मन में स्फूर्ति और उत्साह का संचार कर सके। इसी तरह सरकार से भी गांधीजी ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया। आपने अपने जीवन का आधारभूत सिद्धांत बताया—उसी जीवन का जो सत्य और अहिंसा पर आधारित रहा है और जिसकी अभिव्यक्ति सत्याग्रह व अहिंसात्मक असहयोग के द्वारा

हुई है। ये दोनों हथियार ऐसे हैं कि उनका उपयोग प्रत्येक व्यक्ति—वह चाहे जितना छोटा हो और परिस्थितियां चाहे जितनी कठिन क्यों न हों—कर सकता है। बम्बई-प्रस्ताव के अन्त में दी गयी सलाह कायम थी, जिसमें कहा गया था कि आंदोलन शुरू हो जाने पर नेताओं की अनुपस्थिति में प्रत्येक स्त्री और पुरुष ही अपना नेता बन जाता है। यह सच है कि सत्याग्रह के लिए एक खास वातावरण की जरूरत होती है और इस वातावरण के अभाव में अहिंसात्मक असहयोग का रास्ता तो सब के लिए खुला ही है। उस समय जनता बुराई से प्रभावित थी और बुराई से असहयोग करने के लिए तो जनता सदा ही आजाद रहती है। जनता की कमर भारी वजन से झुकी हुई थी और उस भार का उतरना ज़रूरी था। राजनीति के अलावा दूसरे क्षेत्रों,—जैसे आर्थिक सुधार और खाद्य-प्रबंध के क्षेत्रों में सहयोग सम्भव न था। सिर्फ राष्ट्रीय सरकारके ही लिए इन विषयों को हाथ में लेना सम्भव था। जहां तक सरकार की इस आशा का सम्बन्ध था कि गांधीजी अहिंसापूर्ण कार्यों की निन्दा करेंगे और युद्धकाल में सत्याग्रह न छेड़ने का आश्वासन देंगे, उनके उत्तर स्पष्ट थे। अगस्तवाले प्रस्ताव के दो भाग थे—राष्ट्रीय मांग और उसे प्राप्त करने के साधन। गांधीजी दुनिया भर की दौलतके लिए भी राष्ट्रीय मांग में जरा भी कमी करनेको तैयार न थे। सरकार तथा भारतीय राष्ट्र में सद्भावना कायम करने का एकमात्र जरिया यही था कि शक्ति का हस्तांतरण राष्ट्रीय सरकार के द्वारा हो। इस ध्येय को प्राप्त करने का साधन गांधीजी स्पष्ट कर ही चुके थे कि गिरफ्तार होते ही आंदोलन का सेनापतित्व उनके हाथ में नहीं रह गया और वे लोगों से साधारण व्यक्ति के रूप में ही कुछ कह सकते थे—कांग्रेसजन के रूप में नहीं; क्योंकि देशवासियों के हृदय में स्थान प्राप्त करने पर भी १९३४ से ही वे कांग्रेसजन नहीं रह गये थे। जो अधिकार उन्हें दिया गया उस का खात्मा गिरफ्तार होते ही हो चुका था। गांधीजी अपने देशवासियों के कथित हिंसापूर्ण कार्यों पर भी कोई फैसला नहीं दे सकते थे, क्योंकि फैसला एकतर्फा न होना चाहिए। दोषी जितनी जनता थी उतनी ही सरकार भी थी। और पुराने जख्मोंको फिर से उभारने में किसी का भी लाभ न था। गांधीजी को लार्ड अरविन-द्वारा वह सलाह याद थी, जो उन्होंने १९३१ में गांधी-अरविन-वार्ता के समय पुलिस के अत्याचारों की जांच के समय दी थी। लार्ड अरविन ने गांधीजी से कहा था—"क्या आप का ख्याल है कि मैं उन अत्याचारों से अपरिचित हूं। जांच की कार्रवाई से दोनों तरफ की भावनायें जाग्रत हो उठेंगी और वह शान्तिपूर्ण वातावरण न बन सकेगा, जिस के लिए हम दोनों ही प्रयत्नशील हैं, क्योंकि तब दोनों ही पक्ष अपने समर्थन के लिए प्रमाण खोजना आरम्भ कर देंगे।" जब गांधीजी ने अपनी मांग पर और जोर दिया तो लार्ड अरविन ने कहा—'गांधीजी, क्या आप मुझे लज्जित करना चाहते हैं?' इस प्रकार उस मांग का अन्त हुआ। शायद इसी दृष्टिकोण से गांधीजी न तो जनता की जोर-जबर्दस्तियों की निंदा करते थे और न सरकार के पाशविक कृत्यों की जांच की ही मांग उन्होंने की। साथ ही गांधीजी ने उतने ही जोरदार शब्दों में अपने देशवासियों को चेतावनी दी थी कि वे अपने अनुयायियों में लेशमात्र हिंसा सहन न करेंगे। गांधीजी ने अपनी स्थिति इन शब्दों में स्पष्ट की:—(१) मैंने खुद सत्याग्रह आरम्भ ही नहीं किया, (२) इस सम्बन्ध में मुझे जो अधिकार और सेनापतित्व दिया गया था उस का खात्मा हो चुका है, (३) सत्याग्रह के लिए एक विशेष वातावरण की आवश्यकता होती है, जो मौजूद नहीं है, (४) बुराई के प्रति अहिंसात्मक असहयोग का द्वार लोगों के लिए हमेशा खुला रहता है, (५) लोग जो कुछ कर चुके हैं उस के बारे में फैसला देने की जिम्मेवारी मैं अपने ऊपर नहीं

ले सकता, (६) मैं लोगों को भविष्य में हिंसा न करने की चेतावनी देना चाहता हूँ, (७) मैं राष्ट्रीय मांग में कुछ भी कमी नहीं करना चाहता और (८) राष्ट्रीय सरकार की स्थापना के बिना दूसरे क्षेत्रों में भी सहयोग सम्भव नहीं है, क्योंकि राष्ट्रीय सरकार ही राजनीतिक व गैर-राजनीतिक क्षेत्रों में सहयोग प्राप्त कर सकती है। गांधीजी ने ये विचार महाराष्ट्र-प्रतिनिधियों के आगे पूना में प्रकट किये थे। गांधीजी के इस भाषण को लार्ड वेवल के २२ जूनवाले उस पत्र का जवाब कहा जा सकता है जो उन्होंने गांधीजी के १७ जून वाले पत्र के उत्तर में लिखा था। इसी समय १९३५ में भारतीय शासन विधान में एक महत्वपूर्ण संशोधन हुआ, जिसके अनुसार वाइसराय और गवर्नर-जनरल अपने पांच वर्ष के काल में एक से अधिक बार छुट्टी ले सकते थे, जब कि पहले वे सिर्फ एक ही बार छुट्टी ले सकते थे।

गांधीजी की रिहाई को पांच सप्ताह हो चुके थे। संसार यह जानने को उत्सुक था कि गांधीजी राजनीतिक अड़ंगे को दूर करने की क्या तरकीब निकालते हैं या वे ऐसी क्या बात कहते हैं, जिस से सुलह की बातें शुरू होने का रास्ता साफ हो। ९ जुलाई १९४४ को यही हुआ। आपने 'न्यूज क्रानिकल' के प्रतिनिधि मि० गेल्डर को एक वक्तव्य प्रकाशित होने के लिए नहीं बल्कि वाइसराय तक पहुंचाने के लिए दिया। अपनी इस मुलाकात में, जिस का विवरण समय से पहले ही 'टाइम्स आफ इंडिया' में प्रकाशित हो गया था, गांधीजी ने कहा:—

"अभी सत्याग्रह छेड़ने का मेरा कोई इरादा नहीं है। इतिहास फिर नहीं दोहराया जा सकता। यदि कांग्रेस के आदेश के बिना ही सर्वसाधारण पर अपने प्रभाव के कारण मैं सत्याग्रह आरम्भ करना चाहूं तो कर सकता हूं; किन्तु मेरे लिए ऐसा करना ब्रिटिश सरकार को परेशानी में डाल देगा और यह मेरा ध्येय कभी नहीं हो सकता।"

गांधीजी ने यह भी कहा कि १९४२ में जो-कुछ मैं ने करने को कहा था वही करने को मैं आज नहीं कह सकता। आज भारत ऐसी राष्ट्रीय सरकार की स्थापना से संतुष्ट हो जायगा, जिस का गैर-सैनिक शासन-प्रबंध पर पूरा नियंत्रण रहे। १९४२ में यह स्थिति नहीं थी। गांधीजी ने यह भी कहा: —

"१९४२ में सरकार ने जिस स्थल पर हस्तक्षेप किया था वहीं से स्थिति को मैं फिर से हाथ में लेना चाहता हूं। पहले तो मैं बातचीत करना चाहता था और इस में सफलता न मिलने पर आवश्यक होने पर मैं सत्याग्रह करना चाहता था। मैं वाइसराय से अनुनय करना चाहता था। अब यह कार्य मैं कार्य-समिति के विचार जानने पर ही कर सकता हूं।"

मि० गेल्डर के साथ हुई मुलाकात का विवरण प्रकाशित होने के सम्बन्ध में गांधीजी ने कहा:—

"मैंने तीन दिन में कुल मिला कर मि० गेल्डर के साथ तीन घंटे व्यतीत किये और प्रयत्न किया कि वे मेरे विचारों को पूरी तरह जान लें। मेरा विश्वास था और अब भी है कि जिस तरह वे, अपने देश से प्रेम करते हैं उसी तरह भारत के भी हितैषी हैं। इसीलिए जब उन्हों ने मुझ से कहा कि वे मुझ से सिर्फ एक पत्रकार के ही रूप में नहीं बल्कि राजनीतिक अड़ंगे को समाप्त करने के इच्छुक के रूप में मिलने आये हैं, तो मैं ने उनका विश्वास किया। जहां एक तरफ मैं ने उन्हें अपने विचारों से स्वच्छंदतापूर्वक अवगत किया वहां दूसरी तरफ उनसे यह भी कहा कि उनका पहला कार्य दिल्ली जा कर वाइसराय से मिलना और यहां की बातें उन्हें बताना है। चूंकि वाइसराय से मिलने में मुझे सफलता नहीं मिली थी इसलिए मैं ने सोचा कि इंग्लैंड के

एक प्रमुख पत्र के प्रतिनिधि की हैसियत से शायद मि० गेल्डर वह सुविधा प्राप्त कर सके। इसलिए मेरे विचार से मुलाकातों के विवरणों का संक्षेप प्रकाशित होना उचित नहीं हुआ। इसलिए मैं आप को मुलाकातों के दो विवरण देता हूं।"

गांधीजी ने दोनों मुलाकातों के अधिकारपूर्ण विवरण देने के उपरान्त कहा:—

"इन मुलाकातों में मैंने हिन्दू के रूप में कुछ नहीं कहा है। यह सब मैंने एक हिन्दुस्तानी और सिर्फ हिन्दुस्तानी ही की हैसियत से कहा है। हिन्दू धर्म भी मेरा अपना अलग है। मेरा व्यक्तिगत विचार तो यह है कि उसमें सभी धर्मों का सार निहित है। इसलिए हिन्दुओं के प्रतिनिधि के रूप में कुछ कहने का मुझे अधिकार नहीं है। सर्वसाधारण की विचारधारा से मैं परिचित हूं और सर्वसाधारण भी स्वभावतः मुझे जानते हैं। पर यह मैं अपनी बात की पुष्टि के विचार से नहीं कह रहा हूं।

"जिस रूप में सत्याग्रह को मैं जानता हूं उस के प्रतिनिधि के रूप में मेरे विचार में एक संवेदनाशील अंग्रेज के आगे अपने हृदय के उद्‌गारों को प्रकट करना मेरा कर्तव्य ही था। अपने विचारों को इससे अधिक अधिकारपूर्ण रूप देने का मैं दावा नहीं करता। आप को मैं ने जो दो वक्तव्य दिये हैं उस के प्रत्येक शब्द को मानने के लिए आप मुझे बाध्य कर सकते हैं, किन्तु मैं ने जो कुछ भी कहा है वह मैं ने सिर्फ अपनी ही तरफ से कहा है; किसी और की तरफ से नहीं।"

मौसम बुरा होने के कारण पत्रकारों से मुलाकात के समय गांधीजी लगातार गद्दे पर पड़े रहे। गांधीजी ने कहा कि पंचगनी में मैं अपनी तन्दुरुस्ती सुधार रहा हूं।

गांधीजी ने आगे कहा—"इस से पहले जो मैं आप से नहीं मिला, इस का कारण मेरा स्वास्थ्य भी था। मैं जल्दी से अच्छा होकर काम शुरू कर देना चाहता हूं। परन्तु परिस्थिति ऐसी हो रही है कि शायद कुछ समय तक मैं अपनी इच्छा पूरी न कर सकूं। अब ये दोनों वक्तव्य जनता के सामने हैं और मुझे उनका प्रतिक्रिया देखना है और गलतफहमियों को दूर करना है। वक्तव्यों की आलोचनाओं का जवाब दे सकने की मुझे आशा नहीं है, किन्तु गलतफहमियों को तो दूर करना ही पड़ेगा।

गांधीजी के दोनों वक्तव्यों की मुख्य बातें इस प्रकार हैं:—

(१) वे कांग्रेस-कार्य-समिति की सलाह के बिना कुछ नहीं कर सकते।

(२) यदि वे वाइसराय से मिलेंगे तो उन से कहेंगे कि इस मुलाकात का उद्देश्य मित्रराष्ट्रों के युद्ध-प्रयत्न में बाधा डालना न हो कर उसमें सहायता पहुंचाना ही होगा।

(३) उन का सत्याग्रह शुरू करने का इरादा बिल्कुल भी नहीं है। इतिहास कभी दुहराया नहीं जा सकता और वे देश को फिर १९४२ की स्थिति में नहीं रख सकते।

(४) पिछले दो वर्ष में दुनिया आगे बढ़ी है, इसलिए परिस्थिति की फिर से समीक्षा करनी पड़ेगी।

(५) नयी परिस्थिति में गांधीजी गैर-सैनिक शासन पर पूरा नियंत्रण रखनेवाली राष्ट्रीय सरकार से ही संतुष्ट हो जायँगे।

(६) यदि राष्ट्रीय सरकार की स्थापना हुई तो गांधीजी उसमें भाग लेने के लिए कांग्रेस को सलाह देंगे।

(७) स्वाधीनता की प्राप्ति के बाद वे कांग्रेस को सलाह देना बंद कर देंगे।

गांधीजी का अगला कार्य तोड़-फोड़ व गुप्त कार्रवाई की निन्दा करना था। उन्होंने समाचार-पत्रों में वक्तव्य प्रकाशित करके तोड़-फोड़ की निन्दा की और कहा कि यह हिंसा है और इसने कांग्रेस के आन्दोलन को हानि पहुँचायी है। गांधीजी ने कार्यकर्ताओं को रचनात्मक कार्यक्रम पूरा करने की सलाह दी और इस सिलसिले में १४ बातों का हवाला दिया।

गांधीजी ने कहा, "यदि आप मेरे इस विचार से सहमत हैं कि गुप्त कार्रवाई से अहिंसात्मक भावना की वृद्धि नहीं होती तो आप प्रकट हो कर जेल जाने का खतरा उठावेंगे और इस प्रकार स्वाधीनता के आन्दोलन को आगे बढ़ावेंगे।

"मुझ से मिलने जो लोग आते हैं वे सब से अधिक इसी समस्या पर बात करते हैं कि मैं गुप्त कार्रवाई का समर्थन करता हूं या नहीं। इस गुप्त कार्रवाई में तोड़फोड़ के कार्य, नाजायज पर्चों का प्रकाशन वगैरह सभी बातें सम्मिलित हैं। मुझ से कहा जाता है कि कार्यकर्ताओं के गुप्त हुए बिना कुछ भी काम नहीं हो सकता था। कुछ लोगों का तो यहां तक कहना है कि जायदाद की बर्बादी को, जिस में यातायात्-सम्बन्धों का तोड़फोड़ भी शामिल है, अहिंसात्मक ही कहा जायगा—यदि मनुष्यों की जानें जाने का खतरा न हो। इस बात की नजीरें भी दी गयी हैं कि दूसरे कितने ही मुल्क इस से भी बुरे काम कर चुके हैं। मेरा जवाब यह होता है कि जहां तक मेरी जानकारी है, आज तक किसी राष्ट्र ने सत्य और अहिंसा से स्वाधीनता-प्राप्ति के साधन के रूप में काम नहीं लिया। इस दृष्टिकोण से देखने पर मैं बिना किसी हिचकिचाहट के कह सकता हूं कि गुप्त कार्य, चाहे जितने निर्दोष क्यों न हों, अहिंसात्मक संग्राम में उनके लिए स्थान नहीं है।

"तोड़फोड़ वगैरह, जिसमें जायदाद की बर्बादी भी शामिल है, साफ तौर पर हिंसा हैं। चाहे इन कार्यों से लोगों की कल्पना कुछ जाग्रत हो उठी हो और उन में कुछ जोश भी उबल पड़ा हो, फिर भी सब-कुछ मिला कर इससे आन्दोलन को हानि ही पहुंची है।

"मैं तो रचनात्मक कार्यक्रम का हामी हूं"—और इसके बाद गांधीजी ने बताया कि इस कार्यक्रम में क्या-क्या बातें शामिल हैं।

गांधीजी ने स्पष्ट कर दिया कि यदि ब्रिटेन भारत की स्वाधीनता की घोषणा कर दे तो वे कार्य-समिति को बम्बईवाले प्रस्ताव के उस भाग को वापस लेने की सलाह देंगे, जिस में दंडात्मक कार्रवाई का हवाला है, और साथ ही उससे युद्ध-प्रयत्नों में नैतिक व आर्थिक सहायता करने का भी अनुरोध करेंगे। गांधीजी ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि वे खुद युद्ध-प्रयत्न में किसी प्रकार की बाधा न डालेंगे। गांधीजी ने इसके बाद बताया कि यदि युद्ध-क्षेत्र में २००० टन गोली-गोले भेजने और दुर्भिक्ष पीड़ित क्षेत्र में २००० टन भोजन भेजने का सवाल उठा तो वे इनमें से किसे तरजीह देंगे और ऐसी परिस्थिति उठने पर कार्य समिति को क्या सलाह देंगे?

महान् घटनाओं और महान् व्यक्तियों का जन्म एक साथ होता है। गांधीजी ने फरवरी-मार्च, १९४३ के अनशन के दिनों में जब साम्प्रदायिक समस्या के बारे में लीग के कुछ सुझावों पर अपनी मंजूरी दी थी तो उन्हें इस बात का गुमान भी न था कि इन सुझावों में से एक कुछ नयी बातों के साथ स्टुअर्ट गेल्डर की मुलाकात के साथ ही प्रकाशित होगा। गांधीजी ने कहा कि दोनों घटनाएं एक साथ-सिर्फ संयोगवश हुईं, और यह उन्होंने ठीक ही कहा था। परन्तु ये दोनों ही घटनाएं एक साथ जिस रूप में हुईं उसे ऐतिहासिक आवश्यकता कहा जा सकता है। इधर

श्री राजगोपालाचारी गांधीजी की रिहाई के बाद जून. १९४४ में कुछ देरी से उनसे मिलने पहुंचे थे, उधर स्टुअर्ट गेल्डर उतने ही अप्रत्याशित रूप से जुलाई के प्रथम सप्ताह में पंचगनी पहुँचे थे। फिर भी वे प्रायः एक साथ ही गांधीजी के सम्पर्क में आये थे। जहां एक ने साम्प्रदायिक समस्या के निबटारे के प्रस्तावों की सूचना जनता को दी थी वहां दूसरे ने राजनीतिक गतिरोध दूर करने के प्रस्तावों को अधिकारियों तक पहुंचाया था। ये दो पृथक् घटनाएं जान पड़ती हैं, किन्तु वे प्रकृति के निर्जीव करिश्मे के समान न होकर जीवित तथ्य के ही समान थीं। वे समुद्र में जल और मछली की तरह या व्यक्ति में उसके मस्तिष्क और प्राणों की तरह एक साथ हुईं और साथ ही आगे बढ़ीं। वे चाहे असम्बद्ध घटनाएं ही जान पड़ती हों, किन्तु एक साथ घटित होने के कारण ही वे भविष्य और इतिहास का निर्माण कर सकीं। इनका होना आश्चर्य की बात अवश्य थी, किन्तु इनका ऐसे व्यक्तियों-द्वारा होना, जिन्हें संसार अतीत की स्मृतियां मानकर छोड़ चुका था—इस बात का प्रमाण था कि मानवीय घटनाओं में रहस्यपूर्ण शक्तियों का हाथ रहता है। सर अल्फ्रेड वाटसन जैसे लोगों को क्या कहा जाय जो ग्रहण के समय सूर्य को देखकर समझने लगते हैं कि उसकी चमक और प्रकाश सदा के लिए चले गये। २० जुलाई को ग्रहण के समय कौन कह सकता था कि संसार में फिर प्रकाश न होगा। परन्तु ब्रिटेन के एक अज्ञात से पत्र 'ग्रेट ब्रिटेन ऐण्ड ईस्ट' के सम्पादक में यह कहने की जुर्रत हुई कि गांधीजी का प्रभाव घटने लगा है, वे मुलाकात करनेवाले पत्रकारों के पीछे भागने लगे हैं और अपना नाम फिर से जनता के सामने लाने को उत्सुक हैं। स्टुअर्ट गेल्डर गांधीजी को फिर प्रकाश में ले आये और कुछ समय तक छिपे रहने के बाद २० जुलाई के सूर्य की ही तरह वे फिर अपने प्रकाश से भूमण्डल को आलोकित करने लगे। क्या सर अलफ्रेड वाटसन का खयाल था कि आगाखां महल में २१ महीने तक ग्रसित रहने के बाद गांधीजी के मस्तिष्क पर पर्दा पड़ जायगा या उनकी कल्पना-शक्ति कुंठित हो जायगी ? नहीं। गांधीजी ने अपने अंतर में उठती हुई ज्वाला का, जिसमें उनकी बुद्धि तप कर और भी प्रखर उठी थी—परिचय बीमारी और बुरे मौसम के बावजूद पत्रकारों से हुई अपनी मुलाकातों के बीच दिया। उन्होंने ऐसे वक्तव्य दिये कि नौकरशाही परेशान हो उठी और वाइ-सराय, भारतमन्त्री तथा प्रधानमन्त्री दुविधा में पड़ गये। अब उनसे न तो निगलते ही बनता था और न उगलते ही। स्टुअर्ट गेल्डर ने १८ जुलाई के 'टाइम्स आफ इंडिया' में एक लेख लिख कर सर अलफ्रेड वाटसन के आरोपों का खंडन किया।

थोड़े में यही कहना काफी होगा कि जब गांधीजी २१ महीने के कारावास और शोक से पीड़ित होकर बाहर आये तो भारत के आकाश में मध्याह्न के सूर्य की भांति चमकने लगे और टूटनेवाले तारों की तरह एक के बाद एक वक्तव्य निकालने लगे। वे जो कुछ कहते थे, स्वर्ग से उतरे देवता के प्रकाश के समान होता था। वास्तव में उनके मुंह से उस समय ईश्वर का आदेश निकल रहा था। उनकी बातें प्रेरणायुक्त थीं और कार्य ऐसे अप्रत्याशित और अचरज-भरे हो रहे थे कि उन्हें प्रभावहीन समझनेवाले आलोचक हक्का-बक्का होने लगे थे। बस एक ही उठान में राजनीति, सदाचार और अर्थशास्त्र के क्षेत्रों में वे चरम शिखर पर पहुँच गये। जो समस्याएं उनके समर्थकों और विरोधियों को समान रूप से चक्कर में डाले हुए थीं, उन पर वे एक-एक करके रोशनी डालने लगे। पाकिस्तान-समस्या पर प्रस्तावित गुर का समर्थन करके उन्होंने सब को हैरत में डाल दिया। ब्रिटेन की जिस महान् शक्ति ने गांधी की मुट्ठी भर हड्डियों को बंधन में जकड़ कर और मृत्यु के मुंह तक पहुंचा कर उनके मानसिक बल पर विजय पाना चाहा

था उसी को उन्होंने चुनौती दी। चर्चिल ने गांधीवाद को दफनाने का बीड़ा उठाया था। एमरी ने गांधी की तुलना महान् षड्यंत्री फादर जोसेफ से की थी। पर चर्चिल या एमरी में से एक भी आगाखां महल में २१ महीने रखने के बाद भी गांधीजी की आत्मा पर विजय न पा सका। जिस तरह कि एक योगी चार महीने तक भूमि के नीचे समाधि में रहने के बाद जीवित और अधिक दिव्य स्वरूप प्राप्त करके निकलता है उसी तरह गांधीजी अपनी पूनावाली समाधि से, जिसमें उनका सम्पर्क बाहरवालों से बिलकुल न था, नयी शक्ति और नयी विचारधारा लेकर निकले। अब उनकी बौद्धिक जागरूकता तथा आध्यात्मिक विवेक पहले से कहीं अधिक था। आज किसी ब्रिटिश पत्रकार ने, तो कल किसी प्रान्तीय मन्त्री ने, अभी सिख लीग ने तो कुछ देर बाद हिन्दू महासभा ने, एक समय मुस्लिम पत्रों ने तो दूसरे समय लंदन के 'टाइम्स' अथवा भारत के ही किसी प्रतिक्रियावादी पत्र ने हमले किये और इस प्रकार होनेवाले हमलों का कोई अंत न था। गांधीजी ने किसी को मीठी फटकार सुनायी, तो किसी को मुंहतोड़ जवाब-द्वारा चुप किया, किसी को कानूनी तर्क-द्वारा हराया तो किसी को पिता की तरह डाट कर शान्त किया। श्री राजगोपालाचार्य के प्रस्तावों का समर्थन करके क्या गांधीजी ने अखंड भारत की एकता की बलि चढ़ा दी? नहीं, उनका समर्थन करते समय भी गांधीजी को भारत की अखंडता का खयाल था, क्योंकि रक्षा, व्यापार, यातायात् तथा अन्य महत्वपूर्ण बातों के लिए दोनों संघों के मध्य समझौता होने की शर्त वे पहले ही रख चुके थे। इस हालत में भी केन्द्रीय सरकार का अस्तित्व था ही। सिर्फ प्रोफेसर कूपलैंड की तरह पाकिस्तान को छोटा प्रदेश और हिन्दुस्तान को एक बड़ा प्रदेश माना गया था। कुछ लोगों ने कहा कि राजनीतिक अड़ङ्गा दूर करने के लिए गांधीजी ने जो प्रस्ताव किये वे क्रिप्स-प्रस्ताव ही तो थे। इन लोगों को गांधीजी ने उत्तर दिया कि तब तो ये सरकार को जरूर स्वीकार कर लेने चाहिए। कुछ लोगों ने कहा कि गांधीजी ने अपने नये सुझाव के द्वारा सर स्टेफर्ड वाला बँटवारे का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया, जब कि १९४४ में इसी के कारण उन्होंने क्रिप्स-योजना को ठुकरा दिया था। गांधीजी ने तुरन्त कहा कि मेरे नये सुझाव में रियासतों को शामिल नहीं किया गया है, किन्तु क्रिप्स-योजना में रियासतों का भी जिक्र था। गांधीजी ने कहा कि बम्बई के प्रस्ताव के द्वारा मिले मेरे अधिकार का गोकि खात्मा हो चुका है फिर भी मुझे कांग्रेसजनों को शान्तिपूर्ण कार्य करने की सलाह देने का अधिकार अभी तक है, जो वे बम्बईवाले प्रस्ताव से पूर्व करने को आजाद थे। गांधीजी ने सब से मनोरंजक उत्तर सिंध के गृह-मन्त्री श्री गजदर को दिया, जिन्होंने गांधीजी पर विनाशकारी कार्य को उकसाने या करने का आरोप लगाया था। इस घटना को भी सुनिये।

जब कि एक तरफ गांधीजी भारत को स्वाधीनता की तरफ अग्रसर करने के प्रयत्नों में लगे थे, सिंध की प्रान्तीय असेम्बली में प्रान्त के गृहमन्त्री ने असेम्बली की बैठक में उसके एक सदस्य को भाग न लेने देने के सम्बन्ध में सरकारी कार्रवाई की सफाई देते हुए कहा—"हमारी जानकारी तो यह है कि महात्मा गांधी की रिहाई के समय से यह विनाशकारी आन्दोलन भारत भर में फिर से आरम्भ कर दिया गया है और प्रमुख व्यक्ति फिर से उसका नेतृत्व करने लगे हैं।" इस सम्बन्ध में श्री गजदर ने मेरिअर रोड डकैती-केस के तीन विचाराधीन कैदियों के भाग जाने का हवाला दिया। गांधीजी ने इस कथन का खंडन करते हुए कहा कि "मेरी रिहाई के समय से मुझे जो बातें ज्ञात हुई हैं उनसे परिस्थिति बिलकुल उलटी ही जान पड़ी है।" आपने यह भी कहा कि अपनी रिहाई के समय से मैं लगातार यही प्रकट करने का प्रयत्न करता रहा हूँ कि मैं

तोड़-फोड़ के कार्यों के विरुद्ध हूं । आपने यह फिर दोहराया कि मुझे सत्याग्रह आन्दोलन छेड़ने का अवसर ही नहीं मिला और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने आन्दोलन के नेतृत्व के लिए मुझे जो अधिकार दिया था वह मेरे गिरफ्तार होते ही समाप्त हो गया और स्वास्थ्य के कारणों से रिहाई के बाद भी मैं अपने उस अधिकार को फिर से काम में नहीं ला सकता। इस आधार पर गांधीजी ने कहा कि यदि सत्याग्रह को विनाशकारी आन्दोलन कहा भी जाय,—जिससे मैं इन्कार करता हूं—तो भी कांग्रेस की तरफ से वह आन्दोलन अब कोई कर नहीं सकता । साथ ही गांधीजी ने यह भी कहा कि प्रतिबन्धों के बावजूद साधारण शान्तिपूर्ण कार्य अवश्य जारी रखे जायं । आपने आशा प्रकट की कि अगस्त, १६४२ से पहले जिन कार्यों पर कोई पाबन्दी न थी, उन्हें करने पर सरकार को कोई आपत्ति न होगी । साथ ही गांधीजी ने जनता से यह भी कहा कि तोड़-फोड़ की कार्रवाई न की जाय, इस कार्यों को रोक दिया जाय और उनके चौदह सूत्रों वाले रचनात्मक कार्यक्रम पर संजीदगी से अमल किया जाय।

ब्रिटिश समाचारपत्रों के भारतीय प्रतिनिधि "इस वृद्ध और परेशान व्यक्ति को"—जैसा कि गांधीजी को उस समय एडवर्ड थाम्पसन ने बताया था – अनेक प्रकार के कुतर्क निकाल कर तंग करने लगे। अगर गांधीजी कांग्रेस की तरफ से कुछ कहते थे तो उन्हें तानाशाह के रूप में बदनाम किया जाता था । यदि वे लोकतन्त्रवादी तर्क की शरण लेते थे कि जब तक उन्हें अपने साथियों से सलाह न करने दिया जायगा तब तक वे सिर्फ अपनी ही तरफ से विचार प्रकट कर सकते हैं, तो उनकी उक्तियों को व्यर्थ बताया जाता था और कहा जाता था कि वे राजनीति की एक चाल चल रहे हैं । यदि सरकार कहती थी कि भारत को स्वाधीनता युद्ध समाप्त होने पर मिलेगी तो उन्हें कुछ भी आपत्ति न थी, पर जब गांधीजी कहते थे कि पाकिस्तान युद्ध समाप्त होने पर ही स्थापित हो सकता है, तो वे लोग नाक-भौं सिकोड़ते थे । भारतीय स्वाधीनता की बात जो इस शर्त के साथ कही जा रही थी कि पहले भारतीयों को एकमत होना चाहिए, उस पर भी उन्हें कोई आपत्ति न थी । इस सम्बन्ध में एडवर्ड थाम्पसन ने एक मनोरंजक कहानी लिखी है।

'भारत में हमारी उदारता के सम्बन्ध में एक उदाहरण मौजूद है, गोकि उसे ऐतिहासिक नहीं कहा जा सकता । जब बाल्दुर मारा गया तो मोन्स ने उसके लिए एक रिआयत यह की कि यदि दुनिया भर के जीव उसके लिए शोक करें तो उसे फिर प्राणदान कर दिया जायगा। यह रिआयत पूरी होने को थी कि कुछ ही कसर रह गयी। दुनिया भर की छानबीन करने पर दुष्टात्मा व्यक्ति मिल ही गया, जिसने इस सार्वजनिक शोक में शामिल होने से साफ इन्कार कर दिया।"

भारत के लिए शासन की सर्वोत्तम प्रणाली के सम्बन्ध में डा० जान्सन के निम्न शब्द मनोरंजक हैं—"दूर के सभी अधिकार बुरे होते हैं । मेरे विचार में भारत के लिए निरंकुश शासक होना ही अच्छा है । यदि वह अच्छा आदमी हुआ तो शासन भी अच्छा होगा और यदि वह बुरा हुआ तो कई लुटेरों की अपेक्षा एक लुटेरा होना अच्छा है। एक ऐसा शासक, जिसके अधिकारों पर प्रतिबन्ध है, दूसरों को भी लूटने देता है ताकि खुद उसकी अपनी लूटमार का रास्ता खुल सके, किन्तु निरंकुश शासक जितना ही दूसरों को लूटने का मौका देता है उतना ही उसका अपना लाभ उठाने का क्षेत्र सीमित होता है । इसलिए वह उसे रोकता है।" ('वाल्टेयर का भारत' —अप्रैल-जून, १६४४ के अंक में अलेक्स आरंसन के लेख से ।)

जुलाई, १६४४ में ब्रिटिश पार्लमेंट में भारत-सम्बन्धी एक बहस हुई थी । लार्ड व

कांग्रेस की इन बहसों पर हम कुछ कहना नहीं चाहते, क्योंकि उनमें वही पुराने विचार, वही पुरानी खुशामद भरी बातें, वही पुरानी क्रिप्स-योजना और अल्पसंख्यकों के अधिकारों पर वही पहले की तरह जोर दिया गया है। सिर्फ प्रस्तावक मि० पेथिक-लारेंस के सम्बन्ध में यही कहा जा सकता है कि उन्होंने अपने एक पिछले भाषण में एमरी को अपने पद से हटाये जाने की माँग की थी, क्योंकि मि० पेथिक लारेंस का कहना था कि उन्होंने अपने भाषण में न तो कोई चिढ़ाने वाली बात कही और न कोई भाव ही जोरदार शब्दों में प्रकट किया। वास्तव में देखा जाय तो बहस की बातें पहले से तय थी।

जब कि जनता एक तरफ गांधी-जिन्ना मिलन की तरफ आंखें लगाये बैठी थी, एकाएक जुलाई और अगस्त के महीनों में गांधी-वेवल पत्र-व्यवहार प्रकाशित हो गया। उससे प्रकट हुआ कि लार्ड वेवल गांधीजी का अपने से या कार्यसमिति से मिलने का अनुरोध तीन बार अस्वीकार कर चुके हैं। साथ ही वाइसराय ने भारतीय परिस्थिति के सम्बन्ध में ब्रिटिश सरकार के दृष्टिकोण का भी स्पष्टीकरण कर दिया था। उनका कथन स्पष्ट था। उसमें क्रिप्स-योजना को दोहराया गया था और साथ ही 'दूसरे अल्पसंख्यकों' को संतुष्ट करने की आवश्यकता पर भी जोर दिया गया था और इन दूसरे अल्पसंख्यकों के मध्य लार्ड वेवल ने दलित वर्ग को शामिल किया था। ऐसा किये बिना युद्धकाल में राष्ट्रीय सरकार की स्थापना नहीं हो सकती। कम-से-कम एक बात तो स्पष्ट होचुकी थी और वह यह कि क्रिप्स-योजना के अनुसार स्थापित राष्ट्रीय सरकार की अपेक्षा गांधीजी और मि० जिन्ना में हुए समझौते के परिणामस्वरूप स्थापित होने वाली संयुक्त सरकार के मिल जुलकर कार्य करने की सम्भावना अधिक थी, क्योंकि युद्धकाल में स्थापित की जाने वाली ऐसी सरकार के सदस्यों के विचार समान होते और एक-दूसरे के प्रति उनकी सद्भावना भी अधिक होती। १९४२ की योजना के अनुसार बनायी जाने वाली सरकार की तुलना में परस्पर सहयोग के द्वारा काम करने वाली इस सरकार के द्वारा ऐसी परम्पराएं भी कायम करने की सम्भावनाएं अधिक थीं, जिनके परिणामस्वरूप गवर्नर-जनरल के अधिकार सीमित हो जाते और वह विधान के अंतर्गत रह कर कार्य करने वाला शासक बन जाता। ब्रिटिश सरकार तथा वाइसराय के आगे भी ये स्थितियां वर्तमान थीं और युद्ध परिस्थिति में हुए परिवर्तन के अलावा साम्प्रदायिक सम्बन्धों में होने वाले इन परिवर्तनों से राष्ट्रीय उद्देश्य ही अग्रसर नहीं होता बल्कि भारत की राष्ट्रीय एकता की भी प्रगति हो सकती। इस तरह यह भी कहा जा सकता है कि सरकार सिर्फ कांग्रेस और लीग के ही मध्य समझौते का प्रश्न नहीं उठा रही थी, जैसा कि सर स्टेफर्ड क्रिप्स ने कहा था और जैसा कि खुद लार्ड वेवल ने केन्द्रीय धारा-सभाओं के संयुक्त अधिवेशन वाले भाषण में १७ फरवरी, १९४४ को फरमाया था, किन्तु अब वाइसराय ही ने युद्धकाल में राष्ट्रीय सरकार की स्थापना के लिए दलित जातियों से समझौता करने की एक और शर्त उपस्थित की। इसके उत्तर में गांधीजी ने कहा कि वाइसराय इस तरह की न जाने कितनी और भी शर्तें उपस्थित कर सकते हैं। सितम्बर १९४३ में एक सभा में भाषण देते हुए लार्ड वेवल ने अन्य दो बातों के अलावा तीसरा स्थान गतिरोध दूर करने को भी दिया था, किन्तु भारत पहुंचने और यहां १० महीने व्यतीत करने के बाद उनकी मानसिक स्थिति में परिवर्तन हो गया और उनके बाजीगर के पिटारे से अड़ंगा दूर करने की नयी बाधाएं निकलने लगीं। यह सिर्फ निराश करने वाली ही नहीं, बल्कि कुछ खीज उत्पन्न करने वाली बात थी।

इसके अलावा, लार्ड वेवल के १५ अगस्त, १९४४ वाले पत्र में राष्ट्रीय सरकार स्थापित

करने की उन्हीं शर्तों को दोहरा दिया गया था, जिन्हें क्रिप्स-प्रस्तावों के साथ उपस्थित किया गया था। कुछ लोगों ने वाइसराय के पत्र की यह आलोचना भी की है कि उन्होंने केन्द्रीय सरकार के सैनिक व गैर-सैनिक विभागों व कार्यों के अलहदा करने की एक नई कठिनाई पेश की थी जबकि सर स्टेफर्ड ने ऐसी कोई कठिनाई ही पेश नहीं की थी, बल्कि गैर-सैनिक कार्यों को शासन-परिषद् के सदस्यों के अधिकारक्षेत्र के अंतर्गत लाने तक का आयोजना किया था और प्रधान सेनापति के जिम्मे सिर्फ सैनिक कार्य ही किये गये थे। किन्तु वास्तव में लार्ड वेवल ने राष्ट्रीय सरकार के प्रतिनिधियों के जिम्मे ये गैर-सैनिक कार्य करने से इनकार नहीं किया था, पर हमें स्मरण रखना चाहिए कि गांधीजी की मांग कुछ कांग्रेसी, लीगी तथा अन्य अल्पसंख्यक प्रतिनिधियों के वाइसराय की शासन-परिषद् में नियुक्त करने की ही न थी, बल्कि वे तो गैर-सैनिक कार्यों के सम्बन्ध में इन्हें व्यवस्थापिका सभा के निर्वाचित सदस्यों के प्रति जिम्मेदार करना चाहते थे। व्यवस्थापिका परिषद् को जिम्मेदारी देने के उद्देश्य से सैनिक व गैर-सैनिक विभागों के पृथक्करण की बात तो क्रिप्स-योजना तक में नहीं थी। दूसरे शब्दों में गांधीजी की मांग केन्द्र में द्वैध शासन की थी, जिसमें गैरसैनिक विभाग हस्तांतरित होकर केन्द्रीय धारा सभाके जिम्मेदारी के क्षेत्र में चले जाते और सैन्य विभाग उसी तरह सुरक्षित रहते, जिस तरह मोंटफोर्ड सुधारों के अंतर्गत प्रान्तों में मालगुजारी और अमन व कानून के विभागों को सुरक्षित रखा गया था।

लार्ड वेवल के पत्र की जिस दूसरी बात की कड़ी आलोचना की गयी वह यह बात थी कि उन्होंने राष्ट्रीय सरकार की स्थापना के लिए यह शर्त लगा दी थी कि पहले विभिन्न दलों तथा अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधियों के मध्य भावी विधान बनाने के तरीकों के सम्बन्ध में समझौता हो जाना चाहिए। यह मांग मूर्खतापूर्ण जान पड़ती थी, क्योंकि विधान का निर्माण तो बाद में जा कर एक ऐसी विधान-परिषद्-द्वारा होना था, जिसका चुनाव विभिन्न प्रान्तीय धारा-सभाओं के प्रतिनिधियों द्वारा होता। फिर यह मांग पहले ही से कैसे की जा सकती थी कि जिस सिद्धान्त के आधार पर विधान-परिषद् विधान बनायेगा उसके विषय में पहले ही से समझौता कर लिया जाय। परन्तु यह सुझाव वास्तव में उतना उलटा नहीं था जितना जान पड़ता था। मतलब यह था कि समस्या की कुछ व्यापक बातों के सम्बन्ध में समझौता होजाय और इन बातों की चर्चा क्रिप्स-प्रस्तावों के समय भी हुई थी। क्रिप्स-प्रस्तावों के अंतर्गत विधान-परिषद् को विधान तैयार करने का अधिकार इस शर्त के साथ दिया गया था कि कोई प्रान्त यदि चाहे तो संघ में शामिल होने से इनकार कर सकेगा। दूसरी बात यह है, गोकि खुले लफ़्जों में कहा नहीं गया था, कि क्रिप्स-प्रस्तावों के अंतर्गत कोई रियासत चाहे विधान में सम्मिलित होवे या नहीं उनके साथ हुई संधियों में नयी परिस्थिति को देखते हुए परिवर्तन करना आवश्यक होगा। इस प्रकार रियासतों को भी संघ में सम्मिलित होने या न होने का अधिकार होगा। सर स्टेफर्ड क्रिप्स इन सिद्धान्तों के—यदि इन्हें सिद्धान्त कहा जा सके—हामी थे। उनकी यह शर्त भी थी कि उनके प्रस्तावों को उनके पूरे रूप में ही स्वीकार किया जाय। सर स्टेफर्ड क्रिप्स के ही प्रस्तावों को लार्ड वेवल ने अपने पत्र में दोहराया था। यह लार्ड वेवल की स्थिति थी, जिसका स्पष्टीकरण उन्होंने अपने १५ अगस्त १९४४ वाले पत्र में किया था। लार्ड वेवल की स्थिति की इतनी सफाई दे चकने के बाद हम सर स्टेफर्ड क्रिप्स के प्रस्तावों की तरह लार्ड वेवल की स्थिति के सम्बन्ध में भी किसी संशय में नहीं रह जाते। फिर भी भारत को पराधीन ही रहना था। भारतीयों को युद्ध-प्रयत्न में आजाद व्यक्तियों की तरह नहीं बल्कि गुलामों की तरह भाग लेना था। भारत को

आजादी सिर्फ आगे जाकर मिलती थी और महत्वपूर्ण दलों तथा अल्पसंख्यकों से समझौता किये बिना उसका स्वप्न भी नहीं देखा जा सकता था। लार्ड लिनलिथगो ने अपने ८ अगस्त, १९४१ के भाषण में इसके लिए हिन्दू महासभा को भी स्वीकृति प्रदान की थी। तीन वर्ष बाद लार्ड-वेवल ने दलित जाति वालों को स्वीकृति दी। इस प्रकार अल्पसंख्यक दलों की संख्या हर साल बढ़ती जा रही थी। अभी सिख शेष थे। और कौन कह सकता है कि बाजीगर के पिटारे से ईसाई, जैन, यहूदी, पारसी, अब्राह्मण, मराठे, जाट, राजपूत, पठान और मारवाड़ी भी न निकल पड़ें। इसीलिए गांधीजी ने अपनी निराशा और अपना खेद नीचे लिखे शब्दों में प्रकट किया:—

"यह बिलकुल साफ है कि जबतक देश की ४० करोड़ जनता ब्रिटिश सरकार के हाथों से सत्ता छीनने की ताकत अपने में नहीं पैदा करती तब तक वह अपने आप उस शक्ति का त्याग नहीं करना चाहती। भारत यह नैतिक बल के आधार पर करेगा, इसकी आशा मैं कभी न छोड़ूंगा।"

गांधीजी ने यह नहीं कहा था कि नैतिक बल की अचूकता में उनका पूर्ण विश्वास है। वे तो सिर्फ अंग्रेजों के हाथ से शक्ति छीनने के लिए नैतिक शक्ति पैदा करने की आशा ही रखते थे।

इस बीच लार्ड वेवल का इरादा यह जान पड़ने लगा कि कांग्रेस या लीग को क्रिप्स-प्रस्तावों के अनुसार राष्ट्रीय सरकार स्थापित करने का स्वप्न अब न देखना चाहिए। अब परिस्थिति बदल चुकी थी। १९४२ के मार्च और अप्रैल के महीनों में जापानियों के जिस हमले की सम्भावना पैदा हो गयी थी। उसकी आशङ्का अगस्त १९४४ तक बिलकुल नहीं रह गयी थी। लार्ड वेवल ने १५ अगस्त को अपना पत्र लिखा था और इसी दिन मित्रराष्ट्रीय सेना ने दक्षिण फ्रांस पर हमला किया था। १७ अगस्त को भारत की भूमि से जापानियों के बिलकुल बाहर किये जाने का समाचार छपा था और १५ अगस्त को गांधीजी को पत्र लिखने से पूर्व लार्ड वेवल को यह समाचार अवश्य मिल गया होगा। ऐसी परिस्थिति में अंग्रेजों को न तो भारत की सहायता की आवश्यकता ही रह गयी थी और न कांग्रेस अब सत्याग्रह कर सकने की ही स्थिति में थी। ऐसी हालत में कांग्रेस के युद्ध-प्रयत्न में भाग लेने की बात मजाक नहीं तो और क्या थी? लार्ड वेवल ने सोचा होगा कि अब कांग्रेस सहायता की जो बात कह रही है वह सहायता हो ही क्या सकती है और फिर कांग्रेस ने सहायता का प्रस्ताव भी बहुत देर से किया है। इसीलिए उन्होंने अपना पत्र बिलकुल नयी शैली में लिखा। यदि कांग्रेस और लीग अस्थायी सरकार स्थापित करने को उत्सुक हैं तो भावी विधान बनाने के तरीकों के बारे हिन्दू, मुसलमान तथा देश के अन्य दलों व वर्गों के बीच समझौता होने पर ऐसा किया जा सकता है।

यहां एक बात ध्यान देने की है। अपने १७ फरवरी, १९४३ वाले भाषण में लार्ड वेवल ने राष्ट्रीय सरकार की स्थापना के लिए सिर्फ दो ही दलों, यानी हिन्दू और मुसलमानों के मध्य समझौते की आवश्यकता पर जोर दिया था। परन्तु अब वे आगे बढ़ गये। ऊपर कहा जा चुका है कि समझौते की बात सर स्टेफर्ड क्रिप्स के प्रस्तावों को दोहराने के अलावा और कुछ न थी। १९४२ और १९४४ की स्थितियों में अंतर सिर्फ इतना था कि गोकि कांग्रेस औपनिवेशिक स्वराज्य वा प्रान्तों और रियासतों के संघ से अलग रहने के अधिकार को मानने के लिए तैयार न थी फिर भी सर-स्टेफर्ड अस्थायी राष्ट्रीय सरकार स्थापित करने का प्रस्ताव मंजूर करने को तैयार थे। कम-से-कम सर स्टेफर्ड ने इस समस्या पर बातचीत भंग न की थी। यदि कांग्रेस

वाइसराय के विशेषाधिकार का प्रश्न न उठाती तो सर स्टेफर्ड क्रिप्स १९४२ में राष्ट्रीय सरकार की स्थापना में कोई और बाधा न डालते । परन्तु १९४४ में लार्ड वेवल योजना की भूमिका, उसका मुख्य अंश तथा उसकी शर्तें वगैरह सभी कुछ एक साथ मंजूर कराना चाहते थे । नहीं, इससे भी कुछ ज्यादा ही । वे भावी विधान तैयार करने के तरीके के सम्बन्ध में मुख्य दलों के बीच समझौता भी चाहते थे । दो वर्ष के संघर्ष और कष्टों के बाद देश ने यही प्रगति की थी । यह विजित से एक विजेता की संधि, वर्साई की पुनरावृत्ति, जर्मनी के विरुद्ध वेंसीटार्ट की नीति ही थी, जो भारत के सैनिक वाइसराय लार्ड वेवल कांग्रेस और भारत पर थोपने की चेष्टा कर रहे थे ।

लार्ड वेवल के १५ अगस्त १९४४ के पत्र को पढ़ने के बाद प्रश्न उठ सकता है कि उन्हों ने अपने २२ जून वाले पत्र में "निश्चित और रचनात्मक नीति" का सुझाव रखने का जो अनुरोध गांधीजी से किया था उस से उनका क्या तात्पर्य था । 'टाइम्स आफ इंडिया' जैसे अधगोरे पत्र ने, जो गांधीजी या कांग्रेस का कभी मित्र नहीं रहा है, कहा कि 'न्यूज कानिकल' के स्टुअर्ट गेल्डर से मुलाकात में जिस योजना पर प्रकाश पड़ा है उसे "निश्चित और रचनात्मक नीति" कहा जा सकता है ? 'स्टेट्समैन' पत्र ने कांग्रेस के प्रति कभी रियायत नहीं की है । उसने भी कहा कि गांधीजी ने लार्ड वेवल से मुलाकात करने की जो अनुमति मांगी है वह उन्हें मिलनी चाहिए । लार्ड वेवल और एमरी दोनों ही ने गांधीजी के प्रस्ताव को ऐसा नहीं समझा कि उसके आधार पर बातचीत चलायी जा सके । इतना ही नहीं, लार्ड वेवल ने १५ अगस्त वाले अपने पत्र को प्रकाशित करने में अप्रत्याशित तेजी दिखायी और इस प्रकार गांधी-जिन्ना-वार्ता में बाधा डालने का प्रयत्न किया । यही नहीं, लार्ड वेवल ने १७ फरवरी वाले भाषण में भावी विधान तैयार करने के लिए एक छोटी कमेटी नियुक्त करने का जो प्रस्ताव किया था और जिसे १५ अगस्त वाले पत्र में दोहराया गया था, वह समय या उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए ठीक न था, क्योंकि यदि इस प्रकार की कोई समिति बनती तो उस में कौन लोग रखे जाते ? ऐसे समय जब कि पाकिस्तान की रूपरेखा तैयार हो रही थी और जब कि देश के अन्य क्षेत्रों में इस बटवारे के प्रस्ताव के कारण पृथक्करण की प्रवृत्तियां तेजी से बढ़ रही थीं तब एक गैर-सरकारी समिति की नियुक्ति और उसके कार्य-क्षेत्र के सम्बन्ध में किसी निश्चित परिणाम पर पहुँचना भी सहल न था । इस के अलावा, यदि इस प्रकार की कोई समिति नियुक्त की जाती और सफलता पूर्वक कार्य भी करती और बाद में इस कार्य को प्रान्तीय या केन्द्रीय चुनाव का विषय बनाया जाता और इसी आधार पर विधान-परिषद् का चुनाव भी लड़ा जाता तो वह कार्य निष्फल हो सकता था । क्या विधान परिषद् का स्थान इस समिति को देना कभी भी उचित होता ? नहीं कभी नहीं । यह प्रस्ताव करने का उद्देश्य कांग्रेस का ध्यान राष्ट्रीय सरकार की मांग से हटाने का था । सभी जगह विधान-परिषदों की स्थापना राष्ट्रीय या अस्थायी सरकारों की नियुक्ति के बाद हुई है और सभी जगह विधान परिषदों ही ने विभिन्न दलों तथा सम्प्रदायों के संघर्ष के परिणाम-स्वरूप उठने वाली समस्याओं को हल किया है । यह कहना कि इन झगड़ों को पहले ही निबटा लिया जाय कार्यवाही से पहले ही परिणाम पर पहुँचने की चेष्टा के समान है, जिस प्रकार कि पुराने जमाने में जज लोग अपराधी के मामले पर विचार करने से पहले ही यह फैसला कर लेते थे, कि उसे किस पेड़ से लटका कर फांसी दी जायगी । यदि एक क्षण के लिए इस उलटी कार्यवाही को किया भी जाय तो प्रश्न है कि उसे शुरू कौन करे—क्या कांग्रेस ? पर कांग्रेस खुद एक

साम्प्रदायिक दल के आक्रमणों का लक्ष्य रही है। लार्ड वेवल के यह पत्र लिखने के समय मुस्लिम लीग के नेता मि० जिन्ना को सरकार मुसलमानों के प्रतिनिधि के रूप में स्वीकृति कर चुकी थी। वह हरिजनों के प्रतिनिधि डा० अम्बेदकर को मान चुकी थी, जो वास्तव में हरिजनों के एक छोटे वर्ग का ही प्रतिनिधित्व करते थे। सर जोगेन्द्र सिंह पहले ही वाइसराय की शासन-परिषद् में थे। बाद में हिन्दू महासभा को भी स्वीकृति मिली, जिसके अध्यक्ष श्री सावरकर हिन्दू राज्य की बात कर रहे थे। इस के अलावा रियासतें भी थीं जिन्हें १६३५ के विधान तथा १६४२ की क्रिप्स योजना दोनों ही में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया था, किन्तु रियासतों का क्षेत्रफल सम्पूर्ण भारत का तिहाई होते हुए और उस की जनसंख्या सम्पूर्ण भारत की जनसंख्या का चौथा भाग होते हुए भी रियासती जनता को प्रतिनिधित्व बिलकुल ही नहीं दिया गया था। यदि गांधीजी शुरुआत करते तो यह मतलब था कि वे मि० जिन्ना, डा० अम्बेदकर (आल इंडिया डिप्रेस्ड क्लासेज असोसियेशन के अध्यक्ष की उपेक्षा करके) मास्टर तारासिंह, श्री सावरकर, नवाब भोपाल तथा एंग्लो इंडियन कान्फरेंस तथा क्रिश्चियन कान्फरेंस के अध्यक्षों के साथ बैठ कर नये विधान के प्रश्नों पर विचार करते। अभी पारसी पंचायत रह गयी है और उसके भी प्रतिनिधि को शामिल करना पड़ता। यह समिति या परिषद् ऐसे परस्पर विरोधी तथा असमान समूहों की एक जमात होती, जो लार्ड लिनलिथगो, एमरी व लार्ड वेवल के भौगोलिक एकता सम्बन्धी उपदेशों के बावजूद राष्ट्रीयता-विरोधी तथा संकुचित साम्प्रदायिकता की विचारधारा में फलते फूलते रहे हैं। यदि लार्ड वेवल विभिन्न दलों से राष्ट्रीय सरकार की स्थापना के लिए समझौता करने को कहते तो बात कुछ और थी। इस हालत में समझौता न होने पर पंचायती फैसले की बात भी सोची जा सकती थी। परन्तु वाइसराय तो बहुत पीछे चले गये और उन्होंने उस एकता की मांग की, जिस के कारण सर स्टेफर्ड क्रिप्स को भारत आना पड़ा था। लेकिन यह मांग करते समय वाइसराय ने यह अनुभव नहीं किया कि भौगोलिक और राष्ट्रीय एकता का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध होता है।

लार्ड वेवल ने गांधीजी को जो कुछ लिखा उसकी यहां एक बार फिर समीक्षा करने की आवश्यकता है। उन्होंने अपने २७ जुलाई वाले पत्र में लिखा था कि ब्रिटिश सरकार ने क्रिप्स-योजना के साथ कुछ शर्तें लगाई थीं, जिनका उद्देश्य जातीय तथा धार्मिक अल्पसंख्यक समुदायों, दलितजातियों और रियासतों के हितों की रक्षा करना था। इन शर्तों के पूरी होने पर ही ब्रिटिश सरकार भारतीय नेताओं को अंतःकालीन सरकार में, मौजूदा विधान के अंतर्गत बनाई जायगी, भाग लेने के लिए आमंत्रित करेगी। इस के बाद वाइसराय ने कहा कि सरकार की सैनिक व गैर-सैनिक जिम्मेदारी अविभाज्य है। वाइसराय के इस वक्तव्य की तुलना सर स्टेफर्ड क्रिप्स-द्वारा अपनी योजना की व्याख्या से करना मनोरंजक होगा, जो उन्होंने अपने ३० मार्च, १६४२ के ब्राडकास्ट भाषण में की थी। सर स्टेफर्ड ने कहा था :—

"अतीत में हम इस बात का इंतजार करते रहे हैं कि विभिन्न भारतीय सम्प्रदाय स्वाधीन भारत के नये विधान के बारे में किसी सर्वसम्मत हल पर पहुंच जायें और चूंकि भारतीय नेताओं में ऐसा कोई समझौता नहीं हो सका, इसलिए ब्रिटिश-सरकार पर भारत की स्वाधीनता में अड़ंगा करने का आरोप किया जाता रहा है। हम से आगे बढ़ने को जो कहा जाता रहा है अब हम वही करने जा रहे हैं।"

परन्तु ढाई वर्ष बाद लार्ड वेवल ने क्या किया? ब्रिटिश-सरकार सर स्टेफर्ड क्रिप्स को भारत

भेजते समय जिस नीति को त्याग चुकी थी, लार्ड वेवल फिर उसी पर वापस चले गये और ऐसा उन्होंने निश्चय ही सम्राट की सरकार की अनुमति से किया था। अब लार्ड वेवल ने जिस सिद्धान्त को अपनी नीति का आधार बनाया था, सर स्टेफर्ड क्रिप्स उसे छोड़ चुके थे। यदि भारतीय नेता ब्रिटिश-सरकार-द्वारा फैलाये गये इस जाल में पड़ जाते तो भारत के स्वराज्य के दावे का मजाक उड़ाने का इससे सुगम तरीका और क्या हो सकता था! इस रास्ते पर चलने से असफलता के अलावा और मिल ही क्या सकती थी। यह भी स्पष्ट है कि विधान बनाने के तरीके के सम्बन्ध में पहले से समझौता कर लेने की मांग अंग्रेजों के अपने इस तर्क के भी विरुद्ध थी कि एक ही उद्देश्य से प्रेरित हो कर एक ही स्थायी सरकार के सदस्यों के रूप में काम करने से वह सद्भावना कायम हो सकती है, जो युगों तक बहस करने से कायम होनी असम्भव थी। इसीलिए लार्ड वेवल के २२ जुलाई वाले पत्र में प्रकट की गई तर्कशैली की सभी तरफ से आलोचना होने लगी और इस आलोचना में वाइसराय की दलील के थोथेपन पर ही प्रकाश नहीं डाला गया बल्कि उनकी विचार-धारा की सर स्टेफर्ड क्रिप्स-द्वारा ग्रहण की गई स्थिति से तुलना भी की जाने लगी। स्थिति इतनी नाजुक थी कि अधिकारी लोग पत्र की चर्चा उठने पर उस की सफाई देने की जरूरत महसूस करने लगे। इस विषय में लोगों की दिलचस्पी यहां तक बढ़ी कि प्रश्न उठाया गया कि क्रिप्स योजना पर ब्रिटिश सरकार कायम है या उसका स्थान वाइसराय-द्वारा १५ अगस्त के पत्र में प्रकट की गई स्थिति ने ले लिया है और लार्ड मंस्टर ने २५ जुलाई को लार्ड-सभा में तथा मि० एमरी ने कामंस सभा में कहा भी कि ब्रिटिश सरकार अभी तक क्रिप्स-प्रस्तावों को मानती है। २६ अगस्त को 'टाइम्स आफ इंडिया' के दिल्ली संवाददाता ने अपने साप्ताहिक प्रसंग 'पालिटिकल नोट्स' में 'कैंडिडस' के नाम से भी इस सम्बन्ध में लम्बी सफाई दी।

लार्ड वेवल के पक्ष और विपक्ष में उन दिनों जो कुछ लिखा गया था उसे देखकर कुछ भी संदेह नहीं रह जाता कि वे राष्ट्रीय सरकार की योजना को समाप्त करके विधान निर्माण की कार्रवाई आरम्भ करना चाहते थे। कुछ हलकों में इस बात पर खेद प्रकट किया गया है कि यदि क्रिप्स-योजना पर अमल किया जाता तो वेवल के पत्र लिखते समय राष्ट्रीय सरकार काम कर रही होती। परन्तु प्रश्न है कि क्या वह राष्ट्रीय सरकार होती। वह सरकार भलों के नेताओं की नामजद तो जरूर होती, पर वह वाइसराय के अलावा और किसी के प्रति जिम्मेदार न होती। ऐसी सरकारें तो पहले भी काम करती रही हैं। सर सेमुअल होर वायुसेना, भारत, विदेश विभाग, नौसेना, गृह-विभाग तथा लार्ड प्रिवी सील के पदों पर काम कर चुके हैं। इसी तरह इस सरकार के सदस्य भी किसी-न-किसी पद पर नियुक्त हो कर अपने राजनीतिक विरोधियों के तीर सहा करते। जब एबेसीज से पूछा गया कि फ्रांस की राजक्रान्ति में उसने क्या किया तो उस ने उत्तर दिया कि "मैं जीवित रहा"। यही बात शायद इस सरकार के सदस्य भी कहते। परन्तु वाइसराय की शासन-परिषद् के इन १४ सदस्यों को राष्ट्रीय सरकार कैसा कहा जाता? भारत को मिस्र जैसी राष्ट्रीय सरकार की कामना नहीं करनी चाहिए। अभी हमारा लक्ष्य दूर है। वहाँ तक हमें दुर्गम मार्ग से पहुंचना है, किन्तु हमें मार्ग-प्रदर्शक सच्चे मिले हैं। विश्वास के कारण मनाह स्वर्ग से उतर आया। प्रार्थना में विश्वास के कारण आरों की लकड़ी के स्पर्श से चट्टान से जल की धारा प्रकट हुई। उसी के कारण दिन में 'बादलों का स्तम्भ' और रात्रि में 'प्रकाश का स्तम्भ' दिखाई दिया। हिचक-हिचककर

बढ़ने वाले भविष्य का निर्माण नहीं कर सकते और न वही कर सकते हैं, जो संघर्ष के श्रम तथा प्रयत्न के कष्टों को झेलने में असमर्थ हैं।

वेवल आते हैं और चले जाते हैं, पर भारत कायम रहता है। साम्राज्य उदय और अस्त होते हैं, किन्तु भारतीय राष्ट्रीयता कायम रहती है। कल्पना तथा विश्वास की जिस व्यक्ति में कमी नहीं है उसके सामने उज्जवल भविष्य का द्वार खुला है और उसका मार्ग स्वाधीनता के प्रकाश से आलोकित है। और यह उज्जवल भविष्य ही विदेशियों के चंगुल से मुक्ति दिलाने के कार्य को पूरा करने में उसके पथ-प्रदर्शक का काम करता है और उसीसे उसे बल और प्रेरणा मिलती है।

दो घटनाएं

(क) श्री राजगोपालाचार्य की मध्यस्थता से गांधी-जिन्ना वार्ता

गांधीजी अपनी रिहाई के बाद जो लार्ड वेवल से सीधी बात-चीत करने लगे इसका यह मतलब न था कि वे मि० जिन्ना की उपेक्षा करके अंग्रेजों से समझौता करना चाहते थे। यह कांग्रेस और गांधीजी दोनों ही के लिए अरुचिकर होता। गांधीजी के जीवन का उद्देश्य जिस प्रकार जन-साधारण की जागृति के द्वारा देश की उन्नति करना था उसी प्रकार देशकी क्रिया-शीलता की गति में वृद्धि करके अपने लक्ष्य तक पहुँचना भी था। एक मान्य संस्था को छोड़ कर विदेशियों के साथ मिलकर उन्नति की बात सोचना बुद्धिमत्तापूर्ण अथवा उचित कुछ भी न था। इसीलिए अपने काम अनशन के समय ही आगाखां महल में गांधीजी ने आम-निर्णय के सिद्धान्त के आधार पर समझौते का एक गुर निकाला था। यह योजना १ साल और २ महीने तक श्री राजगालाचार्य की देख-रेख में अंतिम रूप ग्रहण कर रही थी। ८ अप्रैल १९४४ को वह मि० जिन्ना के आगे उपस्थित कर दी गयी, किन्तु उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया। बाद में श्री जिन्ना ने बताया कि उन का रुख यह है कि वे योजना को न तो स्वीकार करते हैं और न अस्वीकार। १७ अप्रैल को श्री राजगोपालाचार्य ने एक पत्र लिखकर श्री जिन्ना से उस योजना पर फिर से विचार करने का अनुरोध किया। यह सब ६ मई (गांधीजी की रिहाई का दिन) से पूर्व हुआ। गांधीजी की रिहाई के बाद श्री राजगालाचार्य ने ३० जून को मि० जिन्ना के पास एक तार भेजा और उन्हें यह भी सूचित कर दिया कि गांधीजी योजना से पूरी तरह सहमत हैं।

श्री राजगोपलाचार्य ठीक वक्त पर पंचगनी पहुंचे और तार-द्वारा उन्होंने मि० जिन्ना से अपनी बातें जारी रखीं और ऐसा करते समय गांधीजी की भी सहमति प्राप्त कर ली। इस बातचीत पर हिन्दू महासभा के भूतपूर्व जनरल सेक्रेटरी राजा महेश्वरदयाल सेठ ने अपने एक वक्तव्य में प्रकाश कर डाला। वह वक्तव्य इस प्रकार है—

"श्री राजगोपालाचार्य ने गांधीजी की अनुमति से साम्प्रदायिक समस्या के निपटारे के लिए जो प्रस्ताव किये हैं वे स्वयं मि० जिन्ना के ही वे सुझाव हैं, जो उन्होंने मुस्लिम लीग के १९४० वाले लाहौर अधिवेशन के प्रसिद्ध पाकिस्तान विषयक प्रस्ताव के अनुसार किये थे।

"मैं जनता को सूचित करना चाहता हूं कि अखिल भारतीय हिन्दू महासभा की कार्य-समिति ने अगस्त, १९४२ में एक समिति देश के प्रमुख राजनीतिक दलों से समझौते की बातें चलाने तथा राष्ट्रीय मांग उपस्थित करने में उनका समर्थन प्राप्त करने के उद्देश्य से नियुक्त की थी। उस समय मैं हिन्दूमहासभा का जनरल सेक्रेटरी था और इस समिति की तरफ से मैंने खुद मि० जिन्ना से समझौते की बातें की थीं। यही नहीं; एक मित्र के जरिये—इन मित्र की

मुस्लिम लीग में बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थिति थी—मुस्लिम लीग से समझौता करने के लिए नीचे लिखी शर्तें पेश की गयीं—

यदि मुस्लिम लीग से कतिपय सिद्धान्तों के आधार पर समझौता हो जाता है तो लीग के नेता स्वाधीनता की उस मांग का समर्थन करते हैं, जिस का उल्लेख अखिल भारतीय हिन्दू-महासभा के ३० अगस्त १९४२ वाले प्रस्ताव में किया गया है और वे स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए किये जाने वाले संघर्ष में तुरंत शामिल होने के लिए अपनी रजामंदी प्रकट करते हैं। यदि इस प्रकार का समझौता हुआ तो मुस्लिम लीग प्रान्त में मिली-जुली सरकार कायम करने में अपना सहयोग प्रदान करेगी।

"जिन मुख्य सिद्धान्तों के विषय में समझौता होगा वे ये हैं कि युद्ध के बाद (क) एक कमीशन की नियुक्ति भारत के उत्तर-पश्चिम व उत्तर पूर्व में उन परस्पर मिले हुए प्रदेशों को चुनने के लिए की जायगी, जिनमें मुसलमानों का बहुमत होगा, (ख) इन दोनों क्षेत्रों में एक आम मत-संग्रह होगा। और यदि बहुसंख्यक जनता पृथक् सत्तासम्पन्न-राष्ट्र की स्थापना के पक्ष में मत प्रकट करेगी तो इस प्रकार का राष्ट्र कायम कर दिया जायगा। (ग) पृथक्करण होने पर मुसलमान हिन्दुस्तान के अल्पसंख्यक मुसलमानों के लिए किसी संरक्षण की माँग न करेंगे। भारत के दोनों भाग परस्पर आदान-प्रदान के आधार पर अपने-अपने यहां अल्पसंख्यक समुदायों के हितों की रक्षा की व्यवस्था करेंगे (घ) भारत के उत्तर-पश्चिम तथा उत्तर-पूर्व के प्रदेशों को मिलाने के लिए मध्य में कोई पट्टी न रहेगी, किन्तु दोनों प्रदेशों को एक ही सत्ता-सम्पन्न राज्य माना जायगा, (ङ) भारतीय रियासतों को शामिल न किया जायगा, (च) स्वेच्छापूर्वक जनता के आदान-प्रदान की व्यवस्था भी सरकार की तरफ से की जायगी।

"इसलिए स्पष्ट है कि राजाजी ने इन प्रस्तावों में कुछ भी परिवर्तन नहीं किया है।

"वास्तव में मैं या हिन्दूमहासभा इन प्रस्तावों को स्वीकार नहीं कर सकते थे, क्योंकि हम देश के बटवारे की किसी योजना में हिस्सेदार नहीं बन सकते थे, परन्तु इलाहाबाद में दिसम्बर १९४२ में सर तेजबहादुर सप्रू के घर पर जो सम्मेलन हुआ उसमें मैंने मुस्लिम लीग की तरफ से भेजे गये इन प्रस्तावों को सिर्फ पढ़ दिया था और उस को एक प्रति श्री राजगोपालाचार्य को भी दे दी थी। श्री राजगोपालाचार्य ने वह प्रतिलिपि महात्माजी को उन के अनशन के दिनों में दिखायी थी और प्रस्तावों पर उनकी स्वीकृति प्राप्त कर ली थी। राजाजी ने २६ मार्च, १९४३ को मुझे दिल्ली बुलाया और मैं एक दूसरे मित्र के जरिये फिर मि० जिन्ना के सम्पर्क में आया। इन मित्र की भी मुस्लिम लीग में वैसी ही महत्त्वपूर्ण स्थिति थी। परन्तु मुझे यह देख कर आश्चर्य हुआ कि मि० जिन्ना समझौते की उन शर्तों को स्वीकार करने को अनिच्छुक थे, जो उन्होंने सितम्बर, १९४२ में खुद भेजी थीं। तबसे मुझे बिल्कुल स्पष्ट हो गया है कि मि० जिन्ना समझौता करना ही नहीं चाहते। परन्तु यह न समझना चाहिए कि मैं इन प्रस्तावों का कभी भी समर्थक था। मैं देश के बटवारे के विचार को ठीक नहीं समझता। यह बात मैं ने सिर्फ इस तथ्य पर जोर डालने के लिए कही है कि हिन्दू महासभा ने जो यह स्थिति ग्रहण की है कि मि० जिन्ना को संतुष्ट करने के लिए कोई प्रयत्न नहीं करना चाहिए, कितना उचित है।"

उपर्युक्त वक्तव्य से यह स्पष्ट है कि श्री राजगोपालाचार्य जब फरवरी-मार्च, १९४३ में गांधीजी से मिले थे तो उन के पास प्रस्तावों की एक प्रतिलिपि मौजूद थी। उन्होंने इन प्रस्तावों का एक महत्त्वपूर्ण चाल के रूप में उपयोग किया और गांधीजी ने इन प्रस्तावों

पर अपनी अनुमति प्रदान कर दी। श्री राजगोपालाचार्य ने गांधीजी की इस अनुमति को अपने पास तुरुप के पत्ते की तरह भविष्य में खेलने के लिए छिपा कर रखा और उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा करने लगे। यह अवसर राजाजी को १ वर्ष २ महीने बाद अप्रैल १६४४ में प्राप्त हुआ। स्थान था दिल्ली। अवसर असेम्बली के बजट अधिवेशन का था। विभिन्न दलों की नीति के मेल से बजट को नामंजूर कर दिया गया था। सरकार की तरफ से इस विजय का मजाक उड़ाया गया और सर जर्मी रेजमेन ने विरोधी पक्ष के दलों को चुनौती दी कि बजट को नामंजूर करने के क्षेत्र में नहीं बल्कि राजनीति के रचनात्मक क्षेत्र में भी उन्हें एकता परिचय देना चाहिए। कांग्रेस के सहकारी नेता अब्दुल कयूम ने चितौनी स्वीकार करते हुए कहा कि सर जर्मी रेजमेन की आशा से पहले ही कांग्रेस और लीग में समझौता हो जायगा। यह उचित अवसर था। इस समय दिल्ली में श्री भूलाभाई देसाई और श्रीमती सरोजिनी नायडू भी थीं। श्री राजगोपालाचार्य थे। दिल एक-दूसरे से मिलने को उत्सुक थे। हाथ मिलने को बढ़े हुए थे। परन्तु दिमागों को एक ऐसा गुर निकालना शेष था, जिस के आधार पर यह मिलन हो सके। इससे अच्छा अवसर और क्या हो सकता था और बीच की खाई को पाटने के लिए उस गुर से अच्छा और क्या साधन मिल सकता था, जो श्री राजगोपालाचार्य के जेब में इतने दिनों से था। और इस जादूगर ने चकित दर्शकों के सामने वह गुर उसी खूबी से निकाल कर दिखा दिया, जिस खूबी से तमाशा दिखाने वाला बाजीगर छड़ी में से सांप निकाल कर दर्शकों को चकित कर देता है। अस्तु, ८ अप्रैल को राजाजी ने मि० जिन्ना के आगे ये प्रस्ताव उपस्थित किये।

स्पष्ट है कि प्रस्ताव मि० जिन्ना को भाये नहीं। इसलिए श्री राजगोपालाचार्य अपने घर वापस चले गये और मि० जिन्ना के उत्तर की प्रतीक्षा करने लगे। तब श्री राजगोपालाचार्य ने मि० जिन्ना के पास एक तार भेजा। प्रकाशित पत्र-व्यवहार से प्रकट होता है कि जहां एक तरफ श्री राजगोपालाचार्य को यह संतोष हुआ कि उन्होंने अपना तुरुप का पत्ता खूब चतुराई से चला वहां दूसरी तरफ मि० जिन्ना ने यह महसूस किया कि उन्हें कांग्रेस की की तरफ से पहली बार एक ठोस प्रस्ताव प्राप्त हुआ, जिस पर स्वयं गांधीजी की स्वीकृति की मुहर लगी हुई थी और जो उन के एक विश्वास प्राप्त सहकारी से उन्हें मिला था। दिल्ली में जब प्रस्ताव मि० जिन्ना के सामने उपस्थित किये गये तो वे उन्हें मंजूर नहीं हुए, परन्तु बाद में उन्होंने प्रस्तावों को न स्वीकार करने का और न अस्वीकार करने का रुख ग्रहण किया। यह कांग्रेस के उस रुख के ही समान था, जो उस ने ब्रिटिश-सरकार के सन् १६३२ के साम्प्रदायिक निर्णय के सम्बन्ध में ग्रहण किया था।

पाठकों को शायद आश्चर्य होगा कि ८ अप्रेल, १६४४ को दिल्ली में प्रस्ताव उपस्थित करने की गलती के बाद श्री राजगोपालाचार्य ने उनके सम्बन्ध में पंचगनी से तार क्यों दिया। कारण स्पष्ट है। राजाजी ने गांधीजी से सब कुछ बताया होगा और गांधीजी ने जो कुछ हुआ उसे उसकी अवस्था तक पहुंचाने का अनुरोध राजाजी से किया होगा। तारों के आदान-प्रदान के बाद प्रस्तावों को प्रकाशित कर दिया गया।

योजना इस प्रकार है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस तथा अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के बीच समझौते की शर्तें जिनसे गांधीजी और मि० जिन्ना सहमत हैं, जिन्हें कांग्रेस व लीग से स्वीकार कराने का प्रयत्न वे करेंगे:—

(१) स्वाधीन भारत के लिए नये विधान की निम्न शर्तें पूरी होने की हालत में मुस्लिम-लीग स्वाधीनता के लिए भारत की मांग का समर्थन करेगी और संक्रान्ति काल के लिए अस्थायी अंतःकालीन सरकार स्थापित करने में कांग्रेस के साथ सहयोग करेगी।

(२) युद्ध समाप्त होने पर भारत के उत्तर-पश्चिम व उत्तर-पूर्व में उन मिले हुए जिलों को निर्दिष्ट करने के लिए, जिनमें मुसलमानों का स्पष्ट बहुमत है, एक कमीशन की नियुक्ति की जायगी। इस प्रकार निर्दिष्ट क्षेत्रों में वहांके सभी निवासियों का बालिगमताधिकार अथवा अन्य व्यावहारिक मताधिकार के आधार पर मत-संग्रह होना चाहिए और इसी तरह हिन्दुस्तान से उस क्षेत्रों के अलग होने का फैसला होना चाहिए। यदि बहुसंख्यक जनता हिन्दुस्तान से पृथक् एक सत्तासंपन्न राज्य की स्थापना का फैसला करे तो इस फैसले को कार्यान्वित किया जाय, किन्तु सीमा के जिलों को किसी भी राज्य में सम्मिलित होने की आजादी रहनी चाहिए।

(३) मत-संग्रह से पहले प्रत्येक पक्ष को अपने मत का प्रचार करने की पूरी आजादी रहनी चाहिए।

(४) पृथक्करण के बाद रक्षा, व्यापार, यातायात के साधन व अन्य विषयों की रक्षा के लिए एक समझौता होना चाहिए।

(५) जनसंख्या का आदान-प्रदान सिर्फ जनता की इच्छा से ही होना चाहिए।

(६) ये शर्तें सिर्फ उसी हालत में लागू होंगी जबकि ब्रिटेन भारत के शासन की पूरी जिम्मेदारी का त्याग करना चाहेगा।

श्री राजगोपालाचार्य व गांधीजी की शर्तों और प्रस्तावों के सम्बन्ध में एक बात पर ध्यान देने की आवश्यकता है। पहली शर्त यह है कि "मुस्लिम लीग स्वाधीनता के लिए भारत की मांग का समर्थन करेगी और संक्रान्ति काल के लिए अस्थायी अंतःकालीन सरकार स्थापित करने में कांग्रेस के साथ सहयोग करेगी।"

इतना ही नहीं, धारा ६ में कहा गया है कि "ये शर्तें सिर्फ उसी हालत में लागू होंगी जबकि ब्रिटेन भारत के शासन की पूरी जिम्मेदारी का त्याग करना चाहेगा," यानी दूसरे शब्दों में जब कि पूर्णस्वाधीनता की प्राप्ति हो जायगी। इस प्रकार स्वाधीनता की बात प्रस्तावों के शुरू और अखीर दोनों ही जगहों पर आई है। हमें समझना चाहिए कि 'स्वाधीनता' से मतलब क्या था? इस सम्बन्ध में गांधीजी के एक दूसरे वक्तव्य से मदद मिलेगी, जो उन्होंने एक दूसरे सिलसिले में दिया था। गांधीजी ने कहा था कि उनके प्रस्ताव देश के विभाजन-सम्बन्धी उनके पिछले वक्तव्यों के विरुद्ध नहीं है। पहली बात यह है कि इन प्रस्तावों की अपनी अच्छाई या बुराई पर विचार होना चाहिए, न कि इस विषय पर कि ये पिछले वक्तव्यों के कहां तक विरुद्ध हैं। दूसरी बात है कि ये प्रस्ताव वास्तव में उनके पहले कथन के विरुद्ध नहीं हैं। गांधीजी ने कहा कि देश के हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के रूप में बँटवारे और भारतीय संघ से देशी राज्यों के स्थायी पृथक्करण में, जैसाकि क्रिप्स-योजना के अंतर्गत होना सम्भव था, कम भेद नहीं है। दूसरे शब्दों में स्वाधीन भारत की कल्पना देशी राज्यों से अलग नहीं की जा सकती। इसलिए गांधी-जिन्ना मिलन से काफी पहले यह प्रकट होना उचित ही हुआ कि 'स्वाधीन भारत' से गांधीजी का तात्पर्य क्या है। इस सम्बन्ध में मि० जिन्ना ने कुछ नहीं कहा, किन्तु न्यूयार्क से लंदन तक और लंदन से लाहौर तक खूब गुलगपाड़ा मचा।

पाकिस्तान के सम्बन्ध में जो विभिन्न प्रस्ताव पास हुए उनका भी तुलनात्मक अध्ययन नीचे दिये उद्धरणों से किया जा सकता है:—

"निश्चय किया गया कि....इस देश में तब तक कोई वैधानिक योजना सफलतापूर्वक कार्यान्वित नहीं की जा सकती या मुसलमानों को स्वीकृत नहीं हो सकती जब तक कि उसका निर्माण निम्न आधार पर नहीं किया जाता, यानी भौगोलिक दृष्टि से मिली हुए इकाइयों को मिलाकर ऐसे प्रदेशों के रूप में निर्दिष्ट किया जाय—इसके लिए भूमि का आदान-प्रदान करके भी आवश्यक व्यवस्था की जा सकती है—कि जिन क्षेत्रों में संख्या की दृष्टि से मुसलमानों का बहुमत हो, जैसाकि देश के उत्तर-पश्चिमी और उत्तर-पूर्वी भागों में है, उन्हें मिलाकर ऐसे 'स्वाधीन राज्यों' की स्थापना की जा सके, जिनमें भाग लेने वाली इकाइयां आंतरिक दृष्टि से स्वाधीन और सत्ता-सम्पन्न हों।"

मुस्लिम लीग का लाहौर में (जून, १९४०) पास प्रस्ताव।

"कांग्रेस बहुत पहले ही से भारत की स्वाधीनता और अखंडता की हामी रही है और उसका मत है कि ऐसे समय जब कि आधुनिक संसार में लोग अधिक बड़े संघों की बात सोचने लगे हैं, इस अखंडता को भंग करना सभी सम्बन्धितों के लिए हानिकर है और इसकी कल्पना भी दुःखद है। इसके बावजूद समिति यह नहीं सोच सकती कि किसी प्रदेश की जनता को उसकी घोषित व प्रमाणित इच्छा के विरुद्ध भारतीय संघ में रहने के लिए बाध्य किया जा सकता है...प्रत्येक प्रादेशिक इकाई को संघ के भीतर पूरी आंतरिक स्वाधीनता रहनी चाहिए..."

कांग्रेस कार्य-समिति का दिल्ली में (अप्रैल, १९४२) पास प्रस्ताव।

"युद्ध समाप्त होने पर भारत के उत्तर-पश्चिम व उत्तर-पूर्व में उन मिले हुए जिलों को निर्दिष्ट करने के लिए, जिनमें मुसलमानों का स्पष्ट बहुमत है, एक कमीशन की नियुक्त की जायगी। इस प्रकार निर्दिष्ट क्षेत्रों में वहांके सभी निवासियों का बालिग मताधिकार अथवा अन्य व्यावहारिक मताधिकार के आधार पर मत-संग्रह होना चाहिए और इसी तरह हिन्दुस्तान से उन क्षेत्रों के अलग होने का फैसला होना चाहिए। यदि बहुसंख्यक जनता हिन्दुस्तान से पृथक् एक सत्ता सम्पन्न राज्य की स्थापना का फैसला करे तो इस फैसले को कार्यान्वित किया जाय, किन्तु सीमा के जिलों को किसी भी राज्य में सम्मिलित होने की आजादी रहनी चाहिए।"

राजाजी का वह गुर, जिसे गांधीजी ने मंजूर किया और जो बाद में मि० जिन्ना के पास भेजा गया।

अप्रैल, १९४२ में, जब सर स्टेफर्ड क्रिप्स दिल्ली में थे और कांग्रेस कार्य-समिति उनसे बातचीत कर रही थी, तो उसने एक प्रस्ताव पास किया, जिसमें निम्न अंश भी था—"इसके बावजूद समिति यह नहीं सोच सकती कि किसी प्रदेश की जनता को उसकी घोषित व प्रमाणित इच्छा के विरुद्ध भारतीय संघ में रहने के लिए बाध्य किया जा सकता है।"

यह स्पष्ट है कि इस अंश के द्वारा कांग्रेस देश के बँटवारे के सिद्धान्त को स्वीकार करती है, देश में एक से अधिक राज्य कायम करने की बात मानती है और मुल्क की एकता और अखंडता के सिद्धान्त का त्याग करती है। क्रिप्स-योजना का प्रलोभन इतना अधिक था कि समिति ने खुद भी उसका यह सिद्धान्त मान लिया। फिर बाद में कांग्रेस ने क्रिप्स-योजना को "दिवाला निकलते हुए बैंक के नाम बाद की तारीख का चैक" बता कर अस्वीकार करदिया।

क्रिप्स-योजना नामंजूर होने पर २ मई, १९४२ को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक इलाहाबाद में हुई और उसने निम्न प्रस्ताव पास किया.—

अखिल भारतीय कांग्रेस-समिति कमेटी का मत है कि भारतीय संघ या फेडरेशन से उसके किसी अंग या प्रादेशिक इकाई को अलग होने की आजादी देकर मुल्क के बँटवारे का कोई भी प्रस्ताव विभिन्न रियासतों तथा प्रान्तों की जनता के सर्वोत्तम हितों के विरुद्ध है और इसीलिए कांग्रेस ऐसे किसी प्रस्ताव को मंजूर नहीं कर सकती।

क्रिप्स-योजना के बाद

मुस्लिम लीग की कार्य-समिति ने क्रिप्स-योजना के सम्बन्ध में जो प्रस्ताव पास किया उसमें उसने सिर्फ मुस्लिम जनता का ही मत-संग्रह किये जाने की मांग की। बाद में अगस्त, १९४२ में लीग ने कहा कि वह अंतःकालीन सरकार कायम करने के लिए अन्य किसी भी दल से बराबरी के दर्जे सहयोग करने को तैयार है और ऐसा करने के लिए वह इस आधार पर तैयार होगी कि मुसलमानों को आत्म-निर्णय का अधिकार दिया जाय और उसने यह भी कहा कि पाकिस्तान-योजना को अमल में लाने के लिए वह मुसलमानों के लोकमत संग्रह से होने वाले फैसले को मानेगी।

क्रिप्स-योजना

"(सी) सम्राट की सरकार इस प्रकार तैयार किये गये किसी भी विधान को मानेगी, बशर्ते कि (१) ब्रिटिश भारत के किसी ऐसे प्रान्त का, जो नया विधान स्वीकार करने को तैयार न हो, वर्तमान वैधानिक स्थिति में रहने का अधिकार सुरक्षित रहे और बाद में उसे, यदि वह ऐसा निर्णय करे, विधान में सम्मिलित होने का अधिकार रहे।

"विधान में सम्मिलित न होने वाले प्रान्तों के लिए, यदि वे चाहेंगे, सम्राट् की सरकार एक अलग विधान बनाने को तैयार होगी और यह निर्धारित कार्य-पद्धति के अनुसार उन्हें भी भारतीय संघ के ही समान पद प्रदान करेगी।"

गांधीजी और मि० जिन्ना १० दिन तक सितम्बर में मिले। गांधीजी के विचारों के अनुसार एक केन्द्र का रहना भी 'आवश्यक था,' जो रक्षा, व्यापार तथा यातायात-साधनों की व्यवस्था करेगा। यह मि० जिन्ना को अच्छा न लगा और वे लगातार किन्तु व्यर्थ ही दो राष्ट्रों के सिद्धान्त और सम्पूर्ण जनता के आम मत-संग्रह के बिना ही देश के बँटवारे के सिद्धान्त मानने की जिद गांधीजी से करते रहे। इस तरह परिणाम कुछ भी न निकला।

(ख) फिलिप्स-कांड

सभी महाकाव्यों तथा कथाओं में छोटी-छोटी कितनी ही ऐसी घटनाएं भी होती हैं, जो स्वयं उस महाकाव्य या कथा से कम मनोरंजक नहीं होतीं। भारतीय स्वाधीनता-संग्राम की महान कथा में भी अनेक सनसनीपूर्ण घटनाएं हैं और इन्हींमें एक वह भी है, जिसे १९४३-४४ की फिलिप्स-घटना भी कहा जाता है। मि० फिलिप्स भारत में राष्ट्रपति रूजवेल्ट के व्यक्तिगत प्रतिनिधि थे। उनकी योग्यता कसौटी पर कसी जा चुकी थी और उनका अनुभव भी बहुमुखी था। यह भी कहा जाता है कि उन्हें खुद मि० चर्चिल से चाहे जहां जाने और चाहे जिससे मिलने का अधिकार प्राप्त था। फिलिप्स ने भारत की राजनीतिक स्थिति का बड़ी सावधानी से अध्ययन किया था और उन्होंने फरवरी १९४३ में गांधीजी तथा कार्य-

समिति से मिलने की इजाज़त के लिए अधिकारियों से मांग की थी। गांधीजी के अनशन के कारण मि० फिलिप्स का पहला अनुरोध नामंजूर कर दिया गया और दूसरे अनुरोध के लिए भी, जो अप्रैल, १६४३ में किया गया था, वाइसराय से देहरादून में मुलाकात के समय नर्मी से इनकार कर दिया गया। उस समय कहा जाता था कि राजनीतिक समस्या के निबटारे के लिए मि० फिलिप्स की एक विशेष योजना थी और अमरीका के राष्ट्रपति की मध्यस्थता से अंग्रेज़ों के पास भेजने से पूर्व वे उस पर गांधीजी की स्वीकृति ले लेना चाहते थे। इस सम्बन्ध में मि० फिलिप्स ने राष्ट्रपति को जो रिपोर्टें और पत्र लिखे थे उनमें देश की सैनिक व राजनीतिक दशा का ज़िक्र होना स्वाभाविक था। साथ ही यह भी बताया गया था कि तत्कालीन परिस्थिति में क्या त्रुटियां हैं और उन्हें कैसे दूर किया जा सकता है। फिलिप्स १६४३ की वसंत ऋतु में अमरीका के लिए रवाना हुए। बाद में उनके वाशिंगटन में मौजूद होने के समाचार कई बार मिले और गोकि कई अवसरों पर भारत लौटने की आशा उन्होंने कई बार प्रकट की, किन्तु बाद में वे जनरल आइसेनहोवर के सलाहकार बनाकर लन्दन भेज दिये गये। परन्तु मि० फिलिप्स से भारत के सम्बन्ध का अन्त अचानक एक ऐसी रहस्यपूर्ण घटना के कारण हुआ जो सितम्बर, १६४४ के पहले सप्ताह में हुई।

बात यह थी। मि० फिलिप्स भारत से चलकर जब वाशिंगटन पहुंचे उस समय ब्रिटिश प्रधान मन्त्री मि० चर्चिल भी वहीं थे। राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने मि० चर्चिल और मि० फिलिप्स की मुलाकात का प्रबंध कर दिया। डा० कैलाशनाथ काटजू का कहना है कि दिल्ली में यह बात आमतौर पर फैल गयी कि मि० चर्चिल ने अपनी इस आध घन्टे की मुलाकात में मि० फिलिप्स से बड़ी उद्दंडता का व्यवहार किया। उन्होंने मि० फिलिप्स की एक नहीं सुनी। वे कमरे में पैर पटकते हुए नाराजी से चहलकदमी करने लगे। कहा जाता है कि मि० चर्चिल ने कहा कि हिन्दुस्तान की समस्या का सम्बन्ध इंग्लैंड से है और मैं अमरीका का हस्तक्षेप इस मामले में तनिक भी सहन नहीं कर सकता।

'रायटर' का निम्न सन्देश, जो न्यूयार्क से प्राप्त हुआ था, कोलम्बो के पत्रों में प्रकाशित हुआ था :—

न्यूयार्क के 'डेली मिरर' पत्र के सोमवार के अंक में ड्यू पियर्सन के 'वाशिंगटन मेरी गो राउण्ड' कालम में कहा गया है :—"राजदूत विलियम फिलिप्स के लन्दन में जनरल आइसेन होवर के राजनीतिक सलाहकार के पद से हटाये जाने के कारण बड़ी नाराजी फैली हुई है। मि० फिलिप्स व्यक्तिगत कारणों से घर वापस आये हैं।" परन्तु सत्य तो यह है कि उन्हें लन्दन से चले आने का आदेश इसलिए दिया गया था कि उन्होंने राष्ट्रपति रूजवेल्ट को एक पत्र भारत में अंग्रेज़ों की नीति की आलोचना करते हुए और भारत को स्वाधीनता प्रदान करने की सिफारिश करते हुए लिखा था।

"२५ जुलाई को इस कालम में प्रकाशित हुए पत्र के कारण बड़ी सनसनी फैल गयी। अंग्रेज़ों ने सरकारी तौर पर इसके लिए जवाब तलब किया है। बाद में विदेशमंत्री एंथोनी ईडेन ने मि० फिलिप्स के बुलाये जाने की मांग भी की। ब्रिटेन ने नयी दिल्ली से जनरल मैरल को वापस बुलाने की भी मांग की, जिन्होंने मि० फिलिप्स की गैरहाजिरी में अमरीकी दूतावास के प्रधान का काम संभाला। उन्होंने इस्तीफा दे दिया और वे कुछ ही समय में वापस लौटने वाले हैं। अंग्रेजों की आपत्ति मि० फिलिप्स-द्वारा राष्ट्रपति रूजवेल्ट के पास भारत-

सम्बन्धी रिपोर्ट भेजने के विषय में थी। लन्दन में इस बात को लेकर नाराजी फैली हुई है कि जापानियों से युद्ध के कारण भारत में हमारी (अमरीका की) दिलचस्पी है।"

मि० फिलिप्स के इन शब्दों को उद्धृत करने के बाद कि "भारतीय सेना भाड़े की टट्टू है। अब अंग्रेज़ों-द्वारा कुछ करने का समय आ गया है। वे कम-से-कम यही घोषणा कर सकते हैं कि भारत युद्ध के बाद निर्दिष्ट तारीख तक स्वाधीनता प्राप्त कर लेगा।" मि० पियर्सन ने कहा—"मि० एंथोनी ईडेन ने वाशिंगटन-स्थित राजदूत सर रोनाल्ड केम्पबेल को तार-द्वारा सूचित किया कि वे स्वयं तथा प्रधानमंत्री श्री० चर्चिल बड़े उद्विग्न हैं और दूतावास को आदेश देते हैं कि वह अमरीकी-सरकार से इस मामले की जांच कराने की मांग करे। मि० कार्डेल हल ने सूचित किया कि मि० फिलिप्स का पत्र भूतपूर्व अन्डर सेक्रेट्री मि० सुमनर वेल्स के द्वारा प्रकाश में आया। मि० ईडन ने फिर दूसरा तार भेजकर इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया कि 'वाशिंगटन पोस्ट' जैसे प्रतिष्ठित पत्र ने मि० फिलिप्स के पत्र को कैसे प्रकाशित किया। ब्रिटिश विदेश मन्त्री ने यह भी कहा कि 'वाशिंगटन पोस्ट' को उपर्युक्त पत्र का खण्डन और उसकी आलोचना करते हुए एक अग्रलेख प्रकाशित करना चाहिए। सर रोनाल्ड केम्पबेल के पत्र के उत्तर में श्री ईडेन ने फिर लिखा कि 'वाशिंगटन पोस्ट' को मि० फिलिप्स के इस कथन में सुधार करना चाहिये कि भारतीय सेना किराये की टट्टू है।

"लन्दन में मि० चर्चिल और मि० ईडन ने अपने दिल का बुखार अमरीकी राजदूत मि० जान विनाट पर उतारा और उनसे फिलिप्स से पूछने को कहा कि क्या अब भी उनके पहले ही के समान विचार हैं। मि० फिलिप्स ने स्वीकार किया कि उनके विचार अब और भी पक्के हो गये हैं, किन्तु पत्र प्रकाशित होने के सम्बन्ध में खेद प्रकट किया। मि० फिलिप्स ने कहा कि मेरी रिपोर्टें पत्र से भी कड़ी हैं और आशा प्रकट की कि कहीं उन्हें भी प्रकाशित न कर दिया जाय।" मि० ईडन ने अपने दूतावास को तार दिया कि अमरीकी-सरकार को सूचित करो कि मि० फिलिप्स लन्दन में स्वीकार्य नहीं हैं और साथ ही यह भी कहा कि 'हिन्दुस्तान हज़ारों फिलिप्स की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है।"

फिलिप्स-कांड की सब से मनोरंजक घटना वह प्रस्ताव है, जिसकी सूचना अमरीका की प्रतिनिधि सभा में दी गयी थी और जिसे स्वीकार भी कर लिया गया था कि सर रोनाल्ड केम्पबेल (वाशिंगटन स्थित ब्रिटिश राजदूत) और सर गिरजाशंकर बाजपेयी (अमरीका स्थित भारत-सरकार के एजेंट जनरल) को अस्वीकार्य घोषित कर दिया जाय, क्योंकि उन्होंने अमरीकी लोकमत को प्रभावित करने का प्रयत्न किया। यह प्रस्ताव एक रिपब्लिकन सदस्य काल्विन डी० जॉनसन का था।

प्रस्ताव में उन रिपोर्टों की भी चर्चा की गयी, जो राजदूत फिलिप्स ने भारतीय परिस्थिति के सम्बन्ध में दी थी। प्रस्ताव में कहा गया कि मि० फिलिप्स ने राष्ट्रपति को सिर्फ यही बताया है कि भारतीय सेना और भारतीय जनता किसी दूसरी सेना के साथ मिलकर युद्ध में जब तक भाग नहीं लेगी जब तक उन्हें स्वाधीनता का वचन न दिया जाय और साथ ही मि० फिलिप्स ने यह भी कहा कि "जापान के विरुद्ध कार्रवाई करने के लिए अमरीका के लिए सबसे महत्वपूर्ण आधार भारत है, ब्रिटेन जापान के विरुद्ध युद्ध में सिर्फ नाम मात्र के लिए भाग लेगा और यह भी कि अमरीका को भारतीय सेना तथा भारतीय राष्ट्र का अधिक समर्थन प्राप्त करना चाहिए।"

ह्यू पियर्सन के विवरण के अनुसार राजदूत फिलिप्स ने १९४३ की वसंत ऋतु में राष्ट्रपति रूजवेल्ट को निम्न पत्र लिखा था :—

"प्रिय राष्ट्रपति महोदय—गांधीजी सफलतापूर्वक अपना अनशन समाप्त कर चुके हैं और इसका एकमात्र परिणाम यह हुआ है कि बहुत से लोगों में अंग्रेज़-विरोधी भावना बढ़ गयी है। सरकार ने अनशन के सम्बन्ध में विशुद्ध कानूनी दृष्टि से कार्रवाई की है। गांधीजी "शत्रु" हैं और उन्हें उचित दण्ड मिलना ही चाहिए और अंग्रेज़ों की मर्यादा की हर हालत में रक्षा होनी चाहिए। भारतीयों ने अनशन को बिल्कुल दूसरे ही दृष्टिकोण से देखा। गांधीजी के अनुयायी उन्हें आधा देवता मानते हैं और उनकी पूजा करते हैं। ऐसे लाखों जन भी, जो गांधीजी के अनुयायी नहीं हैं, उन्हें आधुनिक समय का प्रमुख भारतीय मानते हैं और उनका खयाल है कि गांधीजी को अपनी सफाई देने का मौका नहीं दिया गया और वे इसमें एक ऐसे वृद्ध को दंडित करने का प्रयत्न देखते हैं, जिसने भारत की स्वाधीनता के लिए अनेक कष्ट उठाये हैं और अपने देश की स्वाधीनता प्रत्येक भारतीय को प्यारी है। इस तरह इस संघर्ष के परिणाम स्वरूप गांधीजी की मर्यादा और नैतिक बल में वृद्धि हुई है।

"साधारण परिस्थिति, जैसी कि उसे मैं आज देखता हूं, इस प्रकार है :—अंग्रेजों के दृष्टिकोण से उनकी स्थिति नामुनासिब नहीं है। उन्हें भारत में लगभग १५० वर्ष बीत चुके हैं और १८५७ के गदर को छोड़ कर उनके शासन-काल में लगातार शान्ति कायम रही है। इस अरसे में अंग्रेजों ने देश में भारी स्वार्थ संचित कर लिये हैं और उन्हें भय है कि भारत से हटते ही उन के इन स्वार्थों को हानि पहुंचेगी। बम्बई, कलकत्ता और मद्रास जैसे विशाल नगरों का निर्माण मुख्यतः उन्हींके प्रयत्नों के परिणामस्वरूप हुआ है। अंग्रेजों ने देशी नरेशों को उनकी सत्ता कायम रखने का आश्वासन दिया है। देशी नरेशों के नियंत्रण में देश का तिहाई भाग है और इसकी चौथाई जनता उस भाग में रहती है। अंग्रेज महसूस करने लगे हैं कि दुनिया भर में ऐसी शक्तियों को बल प्राप्त होने लगा है, जिनका प्रभुत्व भारत में उसके प्रमुख पर पड़ेगा और इसीलिए उन्होंने आगे बढ़ कर वचन दे दिया है कि भारतवासियों के एक स्थाई सरकार कायम करने में समर्थ होते ही वे भारत को स्वाधीन कर देंगे। भारतीय ऐसा करने में समर्थ नहीं हो पाये और अंग्रेज अनुभव करने लगे कि वर्तमान परिस्थिति में जो कुछ भी वे कर सकते थे उन्होंने कर दिया। इस सब के पीछे मि० चर्चिल हैं, जिनकी व्यक्तिगत विचार-धारा यह है कि युद्ध समाप्त होने से पहले या बाद में कभी भी भारतीय सरकार के हाथ में शक्ति न सौंपी जाय और वर्तमान स्थिति को ही कायम रखा जाय।

"दूसरी तरफ भारतीयों में दलित राष्ट्रों की स्वाधीनता की भावना भर गयी है, जिसका इस समय संसार में दौरदौरा है। अटलांटिक अधिकारपत्र से इस आन्दोलन को और भी प्रगति मिली है। आपके भाषणों से भी प्रोत्साहन मिला है। अंग्रेजों ने युद्ध के बाद भारत को स्वतंत्रता प्रदान करने की जो घोषणाएं की हैं उनके कारण शिक्षित भारतीयों की विचारधारा में भारतीय स्वतंत्रता का चित्र और भी सजीव हो उठा है। दुर्भाग्यवश, युद्ध का अन्त जैसे-जैसे निकट आता जाता है वैसे-वैसे विभिन्न दलों में राजनीतिक शक्ति के लिए संघर्ष बढ़ता जाता है। इसीलिए नेताओं के लिए किसी समझौते पर पहुँचना कठिन हो गया है। कांग्रेस के ५० या ६० हजार समर्थकों के अलावा गांधीजी तथा कांग्रेस के सभी प्रमुख नेता जेल में हैं। परिणाम यह हुआ है कि सब से शक्ति-शाली राजनीतिक संगठन होते हुए भी कांग्रेस की तरफ से बोलने वाला

कोई व्यक्ति नहीं रह गया है। इस तरह पूरा राजनीतिक गतिरोध हो गया है। मेरा यह भी खयाल है कि वाइसराय और मि० चर्चिल को गतिरोध अधिक-से-अधिक समय तक बनाये रखने में कुछ भी आपत्ति नहीं है। कम से-कम भारतीय हलकों में तो यही मत प्रकट किया जाता है।

"प्रश्न उठता है कि क्या हमारी सहायता से इस गतिरोध को भंग किया जा सकता है? मुझे तो यही संभव जान पड़ता है कि हम भारत के राजनीतिक नेताओं से मिलने का अनुरोध करें ताकि भारत में अमल में आ सकने वाले विधान पर विचार किया जा सके। भारतीयों के लिए समस्या को हल कर सकने की बुद्धिमत्ता प्रकट करने का एक मात्र यही तरीका है। हमें यह खयाल न करना चाहिए कि भारतीय ब्रिटिश या अमरीकी प्रणाली को ही स्वाकार करेंगे। अल्प संख्यकों को संरक्षण देने की समस्या का महत्व अत्यधिक होने के कारण सभवतः भारत में बहुमत शासन-प्रणाली अमल में न लायी जा सके और शायद देश के भीतर सद्भावना भी मिली-जुली सरकारें कायम करके ही रखी जा सके। जब तक शक्ति ग्रहण करने के लिए किसी भारतीय सरकार की स्थापना नहीं होती तब तक ब्रिटिश सरकार कलम की सही करने मात्र से शक्ति भारत को नहीं दे सकती। इसलिए सब से महत्वपूर्ण प्रश्न यही उठता है कि नेताओं को भारी जिम्मेदारी ग्रहण करने के लिए कैसे तैयार किया जाय शायद गतिरोध दूर करने का एक तरीका हो सकता है। मुझे इस तरीके की सफलता में पक्का विश्वास तो नहीं है, फिर भी यह आपके लिए विचारणीय अवश्य है। ब्रिटिश सरकार की रजामंदी और अनुमति से संयुक्त राष्ट्र अमरीका के राष्ट्रपति की तरफ से सभी भारतीय दलों के नेताओं के पास भावी योजनाओं पर विचार करने के लिए निमंत्रण भेजा जाय। इस सम्मेलन का अध्यक्ष एक ऐसा अमरीकन नियुक्त किया जाय, जो जाति, धर्म, वर्ण और राजनीतिक मतभेदों के बीच सामंजस्य स्थापित कर सके। भारतीय राजनीतिज्ञों पर जोर डालने के लिए यह सम्मेलन ब्रिटिश सम्राट्, अमरीकी राष्ट्रपति, सोवियट रूस के राष्ट्रपति तथा मार्शल चांग काई शेक के संरक्षण में हो सकता है। भारतीय नेताओं के नाम बुलावा भेजने के उपरान्त ब्रिटिश सम्राट् अपनी सरकार की तरफ से एक खास तारीख तक शक्ति हस्तांतरित करने और तब तक के लिए अंतःकालीन सरकार स्थापित करने की घोषणा कर सकते हैं। यह सम्मेलन दिल्ली के सिवाय देश के किसी भी शहर में हो सकता है।

"अमरीकी नागरिक के इस सम्मेलन का अध्यक्ष होने से लाभ सिर्फ यही न होगा कि भारत की भावी स्वाधीनता में अमरीका की दिलचस्पी प्रकट होगी बल्कि इससे स्वाधीनता देने के ब्रिटिश प्रस्ताव की अमरीका द्वारा गारंटी भी हो जायगी। यह एक महत्वपूर्ण बात है, जैसा कि मैं अपने पिछले पत्रों में कह भी चुका हूं, कि इस सम्बध में ब्रिटिश वचनों का विश्वास नहीं किया जाता। यदि किसी राजनीतिक दल ने इस सम्मेलन में आने से इनकार किया तो इससे दुनिया को जाहिर हो जायगा कि भारत स्व-शासन के लिए तैयार नहीं है और मुझे तो संदेह है कि कोई राजनीतिक नेता अपने को ऐसी स्थिति में रखना चाहेगा। मि० चर्चिल और मि० एमरी बाधा उपस्थित कर सकते हैं, क्योंकि चाहे कुछ भी कहा जाय छोटी-से-छोटी बात तक का शासन भारत में लंदन से ही होता है। यदि आप इस विचार से सहमत होकर मि० चर्चिल से सलाह लेना चाहेंगे तो वे यही कहेंगे कि कांग्रसी नेताओं के जेल में रहने के कारण इस प्रकार का कोई सम्मेलन होना असम्भव है। इस का उत्तर यही दिया जा सकता है कि कुछ नेताओं को जिन में सब से प्रमुख गांधीजी होंगे, सम्मेलन में भाग लेने के लिए बिना किसी शर्त के छोड़ा जा सकता है। अंग्रेज गांधीजी की रिहाई के लिए कोई-न-कोई बहाना जरूर खोज रहे होंगे क्योंकि गांधीजी और

वाइसराय के बीच का यह संघर्ष दोनों की ही विजय के साथ समाप्त हो चुका है—वाइसराय ने तो अपनी प्रतिष्ठा कायम रखी है और गांधीजी का अनशन सफलतापूर्वक समाप्त हो गया है और वे एक बार फिर प्रकाश में आ गये हैं।

"मेरे सुझाव में नया कुछ भी नहीं है। सिर्फ समस्या पर दृष्टिपात करने का तरीका ही नया है। अंग्रेज घोषणा कर चुके हैं कि यदि भारतीय स्वाधीनता के स्वरूप के विषय में एकमत हो जायं तो वे भारत को स्वाधीनता देने को तैयार हैं। भारतीयों का कहना है कि वे एकमत इसलिए नहीं हो पाते कि उन्हें अंग्रेजों के वादों पर भरोसा नहीं है। सम्भवत्, प्रस्तावित योजना के अन्तर्गत जहां एक तरफ भारतीयों को आवश्यक गारंटी मिल जाती है वहां दूसरी तरफ वह ब्रिटेन के प्रकट किये गये इरादों के भी अनुकूल है। सम्भवतः इस अड़ंगे को दूर करने का यही एक मात्र तरीका है। यदि इस अड़ंगे को अधिक समय तक जारी रहने दिया जायगा तो संसार के इस भाग में हमारे युद्ध-संचालन पर और रंगीन जातियों से हमारे भावी संबंधों पर हानिकर प्रभाव पड़ सकता है। यह सम्मेलन चाहे सफल न हो, पर अमरीका अटलांटिक अधिकारपत्र के आदर्शों को अग्रसर करने के लिए एक कदम अवश्य आगे बढ़ा सकेगा।

"मैं आप को अभी सुझाव इस लिए भेज रहा हूँ ताकि अप्रैल के अन्त या मई के आरम्भ में जब मैं वाशिंगटन पहुंचूंगा उसके पहले आप उस पर विचार कर चुके होंगे। वाशिंगटन पहुंचने पर मैं आपको और भी हाल की बातें बताऊंगा।

आपका शुभ चिन्तक

(ह) विलियम फिलिप्स

सेनेटर चेंडलर ने, जो केंटुकी के गवर्नर रह चुके थे और १९४१-४२ में भारत का दौरा करने वाले सेनेट के पांच सदस्यों में एक थे, एक प्रस्ताव के द्वारा मांग उपस्थित की कि राष्ट्रपति को मि० फिलिप्स की दूसरी रिपोर्ट भी प्रकाशित कर देनी चाहिए, जिस के सम्बन्ध में विश्वास किया जाता था कि वह पहली रिपोर्ट से भी अधिक जोरदार है। सेनेटर चेंडलर ने जिन कठोर शब्दों में ब्रटिश साम्राज्यवाद की निन्दा की उससे महाद्वीप एक से दूसरे छोर तक हिल उठा।

ब्रटिश सरकार ने कहा था कि उस ने मि० विलियम फिलिप्स को वापस बुलाये जाने की मांग नहीं की थी। सेनेटर चेंडलर ने ब्रटिश सरकार के इस खंडन का प्रतिवाद करते हुए वह तार प्रकाशित किया, जो भारत सरकार के विदेश विभाग के सेक्रेटरी सर ओलफ केरो ने लंदन भेजा था उस तार में कहा गया था कि भारत फिर मि० फिलिप्स का स्वागत नहीं कर सकता।

तार में कहा गया था—

"हमारा यह जोरदार मत है कि ब्रटिश दूतावास को अमरीकी सरकार से इस मामले पर बातचीत करनी चाहिए। मि० पियर्सन का लेख जिन समाचार पत्रों या पत्रों में हो उनके प्रवेश पर रोक लगाने के लिए हम प्रत्येक प्रयत्न कर रहे हैं। हमारा खयाल है कि फिलिप्स अभीतक राष्ट्रपति का भारत-स्थित प्रतिनिधि ही है। विचारों के जाहिर-होने से मि० फिलिप्स का संबन्ध हो या नहीं, किन्तु इतना स्पष्ट है कि वे हमें किसी तरह स्वीकार नहीं हो सकते और हम उनका किसी तरह स्वागत नहीं कर सकते। मैत्रीपूर्ण राजदूत से जैसे विचारों की आशा हम कर सकते हैं वैसे उन के विचार नहीं हैं। वाइसराय ने इस पत्र को देख लिया है"।

सेनेटर चेंडलर ने एक मुलाकात में बताया कि उन के पास मि० फिलिप्स-द्वारा राष्ट्रपति रूजवेल्ट को लिखे गये एक गुप्त पत्र की प्रतिलिपि है। यह पत्र १४ मई १९४२ का लिखा हुआ

है। मि० चेंडलर ने कहा कि इस पत्र को प्रकाशित करने का अवसर नहीं आया है, किन्तु यदि अवसर आया तो सेनेट के अधिवेशन में वेउसे पढ़ेंगे।

ब्रिटिश दूतावास के एक प्रतिनिधि से जब मत प्रकट करने के लिए कहा गया तो उसने लार्ड हैलिफेक्स के इस कथन की ही पुष्टि की कि सम्राट् की सरकार ने कभी भी मि० फिलिप्स को स्वीकार करने से इनकार नहीं किया।

मि० फिलिप्स को गांधीजी से मिलने की अनुमति न देने पर 'न्यू स्टेट्समेन एंड नेशन' ने ८ मई १९४३ को लिखा :—

हाल की घटनाओं में सबसे महत्त्वपूर्ण वाइसराय-द्वारा मि० फिलिप्स को जेल में गांधीजी से मिलने की अनुमति न देना है। मि० फिलिप्स ने इस की सूचना जो अमरीकी व भारतीय पत्र-प्रतिनिधियों को भी दी है उससे उनकी—यदि नराजी नहीं तो—निराशा का परिचय मिलता है और इस निराशा में उनकी सरकार भी हिस्सा बटा सकती है। मि० फिलिप्स को एक ऐसे अवसर से वंचित रखना, जिस के परिणामस्वरूप समझौते का मार्ग निकल सकता था, एक मूर्खता की बात थी। इससे भी अधिक अमरीकियों में यह भ्रम फैलने का खतरा है कि हम भारत में समझौता नहीं चाहते"।

इसी प्रकार मि० फिलिप्स द्वारा भारतीय सेना को 'मर्सनरी' सेना (वह सेना जो गैर मुल्क में लड़ाई के लिए रखी जाय) बताने, दक्षिण पूर्वी एशिया कमान के युद्ध-प्रयत्नों में अंग्रेजों के हिस्से को नाम मात्र का बताने और भारतीय सेना के अफसरों में धैर्य और साहस की कमीके बारे में जनरल स्टिलवेल के उद्धरण देने के विषय में भी तिल को ताड़ बनाया गया है। अंग्रेज या भारतीय जिन अफसरों के लिए जनरल स्टिलवेल ने ऐसा कहा था—यह स्पष्ट नहीं हो सका है। दूसरे सैन्य विशेषज्ञों के मत से कुछ अंतर की आशा तो की ही जाती थी, क्योंकि एक तो इन अफसरों को हाल में भरती करके ट्रेनिंग दी गई थी और दूसरे उन्हें ऐसे क्षेत्र में काम करना पड़ रहा था, जिस से दो बार पहले अंग्रेज खुद भाग चुके थे। भारतीय सेना 'मर्सनरी' कही जाने के सम्बन्ध में यह स्मरण किया जा सकता है कि क्रिप्स-मिशन के दिनों जब रक्षा का विषय हस्तांतरित करने का प्रश्न उठा तो यह खुले शब्दों में कहा गया कि भारतीय सेना जैसी कोई सेना है ही नहीं और जो भी कुछ है वह अंग्रेजी सेना है और इसी में भारतीय सैनिक सहायक सैनिकों के रूप में हैं। ऐसी सेना को क्या कहा जायगा? कुछ समय पूर्व गांधीजी ने भी भारतीय सेना को 'मर्सनरी' सेना कहा था। सर सिकंदर ने इस का प्रतिवाद किया था। तब गांधीजी ने भारतीय सैनिकों को "पेशेवर सैनिक" कहा था। खैर शब्द चाहे जो भी कहे जायँ भारतीय सैनिकों को देशभक्त सेना नहीं कहा जा सकता क्योंकि यहां तो भारतीय सेना तक का अस्तित्व नहीं है। इस तर्क का अंग्रेजों ने चारों तरफ से विरोध किया और कहा कि भारत ने ऐसे सैनिक प्रदान किये हैं जो अपनी इच्छा से भरती हुए हैं। यह सच है। परन्तु उन का स्वेच्छापूर्वक भरती होना और भी बुरा है, क्योंकि वे अपनी इच्छा से पेशेवर सैनिक बन कर एक ऐसे उद्देश्य की पूर्ति के लिए लड़े, जो भारत का अपना उद्देश्य नहीं था और एक ऐसे युद्ध में लड़े, जो भारत पर जबरन लादा गया था इस सम्बन्ध में पाठकों का ध्यान रिपब्लिकन दल के प्रतिनिधि कालिवन डी जांसन के उस वक्तव्य की ओर खींचा जाता है, जो उन्होंने ब्रिटिश पार्लमेंट के सदस्य रेजिनाल्ड पुरब्रिक द्वारा 'न्यूयार्क टाइम्स' में लिखे एक पत्र के उत्तर में दिया था। मि० जांसन लिखते हैं :—

"मि० फिलिप्स ने अपनी जो सरकारी रिपोर्ट राष्ट्रपति के समक्ष उपस्थित की थी उसमें

स्टिलवेल के ही शब्दों को उद्धृत किया गया था—'जनरल स्टिलवेल ने 'मर्सनरी' भारतीय सेना और विशेषकर भारतीय अफसरों में धैर्य और साहस की कमी के सम्बन्ध में चिंता प्रकट की है। इस प्रकार स्पष्ट है कि जिन दोनों बातों के विषय में विवाद उठ खड़ा हुआ है उन का प्रयोग मि० फिलिप्स ने नहीं बल्कि मि० स्टिलवेल ने किया था।'' 'मर्सनरी' शब्द के कोष में दिये अर्थ के अलावा इस की व्याख्या भारत के एक भूतपूर्व प्रधान सेनापति फील्ड मार्शल सर फिलिप (बाद में लार्ड) चेटवुड ने करते हुए उसे ऐसी सेना कहा है, जो रुपया देकर दूसरे देश से मंगाई गयी हो और एक ऐसे देश रखी गयी हो, जो उस का अपना न हो।''

कुछ लोगों ने फिलिप्स वाली घटना का महत्त्व घटाने का प्रयत्न किया और कुछ ने कहा कि बेकार ही तिल का ताड़ बना लिया गया। विचार चाहे जो भी ठीक हो इस में कोई शक नहीं है कि ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस के खिलाफ़ अमरीका में प्रचार करने के जो हजारों प्रयत्न किये थे वे इसी एक घटना-द्वारा धूल में मिल गये।

५ अक्तूबर, १९४४ को मि० एमरी ने एक प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा कि कार्य-समिति के सदस्यों की रिहाई का कोई कारण उपस्थित नहीं हुआ है। परन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि मि० एमरी जिस समय पार्लमेंट में यह घोषणा कर रहे थे उसी समय अहमदनगर नजरबंद कैम्प के सुपरिंटेंडेंट ने डा० सैयद महमूद को सूचित किया कि सरकार ने उन्हें बिना किसी शर्त रिहा करने का फैसला कर लिया है। यह रिहाई स्वास्थ्य बिगड़ने के कारण भी नहीं हुई, जिससे कि कहा जा सके मि० एमरी को मालूम न हुआ हो। यह रिहाई तो बिना किसी शर्त के थी। डा० महमूद की अप्रत्याशित और एकाएक रिहाई से जो तरह-तरह की अटकल-बाजी लगायी गयी थी वे उन के वाइसराय के नाम ७ सितम्बर के उस पत्र के प्रकाशित होने से समाप्त हो गयी, जो उन्होंने कार्य-समिति के अन्य साथियों से सलाह लिये बिना लिखा था। इस पत्र के कारण सरकार के पास उन्हें रिहा करने के अलावा और कोई चारा नहीं रह गया, क्योंकि उनके पत्र से वाइसराय के भाषण की दो शर्तें पूरी होती थीं—यानी अगस्त प्रस्ताव से मतभेद प्रकट करना और युद्ध-प्रयत्न से असहयोग या बाधा का रुख हटा लेना। यही नहीं, डा० सैयद महमूद का रुख तो और भी आगे बढ़ा हुआ था, क्योंकि उन्होंने तो साफ लफ्ज़ों में कह दिया कि वे तो हमेशा से बिना किसी शर्त सहयोग के पक्षपाती रहे हैं। डा० महमूद का पत्र पढ़ कर बड़ा दुख होता है। जिस समय गांधीजी ने उनके इस कार्य को माफ किया उस समय शायद उनके सामने सभी तथ्य मौजूद न थे।

केन्द्रीय असेम्बली (नवम्बर, १९४४)

केन्द्रीय असेम्बली की बैठक नवम्बर में शुरू हुई। इस अधिवेशन के सम्बन्ध में सबसे मनोरंजन बात यह थी कि कांग्रेसी दल ने उसमें भाग लिया। यह नहीं कि कुछ कांग्रेसी सदस्यों ने विद्रोह करके ऐसा किया हो, बल्कि कांग्रेसी दल ने बिना किसी आदेश के अपनी एक बैठक में ऐसा फैसला किया था। इस प्रकार चार साल बाद कांग्रेसी लोग असेम्बली भवन तथा लाबी में फिर दिखायी देने लगे। इसके अलावा, दो निंदा के प्रस्ताव पास कराने के अतिरिक्त कांग्रेसी दल कुछ नहीं कर सका। इनमें पहला प्रस्ताव बख्त्यारपुर स्टेशन की एक रेल दुर्घटना के सम्बंध में था, जिसमें एक इंजन ने सर्चलाईट के बिना आगे बढ़कर ९ यात्रियों को गिरा दिया था। दूसरा प्रस्ताव सरकार के खाद्य-सम्बन्धी कुप्रबन्ध के विषय में था। सब से दुःखद पहलू यह था कि कांग्रेसी-दल ने असेम्बली के अधिवेशन में भाग लेकर इसी वर्ष पहले बजट अधिवेशन में

भाग लेनेवाले कुछ विद्रोही सदस्यों का अनुसरण करके कार्य-समिति के मई, १६३८ वाले निर्णय को उलट दिया। अन्य मनोरंजक बातों में एक यह जानकारी भी थी कि उस समय जेलों में लगभग २,१०० नजरबन्द थे और इनमें से लगभग आठगुने ऐसे कैदी भी थे, जिन्हें सज़ा मिल चुकी थी और इन सजायाफ्ता कैदियों में से सिर्फ बिहार में ४००० और संयुक्तप्रांत में ३००० से अधिक व्यक्ति थे। खाद्य की उपलब्धि के विषय में सरकार का रुख अधिक संयत हो गया और वह अधिक सतर्कता से अपने वक्तव्य देने लगी। खाद्य के डाइरेक्टर-जनरल श्री सेन तथा ग्रिफिथ्स के वक्तव्यों से स्पष्ट हो गया कि उपलब्धि तथा ढुलाई के सम्बन्ध में व्यवस्था कैसी थी। साथ ही इस बार सरकारी वक्तव्यों में अतिरंजित आत्म-विश्वास की भावना भी न थी, जो पिछले वक्तव्यों में पायी जाती थी। परन्तु १६४५ में फरवरी से अप्रैल तक के बजट-अधिवेशन से लोगों का अधिक ध्यान आकर्षित हुआ। नेताओं के अहमदनगर किले से उनके प्रांतों में भेजे जाने में भी कुछ अनावश्यक दिलचस्पी ली गयी। सरकार भी यह परिवर्तन करने को उत्सुक जान पड़ती थी—इसलिए नहीं कि उसे सदस्यों के प्रति कुछ हमदर्दी थी और न इसलिए कि उस पर लोक-मत का प्रभाव पड़ा था, बल्कि इसलिए कि समाप्त होते हुए यूरोपीय युद्ध से अधिकाधिक रेजिमेंट वापस आने के कारण सैनिक अधिकारियों का दबाव बढ़ता जा रहा था। बजट-अधिवेशन में आकर्षण का मुख्य केन्द्र स्वयं बजट होता है और सब दलों ने मिलकर सरकार को २७ बार हराया। १६३४ के बजट के समय से सरकार की उतनी अधिक हारें कभी न हुई थीं। बहसों के बीच राजनीतिक दिलचस्पी की सामग्री कुछ भी न थी।

नये वर्ष—१६४५ में भी कांग्रेस या सरकार एक को भी राहत न मिली। कांग्रेस की विचार-धारा यही थी कि "उसके नेता जेल में हैं।" और वे "कारागारों या किलों में नजरबन्द बने रहकर," गांधीजी के शब्दों में, अपने कर्तव्य का पालन कर रहे हैं। गांधीजी से जब कितने ही लोगों और खासकर विद्यार्थियों ने पूछा कि ६ अगस्त का दिन कैसे मनाना चाहिये तो उन्होंने उत्तर दिया :—

"एक सत्याग्रही जेल में घुलता कभी नहीं है। जेल में रहकर भी वह अपने उद्देश्य की पूर्ति करता है। इसलिए मैं इस प्रस्ताव को पसंद तो करता हूँ कि विद्यार्थी ६ तारीख को स्कूलों से गैर-हाज़िर तो रहें, किन्तु उन्हें अपना सम्पूर्ण दिन आत्म-शुद्धि तथा सेवा में व्यतीत करना चाहिए। आपका निश्चय चाहे जो हो, पर औचित्य की सीमा का अतिक्रमण न होना चाहिए और यह निश्चय अध्यापकों तथा स्कूल के प्रबंधकों की सलाह से होना चाहिए। आपको यह भी न भूलना चाहिए कि आपका स्कूल सरकारी स्कूल नहीं है।"

श्री प्यारेलाल ने गांधीजी के विचारों का स्पष्टीकरण करते हुए कहा कि स्कूलों से गैर-हाज़िर होने के लिए गांधीजी ने जो शर्तें बतायी हैं उन पर खास तौर पर ध्यान देना आवश्यक है—जो गैरहाज़िरी पर नहीं बल्कि आत्म-शुद्धि और सेवा के कार्यक्रम पर है। गांधीजी की इस सलाह का इस सिद्धांत पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता कि विद्यार्थी जब तक असहयोग करने और शिक्षा-संस्थाओं को छोड़ने का फैसला न करलें तब तक उन्हें अपनी-शिक्षा-संस्थाओं के अनुशासन तथा नियमों का पूरी तरह पालन करना चाहिए।

पहले सरकार के आगे और फिर मि० जिन्ना के आगे सुझाव उपस्थित करके गांधीजी ने जनता की पराजयमूलक भावना को मिटाने के लिए जो-कुछ भी सम्भव था वह किया। इसके अलावा, गांधीजी ने अपना रचनात्मक कार्यक्रम दोहराया और जनता तथा छूटे कांग्रेसजनों

में जो निराशा की भावना फैली हुई थी उसे दूर करके उत्साह का संचार किया।

इसके उपरांत गांधीजी मौन रहे और अलावा इसके कुछ भी न कहा कि जब तक कार्य-समिति जेल में है तब तक कुछ भी नहीं हो सकता। जहां तक सरकार का सम्बन्ध है, उसे उस दबाव के कारण राहत नहीं मिल रही थी, जो उस पर नेताओं की रिहाई के लिए भारत और इंग्लैंड में डाला जा रहा था। जब कि बाहर यह सब हो रहा था, अहमदनगर किले में जो लोग थे उनके स्वास्थ्य के सम्बन्ध में समाचार-पत्रों में प्रकाशित होने वाले समाचारों तथा केन्द्रीय असेम्बली में होने वाले सवाल-जवाबों से चिंता व परेशानी की भावना फैलती जा रही थी। १९४५ के मार्च और अप्रैल, तक सब नेता अपने अपने प्रांतों को भेज दिये गये। सिर्फ श्री कृपलानी को ही अपने जन्म के प्रांत को भेजा गया, जिसे वे बीस साल पहले छोड़ चुके थे। गोकि ट्रेड-यूनियन-कांग्रेस जैसी अराजनीतिक संस्था के अध्यक्ष २१ जनवरी को और लिबरल कांफ्रेंस जैसी माडरेट राजनीतिक संस्था १८ मार्च को नेताओं की रिहाई की मांग उपस्थित कर चुके थे, फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि मांग इतने ही तक सीमित थी।

इसके अलावा, अमरीका में उग्र प्रचार-कार्य चल रहा था। १९४४ के जाड़े में श्रीमती विजयालक्ष्मी पंडित ने अमरीका में भारत का जो प्रतिनिधित्व किया उसके सम्बन्ध में यहां कुछ कहना असंगत न होगा। उन्होंने देश के एक छोर से दूसरे छोर तक दौरा किया और अपने अकाट्य तर्कों से, अपनी आवाज की मिठास से और अपनी ओजस्विता से असंख्य सभाओं में श्रोताओं को प्रभावित किया। श्रीमती पंडित ने एक के बाद दूसरे मञ्च से घोषणा की कि जिस समय मुसोलिनी की शक्ति अपनी चरमसीमा पर थी उस समय भारत पहला देश था, जिसने फासिज्म के विरुद्ध आवाज़ उठायी थी और लोकतंत्रवाद के आदर्शों को ऊँचा उठाया था। बंगाल की यातना का करुण चित्र उनके जैसा और कोई नहीं खींच सकता था, क्योंकि अमरीका के लिए रवाना होने से कुछ ही पहले युद्ध-जन्य तथा मानव-निर्मित इस अकाल में भूखों की पीड़ा और नंगों का कष्ट वे अपनी आंखों से देख चुकी थीं। श्रीमती पंडित ने अमरीका पर भारत के प्रति अपने विचार स्पष्ट न करने का आरोप किया और स्वयं राष्ट्रपति रूजवेल्ट को भारत के राष्ट्रीय-जीवन के संकटकाल में चुप्पी साधे बैठे रहने का दोषी ठहराया। अमरीका में उनके भाषणों को व्यापक रूप से प्रकाशित नहीं किया गया, किन्तु इंग्लैंड में उनकी ओर पर्याप्त ध्यान आकर्षित हुआ। श्रीमती पंडित ने कहा कि इन दिनों सम्पूर्ण भारत ही एक विशाल नज़रबन्द कैम्प बना हुआ है और मि० एमरी ने उनकी इस उक्ति को "अविश्वसनीय" कहा। परन्तु श्रीमती पंडित ने फिर अपने शब्दों को दोहराया और चुनौती दी कि उनके कथन को गलत सिद्ध किया जाय। मि० एमेनुअल सेलर ने प्रतिवर्ष कुछ भारतीयों को अमरीका आकर बसने की जो अनुमति दिलायी उसमें भी श्रीमती पंडित ने कुछ कम भाग नहीं लिया। श्रीमती पंडित ने अमरीका के सभा-मंचों पर खड़े होकर अंग्रेज़ों से अनुरोध किया कि जिस 'श्वेत जाति के भार" को आप इतने दिनों से उठाये हुए हैं उसे उतार कर हलके हो जाइए। दूसरे प्रशांत-सम्मेलन के परिणामों से आपने निराशा प्रकट की और कहा कि सम्मेलन में वाद-विवाद सैद्धान्तिक था और वास्तविक मनुष्योपयोगी बातों का उसमें अभाव था। अमरीका की महिलाओं ने जिनमें श्रीमती रूजवेल्ट से लेकर प्रसिद्ध कार्यकर्तृ श्रीमती क्लेरी ल्यूस जैसी स्त्रियां थीं, आपके सम्मान में भोज तथा दावतों के आयोजन किये। श्रीमती पंडित ने क्लीवलैंड में 'कौंसिल आफ वर्ल्ड अफेयर्स' की तरफ से होने-वाली एक सभा में भाषण दिया। आपने कहा कि संसार की शांति में भारत एक बड़ा भारी रोड़ा

है, भारत की समस्या में युद्ध का सम्पूर्ण नैतिक प्रश्न निहित है और यह भी कि जब लोकतंत्र-वादी देश अपने कथित उद्देश्य की सिद्धि के लिए लड़ रहे हैं तो वे भारत की ४० करोड़ जनता के पदाक्रांत किये जाने को कैसे सहन करते हैं। श्रीमती पंडित ने कहा कि भारत का प्रश्न ऐसी समस्या नहीं है, जिसे अभी उठाकर ताक पर रख दिया जाय और युद्ध समाप्त होने पर शांति की शर्तों के तय होते समय ही उसे निबटाया जाय। न्यूयार्क से रेडियो पर ब्राडकास्ट करते हुए आपने कहा कि नये संयुक्तराष्ट्र-संगठन ने जिन नये सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है उनकी परीक्षा एशिया में होगी। परन्तु औपनिवेशिक साम्राज्यों का अस्तित्व संसार की शांति तथा मानवजाति की उन्नति के लिए सदा खतरा ही बना रहेगा।

गोकि सानफ्रांसिस्को के सम्मेलन में श्रीमती पंडित भारत की प्रतिनिधि के रूप में शरीक नहीं हो सकीं, किन्तु प्रशान्त औपनिवेशिक नीति पर विचार होते समय आपने प्रतिनिधियों व पत्रकारों को खूब बातें बताईं। 'यूनाईटेड प्रेस आफ अमेरिका' के प्रतिनिधि के मुलाकात करने पर श्रीमती पंडित ने अंग्रेजों, डचों और फ्रांसीसियों के इस विचार की कड़ी आलोचना की कि प्रस्तावित विश्व-संरक्षण प्रणाली के अन्तर्गत पराधीन राष्ट्रों को स्व-शासन का सिर्फ वचन ही मिलना चाहिए, वास्तविक स्वाधीनता नहीं। आपने कहा कि यूरोप की साम्राज्यवादी मांगों को स्वीकार करके अमरीका को अपने उज्ज्वल यश पर धब्बा न लगाना चाहिए। सानफ्रांसिस्को के स्काटिश राइट आडिटोरियम में २,५०० व्यक्तियों के समक्ष भाषण करते हुए श्रीमती पंडित ने साहसपूर्वक कहा कि यदि एशिया की जनता को कुछ आश्वासन न दिया गया तो वह विद्रोह कर देगी।

लिबरल फेडरेशन पाकिस्तान के विरुद्ध था और भारतीय संघ स्थापित होने से पूर्व राष्ट्रीय सरकार कायम किये जाने के पक्ष में था। इसके अतिरिक्त, उसने अखिल भारतीय नौकरियों के भारतीयकरण की भी मांग की और अनुसरण की जानेवाली नीति के सम्बन्ध में भय प्रकट किया। कुछ समय से इस प्रश्न के सम्बन्ध में चिन्ता प्रकट की जा रही थी। मि० एमरी ने कामंस सभा में जहां नेताओं की रिहाई के बारे में उदासीनता के रुख का परिचय दिया वहां कप्तान गेमंस के एक प्रश्न के उत्तर में कहा कि १ जनवरी, १९४३ को यूरोपीय अफसरों की संख्या १,७७१ थी। मि० एमरी ने कहा—"ये अफसर किन पदों पर है इस सम्बन्ध में मैं एक सरकारी रिपोर्ट जानकारी के लिए उपस्थित कर रहा हूं।" भारत मन्त्री के इस उत्तर से कुछ भ्रम फैल गया। नवम्बर, १९४४ में वाइसराय की कार्य-परिषद् के दो भूतपूर्व सदस्यों ने कहा था कि भविष्य में इंडियन सिविल सर्विस में सिर्फ भारतीयों की ही नियुक्त होनी चाहिए।

लार्ड-वेवल अपने भूतपूर्व गृह-सदस्य सर रेजिनाल्ड मेक्सवेल से, जिन्होंने केन्द्रीय असेम्बली में गतिरोध होने की बात से ही इनकार किया था, एक कदम आगे बढ़ गये। वाइसराय ने कहा कि उनकी मौजूदा शासन-परिषद् ही राष्ट्रीय सरकार है, क्योंकि उसमें १५ सदस्यों में से ११ भारतीय हैं।

पूर्व परम्परा के अनुसार लार्ड-वेवल ने १४ दिसम्बर, १९४४ को दूसरी बार असोशियेटेड चेम्बर्स आफ कामर्स, कलकत्ता में भाषण दिया। भारत में अंग्रेजी राज के वास्तविक स्वरूप को प्रकट करने वाली इससे अधिक और क्या बात हो सकती है कि वाइसराय प्रतिवर्ष अंग्रेज व्यापारियों की तरफ से एक व्याख्यान सुने और खुद भी एक व्याख्यान देकर उन्हें बतावे कि उसे जो

कम्पनी, अभी तक काम कर रही है । अब भी उस कम्पनी के हिस्सेदार अपने जनरल मैनेजर से जवाब तलब करते हैं । लार्ड हैलिफेक्स भले ही अजान अमरीकियों में प्रचार करें कि ब्रिटेन को भारत से एक सेंट भी नहीं मिलता । परन्तु अंग्रेज व्यापारी प्रति वर्ष भारत से औसतन् ७६ करोड़ डालर मुनाफा कमाते हैं ।

अस्तु, वाइसराय के उस भाषण में सामयिक समस्याओं के बारे में महत्वपूर्ण घोषणाएं की गयीं । विश्व युद्ध के समय प्रत्येक समस्या युद्ध की तुलना में गौण हो जाती है, जिस प्रकार कि प्रत्येक विभाग परोक्ष रूप से युद्ध-विभाग के अधीन होजाता है । यही कारण था कि वाइसराय ने एक वर्ष पहले इंग्लैंड में जो तीन कार्य अपने सामने बताये थे उनमें से पहला स्थान युद्ध में विजय प्राप्त करने को और अंतिम व तीसरा स्थान राजनीतिक गतिरोध दूर करने को दिया था । उस समय उन्होंने युद्ध, सामाजिक व आर्थिक कार्यक्रम और राजनीति का जो क्रमिक महत्व बताया था उसी क्रम से उन्होंने कदम भी उठाया । स्मरण किया जा सकता है कि उस समय लार्ड वेवल ने यह भी कहा था कि युद्ध चलते रहने की हालत में राजनीतिक समस्या का हल नहीं किया जा सकता । हम पाठक को लार्ड वेवल के उन शब्दों की भी याद दिलाना चाहते हैं, जो उन्होंने १७ फरवरी, १९४४ को व्यवस्थापिका-सभाओं के संयुक्त अधिवेशन में कहे थे । आपने कांग्रेसजनों से अनुरोध किया था कि कम-से-कम अपने अन्तःकरण में सोच-विचार करके ही उन्हें अगस्त (१९४२) प्रस्ताव से अपना मतभेद प्रकट करना चाहिए और यह भी सूचित किया था कि जब तक 'असहयोग तथा बाधाओं को हटा नहीं लिया जाता' तब तक मैं (लार्ड वेवल) कार्य-समिति के सदस्यों को रिहाई की सलाह नहीं दे सकता । वाइसराय ने यह भी कहा था कि ये उनके अंतिम विचार नहीं हैं ।

लार्ड वेवल ने अपने कलकत्ता वाले दूसरे भाषण में उस रहे-सहे संदेह को दूर कर दिया, जो कुछ आशावादी लोगों के मस्तिष्क में बना था कि शायद लार्ड वेवल राजनीतिक अड़ंगे को दूर करने के लिए शर्तों में कुछ परिवर्तन करना स्वीकार कर लें । उनके दूसरे वर्ष के विचार पहले वर्ष से कहीं अधिक कड़े थे । जहां एक तरफ उन्होंने राजनीतिक कैदियों की रिहाई के प्रश्न को छोड़ दिया था वहां दूसरी तरफ उन्होंने युद्ध के भारत पर प्रभाव, राष्ट्रीय सरकार, राजनीतिक व्याधि के उपचार के बारे में अपने विचार प्रकट किये थे । यह राजनीतिक व्याधि आश्चर्यजनक जान पड़ती थी और एक योद्धा, राजनीतिज्ञ तथा कवि के रूप में उनकी ख्याति के अनुरूप न थी । लार्ड वेवल अंग्रेजों की उस परम्परा तथा ईश्वर प्रदत्त स्वभाव के बिलकुल अनुरूप सिद्ध हुए, जिसका वर्णन चार्ल्स डिकेन्स ने अंग्रेजों के शासक वर्ग का चर्चा करते हुए किया है । डिकेन्स ने कहा है कि ये लोग 'किस प्रकार किसी कार्य को टाला जाय' की कला में चतुर हैं । लार्ड वेवल के पिलग्रिम्स भोज वाला 'मानसिक पिटारा' काफी प्रसिद्ध हो चुका है । पर आसोशियेटेड चेम्बर्स आफ कामर्स के भाषण में वाइसराय ने उस 'मानसिक पिटारे' को डाक्टर के बैग का रूप दे दिया । राजनीतिक प्रचारक से बदल कर आपने औषधि-विक्रेता का रूप धारण कर लिया । आपने मिक्शचर व गोली खिला कर उपचार करने के पुराने तरीकों की निन्दा की और 'विश्वास द्वारा चिकित्सा' के उसी तरीके की सिफारिश की, जिसके लिए ब्रिटेन में ईसाई वैज्ञानिकों को दंडित किया जाता रहा है । यद्यपि लार्ड वेवल राजनीतिज्ञ का स्थान-सैनिक को और सैनिक का स्थान राजनीतिज्ञ को देने की निन्दा कर चुके हैं, फिर भी यहाँ तो सैनिक सिर्फ राजनीतिज्ञ ही नहीं बन जाता बल्कि राजनीतिज्ञ एक चिकित्सक भी बन जाता है ।

भारतीय संस्कृति के लिए अपनी सहज घृणा प्रकट करते हुए लार्ड वेवल ने 'भारत छोड़ो' मिस्शचर तथा 'सत्याग्रह गोलियों' की निन्दा की और ब्रिटेन में विश्वास रखने की सलाह दी— उसी ब्रिटेन में, जो भारत, यूनान और पोलैंड में अटलांटिक अधिकार-पत्र की धज्जियां उड़ा चुका था, जिसने फ्रांको को स्पेन में, मुसोलिनी को इटली में और जापानियों को मंचूरिया में सत्ता जमाने में मदद की थी या उनके अस्तित्व को सहन किया था। हां, विश्वास की दलील दी जा सकती है, किन्तु उसी हालत में जब कि ब्रिटिश सरकार या ब्रिटिश पार्लमेंट स्थल, और वायु-सेनाओं से काम न लेती हो, जब कि 'विश्वास, आशा और प्रेम' ही उसके हथियार हों और जब कि इसके सीमोडों और बामबरों का स्थान उसकी 'अजेय आत्मा' ने ग्रहण कर लिया हो। परन्तु राष्ट्र जिन भावनाओं से आन्दोलित होते हैं वे वेवलों और चर्चिलों से छिपी नहीं रह सकतीं और यह नहीं हो सकता कि गुरुत्वाकर्षण का एक नियम ब्रिटेन के लिए हो और भारत के लिए दूसरा हो। विश्वास अंधा नहीं हो सकता, विश्वास करते समय यह ध्यान जरूर रखा जाता है कि जिसमें विश्वास किया गया है, वह व्यक्ति, स्थान या वस्तु उसके योग्य है या नहीं। अयोग्य, स्वार्थी, क्रूर या लालची डाक्टर में विश्वास नहीं किया जाता। विश्वास कोई स्वप्न की वस्तु नहीं है, उसकी पूर्ति की आशा आवश्यक है। भारत किस में विश्वास करे? उस चर्चिल में, जिसने सार्वजनिक रूप से कहा था कि शत्रु को धोखे में रखने के लिए झूठ बोलने में कोई हानि नहीं है या उस रूजवेल्ट में, जिसने अटलांटिक अधिकार-पत्र पर हस्ताक्षर होने की बात का खंडन किया था और जो पोलैंड के बँटवारे का उसके निवासियों की इच्छा के विरुद्ध भी समर्थन करने को तैयार थे। 'विश्वास अच्छा है, विश्वास उन्नतिकर है और राई बराबर विश्वास से पहाड़ तक हिल जाते हैं,' किन्तु हार्दिक और सच्चा विश्वास स्वाभाविक विकास से ही होता है। अपनी शान में भूले रहने वाले राजनीतिज्ञों की तो दूर रही, संगीनों के बल पर भी विश्वास पैदा नहीं हो सकता और न कोई नीम हकीम ही अपने इंजेक्शन से विश्वास का संचार कर सकता है। लार्ड वेवल के भूत-पूर्व सहयोगी सर होमी मोदी ने ठीक ही कहा था कि यदि "किसीको विश्वास-द्वारा उपचार की जरूरत है तो ब्रिटिश सरकार की चिकित्सा तो रक्तोपचार-द्वारा होनी चाहिए।"

प्रधानमंत्री विंस्टन चर्चिल ने भारत के स्वशासन के बारे में मि० फिलिप्स से जो निम्न शब्द कहे थे उन्हें भारत भूला नहीं है:—

"मेरा मत यूरोप के बारे में हमेशा ठीक रहा है। मेरे भारत सम्बन्धी विचार भी ठीक ही हैं। अभी नीति में किसी भी परिवर्तन का परिणाम रक्तपात ही होगा।"

हम गृह-विभाग के सेक्रेटरी जोइंसन हिक्स (बाद में लार्डब्रेडफोर्ड) के निम्न सच्चे व कानों में गूंजने वाले शब्दों को भी कभी भूल नहीं सकते:—

"हमें साफ लफ्जों में कहना चाहिए। हमें कपट को दूर रखना चाहिए। हम भारत में भारतवासियों के प्रेम के कारण नहीं हैं, बल्कि इसलिए हैं कि इससे जो कुछ भी लाभ हो सके, प्राप्त करलें। यदि भविष्य में कभी वर्तमान सरकार का कोई सदस्य ईमानदारी से सोचेगा और अपने विचार ईमानदारी से प्रकट करेगा तो वह भी ठीक यही कहेगा कि "हम भारत में भारत-वासियों के प्रेम के कारण नहीं हैं, बल्कि इसलिए हैं कि इससे जो भी कुछ लाभ हो सके, प्राप्त करलें।"

आइये, विचार करें कि क्या सचमुच भारत में अंग्रेजों की इतनी सम्पत्ति लगी हुई है कि चर्चिल के बताये रक्तपात के बिना भारतीय राष्ट्र को स्वाधीनता नहीं दी जा सकती। इस

सम्बन्ध में कुछ तथ्य इस प्रकार हैं:—

(१) भारत के ३,६०,००,००,००० डालर सार्वजनिक ऋण का वार्षिक ब्याज लगभग १०,००,००,००० डालर होता है।

(२) उद्योग, खान तथा यातायात साधनों में आधी पूंजी अंग्रेजों की है।

(३) जहाजरानी, चाय, कहवा, रबड़ और जूट में अंग्रेजों का एकाधिकार है। सूती कपड़ा और पिसाई के आधे उद्योगों पर उनका आधिपत्य है।

(४) भारत में कुल ब्रिटिश पूंजी ७,८०,००,००,००० डालर है, जिससे औसत ७०,००,००,००० डालर मुनाफा होता है।

फिर आश्चर्य ही क्या है जो मि० चर्चिल ब्रिटिश साम्राज्य के खात्मे को अपनी आंखों से देखने को तैयार न हों।

उपर्युक्त तथ्यों से तुलना करते समय निम्न बातें भी स्मरण रखनी चाहिए:—

(क) औसत भारतीय की आय १३.५० डालर है, जब कि प्रति व्यक्ति पीछे इंग्लैंड की आय ३६६.०० डालर और अमरीका में ६८०.०० डालर है।

(ख) कोयले की खानों में पुरुषों की मजदूरी २० सेंट दैनिक तथा स्त्रियों और बालकों की मजदूरी १० सेंट दैनिक है।

(ग) चाय वगैरा के बागों में मजदूरों के वेतन ६ से १० सेंट तक दैनिक हैं।

बम्बई और अहमदाबाद सूती-कपड़ा-उद्योग के प्रमुख केन्द्र हैं। जब सूती कपड़े की प्रमुख कम्पनियां शत-प्रति-शत मुनाफा कमाती हैं उनके मजदूरों में से २० प्रतिशत फुटपाथों पर सो कर निर्वाह करते हैं। सबसे अधिक मजदूरी बम्बई में मिलती है। यहां मजदूर सप्ताह में ५४ घंटे काम करते हैं और ३३ रुपया माहवार (११ डालर) कमाते हैं। उत्तरी भारत में औसत मजदूरी १२ रु० माहवार (४ डालर) है। ये आंकड़े अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस के अध्यक्ष श्री एस० ए० डांगे ने अपनी एक मुलाकात में दिये थे।

लार्ड वेवल ने यह नहीं सोचा कि ब्रिटेन के प्रति विश्वास रखने की जो वे वकालत कर रहे हैं उस से स्वाधीनता की वे गोलियां नहीं मिलेंगी, जिनमें और सिर्फ जिन्हीं में पीले, चिन्ता से कमजोर हुए और अशक्त भारत में नवजीवन का संचार हो सकता है। अपने भाषण के पिछले हिस्से में लार्ड वेवल ने अपनी शासन परिषद् के उत्तम कार्य की चर्चा की और कहा कि गोकि परिषद् की आलोचना की जाती रही है और उसे बुरा भला भी कहा जाता रहा है फिर भी उसने भारत के लिए आवश्यक कार्य किया और सब मिला कर बहुत ही अच्छी तरह किया। उस समय शासन परिषद् में ११ भारतीय थे और सर जर्मी रेजमेन के अवकाश ग्रहण करने पर लार्ड वेवल को १२वें भारतीय की नियुक्ति करने का मौक मिला, किन्तु नियुक्ति सर आर्चिबाल्ड रोलैंड्स की हुई। यह कहते हुए लार्ड वेवल स्वीकार कर रहे थे कि "नयी सरकार भारत की आवश्यकताओं के देखते हुए अधिक कारगर सिद्ध हो सकती है, इसलिए नहीं कि नयी सरकार वर्तमान सरकार से ज्यादा कार्यक्षम होगी, बल्कि इसलिए कि अभी और भविष्य में हमें जो प्रयत्न करने हैं उन में हमें काफी त्याग की जरूरत पड़ेगी। औसत आदमी अपने से गरीब व्यक्ति या भावी पीढ़ियों के लिए अपनी कुछ आय या आराम का त्याग करने के लिए तब तक राजी नहीं होता जब तक कि कोई तानाशाह उसे ऐसा करने के लिए मजबूर करे और या उस का नेतृत्व ऐसे लोग कर रहे हों, जिन पर उसका विश्वास हो।" साफ है कि

वाइसराय अनुभव कर रहे थे कि उन की सत्ता तानाशाही है, किन्तु उसकी दबाव डालने की शक्ति सामित है, क्योंकि भारत का औसत व्यक्ति उस पर विश्वास नहीं करता। परन्तु लार्ड वेवल सत्य से बिल्कुल अपरिचित न थे। आपने कहा—"परन्तु इस का यह मतलब नहीं कि कोई दूसरी राष्ट्रीय सरकार—जो मेरी व्याख्या के अनुसार राष्ट्रीय हो और साथ ही जिसे मुख्य राजनीतिक दलों का समर्थन प्राप्त हो, भारत की आवश्यकताओं के देखते हुए अधिक उपयोगी सिद्ध न होगी," क्योंकि "अभी तथा भविष्य में हमें जो प्रयत्न करने हैं उनमें हमें काफी त्याग की जरूरत पड़ेगी" और "औसत व्यक्ति तब तक त्याग नहीं करता, जब तक या तो कोई तानाशाह उसे ऐसा करने के लिए मजबूर न करे और या उस का नेतृत्व ऐसे लोग कर रहे हों जिन पर उस का विश्वास हो।" दूसरे शब्दों में लार्ड वेवल की तथाकथित राष्ट्रीय सरकार वास्तव में तानाशाही ही थी और उस की दबाव डालने की शक्ति सामित थी, जैसा कि वाइसराय ने खुद भी स्वीकार किया, और इसी कारण वे एक ऐसी राष्ट्रीय सरकार चाहते थे, जिसे जनता का विश्वास प्राप्त हो। जब लार्ड वेवल ने अपने ११ साथियों को "मुख्य कार्य करने तथा सेनापतियों की इच्छा के अनुसार युद्ध-प्रयत्नों को अग्रसर करने के लिए धन्यवाद दिया" तो उनका रुख स्कूल के एक अध्यापक के समान जान पड़ने लगा। सिर्फ इसी एक वक्तव्य से प्रकट हो गया कि इस सैनिक वाइसराय में उस रचनात्मक राजनीतिज्ञता का अभाव था, जिसकी आवश्यकता युद्धोत्तर कार्यों के लिए था। इतना ही नहीं, वाइसराय उस भारी मांग का भी अनुमान नहीं कर सके, जो जापान के विरुद्ध प्रशान्त के युद्ध का मुख्य आधार बनने के कारण भारत के प्रति की जानेवाली थी। यदि लार्ड वेवल ने जो कुछ कहा वही वह महसूस भी करते थे तो यही कहा जा सकता है कि कल्पना-शक्ति ने उन्हें बुरी तरह धोखा दिया। युद्ध के आर्थिक पहलुओं और गतिरोध के राजनीतिक कारणों के सम्बन्ध में विचार प्रकट करते हुए उन्होंने दो भारी गलतियां की थीं। लार्ड वेवल ने जो यह कहा था कि युद्ध के कारण भारत की शक्ति घटने के बजाय बढ़ी है—इसे हृदयहीनता या दूरदर्शिता का अभाव क्या कहा जाय? बंगाल में ७० लाख व्यक्तियों के प्राण गये, किन्तु लार्ड वेवल इसे युद्ध का परिणाम ही मानने को तैयार न थे। इस के अलावा, भारत भर में खाद्य की भारी कमी, वितरण व्यवस्था भंग हो जाने, कपड़े का कष्ट, चोर बाजार की बुराई, मुद्रा-बाहुल्य और मूल्य-सूचक अङ्कों का चढ़ कर २२७ तक पहुंच जाना (जब इंगलैंड में मूल्यों की वृद्धि ३० से ४० प्रतिशत ही हुई थी)— यह सब शक्ति बढ़ने की जगह घटने के ही लक्षण थे। जब लार्ड वेवल ने यह कहा कि ब्रिटिश सरकार पिछले दस वर्ष में राजनीतिक समस्या हल करने का प्रयत्न १९३५ का कानून पास कर के और क्रिप्स-मिशन भेज कर दो बार कर चुकी है तो कहा जा सकता है कि जहां तक पहली बार के प्रयत्न का ताल्लुक है, वाइसराय इतिहास की एक घटना पर प्रकाश डाल रहे थे और जहां तक दूसरे प्रयत्न का ताल्लुक है वे प्रचार की दृष्टि से उस का उल्लेख कर रहे थे। १९३५ वाला कानून भारत के विरोध करने पर और दूसरी गोलमेज परिषद् में उपस्थित किये गये आगाखां विचार-पत्र में एक स्वर से प्रकट की गयी भारतीयों की इच्छा के विरुद्ध पास किया गया था। क्रिप्स मिशन को उस समय भेजा गया जब जापानी हमले का खतरा उपस्थित हुआ था और खतरा हटते ही उसे वापस बुला लिया गया था। क्रिप्स-प्रस्तावों में जिस नीचता और वैधानिक धोखेबाजी का परिचय दिया गया था उसे यहां दोहराने की अवश्यकता नहीं है और स्वयं लार्ड वेवल भी, जो लार्ड लिनलिथगो के ही समान उस की असफलता के लिए

जिम्मेदार थे, प्रस्तावों के सम्बन्ध में इतनी वास्तविकता से परिचित थे, जितनी वे कभी मान नहीं सकते। वाइसराय की जिस बात ने जले पर नमक का काम किया वह तो यह थी कि इस संकट के समय प्रत्येक दल के लिए राष्ट्रीय सरकार वही है, जिसमें शक्ति उसके अपने पास रहे और यह भी कि यदि इस देश में राष्ट्रीय सरकार की स्थापना हुई तो उस का उद्देश्य युद्ध-प्रयत्न में तहेदिल से हिस्सा लेना होगा। प्रश्न है कि किस दल ने राष्ट्रीय सरकार में सिर्फ अपने ही लिये शक्ति की मांग की है? ऐसे अवसर पर जिस मर्यादा और सौजन्य की आशा व्याख्यानदाता से की जाती थी उस से उनकी ये बातें किसी भी तरह मेल नहीं खातीं।

इस सम्बन्ध में हम अंग्रेज डा० लुकास के बुद्धिमत्तापूर्ण शब्दों का हवाला देना चाहते हैं, जिन्होंने पंजाब आर्थिक सम्मेलन में भाषण देते हुए कहा था:—

"अभी उस दिन वाइसराय ने कलकत्ता में एक विवेचन वक्तव्य दिया है कि इस युद्ध के परिणामस्वरूप भारत की शक्ति में वृद्धि हुई है। जहां तक सैनिक दृष्टिकोण का सम्बन्ध है, इस उक्ति की यथार्थता बिलकुल स्पष्ट है। परन्तु आर्थिक क्षेत्र में जहाँ कुछ बातों में उन्नति हुई है वहाँ दूसरी बातों में भारी अवनति भी हुई है। देश की यातायात प्रणाली को ही लीजिये। हमारी रेलों की पटरियां घिस गयी हैं, डिब्बे और इञ्जन पुराने पड़ गये हैं, साज-सामान तथा नये कल-पुर्जों की उपलब्धि बहुत कम है और ट्रेनों की यात्रा तो ऐसी ही है कि उसकी कल्पना से ही भय लगता है। हमारी पक्की सड़कों की मरम्मत होना अभी सम्भव नहीं है और हमारी बसें तथा लारियाँ ऐसी खराब दशा में हैं कि दुर्घटनाएं बहुत होने लगी हैं। टेलिग्राफ और टेलिफोन की सर्विसें व्यस्त और सीमित हैं। विलास, आराम या सुविधा तक की वस्तुएं घट गयी हैं और नयी वस्तुएं दिखायी नहीं देतीं। हमारी मिलों व फैक्टरियों की मशीनें घिस गयी हैं या पुरानी पड़ गयी हैं और उन से काम चलाना कठिन हो रहा है। युद्धोत्पादन के क्षेत्र से बाहर कोई बड़ा उद्योग हमने नहीं आरम्भ किया है और युद्धोत्पादन सम्बन्धी उद्योगों की बाद में कोई उपयोगिता न रह जायगी-कम-से-कम उन्हें उपयोगी बनाने के लिए अनेक परिवर्तन करने पड़ेंगे। कारीगरों तथा साधारण कर्मचारियों की संख्या बेहद बढ़ गयी है, किन्तु युद्ध कालीन शिल्प-चातुर्य से शान्तिकाल में लाभ उठाया जा सकेगा या नहीं यह प्रश्न विचारणीय है। दुर्भिक्ष और महामारी ने भारत के कितने ही भागों को भारी हानि पहुँचायी है और राजनीतिक असंतोष के परिणाम-स्वरूप जन और सम्पत्ति को भी काफी नुकसान पहुंचा है। अभी कुछ ही दिन पूर्व तोड़फोड़ आन्दोलनकारियों ने पंजाब मेल को पटरी से उतार दिया था। मैं इन असंदिग्ध तथ्यों की तरफ इस लिए ध्यान आकर्षित कर रहा हूं कि कभी-कभी सरकार ऐसा व्यवहार करती है, जैसे उसे वास्तविकता का कुछ पता ही न हो।"

प्रान्तों में धारा ९३ के शासन का अंत करने की आवश्यकता पर वाइसराय की शासन-परिषद् के एक सदस्य सर जगदीश प्रसाद ने ध्यान आकर्षित किया। उन्हों ने अपने एक वक्तव्य में कहा:—

"अभी वाइसराय ने राजनीतिक भारत के प्रति डाक्टरी सलाहकार का रूप ग्रहण किया है। बड़े सम्मानपूर्वक निवेदन किया जाता है कि उनकी इस सलाह की स्वयं उनके कुछ गवर्नरों को जरूरत है। ९३ धारा की गोलियां २० करोड़ जनता को पिछले ५ वर्ष से लगातार दी जाती रही हैं और उनसे न तो स्वयं उसका और न गवर्नरों का ही कोई लाभ हुआ है। यदि गवर्नरों को

भारतीय-सहयोगियों के साथ काम करने का अवसर मिले तो इस से खुद उन्हें भी अच्छा मालूम होगा। वाइसराय को भी यह सहयोग अच्छा ही लगा है। यदि वाइसराय छः गवर्नरों को अपना आजमूदा नुस्खा काम में लाने के लिए राजी कर सकें और आवश्यक हो तो इसके लिए आदेश दे सकें तो भारत उसका अनुग्रहीत होगा।

: २६ :

वेवल ने फिर क़दम उठाया

नये साल (१६४५) की शुरूआत श्री एमरी के कांग्रेसी नेताओं की रिहाई के इन्कार से हुई। कुछ ही समय बाद डा० प्रफुल्ल चन्द्र घोष भी डाक्टरी कारणों से छोड़ दिये गये। आप २० मई १६४४ से बीमार थे। डा० घोष की रिहाई होने के समय अफवाह फैली थी कि कांग्रेस व लीग में समझौता कराने के प्रयत्न हो रहे हैं जिससे अन्य नेताओं की रिहाई में सहूलियत होगी।

जब कोई मरीज ज्यादा बीमार होता है तो उसके नातेदार व मित्र मृत्यु शैय्या से हटकर डाक्टर-वैद्य, दवा-दारू, ताकत बढ़ाने की औषधि, गंडा-ताबीज और झाड़फूंक करने वाले सयानों की तलाश में अपनी-अपनी सूझि के अनुसार दौड़ने लगते हैं, जिससे या तो मरने वाले को बचाया जा सके अन्यथा स्वर्ग के लिए उसके मार्ग को सुगम बनाया जा सके। जब कांग्रेस के हाथ-पैर बँध गए, जब उस तक पहुँचने का मार्ग अवरुद्ध हो गया और जब उसकी आवाज़ को किलों व जेलखानों के भीतर बन्द कर दिया गया तो उसके कितने ही मित्र व शुभचिंतक अपने-अपने ढंग से किलों व जेलखानों के फाटक खोलने व गुत्थी को सुलझाने का प्रयत्न करने लगे। अनेक संस्थाओं—जैसे स्थानीय बोर्ड, व्यापार-मण्डल, महिला-संस्थाएं, ट्रेड यूनियन सम्मेलन, मज़दूर समितियां, औद्योगिक संगठन, बार असोसियेशन और विद्यार्थी सम्मेलन—ने नेताओं की रिहाई और गतिरोध को दूर करने के बारे में प्रस्ताव पास किये। देश के समाचार-पत्र युद्ध-प्रयत्नों का समर्थन करने के बदले अब समय-समय पर जोरदार अग्रलेखों-द्वारा मांगें पेश कर धमकियां और चेतावनियां देकर अपना जी खुश कर रहे थे। नेताओं की रिहाई और गतिरोध दूर करने के लिए जो आम आंदोलन चल रहा था उसे लिबरलों, हिन्दू महासभाइयों, दलित जातियों और गैर-लीगी मुसलमानों ने अपनी-अपनी आवाजें उठाकर बल-प्रदान किया। निर्दल नेताओं का सम्मेलन भी, जो अपने सदस्यों की उपाधियों और पदों के कारण विशेष उल्लेखनीय था, समय-समय पर आगे बढ़ता था। १७ फरवरी, १६४४ के दिन वाइसराय-द्वारा उपस्थित की गयी मांग के अनुसार वह एक छोटी समिति के रूप में सुलह-सम्बन्धी प्रारम्भिक कार्य भी करने लगा और उसके प्रयत्नों का वाइसराय ने स्वागत भी किया। एक तरफ घटना-चक्र इस दिशा में घूम रहा था, और दूसरी तरफ केन्द्रीय असेम्बली के कांग्रेसी-दल के नेता श्री भूलाभाई देसाई ने, जिन्होंने १६४४ के अन्त में व्यवस्थापिका-सभा में नियमित रूप से कार्य आरम्भ कर दिया था, एक नया कदम उठाया।

श्री भूलाभाई देसाई १६४४ में दो बार वाइसराय से मिले थे और इसी बीच उन्होंने वर्धा में गांधीजी से और एक बार मुस्लिम लीग पार्टी के उपनेता व अपने मित्र नवाबज़ादा लियाकतअली खां से भी मुलाकात की थी। इन मुलाकातों के कारण खबर फैल गयी कि श्री

देसाई व नवाबज़ादा ने मिलकर गतिरोध दूर करने के लिए एक योजना बनायी है, जिसके अन्तर्गत ४० : ४० : २० के आधार पर राष्ट्रीय सरकार स्थापित करने का सुझाव दिया गया है। परन्तु लीग पार्टी के उप-नेता ने इससे इन्कार कर दिया। यह भी कहा गया कि जब श्री देसाई गांधीजी से मिले तो गांधीजी ने उनसे कहा कि इन वैधानिक सुझावों से ही अड़ंगा दूर नहीं हो सकता। समस्या कहीं अधिक पेचीदी और व्यापक थी और इसीलिए इस वैधानिक थेगली से उसमें सुधार होना सम्भव न था। फिर भी गांधीजी ने श्री भूलाभाई को अपने प्रयत्न जारी रखने के लिए कहा। श्री देसाई ने जुलाई में 'न्यूज़ क्रानिकल' के प्रतिनिधि श्री गेल्डर से वाइसराय के सामने रखे जाने वाले अपने प्रस्तावों का सारांश बताया और इसकी एक प्रति वाइसराय को भेज दी। सब मिलाकर गांधीजी प्रस्तावित समझौते से संतुष्ट न थे; क्योंकि उसमें ब्रिटिश-सरकार-द्वारा भारत की स्वाधीनता की घोषणा की कुछ भी चर्चा न थी। गांधीजी का विचार था कि यदि इस प्रकार का कोई समझौता हो तो ब्रिटिश-सरकार-द्वारा घोषणा अवश्य होनी चाहिये ताकि भारत गुलाम देश की तरह नहीं बल्कि एक स्वाधीन राष्ट्र के रूप में युद्ध के विषय में निर्णय करके उपयुक्त कार्रवाई कर सके। गांधीजी और कांग्रेस के लिए समझौता वर्तमान और भविष्य दोनों की दृष्टि से सन्तोषजनक होना चाहिए।। उसका वर्तमान ऐसा होना चाहिये जिससे भविष्य के लिए आशा और प्रमाण प्राप्त हो सके और उसका भविष्य ऐसा होना चाहिए जो वर्तमान का पूरक फल हो। क्रिप्स-मिशन के असफल होने का मुख्य कारण यही था कि वह अपने प्रस्तावों में वर्तमान और भविष्य दोनों का मेल न कर सका। ऐसे किसी भी अन्य प्रस्ताव के सफल होने की आशा न थी जिससे इन दोनों की पूर्ति होती। अगस्त, १९४२ के प्रस्ताव का यही सार था और भविष्य में होने वाले किसी निबटारे में भी इसका समावेश होना ज़रूरी था।

इसी समय २० अप्रैल, १९४५ के लगभग कामन-सभा में भारत की चर्चा छिड़ी और श्री एमरी ने वैधानिक व्यवस्था भंग होने के सम्बन्ध में भारत-सम्बन्धी आदेशों को स्वीकृति के लिए उपस्थित किया। ऐसा करने का यह अंतिम अवसर था। इन आदेशों का सम्बन्ध मद्रास, बम्बई, संयुक्तप्रांत, मध्यप्रांत व बरार और बिहार से था। श्री एमरी ने कहा कि इन आदेशों का उद्देश्य प्रांतों में कामन-सभा के शासन-सम्बन्धी अधिकार में एक वर्ष के लिए और वृद्धि करना है। कामन-सभा यह जानती ही थी कि किन परिस्थितियों में शासन-सम्बन्धी जिम्मेदारी उसके कंधे पर पड़ती है।

श्री एमरी ने कहा कि सभा ने अपने अधिकार का विस्तार जान-बूझकर सिर्फ एक वर्ष के लिए किया है और यह व्यवस्था अस्थायी व असाधारण है। यदि इनमें से किसी प्रांत में राजनैतिक नेता मन्त्रिमण्डल स्थापित करके युद्ध प्रयत्नों का समर्थन करना स्वीकार कर लेंगे और साथ ही उनके मंत्रिमंडल के पर्याप्त समय तक स्थिर रहने और धारा-सभा का समर्थन प्राप्त कर सकने की सम्भावना दिखाई दी तो गवर्नरों का कर्तव्य ऐसे मन्त्रिमंडल को कायम करना होगा।

दो दिन बाद २२ अप्रैल, १९४५ को श्री भूलाभाई देसाई ने पेशावर के सीमाप्रांतीय राजनैतिक सम्मेलन में अपनी योजना के सम्बन्ध में रहस्योद्घाटन किया। अगस्त, १९४२ के बाद भारत के किसी भी प्रांत में होने वाला यह पहला राजनैतिक सम्मेलन था।

सम्मेलन में उपस्थित किये गये मुख्य प्रस्ताव में कांग्रेस के नेताओं की रिहाई तथा केन्द्र में राष्ट्रीय सरकार की स्थापना का अनुरोध किया गया था। प्रस्ताव पर भाषण करते हुए श्री

भूलाभाई देसाई ने कहा कि केन्द्र में अंतर्कालीन-सरकार स्थापित करने के प्रस्ताव पहले से ही ब्रिटिश-सरकार के सम्मुख उपस्थित हैं। आपने मांग उपस्थित की कि ब्रिटेन को घोषणा कर देनी चाहिए कि भारतीय-सरकार और उसके प्रतिनिधियों का पद अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में अन्य सरकारों व उनके प्रतिनिधियों के समान होगा। भूलाभाई-लियाकतअली-समझौते की शर्तें अगस्त, १९४५ से पूर्व प्रकाशित नहीं हुई थीं, किन्तु अप्रैल में ही उन पर प्रकाश पड़ चुका था। इस विषय को पूरी तरह समझने के लिए समझौते की शर्तों तथा नवाबजादा के वक्तव्य पर प्रकाश डालना अनुचित न होगा।

अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के जनरल सेक्रेटरी नवाबजादा लियाकत अलीखां ने समझौते के सम्बन्ध में निम्न वक्तव्य प्रकाशित किया :—

"मुझे सूचित किया गया है कि केन्द्रीय असेम्बली में कांग्रेस-दल के नेता श्री भूलाभाई देसाई ने बम्बई के पत्र-प्रतिनिधियों को सूचित किया है कि तथाकथित देसाई-लियाकतअली समझौते को प्रकाशित नहीं किया जा सकता, क्योंकि मैं इसे गुप्त रखना चाहता हूँ। चूंकि श्री देसाई के इस कथन से भ्रम फैल सकता है, इसलिए मैं जनता के सामने सब बातें खोलकर रख देना चाहता हूं।

'श्री देसाई मुझसे केन्द्रीय असेम्बली के शरतकालीन अधिवेशन के बाद मिले और देश की आर्थिक तथा अन्य परिस्थितियों पर बातें हुईं। हमारा ध्यान इस ओर भी गया कि युद्धजन्य परिस्थिति के कारण जनता को बेहद कष्ट उठाना पड़ रहा है। यूरोप में युद्ध अपनी पूर्ण भयानकता से चल रहा था और यह नहीं जान पड़ता था कि उसका कब अन्त होगा और प्रायः प्रत्येक व्यक्ति का यही मत था कि यूरोप में युद्ध समाप्त होने के अनन्तर जापान के विरुद्ध चलने वाले युद्ध के सफलतापूर्वक समाप्त करने में दो वर्ष और लग जाएँगे। पूर्व में जापान के विरुद्ध आक्रमण करने में भारत को आधार बनाया जाने को था, जिसका मतलब यह हुआ कि भारत की जनता को और अधिक त्याग करने पड़ेंगे और पहले से भी अधिक कष्ट उठाने पड़ेंगे। यह भी स्वीकार किया गया कि जो समस्याएं उठी हैं और आगे उठेंगी उनका प्रभावपूर्ण तरीके से सामना करने के लिए भारत-सरकार अपने वर्तमान गठन के कारण अनुपयुक्त है।

"श्री देसाई ने बातचीत के दर्मियान मुझसे कहा कि युद्धकाल अधिक लम्बा होने के कारण जो गम्भीर परिस्थिति उठ खड़ी होगी उस में केन्द्र में की जाने वाली अंतर्कालीन व्यवस्था और गवर्नर-जनरल की शासन-परिषद् के इस भांति पुनस्संगठन के सम्बन्ध में जिस से वह उठने वाली गम्भीर परिस्थिति का पहले की अपेक्षा अधिक सफलतापूर्वक सामना कर सके, मुस्लिम लीग का क्या रुख होगा। मुस्लिम लीग इस सम्बन्ध में जो प्रस्ताव समय-समय पर पास कर चुकी है उन्हें सामने रखते हुए मैंने उन्हें ठीक स्थिति बतायी और उनसे कहा मेरा निजी मत यह है कि यदि परिस्थिति में सुधार करने के लिए कोई प्रस्ताव किये जायंगे तो मुस्लिम लीग उन पर सावधानी से विचार करेगी जैसा कि वह पहले भी करती रही है; क्योंकि मुस्लिम लीग सदा से जनता की सहायता करने को उत्सुक रही है और आगे आने वाले कठिन काल में भी वह उस को संकट से उद्धार करने के लिए कोई प्रयत्न बाकी न छोड़ेगी। इस वर्ष, जब मैं मद्रास प्रांत के दौरे के लिए रवाना हो रहा था, श्री देसाई मुझसे दिल्ली में मिले और केन्द्र में अंतर्कालीन सरकार बनाने के सम्बन्ध में कुछ प्रस्ताव उन्होंने मुझे दिखाये। श्री देसाई ने इन प्रस्तावों की एक प्रतिलिपि मुझे भी दी और कहा कि ये प्रस्ताव अभी गोपनीय हैं। श्री देसाई ने मुझे बताया कि

वे इन्हीं प्रस्तावों के आधार पर भारत-सरकार के गठन में परिवर्तन करने का प्रयत्न करना चाहते हैं ।

"उन्होंने मुझे यह भी बताया कि उनकी योजना इस सम्बन्ध में वाइसराय और मि० जिन्ना से मिलने की भी है। मैंने उनसे कहा कि मेरे निजी मत में प्रस्ताव ऐसे हैं, जिनके आधार पर बातचीत शुरू हो सकती है, किन्तु मुझे इस योजना की प्रगति के लिए तब तक कोई आशा नहीं दिखायी दी जब तक गांधीजी स्वयं इस सम्बन्ध में कोई कार्रवाई करने को तैयार नहीं होते अथवा श्री देसाई अपने इस कदम के लिए गांधीजी की निश्चित स्वीकृति या खुला समर्थन नहीं प्राप्त कर लेते; क्योंकि कार्य-समिति के अभाव में सिर्फ गांधीजी ही कांग्रेस की तरफ से कोई निर्णय दे सकते हैं। श्री देसाई से अपनी बातचीत के बीच, जो बिलकुल निजी तौर पर हुई थी, मैंने उन से यह स्पष्ट कह दिया था कि मैंने जो कुछ कहा अपने निजी विचार से कहा है और मुस्लिम लीग या अन्य किसी की भावना प्रकट नहीं की है। यदि कभी श्री देसाई महसूस करें कि वे कांग्रेस की तरफ से अधिकारपूर्वक कुछ कह सकते हैं तो उन्हें अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के अध्यक्ष तक पहुंचना पड़ेगा; क्योंकि मुस्लिम लीग की तरफ से वही इस प्रकार के प्रस्तावों पर विचार करने के अधिकारी हैं ।

इन प्रस्तावों का, जिन्हें देसाई-लियाकत गुर या देसाई-लियाकत समझौता आदि की संज्ञा दी गयी है, यही इतिहास है। मैंने श्री देसाई की इच्छा का बराबर ध्यान रक्खा है और प्रस्तावों के मसविदे को निजी और गोपनीय रखा है और उस किसीको दिखाया नहीं है, किन्तु अब श्री देसाई के वक्तव्य व उसके परिणामस्वरूप फैलनेवाले भ्रम के कारण मैं इन प्रस्तावों को प्रकाशित करने की जरूरत महसूस करता हूं। इसीलिए मैं उन्हें पत्रों में प्रकाशित होने के लिए दे रहा हूं :—

"कांग्रेस और लीग केन्द्र में अंतर्कालीन सरकार में भाग लेने के लिए राजी हैं। इस सरकार की रचना निम्न प्रकार से होगी :—

(क) केन्द्रीय शासन परिषद् में कांग्रेस व लीग के सदस्यों की संख्या बराबर रहेगी। सरकार में नामजद हुए व्यक्तियों का केन्द्रीय धारासभा का सदस्य होना आवश्यक नहीं है ।

(ख) अल्पसंख्यकों (विशेषकर परिगणित जातियों और सिखों) के प्रतिनिधि भी रहेंगे ।

(ग) प्रधान सेनापति भी होंगे ।

"इस सरकार की स्थापना मौजूदा भारतीय शासन के अन्तर्गत होगी और वह वर्तमान व्यवस्था के भीतर रह कर कार्य करेगी। परन्तु यह मान लिया जायगा कि यदि मंत्रिमंडल अपना कोई प्रस्ताव धारासभा से पास नहीं करा पायगा तो इसके लिए वह गवर्नर-जनरल या वाइसराय के विशेषाधिकारों के प्रयोग का आश्रय न लेगा। इसके परिणामस्वरूप मंत्रिमंडल काफी हद तक गवर्नर-जनरल के अधिकारों से स्वतंत्र हो जायगा ।

"कांग्रेस और लीग इस विषय में सहमत हैं कि यदि इस प्रकार की अंतर्कालीन सरकार की स्थापना हुई तो उस का पहला कार्य कांग्रेस कार्यसमिति के सदस्यों की रिहाई होगा।"

इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जिन उपायों को बर्ता जायगा उन पर भी नीचे प्रकाश डाला जाता है :—

उपर्युक्त समझौते के आधार पर ऐसा कोई रास्ता निकाला जाय जिससे गवर्नर-जनरल यह प्रस्ताव या सुझाव करने के लिए तैयार हो जायं कि वे खुद कांग्रेस व लीग के समझौते के

आधार पर केन्द्र में, एक अन्त:कालीन सरकार की स्थापना करना चाहते हैं और जब गवर्नर-जनरल मि० जिन्ना और श्री देसाई को संयुक्त रूप से या अलग बुलावें तो उपर्युक्त प्रस्ताव उनके सामने रख दिये जायं कि इन्हें नयी सरकार में भाग लेने के लिए तैयार किया गया है।

अगला कदम प्रान्तों में धारा ९३ का हटाया जाना और केन्द्र के ही समान वहां मिली-जुली सरकारों की स्थापना होगा।

जबकि भारतमंत्री व वाइसराय के प्रतिक्रियावादी रुख के बावजूद भारत में घटनाचक्र इस दिशा में चल रहा था तभी ७ मई को यूरोपीय युद्ध समाप्त होने का सुसम्वाद भारत में ६ मई को पहुँचा। यह समाचार पाकर सभी को प्रसन्नता हुई; किन्तु भारतीय जनता को इसके कारण कोई तसल्ली नहीं हुई, क्योंकि भारत अधिकृत देशों को आजादी दिलाने और एक आजाद मुल्क को गुलाम बनाने के लिए गुलाम मुल्क के ही रूप में लड़ा था और युद्ध-उद्देश्यों के जो गौरव-गान राजनीतिज्ञ पिछले साढ़े पांच वर्ष से करते रहे थे और लड़ाकू राष्ट्र जिनकी घोषणा करते थकते नहीं थे उनमें भाग लेने का अधिकारी अभी वह नहीं हुआ था। भारत के नेता जेल के सीखचों में बंद थे और वह खुद गुलामी की जंजीरों में जकड़ा हुआ था। इसलिए वह खुशियां कैसे मनाता! जबकि थियोडोर मारीसन ने १८ वीं डिफेंस रेगुलेशन हटा लिया तो १९४४ का आर्डिनेंस (३) जारी रहा, जैसे यूरोपीय युद्ध की समाप्ति से कोई अन्तर ही न पड़ा हो।

यहां तक कि इंग्लैंड में भी बर्नार्ड शा ने यूरोपीय विजय पर खुशी नहीं मनायी। उन्होंने कहा—"यूरोप में अभी शान्ति कहां स्थापित हुई है; अभी सबसे बुरा वक्त तो आना शेष है।" आपने कहा कि इतना रक्तपात और विनाश हो चुका है और इतने व्यक्ति आश्रय और भोजन के अभाव में काल-कवलित हो चुके हैं। शांन्ति के सम्बन्ध में बढ़-बढ़कर बातें करने वालों का साथ मैं नहीं देना चाहता। जो कुछ होना था वह हो चुका है, जबकि अभी यूरोप को अपने सबसे कठिन समय का सामना करना शेष है। आज यूरोप में विनाश का जैसा ताण्डव हो रहा है उसे देखते हुए कोई भी संजीदा व्यक्ति खुशी कैसे मना सकता है।"

श्री बर्नार्ड शा ने सवाल किया "लाखों व्यक्ति, जिन में दुधमुंहे बच्चे भी सम्मिलित हैं, भूखों मर रहे हैं। महान् नगर खंडहर बने हुए हैं, दूर-दूर तक भूमि जलमग्न है और लाखों व्यक्ति हताहत हो चुके हैं। बर्लिन की आगजनी को हम विजय कैसे कह सकते हैं। बर्लिन केवल जर्मनी की राजधानी ही नहीं है, अपनी-अपनी संस्कृतियों के साथ जिस प्रकार न्यूयार्क व लंदन संसार की राजधानियां हैं उसी प्रकार बर्लिन भी संसार की एक राजधानी है। शताब्दियों की संस्कृति को विनाष्ट करके इसे आप अपनी विजय नहीं कह सकते। वह दिन अब नहीं रहे, जब युद्ध में सिर्फ एक पक्ष की विजय होती थी। अब तो विनाश व निराश्रयता का दौरदौरा सभी जगह हो जाता है। आप युद्ध को रोक नहीं सकते और स्थायी शान्ति होनी सम्भव नहीं है। यदि लोगों के पास तोप, उड़नबम और वायुयान नहीं हैं तो वह सिर्फ घूंसों से ही लड़ेंगे। इसलिए आप निरस्त्रीकरण की बात क्यों उठाते हैं। युद्ध के बाद यूरप में रूस सब से शक्तिशाली राष्ट्र हो गया है; क्योंकि रूसी जनता अपनी शासन-प्रणाली व अपने देश के लिए लड़ती रही है, जबकि अन्य देश अपने जमींदारों के लिए लड़ते रहे हैं।"

सभी तरफ से भारत में राजनीतिज्ञों की रिहाई की मांग होने लगी। उधर बर्ट्रेण्ड रसेल ने ब्रिटेन से "भारत छोड़ो" का अनुरोध करना आरम्भ कर दिया आपने कहा कि ब्रिटेन को जापान का युद्ध समाप्त होने के एक वर्ष बाद भारत से हट जाने का वचन देना चाहिए।

प्लेटो द्वारा अपने दर्शन-सिद्धान्तों का प्रतिपादन किये और कौटिल्य को अपना अर्थशास्त्र लिखे सदियाँ गुजर चुकी हैं। फिर भी मानव-जीवन पहले ही जैसा बना हुआ है। आज भी मनुष्य की आकांक्षाएं पहले जैसी हैं, और आज भी वह अपने चरित्र की कमजोरियों पर पहले के समान दुखित बना है।

वेवल की लंदन यात्रा

२१ मार्च, १९४५ को लार्ड वेवल की लंदन यात्रा से पूर्व उसके सम्बन्ध में बहुत विज्ञापन किया गया और समाचार-पत्रों में इसकी बारम्बार चर्चा भी की गई। परन्तु वे एकाएक वायुयान-द्वारा रवाना हो गये और श्री एमरी ने वेवल के आगमन के सम्बन्ध में कहा कि इस अवसर से लाभ उठा कर वैधानिक स्थिति पर विचार तो अवश्य किया जायगा; किन्तु इससे अधिक आशा न करनी चाहिए। सच तो यह था कि लार्ड वेवल को स्वयं श्री एमरी ने ही सलाह-मशविरे के लिए आमंत्रित किया था। हर तरफ से परिस्थिति गम्भीर थी। ब्रिटिश लोकमत इस बात पर जोर दे रहा था कि भारत के राजनैतिक अड़ंगे को दूर करने में भारत और इंग्लैंड दोनों ही का समान रूप से लाभ है। रोगशैया पर पड़े एडवर्ड थामसन तथा अमरीका से लौटने पर बर्ट्रेंड रसेल ने इसी बात पर जोर दिया। लंदन के 'टाइम्स' पत्र तथा लिबरल व मजदूर दली पत्रों ने भी यही कहना शुरू कर दिया। मजदूर-दल के सम्मेलन ने गतिरोध दूर करने की दिशा में कदम उठाने का अनुरोध किया। ब्रिटिश सरकार ने उप-भारतमंत्री के पद पर मजदूर दल के लार्ड लिस्टोवेल की जो नियुक्ति की थी वह कांग्रेसी नेताओं की रिहाई व गतिरोध दूर करने की मांग का उपयुक्त जवाब न था। राष्ट्रमंडल-सम्पर्क-सम्मेलन में ब्रिटेन की बड़ी मिट्टी खराब हुई; क्योंकि भारतीय प्रतिनिधि-मंडल के नेता फेडरल अदालत के एक जज सर मोहम्मद जफरुल्ला ने साहसपूर्वक भारतीय स्वाधीनता के लिए तारीख निश्चित करने की मांग उपस्थित की थी। ब्रिटेन ने सैनफ्रांसिस्को में होने वाले विश्व सुरक्षा सम्मेलन के लिए अपने "प्रिय तथा विश्वस्त" सर रामास्वामी मुदालियर व सर फीरोज खां नून को प्रतिनिधि के रूप में जो चुना था वह सर मोहम्मद जफरुल्ला की मांग का कोई उपयुक्त जवाब न था। जजों पर भाषण-सम्बन्धी ओजस्विता का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वे तो सिर्फ निश्चयों और तारीखों में ही दिलचस्पी रखते हैं। राजा सर महाराज सिंह अभी लंदन में थे और राष्ट्रमंडल-सम्पर्क-सम्मेलन के उपरान्त लार्ड वेवल से मिलने के लिए लंदन में ही रुक गये थे। सर महाराज सिंह शासक व राजनीतिज्ञ दोनों ही थे। आप अखिल भारतीय ईसाई सम्मेलन के अध्यक्ष भी रह चुके थे। एक उल्लेखनीय बात यह थी कि लार्ड वेवल लंदन को एकाएक रवाना हुए थे और अपनी इस एकाएक लंदन-यात्रा के ही कारण वे मि० जिन्ना से भी नहीं मिल पाये थे। यह भी घोषणा हो चुकी थी कि लंदन में लार्ड वेवल कार्य-समिति के सदस्यों की रिहाई के सम्बन्ध में भारत मंत्री श्री एमरी से सलाह करेंगे। इस बातचीत में राजनीतिक परिस्थिति तथा भारत की वैधानिक स्थिति पर विचार होगा। यह इस कारण और भी प्रकट हुआ कि लार्ड वेवल के साथ श्री मेनन भी लंदन जा रहे थे, जो श्री हॉडसन के स्थान पर शासन-सुधार कमिश्नर नियुक्त हुए थे।

लार्ड वेवल के लंदन के काम व कार्यक्रम के सम्बन्ध में अनेक अफवाहें फैल गईं। ग्लोब-एजेंसी ने बताया कि १२ अप्रैल को कोई विशेष घोषणा की जायगी। इसी बीच घोषणा हुई कि गृह-सदस्य सर फ्रांसिस मूडी व गृह-सेक्रेटरी सर कोनरन स्मिथ भी लंदन जयंगे और वहां अखिल भारतीय सर्विसों के सम्बन्ध में बातचीत करेंगे। यह बात कुछ मूर्खतापूर्ण जान पड़ी; किन्तु वे गये

अवश्य ही। यह प्रकट किये जाने पर समाचार और भी तथ्यपूर्ण जान पड़ा कि इन सभी महानुभावों की लंदन-यात्रा का उद्देश्य अखिल भारतीय सर्विसों की भरती के सम्बन्ध में सोच-विचार करना था। १९३५ के कानून के अनुसार इन सर्विसों की भरती सिर्फ पांच वर्ष के लिए करने की सिफारिश की गई थी और फिर इस अवधि को बढ़ाकर दस वर्ष कर दिया गया था और इसलिए १९४५ में इस समस्या पर नये सिरे से विचार करने की आवश्यकता पड़ रही थी। परन्तु साथ ही यह भी कहा गया कि गृह-सदस्य को लार्ड वेवल अपने साथ कांग्रेसी नेताओं की रिहाई-सम्बंधी अपने सुझाव में समर्थन पाने के लिए ले जा रहे हैं। परन्तु यह मत विशेष महत्वपूर्ण नहीं जान पड़ा; क्योंकि जिस वाइसराय के, अपने कहने की कद्र नहीं हो रही थी उसके अधीन अफसर की राय का कितना महत्व हो सकता था।

लार्ड वेवल की लंदन-यात्रा के सम्बन्ध में राय्टर समिति अनेक प्रकार की खबरें भेज रही थी और 'यूनाइटेड प्रेस आव इंडिया' व यूनाइटेड प्रेस आव अमेरिका' समितियां भी अपने संवाद भेज रही थीं। कभी यह कहा जाता कि लार्ड वेवल को सफलता मिल रही है तो कभी यह कहा जाता कि उनकी इंग्लैंड-यात्रा असफल हो रही है और वाइसराय ने इस्तीफा देने की धमकी दी है। इन परस्पर विरोधी समाचारों का उद्देश्य चाहे जो हो उनका एक परिणाम यह अवश्य हो गया कि जनता दुविधा और भ्रम में पड़ गयी और शायद वाइसराय की इंग्लैंड-यात्रा का यही उद्देश्य रहा हो। कुछ समाचार-पत्रों का तो ऐसा पतन हुआ कि प्रकट होने लगा मानो सच्चे व विश्वस्त समाचार देना कोई विशेषता नहीं है। मई में गृह-सदस्य की वापसी के परिणामस्वरूप निराशाजनक समाचार प्रकाशित होने लगे; किन्तु गृह-सदस्य की वापसी के बाद ही प्रधान सेनापति के इंग्लैंड प्रस्थान से निराशा की ध्वनि कुछ बेसुरी जान पड़ने लगी। ८ मई को लार्ड वेवल की वापसी से ठीक पहले उनकी लंदन-यात्रा की सफलता या असफलता के सम्बन्ध में अनेक अटकलबाजियाँ की जाने लगीं। क्रिप्स-प्रस्तावों के वापस लिये जाने के बाद भी जनता का ध्यान उनसे पूरी तरह हटने नहीं दिया गया था, गोकि जनता का ध्यान स्वाभाविक दृष्टि से उनकी ओर कभी आकृष्ट नहीं हुआ था। श्री एमरी ने जो यह कहा कि ये प्रस्ताव अभी तक कायम हैं उसकी तरफ और न मि० चर्चिल के इस कथन की तरफ किसी का ध्यान गया कि प्रस्तावों की रूपरेखा के सम्बन्ध में बातचीत हो सकती है। लार्ड वेवल की वापसी के समय जो यह अफवाहें फैली हुई थीं कि क्रिप्स-प्रस्तावों में पुनः जान डाली जा रही है और वाइसराय की शासन-परिषद् में प्रधान सेनापति के अतिरिक्त सभी सदस्य भारतीय होंगे और ये भारतीय धारा-सभा के प्रति उत्तरदायी न होकर वाइसराय के प्रति उत्तरदायी होंगे, इन्हें जनता घृणा की दृष्टि से ही देखा।

भारत से रवाना होने से पूर्व लार्ड वेवल के सामने एक रचनात्मक सुझाव भी पेश हो चुका था।' यह देसाई-लियाकतअली सुझाव था, परन्तु क्रिप्स-प्रस्तावों से आगे उनकी गाड़ी केवल इसी दृष्टि से बढ़ी थी कि उनके अंतर्गत केन्द्रीय-शासन परिषद् में साम्प्रदायिक अनुपात निर्धारित कर दिया गया था। परन्तु इससे अधिक महत्वपूर्ण बात यह थी कि कांग्रेस कार्य-समिति उन्हें कहाँतक स्वीकार करेगी अथवा क्या वे कार्य-समिति के आगे उपस्थित किये भी जायंगे। यदि उपस्थित कर भी दिये गये तो ब्रिटिश-सरकार क्या कह सकेगी कि उसने राष्ट्रीय सरकार की स्थापना की है। यह कहने के लिए कि कांग्रेस इन प्रस्तावों का समर्थन करती है, कम-से-कम केन्द्रीय असेम्बली के कांग्रेसी दल-द्वारा ही इनका समर्थन होना चाहिए। कांग्रेसी दल के ४४ सदस्यों में

से क्या कम-से-कम २३ का ही समर्थन इन प्रस्तावों को प्राप्त हो सकता है या नहीं और मान लिया जाय कि यह समर्थन मिल गया तो क्या कार्य-समिति अपने मातहत संस्थाओं को अपना अधिकार हड़प लेने देगी। मान लीजिये कि कार्य-समिति कांग्रेस दल की स्वीकृति को नामंजूर कर देती है तो फिर सरकार क्या करेगी? जब लार्ड वेवल गुप्त रूप से इंग्लैंड में बातचीत कर रहे थे और सानफ्रांसिस्को में भारत की स्थिति के सम्बन्ध में जोरदार बहस छिड़ी हुई थी तब भारत में ऊपर बताई गई बातों की चर्चा हो रही थी।

विश्व-सुरक्षा-सम्मेलन में भी ब्रिटेन की स्थिति कोई बहुत अच्छी न थी। सम्मेलन की साधारण सभा में अध्यक्ष के परिवर्तन के प्रश्न को लेकर मो० मोलोटोव ने चुनौती देकर एक झगड़ा खड़ा कर दिया, जिस पर समझौता यह हुआ कि संचालन-समिति का अध्यक्ष चार बड़ों में से बारी-बारी से हुआ करे। जहां तक भारतीय प्रतिनिधियों का सम्बन्ध है, सर फीरोजखां नून बुरी तरह बौखला रहे थे। कारण यह था कि श्रीमती पंडित के पत्र-प्रतिनिधि-सम्मेलन से सर फीरोज का स्टेनोग्राफर निकाल दिया गया था। सर फीरोजखां नून ने गांधीजी पर जापानियों की तरफदारी करने का आरोप किया (श्री एमरी इससे पूर्व कह चुके थे कि उन्होंने महात्मा गांधी पर जापानियों की तरफदारी करने का आरोप कभी नहीं किया) और मांग उपस्थित की कि गांधीजी को अपना नेतृत्व जवाहरलाल नेहरू को दे देना चाहिए, किन्तु गांधीजी जनवरी, १९४२ में इस आशय की घोषणा पहले ही वर्धा में कर चुके थे। गांधीजी ने सर फीरोजखां नून को ठीक ही उत्तर दिया कि १९३४ से वे कांग्रेस के चार आने वाले सदस्य भी नहीं है, वे नेतृत्व पाने के लिए लालायित नहीं हैं, क्रिप्स से अंतिम रूप से बातें शुरू होने से पहले ही वे दिल्ली से चल दिये थे और वे जवाहरलाल नेहरू को पहले ही अपना उत्तराधिकारी घोषित कर चुके हैं। गांधीजी ने यह भी कहा कि सर फीरोजखां नून को चाहिए कि जवाहरलाल नेहरू की रिहाई के लिए अपने उच्च पद से इस्तीफा दे दें। इसके जवाब में नून ने कहा कि यदि गांधीजी उनकी सलाह मानने को तैयार हैं तो उन्हें नेतृत्व का त्याग कर देना चाहिए और इस सम्बन्ध में कोई सौदा नहीं करना चाहिए। क्या नून के इस जवाब को जवाब कहा जा सकता है? सत्य तो यह है कि गांधीजी पहले ही ऐसा कर चुके थे। वे तो जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व के सम्बन्ध में नून की नेकनीयती का इम्तहान ले रहे थे। गांधीजी स्वयं परिचित थे कि नेतृत्व किसीको दिया नहीं जा सकता और उन्होंने जो कुछ कहा है वह जनता की ही अपनी इच्छा है। परन्तु नूनको सर्वोत्तम उत्तर एक अप्रत्याशित व्यक्ति—महात्मावर्ग के एक और सदस्य बर्नार्डशा—से मिला। नून के वक्तव्य की आलोचना करते हुए श्री शा ने कहा कि गांधीजी की राजनीति ४० साल पुरानी है, वे अपनी चालों में गलती कर सकते हैं; किन्तु उनकी युद्ध-नीति आज भी उतनी ही ठोस है जितनी आज से ४० लाख वर्ष या ४ करोड़ वर्ष पहले थी। गांधीजी के अवकाश ग्रहण करने के सम्बन्ध में मि० शा ने कहा—"अवकाश—किस बात से अवकाश ग्रहण करना! उनकी स्थिति सरकारी तौर पर थोड़े ही है, वह तो स्वाभाविक है। महात्माजी अपने हाथ से कुछ दे नहीं सकते। नेतृत्व तमाखू की टिकिया तो है नहीं, जिसे एक व्यक्ति दूसरे के हाथ में दे दे। यद्यपि पंडित नेहरू अपमानजनक तथा कायरतापूर्ण कारावास के कारण कुछ करने में असमर्थ हैं फिर भी वे एक उल्लेखनीय नेता हैं और गांधीजी उनके महत्व को कम नहीं कर सकते।"

दूसरे प्रतिनिधि सर रामास्वामी मुदालियर स्वाधीनता की 'तुलना में पारस्परिक निर्भरता

के सिद्धान्त का प्रचार कर रहे थे । उनका प्रयत्न विश्व-सुरक्षा-परिषद् में भारत को स्थायी स्थान दिलाने की दिशा में था।

इन्हीं दिनों लार्ड लिस्टोवेल ने पीटरबरो के युवक-सम्मेलन में भाषण देते हुए कहा—"सीधे सादे शब्दों में सवाल लंदन में बैठी अंग्रेजी सरकार के हाथ से शासन-व्यवस्था भारतीय लोकमत का प्रतिनिधित्व करने वाले नेताओं को हस्तान्तरित करने का है।" ये शब्द सानफ्रांसिस्को सम्मेलन के विचार से कहे गये थे । लार्ड लिस्टोवेल ने आगे कहा—"यदि स्व-शासन के मुख्य अंगों के हस्तांतरण में देरी की गई तो आगामी कितनी ही पीढ़ियों के लिए ब्रिटेन और भारत के सम्बन्धों में कटुता आ जायगी।" लार्ड महोदय ने निम्न चेतावनी भी दी। "यह न कहने को रह जाय कि हमने बहुत थोड़ा और वह भी देरी से दिया।" इन शब्दों में सचाई की गंध है; किन्तु ब्रिटिश राजनीति सत्य व कूटनीति का ऐसा सम्मिश्रण रही है कि एक को दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता।"

इसी समय एक ऐसा वक्तव्य दिया गया, जो असंदिग्ध था । यह वक्तव्य रूसी विदेशमंत्री श्री मोलोटोव ने संयुक्त राष्ट्र-संघ-की उस सभा में दिया था जिसमें ४६ देशों के १,२०० प्रतिनिधि उपस्थित थे। श्री मोलोटोव ने कहा थाः—

"इस सभा में हमारे मध्य एक भारतीय प्रतिनिधि मंडल भी है; किन्तु भारत स्वाधीन राष्ट्र नहीं है । हम सभी जानते हैं कि वह समय आयेगा जब स्वाधीन भारत की आवाज़ भी सुनी जायगी । फिर भी हम ब्रिटिश सरकार की इस राय से सहमत हैं कि भारत के प्रतिनिधि को इस सभा में एक स्थान मिलना चाहिए।"

मो० मोलोटोव ने डुम्बर्टन ओट्स-योजना के एक संशोधन पर भाषण करते हुए निम्न शब्द भी कहे थे—"सोवियट प्रतिनिधि-मंडल यह अनुभव करता है कि अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा के विचार से पहले कोई ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए जिससे पराधीन देश स्वाधीनता के पथ का अनुसरण कर सकें । यह कार्य संयुक्त राष्ट्र-संघ-द्वारा स्थापित एक संगठन की देखरेख में हो सकता है । इस प्रकार राष्ट्रों की समानता तथा आत्म-निर्णय के सिद्धान्त को सफलता मिल सकती है।"

मई, १९४५ में सब से महत्त्वपूर्ण बात-अमरीका की इंडिया लीग के प्रतिनिधि के रूप में श्रीमती विजयालक्ष्मी पंडित-द्वारा सानफ्रांसिस्को सम्मेलन के सम्मुख उपस्थित किया गया वह आवेदनपत्र था, जिसमें उन्होंने सिर्फ जनता की ही नहीं बल्कि भारत व दक्षिण-पूर्व एशिया की ६०,००,००,००० जनता का भी हवाला दिया था । आपने कहा था कि भारत का मामला सम्मेलन की परीक्षा के समान है और बर्लिन के पतन के साथ नाज़ीवाद व फासिज्म का तो दिवाला निकल चुका है और अब केवल साम्राज्यवाद ही मिटने के लिए शेष रहा है। परन्तु जहां तक सानफ्रांसिस्को सम्मेलन के सम्मुख भारतीय स्वाधीनता का प्रश्न उपस्थित करने का सम्बन्ध था, भारत की इस गैर-सरकारी 'राजदूत' श्रीमती पंडित के प्रयत्न बेकार सिद्ध हुए । उनके आवेदन-पत्र को अनियमित ठहरा दिया गया।

इन्हीं दिनों भारत के अवकाश प्राप्त गृह-सदस्य सर रेजीनाल्ड मैक्सवेल ने लंदन में बताया कि सरकार भारत में आम चुनाव की आशंका से क्यों भयभीत है । आपने कहा कि आम चुनाव होने पर पुरानी विचार-धारा वाले लोग ही आ जायंगे। परन्तु गांधीजी इससे किसी प्रलोभन में नहीं पड़े । उन्होंने जनता को अपनी मानसिक स्थिति की एक झलक दी । एक प्रार्थना-सभा में भाषण करते हुए उन्होंने कहा—"धारा-सभाओं में जाने से स्वराज्य नहीं मिल

सकता।" उनका आशय सिर्फ यही था कि सिर्फ धारासभाओं में जाने से ही पूर्ण स्वराज्य के मार्ग में आनेवाली कठिनाइयों पर विजय नहीं प्राप्त की जा सकती। गांधीजी धारासभाओं में जाने की पूरी तरह निन्दा नहीं कर सकते थे; क्योंकि कार्य-समिति ने जून, १९३७ में पद-ग्रहण करने का जो निश्चय किया था उसकी फरवरी, १९३७ के हरिपुरा अधिवेशन में पुष्टि भी हो चुकी थी। हुबली में गांधी-सेवा-संघ-सम्मेलन के अवसर पर गांधीजी ने कहा था कि धारा-सभाओं के कार्य का पूरी तरह परित्याग नहीं किया जा सकता। एक दूसरे अवसर पर उन्होंने कहा था कि हमारे पास धारा-सभाओं का कार्य स्थायी बनने को आया है। सीमाप्रान्त में कांग्रेसी मंत्रिमंडल को फिर कायम करने के लिए डाक्टर खां साहब को अनुमति देकर गांधीजी ने जाहिर कर दिया कि यद्यपि उन्हें स्वयं धारासभाओं के कार्य में आस्था नहीं है, किन्तु फिर भी वे इतना तो मानते ही हैं कि धारा-सभाओं का कार्य भी एक सहायक नदी के समान है, जो राष्ट्रीय जीवन की मुख्य नदी में मिलकर उसके जल में वृद्धि करती है।

१९४५ की गर्मियों में भारत के कुछ पूंजीपति, जैसे श्री जे० आर० डी० टाटा और श्री घनश्यामदास बिरला आदि अपने खर्च से इंग्लैंड व अमरीका की औद्योगिक स्थिति का अध्ययन करने के लिए जा रहे थे। गांधीजी ने उनके इस कार्य की आलोचना करके कुछ सनसनी पैदा कर दी।

गांधीजी ने पूंजीपतियों की इस यात्रा की आलोचना करते हुए कहा कि पूंजीपति यहां एक तरफ सरकार के विरुद्ध बोलते और लिखते थकते नहीं हैं वहां दूसरी तरफ वे नौकरशाही का साथ देते हैं, जैसा यह चाहती है वही करते हैं और स्वयं ५ प्रतिशत का मुनाफा उठा कर संतोष-लाभ करते हैं। वे सरकार के ९५ प्रतिशत को प्राप्त करने के स्थान पर ५ प्रतिशत की जूठन से अपना पेट भरते हैं। पूंजीपतियों ने जो राष्ट्रीय सरकार की मांग की है, बस यही उनका अच्छा कार्य है। दोनों सज्जनों ने तुरंत उत्तर दिया और इन पर जो आरोप लगाये गये थे उनका खंडन किया। उन्होंने कहा कि उन्होंने भारत की तरफ से शर्मनाक या कैसा भी समझौता नहीं किया है। तब गांधीजी ने कहा कि यदि ऐसा है तो उपर्युक्त सज्जन अपवाद हैं, खासकर इसलिए कि वे गैरसरकारी तौर पर जा रहे हैं। साथ ही गांधीजी उन्हें आशीर्वाद दिया और भारत की निर्धन, भूखी व नंगी जनता की तरफ से प्रार्थना भी की।

जब कि लार्ड वेवल अभी लंदन में ही थे और उनके कार्य के सम्बन्ध में सनसनीपूर्ण तारों की झड़ी लगी हुई थी, ब्रिटिश मंत्रियों का मतभेद अपनी चरमसीमा को पहुँच गया, जिस परिणामस्वरूप २३ मई, १९४५ को प्रधान मंत्री चर्चिल ने इस्तीफा दे दिया। मि० चर्चिल १० मई, १९४० को मि० चेम्बरलेन के स्थान पर प्रधान मंत्री बने थे। जापान के साथ होने वाला युद्ध समाप्त होने तक संयुक्त मंत्रिमंडल में रहने से मजदूर दलवाले मंत्रियों के इनकार करने पर वर्तमान राजनैतिक संकट उत्पन्न हुआ था। मजदूर दल के प्रमुख नेता मि० मारीसन, मि० बेविन और मि० डाल्टन थे। मि० बेविन ने घोषणा की कि यदि अगले चुनाव में शासन-सूत्र मजदूर दल के हाथ में आया तो भारत मंत्री का कार्यालय तोड़ दिया जायगा और भारत से डोमीनियन कार्यालय का सम्बन्ध रहेगा। जहां तक भारत को स्वराज्य देने का सम्बन्ध है, मि० बेविन ने साफ कह दिया कि वह उसे क्रमशः ही मिलेगा। ऐसा जान पड़ रहा था, जैसे १९४५ में मांटेग्यू बोल रहे हों।

इन दिनों इंडियन सिविल सर्विस वाले पर भी काफी प्रकाश पड़ रहा था, जैसा कि

शासन-सुधारों के समय होता आया था। एक समयथा जब आई० सी० एस में भर्ती होने के लिए इंग्लैंड में युवक नहीं मिलते थे। १६२० के बाद के वर्षों में लार्ड बर्केनहैड ने ब्रिटिश युवकों को आकृष्ट करने के लिए उन्हें हर तरह के सब्ज बाग दिखाये थे। इसी प्रकार एक दशक के बाद लार्ड विलिंगडन ने आई० सी० एस० के लिए उत्तम कोटि के युवक प्राप्त करने की आवश्यकता पर जोर देते हुए कहा :—"हमें ऐसे नवयुवकों की जरूरत है, जिनमें उद्यम, कल्पना तथा देश की जनता के प्रति सहानुभूति व जिम्मेदारी की भावना हो—ऐसे नवयुवकों की जो ब्रिटिश साम्राज्य की सर्वोत्तम सर्विस में भाग लेने के लिए उत्सुक हों।" लार्ड विलिंगडन ने अपने इसी भाषण में कहा कि सर्विस के भविष्य के सम्बन्ध में कुछ क्षेत्रों में जो संदेह प्रकट किये गये हैं, वे सर्वथा निर्मूल हैं। आपने कहा कि सर्विस में पहले की तरह अब भी अवसर की प्रचुरता है।

लार्ड वेवल के लंदन प्रवास के समय जो संवाद भारत आये थे उनमें से एक में कहा गया था कि वेवल-योजना के अन्तर्गत व्यवस्थापिका-सभा गवर्नर-जनरल की शासन-परिषद् को रक्षा, अर्थ व विदेश के अतिरिक्त अन्य किसी प्रश्न पर भंग कर सकेगी। साथ में यह चेतावनी भी थी कि ब्रिटिश-मन्त्रिमंडल ने वाइसराय से कह दिया है कि यदि यह योजना सफल न हो तो भारतीय सेना की सहायता से विद्रोह को तेजी से दबा दिया जाय।

२१ मई को मजदूर-दल की प्रबंध समिति से सफाई देने को कहा गया कि श्री एमरी ने मजदूर-दल वालों के प्रतिनिधि-मण्डल से मिलने के लिए पांच महीने की प्रतीक्षा क्यों करायी। पुरानी पार्लमेंट शुक्रवार ८ जून को भंग हो गई और ५ जुलाई को आम चुनाव हुआ। इसमें मजदूर-दल की तरफ से सबसे प्रभावपूर्ण व्यक्तित्व मि० बेवेन का दिखायी दिया, जिन्होंने भारत के सम्बन्ध में मजदूर-दल वालों की योजना पर प्रकाश डालना आरम्भ किया। परन्तु इस योजना से यह भी प्रकट हो गया कि जहां तक भारत के भविष्य का सम्बन्ध है, इंग्लैंड के विभिन्न-दलों में कोई मतभेद नहीं है।

आखिरकार ४ जून, १६४५ के दिन वेवल भारत वापस आये और दस सप्ताह की अनुपस्थिति के बाद अपने कार्य का भार संभाल लिया। इंग्लैंड में वे जिस काल में रहे थे वह बिल्कुल असाधारण था। वह उस देश के इतिहास का एक ऐसा काल था, जिसमें पुरानी व्यवस्था विदाई लेती है और नवीन की आशा जाग्रत हो उठती है। यह एक ऐसा काल था, जब हटने वाला दल अपनी कट्टर विचारधारा पर जमे रहने के लिए असाधारण हठ का परिचय दे रहा था और उधर दूसरी तरफ अधिकार-सूत्र ग्रहण करने वाला दल अपने आदर्शवाद पर जमे रहने के लिए असाधारण उत्साह दिखा रहा था। चर्चिल ने अवकाश ग्रहण करते समय ,अपने कट्टरपंथी सिद्धांतों की प्रशंसा के गान गाये और समाजवाद की निंदा करते हुए कहा कि वह तेजी से तानाशाही की तरफ चला जा रहा है। मजदूर-दल ने पांच वर्ष तक काम करने वाली मिलीजुली सरकार के सिद्धांतों पर चलने से इनकार कर दिया और भारत को स्वाधीनता प्रदान करने का वचन दिया। ऐसे काल में वेवल से यह आशा नहीं की जा सकती थी कि वे कोई ऐसी जादू की छड़ी अपने साथ लावेंगे, जिसे घुमा देने से वाइसराय के विशेषाधिकार का खात्मा हो जायगा और सत्ता जनता के हाथ में चली जायगी। उनके गुप्त कार्य का रहस्य इस घोषणा के कारण और भी गहरा हो गया कि भारत-आगमन के एक सप्ताह बाद तक वे कोई वक्तव्य नहीं देंगे। इसी बीच श्री एमरी ने ६ जून को लंदन के रोटरी क्लब में भाषण देते हुए कहा :—

"तीन साल से अधिक समय गुजरा कि हमने इच्छा प्रकट की थी युद्ध के बाद हम भारत को ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के अंदर—और यदि वह चाहे तो बाहर भी—पूर्ण स्वाधीनता प्रदान करें; किन्तु शर्त यह है कि भारत के मुख्य दल देश के भावी विधान के सम्बन्ध में कोई समझौता करलें।"

श्री एमरी ने अन्त में कहा :—

"अगर इस समस्या का कोई पूर्ण या तर्कसंगत जवाब नहीं मिलता (यानी अगर सत्ता हस्तांतरित करने के लिए स्वीकृत उत्तराधिकारी नहीं मिलते) तो कोई कारण नहीं कि भारत व ब्रिटेन दोनों ही जिस गतिरोध को समाप्त करना चाहते हैं उससे बाहर निकलने का कोई-न-कोई मार्ग उन्हें प्राप्त न हो जाय। ज़रूरत इस बात की है कि हम फिर से कोशिश करें।"

इस स्थल पर हमारे लिए मिस्र में अलेनबी के कार्य का उल्लेख करना अनुचित न होगा; क्योंकि भारत के सम्बन्ध में वेवल से उन्हींके पथ का अनुसरण करने की आशा की जाती थी।

मिस्र और भारत

वेवल के वाइसराय के पद पर नियुक्त किये जाने से सात महीने पहले और लार्ड लिनलिथगो के कार्यकाल का तीसरी बार छः महीने के लिए विस्तार किये जाने से ठीक पहले भी वेवल की इस पद पर नियुक्ति को चर्चा चली थी। उस समय कुमारी मार्गरेट पोप ने लिखा था :—

"प्रत्येक भारतीय को अपने देश के स्वाधीनता-संग्राम की निम्न घटनाओं से समानता का ध्यान रखना चाहिए :—

"१९१४ में अंग्रेज़ों ने मिस्र को संरक्षित राज्य घोषित कर दिया। युद्ध समाप्त होने पर मिस्रवासियों को शांति-सम्मेलन के सम्मुख आत्म-निर्णय का दावा पेश करने के लिए प्रतिनिधि-मंडल भेजने की इजाज़त नहीं दी गई। वफ्द दल के नेताओं को पकड़कर निर्वासित कर दिया गया। स्वभावतः परिणाम यह हुआ कि देश भर में असंतोष की लहर दौड़ गई। तब दल के लोगों ने कुछ हिंसात्मक कार्यों का संगठन किया। जिनका मुख्य उद्देश्य रेलवे लाइनों व तार की लाइनों को छिन्न-भिन्न करके यातायात् सम्बन्धों को भंग कर देना था (भारत में ९ अगस्त के उपद्रवों से तुलना कीजिए) और दंगे भी शुरू हो गये जिनमें कुछ अंग्रेज़ मार डाले गये। इस समय अलेनबी शांति व व्यवस्था कायम रखने के लिए भेजे गये। उन्होंने मज़बूती व तेजी से काम किया। उन्होंने वफ्द नेताओं को छोड़ दिया और उनसे बातचीत चलानी आरम्भ करदी। लार्ड अलेनबी ने वफ्द दल के नेता जगलुल पाशा को बातचीत करने के लिए लंदन भी भेजा। जगलूल पाशा अपनी बात पर जमे रहे और कोई भी रियायत करने से उन्होंने इनकार कर दिया। वार्ता भंग हो गयी और जगलुल पाशा को लंका में निर्वासित कर दिया गया। फिर भी अलेनबी ने समझौता करने के लिए अपने प्रयत्न जारी रखे। मिस्र में अपने सबसे बड़े विरोधी से पिंड छुड़ाकर लार्ड अलेनबी को समझौते के प्रयत्नों को आगे बढ़ाते समय ब्रिटिश मंत्रिमंडल तक से लोहा लेना पड़ा। इस ऐतिहासिक संघर्ष में लॉयड जॉर्ज, कर्जन और मिलनर—सभी मिस्र की संरक्षण-व्यवस्था को समाप्त करके स्वाधीनता की घोषणा करने के विषय में उनके विरोधी थे। परन्तु उनके सब से कट्टर विरोधी चर्चिल थे जैसा कि वेवल ने लिखा है। परन्तु अन्त में अलेनबी ही सफल हुए। १९२२ में जगलुल पाशा मुक्त कर दिये गये और मिस्र को एक स्वाधीन राज्य

स्वीकार कर लिया गया। इसे पूर्ण स्वाधीनता तो नहीं कहा जा सकता; लेकिन काम चलाऊ व्यवस्था हो गई और इस सब का श्रेय अलेनबी को ही था।

"अलेनबी ने जो कुछ किया क्या वही करने की हिम्मत वेवल भी कर सकते हैं—कांग्रेस के नेताओं को रिहा करें, तुरन्त बातचीत शुरू करदें और भारत की स्वाधीनता की घोषणा करने के साथ ही ब्रिटेन व भारतीय राष्ट्रीय-सरकार के बीच एक संधि कराने की व्यवस्था करें ?"

भारतीय स्वाधीनता की समस्या का मिस्र की स्वाधीनता-समस्या से इतना सामंजस्य है कि इस पर विस्तार से कुछ कहना अनुचित न होगा। मिस्र की स्वाधीनता की घोषणा १६२२ को की गई और १४ मार्च, १६२२ को पार्लमेंट में बहस होने के बाद खदीव को मिस्र का शाह घोषित कर दिया गया और उन्हें "हिज मैजेस्टी" भी कहा जाने लगा। लार्ड वेवल ने मत प्रकट किया है कि ब्रिटिश-सरकार तो अनिच्छुक थी, किन्तु अलेनबी की दृढ़ता के कारण उसे १६२२ में मिस्र को स्वाधीन करना पड़ा। कुछ स्वार्थी लोगों का सहारा लेकर ब्रिटिश स्वार्थों की रक्षा करते रहने से मिस्र की साधारण जनता के प्रति दिये गए वचन भंग नहीं होते। लार्ड अलेनबी ने देखा कि मिस्र के राष्ट्रवादी लोग जिन भावनाओं को प्रकट कर रहे हैं उन्होंने जनता के हृदय को भी हिला दिया है। उन्होंने यह भी अनुभव किया कि स्वाधीनता के नारों से प्रभावित होकर जनता अपनी स्वाभाविक सुस्ती छोड़कर कार्य-क्षेत्र में कूद सकती है। लार्ड अलेनबी ने यह भी महसूस किया कि मिस्रवासियों में आपसी मतभेद चाहे जितने क्यों न हों, किन्तु मिस्र और इंग्लैंड के पारस्परिक सम्बन्धों को तय करते समय उनका कुछ भी विचार न करना चाहिए।

१६२२ में अप्रैल व अक्टूबर के दर्मियान तैयार किये गये विधान के अनुसार सूडान मिस्र का ही अंग था। परन्तु अंग्रेज उसे "सुरक्षित विषय" मानते थे। इसी प्रकार भारत में रियासतों को स्वाधीन भारत से पृथक करने की चेष्टा की गई। मिस्री विधान-समिति ने विधान बेल्जियम के ढंग पर बनाया था। निम्न धारासभा के विस्तृत मताधिकार के आधार पर निर्वाचित होने, सेनेट आंशिक रूप में निर्वाचित व आंशिक रूप से नामजद होने और शाह को विधान के अनुसार चलने वाला शासक बनाने की व्यवस्था की गई थी। जिस समय यह सब हुआ उस समय वफ्द दल के नेता जगलूल पाशा उपद्रवों के लिए उत्तेजित करने के जुर्म में गिरफ्तार करके पहले अदन में रखे गये थे और २८ फरवरी, १६२२ को स्वाधीनता की घोषणा के दिन भूमध्य रेखा के निकट सेशीशीलेज़ द्वीप और फिर जिब्राल्टर भेज दिये गये थे। मार्च १६२३ के दिन उन्हें रिहा कर दिया गया। नया विधान मार्च १६२३ में ही जारी कर दिया गया। मार्शल-ला रद्द कर दिया गया। एक कानून ऐसा पास किया गया कि जिन विदेशियों के प्रति कोई अत्याचार हो उन्हें ६० से ७० लाख पौंड तक हर्जाना दिया जाय। १४ में से ३ विद्यार्थियों को प्राणदंड दिया गया। इस प्रकार काहिरा के दंगे और उसके बाद का इतिहास समाप्त हुआ। जगलूल पाशा १८ सितम्बर १६२३ को सिकंदरिया वापस आये। अन्य लोगों ने मिस्र में जो उन्नति की थी उसका वे खात्मा करना चाहते थे। अंग्रेजों ने आरोप लगाया कि यह उनका मिथ्याभिमान और ज़िद है। कुछ ऐसी ही परिस्थिति भारत में उस समय उत्पन्न हो गई थी जब लार्ड वेवल कुछ प्रस्तावों को लेकर, जिन्हें तैयार करने में कुछ कांग्रेसियों का हाथ था, गोकि संस्था के रूप में कांग्रेस से उनका कोई सम्बन्ध न था, इंग्लैंड गये थे। परन्तु जगलूल पाशा को चुनाव में भाग लेना पड़ा। वफ्द दल ने २१४ स्थानों में से १६० पर अधिकार कर लिया। जगलूल पाशा इंग्लैंड जाकर अपने मित्र रेमज़े मेकडानल्ड से मिलना चाहते थे, जो उस समय प्रधान मंत्री थे। परन्तु मेकडानल्ड उन

के मित्र उसी तरह नहीं साबित हुए जिस तरह १९४२ में लिनलिथगो महात्मा गांधी के मित्र प्रमाणित नहीं हुए। जगलूल पाशा ने निम्न मांगें उपस्थित कीं :—(१) मिस्र से अंग्रेजी फौज, अंग्रेजी प्रभाव और अंग्रेज अफसरों का हटाया जाना, (२) स्वेज नहर या अल्पसंख्यकों की रक्षा के अंग्रेजों के दावे का परित्याग। परन्तु जगलूल पाशा में बातचीत करने की चतुराई न थी, गोकि वे अपना पक्ष जोरदार शब्दों में पेश कर सकते थे और आन्दोलन का साहसपूर्वक नेतृत्व कर सकते थे। अक्टूबर १९२४ में मैकडानल्ड मंत्रिमंडल का पतन हो गया, किन्तु इसके पहले ही जगलूल पाशा अपने मित्र से उसी प्रकार निराश हो चुके थे, जिस प्रकार बाद में जाकर जवाहरलाल को क्रिप्स से और गांधीजी को लिनलिथगो से निराशा हुई थी। जगलूल पाशा का मतभेद अंग्रेजों से निम्न बातों के सम्बन्ध में था :—

(१) सूडान

(२) न्याय-सम्बन्धी तथा आर्थिक अंग्रेज सलाहकार,

(३) बृटिश स्वार्थ व १९२२ की घोषणा सम्बन्धी नीति,

(४) विदेशी अफसरों को हर्जाना देना,

(५) सूडान में अंग्रेजों के स्वार्थ और

(६) कतिपय रकमों का भुगतान।

जगलूल पाशा ने अपने प्रधान मंत्रित्व से इस्तीफा दे दिया। उन्होंने शाह से एक संधि कर ली और तीन दिन के ही भीतर सरदार ली स्टेक की हत्या कर दी गई।

१९१९-२० के मिलनर कमीशन ने मिस्र की संरक्षित व्यवस्था समाप्त करने की सिफारिश की थी। इस सिफारिश के अनुसार २८ फरवरी १९२२ को मिस्र के स्वाधीन राज्य घोषित कर दिये जाने पर अंग्रेजों ने कुछ प्रश्नों को बातचीत-द्वारा निपटाये जाने के लिए सुरक्षित रख लिया। इन प्रश्नों में सबसे महत्वपूर्ण निम्न थे :—(१) ब्रिटिश साम्राज्य के यातायात मार्गों की हिफाजत और (२) बाहरी आक्रमण या हस्तक्षेप से मिस्र की रक्षा। १९३१ में मिस्र व अंग्रेजों के मध्य मित्र बने रहने की एक संधि हुई, जिसकी पहली धारा इस प्रकार थी :—'चूंकि स्वेज नहर मिस्र का अङ्ग होने के अलावा संसार में और ब्रिटिश साम्राज्य के विभिन्न भागों में आवागमन का साधन है, इसलिए मिस्र के हिज मजेस्टी शाह मिस्री सेना के अपने साधनों के बल पर इस नहर व उसमें जहाजों के मार्ग की रक्षा में समर्थ होने के दोनों पक्षों-द्वारा स्वीकृत कालतक, नहर की रक्षा के लिए ब्रिटिश साम्राज्य को नहर के निकट मिस्री भूमि में सेना तैनात करने का अधिकार देते हैं, जैसा कि जुलाई १९२० में आदली पाशा व कर्जन में हुई बातचीत में कहा गया था। इस सेना की उपस्थिति से यह मतलब नहीं लगाया जायगा कि उसका उद्देश्य अधिकार जमाये रखना है और न उसके कारण मिस्र के स्वाधीनता के अधिकारों में ही किसी प्रकार हस्तक्षेप स्वीकार किया जायगा। धारा १६ में उल्लिखित २० वर्ष का काल समाप्त होने पर नहर के मार्ग की मिस्री सेना-द्वारा रक्षा करने में समर्थ होने के प्रश्न को, यदि दोनों पक्ष सहमत न हों तो, वर्तमान संधि की व्यवस्था के अनुसार राष्ट्रसंघ के अथवा ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह के आगे निर्णय के लिए पेश किया जा सकता है, जिसके सम्बन्ध में दोनों पक्षों में समझौता हो गया हो।"

यह भी स्पष्ट कर दिया गया कि ब्रिटिश सेना में १०,००० भूमि-सैनिक तथा ४०० वायुयान-चालक रहेंगे, नहर के पूर्व व पश्चिम में उन क्षेत्रों की व्याख्या की गई जिनमें ब्रिटिश सेना को तैनात किया जायगा और यह भी बता दिया गया कि इस सेना के लिए कितनी भूमि,

बारकें, जल-व्यवस्था तथा सड़क और रेलवे यातायात सम्बन्धी प्रबन्ध की जरूरत पड़ेगी। ऐसी ही एक संधि अंग्रेजों ने १६३० में इराक से की थी।

आइये, अब हम फिर भारत की तरफ आवें। जिन्ना-गांधी वार्ता असफल होते ही लियाकत-देसाई वार्ता आरम्भ हो गई और जनवरी, १६४५ में दोनों नेताओं ने समझौता किया, जिस पर ११ जनवरी, १६४५ को हस्ताक्षर भी हो गये।

इस समझौते में समानता का अनुपात साम्प्रदायिक आधार पर नहीं बल्कि संस्थागत आधार पर स्वीकार किया गया था। दूसरे शब्दों में इसमें हिन्दुओं व मुसलमानों के समान प्रतिनिधित्व के स्थान पर कांग्रेस व मुस्लिम लीग के समान प्रतिनिधित्व की बात स्वीकार की गई थी। दूसरे, उसमें यह भी निश्चित कर लिया गया था कि इस प्रकार स्थापित सरकार का पहला कार्य कांग्रेस कार्य-समिति के सदस्यों की रिहाई होगी। अन्य बातें इस प्रस्ताव के स्वीकार किये जाने पर ही निर्भर थीं। यदि वाइसराय व भारत मंत्री ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया होता तो शायद शिमला-सम्मेलन होता ही नहीं। तब तो गुप्तरूप से समझौता हो जाता और फिर एक दिन हमें सूचना मिलती कि नई शासन परिषद् स्थापित हो गई है और फिर कार्य-समिति की रिहाई के लिए हम नई सरकार के गृह-सदस्य के प्रति कृतज्ञ होते। इस प्रकार कांग्रेस की कोई आवाज ही न होती; क्योंकि सभी बातचीत उसकी अनुपस्थिति में हुई थी। और फिर कांग्रेस कार्य समिति के परामर्श के बिना ही एक नई सरकार की, इसे राष्ट्रीय सरकार कहना ठीक न होता, स्थापना हो जाती। ऐसा होता तो ब्रिटिश कूटनीति की विजय होती, सत्याग्रह ताक पर उठा कर रख दिया जाता और न जाने कब तक ब्रिटिश शासन की जड़ें भारत में जमी रहतीं। सौभाग्यवश गांधीजी के कड़े रुख के कारण यह दुर्घटना नहीं हुई और २२ जनवरी को डा० प्रफुल्लचंद्र घोष की रिहाई के कारण जो अस्वस्थ थे इस निश्चय को और बल प्राप्त हुआ। इससे जाहिर हो गया कि कार्यसमिति के सदस्यों के रिहा होने तक कुछ नहीं हो सकता। किसीको व्यक्तिगत विजय के संकुचित दृष्टिकोण के कारण नहीं किन्तु एक सिद्धांत की सफलता के व्यापक दृष्टिकोण से यह प्रसन्नता की ही बात हुई कि कांग्रेस की इज्जत बची रही और राष्ट्रीय संघर्ष छेड़ने, उसे जारी रखने तथा ८ अगस्त, १६४२ के बम्बई वाले प्रस्ताव को वापस लेने से इनकार करने के विषय में पिछले तीन वर्ष तक उसने जो दृष्टिकोण ग्रहण किया था उस पर वह अडिग बना रहा। हां तो, जहांतक देश का ताल्लुक है, इन दिनों की घटनाएं विशेष महत्त्वपूर्ण थीं इसलिए नहीं कि उनके कारण कोई सफलता मिलती या नहीं मिलती, बल्कि इस कारण कि उन नैतिक सिद्धांतों की विजय हुई जिनके आधार पर कांग्रेस के कार्य पिछले २५ वर्ष से चल रहे थे।

अब हम उन घटनाओं को लेते हैं, जिनका सम्बन्ध वेवल-योजना से था। यह योजना गतिरोध दूर करने के लिए थी। १४ जून, १६४५ को लार्ड वेवल ने भारत की जनता के लिए रेडियो से एक भाषण ब्राडकास्ट किया और साथ ही प्रायः उसी समय भारत-मंत्री श्री एमरी ने भी पार्लमेंट में एक वक्तव्य दिया। इन दोनों वक्तव्यों में एक ही प्रकार के विचार व भाव प्रकट किये गये और एक ही योजना व कार्यक्रम उपस्थित किया गया। योजना की मुख्य बात यह थी कि वाइसराय चुने हुए व्यक्तियों का एक सम्मेलन बुलावें जिससे कि नई शासन-परिषद् के सदस्यों की एक सूची तैयार की जा सके। इस सूची में ऐसे व्यक्ति सम्मिलित किये जायं, जो सार्वजनिक रूप से तीन बातें स्वीकार करने को तैयार हों और इन तीन बातों में सब से महत्त्व-

पूर्ण जापानियों के विरुद्ध युद्ध करके उन्हें हराना हो। वाइसराय ने अपने ब्राडकास्ट में कहा, "विभिन्न दल ऐसे योग्य तथा प्रभावशाली व्यक्तियों के नामों की सिफारिश करें, जो विदेश विषय को मिलाकर सभी विभागों के प्रबंध तथा उनके विषय में निश्चय करने की जिम्मेदारी उठाने को तैयार हों", किन्तु अपवाद युद्ध-संचालन का किया गया, जो प्रधान सेनापति की अधीनता में होगा। वाइसराय ने यह भी कहा कि हिन्दुओं (अछूतों को छोड़ कर) और मुसलमानों की संख्या बराबर रहेगी और कार्य का संचालन तत्कालीन विधान के अनुसार होगा यानी "भारत मंत्री गवर्नर-जनरल के नियंत्रण में।" लार्ड वेवल ने सम्मेलन में सवाल उठाया कि यदि उपर्युक्त शर्तों पर समझौता हो जाय तो विभिन्न दलों-द्वारा शासन-परिषद् के निर्माण के लिए उसमें रखे जाने वाले व्यक्तियों की संख्या व साम्प्रदायिक अनुपात के सम्बन्ध में और वाइसराय के सम्मुख नामों की वह सूची जिसमें से वाइसराय शासन-परिषद् में नियुक्ति के लिए चुनाव करेंगे, उपस्थित करने के तरीके के सम्बन्ध में मतैक्य प्राप्त करना सम्भव होगा या नहीं।

वाइसराय ने कहा कि उनके निषेध अधिकार को हटाने का तो कोई प्रश्न नहीं उठता; किन्तु उसका उपयोग अकारण नहीं किया जायगा। दूसरी तरफ भारत मंत्री ने कहा कि निषेध अधिकार का प्रयोग ब्रिटेन के हित में नहीं बल्कि केवल भारत के ही हित में किया जायगा। हम सभी जानते हैं कि लार्ड इरविन के समय में भारत के हितों का क्या मतलब लगाया जाता था। पाठकों को सम्भवतः स्मरण होगा कि गांधी-इरविन समझौते की अन्तिम धारा में वैधानिक स्थिति की चर्चा करते समय कहा गया कि भारत का भावी विधान जिन तीन बातों पर आधारित रहेगा वे संघ, केन्द्रीय जिम्मेदारी और भारतीय स्वार्थों की रक्षा के लिए संरक्षण होंगी। बाद में इन भारतीय स्वार्थों का मतलब ब्रिटिश स्वार्थों से लगाया गया। वाइसराय ने अन्त में कहा, "मैं यह बात स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि ये प्रस्ताव सिर्फ ब्रिटिश भारत के ही सम्बन्ध में हैं और इनका प्रभाव सम्राट् के प्रतिनिधि से नरेशों के सम्बन्धों पर बिलकुल नहीं पड़ता।" जहां तक कांग्रेस का सम्बन्ध है, सरकार ने अपनी स्थिति इन शब्दों में स्पष्ट करदी थी। "जहां तक रियासतों का सम्बन्ध है, यह स्वीकार किया जाता है कि दर्मियानी वक्त में सम्राट् के प्रतिनिधि के अधिकार जारी रहेंगे, फिर भी यह स्पष्ट है कि राष्ट्रीय सरकार को कितने ही ऐसे विषय हाथ में लेने पड़ेंगे जिनका रियासतों से सम्बन्ध होगा, जैसे, व्यापर, उद्योग, श्रम आदि। इसके अतिरिक्त एक तरफ रियासती प्रजा व नरेश और दूसरी तरफ राष्ट्रीय सरकार के सदस्यों के मध्य की दीवार हटनी चाहिए जिससे समान समस्याओं को परस्पर वाद-विवाद और सलाह-मशविरे के द्वारा हल किया जा सके।"

अपने ब्राडकास्ट-भाषण के अंत में वाइसराय ने निम्न शब्द कहे, "यदि सम्मेलन सफल हुआ तो मुझे केन्द्रीय शासन परिषद् स्थापित करने के विषय में सहमत होने की आशा है। ऐसी अवस्था में धारा ९३ वाले प्रांतों में मन्त्रिमण्डल फिर से काम करने लगेंगे। ये प्रांतीय मंत्रिमंडल मिलेजुले होंगे।.........यदि सम्मेलन दुर्भाग्यवश असफल हुआ तो विभिन्न राजनैतिक-दलों में कोई समझौता होने तक हमें वर्तमान अवस्था में रहना पड़ेगा।"

वाइसराय ने सम्मेलन के सम्मुख पदों व उनमें मिलाये जाने वाले विभागों की निम्न सूची उपस्थित की —

पद	सम्मिलित विभाग
१. युद्ध	युद्ध
२. विदेश विषय	१. विदेश विषय तथा २. राष्ट्रमंडल सम्पर्क
३. गृह	गृह
४. अर्थ	अर्थ
५. कानून	कानून
६. श्रम	श्रम
७. यातायात सम्पर्क	युद्ध, यातायात व रेल
८. रक्षा	डाक और वायु
९. व्यापार	व्यापार तथा नागरिक रसद
१०. उद्योग तथा रसद	
११. शिक्षा	
१२. स्वास्थ्य	
१३. कृषि	
१४. आयोजन तथा उन्नति	१. कृषि-उन्नति २. खाद्य
१५. सूचना व ब्राडकास्टिंग	

तत्कालीन सूची तथा उपस्थित की गई सूची का भेद भी समझना आवश्यक है। स्वास्थ्य, भूमि व शिक्षा का पद तोड़कर उसके तीन पद बनाये गये—प्रथम स्वास्थ्य का, दूसरा कृषि का जिसमें खाद्य भी सम्मिलित किया गया और तीसरा शिक्षा का। युद्ध-यातायात के पुराने पद को यातायात सम्पर्क (कम्यूनिकेशंस) में परिवर्तित किया गया, जिसमें युद्ध-यातायात को सम्मिलित कर लिया गया। पुराने व्यापार के पद को जिसमें (१) व्यापार, (२) उद्योग व (३) नागरिक रसद सम्मिलित थे, अब व्यापार व नागरिक रसद की संज्ञा दी गई। उद्योग व नागरिक रसद का एक नया पद बनाया गया। आयोजन व उन्नति के पुराने पद में खाद्य को सम्मिलित नहीं किया गया जैसे कि पहले था। पहले राष्ट्रमंडल सम्पर्क का पद पृथक् था; किन्तु अब उसे विदेश विषय में ही मिला दिया गया।

वाइसराय के भाषण व कार्य-समिति के नेताओं की रिहाई से बड़ी-बड़ी आशाएं की गईं। वाइसराय ने आरम्भ में ही कहा कि इस बार इतिहास की पुनरावृत्ति न होगी—वेवल-योजना की क्रिप्स-मिशन के समान ही गति न होगी। सम्मेलन में जो बहस व प्रश्नोत्तर हुए, उनका यहां उल्लेख करना ठीक न होगा; किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि जब नेताओं के लिए मिल-जुलकर एक संयुक्त सूची उपस्थित करना असम्भव हो गया तो प्रत्येक दल व व्यक्ति से अपनी-अपनी सूची उपस्थित करने को कहा गया। फिर भी बड़ी विचित्र बातें हुईं। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि २८ जून से दो बैठकें हो चुकने के बाद सम्मेलन की १४ जुलाई वाली बैठक में सफलता मिलने की आशा की जा रही थी। बहुत सोच-विचार के बाद उसमें दो सूचियां उपस्थित की गईं। यह बड़े दुःख की बात थी कि अबतक कोई संयुक्त सूची नहीं बन पाई थी। यदि ऐसा होता तो देश की उन्नति का मार्ग खुल जाता। यदि संयुक्त सूची बन जाती तो

शायद एक ही दल, एक ही कार्यक्रम, सम्भवतः भविष्य के लिए एक ही निर्वाचन-व्यवस्था, एक ही राष्ट्रीयता, एक ही आदर्श, संसार के मामलों में एक ही साथ भाग लेने और ब्रिटेन के नियंत्रण से छुटकारे के एक साथ प्रयत्न करने का नवीन अध्याय आरम्भ हो जाता। पर यह न होना था, सो नहीं हुआ। भाग्य में तो यही था कि मुल्क की गुलामी जिस आपसी फूट के कारण हुई थी वह हमारे बीच बनी रहे। संयुक्त सूची उपस्थित न कर सकने का मतलब यह हुआ कि भारत के एक होने की आवाज़ धीमी पड़ गई। दूसरे शब्दों में इसका यह भी मतलब हुआ कि जनता का एक भाग अभी ब्रिटेन के ही साथ बँधा रहना चाहता है और अपने पैरों पर खड़ा होने में अपने को असमर्थ पा रहा है। खैर, मुस्लिम लीग व यूरोपियन प्रतिनिधि के अलावा बाकी सबकी तरफ से पृथक् सूचियां उपस्थित की गईं और इसका क्या परिणाम हुआ यह भी हम देखते हैं।

११ जुलाई को मुस्लिम लीग के नेता ने सिर्फ १५ मिनट तक वाइसराय से मुलाकात की और इस मुलाकात में उन्होंने कहा कि वाइसराय की सूची में जो गैर-लीगी नाम हैं उन्हें वे स्वीकार नहीं कर सकते; क्योंकि लीग भारत के मुसलमानों की एकमात्र प्रतिनिधि होने का दावा करती है और उन्होंने जो सूची दी है उसमें वे अपने दल के अतिरिक्त किसी बाहरी नाम को शामिल नहीं करने दे सकते। वाइसराय ने इससे अपना मतभेद प्रकट किया। कुछ ही समय बाद गांधीजी वाइसराय से मिले और अगले दिन कांग्रेस के अध्यक्ष को मिलने के लिए बुलाया गया। वाइसराय ने सिर्फ इतना ही कहा कि मैंने मुस्लिम प्रतिनिधियों की जो सूची बनाई है मि० जिन्ना उससे सहमत नहीं हैं (सूची का सिर्फ इतना भाग ही उन्हें दिखाया गया था।) इससे अधिक वाइसराय ने नेताओं को कुछ नहीं बताया। वाइसराय के कार्य की विचित्र प्रणाली थी। वे दलों में समझौता कराने का तो प्रयत्न कर रहे थे, किन्तु उन्होंने नेतृत्व अपने हाथ में सुरक्षित रखा था और अपने इसी अधिकार के कारण वे अपनी सूची तैयार कर रहे थे। वाइसराय ने नेताओं से सूचियां तो सिर्फ इसलिए मांगी थीं कि उनमें से शासन-परिषद् के लिए वे नामों का चुनाव करलें। परन्तु वाइसराय कोई सूची तैयार नहीं कर सके। यह कहने से क्या लाभ है कि उनकी सूची सम्भवतः कांग्रेस स्वीकार नहीं करती और इसीलिए उन्होंने उसे कांग्रेसी नेताओं को नहीं दिखाया। उचित कार्य-पद्धति तो यह होती कि वे अपनी सूची कांग्रेसी नेताओं को दिखाते और वे उसे स्वीकृति के लिए कार्य-समिति के आगे उपस्थित करते। यही नहीं कि ऐसा नहीं किया गया बल्कि वाइसराय ने कार्य-समिति के दृष्टिकोण के विषय में अनुमान भी कर लिया। १४ जुलाई को वाइसराय ने सम्मेलन यह कहते हुए समाप्त कर दिया कि उन्हें अपने प्रयत्नों में असफलता मिली है और इसीलिए सम्मेलन को अनिश्चित काल के लिए स्थगित किया जाता है। ऐसा करते समय उन्होंने सम्मेलन की असफलता अपने सिर पर ली और इस सिलसिले में यह भी कहा कि मि० जिन्ना ने कोई सूची उपस्थित नहीं की बल्कि उन्हें जब वाइसराय की सूची का एक भाग दिखाया गया तो उन्होंने यही कहा कि मुस्लिम लीग उसे स्वीकार नहीं कर सकती।

भारत के प्रमुख नेताओं के एक पखवारे तक शिमला में रहने के समय जो घटनाएं हुईं उनकी समीक्षा करने से प्रकट हो जाता है कि पहले जो आशंकाएं की गईं थीं वे निराधार न थीं। क्रिप्स-मिशन व वेवल-योजना में बहुत-कुछ समानता थी, क्रिप्स जिस समय भारत आये उस समय बड़ी आशाएं दिखाई गईं। उन्होंने कांग्रेस के अध्यक्ष को वचन दिया कि भारत में

वाइसराय की नये मंत्रिमंडल की तुलना में वही स्थिति रहेगी जो ब्रिटिश सम्राट् की ब्रिटिश मंत्रि-मंडल की तुलना में होती है। बाद में उन्होंने इस बात के अथवा "मंत्रिमंडल" शब्द की चर्चा तक से इनकार कर दिया, गोकि अक्टूबर, १९४२ के पार्लमेंट वाले भाषण में सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने स्वीकार कर लिया कि उन्हों ने "मंत्रिमंडल" शब्द का साधारण अर्थ में प्रयोग किया था वैधानिक अर्थ में नहीं। शिमला में लार्ड वेवल ने कहा था कि वाइसराय के निषेध अधिकार को रद्द करने का तो प्रश्न नहीं उठता; किन्तु उसका अकारण प्रयोग नहीं किया जायगा। सर स्टैफर्ड क्रिप्स की तुलना में वाइसराय ने यह स्पष्ट बात अवश्य कही थी। क्रिप्स व वेवल योजनाओं के सम्बन्ध में दूसरा अन्तर यह है कि क्रिप्स ने जब दिल्ली आकर गांधीजी को बुलाया तो गांधीजी को क्रिप्स-प्रस्तावों को देख कर ऐसी निराशा हुई कि उन्होंने इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया कि क्रिप्स ऐसे प्रस्ताव लेकर ब्रिटेन से आये ही क्यों। परन्तु जहांतक वेवल-योजना का सम्बन्ध है, गांधीजी ने संतोष प्रकट किया और कहा कि यह नेकनीयती से तैयार की गई है और इसे स्वाधीनता की ओर ले जाने वाला एक कदम कहा जा सकता है। गांधीजी ने उसमें स्वाधीनता का बीज देखा और इसीलिए उन्होंने इसके प्रति क्रिप्स-योजना से भिन्न रुख ग्रहण किया। जब क्रिप्स भारत आये थे तो गांधीजी की सलाह थी कि कांग्रेस की कार्य-समिति की बैठक दिल्ली में बुलानी आवश्यक नहीं है। परन्तु इस बार घटनाचक्र बिल्कुल दूसरी दिशा में ही घूमा। गांधीजी ने सलाह दी कि कार्यसमिति की बैठक बुलाई जाय और वह वेवल-योजना पर विचार करे, परन्तु यहां से दोनों योजनाओं की समानता आरम्भ होती है। क्रिप्स-योजना की नौका कार्यसमिति की बैठक शुरू होने के तीसरे दिन डूब गई। यह बैठक २९ मार्च, १९४२ को आरम्भ हुई थी और ३१ मार्च को समाप्त हुई। परन्तु क्रिप्स ने अनुरोध किया कि मैं जो सुन रहा हूँ कि कार्यसमिति ने मेरे प्रस्तावों को अस्वीकार कर दिया है, यदि यह सत्य है तो उसे यह बात समाचार पत्रों में प्रकाशित न करनी चाहिए। क्रिप्स का यह अनुरोध स्वीकार कर लिया गया। शिमला-सम्मेलन के तीसरे दिन यानी २९ जून १९४५ को असफलता उसकी कार्यवाही से ही प्रकट हो गई; क्योंकि सम्मेलन में संयुक्त सूची तैयार नहीं हो सकी। फिर भी यह आशा अवश्य की जाती थी कि वाइ-सराय की सूची बुद्धिमत्तापूर्ण होगी और उसके कारण समझौता हो सकेगा। जिस प्रकार 'क्रिप्स-मिशन के समय कर्नल जान्सन के आगमन से आशा पुनः जाग्रत हो उठी थी, क्योंकि क्रिप्स के कार्य के पहले तीन दिन समाप्त होने के कहीं एक सप्ताह बाद ही वार्ता अंतिम रूप से भंग हुई थी, इसी प्रकार शिमला-सम्मेलन के प्रथम तीन 'दिनों के बाद और वाइसराय-द्वारा सम्मेलन भंग करने की घोषणा के मध्य एक पखवारे का समय गुजरा था और इस अरसे में कई घटनाएं हुई थीं। यह आजतक प्रकट नहीं हो सका है कि ९ मार्च, १९४२ के दिन सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने अपने दृष्टिकोण में एकाएक परिवर्तन कैसे कर लिया और यह क्यों कहा कि रक्षा सदस्य को हस्तांतरित किये जाने वाले विषयों की सूची में उन्हें और कोई विषय जोड़ना शेष नहीं रहा है और यह भी कि मंत्रिमंडल के व्यवस्थापिका परिषद् के प्रति जिम्मेदार होने की कोई बात ही नहीं है बल्कि यह तो एक ऐसा सवाल है जिस पर कार्यसमिति को वाइसराय से बातचीत करनी चाहिए। लार्ड वेवल ने सम्मेलन के सदस्यों द्वारा पेश की गई सूचियों के आधार पर जो अपनी सूची तैयार की थी उसे उन्होंने कांग्रेस तथा अन्य सभी दलों या लीग को पूरी क्यों नहीं बतायी, इस पर भी कोई प्रकाश नहीं डाल सकता। परन्तु यह निर्विवाद है कि १४ जुलाई से पहले वाले सप्ताह में समाचार-पत्रों में जो सूची विश्वस्त सूची के नाम से प्रकाशित हुई थी,

उसे वास्तविक सूची नहीं कहा जा सकता; क्योंकि वाइसराय यह सूची किसीको भी बता नहीं सकते थे।

जो कुछ हो इतना स्पष्ट है कि सम्मेलन की असफलता के लिए कांग्रेस की ज़िम्मेदारी कुछ भी न थी। वाइसराय को कांग्रेस का रुख बिल्कुल स्पष्ट हो चुका था, क्योंकि वाइसराय जो थोड़े परिवर्तन सूची में करना चाहते थे उन पर कांग्रेस को कोई आपत्ति न थी। कांग्रेस तो सिर्फ यही चाहती थी कि उससे पहले सलाह ले ली जाय और उसकी सहयोग की भावना से अनुचित लाभ न उठाया जाय। जहाँ तक लीग का सम्बन्ध है यह स्पष्ट है कि उसे सम्मेलन भंग होने की जिम्मेदारी आंशिक रूप से अवश्य उठानी चाहिए, क्योंकि वह अपने को भारतीय मुसलमानों की एक मात्र प्रतिनिधि होने के दावे को माने जाने का हठ कर रही थी और यह एक ऐसा दावा था, जिसे खुद वाइसराय मानने को तैयार नहीं थे और जिससे देश के करोड़ों मुसलमान इनकार करते थे। लीग का दावा उस समय और भी कमजोर पड़ गया जब खिजर हयातखां लीग से अलग अपना प्रतिनिधि नामजद कराने शिमला पहुँचे। अहरार, राष्ट्रीय मुसलमान, मोमिन, शिया और जमीयतुल उलेमा की कार्यसमितियों ने मौलाना हुसैन अहमद मदनी को कांग्रेस व सरकार के पास अपना प्रतिनिधि नामजद करने के उद्देश्य से बातचीत करने के लिए भेजा था। जुलाई, १९४५ में शिमला में जो घटनाएं हुईं उनमें कुछ नैतिक न्याय भी था। अप्रैल, १९४२ में क्रिप्स मिशन को यदि स्वयं क्रिप्स ने भंग नहीं किया तो वह कांग्रेस ने किया था। शिमला में लीग ने वेवल-योजना को असफल किया गोकि इसका दोष लार्ड वेवल ने अपने सिर पर ले लिया। दिल्ली में जो बात क्रिप्स के साथ हुई ठीक वैसी ही बात शिमला में वेवल के साथ हुई। शिमला सम्मेलन की समाप्ति के बाद मौलाना अबुलकलाम आजाद ने समाचारपत्र के एक प्रतिनिधि से कहा था, वाइसराय ने मुझे पहली मुलाकात में ही विश्वास दिलाया था कि सम्मेलन में भाग लेने वाला कोई भी दल उसे जानबूझ कर भंग न कर सकेगा। सभी जानते थे कि मि० जिन्ना का रुख क्या होगा और सभी का विश्वास था कि लार्ड वेवल उनके प्रति उचित व्यवहार करने का अधिकार प्राप्त कर चुके हैं। परन्तु लार्ड लेवल का हाथ भी अंत में आकर क्रिप्स के ही समान रुक गया। दोनों परिस्थितियों में एक और भी समानता दिखाई देती है। क्रिप्स ऐसे समय भारत आये थे जब भारत पर जापानियों के आक्रमण की आशंका की जा रही थी। यह आशंका मिटते ही क्रिप्स-मिशन एकाएक समाप्त हो गया। जुलाई, १९४५ में वेवल-योजना जिस समय शिमला में प्रकाश में आई थी उस समय अनुदार दल वाले ५ जुलाई को होने वाले आम चुनाव में मजदूर-दल के भारी हमले की आशंका कर रहे थे। चुनाव समाप्त होने पर पहले के रुख में एकाएक परिवर्तन हो जाने के कारण वेवल-योजना का भी अन्त हो गया। यह कहना कि इस प्रकार की चालें चलने और फिर उन्हें वापस लेने की बातें पहले से तय कर ली जाती हैं, अनुचित जान पड़ता है। गोकि कार्य व कारण के रूप में इन बातों का सम्बन्ध हर जगह नहीं जोड़ा जा सकता। फिर भी साधारण जनता इस तथ्य की उपेक्षा नहीं कर सकती।

परन्तु सब बातों पर विचार कर चुकने के बाद शिमला-सम्मेलन असफल होने का दोष वास्तव में ब्रिटिश सरकार पर आता है जिसके प्रतिनिधि लार्ड वेवल दृढ़ता तथा निर्भयतापूर्वक कार्य न कर सके। लार्ड वेवल ने जब यह कहा कि, "परस्पर बुरा-भला न कह कर आप सहायता करेंगे" तो उनके मन में आशंका थी कि वे विभिन्न दलों की भावनाओं को कुछ चोट पहुंचा रहे हैं। पहले किसी पर दोषारोपण किया जाता है और फिर बुरा-भला कहा जाता है। परन्तु

सम्मेलन को मुस्लिम लीग ने जो क्षति पहुंचाई थी उसका निवारण करने की सामर्थ्य वाइसराय में थी। परन्तु ऐसा करने के स्थान पर वाइसराय ने शासन-सम्बन्धी कठिनाइयों का बहाना बनाया। आपने कहा "परिवर्तन अथवा भंग होने की दैनिक सम्भावना के समय कोई भी सरकार अपना कार्य नहीं चला सकती। मुझे दैनिक शासन की कार्य-क्षमता का भी ध्यान रखना है और इसलिए इस प्रकार की राजनैतिक वार्ता बार-बार नहीं चलाई जा सकती।" इसलिए "सम्मेलन के असफल होने के बाद मैं किस प्रकार सहायता कर सकूंगा, इसके सोच-विचार में कुछ समय लग जायगा।" वाइसराय ने एक या दो महीने ठहरने की बात जो कही थी उसका उद्देश्य यही था कि इन शब्दों के द्वारा असफलता के कारण अत्यन्त कटुता को दूर किया जा सके। पुरानी इमारत के खंडहरों पर नई इमारत खड़ी करना न तो आसान होता है और न यह कार्य जल्दी ही होता है। अब देखना था कि वाइसराय अगला कदम क्या उठाते हैं। परन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि आशा की कोई नई किरण दिखाई देने लगी हो। कांग्रेस के लिए इतना ही काफी था कि वह यह प्रकट करे कि त्रुटी किस स्थल पर है। इस बार भी विजय कांग्रेस की ही हुई। प्रथम तो यह कि ब्रिटिश सरकार को कांग्रेस को जेल से छोड़ना पड़ा और वार्ता चलानी पड़ी। दूसरी यह कि सबको प्रकट हो गया कि कांग्रेस जिद्दी संस्था नहीं है। उसकी विजय अभी होनी शेष थी और वह यह थी कि वह युद्ध और शान्ति के समय समान रूप से शासन-व्यवस्था चलाने में समर्थ है।

१४ जून से २५ अगस्त तक का काल सुस्ती का था जो देखने में तो थोड़ा जान पड़ता है; किन्तु भारत में वैधानिक परिवर्तन देखने को उत्सुक लोगों के लिए वह बहुत लम्बा काल था। मध्यवर्ती काल में ब्रिटिश आम चुनाव का परिणाम प्रकट हुआ और १० जुलाई, १६४५ को मज्दूर-सरकार की स्थापना हुई। चुनाव में श्री एमरी हार गये और उनके स्थान पर लार्ड पेथिक लारेंस भारत-मंत्री बनाये गये। नई पार्लमेंट के उद्घाटन के अवसर पर सम्राट् ने जो भाषण दिया वह निराशा जनक था :—

"भारतीय जनता के प्रति दिये गए वचनों के अनुसार मेरी सरकार भारतीय लोकमत के नेताओं से मिलकर भारत में शीघ्र ही स्वायत्त शासन शुरू करने की दिशा में यथाशक्ति प्रयत्न करेगी।"

कुछ ही समय बाद लार्ड वेवल को इंग्लैंड बुलाया गया। वे लंदन में २५ अगस्त को पहुंचे और उनकी वापसी से पहले ही भारत में केंद्रीय व प्रान्तीय व्यवस्थापिका-सभाओं के आम चुनावों की घोषणा की गई। वेवल स्वयं १८ सितम्बर को वापस आये और उन्होंने अगले ही दिन एक भाषण ब्राडकास्ट किया, जो इस प्रकार है :—

"हाल ही में लंदन में सम्राट् की सरकार के साथ मेरा वार्तालाप समाप्त होने पर उसने मुझे निम्न घोषणा करने का अधिकार प्रदान किया है :

"जैसा कि पार्लमेंट के उद्घाटन के अवसर पर सम्राट् ने अपने भाषण में कहा था, सम्राट् की सरकार, भारतीय नेताओं के सहयोग से, भारत में शीघ्र ही पूर्ण स्वायत्त शासन की स्थापना में सहायता प्रदान करने के लिए यथाशक्ति सब कुछ करने के लिए दृढ़ संकल्प है। मेरी लंदन-यात्रा के अवसर पर उसने मेरे साथ उन उपायों पर सोच-विचार किया है जो इस दिशा में किये जायंगे।

"इस आशय की घोषणा पहले ही की जा चुकी है कि केन्द्रीय और प्रान्तीय व्यावस्थापिका-सभाओं के निर्वाचन, जो अब तक युद्ध के कारण स्थगित थे, आगामी शीत ऋतु में किये जायंगे। सम्राट् की सरकार को पूरी आशा है कि उसके बाद प्रान्तों में राजनैतिक नेता मन्त्रिपद का दायित्व ग्रहण कर लेंगे।

"सम्राट की सरकार का इरादा है कि यथाशीघ्र एक विधान निर्मात्री परिषद् का आयोजन किया जाय और फलतः प्रारम्भिक प्रयत्न के रूप में उसने मुझे यह अधिकार दिया है कि मैं निर्वाचन समाप्त होते ही, यह जानने के लिए प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं के प्रतिनिधियों से वार्तालाप करूं कि १९४२ की घोषणा में जो प्रस्ताव निहित हैं वे उन्हें मान्य हैं या किसी वैकल्पिक अथवा संशोधित योजना को वे तरजीह देते हैं। देशी राज्यों के प्रतिनिधियों से भी, यह जानने के लिए वार्तालाप किया जायगा कि वे किस विधि से, विधान-निर्मात्री-परिषद् में पूरी तरह से सम्मिलित हो सकते हैं।

"सम्राट् की सरकार उस सन्धि के विषयों पर विचार करने जा रही है जो ब्रिटेन और भारत के मध्य आवश्यक होगी।

"इन प्रारंभिक अवस्थाओं में, भारत की शासन-व्यवस्था जारी रहनी चाहिए और तात्कालिक आर्थिक एवं समाजिक समस्याओं का निबटारा भी अवश्य होना चाहिए। इसके अतिरिक्त भारत को नवीन विश्व-व्यवस्था की रचना में पूरा-पूरा भाग लेना है। फलतः सम्राट् की सरकार ने मुझे यह भी अधिकार दिया है कि ज्योंही प्रान्तीय निर्वाचनों के परिणाम ज्ञात हो जाय मैं एक ऐसी शासन-परिषद् को अस्तित्व में लाने का प्रयत्न करूं जिसे मुख्य-मुख्य भारतीय दलों का समर्थन प्राप्त हो।

"यह घोषणा की समाप्ति है जिसके लिए मुझे सम्राट् की सरकार की ओर से अधिकार मिला है। इसका अभिप्राय बहुत कुछ है। इसका अभिप्राय यह है कि सम्राट् की सरकार भारत को यथासम्भव शीघ्र स्वायत्त शासन की स्थिति में पहुंचाने के कार्य को अग्रसर करने के लिए दृढ़-संकल्प है। जैसा कि आप स्वयं अनुमान कर सकते हैं उसके सम्मुख अत्यन्त महत्वपूर्ण और तात्कालिक समस्याएं हैं किन्तु पहले से ही कार्य-व्यस्त रहते हुए भी उसने कार्य-भार ग्रहण करने के प्रायः प्रारम्भिक दिनों में ही भारतीय समस्या को प्रथम श्रेणी की और अतिशय महत्वपूर्ण मान कर इस पर विचार करने के लिए समय निकाला है। यह इस बात का प्रमाण है कि सम्राट् की सरकार, भारत को शीघ्र स्व-शासन प्राप्त करने में सहायता देने में सहायता देने के लिए हार्दिक संकल्प कर चुकी है।

"भारत के लिए नया विधान तैयार करने और उसे क्रियात्मक रूप प्रदान करने का कार्य जटिल और कठिन है जिसके लिए समस्त सम्बद्ध व्यक्तियों की सद्भावना, सहयोग और धैर्य की आवश्यकता होगी। हमें सबसे पहले चुनाव करने चाहियें जिससे कि भारतीय निर्वाचकों की इच्छा का पता लग जाय। मताधिकार प्रणाली में कोई बड़ा परिवर्तन लाना संभव नहीं है। ऐसा करने पर कम-से-कम दो साल की देरी लग जायगी। किन्तु हम वर्तमान निर्वाचक सूचियों को अच्छी तरह से संशोधित करने का यथाशक्ति प्रयत्न कर रहे हैं। निर्वाचन के बाद, मैं निर्वाचकों और देशी राज्यों के प्रतिनिधियों के साथ यह निर्णय करने के लिए वार्तालाप करना चाहता हूँ कि विधान-निर्मात्री-परिषद् का स्वरूप, अधिकार और कार्य-प्रणाली क्या हो। १९४२ के घोषणापत्र के मसविदे में विधान-निर्मात्री-परिषद् की स्थापना के लिए एक प्रणाली का सुझाव रखा गया था किन्तु सम्राट् की सरकार इस बात का अनुभव करती है कि उपस्थित महान् समस्याओं और अल्प-संख्यकों की समस्याओं की जटिलता की दृष्टि से विधान-निर्मात्री-परिषद् के स्वरूप का अंतिम रूप से निर्णय करने से पहले जनता के प्रतिनिधियों के साथ परामर्श करना आवश्यक है।

"भारत को स्वभाग्य निर्णय का अवसर प्रदान करने के लिए सम्राट् की सरकार को और

मुझे उपर्युक्त प्रणाली सर्वोत्तम जान पड़ती है। हम अच्छी तरह से जानते हैं कि हमें किन कठिनाइयों पर विजय पाना है और हमने उन पर विजय पाने का संकल्प कर लिया है। मैं निश्चय ही आपको विश्वास दिला सकता हूँ कि ब्रिटिश जनता के सब वर्ग और सरकार भारत को, जिसने हमें इस युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए इतनी अधिक सहायता प्रदान की है, सहायता करने को उत्सुक हैं। जहां तक मेरा सम्बन्ध है मैं भारतीय जनों की सेवा में, उन्हें अपने निर्दिष्ट स्थान तक पहुँचने में, और मेरा दृढ़ विश्वास है कि यह संभव है, सहायता देने में कुछ भी उठा न रखूंगा।

"अब यह प्रदर्शित करना भारतीयों का काम है कि उनमें यह निर्णय करने की बुद्धि, विश्वास और साहस है कि वे किस प्रकार अपने मतभेद दूर कर सकते हैं और किस प्रकार भारतीयों-द्वारा-भारतीयों के लिए उनके देश का शासन सम्पन्न हो सकता है।"

प्रधान मंत्री मि० क्लीमेंट एटली ने १९ सितम्बर के दिन ब्राडकास्ट करते हुए कहा कि ब्रिटिश सरकार भारतीय-विधान-परिषद् संस्था के साथ एक संधि करेगी, जिसका प्रस्ताव १९४२ में की गई घोषणा में किया गया था। श्री एटली ने यह भी कहा कि इस संधि में ऐसी कोई बात न रखी जायगी, जो भारत के हितों के विरुद्ध होगी। प्रधानमंत्री एटली का ब्राडकास्ट निम्न प्रकार है—

नई पार्लमेंट का उद्घाटन करते हुए सम्राट् ने जो भाषण दिया था उसमें निम्न शब्द भी थे—'भारतीय जनता के प्रति दिये गये वचनों के अनुसार मेरी सरकार भारतीय लोकमत के नेताओं से मिलकर भारत में शीघ्र ही स्वायत्त शासन शुरू करने की दिशा में यथा-शक्ति प्रयत्न करेगी।'

"पद-ग्रहण करने के बाद सरकार ने अपना ध्यान भारतीय विषयों की ओर लगाया और वाइसराय से तुरन्त इंग्लैंड आने के लिए कहा ताकि सरकार उनके साथ मिलकर सम्पूर्ण आर्थिक व राजनैतिक परिस्थिति की समीक्षा कर सके। यह वार्ता अब समाप्त हो चुकी है और वाइसराय ने भारत वापस जाकर नीति सम्बन्धी घोषणा कर दी है।

"आपको स्मरण होगा कि १९४२ में संयुक्त-सरकार ने भारतीय नेताओं से बातचीत चलाने के उद्देश्य से एक घोषणा का मसविदा उपस्थित किया था, जिसे साधारण तौर पर क्रिप्स-योजना कहा जाता है।

"प्रस्ताव किया गया था कि युद्ध समाप्त होते ही भारत के लिए नया विधान बनाने के उद्देश्य से एक संस्था कायम की जाय। सर स्टेफर्ड क्रिप्स इस योजना को भारत ले गये; किन्तु दुर्भाग्यवश भारतीय नेताओं ने उसे स्वीकार न किया। परन्तु सरकार अब भी उसी इरादे और उसी भावना से कार्य कर रही है।

"सब से पहला आवश्यक कार्य यह है कि भारतीय जनता को यथासम्भव शीघ्र ही अधिक-से-अधिक व्यापक आधार पर प्रतिनिधित्व उपलब्ध किया जाय। इस देश की भांति भारत में भी युद्ध के कारण चुनाव नहीं हो सके हैं और अब केन्द्रीय व प्रान्तीय धारासभाओं के फिर से काम आरम्भ करने की आवश्यकता है। इसलिए, जैसाकि पहले ही घोषित किया जा चुका है, आगामी शीतऋतु में भारत में चुनाव किये जायंगे। इतने कम समय में जितना भी सम्भव है, निर्वाचक सूची को संशोधित करके पूर्ण बनाया जा रहा है और इसका प्रबन्ध करने के लिए कि चुनाव न्याय-पूर्ण और स्वच्छंद हो, प्रत्येक सम्भव प्रयत्न किया जायगा।

"आज वाइसराय हमारा यह विचार प्रकट कर चुके हैं कि चुनाव समाप्त होने पर भारती

प्रतिनिधियों की एक विधान-परिषद् कायम की जायगी, जिसके जिम्मे नया विधान कायम करने का काम दिया जायगा। सरकार ने लार्ड वेवल को प्रान्तीय धारासभाओं के प्रतिनिधियों से बातचीत चला कर यह जानने का अधिकार दिया है कि उन्हें क्रिप्स-योजना मान्य होगी अथवा वे किसी दूसरी वैकल्पिक या संशोधित योजना को तरजीह देंगे। देशी रियासतों के प्रतिनिधियों से भी बातचीत होगी।

"सरकार ने वाइसराय को यह भी अधिकार दिया है कि चुनाव के बाद के दर्मियानी काल के लिए वे एक ऐसी शासन-परिषद् की स्थापना करने के उपाय करें जिसे भारत के मुख्य राजनैतिक दलों का समर्थन प्राप्त हो सके। ऐसा होने पर भारत अपनी आर्थिक व सामाजिक समस्याओं का हल कर सकेगा और एक नई विश्व-व्यवस्था की रचना में भी पूरी तरह भाग ले सकेगा।"

"भारत के प्रति ब्रिटिश नीति की वही व्याख्या, जो १९४२ की घोषणा में निहित है और जिसे इस देश के सभी दलों का समर्थन प्राप्त है, अपने उद्देश्य और पूर्णता की दृष्टि से पूर्ववत् वर्तमान है। उस घोषणा में ब्रिटिश सरकार व विधान-परिषद् के मध्य एक संधि की जाने का विचार प्रकट किया गया था। सरकार तुरन्त ही संधि के मसविदे की रूपरेखा तैयार कर रही है। यह कहा जा सकता है कि उस संधि में भारत के हित के विरुद्ध कोई भी बात नहीं रखी जायगी। भारत में विधान-निर्मात्री-संस्था की स्थापना तथा उसके संचालन में जो कठिनाइयां आयंगी और जिन पर विजय प्राप्त करना आवश्यक होगा उन्हें भारतीय मामलों की जानकारी रखने वाला कोई आदमी नजरंदाज नहीं कर सकता। इससे भी अधिक कठिनाई का सामना भारत के निर्वाचित प्रतिनिधियों को करना पड़ेगा, जिन्हें चालीस करोड़ प्राणियों वाले महान् भू-खंड के लिए विधान तैयार करना है।

"युद्ध के दिनों में भारत के योद्धाओं ने यूरोप, अफ्रीका व एशिया में अत्याचार व आक्रमण की शक्तियों को पराजित करने में खूब हाथ बँटाया है। स्वाधीनता तथा लोकतंत्रवाद की रक्षा करने में भारत संयुक्त राष्ट्रों का भागीदार रहा है। विजय हमें एकता के कारण प्राप्त हुई। वह हमें इसलिए भी प्राप्त हुई कि विजय के लक्ष्य तक पहुंचने के लिए हम आपसी मत-भेदों को भूल जाने के लिए तैयार हो गये। मैं भारतीयों से इसी महान् आदर्श के अनुसरण का अनुरोध करूंगा। उन्हें मिलकर एक ऐसे विधान की रचना करनी चाहिए, जिसे देश के बहुसंख्यक व अल्पसंख्यक न्यायपूर्ण मान लें और जिसमें प्रान्तों व रियासतों दोनों के ही लिए स्थान हो। इस महान् कार्य में ब्रिटिश सरकार प्रत्येक प्रकार की सहायता देने के लिए तैयार रहेगी और भारत ब्रिटिश जनता की सहायता की भी आशा कर सकता है।"

लार्ड वेवल का भाषण भारतीय लोकमत के सभी वर्गों के लिए और विशेष कर कांग्रेस के लिए निराशाजनक व असंतोषजनक सिद्ध हुआ। इसका कारण यह था कि भारत की स्वाधीनता की घोषणा नहीं की गई थी। छः महीनों के लिए न तो प्रान्तों में मंत्रिमंडल ही कायम होंगे और न केन्द्र में शासन-परिषद् का ही पुनस्संगठन किया जायगा। परिणाम यह हुआ कि देश के एक बहुत बड़े संकट काल में एक अनाचारपूर्ण शासन-व्यवस्था काम करती रही। गोकि यथासम्भव उत्तम निर्वाचक सूची के आधार पर चुनाव करने को कहा गया था फिर भी यह सत्य था कि देश में इस निर्वाचक सूची के विरुद्ध गहरा असंतोष फैला हुआ था। वाइसराय का प्रस्ताव, जिसके उद्देश्य की व्याख्या प्रधानमंत्री एटली ने की थी, वस्तुतः

१९४२ के क्रिप्स-प्रस्तावों की ही पुनरावृत्ति थी। परन्तु क्रिप्स-प्रस्तावों की तुलना में नये प्रस्ताव में एक भेद भी था। जब कि क्रिप्स-योजना में युद्ध समाप्त होते ही प्रान्तों में मंत्रि-मंडलों के फिर से काम जारी करने और केन्द्रीय शासन-परिषद् के पुनर्संगठन की बात थी वहां सितम्बर वाली घोषणा में न तो ऐसे कोई व्यवस्था की गई थी और न प्रान्तों में मंत्रिमंडलों की स्थापना का ही कोई समय निर्धारित किया गया था। सितम्बर वाले वक्तव्य के अनुसार जनता को १९४२ में बताई गई क्रिप्स-योजना या घोषित नीति के अनुसार उसको किसी संशोधित रूप के मध्य चुनाव करना था। समस्या की पेचीदिगियों तथा अल्पसंख्यकों के हितों का ध्यान रखते हुए एक नई बात यह जारी की गई कि नव-निर्वाचित धारासभाएं भी मत प्रकट करें कि क्रिप्स-योजना उन्हें स्वीकार्य है अथवा कोई नई योजना जारी की जाय। परामर्श की बात यहीं तक नहीं रही, बल्कि इसका विस्तार विधान-परिषद् के स्वरूप, उसके अधिकार व कार्य-पद्धति तक कर दिया गया। क्रिप्स-योजना में विधान-परिषद् के कार्य पर ऐसी कोई रुकावट नहीं लगाई गई थी। परन्तु सितम्बर वाली घोषणा में ऐसा किया गया था।

जहां तक विधान परिषद् में रियासतों के प्रतिनिधित्व का सवाल था, एक बिलकुल नई बात जोड़ी गई थी। घोषणा में कहा गया था कि रियासतों के प्रतिनिधियों के साथ भी बातचीत करके यह जानने का प्रयत्न किया जायगा कि विधान-निर्मात्री-संस्था में वे किस रूप से काम करना चाहते हैं। यह स्पष्ट नहीं किया गया था कि विधान परिषद् में केवल नरेशों के प्रतिनिधि रखे जायंगे अथवा रियासतों की जनता के प्रतिनिधि रखे जायंगे और यदि ऐसा किया जायगा तो रियासती प्रजा के प्रतिनिधि धारासभाएं चुनेंगी या अखिल भारतीय देशी-राज्य-प्रजा-परिषद्-द्वारा चुनाव किया जायगा।

यह भी कहा गया था कि प्रान्तीय चुनावों के नतीजे ज्ञात होते ही केन्द्र में भारत के प्रमुख राजनैतिक दलों की सहायता से एक नई शासन-परिषद् की स्थापना की जायगी।

इस घोषणा में किसी प्रान्त को पृथक् होने का अधिकार नहीं दिया गया था; किन्तु एटली के वक्तव्यों में यह बिलकुल स्पष्ट कर दिया गया था कि यदि क्रिप्स-योजना को मंजूर करना है तो वह पूरी-की-पूरी ही मानी जानी चाहिए। सितम्बर की घोषणा के बाद जनता को यह बिलकुल स्पष्ट हो गया था कि शिमला की वार्ता केवल ब्रिटेन के चुनाव के सम्बन्ध में ही थी और उस चुनाव समाप्त होते ही उस सम्मेलन को भी समाप्त हो जाने दिया गया। इसमें भी कोई संदेह न था कि सितम्बर वाला प्रस्ताव केवल छः महीने का समय प्राप्त करने के लिए एक चाल मात्र थी; क्योंकि प्रान्तीय चुनाव मार्च १९४६ से पूर्व समाप्त न होते और इस प्रकार भारतीय समस्या का हल छः महीने के लिए और टाल देने की चेष्टा की गई ! एक अंग्रेज के दृष्टिकोण से यही लाभ कुछ कम न था।

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने बम्बई में इन दोनों वक्तव्यों पर विचार किया और मत प्रकट किया कि सरकार के प्रस्ताव अपर्याप्त तथा अस्पष्ट हैं।

तब भारत मंत्री लार्ड पेथिक लारेंस ने २३ सितम्बर के दिन उन प्रस्तावों के स्पष्टीकरण का प्रयत्न किया। आपने कहा, "मुझे नई नीति की प्रतिक्रिया से कुछ भी निराशा नहीं हुई है। यह घोषणा स्वयं भारत की राजनैतिक समस्या का हल नहीं है। परिस्थिति को देखते हुए ऐसा हल नहीं किया जा सकता था।

"इस घोषणा से सिर्फ वह रास्ता खुल गया है जिस पर चल कर भारतीय स्वशासन की

मंजिल पर पहुँच सकते हैं। इस मंजिल तक पहुँचने से पहले उन्हें जिस भी सहायता या प्रोत्साहन की जरूरत होगी, मैं उन्हें सम्राट् की सरकार की तरफ से वह देने को तैयार हूं।

"ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के भीतर स्वशासन का जो अधिकार मिलता है उसके अंतर्गत राष्ट्रमंडल के भीतर रहने या न रहने की स्वतंत्रता पहले ही दे दी जाती है। राष्ट्रमंडल के सदस्यों को जो बंधन बांधे रहता है वह सहमति के अलावा और कोई बंधन नहीं होता। यही बात भारत पर भी लागू होती है, किन्तु हमें आशा और विश्वास है कि जब भारतीयों को राष्ट्रमंडल में रहने या न रहने की स्वतंत्रता दे दी जायगी तो वे अपनी इच्छा से और अपने हितों का ध्यान रखते हुए राष्ट्रमंडल में ही रहना चाहेंगे।"

लार्ड पेथिक लारेंस ने अपने भाषण के प्रारम्भिक भाग में बताया कि "मेरा आदर्श तो यह है कि भारत और ब्रिटेन बराबरी के पद-द्वारा साझेदारी की भावना से बंध जायं। अधिकांश ब्रिटिश राष्ट्र भी इसी साझेदारी के आदर्श की प्राप्ति के लिए उत्सुक हैं।

"वाइसराय लार्ड वेवल हमारे निमंत्रण पर ही इंग्लैंड आये थे और भारत में पिछले बुधवार को उन्होंने जो घोषणा की है उसकी मुख्य बातें वे यहीं तय कर गये थे। इस घोषणा की पहली बात तो यह है कि भारतीय स्वयं ही स्व-शासन के आधार का निर्माण करें और दूसरी यह कि वाइसराय मुख्य भारतीय राजनैतिक दलों की सहायता से नई शासन-परिषद् की नियुक्ति करें।"

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने आगामी चुनाव की तैयारी करने के अलावा उस आजाद हिन्द फौज के कितने ही अभियुक्त अफसरों व सैनिकों की पैरवी का भी प्रबंध किया, जिसकी स्थापना मलाया में १६४२ में हुई थी। इनके अलावा कुछ दूसरी जगहों के भी विचाराधीन अभियुक्त भारतीय जेलों में पड़े हुए थे। कमेटी ने कहा कि यदि इंग्लैंड व भारत के बीच कटुता को और नहीं बढ़ाना है तो इनकी रिहाई करनी पड़ेगी। कमेटी ने यह भी घोषणा की कि वर्तमान अप्रतिनिधिपूर्ण व गैर-जिम्मेदार सरकार के दायित्व को स्वीकार करने के लिए भारतीय राष्ट्र बाध्य नहीं है। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की आखिरी मांग यह थी कि युद्धकाल में भारत का जो स्टार्लिंग कोष इंग्लैंड में जमा हो चुका है उसका जल्दी-से-जल्दी कोई निबटारा हो जाय ताकि इस धनराशि का उपयोग भारत की आर्थिक उन्नति के लिए किया जा सके। कमेटी ने चीन व दक्षिण पूर्वी एशिया की समस्याओं और बर्मा व मलाया के भारतीय स्वार्थों के सम्बन्ध में भी उचित मत प्रकट किया। कमेटी ने अपनी कार्यवाही रचनात्मक कार्यक्रम व रियासती प्रजा के अधिकारों सम्बन्धी कुछ निर्देशों के साथ समाप्त की।

लार्ड वेवल के इंग्लैंड से दूसरी बार वापस आते ही देश में आम चुनाव का शोरगुल मच गया। गोकि इंग्लैंड में लार्ड वेवल ने जो कुछ किया था उससे कमेटी खुश न थी फिर भी उसने राष्ट्र की सम्पूर्ण शक्ति लेकर चुनाव में भाग लेने का फैसला किया। यह साफ था कि तत्कालीन अवस्था में चुनाव का निष्पक्षता से होना असम्भव था। उड़ीसा के भूतपूर्व प्रधानमंत्री जैसे प्रमुख कांग्रेसियों के विरुद्ध चुनाव में भाग लेने पर प्रतिबंध लगा दिये गये थे। सरकार के आदेश पर जिन लोगों को जेल में बंद किया गया था उन पर चुनाव के सिलसिले में १२० दिन के निवास की शर्त को कड़ाई से अमल में लाया गया। लेकिन "निवास" का मतलब हरेक जिले में अलग-अलग लगाया गया। कमेटी इन सभी अयोग्यताओं व प्रतिबंधों से परिचित थी। परन्तु चुनाव में भाग लेने के विषय में उसका एकमात्र उद्देश्य राष्ट्र की इच्छा को प्रकट करना और

उसके लिए सत्ता प्राप्त करना था। इसलिए चुनाव सम्बन्धी व्यवस्था करने के लिए चुनाव-उप-समिति नियुक्त की गई। समिति में निम्न व्यक्ति रखे गयेः

(१) मौ० अबुल कलाम आजाद
(२) सरदार वल्लभभाई पटेल
(३) डा० राजेन्द्र प्रसाद
(४) पं० गोविंद वल्लभ पंत
(५) श्री आसफ अली
(६) डा० पट्टाभि सीतारामैय्या और
(७) श्री शंकर राव देव

कुछ ही समय बाद चुनाव के सम्बन्ध में केन्द्र व प्रान्तों से ताल्लुक रखनेवाला एक घोषणा-पत्र[1] निकाल दिया गया।

भारत मंत्री लार्ड पेथिक लारेंस ने ४ दिसम्बर, १९४५ को लार्ड-सभा में भारत के सम्बन्ध में निम्न वक्तव्य दिया :—

'वाइसराय ने भारत वापस पहुँच कर कुछ ऐसे उपाय बताये हैं, जो सम्राट् की सरकार को भारत में पूर्ण स्वशासन आरम्भ करने के लिए करने चाहिएं।

"इन प्रस्तावों का भारत में ठीक तरह महत्व नहीं समझा गया है।

"चूंकि सम्राट् की सरकार का यह दृढ़ विश्वास था कि भारतीय जनता-द्वारा निर्वाचित व्यक्तियों से परामर्श करके ही ब्रिटिश भारत के भावी शासन के सम्बन्ध में कोई व्यवस्था होनी चाहिए, इसलिए सबसे पहले भारत में केन्द्रीय असेम्बली व प्रान्तीय धारा-सभाओं के चुनाव अवश्य था।

"यह भी घोषणा की गई थी कि भारत में चुनाव होते ही ब्रिटिश भारत के निर्वाचित प्रतिनिधियों तथा रियासतों के मध्य विधान तैयार करने के तरीके के सम्बन्ध में अधिक-से-अधिक व्यापक क्षेत्र में मतैक्य प्राप्त करने के लिए प्रारम्भिक बात-चीत आरम्भ की जायगी।"

लार्ड पेथिक लारेंस ने आगे कहा "इस सम्बन्ध में भारत में निराधार अफवाहें फैल गई हैं कि यह बातचीत भी देर लगाने का एक अच्छा तरीका होगा। मैं यह बात स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि सम्राट् की सरकार विधान-निर्मात्री-परिषद् की स्थापना तथा घोषणा में बताये गये अन्य प्रस्तावों को अमल में लाना बहुत ही जरूरी बात समझती है।

"इस गलतफहमी की वजह से सम्राट् सरकार यह भी विचार करने लगी है कि इस देश व भारत के बीच जिस वैयक्तिक सम्पर्क में इधर हाल के वर्षों में बाधा पड़ी है, क्या उसमें अब वृद्धि नहीं की जा सकती।

"सरकार इस बात को बहुत महत्व देती है कि हमारी पार्लमेंट के कुछ सदस्यों को भारत के प्रमुख राजनैतिक नेताओं से मिलकर उनके विचार जानने का अवसर मिले।

"ये लोग इस देश की जनता की इस आम इच्छा को व्यक्तिगत रूप से प्रकट कर सकेंगे कि भारत ब्रिटिश-राष्ट्रमंडल में स्वतंत्र भागीदार राज्य का अपना उचित और पूर्ण पद शीघ्रता से प्राप्त करे। वे पार्लमेंट की इस इच्छा को भी प्रकट कर सकेंगे कि इस लक्ष्य की प्राप्ति में सहायता पहुंचाने के लिए हम प्रत्येक प्रकार की सहायता पहुंचाने के लिए तैयार हैं।

"इसीलिए सम्राट् की सरकार एम्पायर पार्लमेंटरी एसोसिएशन की तरफ से पार्लमेंट

---

[1] घोषणा पत्र के लिए परिशिष्ट नं० २ देखिये।

का एक शिष्टमंडल भारत भेजने का प्रबन्ध कर रही है।

"इरादा है कि यह दल इस देश से यथासम्भव शीघ्र ही रवाना हो जाय। यातायात सम्बन्धी कठिनाइयों के कारण यह शिष्टमंडल अधिक बड़ा नहीं होगा। शिष्टमंडल का चुनाव एसोसियेशन देश के मुख्य राजनैतिक-दलों के पार्लमेंटरी प्रतिनिधियों के सलाह-मशविरे से करेगा।

"पूर्ण स्वशासन की ओर ले जानेवाले इस परिवर्तन-काल में भारत को कठिन वक्त से गुजरना है। नई सरकार स्थापित होने से पूर्व राज्य की नींव को कमज़ोर होने देने और अधिकारियों के प्रति कर्मचारियों की आस्था को शिथिल होने देने से अधिक और किसी बात से भावी भारतीय सरकार अथवा लोकतंत्रवाद का अहित नहीं हो सकता।

"इसलिए भारत-सरकार पर तथा प्रांतीय-सरकारों पर अमन व कानून बनाये रखने और वैधानिक समस्या को बलपूर्वक हल करने के प्रयत्नों को निष्फल बनाने की जो जिम्मेदारी है उससे वह हाथ नहीं खींच सकती। स्वशासन की पूरी तरह से प्राप्ति राज्य की व्यवस्था का नियंत्रण भारतीयों को हस्तांतरित होने से ही हो सकता है।

"सम्राट् की सरकार शासन-सम्बन्धी कर्मचारियों या भारतीय सैन्य-दलों की राजभक्ति नष्ट किये जाने के किसी प्रयत्न को सहन नहीं कर सकती और वह भारत-सरकार को अपने कर्मचारियों की काम करते समय रक्षा के लिए प्रत्येक प्रकार की सहायता करने को तैयार है। वह भारत-सरकार की इस विषय में भी सहायता करेगी कि भारत का विधान पशुबल के जोर से अथवा उसकी धमकी देकर तैयार न किया जाय।

"इसके अलावा, भारत में चाहे जो भी सरकार शासनसूत्र संभाल रही हो, उसकी मुख्य आवश्यकता जनता के रहन-सहन का दर्जा ऊँचा उठाने और उसकी शिक्षा व स्वास्थ्य-सम्बन्धी अवस्था में उन्नति करने की है।

"इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए योजनाएं तैयार की जा रही हैं और सम्राट् की सरकार उन्हें अमल में लाने के लिए प्रोत्साहन प्रदान कर रही है, जिससे स्व-शासन की प्रगति के साथ ही सामाजिक अवस्था में सुधार का कार्य भी साथ ही चलता रहे।"

लार्ड पेथिक लारेंस के भाषण के प्रायः साथ ही वाइसराय ने १० दिसम्बर, १९४५ को कलकत्ता में एसोसियेटेड चेम्बर्स आव कॉमर्स के वार्षिक समारोह के अवसर पर निम्न राजनैतिक घोषणा की :—

"मैं आपको असंदिग्ध रूप से यह विश्वास दिला सकता हूँ कि ब्रिटिश-सरकार व ब्रिटिश राष्ट्र ईमानदारी व सचाई के साथ भारतीय जनता को राजनैतिक स्वतंत्रता देना चाहती है और इस देश में उसीको इच्छा के अनुसार सरकार या सरकारें कायम करना चाहती है; परन्तु इस समस्या के अंतर्गत बहुत-सी बातें हैं, जिन्हें हमें स्वीकार करना चाहिए।

"यह कोई आसान समस्या नहीं है। इसे कोई संकेत शब्द अथवा गुर को दुहराने से हल नहीं किया जा सकता। "भारत छोड़ो" का नारा वह काम नहीं कर सकता जो जादू का "सीसम" कहने से हो जाता था और जिसके उच्चारण से अलीबाबा की गुफा का दरवाजा खुल जाता था। यह समस्या न हिंसा से सुलझ सकती है और न सुलझेगी। वास्तव में दुर्व्यवस्था और हिंसा तो ऐसी बात है जिससे भारत की प्रगति में बाधा पड़ सकती है। ऐसे कई-एक दल हैं जिनमें किसी-न-किसी प्रकार समझौता होना ही चाहिए। ये दल हैं, कांग्रेस, जो भारत का सब से बड़ा

राजनीतिक दल है; फिर अल्पसंख्यक, जिनमें मुसलमान सब से अधिक और महत्त्वपूर्ण हैं, भारतीय नरेश और ब्रिटिश सरकार। सबों का उद्देश्य एक है अर्थात् स्वतंत्रता और भारत का कल्याण। मैं इस बात में विश्वास नहीं करता कि विभिन्न दलों में समझौता होना असम्भव है। मैं विश्वास नहीं करता कि यदि सब दलों में सद्भावना, व्यावहारिक-ज्ञान और धैर्य हो तो इस कार्य में कठिनाई भी हो सकती है। और इतने पर भी हम दुखान्त घटना के सन्निकट हैं, क्योंकि जो वार्तालाप अगले वर्ष होने वाला है उसे यदि साम्प्रदायिक और जातिगत विद्वेष के वातावरण से दूषित किया गया और यदि उस वातावरण का परिणाम हिंसा हुआ तो यह बड़ी ही भीषण दुर्घटना होगी।

"मैं आपको विश्वास दिला सकता हूँ कि सम्राट् की सरकार और उनके प्रतिनिधि के रूप में, मैं भारत को विधान-निर्माण करने में और केन्द्रीय-सरकार के मुख्य दलों का इसलिए समर्थन प्राप्त करने में, जिससे कि वे विधान में परिवर्तन होने से पहले के मध्यवर्ती काल में देश का शासन-भार वहन करने में समर्थ हो सकें, अपनी शक्ति भर कुछ भी न उठा रखूंगा। सम्राट् की सरकार ने हाल ही में स्पष्ट रूप से घोषणा करदी है और समझौते की तात्कालिक आवश्यकता पर जोर दिया है। वह जो कुछ कहती है वही उसका वास्तविक अभिप्राय है; किन्तु किसी भी संतोषजनक हल के लिए मुझे सहायता और सहयोग प्राप्त होना चाहिये और कोई भी हल संतोषजनक नहीं कहा जायगा यदि उसका परिणाम अव्यवस्था व रक्तपात, व्यवसाय और उद्योग-धन्धों में हस्तक्षेप और सम्भवतः अकाल व व्यापक दरिद्रता हो। मैं एक पुराना सिपाही हूँ इसलिए सम्भवतः मैं रक्तपात व कलह, विशेषतः गृह-युद्ध का विभीषिकाओं और बर्बादियों को आपमें से किसीसे भी अधिक अच्छी तरह समझता हूं। हमें इससे बचना है और हम इससे बच सकते हैं। हमें आपस में समझौता करना है और यदि हम सचमुच इसके लिए संकल्प करलें तो हम समझौता कर सकते हैं। हिन्दुओं और मुसलमानों को इस विशाल देश में एक साथ रहना है इसलिए वे निश्चय ही उन शर्तों को व्यवस्था कर सकते हैं जिन पर वे ऐसा कर सकते हैं। यदि भारतीय संघ को उन्नति करनी है तो भारतीय रियासतों को, जो भारत में एक बहुत बड़ा भाग है, और उनके निवासियों को भी इसमें सम्मिलित करना होगा क्योंकि वे भारतीय जीवन में एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण और बहुधा एक अत्यन्त प्रगतिशील अंग का प्रतिनिधित्व करते हैं। अन्त में ब्रिटिश-सरकार व ब्रिटिश जनता की बात आ जाती है। मैं एक बार फिर दुहराता हूं कि यह हमारी हार्दिक इच्छा और प्रयत्न है कि भारत को स्वाधीनता दी जाय किन्तु कोई समुचित समझौता हुए बिना हम अपने दायित्व को न छोड़ सकते हैं और न छोड़ेंगे।

"भारतीय इतिहास की इस जटिल बेला में मैं अत्यन्त गम्भीरता और सञ्जीदगी के साथ समस्त नेताओं से सद्भावना के लिए अपील करता हूँ। हम एक बहुत ही कठिन और नाजुक समय से होकर गुजर रहे हैं और यदि हमें भारी दुर्भाग्य से बचना है तो ऐसे समय में हमें शांत-चितता व बुद्धिमत्ता की आवश्यकता होगी। व्यक्तिगत सम्पर्क के रूप में मैं जितनी सहायता कर सकता हूँ उतनी सहायता करने के लिए मैं सदा तैयार हूँ।

"जनता का कल्याण और राष्ट्र का बड़प्पन व समृद्धि इसकी सर्विसों--सिविल सर्विस, पुलिस, सशस्त्र सेनाओं—पर निर्भर है, जिन्हें सरकार का सेवक होना चाहिये, किसी राजनीतिक दल का नहीं। भारत के भविष्य का इससे बड़ा अहित और कुछ नहीं हो सकता कि सर्विसों की आस्था को नष्ट करने या उन्हें राजनैतिक क्षेत्र में घसीटने का प्रयत्न किया जाय। मैं सर्विसों को

विश्वास दिलाता हूँ, जैसा कि सम्राट् की सरकार ने अभी ही दिलाया है कि उन्हें अपने कर्तव्य के समुचित पालन में सब प्रकार का समर्थन प्राप्त होगा।''

इस भाषण में एक मनहूसियत जान पड़ती है । उसका सब जोर उस एक वाक्य पर ही जान पड़ता है, जिसमें साफ धमकी दी गई है ।

इसमें सम्राट् की सरकार के इस विश्वास की पुष्टि की गई है कि भारतीय राष्ट्र के निर्वाचित प्रतिनिधियों के परामर्श से ब्रिटिश भारत के भावी शासन के सम्बन्ध में कुछ निर्णय होना चाहिए। संदेह उठता है कि ब्रिटिश भारत पर जो इतना जोर दिया गया है तो क्या उसमें रियासतों को शामिल नहीं किया गया है । यदि विधान-परिषद् को ही भावी विधान तैयार करना है तो फिर 'परामर्श से' शब्दों पर इतना जोर क्यों डाला गया है । यदि घोषणा में सिर्फ यही बात कही जाती कि भावी शासन के सम्बन्ध में निर्णय निर्वाचित प्रतिनिधियों के द्वारा होगा तो वाक्य और विचार पूरा हो जाता। परन्तु जब 'परामर्श-से' शब्द आते हैं तो परोक्ष रूप से यह ध्वनि निकलती है कि और भी कोई संस्था है, जो सलाह देने वाली संस्था के रूप में कुछ कार्य करेगी । इसलिए कहा जा सकता है कि सिद्धान्त आत्म-निर्णय नहीं है बल्कि मिलकर निर्णय करना है और इसीपर विधान के निर्माण की प्रक्रिया आधारित है ।

तीसरी ध्यान देने की बात यह है कि वक्तव्य में 'ब्रिटिश भारत के निर्वाचित प्रतिनिधियों व रियासतों', से प्रारम्भिक बातचीत की बात कही गई है । वाइसराय के सितम्बर वाले वक्तव्य में 'ब्रिटिश भारत तथा रियासतों के प्रतिनिधियों' की बात कही गई थी । वाइसराय के वक्तव्य से स्पष्ट था कि रियासतों के प्रतिनिधि नरेश होना आवश्यक नहीं है और अनुमान किया गया था कि इसमें रियासती प्रजा के प्रतिनिधि भी आ जाते हैं । परन्तु 'ब्रिटिश भारत के निर्वाचित प्रतिनिधियों व रियासतों' के शब्दों के उपयोग से तो हम फिर क्रिप्स-प्रस्तावों पर चले जाते हैं, जिनमें सिर्फ 'देशी राज्य' शब्दों का ही प्रयोग किया गया था । परन्तु हमें यह ध्यान देना चाहिए कि एक दूसरे सिलसिले में वाइसराय ने कहा था कि 'रियासतों और उनकी जनता को भी भारतीय संघ में स्थान मिलना चाहिए।' परन्तु यहां सिर्फ स्थान देने की ही बात कही गई है ।

वक्तव्य की एक नई बात यह भी है कि प्रारम्भिक बातचीत का उद्देश्य विधान तैयार करने के तरीके के सम्बन्ध में व्यापकतम आधार पर मतैक्य प्राप्त करना है । वाइसराय के सितम्बर, १९४५ वाले भाषण में सिर्फ यही कहा गया था कि प्रारम्भिक बातचीत यह जानने के लिए की जायगी कि विधान-परिषद् स्थापित करने के लिए क्रिप्स-प्रस्ताव मान्य हैं अथवा परिषद् की स्थापना तथा उसके कार्यों व अधिकारों के विषय में कुछ परिवर्तन भी होना है । उस समय व्यापकतम आधार पर समझौते की बात कभी आई ही नहीं । यह बिलकुल नई सूझ थी; किन्तु उसे प्रकट करने का ढंग लार्ड इरविन जैसा ही था । लार्ड इरविन ने उस समय लंदन के सम्मेलन का उद्देश्य बताते समय अधिक-से-अधिक मतैक्य की बात कही थी ।

लेकिन सबसे शर्मनाक बात पार्लमेंट का शिष्टमंडल एम्पायर पार्लमेंटरी एसोसियेशन जैसी साम्राज्यवादी संस्था की तरफ से भेजने की योजना थी । इस एसोसियेशन के सदस्यों में प्रतिक्रियावादी लोगों की ही अधिकता थी । यह शिष्टमंडल न तो सरकारी ही था और न गैर-सरकारी ही । यह न तो अधिकारियों की तरफ से जा रहा था और न यही कहा जा सकता था कि अधिकारियों से उसका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है । यह केवल एक सद्भावना मिशन था । यह समझना कठिन था कि प्रमुख राजनैतिक नेताओं से मिलकर और उनके विचारों को जानकर वह क्या करेगा।

प्रमुख व्यक्तियों से सलाह मशविरा करने के दिन अब बीत चुके थे। परन्तु इस शिष्टमंडल का जो यह कार्य बताया गया था कि वह ब्रिटिश राष्ट्र की यह इच्छा प्रकट करे कि भारत को ब्रिटिश राष्ट्र-मंडल में शीघ्रता से स्वतंत्र भागीदार राष्ट्र का पद प्राप्त करना चाहिए—यह तो बिलकुल मूर्खता-पूर्ण ही था। आश्वासन क्या था, यह तो जाने दीजिये; किन्तु उसे किसी गैर सरकारी संस्था के बजाय किसी सरकारी संस्था द्वारा देना चाहिए था। ब्रिटिश राष्ट्र-मंडल में "भागीदार राष्ट्र" के रूप में स्थान देने की चर्चा वस्तुतः क्रिप्स-प्रस्तावों से हटना था जिनमें स्पष्ट रूप से कहा गया था कि विधान-परिषद् यह निर्णय करने के लिए स्वतंत्र रहेगी कि भारत का सम्बन्ध ब्रिटेन से रहे या नहीं। अकेला 'स्वतंत्र भागीदार राष्ट्र' शब्द समूह विरोधी विचारों को प्रकट करता है।

एसोसियेशन-द्वारा इंग्लैंड के प्रमुख राजनैतिक दलों के पार्लमेंटरी प्रतिनिधियों की सलाह से शिष्टमंडल के सदस्यों के चुनाव की बात तो हमें ईस्ट इंडिया कम्पनी के दिनों में ले जाती है, जब दोहरी शासन व्यवस्था थी। इस सबके ऊपर यह धमकी थी कि सम्राट् की सरकार शासन-सम्बन्धी उच्च कर्मचारियों अथवा सेना की राजभक्ति में कमी करने के प्रयत्नों को सहन न करेगी और वह भारत-सरकार को इस सम्बन्ध में पूरी सहायता देगी। क्या इससे सरकारी अफसरों को मनमानी कार्रवाई करने के लिए प्रोत्साहन नहीं मिल गया। बादल के बीच केवल आशा की एक ही किरण थी।

मेजर ब्याट ने कहा कि भारतीय जनता की इच्छा को प्रधानता मिलनी चाहिए और, जहां तक भारत का सम्बन्ध है, औपनिवेशिक पद का उल्लेख नहीं किया जाना चाहिए।

इसके बाद घटनाचक्र बहुत तेजी से घूमने लगा। अब हम घटनाक्रम को भंग करके आगे की बातों का पूर्वाभास देकर ही आगे बढ़ेंगे। पार्लमेंट के सद्भावना शिष्टमंडल को, जिसे वस्तुतः तथ्य जानने वाला या दोष निकालने वाला शिष्टमंडल कहना चाहिए, भारत-यात्रा के पश्चात् भारत मंत्री व प्रधान-मंत्री ने भारत-सम्बन्धी नीति के सम्बन्ध में एक घोषणा की।

भारतमंत्री लार्ड पेथिक लारेंस ने कहा—"सभा को सम्भवतः स्मरण होगा कि ब्रिटिश सरकार से परामर्श करने के उपरान्त भारत वापस आकर वाइसराय ने १९ सितम्बर, १९४५ को नीति के सम्बन्ध में एक घोषणा की थी। इस घोषणा में उन्होंने बताया था कि केन्द्रीय व प्रान्तीय चुनाव हो चुकने पर भारत में स्वशासन की पूर्ण रूप से प्राप्ति के लिए क्या उपाय किये जायंगे।

इन उपायों में निम्न भी सम्मिलित हैं, प्रथम, ब्रिटिश भारत के निर्वाचित प्रतिनिधियों व भारतीय रियासतों से प्रारम्भिक बातचीत करके विधान-निर्माण करने के उपयुक्त तरीके के विषय में व्यापक आधार पर कोई समझौता कर लिया जाय।

"दूसरे, किसी विधान निर्मात्री संस्था की स्थापना, और

"तीसरे, एक ऐसी शासन-परिषद् की स्थापना करना जिसे मुख्य राजनैतिक दलों का समर्थन प्राप्त हो।

"केन्द्र में चुनाव पिछले वर्ष के अंत में हुए थे और कुछ प्रान्तों में भी चुनाव समाप्त हो चुके हैं और वहां उत्तरदायी शासन की स्थापना हो रही है।

"अन्य प्रान्तों में अगले छः सप्ताह में वोट पड़ेंगे। अब ब्रिटिश सरकार विचार कर रही है कि चुनाव समाप्त होने पर उपर्युक्त कार्यक्रम को किस सर्वोत्तम तरीके से अमल में लाया जाय।

"चूंकि भारतीय लोकमत के नेताओं से होनेवाली इस बातचीत की सफलता का महत्व केवल भारत और ब्रिटिश राष्ट्र-मंडल के लिए ही नहीं, बल्कि संसार की शान्ति के लिए भी है,

इसलिए ब्रिटिश सरकार ने, सम्राट् की स्वीकृति से, मंत्रिमंडल के सदस्यों का एक विशेष प्रतिनिधि मंडल इस सम्बन्ध में वाइसराय के साथ मिलकर कार्रवाई करने के लिए भारत भेजने का निश्चय किया है, जिसमें भारत मंत्री लार्ड पेथिक लारेंस, व्यापार विभाग के अध्यक्ष सर स्टेफर्ड क्रिप्स और नौ सेनामंत्री श्री ए० वी० ऐलेग्जेंडर रहेंगे।

"इस निश्चय से लार्ड वेवल भी सहमत हैं।

"मुझे विश्वास है कि ऐसे कार्य में जिस पर ४० करोड़ जनता का भविष्य निर्भर है और जिससे भारत व संसार विषयक महत्वपूर्ण समस्याओं का सम्बन्ध है, सभा मंत्रियों व वाइसराय के प्रति अपनी सद्भावना व सहायता उपलब्ध करेगी।

"इन मंत्रियों की अनुपस्थिति में प्रधानमंत्री स्वयं नौसेना विभाग के कार्य की देखरेख अपने हाथ में लेंगे और लार्ड प्रेसीडेण्ट श्री हरबर्ट मारीसन व्यापार विभाग के कार्य का संचालन करेंगे।

"जहां तक भारत व बर्मा सम्बन्धी कार्यालयों का सम्बन्ध है, उप-मंत्री मेजर आर्थर हैंडर्सन मेरी अनुपस्थिति में उनका प्रबन्ध करेंगे। परन्तु जब भी आवश्यकता होगी वे प्रधान-मंत्री की सलाह लेंगे। वे बर्मा सम्बन्धी विषयों को खासतौर पर प्रधान मंत्री के सामने उपस्थित करेंगे; क्योंकि बर्मा सम्बन्धी मामलों में सरकार मुझसे सम्पर्क नहीं रखेगी।"

प्रधानमंत्री श्री क्लेमेंट एटली ने कामन सभा में एक इसी आशय का वक्तव्य दिया और कहा कि मिशन भारत को मार्च के अंत में जायगा।

आजाद हिंद फौज के मुकदमे

आजाद् हिंद फौज के मुकदमों से भारत भर में बड़ी सनसनी फैल गई। सबसे पहले कर्नल शाह नवाज, कप्तान सहगल व लेफ्टिनेंट ढिल्लन पर मामले चलाये गये। सच तो यह है कि उन्हींके कारण आजाद हिंद फौज की स्थापना के इतिहास पर प्रकाश पड़ा। भारत में ऐसा शायद ही कोई व्यक्ति हो जिसका दिल फौज के रोमांचकारी अनुभवों व साहसिक कार्यों को जानकर हिल न उठा हो। जज-एडवोकेट की अदालत में जिन घटनाओं का बयान किया जाता था उन्हें भारत की साक्षर जनता बड़ी उत्कंठा से नित्य ही पढ़ती थी और निरक्षर जनता बड़ी उत्सुकता से उसे सुनती थी। इन मुकदमों का विवरण सुनने के लिए निजी तथा सार्वजनिक रेडियो के आस-पास भीड़ लगी रहती थी। इस सिलसिले में श्री भूलाभाई देसाई व उनके दूसरे साथियों की सेवाएं अत्यन्त मूल्यवान सिद्ध हुईं। अदालत में स्वच्छन्दतापूर्वक विचार प्रकट करने की जो सुविधा दी गई उसके कारण पराधीन राष्ट्र के अपनी स्वाधीनता के लिए लड़ने के अधिकार सम्बन्धी उदार तथा लोकतन्त्रात्मक सिद्धांतों का विकास हुआ। मुकदमे रोकने और बंदियों को मुक्त करने के लिए व्यापक आंदोलन हुआ। मुकदमों की सुनवाई समाप्त होने पर तीनों अभियुक्तों को आजन्म कारावास का दंड दिया गया; किन्तु प्रधान सेनापति ने उन्हें इस दंड से मुक्त कर दिया। उनके छोड़े जाने पर देशभर में खुशियां मनाई गईं और देश भर में अपने दौरे के बीच "जय हिंद" कह कर उनका स्वागत किया गया।

यहां यह बता देना अप्रासंगिक न हो कि १९४५ के जाड़ों में आजाद् हिंद फौज के अभियुक्तों को मुक्त कराने के आंदोलन के सिलसिले में देश भर में जो प्रदर्शन हुए उनके कारण कलकत्ते में गोली चली, जिसमें ४० आदमी मारे गये और ३०० से अधिक घायल हुए। इसी प्रकार बंबई में भी गोली चली जिस में २३ व्यक्ति मारे गये और लगभग २००

घायल हुए। आजाद हिंद फौज के दूसरे मुकदमे में रशीद को आजन्म कैद की सजा दी गई और प्रधान सेनापति ने उसे घटा कर सात वर्ष का कठोर कारावास कर दिया तो फिर राष्ट्रव्यापी प्रदर्शन हुए, जिनमें मुसलमानों ने भी भाग लिया। इस सिलसिले में जो प्रदर्शन कलकत्ते में हुआ उस में ४३ व्यक्ति मारे गये और ४०० के लगभग घायल हुए। यह फरवरी १९४६ की बात है।

इन दिनों के इतिहास में जहां अपना आकर्षण है वहां पेचीदगियां भी हैं। और सबसे अधिक सुभाष के सम्बन्ध में। क्या उनका इतिहास है—क्या आकर्षण है—और क्या पेचीदगियां हैं ? सुभाष का जीवन बचपन से जैसे एक तूफान था। उसमें हमें रहस्यवाद व यथार्थवाद, धार्मिक लगन व कठोर व्यवहार बुद्धि, गहन मानसिक उद्वेग व राजनैतिक कूटनीतिज्ञता का निराला मेल मिलता है। हरिपुरा से त्रिपुरी तक वे कांग्रेस के अध्यक्ष रहे और इस एक वर्ष के अर्से में उन्होंने एक शब्द भी मुंह से नहीं निकाला। सुभाष बाबू अपनेको चारों तरफ के वातावरण के—अपने उसी नेता के, जिसने उन्हें अध्यक्षपद के लिए चुना था, और कार्य-समिति के उन सदस्यों के जिनका निर्वाचन स्वयं उन्होंने किया था, अनुकूल न बना सके। गांधीजी के लिए साधन ही साध्य थे। सुभाष बाबू के लिए साध्य साधन थे। दोनों के दृष्टिकोण में आकाश-पाताल का अंतर था। गांधीजी अपनी सहज अनुभूति से प्रेरित होते थे। सुभाष बाबू का पथप्रदर्शक तर्क था। वे महसूस करते थे कि गांधीजी ने जो कार्यक्रम तैयार किया है उस में स्पष्टता का अभाव है और स्वयं गांधीजी को भी पता नहीं है कि स्वाधीनता के लक्ष्य तक पहुँचने के लिए तैयार किये कार्यक्रम में कौन बात किसके बाद आयेगी। यह सिर्फ सुभाष बाबू की ही शिकायत नहीं थी। गांधीजी के विरुद्ध यह आम शिकायत रही है। १९२२ में जब गांधीजी से सामूहिक सविनय अवज्ञा के बारे में सवाल किया गया तो उन्होंने यही कहा कि मैं खुद भी नहीं जानता। वे कुहरे में मोटर चलाने वाले एक ऐसे ड्राइवर के समान हैं, जो सिर्फ १० गज आगे तक देख सकता है और आगे पर बढ़ने पर अगले १० गज तक देख सकता है और उससे भी आगे बढ़ने पर अगले १० गज तक और इस तरह अपनी मंजिल पर पहुंच जाता है। गांधीजी के पास मार्ग का नक्शा नहीं रहता, जिसमें आगे बढ़ने वाले घुमाव, पुलियां पुल, व चौमुहानियां दिखाई गई हों। फिर भी उनकी यात्रा ठीक होती है; क्योंकि उनकी दिशा ठीक होती है। गांधीजी को अपनी सहज अनुभूति द्वारा ही उचित दिशा का बोध हो जाता है।

जिस समय सुभाष बाबू भारतीय सिविल सर्विस को छोड़कर देशबन्धु दास के झंडे के नीचे आये थे तो वे अपने नेता से परिचित थे और उसके झण्डे को भी जानते थे, गोकि उन्हें खुद भी इस बात का पता न था कि कॉलेज का युवक रंगरूट या १९२८ की कलकत्ता कांग्रेस का जनरल आफिसर कमांडिंग किसी दिन आज़ाद-हिंद फौज का प्रधान सेनापति बन जायगा। सुभाष बाबू ने अपने लिए सेवा और कष्टों का मार्ग चुना था; किन्तु यह मार्ग देशबन्धु का दिखाया हुआ था और देशबन्धु का स्वयं भी गांधीजी के कार्यक्रम की कितनी ही बातों के सम्बन्ध में उनसे मतभेद था। इसलिए जब गांधीजी ने युवा सुभाष को हरिपुरा अधिवेशन की अध्यक्षता के लिए चुना तो यह नहीं कहा जा सकता था कि वे सुभाष बाबू के विचारों से अपरिचित थे। वे उन्हें १९२९ में ही खूब जानते थे, जब लाहौर के अधिवेशन से वे उठकर चले गये थे और कांग्रेस डिमाक्रैटिक पार्टी के नाम से एक नये दल की स्थापना की थी। यही नहीं, सुभाष बाबू ने वियना से विट्ठलभाई पटेल के साथ १९३४ में गांधीजी-द्वारा सविनय अवज्ञा को वापस लेने

के सम्बन्ध में जो यह मत प्रकट किया था कि गांधीजी ने ऐसा करके अपनी असफलता स्वीकार की है, वह भी एक जानी हुई बात ही थी। दोनों ने अपने संयुक्त वक्तव्य में कहा था, "हमारा यह स्पष्ट मत है कि गांधीजी राजनैतिक नेता के रूप में असफल हुए हैं। गांधीजी से यह आशा नहीं की जा सकती कि वे किसी ऐसे कार्यक्रम को हाथ में लेंगे, जो उनके जीवन भर के सिद्धांतों के विरुद्ध जायगा। इसलिए अब नवीन सिद्धांतों के आधार पर कांग्रेस का नये सिरे से संगठन करने का समय आ आगया। यदि समूची कांग्रेस में ऐसी तब्दीली की जा सके तो इससे अच्छी और कोई बात न होगी। परन्तु अगर ऐसा न हो सके तो कांग्रेस के भीतर ही प्रगतिशील लोगों के एक नये दल का संगठन करना होगा।" यही दल था जिसकी स्थापना सात वर्ष बाद रामगढ़ में हुई। आश्चर्य तो यही था कि सुभाष बाबू के विचार इतने स्पष्ट होने पर भी उन्हें हरिपुरा अधिवेशन का अध्यक्ष चुना गया और अपने कार्यकाल में वे बिना किसी कठिनाई के काम चला सके। परेशानी का सामना उन्हें अगले साल करना पड़ा।

सवाल उठता है कि गांधीजी दूसरे साल सुभाष बाबू को अध्यक्ष क्यों नहीं रहने देना चाहते थे। उनके दूसरे बार चुने जाने को गांधीजी सहन न कर सके—यह एक ऐसी बात है जिसे उस समय भी गुप्त नहीं रखा गया था। कदाचित सुभाष बाबू दूसरे वर्ष अध्यक्ष इसीलिए रहना चाहते थे कि वियना से बताये ढंग पर कांग्रेस का संगठन कर सकें। और कुछ नहीं तो सिर्फ यही एक बात काफी थी, जिसके कारण गांधीजी को उनका विरोध करना चाहिए था। गांधीजी के विरोध का और कोई कारण था या नहीं—इसे सिर्फ वही बता सकते थे। तब तक जनता इस सम्बन्ध में कुछ भी मत स्थिर नहीं कर सकती।

ये सब घटनाएं सुभाष के उस महान कार्य की भूमिका मात्र थीं जो उन्होंने २६ जनवरी, १९४१ से १५ अगस्त, १९४५ तक के साढ़े छः वर्ष में किया। यह चमत्कारों का काल था। सुभाष बाबू के वीरता दिखाने और वीर से शहीद बन चुकने के बाद मामूली तौर पर जोरदार शब्दों में उनकी तारीफ कर बैठना आसान है। उनसे दूर का परिचय रखने वाला कोई व्यक्ति शायद ही कभी उनके चरित्र की विलक्षणता को ठीक-ठीक अनुभव कर सके। यहां हमें आज़ाद हिन्द फौज के जन्म या आगे के कार्यों की चर्चा नहीं करनी है। संसार इतना भर जानकर संतोष कर सकता है कि यह एक ऐसा व्यक्ति था, जो दूसरों के प्रकाश से नहीं चमका बल्कि जिसमें अपना आंतरिक प्रकाश था—जिसमें अपने ढंग से काम करने का साहस था। सुभाष बाबू जानते थे कि सफलता संकोची व्यक्तियों को नहीं बल्कि साहसपूर्वक कार्य करने वाले व्यक्तियों को मिलती है। जवाहरलाल ने लाहौर अधिवेशन में अध्यक्ष-पद से जो यह बात कही थी उस पर अमल सुभाष ने ही किया और इसी सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए उन्होंने अपना मार्ग बनाया।

उपसंहार

राष्ट्रीय संस्था के रूप में कांग्रेस को स्थापित हुए ६० साल बीत चुके हैं। देश को एक झण्डे के नीचे लाने के उद्देश्य की प्राप्ति हो चुकी है, गोकि पिछले पांच वर्ष में वह अपनी आंखों के आगे द्विराष्ट्र सिद्धांत का विकास भी देख चुकी है। वह विदेशी शासकों से भारत के स्वाधीन होने के दावे को मनवा चुकी है। शत्रु के विरुद्ध हिंसा का प्रतिपादन किये बिना ही वह इस उद्देश्य की प्राप्ति कर चुकी है। यह सच है कि अहिंसा पहले के देश-भक्तों का सिद्धांत न था। मातृभूमि को आजादी दिलाने के लिए अपने ढंग से काम करने के उद्देश्य से वे विदेश चले गये थे। जिन महानुभावों ने उन दिनों अपना जीवन इस पुनीत कार्य में अपने ढंग से लगाया उनमें

निम्नलिखित नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय थे—

(१) श्री वीरेन्द्र चट्टोपाध्याय
(२) श्री वीर सावरकर
(३) श्री एस० आर० राने
(४) कुमारी कामा
(५) श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा
(६) श्री तारकनाथ दास
(७) श्री सुधीन्द्र बोस
(८) श्री रास बिहारी बोस
(९) श्री आचार्य

और इस कड़ी में अन्तिम थे, श्री सुभाष चन्द्र बोस, जिन्हें इनमें सर्वोच्च स्थान दिया जा सकता है और जो दो बार कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हो चुके थे। उन्होंने अपना मार्ग आप चुना। कहा जाता है कि आपने भारत पर चढ़ाई करने के लिए जर्मनी व जापान में हिन्दुस्तानियों की सेना का संगठन किया। फिर खबर मिली कि १८ अगस्त, १९४५ के दिन वायुयान-दुर्घटना में आपकी मृत्यु हो गई।

गांधीजी

पिछले २५ वर्ष में कांग्रेस ने महात्मा गांधी के नेतृत्व में अहिंसा का मार्ग चुना और देश की समस्याओं का हल इसी ढंग से निकालने का निश्चय किया। युद्ध छिड़ने के समय से ९ अगस्त, १९४२ को अपनी गिरफ्तारी के दिन तक गांधीजी वाइसराय लार्ड लिनलिथगो से पांच बार मिले। कार्य-समिति लगभग तीन साल जेल में रही और तब कहीं सुदूर क्षितिज पर आशा की एक किरण दिखाई देने लगी।

१९३९ में गांधीजी जिस समय लार्ड लिनलिथगो से मिले उस समय से उनके १९४४ में श्री जिन्ना से बातचीत शुरू करने के समय तक इनमें कुछ ऐसे परिवर्तन हुए जिनका निष्पक्ष भाव से अध्ययन आवश्यक है। सब से पहले उन्होंने युद्ध में अंग्रेजों से बिना किसी शर्त सहयोग की बात कही। इसका क्या मतलब था? कार्यसमिति ने इसका चाहे जो मतलब लगाया हो और साल भर बाद गांधीजी ने उसे बताया था कि उनका मतलब नैतिक सहयोग से था। फिर भी इसमें कुछ सन्देह नहीं है कि युद्ध में भाग लेने अथवा धन-जन से सहायता देने की बात उनके मस्तिष्क में नहीं थी। परन्तु उनके मस्तिष्क में यह बात अवश्य थी कि युद्ध को नापसन्द करते हुए भी वे अंग्रेजों की सफलता की प्रार्थना करते थे और उन्हींके प्रति उनकी सहानुभूति थी। वे चाहते तो विशुद्ध सैद्धान्तिक स्तर से, जिसमें हिंसा चाहे मनुष्य और मनुष्य के बीच रही हो या राष्ट्र और राष्ट्र के बीच—उसकी निंदा ही की जायगी, कह सकते थे कि वे युद्ध-क्षेत्र से ही नहीं बल्कि युद्ध-क्षेत्र के विचार से भी मीलों परे हैं और युद्ध में भाग लेने वाले दलों के बीच कुछ भी भेदभाव किये बिना अथवा नैतिक या आर्थिक सहायता का विचार मन में लाये बिना ही वे तो उसका अपनी सम्पूर्ण शक्ति से विरोध ही करेंगे। परन्तु गांधीजी कोरी कल्पना के संसार में बसने वाले ही न थे। वे वस्तुस्तिथि को भी देखते थे। उन्हें कार्यसमिति के साथ मिलकर वर्ष-प्रति-वर्ष युद्ध के व्यावहारिक परिणामों पर भी विचार करना पड़ता था, गोकि युद्ध के दूसरे वर्ष में वे अहिंसा के ही अधिक निकट थे। जून, १९४० में जिन दिनों फ्रांस का पतन हुआ उनका

विश्वास अहिंसा में और भी पक्का हुआ और उसी वर्ष जून व अक्तूबर के मध्य में गांधीजी को कठिनाई से अपने अनशन शुरू करने के इरादे को त्यागने के लिए राजी किया जा सका। इसके उपरान्त एक व्यक्तिगत सत्याग्रह का आंदोलन उठाया गया और यह आंदोलन अक्तूबर, १९४० के अन्त में शुरू हुआ। इन महीनों में अनेक महत्वपूर्ण घटनाएं हुईं और यदि गांधीजी सुलह के प्रयत्नों में कांग्रेस का साथ देते तो भारत का भाग्य ही शायद बदल जाता। जून, १९४० में फ्रांस के पतन के उपरांत भारत में युद्ध में सहयोग प्रदान करने के लिए पूना वाला प्रस्ताव पास किया गया। इस प्रस्ताव को गांधीजी की स्वीकृति नहीं मिली थी, बल्कि गांधीजी उसके विरुद्ध लड़ाई छेड़ने की घोषणा कर चुके थे। जुलाई, १९४० में उनके तथा श्री राजगोपालाचारी के मध्य खुले मतभेद का यहींसे आरम्भ हुआ था। यह दिल्ली की बात है। इसके बाद पूना में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक हुई। गांधीजी पूना में उपस्थित नहीं थे और उनकी अनुपस्थिति से ही पूना वाले प्रस्ताव के भाग्य का निबटारा हो गया। वाइसराय ने ८ अगस्त को एक घोषणा की और श्री एमरी ने १४ अगस्त को उसे पार्लमेंट में दुहरा दिया। यह पहला लिखित प्रयत्न था, जो ब्रिटिश अधिकारियों ने देश की राष्ट्रीयता को लांछित करने व भारत की फूट को बढ़ाकर दिखाने के लिए किया था और जिसमें उन्होंने राष्ट्रीय सरकार की मांग को असफल बनाने के लिए देश के प्रमुख दलों को भड़काने और इस प्रकार पूना वाले प्रस्ताव का खात्मा करने के उद्देश्य से किया था। यदि कोई देखना चाहता तो इसका कारण उसे स्पष्ट दिखाई दे सकता था। इस प्रस्ताव को गांधीजी की अनुमति प्राप्त न थी। वे तो उसके विरुद्ध थे। जवाहरलाल ने भी इसके पक्ष में अपना मत नहीं दिया था। और ऐसी अवस्था में कार्यसमिति-द्वारा पास किये गये प्रस्ताव को मानने के लिए ब्रिटिश अधिकारी तैयार न थे।

व्यक्तिगत सत्याग्रह आंदोलन समाप्त हो चुका था। लोग अपने घरों को लौट आये थे। अब कुछ करना था। कार्यसमिति चुप नहीं बैठ सकती थी। लोग फिर गांधीजी के पास पहुंचे। दिसम्बर, १९४१ में समिति की बैठक बारडोली में हुई। समिति के सदस्यों में मतभेद था। इधर जापानियों के आक्रमण का आतंक बढ़ा और उधर देश में असन्तोष की वृद्धि हुई। इसके बाद क्रिप्स-प्रस्ताव आये, जिनके सम्बन्ध में उप-भारतमंत्री लार्ड मुंस्टर ने कहा था कि प्रस्तावों का मसविदा सिंगापुर व बर्मा के पतन पहले ही तैयार किया गया था और युद्ध में अंग्रेजों की स्थिति बिगड़ने से इसका कुछ भी सम्बन्ध नहीं था। जो भी हो, सर स्टैफर्ड-क्रिप्स की योजना गांधीजी को पसन्द नहीं आई—सिर्फ इसीलिए नहीं कि उसका सम्बन्ध गवर्नर-जनरल की शासन-परिषद् के पुनस्संगठन के अलावा मुख्यत: भविष्य से था बल्कि उसमें भारत के प्रांतों व रियासतों को खंड खंड कर देने के बीज भी निहित थे। गांधीजी ने जिस दिन प्रस्ताव देखे वे उसी दिन दिल्ली से रवाना हो जाने वाले थे; किन्तु समझा-बुझाकर उन्हें और अधिक ठहरने के लिए राजी कर लिया गया और तब वे कहीं ५ अप्रैल को दिल्ली से रवाना हुए। क्रिप्स-योजना की असफलता के कई कारण दिये जाते हैं। कुछ लोगों का कहना है कि गांधीजी ने वर्धा से कार्य-समिति-द्वारा उसे अस्वीकृत करने का षड्यंत्र रचा, जो बिल्कुल असत्य है। अन्य लोगों का कहना है कि लंदन में चर्चिल ने क्रिप्स के पीछे जो कार्रवाई की उसीके परिणामस्वरूप विचारधारा में एकाएक परिवर्तन हो गया। चर्चिल का हाथ तो इसमें निस्सन्देह होगा; किन्तु उन्होंने इस प्रकार पैंतरा क्यों बदला? कारण क्या यह था कि जिस प्रतिकूल परिस्थिति से प्रेरित होकर क्रिप्स-योजना तैयार की गई वह अब नहीं रह गई और अब भारत पर जापान के आक्रमण की आशंका

भी नहीं थी। अथवा कारण यह था कि जिस प्रकार पूना वाले प्रस्ताव को गांधीजी का समर्थन प्राप्त न होने के कारण वह बेकार समझा गया था उसी प्रकार गांधीजी के समर्थन के अभाव में क्रिप्स-योजना को भी बेकार समझा गया। एक विचारधारा यह भी है कि क्रिप्स-योजना का गांधीजी पर जो पहला प्रभाव पड़ा उसके बावजूद वे दिल्ली में रहकर बातचीत में भाग लेते तो योजना कदाचित् असफल न होती। परन्तु जो बात गांधीजी ने अप्रैल, १९४२ में दिल्ली में स्वीकार नहीं की थी वहीं उन्होंने अगस्त, १९४२ में बम्बई में मंजूर करली। परन्तु ब्रिटिश अधिकारियों में बदले की भावना पैदा हो गई थी और घबराहट में उन्होंने गांधीजी को उनके साथियों सहित गिरफ्तार कर लिया और फिर हिंसा के पथ पर बढ़ना शुरू कर दिया।

गांधी—एक संश्लिष्ट मस्तिष्क

गांधीजी के दिन-प्रति-दिन के वक्तव्यों में परस्पर विरोधी बातें खोज निकालना कोई कठिन नहीं है। हर रचनात्मक कार्य में ऐसी त्रुटियां, ऐसी कमियां और ऐसा विरोधाभास मिल सकता है। कोई भवन-निर्माता रातभर में महल बनाकर खड़ा नहीं कर सकता। इसी तरह एक रात में कोई डाक्टर मरीज को अच्छा नहीं कर सकता, कोई वकील मुकदमा नहीं जीत सकता, कोई महात्मा पापी का सुधार नहीं कर सकता और कोई प्रोफेसर विद्यार्थी को विद्या नहीं पढ़ा सकता। संश्लिष्ट मस्तिष्क के व्यक्तियों के प्रयत्नों के परिणाम क्रमशः प्रकट होते हैं। आवश्यकता इन परिणामों को एक साथ मिलाकर रखने की है। यही कारण है कि गांधीजी की बातें कभी-कभी असम्बद्ध और परस्पर विरोधी जान पड़ती हैं। इन सभीके एकीकरण की आवश्यकता है। इतना ही नहीं, असम्बद्धताओं को हटाकर और उन्हें एक साथ रखकर विचार करने की भी आवश्यकता है। तभी हमें एक सुन्दर भवन खड़ा दिखाई दे सकता है। जहां तक गांधीजी का सम्बन्ध है, वे स्पष्ट कहते हैं और कहीं भी कोई बात छिपाते नहीं हैं।

गांधीजी ने आरम्भ में ही बता दिया कि बम्बई वाला प्रस्ताव निर्दोष है और उसे वापस नहीं लिया जा सकता। उन्होंने बताया कि 'भारत छोड़ो' का क्या तात्पर्य है और फिर वे उसपर जम गये। जहां तक सविनय अवज्ञा का सम्बन्ध है, प्रधान सेनापति के रूप में उनके अधिकार का अन्त हो गया; किन्तु कांग्रेसजन अपना साधारण कार्य, जिसमें मासिक झंडा-अभिवादन भी शामिल है, जारी रख सकते हैं। यदि इसमें बाधा पड़ती है तो इस बाधा का वे बहादुरी से सामना कर सकते हैं। इसका मतलब हुआ व्यक्तिगत सत्याग्रह, जिसके लिए प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार है। यह पूछे जाने पर कि यदि राजनैतिक मांगें स्वीकार करली जायं तो युद्ध-प्रयत्न के प्रति आपका रुख क्या होगा, गांधीजी ने स्पष्ट शब्दों में उत्तर दिया कि वे युद्ध-प्रयत्न में कोई बाधा नहीं डालेंगे। गांधीजी से लंदन के 'डेली वर्कर' के प्रतिनिधि ने प्रश्न किया कि भारत युद्ध-प्रयत्न में किस तरह हाथ बँटायगा? गांधीजी ने उत्तर दिया कि भारत धुरीराष्ट्रों के विरुद्ध मित्रराष्ट्रों का अपने नैतिक बल से समर्थन करेगा। जुलाई, १९४४ में पार्लमेंट में हुई बहस के दौरान में जब यह कहा गया कि आर्थिक उन्नति का राजनैतिक उन्नति की अपेक्षा अधिक महत्व है तो गांधीजी ने अपनी पूर्व घोषणा को दुहराते हुए कहा कि 'भारत छोड़ो' का नारा कोई अविचारपूर्ण नारा नहीं है, बल्कि यह तो भारतीय जनता की विचारपूर्ण मांग है। गांधीजी ने अपनी स्पष्टवादिता का परिचय वाइसराय से हुए अपने उस पत्र-व्यवहार के दौरान में भी दिया, जब वे मृत्यु के निकट पहुँच गये थे और जब इस कलंक से बचने के लिए ही सरकार ने उनके विरुद्ध आरोपों को प्रकाशित करना उचित समझा था। गांधीजी जिन लोगों से पत्र-व्यवहार करना चाहते थे जब उनसे पत्र-व्यवहार की

अनुमति उन्हें जेल में नहीं दी गई तो उन्होंने पत्र-व्यवहार बिलकुल बन्द कर दिया और सिर्फ सरकार से ही लिखा पढ़ी करके उसके लिए परेशानी पैदा करते रहे।

साथ ही गांधीजी ने बदलती हुई परिस्थिति का सामना करने के लिए अपने मूल सिद्धान्तों में भी कम संशोधन नहीं किया। पहले कहा जा चुका है कि १४ जून, १९४० को फ्रांस का पतन होने पर गांधीजी ने भारत को अहिंसक राज्य घोषित करने का विचार उपस्थित किया, जिसमें सेना या युद्ध के साधन कुछ भी न रहेंगे। कार्य-समिति तथा गांधीजी के मध्य इस विषय को लेकर काफी बहस हुई। उन्होंने 'प्रत्येक अंग्रेज के नाम' एक पत्र लिखा। इस पत्र में उन्होंने अंग्रेजों को जो सलाह दी थी वह पोल लोगों को दी हुई सलाह से भिन्न थी। आपने कहा कि यदि जर्मन ब्रिटेन पर चढ़ाई करें तो अंग्रेजों को हथियार डाल देने चाहिए। गांधीजी ने जर्मनों के विरुद्ध पोल-लोगों के सशस्त्र अवरोध को एक हाल ही में हुई घटना के सम्बन्ध में मत प्रकट करते हुए अहिंसा बताया था। परन्तु अंग्रेजों को हथियार डाल देने की सलाह उन्होंने एक काल्पनिक स्थिति को मानकर दी थी। इसके उपरान्त गांधीजी की विचारधारा एक और ही दिशा में मुड़ गई। बम्बई में ८ अगस्त, १९४२ को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सामने उपस्थित प्रस्ताव का समर्थन करते हुए गांधीजी ने युद्ध में सशस्त्र सहायता का समर्थन कर दिया, गोकि यह स्पष्ट था कि जब कांग्रेस के लिए सहायता की योजना को अमल में लाने का अवसर आयगा तो गांधीजी स्वयं अलग रहेंगे और कांग्रेस के इस कार्य में बाधा न डालकर संतोष कर लेंगे। अपने यही विचार गांधीजी ने दो वर्ष बाद जुलाई, १९४४ में 'डेली वर्कर' के प्रतिनिधि से बातें करते हुए दुहरा दिये। आपने एक सवाल का जवाब देते हुए कहा कि यदि मित्रराष्ट्र अपने युद्ध को न्याय का युद्ध मानते हैं और कहते हैं कि वे लोकतंत्रवाद की रक्षा के लिए लड़ रहे हैं तो उन्हें भारत को आजादी दे देनी चाहिए। दूसरे शब्दों में गांधीजी यह मानने को तैयार थे कि लड़ा जाने वाला युद्ध लोकतंत्रवाद के सिद्धान्त की स्थापना और संसार में उसके विस्तार का एक साधन है।

गांधीजी की विचारधारा का जो पेरिस के पतन से लेकर वारसा तथा क्रेकाउ की लड़ाइयों तक अध्ययन करते रहे हैं, उन्हें इसमें कुछ भी संदेह नहीं होगा कि आधुनिक विचारधारा तथा बदली हुई परिस्थितियों तक पहुंचने के लिए गांधीजी को कितना आगे बढ़ना पड़ा होगा। इसके अलावा, गांधीजी की उक्तियों का एक और भी मनोरंजक पहलू है। गांधीजी अपने आधारभूत सिद्धान्तों को बदलती हुई परिस्थितियों के अनुकूल बनाकर ही मास्को व वाशिंगटन की महान् शक्तियों को चलायमान कर सकते थे। प्रेसिडेंट रूजवेल्ट, जो २१ जुलाई के दिन चौथी बार राष्ट्रपति पद के लिए मनोनीत किये गये थे, लंदन जाने वाले थे। इन्हीं दिनों 'प्रवदा' में कहा गया कि राष्ट्रपति रूजवेल्ट चर्चिल पर भारत के सम्बन्ध में अटलांटिक अधिकारपत्र अमल में लाने के लिए जोर डालेंगे। इतना रक्तपात होने पर भी भारत पर इंग्लैंड के अधिकार को क्या अमरीका तथा रूस कभी सहन कर सकते थे? बहुत से लोगों का विश्वास है कि जिस प्रकार क्रिप्स-योजना अमरीका के दबाव का परिणाम थी उसी प्रकार शिमला-सम्मेलन रूसी दबाव का परिणाम था।

गांधीजी के महान् प्रयत्नों तथा कांग्रेस के उनके प्रति सहयोग का तात्कालिक परिणाम चाहे जो हो और गांधीजी ने युद्ध के प्रति अपने दृष्टिकोण में समय-समय पर चाहे जितने समझौते क्यों न किये हों, फिर भी जहां तक आधारभूत सिद्धान्तों का सम्बन्ध है उनकी स्थिति युगों से खड़े हुए पर्वत-शिखरों के समान अचल और जीवन के महान् तथ्यों की तरह अजेय रही और सत्य व

अहिंसा के सिद्धान्तों के समान दुर्भेद्य रही। गांधीजी भी संसार की नई व्यवस्था का स्वप्न देखते थे; किन्तु यह, ब्रिटेन व अमरीका जैसी थेगली लगी हुई व्यवस्था न थी, जो साम्राज्यवाद का ही एक दूसरा रूप थी। गांधीजी के शब्दों में नई व्यवस्था की कसौटी यह थी कि वह निस्वार्थ भावना तथा विश्व प्रेम पर आधारित होनी चाहिए। गांधीजी ने अपनी नई व्यवस्था की रूपरेखा अपनी कुछ मुलाकातों व वक्तव्यों के मध्य बताई।

गांधीजी ने कहा, "आपको एक ऐसी केन्द्रीय सरकार की कल्पना करनी पड़ेगी, जिसे ब्रिटिश सेना का समर्थन प्राप्त न होगा। यदि यह सरकार सेना के बिना कायम रह सके तो उसे हम नई व्यवस्था कहेंगे। यह एक ऐसी वस्तु है, जिसके लिए हमें प्रयत्न करना चाहिए। यह कोई ऐसा उद्देश्य नहीं है जिसकी प्राप्ति इस संसार में न हो सके। यह एक व्यावहारिक कार्य है।" उन्होंने आगे कहा, "आप देखते हैं कि अब शक्ति का केन्द्र नई दिल्ली, कलकत्ता या बम्बई जैसे बड़े शहरों में है। मैं इस शक्तिपुंज को हिन्दुस्तान के सात लाख गांवों में बांट देना चाहता हूं। इसका मतलब हुआ कि शक्ति फिर न रह जायगी। दूसरे शब्दों में मैं तो यह चाहता हूं कि आज जो सात लाख डालर इंग्लैंड के इम्पीरियल बैंक में जमा हैं उसे वहांसे निकालकर हिन्दुस्तान के सात लाख गांवों में बांट दिया जाय। तब हर गांव को एक-एक डालर मिल जायगा। दिल्ली में जमा सात लाख डालर जापानी वायुयान से गिराये जाने वाले एक बम-द्वारा क्षणमात्र में नष्ट हो सकते हैं; किन्तु गांव में जाकर कोई लोगों से उनका धन नहीं छीन सकता। तब इन सात लाख गांवों में स्वेच्छापूर्वक सहयोग हो सकता है। यह सहयोग नाज़ी उपायों द्वारा प्राप्त सहयोग से भिन्न होगा। स्वेच्छापूर्ण सहयोग से सच्ची आज़ादी हासिल होगी। यह एक ऐसी व्यवस्था होगी, जो सोवियट रूस-द्वारा कायम की गयी व्यवस्था से कहीं उत्तम होगी। कुछ लोग कहते हैं कि रूस के काम करने के ढंग में कठोरता जरूर होती है, किन्तु यह कठोरता निर्धन तथा दलित वर्ग के लिए की जाती है, इसलिए अच्छी होती है। मुझे इसमें अच्छाई बिलकुल नहीं मिलती। कुछ लोगों का कहना है कि इस कठोरता के कारण ऐसी अराजकता मच जायगी, जैसी पहले कभी नहीं मची थी। मुझे विश्वास है कि इस अराजकता से हम इस देश में बच जायंगे।"

जिन दिनों सान फ्रांसिस्को में सम्मेलन हो रहा था, गांधीजी ने एक बड़ा चमत्कारपूर्ण वक्तव्य दिया। आपने कहा कि विश्व की शान्ति के लिए भारत की स्वाधीनता आवश्यक है। १७ अप्रैल, १९४५ को महात्मा गांधी ने बम्बई से एक वक्तव्य निकाल कर कहा कि सान फ्रांसिस्को में एकत्र राजनीतिज्ञों को क्या करना चाहिए :—

"शान्ति के लिए सब से पहली आवश्यकता सभी प्रकार के विदेशी नियंत्रणों से भारत की मुक्ति है; सिर्फ इसलिए नहीं कि भारत साम्राज्यवादी गुलामी का ज्वलंत ऐतिहासिक उदाहरण है बल्कि इसलिए भी कि यह एक ऐसा बड़ा, प्राचीन व संस्कृत देश है, जो १९२० से सिर्फ सत्य व अहिंसा के एक मात्र अस्त्र द्वारा लड़ता रहा है।" आपने आगे कहा, "अपनी आजादी की लड़ाई में भारत को इस अहिंसा के हथियार से काफी सफलता मिली है। भारत की राष्ट्रीयता भी अंतर्राष्ट्रीयता का ही दूसरा रूप है जैसाकि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के अगस्त वाले प्रस्ताव से प्रकट हो चुका है, जिसमें कहा गया था कि स्वाधीन होने पर भारत विश्व संघ में सम्मिलित हो जायगा और अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं के हल करने में सहयोग प्रदान करेगा।

"गोकि मैं जानता हूँ कि कहे या लिखे हुए शब्दों के मुकाबले में मौन कहीं उत्तम होता है, किन्तु इस सिद्धान्त की भी कुछ सीमाएं हैं। कुछ दिनों में सान फ्रांसिस्को-सम्मेलन हो रहा

है। मुझे नहीं मालूम कि उसकी कार्य-सूची क्या है। शायद बाहर वाला कोई व्यक्ति नहीं जानता। यह कार्यक्रम चाहे जो हो, इसमें संदेह नहीं है कि सम्मेलन में युद्ध के उपरान्त संसार की व्यवस्था के सम्बन्ध में अवश्य विचार किया जायगा।

"मुझे आशंका है कि विश्व सुरक्षा के जिस भवन का निर्माण किया जा रहा है उस के पीछे अविश्वास और भय छिपे हैं, जिनके कारण युद्ध छिड़ते हैं। इसलिए, मैं युद्ध की तुलना में शान्ति के पुजारी के रूप में अपने विचार प्रकट करता हूँ।

"मैं अपनी इस धारणा को फिर से प्रकट करना चाहता हूं कि जबतक मित्र-राष्ट्र व दुनिया वाले युद्ध और उसके साथ धोखे-फरेबों का त्याग कर सभी राष्ट्रों व जातियों की आजादी व समानता के सिद्धान्त के आधार पर प्रयत्न न करेंगे तब तक वास्तविक शान्ति की स्थापना नहीं हो सकती। यदि दुनिया से युद्ध का नाम-निशान मिटाना है तो उससे एक राष्ट्र-द्वारा दूसरे राष्ट्र का शोषण व पराधीनता को पहले मिटा होगा। सिर्फ ऐसी ही दुनिया में सैनिक दृष्टि से कमजोर राष्ट्र जोर-दबाव या शोषण से मुक्त रह सकते हैं।

"(१) शान्ति के लिए सब से पहली आवश्यकता सभी प्रकार के विदेशी नियंत्रणों से भारत की मुक्ति है, सिर्फ इसलिए नहीं कि भारत साम्राज्यवादी गुलामी का ज्वलंत ऐतिहासिक उदाहरण है, बल्कि इसलिए भी यह एक ऐसा बड़ा, प्राचीन व संस्कृत देश है, जो १९२० से सिर्फ सत्य व अहिंसा के एकमात्र अस्त्र द्वारा लड़ता रहा है।

"गोकि हिन्दुस्तानी सिपाही ने हिन्दुस्तान की आजादी की लड़ाई नहीं लड़ी है फिर भी उसने युद्ध के दर्मियान यह दिखा दिया है कि कम-से-कम लड़ने में वह संसार के सर्वोत्तम योद्धाओं से कम नहीं है। मैं यह बात सिर्फ इस आरोप का उत्तर देने के लिए कह रहा हूं कि भारत ने शान्तिमय संग्राम सैनिकोचित गुणों के अभाव में किया है।

"इससे मैं यही परिणाम निकालता हूँ कि बलवान के लिए हिंसा की तुलना में अहिंसा का आश्रय लेने में अधिक बहादुरी है। यह बिलकुल दूसरी बात है कि हिन्दुस्तान अभी ऐसी अहिंसा का विकास न कर पाया हो। फिर भी इस से इनकार नहीं किया जा सकता कि भारत ने अहिंसा के द्वारा ही आजादी के लिए प्रयत्न किया है और उसे इस प्रयत्न में कुछ सफलता भी मिली है।

"(२) भारत की आजादी से संसार के सभी शोषित राष्ट्रों को प्रकट हो जायगा कि उनकी आजादी समय भी निकट आ गया है और अब वे किसी हालत में शोषण के शिकार नहीं बनेंगे।

"(३) शान्ति न्यायपूर्ण होनी चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि शान्ति कायम करते समय दंड देने या बदला लेने की भावना न रहे। जर्मनी और जापान को अपमानित नहीं करना चाहिए। शक्तिशाली लोग बदला लेने की भावना से कभी कोई कार्य नहीं करते। शान्ति के फल का उपभोग हम सभीको बांट कर करना चाहिए। हमारा प्रयत्न शत्रुओं को मित्र बनाने का होना चाहिए। मित्र-राष्ट्रों के पास लोकतंत्र-भावना प्रकट करने का यही एक मात्र साधन है।

"(४) ऊपर जो कुछ कहा जा चुका है उस से यह परिणाम निकलता है कि निरस्त्र किये हुए लोगों पर अस्त्रों की सहायता से शान्ति न लादी जानी चाहिए। सभीको निरस्त्र कर देना चाहिए। शान्ति की शर्तों को अमल में लाने के लिए अंतर्राष्ट्रीय पुलिस होनी चाहिए।

यह अंतर्राष्ट्रीय पुलिस-दल भी मनुष्य की कमजोरी के प्रति एक रियायत होगी; क्योंकि पुलिस-दल को शान्ति प्रतीक नहीं कहा जा सकता।

"यदि शान्ति की ये शर्तें मंजूर कर ली जायं तो ब्रिटिश साम्राज्यवाद-द्वारा नामजद किये गये भारतीयों के प्रतिनिधित्व का स्वांग समाप्त हो जाना चाहिए। यह प्रतिनिधित्व न रहने से कहीं बुरा है। इसलिए सानफ्रांसिस्को में या तो भारत का प्रतिनिधित्व निर्वाचित प्रतिनिधि-द्वारा होना चाहिए और या प्रतिनिधित्व होना ही नहीं चाहिए।

"८ अगस्त, १९४२ के कांग्रेस के प्रस्ताव से स्पष्ट है कि आजाद भारत किस बात का समर्थक है।

"यद्यपि इस संकट के समय अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का सम्बन्ध मुख्यतः भारत की स्वाधीनता और रक्षा से है फिर भी कमेटी का मत है कि भविष्य में संसार में शान्ति, सुरक्षा तथा सुव्यवस्थित उन्नति केवल स्वाधीन राष्ट्रों के विश्व-संघ की स्थापना से ही हो सकती है और कोई दूसरा आधार नहीं है जिससे आधुनिक संसार की समस्याएं हल हो सकें, ऐसा विश्व-संघ स्थापित होने पर उसके गठन में हिस्सा लेने वाले राष्ट्रों की स्वाधीनता की रक्षा हो सकेगी, एक राष्ट्र का दूसरे-द्वारा आक्रमण व शोषण से बचाव हो सकेगा, राष्ट्रीय अल्पसंख्यक समुदायों की रक्षा हो सकेगी, पिछड़े हुए प्रदेशों व वर्गों की उन्नति सुनिश्चित हो सकेगी और सबके कल्याण के लिए संसार भर के साधनों का संकलन व उपयोग किया जा सकेगा। ऐसे विश्वसंघ की स्थापना होने पर सभी देशों में निरस्त्रीकरण सम्भव हो सकेगा। राष्ट्रीय स्थल जल तथा वायुसेनाओं की फिर कोई आवश्यकता न रह जायगी और फिर संघ की सेना विश्व में शांति कायम रखेगी और राष्ट्रों को हमलों से बचायेगा। आज़ाद भारत प्रसन्नतापूर्वक ऐसे विश्वसंघ में सम्मिलित होगा और अन्य देशों में समानता के आधार पर सहयोग करता हुआ अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं के निबटारे में सहायक होगा।'

"इस तरह भारत की आज़ादी की मांग स्वार्थपूर्ण नहीं।"

अब संसार महसूस करता है कि आरम्भ में युद्ध-उद्देश्यों की व्याख्या क्यों नहीं की गई थी। यदि आरम्भ में कह दिया जाता कि युद्ध समाप्त होने पर सम्पूर्ण एशिया आज़ाद यूरोप व अमरीका की जंजीरों से बंध जायगा, बर्मा, सिंगापुर, हिंद चीन, मलाया और जापान पश्चिमी देशों के गुलाम बन जायेंगे और चीन मित्रराष्ट्रों की दया पर निर्भर रह जायगा तो फिर कौन मित्रराष्ट्रों के युद्ध प्रयत्नों में हाथ बँटाता? आज़ाद भारत की मांग इन एशियाई देशों को आज़ाद कराने की थी। आज़ाद भारत सच्चे विश्व-संघ का हामी है। वह ऐसे विज्ञान का हामी है, जो प्राणों की रक्षा करता है न कि जो नष्ट करता है जो अभाव और कष्ट का निवारण करता है वह बेकारी को नहीं बढ़ाता, जो सहयोग की भावना का प्रसार करता है और प्रतियोगिता का भाव नहीं पैदा करता, जो देशों को एक-दूसरे के निकट लाता है और उन्हें एक-दूसरे से अधिक दूर नहीं ले जाता। आज़ाद भारत विनम्रता से प्रश्न करता है कि शरीरों को जोड़ने तथा आत्माओं को पृथक् करने से संसार का क्या लाभ हो सकता है।

हैनीबाल तथा नेपोलियन के बारे मे मशहूर है कि उन्होंने शत्रुओं को अपनी कला सिखाकर अपनी पराजय के बीज बोये। शायद कांग्रेस के लिए भी यही कहा जाय। कांग्रेस ने ब्रिटिश अधिकारियों को सत्याग्रह के युद्ध का सबक पूरी तरह सिखा दिया है। शत्रु हमारे सभी सैनिकों व अफसरों से परिचित हो चला है, जो पिछले समय में लड़ चुके हैं और जो आगे भी अपनी

सेवाएं अर्पित करने के लिए वचनबद्ध हैं। नमक-सत्याग्रह के समय कांग्रेसियों ने जिस साहस तथा तूफानी शक्ति का परिचय दिया उसे देखकर लार्ड इरविन चकित रह गये थे और उनकी बुद्धि चकराने लगी थी। फिर उन्होंने लाठीचार्ज तथा स्त्रियों को अपमानित व घायल करने की तरकीब निकाली। लार्ड इरविन ने जहां समाप्त किया वहींसे लार्ड विलिंगडन ने आरम्भ कर दिया। लार्ड लिनलिथगो एक पग आगे बढ़ गये। उन्होंने उन सभी को गिरफ्तार करके अगस्त, १९४२ के आंदोलन को रोका, जिनके आंदोलन में भाग लेने की सम्भावना थी। यह जर्मनी के ब्रिटेन पर होने वाले सामूहिक हवाई हमले के समान एक हमला था। या कहा जाय कि यह तो पर्ल-हार्बर के हमले के समान अचानक हमला था, जिससे सत्याग्रह की शक्तियां लगभग नाकाम हो गई और दुराग्रह व हिंसा की शक्तियां बलवती हो उठीं। ब्रिटेन यही चाहता था। वह अहिंसा के स्तर पर लड़ने के लिए अपने को कमज़ोर पा रहा था। वह युद्ध को हिंसा के स्तर पर लाना चाहता था, जिसमें उसकी शक्ति अजेय थी। सत्याग्रह को नाकाम करना वास्तव में कांग्रेस ने ही ब्रिटिश अधिकारियों को सिखाया था। फिर भी इस तथ्य से कोई इनकार नहीं कर सकता कि अगस्त, १९४२ का प्रस्ताव पास करके कांग्रेस ने देश को विदेशी शासन से मुक्त करने का प्रयत्न किया, किन्तु उसे प्रस्ताव को अमल में लाने का समय नहीं मिल सका।

कौन कहता है कि कांग्रेस असफल रही? क्या कभी ऐसा हुआ है कि माली ने किसी पौधे को खाद दी हो और दूसरे ही दिन सुबह देखा हो कि पत्तियां और फल लगे या नहीं? क्या यह नहीं कहा गया कि धार्मिक उन्नति शहीदों के रक्त के बीज से हुई है? परन्तु क्या धार्मिक उन्नति एकाएक ही हुई है? क्या महादेव देसाई, रणजीत पंडित, सत्यमूर्ति आदि ने अपने प्राण व्यर्थ ही दिये? क्या तोपों से उड़ा दिये जाने वाले हज़ारों व्यक्तियों का लहू बेकार जायगा? कौन जानता था कि कस्तूरबा स्मारक कोष में १,२५,००,००० इकट्ठे हो जायंगे, जबकि अपील सिर्फ ७५ लाख के लिए की गई थी? यदि आप विश्वविद्यालयों के ग्रेजुएटों से ऐसी भारतीय नारी के सम्बन्ध में आधा पृष्ठ लिखने को कहें तो बड़ी दिक्कत होगी। ऐसी सती का नाम भारत भर में सुनहरे अक्षरों से लिखा हुआ है। आज तक किसी भी आन्दोलन का परिणाम उसके चलते समय देखने में नहीं आया। बीज को जमने में समय लगता है और तब कहीं पौधा उगता है और फूलता व फलता है। पौधे के पहले फल का उपयोग हम कर चुके हैं। यह फल था प्रान्तीय स्वशासन और शीघ्र ही हम वास्तविक स्वराज्य का मजा भी चखेंगे।

डूबता हुआ जहाज अपना ढांचा, व्यक्तियों तथा प्राणरक्षिणी नौकाओं को अपने में समेट लेता है। साम्राज्य के डूबते हुए जहाज से अभी हमारी रक्षा हुई है। हम उस डूबते हुए जहाज की समेट में आने वाले थे, किन्तु जूझकर हमने अपनी रक्षा कर ली। अब हम आजादी का उपभोग करने के लिए बच गये हैं।

सफलता सिर्फ वीरों को ही नहीं मिलती। वह न्याय के समर्थकों को भी कम ही मिलती है और यदि मिलती है तो देर से मिलती है। क्या अंग्रेज जो अपने को न्याय के पक्ष में समझते थे और बहादुर भी बनते थे कभी नारमंडी के सेलारिनो नामक स्थान पर और दक्षिणी फ्रांस में फिर उतरने की कल्पना उस समय कर सकते थे, जब उनकी ढाई लाख सेना डंकर्क से सिर पर पैर रखकर भागी थी? १४ जून १९४० को जब पेरिस का पतन हुआ था उस समय कौन कह सकता था कि २३ अगस्त १९४४ को ही पेरिस पर मित्रराष्ट्रों का फिर से अधिकार हो जायगा? और जब उत्तरी अफ्रीका मित्रराष्ट्रों के हाथ से निकला था और जर्मन सेना सिकंदरिया से

७० मील की दूरी पर अल आमीन तक पहुंच गई थी, उस समय कौन कह सकता था कि उसी जर्मन सेना को अपना बोरिया-बंधना बांध कर ट्रिपोली व ट्यूनिस से चले जाना पड़ेगा। जब रूस विजयिनी जर्मनवाहिनी-द्वारा पददलित हुआ था उस समय कौन कह सकता था कि वह स्टालिनग्राड की लड़ाई लड़कर १६४३ में १८१२ की उन घटनाओं की पुनरावृत्ति करेगा जब फ्रांसीसी सेनाओं को पराजित होकर मास्को से लौट आना पड़ा था? उन दिनों की याद कीजिये जब चेकोस्लोवाकिया पर कब्जा हुआ था और क्रीट पर धुरीराष्ट्रों ने विजय पाई थी-उस समय कौन कह सकता था कि एक दिन पूर्वी यूरोप के सभी देश एक-एक करके डूबते हुए जहाज से निकल कर राष्ट्रीय जीवन का विकास करने के लिए बच जायंगे? इसी तरह किसका खयाल था कि जापान बिना किसी शर्त के मित्रराष्ट्रों के आगे आत्म-समर्पण कर देगा? द्वितीया के दिन हमें आशा करनी चाहिए कि समय आने पर पूर्ण चंद्र आकाश में फिर चमकेगा और जो संसार अंधकार में डूबा हुआ है उसे पुनः आलोकित कर देगा।

हमें यह भी स्मरण रखना चाहिये कि सविनय आज्ञा-द्वारा यदि तुरंत सफलता नहीं मिलती तो कम-से कम उसकी तात्कालिक असफलता से वह अव्यवस्था और मायूसी नहीं आती, वह निराशा, नपुंसकता व सुस्ती नहीं फैलती, जो सशस्त्र विद्रोह या आतंकवादी षड्यन्त्र की असफलता के बाद फैल जाती है।

युद्ध के दिनों में कांग्रेस पर स्वाधीनता अथवा राष्ट्रीय सरकार प्राप्त न करने के लिए दोषारोपण किया जाता है और इस दृष्टि से उसकी नीति व प्रतिवादों की आलोचना भी की जाती है। चलिए तर्क के विचार से एक क्षण के लिए मान लिया जाय कि कांग्रेस को पराजय हुई। परन्तु क्या मनुष्य सिर्फ सफलता का ही दावा कर सकता है? यह उसकी शक्ति के बाहर की बात है। इंसान का फर्ज सिर्फ कोशिश करते रहना और इस कोशिश के बीच, ज़रूरत हो तो, सत्य व अहिंसा की मदद से अपने मकसद तक पहुंचने के लिए कष्टों के स्वागत व बलिदान करने को तैयार रहना है। बर्नार्ड शा ने कहा है कि "कोशिश व काम करने से गलतियां होती हैं और सफलता भी मिलती है; किन्तु कुछ न करके चुपचाप बैठ रहने की तुलना में कहीं अच्छा यह है कि गलतियां करने में जीवन व्यतीत कर दिया जाय। यह जीवन कहीं अधिक सम्मानपूर्ण व उपयोगी है।" कांग्रेसजन के लिए यह सोचना छूंछी तसल्ली नहीं कही जा सकती, बल्कि उनका दिल में यह सन्तोष करना उचित ही कहा जायगा कि उनकी सेवाएं और उनके बलिदान व्यर्थ नहीं गये बल्कि उनसे हमारी राष्ट्रीय स्वाधीनता व आजादी की ठोस नींव पड़ गई। कांग्रेस ने बम्बई वाला प्रस्ताव पास करके देश की ऐतिहासिक आवश्यकता के अनुसार काम किया या, कह सकते हैं कि वैज्ञानिक आवश्यकता के अनुसार काम किया। क्रिप्स योजना की असफलता के बाद हमारे अन्दर एक कमी आ गई थी और यह कमी बम्बई वाले प्रस्ताव से दूर हुई। यदि प्रस्ताव का स्पष्ट परिणाम दिखाई देता तो सभी महात्मा की तारीफ करते। इस स्पष्ट परिणाम के अभाव में महात्मा एक ऐसा गांधी हो गया, जो गलती कर बैठा। यहां यही कहा जा सकता है कि पहले हुए निश्चय पर बाद के अनुभवों के आधार पर कोई निर्णय न देना चाहिए।

सत्य इतना ही नहीं है। गांधीजी ने वाइसराय के सम्मुख "निश्चित तथा रचनात्मक नीति" का जो मसविदा उपस्थित किया उसमें वाइसराय से भारत की स्वाधीनता की तुरन्त घोषणा करने की बात कही गई थी। इस बात ने ब्रिटेन के अनुदार, उदार तथा मज़दूर-दलों

के समाचार-पत्रों के मुंह के बन्द कर दिये। गांधीजी तथा साधारण भारतीय की विचार-धारा यह थी कि भारत व ब्रिटेन की समस्या यह नहीं है कि भारतीय स्वाधीनता की प्राप्ति का तरीका खोज निकाला जाय बल्कि यह है कि ब्रिटेन भारत की स्वाधीनता को अभी मानने को तैयार है या नहीं। ब्रिटेन भारत को स्वाधीनता इस शर्त पर देना चाहता है कि देश के विभिन्न वर्गों के मध्य एक समझौता हो जाय। गांधीजी व कांग्रेस का तर्क स्वाधीनता के लिए भारत के जन्मसिद्ध अधिकार पर आधारित था—एक ऐसा अधिकार जो अखण्ड तथा अनुपेक्षणीय है। सत्य तो यह है कि सत्याग्रह की सफलता या असफलता का निर्णय करने के सिद्धांत पशुबल या हिंसा सम्बन्धी निर्णय करने के सिद्धांतों से भिन्न होते हैं। ये सिद्धांत उस विद्यार्थी के सिद्धांतों के अधिक निकट होते हैं, जो निरन्तर सरस्वती की आराधना करते रहते हैं और जिनकी कभी भी मुक्ति नहीं होती। राष्ट्र का सेवक राष्ट्र के कल्याण व उसकी एकता के लिए निरन्तर प्रयत्न करता रहता है और जो भी पत्थर वह लगाये, जो भी खम्भा वह खड़ा करे और जो भी महराब वह बनाये वह स्वाधीनता के मन्दिर के निर्माण का ही अंग माना जायगा, जिसके लिए वह अपने जीवन को अर्पित करने की प्रतिज्ञा कर चुका है। भारतीय स्वाधीनता के समर्थक नई और पुरानी दुनिया भर में फैले हुए हैं। आज यूरोप व अमरीका के दार्शनिक, राजनीतिज्ञ विद्वान, उद्योगपति तथा कला व संस्कृति के पुजारी भारत को स्वाधीन घोषित करने की जरूरत महसूस करने लगे हैं और उनका मत है कि भारत को पराधीन रखने से एक और महायुद्ध छिड़ने की आशंका है। संसार की सद्भावना प्राप्त कर लेना आधी सफलता प्राप्त करने के समान है। कांग्रेस ने बाहर रहने के बजाय जेल में रहकर यह सद्भावना प्राप्त कर ली है। जेल से बाहर रहने पर उसे अमन व कानून के, युद्ध-प्रयत्न के अथवा शान्ति-प्रयत्न के नाम पर किये जाने वाले अत्याचारों को अपनी आंखों के सामने देखना पड़ता। कांग्रेस सुख या दुःख, लाभ या हानि, सफलता या असफलता का विचार किये बिना लड़ती रही है और कम-से-कम उसे यह संतोष तो प्राप्त है कि उसने कोई अपराध नहीं किया है। कांग्रेस को इस बात का संतोष प्राप्त है कि स्वराज्य की लड़ाई लड़ते समय उसने अपने हाथों को गंदा नहीं किया है और उसके तरीके उचित व साफ रहे हैं। जिस स्वराज्य की स्थापना ऐसी नींव पर हुई है उसके अस्थिर अथवा अन्यायपूर्ण होने की आशङ्का नहीं हो सकती। यह सिर्फ भारत की ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण एशिया तथा यूरोप के हाल में स्वतंत्र हुए देशों की भावी पीढ़ियों के लिए एक उदाहरणस्वरूप बात होगी। गांधीजी के नेतृत्व में कांग्रेस की एक आकांक्षा यह भी रही है कि भारत की स्वाधीनता असत्य व हिंसा से, अव्यवस्था व विनाश से और स्वार्थपरता व लोभ से संसार की मुक्ति की भूमिका होनी चाहिए और कांग्रेस व गांधीजी दोनों ही को संतोष है कि अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते हुए अपने इस उद्देश्य को भी वे भूले नहीं हैं। यदि साधन स्वयं साध्य नहीं हैं तो उससे अधिक अवश्य हैं।

: २७ :

मंत्रिमंडल की सफलता

कांग्रेस की सफलता पर अधिक विस्तार से विचार करने से पूर्व भारत तथा उसके प्रान्तों की आर्थिक व्यवस्था के संबन्ध में एक शब्द कह देना असंगत न होगा; क्योंकि इस तरह हम उसमें हुए परिवर्तनों को भली-भांति समझ सकेंगे।

राजनैतिक तथा शासन-सम्बन्धी क्षेत्रों के समान भारत की आर्थिक व्यवस्था भी संघ प्रणाली की तरफ उन्नति कर रही थी। १९१९ तक भारत की आर्थिक-व्यवस्था एक प्रकार से सम्मिलित तथा अखंडनीय थी और इस दृष्टि से प्रान्तीय सरकारें जिला बोर्डों से भी गई-गुजरी थीं; क्योंकि जब जिला बोर्डों को नये कर लगाने के अधिकार थे प्रान्तीय सरकारों को ये अधिकार न थे। १८७१ तक प्रान्तीय खर्च की प्रत्येक पाई पर केन्द्रीय नियंत्रण रहता था और उसके बाद १९१९ तक कुछ ढील कर दी गई थी। १९१९ में केन्द्र व प्रान्तों के आय के साधनों का विभाजन हुआ और कुछ साधन जैसे भूमि की मालगुजारी, आबकारी आयकर, स्टाम्प, जङ्गलात व रजिस्ट्री-कराई सम्मिलित रखे गये। केन्द्रीय साधन थे, अफीम, नमक, अकाल, व्यापारिक कारबार, और प्रान्तीय साधन, सिविल विभाग, प्रान्तीय निर्माण-कार्य तथा प्रान्तीय महसूल आदि थे। मॉन्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार अमल में आने पर आयकर सम्मिलित साधन नहीं रह गया। केन्द्र के पास डाक, आयकर, रेलवे, टेलीग्राफ और सेना के साधन थे और प्रान्तों के पास भूमि से प्राप्त होने वाली मालगुजारी, सिंचाई की दरें, स्टाम्प, रजिस्ट्रेशन, आबकारी और जङ्गलात के साधन थे। प्रान्तों को आयकर का भी एक अंश मिलता था। मेस्टन निर्णय के अनुसार १९२२-२३ से बंगाल को तथा १९२५-२६ से अन्य प्रान्तों को केन्द्र-द्वारा रकमें देने की प्रणाली तोड़ दी गई। यह प्रणाली १९२८-२९ में बिलकुल समाप्त करदी गई। परन्तु अब भी केन्द्रीय सरकार प्रान्तों को कर्ज देती है।

१९३५ के कानून के अंतर्गत आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार थी। प्रान्तों को अपने क्षेत्र में स्वायत्त शासन दिया गया और आर्थिक दृष्टि से उन्हें नये सिरे से काम करने का अवसर दिया गया। केन्द्र के प्रति उनका १९३६ से पहले का जो कर्ज १३ करोड़ के लगभग था उसे रद्द कर दिया गया। इसके अलावा प्रति वर्ष उन्हें केन्द्र को जो रकम देनी पड़ती थी उसमें १॥ करोड़ की और कमी की गई। इसके अतिरिक्त, उन्हें आयकर की रकम में से आधी मिलने लगी, जिसके परिणामस्वरूप प्रान्तों को १९३७-३८ में १¼ करोड़ का और १९३८-३९ में १½ करोड़ का लाभ हुआ। इसके कारण केन्द्र के अनुपात में लगातार कमी होने लगी। एक तीसरी मद जूट के निर्यात-कर की थी जो जूट उत्पन्न करने वाले चार प्रान्तों को दी गई। इस व्यवस्था के अनुसार इन प्रान्तों को १९३७-३८ में २¼ करोड़ व १९३८-३९ में

२½ करोड़ रुपये मिले । उसके अलावा, केन्द्र की तरफ से पांच प्रान्तों को वार्षिक सहायता भी मिलती थी ।

संयुक्तप्रान्त में मंत्रिमंडल की स्थापना साधारण परिस्थिति में नहीं हुई बल्कि इसके कुछ महत्त्वपूर्ण परिणाम हुए । चुनाव से पूर्व कांग्रेस को बहुमत प्राप्त करने की चिन्ता थी, जिसके परिणामस्वरूप संयुक्तप्रान्त में कांग्रेस व लीग के मध्य कुछ सहयोग देखा गया जबकि दूसरे प्रान्तों में उनके बीच खुलकर संघर्ष हो रहा था ।

फ्रेंड्स सोसाइटी के श्री होरेस अलेग्जेंडर 'क्रिप्स के समय से भारत' में संयुक्त प्रान्त की राजनीति की चर्चा करते हुए लिखते हैं, "१६३७ के चुनाव से पूर्व कांग्रेस व मुस्लिम लीग में चुनाव सम्बधी समझौता-सा था । संयुक्तप्रान्त में, जिसमें कांग्रेस को अकेले बहुमत प्राप्त करने की आशा न थी, उनके मिलकर काम करने की उम्मीद की जाती थी और कहा जाता था कि अगर मंत्रि-मंडल कायम हुआ तो उसमें दोनों ही भाग लेंगे ।" वास्तव में वस्तुस्थिति यह न थी । दरअसल हुआ यह कि मुस्लिम लीग के प्रसिद्ध नेता तथा प्रान्तीय पार्लामेंटरी बोर्ड के प्रधान चौधरी खलीकुज्जमां (जो लीगी उम्मीदवारों के चुनाव की देखरेख कर रहे थे) और प्रान्तीय कांग्रेस के चुनाव-सम्बन्धी अधिकारी उम्मीदवारों के चुनाव के विषय में मिलजुल कर काम कर रहे थे । चूंकि मुस्लिम सीटों के लिए ताल्लुकेदारों का दल नवाब छतारी के नेतृत्व में चुनाव लड़ रहा था इसलिए कांग्रेस के लिए लीग से मिलजुलकर कार्य करना स्वाभाविक था । यह सलाह-मशविरा यहां तक बढ़ा कि मि० रफीअहमद किदवई, के आम-चुनाव में हार जाने पर, जब वे एक सीट के उप-चुनाव के लिए खड़े हुए तो उनके विरोध में कोई उम्मीदवार खड़ा नहीं किया गया और वे निर्विरोध चुन लिये गये । इससे कुछ लोगों में यह धारणा फैल गई कि संयुक्तप्रान्त में मिलीजुली वज़ारत होगी । कम-से-कम उसमें खलीकुज्जमां का रहना तो निश्चित ही था । कांग्रेस को चुनाव में अकेले ही बहुमत प्राप्त हो गया । कांग्रेस पार्लमेंटरी बोर्ड के क्षेत्रीय सदस्य मौ० अबुल कलाम आजाद ने बोर्ड के अध्यक्ष सरदार वल्लभ भाई पटेल से चौ० खलीकुज्जमां को मंत्रिमंडल में लेने की अनुमति प्राप्त कर ली । खलीकुज्जमां साथ में नवाब मोहम्मद इस्माइल को भी मंत्रिमंडल में लेना चाहते थे । परन्तु दो मुस्लिम मंत्री मि० किदवई व हाफिज इब्राहिमके पहले ही होने के कारण स्थान केवल एक ही बचा था । दूसरी कठिनाई यह थी कि कांग्रेस का स्पष्ट बहुमत होने के कारण मिलीजुली वज़ारत बनाने का विरोध होने लगा था । ऐसी अवस्था में जबकि कांग्रेस व मुस्लिम लीग में कोई स्पष्ट समझौता या वादा नहीं हुआ था, इस प्रकार के विरोध को दबाया नहीं जा सकता था । खैर, चाहे जो हो, कहा जाता है कि कांग्रेस और लीग जैसे दो कट्टर विरोधी दलों के मध्य सहयोग का प्रभाव सम्भवतः चुनाव के बाद भी रहता । यह भी कहा गया है कि सहयोग जारी न रहने से कटुता बढ़ गई और उसीसे पाकिस्तान की नींव पड़ी, जिसके लिए बंगाल या पंजाब के मुसलमानों में तो कोई जोश नहीं था; किन्तु संयुक्तप्रान्त के मुस्लिम नेता उसके लिए उत्सुक हो उठे थे ।

प्रान्तीय असेम्बली की २२८ सीटों में से ६४ (२८ प्रतिशत) मुसलमानों के लिए सुरक्षित थीं, जिनका जनसंख्या में अनुपात सिर्फ १६ प्रतिशत था । इनमें से १६३७ में २६ लीग ने, २८ स्वतंत्र मुस्लिम उम्मीदवारों ने, ६ नेशनल ऐग्रिकल्चरिस्ट दलने और सिर्फ १ कांग्रेसी मुसलमान ने ली थी ।

मौलाना आजाद ने १६३७ में लीग के प्रान्तीय नेता के आगे निम्न शर्तें उपस्थित की थीं ।

(१) युक्तप्रान्तीय धारासभा में मुस्लिम लीगी दल पृथक् दल के रूप में काम करना बन्द कर देगा।

(२) प्रान्तीय असेम्बली के मुस्लिम लीगी दल के मौजूदा सदस्य कांग्रेसी दल के अंग बन जायंगे और कांग्रेसी दल के अन्य सदस्यों की भांति दलकी सदस्यता के अधिकारों का उपभोग करेंगे। वे अन्य सदस्यों के साथ बराबरी के पद से दल की कार्रवाई में भाग ले सकेंगे और धारा-सभा के कार्य तथा सदस्यों के आचरण के सम्बन्ध में कांग्रेसी दल के निर्णयों को मानने के लिए बाध्य होंगे। सभी विषयों का फैसला बहुमत से होगा और प्रत्येक सदस्य केवल एक बार ही मत दे सकेगा।

(३) कांग्रेस कार्य-समिति ने धारासभाओं के अपने सदस्यों के लिए जो नीति निर्धारित की है तथा उपयुक्त कांग्रेसी संस्थाओं ने जो आदेश जारी किये हैं उन पर कांग्रेसी दल के सभी सदस्य, जिनमें ये सदस्य भी शामिल हैं, अमल करेंगे। संयुक्तप्रान्त का मुस्लिम लीग पार्लमेंटरी बोर्ड तोड़ दिया जायगा और यह बोर्ड किसी उपचुनाव के लिए उम्मीदवार खड़ा नहीं करेगा। यदि आगे जाकर कोई स्थान खाली होता है और उसके लिए कांग्रेस किसी व्यक्ति को नामजद करती है तो दलके सभी सदस्य उसका क्रियात्मक रूपमें समर्थन करेंगे। कांग्रेसी दलके सभी कांग्रेसी दल के सभी नियमों का अनुसरण करेंगे और कांग्रेस के हित व उसकी प्रतिष्ठा को बढ़ाने के लिए अपना पूर्ण व वास्तविक सहयोग प्रदान करेंगे। यदि कांग्रेसी दल ने मंत्रिमंडल या लीग से इस्तीफा करने का फैसला किया तो उपर्युक्त सदस्य भी इस्तीफा देने के लिए बाध्य होंगे। इन शर्तों के साथ मौलाना ने अपना एक नोट भी जोड़ दिया था। (पायनियर, ३० जुलाई, १९३७) आशा की गई थी कि यदि इन शर्तों को स्वीकार कर लिया जाता और मुस्लिम लीगी सदस्य कांग्रेसी दल में सम्मिलित हो जाते तो मुस्लिम लीगी दल का अस्तित्व ही न रह जाता। ऐसी अवस्था में प्रांतीय मन्त्रि-मंडल में उन्हें प्रतिनिधित्व दे दिया जाता।

कांग्रेसी मंत्रिमंडलों की सफलताओं का अधिक विस्तार से अध्ययन करके हम बहुत-सी आवश्यक बातें जान सकते हैं। कांग्रेस ने चुनाव से पूर्व जो घोषणापत्र जारी किया था उसमें निकट भविष्य में कार्यान्वित हो सकने वाले समाजवादी सिद्धान्तों का समावेश किया गया था। कांग्रेस को जिन प्रान्तों में शासनसूत्र प्राप्त हुआ था उनमें कांग्रेसी सरकारों का फर्ज उन सिद्धान्तों के अनु-रूप कार्रवाई करने का था। इस कार्रवाई की सफलता तथा यह सफलता कितनी तेजी से होती है, इसी पर जनता की आर्थिक व सामाजिक उन्नति निर्भर थी। कहा भी गया है कि "राजनैतिक दल एक ऐसे व्यक्तियों का समूह है, जो शासन प्रबन्ध के सम्बन्ध में जनता के लिए प्रत्येक आवश्यक कार्रवाई करता है और इतनी तेजी से करता है कि जनता में असंतोष उत्पन्न न होने पाये।" दल जनता की आवश्यकता समझने में गलती कर सकता है। वह कार्रवाई समय से पूर्व या बहुत देरी से करने की भी गलती कर सकता है। ऐसी अवस्था में वह पराजित होकर भङ्ग भी हो सकता है।

कांग्रेसी सरकारें

फरवरी, १९३७ के चुनाव के परिणामस्वरूप जिन कांग्रेसी सरकारों की स्थापना हुई उनके कार्यों का संक्षेप यहां देना सिर्फ संगत ही नहीं बल्कि आवश्यक भी है। १९३५ के कानून के अनु-सार इन सरकारों की स्थापना पहले पहल हुई थी। पहले कांग्रेसी सरकारें मद्रास, बिहार, मध्यप्रान्त संयुक्तप्रान्त, बम्बई और उड़ीसा में ही कायम हुई और आसाम, बंगाल, सीमाप्रान्त, पंजाब व

बंगाल में गैर-कांग्रेसी सरकारें कायम हुईं। नीचे हम जो संक्षिप्त विवरण दे रहे हैं वह केवल कांग्रेसी प्रान्तों के ही सम्बन्ध में है।

कांग्रेसी सरकारों के सफल कार्य के सम्बन्ध में कुछ लिखने से पूर्व इस आरोप की चर्चा कर देना भी असंगत न होगा कि धारासभाओं के दलों तथा वजारतों के बीच में एक तीसरी संस्था के हस्तक्षेप के कारण प्रान्तीय स्वायत्त शासन का मूल लक्ष्य असफल हो गया। यह संस्था कांग्रेस कार्यसमिति और उसका पार्लमेंटरी बोर्ड था। यह समझना कठिन है कि जब कार्यसमिति-द्वारा चुनाव का आयोजन करते और घोषणापत्र का मसविदा बनाने पर कोई आपत्ति नहीं की गई तो वजारतों के काम की देखरेख रखने पर ही क्यों आपत्ति उठाई गई। इससे इनकार नहीं किया जाता कि मन्त्री शासन-सम्बन्धी कार्य के लिए नये थे और कार्यसमिति के सदस्यों जैसे अनुभवी व्यक्तियों की सलाह से उनका कुछ बिगड़ न जाता। एक दूसरी उल्लेखनीय बात है कि भारत के प्रान्त उस अर्थ में अलग राज्य नहीं थे, जिस अर्थ में क्रान्ति से पूर्व संयुक्त राष्ट्र अमरीका की प्रादेशिक इकाइयों को राज्य माना जाता था। भारत के प्रान्त केन्द्र से शासित व्यवस्था के अङ्ग थे और किसानों के उत्थान, शिक्षा के सुधार, किसानों की शिकायतों को दूर करने, शराब-बन्दी करने, सहयोग जारी करने, किसानों को कर्जदारी से छुटकारा दिलाने, घरेलू दस्तकारियों तथा ग्राम्य उद्योगों में नवजीवन का संचार करने, सिंचाई की सुविधाओं का विस्तार करने, देहातों में सड़कें बनवाने, घूसखोरी को समूल नष्ट करने, शासन की हृदयहीन व्यवस्था से विशिष्ट व्यक्तियों के प्रभाव को नष्ट करने और जनता के स्वास्थ्य में सुधार करने की समस्याएं उन सभी प्रादेशिक इकाइयों में एक जैसी थीं। ऐसा एक भी उदाहरण नहीं दिया जा सकता, जिसमें कार्यसमिति ने कानून बनाने या शासन सम्बन्धी कार्य में हस्तक्षेप किया हो। यदि उसने प्रान्तीय सरकारों से मादक वस्तु निषेध जैसे समाज-सुधार के कार्य अधिक तेजी से करने का अनुरोध किया तो इसे किसी भी तरह हस्तक्षेप नहीं कहा जा सकता। केवल संघ-योजना तथा पूर्ण स्वाधीनता के सम्बन्ध में ही उसने प्रान्तीय मंत्रिमंडलों से एक प्रस्ताव पास करने का अनुरोध किया था। युद्ध छिड़ने पर कई प्रान्तीय सरकारों-द्वारा एक ही समान मांगें उपस्थित करना आवश्यक हो गया। यदि कार्य-समिति ने कुछ कार्यों के सम्बन्ध में किसी मन्त्री या मंत्रिमंडल के विरुद्ध अनुशासन की कार्रवाई करने पर जोर दिया तो प्रान्तीय शासन-व्यवस्था को शुद्ध और सच्ची रखने के लिए ऐसा आवश्यक था। कांग्रेस ने जिन उपायों से काम लिया उनकी इससे बड़ी और क्या प्रशंसा हो सकती है कि इन उपायों की सबसे बड़ी आलोचक मुस्लिम लीग ने ही बाद में उनका अनुकरण किया।

प्रोफेसर कूपलैंड ने कांग्रेस के सिद्धान्तों को अपनी पुस्तक में जो 'एक दल राष्ट्रीयता' बताया है, यह बहुत ही अनुचित था। प्रत्येक संस्था के कुछ-न-कुछ सिद्धान्त होते हैं। प्रश्न यही है कि उसमें अन्य वर्गों को स्थान है या नहीं? दक्षिण भारतीय लिबरल फेडरेशन में सिर्फ अब्राह्मण थे और ब्राह्मणों को उससे अलग रखा गया था। इसके १६१७ से १६२६ तक इस रूप में बने रहने और १६२१ से १६२६ तक तीन-तीन वर्ष के लिए दो वजारतें कायम करने के बाद मद्रास के गवर्नर लार्ड गोशन के कहने पर उसमें अन्य लोगों को सम्मिलित करने का सिद्धान्त स्वीकार किया गया। कांग्रेस ने कभी भी किसी यूरोपीय या भारतीय को अपनी सदस्यता से वंचित नहीं किया। मुस्लिम लीग, सिख खालसा तथा हिन्दू महासभा में अन्य सम्प्रदाय वालों को स्थान नहीं था। ये संस्थाएं संकुचित होने के बावजूद राष्ट्रीय होने का दावा करती रही हैं। फिर कांग्रेस के सम्बन्ध में विद्वान प्रोफेसर महोदय को क्या आपत्ति है, जिसके द्वार सभी सम्प्रदायों व वर्गों के लिए खुले रहे हैं,

और जो अपने सदस्यों से शान्तिपूर्ण उपायों-द्वारा स्वराज्य प्राप्त करने की शर्त पर जोर देती रही है ? यदि कोई-कोई कांग्रेसजन समानान्तर सरकार की बातें करते रहे तो कारण यह था कि वाइसराय ने प्रान्तीय स्वायत्त शासन के सम्बन्ध में आवश्यक आश्वासन देने से इनकार कर दिया था और ऐसी अवस्था में कांग्रेस के पास अपनी पंचायतें, घरेलू धंधों को प्रोत्साहन देने वाली अपनी संस्थाएं, राष्ट्रीय विद्यालय और स्वदेशी को अग्रसर करने वाली संस्थाएं कायम करने के अलावा और कोई रास्ता नहीं रह गया। इसमें क्या गलती थी ? इसका क्या मजाक उड़ाना चाहिए था ? यह बात ध्यान देने की है कि प्रान्तीय मंत्रिमंडलों के कायम होते ही सितम्बर, १९३८ तथा जून, १९३९ में कांग्रेस ने आदेश निकाला कि स्थानीय कांग्रेस कमेटियां मंत्रिमंडलों या अफसरों को प्रभावित करके साधारण शासन-प्रबंध में हस्तक्षेप करने की चेष्टा न करें। कांग्रेस ने यह भी आदेश निकाला कि स्थानीय कमेटियों को नीति सम्बन्धी विवादास्पद प्रश्नों पर खुले आम मत न प्रकट करना चाहिए। ऐसी हालत में कार्यसमिति पर दोषारोपण किस आधार पर किया जा सकता है ?

१९३८ में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के आगे निम्न प्रस्ताव उपस्थित किया गया और उसके द्वारा पास भी कर दिया गयाः—

"चूंकि कुछ लोग, जिनमें कुछ कांग्रेसजन भी हैं, नागरिक स्वतंत्रता के नाम पर हत्या, आगजनी, लूटपाट तथा हिंसात्मक उपायों-द्वारा वर्ग-युद्ध का समर्थन करने लगे हैं और कुछ समाचारपत्र मिथ्या बातों व हिंसा का प्रचार करने लगे हैं, जिससे पाठकों में हिंसा व साम्प्रदायिक संघर्ष के लिए प्रोत्साहन मिलता है, इसलिए कांग्रेस चेतावनी देती है कि हिंसा करना अथवा उस को प्रोत्साहन देना और मिथ्या बातों का प्रचार करना नागरिक स्वतंत्रता में शामिल नहीं है—इसलिए, अगर्चे नागरिक स्वतंत्रता के सम्बन्ध में कांग्रेस की नीति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है फिर भी अपनी परम्परा के अनुसार वह जन-धन रक्षा-सम्बन्धी कांग्रेसी सरकारों की नीति का समर्थन करेगी।"

यह सत्य है कि कांग्रेस कार्यसमिति ने मध्य-प्रान्तीय मंत्रिमंडल-द्वारा दो बातों की जांच के सम्बन्ध में कोई हस्तक्षेप नहीं कियाः—

(१) मि० शेरीफ-द्वारा स्कूलों के एक इंस्पेक्टर को समय से पहले छोड़ देना, जिसे एक लड़की पर बलात्कार करने के अभियोग में १३ साल के कारावास का दंड दिया गया था, और (२) प्रधानमंत्री-द्वारा कार्यसमिति से सलाह लिये बिना गवर्नर के आगे इस्तीफा दे देना, जिससे कि अपने मंत्रिमंडल के कुछ साथियों से वे अपना पीछा छुड़ा सकें। इन दोनों ही विषयों पर उपयुक्त स्थान पर पूरा प्रकाश डाला गया है।

सामाजिक, कृषि व औद्योगिक सुधार के क्षेत्रों में कांग्रेसी वजारतों की कामयाबियों की चर्चा उठाने से पहले पाठकों को उन कठिनाइयों की एक झलक दे देना अनुचित न होगा, जिनमें उन्हें काम करना पड़ रहा था। उन पर जिम्मेदारियां तो पूरी थीं; किन्तु प्रान्तों का शासन चलाने के अधिकार अपर्याप्त थे। अभी तक उनके सिरों पर द्वैध शासन की तलवार झूल रही थी। जुलाई, १९३७ में जबकि मंत्रियों से पद स्वीकार करने को कहा गया था, कुछ लोग अभी तक पद ग्रहण करने के खिलाफ थे; क्योंकि १९३५ के कानून का संघ-योजना वाला अंश अमल में नहीं लाया गया था। इस तरह मंत्रियों को प्रान्तों में कटी-छुटी शासन-व्यवस्था स्वीकार करने को कहा गया था। जिस प्रकार देश एक और अविभाज्य है उसी प्रकार उसकी शासन-व्यवस्था भी और एक

अविभाज्य होनी चाहिए। केन्द्रीय और प्रान्तीय के रूप में उसका विभाजन तो सिर्फ शासन सम्बन्धी सुविधा के लिए किया जाता है। यदि शासन-व्यवस्था एक और अविभाज्य होनी चाहिए तो आर्थिक प्रबन्ध भी एक और अविभाज्य होना चाहिए। उदाहरण के लिए पाठकों को सम्भवतः स्मरण होगा, कि गांधीजी ने जनवरी, १९३० में लार्ड इरविन को लिखे अपने पत्र में जो ११ मांगें उपस्थित की थी और जिन्हें जेल से मि० स्लोकोम्ब को दी गई अपनी शर्तों में भी सम्मिलित कर लिया गया था उसमें उन्होंने सेना का खर्च घटाकर आधा कर देने, शराब, अफीम और नमक से प्राप्त धन का त्याग करने और युद्ध में जबरन सम्मिलित करने के विरुद्ध मांगें भी शामिल कर ली थीं। अवस्था यह थी कि गांव वालों पर युद्ध के लिए धन देने को, नाववालों पर नाव देने को, किसानों को फसल देने को और मालिकों से मकान खाली करने को दबाव डाला जा रहा था और इस सम्बन्ध में कोई कुछ भी नहीं कर सकता था'। अब कांग्रेस या तो नेतृत्व से हाथ खींचकर कूटनीति का आसरा लेती और या अपना नाम-निशान मिटा दिये जाने का खतरा उठाते हुए साहस पूर्वक आन्दोलन में कूद पड़ती। उन दिनों सैनिक व्यय लगभग ५० करोड़ था और उसमें आधी रकम घटने पर २५ करोड़ की बचत होती और शराब (१७ करोड़), नमक (७ करोड़ व) अफीम (१ करोड़) की आमदनी बन्द होने पर हानि भी इतनी ही होती। परन्तु एक कठिनाई थी। जहां एक तरफ नमक और अफीम केन्द्रीय विषय थे वहां शराब प्रान्तीय विषय थी। उधर सेना केन्द्रीय विषय थी। इसलिए जब तक मंत्रिमंडलों का केन्द्रीय व प्रान्तीय क्षेत्रों में समान रूप से नियंत्रण न रहे तब तक इस प्रकार का सुधार होना असम्भव था। इसी प्रकार गांधीजी ने भूमि की मालगुजारी और सरकारी कर्मचारियों के वेतन घटाकर आधे कर देने का भी सुझाव उपस्थित किया था। मद्रास प्रान्त में इस प्रकार हिसाब बराबर हो सकता था। परन्तु कठिनाई यह थी कि जहां मालगुजारी की वसूली प्रान्तीय विषय थी वहां नौकरशाही के वेतन सुरक्षित विषय के अंतर्गत थे और उनके सम्बन्ध में प्रान्तीय मंत्री कुछ भी दखल नहीं दे सकते थे। हमने यह लम्बा उदाहरण यह दिखाने के लिए दिया है कि कांग्रेसी व गैर-कांग्रेसी दोनों ही प्रकार के मंत्रिमंडल किस प्रकार परेशान थे, उनके अधिकार कितने सीमित थे और वे कितने सहानुभूति के पात्र थे। हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि नौकरशाही ने कांग्रेसी व गैर-कांग्रेसी मंत्रिमंडलों की कठिनाई में किये कार्य के लिए उनकी प्रशंसा ही की, बुराई नहीं। परन्तु जनता की आशाएं बहुत बढ़ गई थीं। किसान कर में कमी चाहते थे, मजदूर अपनी अवस्था में सुधार के इच्छुक थे और कर्जदार कर्ज के भार में कमी की आशा लगाये थे। फिर किसान-संस्थाएं आन्दोलन कर रही थीं। उनपर कम्युनिस्टों का प्रभाव था और उन्हींकी प्रेरणा से मजदूरों के समान किसानों ने भी अपनी मांगें बढ़ा रखी थीं। वे उन्हें आंशिक रूप से राजनैतिक ढंग की हड़तालें करने के लिए भी उकसा रहे थे। साथ ही कांग्रेसी वजारतों को साम्प्रदायिक उपद्रवों व खाकसारों के हमलों का भी सामना करना पड़ रहा था। क्या उन्हें दमनकारी कानूनों का आश्रय लेना था, जिनमें से कुछ, जैसे बम्बई का इंडियन प्रेस इमर्जेन्सी पावर्स ऐक्ट, क्रिमिनल ला अमेंडमेंट ऐक्ट और सबसे महत्वपूर्ण क्रिमिनल प्रोसीजर कोड की धारा १४४ अभी तक कायम थे? समाचारपत्र-सम्बन्धी कानून का बम्बई में, क्रिमिनल ला अमेंडमेंट ऐक्ट का हिन्दी-विरोधी आन्दोलनकारियों के विरुद्ध मद्रास में और धारा १४४ का भारत भर में सर्वत्र ही प्रयोग किया गया। मद्रास में धारा १४४ के अनुसार श्री बाटलीवाला पर मुकदमा चलाया गया, जिसमें उन्हें कारावास का दंड मिला और हाईकोर्ट ने भी इस फैसले की पुष्टि की; किन्तु बाद में कारावास की अवधि समाप्त होने से पहले ही

अभियुक्त को रिहा कर दिया गया । कानून भंग करने वालों की गांधीजी ने खुद खबर ली ! अक्टूबर, १९३७ में आपने 'हरिजन' में लिखा था. "यह कहा गया है कि कांग्रेसी मंत्रिमंडल अहिंसा के पुजारी होने के कारण ऐसी कानूनी कार्रवाई का आसरा नहीं ले सकते जिससे अभियुक्त को दंड मिलता हो । अहिंसा के सम्बन्ध में मेरी अथवा कांग्रेस की यह विचारधारा नहीं है । मंत्रिमंडल हिंसा के लिए उकसाने तथा उग्र भाषणों की उपेक्षा नहीं कर सकते ।"

इसके अलावा साधारण कांग्रेसजन ने कालेजों, विश्वविद्यालयों, डाक बंगलों तथा सरकारी व स्थानीय संस्थाओं की इमारतों पर राष्ट्रीय झंडा फहराने के लिए जो असाधारण उत्साह दिखाया उससे कांग्रेसी मंत्रियों की परेशानी बढ़ गई । इस पर उसी प्रकार आपत्ति की गई जिस प्रकार व्यवस्थापिका सभाओं का अधिवेशन आरम्भ होने पर 'वंदे-मातरम' के गायन पर आपत्ति की गई थी । वंदेमातरम तथा तिरंगा झंडा, दोनों पर जो रोक लगी उससे कांग्रेसियों को बड़ी निराशा हुई; क्योंकि पद मिलने पर कांग्रेसियों द्वारा लगाये गये इस प्रतिबन्ध को वे अस्वाभाविक मानते थे । साम्प्रदायिक उपद्रव भी कांग्रेसी मंत्रियों की अशान्ति का कारण थे । प्रोफेसर कूपलैंड अपने ग्रन्थ "इंडियन पालिटिक्स" में लिखते हैं, 'अक्टूबर, १९३७ के आरम्भ तथा सितम्बर, १९३९ के मध्य सम्पूर्ण कांग्रेसी प्रान्तों में ५७ गम्भीर साम्प्रदायिक दंगे हुए, जिनमें से १५ बिहार में १४ संयुक्तप्रान्त में, ११ मध्यप्रान्त में, ८ मद्रास में, ७ बम्बई में, १ उड़ीसा में हुए और १ सीमाप्रान्त में हुआ । कुल १७०० व्यक्ति आहत हुए जिनमें से १३० की जानें गईं । इसी अवधि में गैरकांग्रेसी प्रान्तों में २८ गम्भीर दंगे हुए, जिनमें से पंजाब में १७, बंगाल में ७, आसाम में ३ और १ सिंध में हुआ । लगभग ३०० व्यक्ति आहत हुए जिनमें से ३९ व्यक्तियों की जानें गईं ।" इन दंगों के साथ हत्याओं, आगजनी, लूटपाट और रक्तपात का भी बाजार गर्म रहा । दंगे जबलपुर, इलाहाबाद, बनारस, गया, बरार, शोलापुर, बम्बई व मद्रास में हुए ।

कांग्रेसी मंत्रिमंडलों पर मजदूरों की भी कोई खास कृपा नहीं रही । अहमदाबाद में मजदूरों की हड़ताल नवम्बर १९३७ में आरम्भ हो गई । यहां की ट्रेड यूनियन पहले महात्मा गांधी के नेतृत्व में विश्वास रखती थी; किन्तु १९३७ से उसमें कम्युनिस्टों का प्रभाव बढ़ गया । बाद में ट्रेड यूनियन पर फिर से नियंत्रण कर लिया गया । बम्बई व कानपुर में कई खतरनाक उपद्रव हुए. और भी बुरी बात यह हुई कि बम्बई-सरकार ने हड़ताल तथा मिलों की तालेबंदी रोकने के लिए जो 'औद्योगिक झगड़ा कानून' बनाया था उसके विरुद्ध प्रदर्शन हुए । बम्बई सरकार ने यह कानून बड़ी छान-बीन के बाद पास किया था । परन्तु कम्युनिस्टों ने इस बिना पर हड़ताल कराई कि उसके कारण मजदूरों के अधिकारों पर कुठाराघात होता है । बम्बई की ७७ मिलों में से १७ में हड़तालें हुईं । परन्तु कांग्रेसी मंत्रिमण्डल ने दृढ़ता से काम लिया और उपद्रव दबा दिये गये । १९३७ तथा १९३८ में कानपुर में फिर हड़तालें हुईं । प्रान्तीय सरकार ने एक श्रम जांच समिति नियुक्त की और उसकी रिपोर्ट को मंजूर कर लिया । सिफारिशें जितनी मिल मालिकों को अवांछनीय जान पड़ीं उतनी ही मजदूरों को भी; किन्तु अंत में समझौता हो गया । फिर किसानों की पुरानी आर्थिक व कृषि-सम्बन्धी समस्याएं हल करने को पड़ी थीं । किसान-आन्दोलन ने विशेषकर बिहार में कुछ गम्भीर रूप धारण कर लिया । फसल लूटी और नष्ट की गई । गोकि दिसम्बर १९३७ में ही भूमिकर बिल पास कर दिया गया था फिर भी स्वयंसेवकों की कार्रवाई और लाल झंडे का जोर बढ़ता गया । संयुक्तप्रान्त में भी इसी प्रकार के प्रदर्शन हुए, गोकि वे हिंसापूर्ण नहीं थे । भूमिकर-सम्बन्धी नई शर्तों के कारण किसानों को लगान न देने के लिए प्रोत्साहन मिला ।

परन्तु परिस्थिति मंत्रिमण्डल के नियंत्रण में थी और उसके अनुरोध करने पर किसानों ने जमींदारों को लगान दे दिया।

मद्रास और बम्बई के राजनैतिक बंदियों की रिहाई होने पर भी संयुक्तप्रान्त में १५ और बिहार में १२ बंदी रह गये। इनमें से कुछ ने अनशन भी आरम्भ कर दिया था। तब दोनों प्रान्तों के गवर्नरों व मंत्रिमण्डल के बीच झगड़ा उठ खड़ा हुआ। गवर्नर-जनरल ने अपने विशेष अधिकारों के आधार पर हस्तक्षेप किया और कहा कि संयुक्तप्रांत व बिहार में राजनैतिक बंदियों की सामूहिक रिहाई का परिणाम पड़ोसी पंजाब व बंगाल प्रान्तों के लिए ठीक न होगा जिनमें उग्रवादी कैदी काफी अधिक संख्या में हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि गवर्नरों ने मंत्रियों के प्रति द्वेषपूर्ण व्यवहार किया; किन्तु इसमें कुछ संदेह नहीं है कि उनके व्यवहार के कारण झगड़ा बढ़ गया। जनता समझती थी कि जिस प्रकार राजद्रोह के लिए मुकदमा चलाना या भूमि-सम्बन्धी दमनकारी कानूनों पर अमल करना कांग्रेसी सरकारों के लिए अनुचित बातें थीं उसी प्रकार उनके लिए अपनी अधीनता में राजनैतिक बंदियों को बनाये रखना एक अक्षम्य अपराध या कर्तव्य का उल्लंघन था। गवर्नरों का ख़याल था कि उन्हें भारत अथवा उसके किसी भाग में अमन व शान्ति बनाये रखने के लिए सतर्क रहना चाहिए। इसी दृष्टि से गवर्नरों ने बंदियों की रिहाई की अनुमति देने से इनकार कर दिया। तब दोनों प्रधान मन्त्रियों ने इस्तीफे दे दिये। जब हरिपुरा कांग्रेस ने इस प्रश्न को उठाया तो गवर्नर-जनरल झुक गये और बंदियों को दो महीनों में छोड़ दिया गया। संयुक्तप्रान्त में बारह फरवरी, १९३८ में और तीन इसी वर्ष मार्च के महीने में रिहा कर दिये गये जबकि बिहार में दस तुरन्त और एक के सिवाय शेष सभी मार्च, १९३८ के मध्य में रिहा किये गये।

नये मंत्रियों के आगे एक और कठिनाई थी। गवर्नरों के विशेषाधिकारों के अतिरिक्त मंत्रिमंडलों के पीछे स्थायी सेक्रेटरी थे, जिन्हें सिर्फ लम्बा अनुभव ही नहीं था बल्कि कानून के अनुसार उनकी स्थिति भी सुरक्षित थी। वे मंत्रियों के अनजाने में ही गवर्नरों से सीधे मिल सकते थे और उन्हींके हस्ताक्षर से सरकार के सभी आदेश निकाले जाते थे। कम-से-कम बम्बई में यह परम्परा कायम कर ली गई थी कि यदि कोई सेक्रेटरी गवर्नर से मिलता था तो गवर्नर से अपनी बातचीत का सार उसे पेश करना पड़ता था। गवर्नर ने भी मंजूर कर लिया कि जिन विषयों में उसे अपने अधिकार से कार्रवाई करने का हक है उनमें भी वह मंत्री से अवश्य सलाह लेगा। यह भी सच था कि अनुशासन-सम्बन्धी जिस कार्रवाई के विषय में सभी मंत्री मिलकर सिफारिश करते थे, उसे कार्यान्वित करने के अलावा गवर्नर के पास और कोई चारा नहीं रह जाता था। परन्तु जब मद्रास प्रान्त में विज़गापटम के जिला मजिस्ट्रेट पर जांच कमीशन ने चित्तीवलसा-कारखाना गोलीकांड की जिम्मेदारी निर्धारित की तो गवर्नर ने उसका उटकमंड के लिए तबादला ही मंजूर किया। परन्तु जिला मजिस्ट्रेट के विरोध करने पर उसे मलाबार और वहांके लिए भी विरोध करने पर बेलारी भेजने का निश्चय किया गया और ये दोनों ही जिले श्रेष्ठता की दृष्टि से प्रान्त में दूसरे और तीसरे नम्बर के माने जाते थे।

कांग्रेसी मंत्रियों को ऐसी कठिनाइयों व बाधाओं के बीच अपना सामाजिक आर्थिक व कृषि-सुधार-सम्बन्धी कार्यक्रम आगे बढ़ाना पड़ता था। कृषि के सिलसिले में कांग्रेसी मंत्रियों ने सबसे पहले पट्टे की अवधि तथा जमींदारों व किसानों के मध्यस्थों का सवाल हाथ में लिया। जब कि बम्बई में सिर्फ रैयतवारी प्रणाली थी, मद्रास में कुछ भूमि इस्तमरारी बंदोबस्त पर थी और यही

हाल उड़ीसा में भी था। उधर बंगाल, बिहार तथा संयुक्तप्रान्त मुख्यतः इस्तमरारी बंदोबस्त या आधे इस्तमरारी बंदोबस्त वाले क्षेत्र थे।

मद्रास में मालमंत्री के प्रस्ताव करने पर 'मद्रास एस्टेट लैंड एक्ट' की जांच करने के लिए दोनों धारासभाओं के सदस्यों की एक समिति नियुक्त की गई। इस समिति के कार्य के परिणामस्वरूप एक विस्तृत रिपोर्ट तैयार की गई जिसमें इस्तमरारी बंदोबस्त पर अधिकार पूर्वक विचार किया गया। रिपोर्ट के साथ एक बिल भी तैयार किया गया और उसे व्यवस्थापिका-सभा के सम्मुख उपस्थित किया गया। निम्न धारा सभा ने तो मालमंत्री के प्रस्ताव करने पर यह सिफारिश करने का निश्चय किया कि समिति के बहुमत की रिपोर्ट के आधार पर कानून बनाया जाय। परन्तु ऐसा होने से पहले ही कांग्रेसी मंत्रिमंडल ने इस्तीफा दे दिया और इस्तमरारी बंदोबस्त के किसानों के कष्ट दूर करने की बात बीच में ही रह गई। कहा जाता है कि कांग्रेसी मंत्रिमंडल ने एक विशेष अफसर प्रस्तावों की जांच करने और उन्हें बिल में सम्मिलित करने के लिए नियुक्त किया था; किन्तु इस अफसर ने मुख्य सिफारिशों के विरुद्ध अपना निर्णय दिया। सच तो यह था कि जहां मंत्री प्रगतिशील विचारों के थे वहां अफसर उन्नति में बाधा डालते थे। साथ ही एक मंत्री ने भी, जो खुद एक जमींदार था, मुख्य सिफारिश के विरुद्ध एक नोट लिखा था।

जहाँ तक रैयतवारी भूमि का सम्बन्ध था, मालगुजारी तथा आबपाशी की दरें तीन जिलों के सम्बन्ध में १९२९ में तय होने को थीं; किन्तु इन सिफारिशों को मुल्तवी रखा गया। मांटफोर्ड जमाने के मन्त्रिमण्डल ने कृष्णा तथा गोदावरी जिलों के सम्बन्ध की सिफारिशों को भी स्थगित रखा था। फिर अन्तर्कालीन मन्त्रिमण्डल ने मि० मार्जोरी बैंक्स की अधीनता में एक समिति नियुक्त की, किन्तु अन्तर्कालीन मन्त्रिमण्डल के इस्तीफे के कारण इस समिति की सिफारिशें प्रकाशित नहीं की गईं। तब कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल उन सिफारिशों को अमल में लाया। इन सिफारिशों के अमल में आने पर प्रान्त भर में ७५ लाख रुपये की छूट मिलनी थी, जिसका किसानों के लिए असाधारण महत्त्व था; किन्तु १९४३ में सलाहकार सरकार ने इस छूट को रद्द कर दिया।

(२) मादक वस्तु-निषेध

इस सुधार के लिए मद्रास के प्रधानमन्त्री विशेष रूप से उत्सुक थे। उन्होंने व्यवस्थापिका-सभा में आबकारी कानून का संशोधन करके, जिस से अदालतें भी सामाजिक सुधार के कार्य में हस्तक्षेप न कर सकें, सलेम जिले से मादक वस्तु-निषेध का कार्य आरम्भ किया। फिर बाद में कार्यक्रम का विस्तार उत्तरी अर्काट, चित्तूर, कुद्दपा जिलों तक कर दिया गया और इससे लगभग १ करोड़ की हानि का अनुमान किया गया। इस हानि को पूरी करने तथा आगे होने वाली हानि का अनुमान करके एक बिक्री-कर लगाया गया। इस बिक्री-कर से पहले ही साल १ करोड़ की आय हुई; किन्तु १९४५ तक तो इस साधन से प्राप्त होने वाली आय तिगुनी हो गई।

(३) किसानों को कर्ज सम्बन्धी सहायता

१९३७ में ही किसानों के कर्जों की अदायगी रोकने के लिए एक आर्डिनेंस निकालने का विचार किया जाने को था, किन्तु बाद में यह विचार त्याग कर व्यापक आधार पर कर्ज सम्बन्धी सहायता विषयक एक कानून पास किया गया और कानून-सम्बन्धी प्रबन्ध करने के लिए प्रांत-भर में बोर्ड कायम किये गये। परिणाम यह हुआ कि दिसम्बर, १९४४ को समाप्त होने वाले

८२ महीनों में ११८.८ लाख रुपये के कर्ज को घटाने के लिए अर्जियां आईं और उसे घटाकर ४४८.०६ लाख कर दिया गया। कर्ज में यह कमी इसके अलावा हुई, जो कानून के अन्तर्गत निजी तौर पर कर्ज निबटाने के लिए हुई थी।

(४) शिक्षा

भारत भर में मद्रास का शिक्षा-सम्बन्धी बजट सबसे विशाल था। यह वृद्धि मुख्यतः स्त्रियों व हरिजनों की शिक्षा के विशेष प्रबन्ध के कारण हुई।

मद्रास सरकार ने बुनियादी शिक्षा के प्रसार में भी खास दिलचस्पी ली। अक्तूबर १९३७ में वर्धा में एक राष्ट्रीय शिक्षा-सम्मेलन हुआ था जिसमें प्रस्ताव पास करके सुझाव उपस्थित किया गया कि पहले सात वर्ष तक बालक की शिक्षा किसी शारीरिक या उत्पादन-कार्य में केन्द्रित होनी चाहिए। मद्रास-सरकार ने बुनियादी शिक्षा का एक ट्रेनिंग स्कूल दक्षिण में खोला और उत्तर में एक दूसरे स्कूल को आर्थिक सहायता प्रदान की।

(५) घरेलू उद्योगों को सहायता

करघे पर बने कपड़े को प्रोत्साहन देने के लिए नियम बनाया गया कि मिल का बना कपड़ा बेचने वालों को लाइसेंस लेना पड़ेगा और करघे का कपड़ा इस प्रतिबंध से मुक्त कर दिया गया। अखिल भारतीय चरखा-संघ के लिए २ लाख रुपये वार्षिक की रकम मंजूर की गई। एक विशेष बोर्ड के जरिये दूसरे घरेलू उद्योगों को भी सहायता प्रदान की गई। मद्रास में एक केन्द्रीय म्यूजियम खोला गया।

(६) हरिजनों की अवस्था में सुधार

दलित जातियों का यह दावा स्वाभाविक था कि उनकी सामाजिक, धार्मिक व आर्थिक अवस्था में सुधार के लिए सरकार को विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। इसलिए उनके रहने का नया प्रबन्ध किया गया अथवा पुराने मकानों में सुधार किया गया। साथ ही लड़के व लड़कियों के छात्रावास के लिए भी अच्छी रकमें दी गईं।

'मलाबार-मंदिर-प्रवेश कानून' पास किया गया, जिसमें यह विधान था कि यदि किसी ताल्लुका के सवर्ण हिन्दू दलित जातियों के मन्दिर-प्रवेश का बहुमत से समर्थन करें तो उस ताल्लुके के मंदिर दलित-जातियों के लिए खोल दिये जायं। इसी प्रकार एक दूसरा कानून 'मद्रास टेम्पिल ऑथराइज़ेशन एण्ड इंडेम्निटी' नाम से पास किया गया। इस कानून-द्वारा मन्दिर के संरक्षकों को अधिकार दिया गया कि सरकार की स्वीकृति मिलने पर वे चाहें तो मन्दिर को हरिजनों के लिए खोलने का निश्चय कर सकते हैं। इस कानून को प्रांत के किसी भी मंदिर पर लागू किया जा सकता था।

नागरिक प्रतिबंधों को एक दूसरे कानून-द्वारा हटाने का प्रयत्न किया गया। इस कानून के पास होने पर हरिजनों को किसी सार्वजनिक पद पर नियुक्त करने, किसी सार्वजनिक स्थान से जल लेने, सार्वजनिक मार्ग से जाने, सार्वजनिक गाड़ी पर बैठने अथवा किसी ऐसी गैर-धार्मिक संस्था में भाग लेने से जिसमें साधारण हिन्दू जनता भाग ले सकती है अथवा जो साधारण हिंदू जनता के लिए है अथवा जिसका व्यय सार्वजनिक कोष से चलता है, रोकना असम्भव हो जायगा। इस कानून में यह भी कहा गया था कि हरिजनों पर लगे किसी नागरिक प्रतिबन्ध को कोई अदालत न मानेगी। इसी कानून के अन्तर्गत मदुरा का प्रसिद्ध मीनाक्षी मंदिर खोल दिया गया।

अन्य सुधार-कार्यों में (१) गांवों में जल की उपलब्धि के लिए उत्तम प्रबंध करने के उद्देश्य

से २५लाख की एकमुश्त तथा १०लाख की वार्षिक मंजूरी,(२)ऑनरेरी मेडिकल सर्विस का संगठन, (३)श्रम-विभाग-द्वारा बेकारों के आंकड़ों का संकलन (४)सहकारिता की जांच के सम्बन्ध में एक समिति नियुक्त करना, और (५)सार्वजनिक उपयोगिता के उद्योगों पर राज्य का अधिकार रखना भी थे।

बम्बई

बम्बई में जमींदार नहीं हैं। इसलिए इस्तमरारी बंदोबस्त ने वहांके कांग्रेसी मंत्रिमंडल के कार्य में बाधा नहीं डाली। किसानों के कर्ज का भार कम करने के सम्बन्ध में एक कानून इस प्रान्त में भी पास हुआ। इस कानून में सहकारिता समितियों की मध्यस्थता से कर्ज के निबटारे की बात भी सम्मिलित थी। कांग्रेसी सरकार ने एक भूमि-सम्बन्धी कानून भी पास किया। बम्बई के प्रान्तीय ग्राम-सुधार-बोर्ड की योजना भी काफी लोकप्रिय हुई। बम्बई-पंचायत कानून के अंतर्गत १,५०० पंचायतें कायम हुईं, जिन्हें फौजदारी व दीवानी के कितने ही अधिकार दिये गये। मद्रास की तरह बम्बई में भी डाक्टरों को सहायता देकर बसाने की, देहाती सड़कों के सुधार की और जल-उपलब्ध करने की योजनाएं जारी की गईं।

परन्तु बम्बई-सरकार के सबसे महत्वपूर्ण कार्य 'मादक वस्तु निषेध योजना' व श्रम-सम्बन्धी कानून थे। बम्बई में 'मादक वस्तु निषेध योजना' केन्द्रप्रधान थी, जबकि मद्रास में वह जिला-प्रधान थी। मद्रास में वह जिलों से आरम्भ हुई जबकि बम्बई में वह राजधानी से आरम्भ हुई। कांग्रेसी मंत्रिमंडल की सफलता का महत्व कम करने वाले सिर्फ यही नहीं कहते कि उसकी सभी सुधार-योजनाओं की कल्पना अंतःकालीन सरकारें पहले ही कर चुकी थीं, बल्कि वे यह भी कहते थे कि कांग्रेस ने 'मादक वस्तु निषेध' सम्बन्धी अपना खब्त पूरा करने के लिए लोगों पर १६५ लाख का कर लाद दिया। बम्बई-सरकार ने मकान के कर में संशोधन किया जिसकी आधी शताब्दी पहले कल्पना तक नहीं की जा सकती थी। सत्ताधारियों के स्वार्थ इतने अधिक थे कि बम्बई की कांग्रेसी सरकार की 'मादक वस्तु निषेध योजना' वास्तव में भारी सफलता ही कही जायगी। आय में जो कमी हुई उसे सरकार ने मकानों के कर में वृद्धि करके पूरा किया। इस कर-वृद्धि के कारण लोगों का चिल्लाना स्वाभाविक था। इमारतों के मुसलमान मालिकों तथा शराब के पारसी ठेकेदारों पर शराबबंदी का असर पड़ा और वे गुल-गपाड़ा मचाने लगे। परन्तु मंत्रिमंडल ने योजना पर कड़ाई से अमल किया और 'मादक वस्तु निषेध' के पहले दिन असाधारण साहस और अभूतपूर्व संगठन-कौशल का परिचय दिया।

बम्बई प्रान्त की धारा-सभा ने जो 'औद्योगिक झगड़ा कानून' पास किया वह वास्तव में एक असाधारण कानून था। उसे गहन अध्ययन तथा श्रमपूर्ण प्रयत्न का परिणाम कह सकते हैं गोकि श्रम-सम्बन्धी अदालत में औद्योगिक झगड़ों के निबटारे की व्यवस्था पहले से थी, फिर भी नये कानून-द्वारा औद्योगिक झगड़ों के निबटारे को और अधिक प्रोत्साहन दिया गया। बम्बई सरकार ने बुनियादी शिक्षा योजना को लोकप्रिय बनाने में खूब दिलचस्पी ली और इस दिशा में संयुक्तप्रान्त व बिहार के साथ वह काफी आगे बढ़ गई। १९३९ की गर्मियों तक बुनियादी शिक्षा चुने हुए केन्द्रों के ५९ विद्यालयों में तथा २८ अन्यत्र फैले हुए विद्यालयों में जारी कर दी गई। वयस्क शिक्षा के लिए ४०,००० रु० से एक बोर्ड कायम किया गया जिसकी देखरेख में ६१५ वयस्क विद्यालय खोले गये। इन विद्यालयों में २१,००० व्यक्ति शिक्षा प्राप्त करते थे।

बम्बई-सरकार की एक महान् सफलता उन लोगों की जमीनें वापस दिलाना था जिनसे १९३०-३२ के सत्याग्रह-आन्दोलन में जमीनें छीनकर सरकार ने अन्य लोगों को बेच दी थी।

इसके लिए प्रान्तीय सरकारों को एक विशेष कानून बनाना पड़ा।

संयुक्तप्रान्त

किसानों के अधिकारों में सुधार की मांग सबसे अधिक संयुक्तप्रान्त व बिहार से आई थी। प्रान्तीय सरकार ने धारा-सभा में एक विशाल बिल उपस्थित किया जिसमें लगभग ३०० धाराएं थीं। बिल का उद्देश्य भूमि पर किसानों का अधिकार बढ़ाना, सरकार-द्वारा लगान तय करना, तथा काश्तकारों पर लगाये गये कितने ही प्रतिबंधों को हटाना था। मंत्रिमंडल के इस्तीफा देने के समय यह बिल वाइसराय के आगे उनके हस्ताक्षरों के लिए पहुँचा था और कुछ दिक्कत के साथ ही इस पर उनकी स्वीकृति मिल सकी। मादक वस्तु निषेध योजना से ३७ लाख रुपये की हानि हुई जबकि प्रान्त का कुल राजस्व १४३ लाख था।

निरक्षरता के विरुद्ध जोरशोर से आन्दोलन शुरू किया गया। १९४० तक २,३०,००० वयस्क व्यक्ति, जिनमें ६००० स्त्रियां भी थीं, साक्षर बनाये गये। ७००० व्यक्तियों ने अपनी इच्छा से अध्यापन का कार्य किया और इन्हें किये हुए काम के अनुसार पारितोषिक भी दिये गये। इलाहाबाद में एक बेसिक ट्रेनिंग कॉलेज स्थापित किया गया और उसके साथ एक स्कूल भी सम्बद्ध कर दिया गया। जिला बोर्ड के अध्यापकों को भी ट्रेनिंग दी गई जिससे वे दूसरे स्कूलों को बुनियादी स्कूल बना सकें। ग्राम की एक विस्तृत योजना अमल में लाई गई। ग्राम-सुधार का विभाग एक अवैतनिक डाइरेक्टर की अधीनता में कायम किया गया। गांवों में काम करने के लिए १,२०० वैतनिक कार्यकर्ता रखे गये।

बिहार

संयुक्तप्रान्त की तरह बिहार में भी भूमि-सम्बन्धी कानूनों के सुधार की मांग जोरों पर थी। एक कानून पास किया गया जिसके अनुसार लगान को घटाकर १९११ के स्तर तक लाया गया और लगान की बकाया रकमों को काफी कम कर दिया गया। जमींदार लगान की वसूली के लिए जिन दमनकारी उपायों से काम लेते थे उन पर प्रतिबंध लगा दिये गये। कुछ विशेष कक्षा के काश्तकारों को लगान न देने की अवस्था में भी बेदखल नहीं किया जा सकता। उन्हें बेदखल सिर्फ उसी हालत में किया जा सकता है जब वे जमीन को खेती के अयोग्य बना दें। किसानों का कर्ज कम करने के लिए जो कानून पास किया गया उसके परिणामस्वरूप ९ प्रतिशत से अधिक ब्याज पर प्रतिबंध लगा दिया गया।

प्रान्त में आंशिक रूप से मादक वस्तु निषेध का कार्यक्रम अमल में लाया गया जिसके कारण कुल ११६ लाख के प्रान्तीय राजस्व में से १३ लाख की हानि हुई।

मद्रास की तरह बिहार में भी एक हरिजन मंत्री था। सभी सार्वजनिक स्कूलों व अन्य शिक्षा-संस्थाओं को हरिजन विद्यार्थी दाखिल करने के लिए विवश किया गया। १९३८ में एक बुनियादी शिक्षा बोर्ड कायम किया गया। पटना ट्रेनिंग स्कूल को बुनियादी ट्रेनिंग केन्द्र में परिणत कर दिया गया। १९३९ में प्रान्त के एक निर्धारित प्रदेश में ४० बुनियादी शिक्षा स्कूल कायम किये गए जबकि संयुक्तप्रान्त में बुनियादी स्कूल प्रान्त भर में इधर-उधर फैले हुए थे। बुनियादी शिक्षा के क्रमशः जारी करने का कार्यक्रम अमल में लाया गया और इसके निरीक्षण का भी समुचित प्रबंध किया गया। मंत्रिमंडल के इस्तीफे के समय योजना का कार्य काफी बढ़ चुका था। १९३८ में शिक्षामंत्री ने वयस्क साक्षरता के आन्दोलन का श्रीगणेश किया और इस कार्य के लिए उपलब्ध अध्यापकों व विद्यार्थियों की सेवा से लाभ उठाया। इस तरह अप्रैल, १९३९ तक प्रान्त भर में

वयस्क शिक्षा के १४,२५१ केन्द्र कायम हो गये, जिनमें ३,१६,००० व्यक्ति शिक्षा प्राप्त करने लगे। १६४०-४१ में वयस्क-शिक्षा-शाखा पर २,०८,००० रु० खर्च हुए जबकि पहले वर्ष में १०,००० रु० और दूसरे वर्ष में ८०,००० रु० खर्च हुए थे।

मध्यप्रान्त

इस प्रान्त को 'विद्या मंदिर योजना' के कारण विशेष ख्याति प्राप्त हुई। इस योजना की आवश्यक बात यह थी कि स्कूल की अपनी जमीन और अपनी इमारत होनी चाहिए। जहांतक सम्भव हो, जमीन दान के रूप में मिलनी चाहिए। स्कूल का खर्च तैयार की हुई वस्तुओं की बिक्री तथा जमीन की आमदनी से चलना चाहिए। १६३६ में ६३ विद्या मंदिर चल रहे थे और उनमें २,४६६ विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। कुल खर्च ६२,००० रु० था जबकि जमीन के टुकड़ों से ही आमदनी लगभग ५१,००० रु० थी।

मध्यप्रान्त में जेल की भी एक योजना जारी की गई जिसमें राजनैतिक बंदियों की कक्षा पृथक् थी। परन्तु यह कानून व्यक्तिगत सत्याग्रह के दिनों भंग कर दिया गया। कर्ज कम करने तथा किसानों के सम्बन्ध का सुधार-कार्य भी मध्यप्रान्त में आरम्भ किये गए।

उड़ीसा

१६३८ में एक बिल पास हुआ जिसके अनुसार प्रान्त के एक भाग में मालगुजारी की दरें निकटवर्ती जमींदारी क्षेत्र की दरों के बराबर कर दी गईं। प्रति रुपये दो आना जमींदार को हरजाने के रूप में भी मिलना था। इसके कारण कुछ जमींदारों को ५० प्रतिशत से ६० प्रतिशत तक हानि होती थी। परन्तु इस बिल को गवर्नर-जनरल की स्वीकृति नहीं मिली और इसी बीच मंत्रिमंडल ने इस्तीफा दे दिया।

पद-ग्रहण करने के बाद कांग्रेसी मंत्रिमंडलों को मालगुजारी में काफी छूट देनी पड़ी। मद्रास में यह छूट ७५ लाख की दी गई; किन्तु इसके बावजूद भूमि से प्राप्त होनेवाली कुल मालगुजारी में ११ प्रतिशत की वृद्धि हुई। आसाम में कांग्रेसी मंत्रिमंडल कुछ देर से बना। यहां पूर्ववर्ती मंत्रिमंडल २५ लाख रुपये की छूट पहले ही दे चुका था किन्तु कांग्रेसी मंत्रिमण्डल ने उसे बढ़ाकर ४० लाख कर दिया, जो प्रांत के कुल राजस्व का अष्टमांश था। बम्बई में छोटे जमींदारों को मालगुजारी में काफी छूट देने के बावजूद एक 'लैंड रेवेन्यू एमेंडमेंट ऐक्ट' पास किया गया जिसके अनुसार मालगुजारी बढ़ाने का काम साधारण अफसरों से छीन लिया गया।

१६३६-३७ में भारत भर में आबकारी से १४.०७ करोड़ रु० की आय हुई। कांग्रेसी प्रांतों में कम या अधिक मात्रा में मादक वस्तु निषेध का कार्यक्रम अमल में लाया गया जिसके कारण बजट में कुल १.५ करोड़ रु० की हानि का अनुमान किया गया जब कि बंगाल में २१ लाख की वृद्धि का अनुमान किया गया और पंजाब में बिक्री-कर से ७ लाख रु० के राजस्व का अनुमान किया गया। मद्रास ने बिक्री-कर ½ प्रतिशत से आरम्भ किया जिससे १६३६-४० में ३४ लाख की और १६४०-४१ में ७२ लाख की आय हुई। अप्रैल १६४० से सलाहकार सरकार ने उसे घटाकर आधा कर दिया; किन्तु फिर बाद में उसे बढ़ाकर १ रु० सैकड़ा कर दिया।

फिर प्रायः प्रत्येक प्रांत ने चुनी हुई वस्तुओं जैसे तमाखू, मोटर-स्पिरिट, मशीनी तेल, बिजली आदि पर बिक्री-कर लगाया। बम्बई ने कपड़े के सम्बन्ध में ऐसा कर लगाने का कानून पास किया; किन्तु कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल के इस्तीफा देने पर उसे वास्तव में लगाया नहीं गया।

कृषि-आयकर लगाने का प्रयोग केवल आसाम (२५ लाख) व बिहार (१५ लाख)

में ही किया गया; किन्तु दर अधिक-से-अधिक प्रति रुपया २॥ आने तक थी।

बम्बई व अहमदाबाद में वार्षिक किराये के १० प्रतिशत की दर से एक कर वहांकी शहरी अचल सम्पत्ति पर लगाया गया। यह कर म्युनिसिपल दरों के अलावा था।

मध्यप्रांत में २८ रु० और ३० रु० वार्षिक का कर नौकरियों, पेशों तथा रोजियों पर १९३७–३८ में लगाया गया। संयुक्त प्रांत में यह कर २,५०० वार्षिक से अधिक वेतनों पर १० प्रतिशत लगाया जाने वाला था; किन्तु गवर्नर-जनरल ने कानून को अपने सुरक्षित क्षेत्र में ले लिया। साथ ही पार्लमेंट ने कानून में एक नई धारा १२४–ए जोड़ दी जिसके अनुसार यह नियम बना दिया गया कि कोई व्यक्ति किसी प्रांत अथवा स्थानीय संस्था को कुल मिलाकर ५० रु० से अधिक न देगा। इस प्रकार संयुक्त प्रांत की यह योजना सफल नहीं हुई।

संयुक्त प्रांत व बिहार में कारखाने में आने वाले गन्ने पर प्रति मन २ पैसे का महसूल लगा दिया गया जिस प्रकार बंगाल में जूट पर महसूल लगता था। इस महसूल से प्राप्त धन को गन्ने के सुधार पर लगाने के लिए अलग रख दिया गया।

कांग्रेसी प्रांतों के सम्मिलित प्रयत्न की एक और बात कहने से बची है। १९३८–३९ में बाबू सुभाषचन्द्र बोस की अध्यक्षता में कांग्रेस कार्य-समिति ने पं० जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक राष्ट्रीय योजना–निर्माण समिति स्थापित करने का निश्चय किया था। जिस समय यह निश्चय किया गया था, पं० जवाहरलाल इंग्लैंड में थे। समिति ने देश के बड़े तथा छोटे घरेलू उद्योगों की जांच करने तथा उनकी उन्नति के सम्बन्ध में सिफारिश करने के लिए अनेक उप-समितियां कायम करदीं। इस तरह कार्य आरम्भ हुआ। २ व ३ अक्तूबर, १९३८ को दिल्ली में उद्योग मन्त्रियों का एक सम्मेलन सुभाष बाबू की अध्यक्षता में हुआ। सम्मेलन-द्वारा नियुक्त राष्ट्रीय योजना-निर्माण-समिति की बैठक १७ दिसम्बर को हुई जिसमें मैसूर, हैदराबाद व बड़ौदा के भी प्रतिनिधि मौजूद थे। समिति ने २३७ प्रश्नों की एक प्रश्नावली तैयार की जिसे देश भर में वितरित किया गया। समिति को प्रांतीय सरकारों से सहायता प्राप्त हुई और १९३९ में उसके पास ३७,००० रु० थे। समिति की बैठक जून, १९३९ में फिर हुई। समिति स्वाधीन भारत के विचार से योजना बना रही थी। ३१ उप-समितियां भी कायम की गईं जिनमें सभी प्रांतीय-सरकारों के अलावा हैदराबाद, मैसूर, भोपाल, बड़ौदा, ट्रावनकोर व कोचीन रियासतों के भी प्रतिनिधि सम्मिलित थे; परन्तु कांग्रेसी मन्त्रि-मण्डलों के इस्तीफा देने पर प्रांतीय सरकारों ने सहायता देने से इनकार कर दिया। समिति की तीसरी बैठक मई, १९४० में हुई; परन्तु सभी उप-समितियों की रिपोर्टें तैयार नहीं थीं। समिति की कार्यवाही का झुकाव रक्षा, उद्योगों, बड़े-बड़े व्यवसायों, सार्वजनिक उपयोगिता के उद्योगों के राष्ट्रीयकरण की ओर था। साथ ही वह सहकारिता के आधार पर खेती की उन्नति करने और देहाती दस्तकारियों व घरेलू उद्योगों की सामूहिक रूप से रक्षा करने व उनके प्रोत्साहन की समर्थक थी।

उपसंहार

मन्त्रियों के कार्य की वाइसराय व गवर्नरों ने सिर्फ सराहना ही नहीं की बल्कि बिना किसी संकोच के खुले दिल से सराहना की। लार्ड लिनलिथगो ने जो यह कहा था कि प्रांतीय सरकारों ने "अपने कार्य का संचालन बड़ी सफलतापूर्वक किया" इस पर कोई भी सन्देह नहीं कर सकता। इन प्रस्तावों में शासन-सूत्र चाहे जिस राजनैतिक-दल के हाथ में रहा हो; जनता

पिछले ढाई वर्ष के सार्वजनिक कार्य की सफलता पर संतोष कर सकती है। लार्ड लिनलिथगो ने अपने पद से अवकाश ग्रहण करने के बाद साम्प्रदायिक समस्या के सम्बन्ध में लिखा था:—

"मेरे मत से साम्प्रदायिक समस्याओं के विषय में कार्रवाई करते समय साधारण रूप से मन्त्रियों ने निष्पक्ष दृष्टिकोण से काम लिया और जो उचित जान पड़ा वही करने की इच्छा का प्रदर्शन किया। सच तो यह है कि कार्यकाल के अन्तिम दिनों में हिन्दू-महासभा उनकी यह आलोचना किया करती थी कि वे हिन्दुओं के प्रति न्यायपूर्ण व्यवहार नहीं करते थे गोकि इस आलोचना के लिए कोई न्यायपूर्ण आधार था नहीं।"

सच तो यह है कि जब अक्तूबर, १६३६ में कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों ने इस्तीफा दिया तो वाइसराय व गवर्नर इससे खुश नहीं थे और यह एक आमतौर पर जानी हुई बात है कि उन्होंने कांग्रेसी मन्त्रियों से अपने पदों पर बने रहने का अनुरोध किया। परन्तु उनकी इस सद्भावना से कहीं अधिक बलवती युद्ध-प्रयत्नों में भाग लेने से पहले देश को आजादी देने की शर्त थी। कांग्रेसी मन्त्रियों का सब से बड़ा अपराध यही था कि वे आज़ाद व्यक्तियों के रूप में धुरीराष्ट्रों से लड़ना चाहते थे और अपने घर में खुद गुलाम रहते हुए विदेशियों की स्वतंत्रता के लिए लड़ने से उन्होंने इनकार कर दिया था। इस दृढ़ दृष्टिकोण का परिणाम यह हुआ कि गवर्नर उनसे नाराज हो गये और उसी समय से भारत मन्त्री, वाइसराय, गवर्नर और बाद में सर स्टैफर्ड क्रिप्स व उनके दल के साथी भी कांग्रेस को तानाशाही संस्था बताकर उसपर कीचड़ उछालने लगे, कार्य-समिति को हाई कमांड कहने लगे, कांग्रेसी नियंत्रण को केन्द्रीय निरंकुशता व कांग्रेस को एकाधिकारपूर्ण संस्था कहने लगे।

: २८ :

प्रान्तों में प्रतिक्रियावादी कार्य

अक्तूबर व नवम्बर, १९३९ में कांग्रेसी मंत्रियों के इस्तीफा देने पर, जैसा कि आशा की जाती थी, प्रान्तीय सरकारों ने कुछ प्रतिक्रिया कार्य किये। कांग्रेसी मंत्रियों के इस्तीफे के बाद प्रान्तीय शासन का कार्य गवर्नरों के सलाहकारों को मिला और उनसे यही आशा की जा सकती थी। मद्रास में सबसे पहला कार्य 'मादक वस्तु-निषेध' के क्षेत्र का विस्तार रोकने का किया गया और इसके लिए युद्ध का बहाना बताया गया। दूसरी तरफ बिक्री-कर को घटा कर आधा कर दिया गया। बाद में यह कर मूल दरों की अपेक्षा दुगुना कर दिया गया और फिर क्रमशः बजट से इसका नाम-निशान ही मिट गया। खद्दर के लिए सहायता जारी रखी गई—गोकि रकम में कमी जरूर हो गई। बिहार में 'मादक वस्तु-निषेध' की नीति में एक मौलिक परिवर्तन हुआ जैसा कि निम्न-विज्ञप्ति से स्पष्ट हो जायगा:—

"सरकार ने 'मादक-वस्तु-निषेध' उठा लेने का निश्चय नशे की चीजों की नाजायज आमद बढ़ने के कारण किया है। इस कार्रवाई के कारण सरकार को जहां एक तरफ १६ से २० लाख रुपये तक अतिरिक्त आय होगी वहां दूसरी तरफ 'मादक वस्तु निषेध' के सिलसिले में जो कर्मचारी रखे जाते थे उन पर होनेवाले खर्च की भी बचत हो जायगी।"

शिक्षा की वर्धा-योजना व विद्या-मंदिर योजना से सिर्फ साक्षरता की ही वृद्धि नहीं हुई बल्कि इससे एक ऐसी बुनियादी शिक्षा का प्रचार हुआ जिसका राष्ट्रीय जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध था और जिसकी यदि उन्नति होने दी जाती तो युद्ध के दिनों में कपड़े की जो कमी हो गई थी वह न होने पाती। बिहार और संयुक्तप्रान्त ने निरक्षरता की जड़ खोदने का संकल्प कर लिया था। बिहार में मुख्य प्रयत्न अध्यापकों की सहायता से हुआ। संयुक्तप्रान्त ने १००० वयस्क विद्यालयों, ४,००० चलते-फिरते पुस्तकालयों और ३,६०० नि:शुल्क वाचनालयों-द्वारा एक मनोरंजक प्रयोग आरम्भ किया था। हर शिक्षित व्यक्ति से एक व्यक्ति को साक्षर करने का वचन लिया जाता। इस प्रतिज्ञापत्र पर लगभग ५ लाख व्यक्तियों ने हस्ताक्षर किये। इस प्रकार उम्मीद बंधी कि २० साल में निरक्षरता नष्ट हो जायगी। कांग्रेसी मंत्रिमंडलों के इस्तीफे से इनमें से कितनी ही योजनाएं बेकार हो गईं।

संयुक्तप्रान्त में तो गति पीछे की तरफ आरम्भ हो गई। कांग्रेसी वजारत के दिनों में प्रान्त ने निरक्षरता मिटाने के लिए एक साहसपूर्ण कदम उठाया था। भारत में संसार की एक-तिहाई निरक्षर जनता है। साक्षर कहे जानेवाले व्यक्तियों में ऐसे भी शामिल हैं जो दिक्कत से लिख या पढ़ सकते हैं और इससे भी अधिक ऐसे व्यक्ति होते हैं, जो सिर्फ हस्ताक्षर ही कर सकते हैं। अभ्यास छूट जाने पर साक्षर व्यक्तियों में से बहुत से फिर निरक्षर हो जाते हैं।

सलाहकारों के शासनकाल में शिक्षा-क्षेत्र में भी हस्तक्षेप हुआ। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध

लिबरल-नेता सर चिमनलाल सीतलवाद के, जो बम्बई विश्वविद्यालय के वाइस-चांसलर रह चुके हैं, भाषण का एक अंश उल्लेखनीय है। यह भाषण सर चिमनलाल ने बम्बई विश्वविद्यालय की सीनेट की बैठक में विश्वविद्यालय से सम्बद्ध कालेजों पर प्रान्त के शिक्षा डाइरेक्टर-द्वारा नियंत्रण कायम करने के प्रयत्न का प्रतिवाद करने वाले प्रस्ताव के समर्थन में दिया था। आपने कहा—'यह विश्वविद्यालय अपनी तथा अपने से सम्बद्ध कालेजों की प्रबन्ध सम्बन्धी स्वतन्त्रता के अधिकार के विषय में अडिग रहा है और इस अवसर पर भी रहेगा।' सर चिमनलाल ने बताया कि शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर ने गत वर्ष अनुशासन के सम्बन्ध में दो गश्ती चिट्ठियां भेजी थीं और उन्होंने अहमदाबाद के कतिपय विद्यार्थियों के सम्बन्ध में ये आदेश निकाले थे कि जब तक उनके प्रिंसिपल कुछ प्रश्नों का उत्तर देना स्वीकार न कर लेंगे तब तक विद्यार्थियों को उनकी छात्रवृत्तियां न दी जायंगी। शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर का कहना था कि इस प्रकार का आदेश वे विश्वविद्यालय कानून के अन्तर्गत निकाल सकते हैं। सर चिमनलाल का कहना था कि सरकार से सहायता पाने वाली संस्थाओं से वे कुछ बातें पूछ सकते हैं; किन्तु जिन संस्थाओं से शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर ने पूछताछ की है उनसे नहीं। जिन संस्थाओं को सरकार से सहायता नहीं मिलती उनसे पूछताछ करने का सरकार को कोई अधिकार नहीं है। विश्वविद्यालय व कालेज सरकार के नियंत्रण से जितने ही मुक्त रहेंगे उतना ही उच्च शिक्षा की प्रगति के लिए अच्छा होगा। सर चिमनलाल सीतलवाद ने बताया कि यही बात सर ऐलेक्जेंडर ग्रांट ने बम्बई के गवर्नर सर बार्टले फ्रेरी से विदा लेते समय कही थी जो १८६६-६७ में बम्बई प्रान्त के शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर व बम्बई विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर थे।

सर चिमनलाल सीतलवाद ने बम्बई के गवर्नर सर जार्ज क्लार्क-द्वारा १९०८ में विश्वविद्यालय के कार्य में हस्तक्षेप की एक घटना का हवाला दिया। सर जार्ज मैट्रिक्युलेशन परीक्षा को तोड़ना चाहते थे, परन्तु लार्ड विलिंगडन के गवर्नर होने पर इस झगड़े का सद्भावनापूर्वक निबटारा हो गया।

१९२० में एक और घटना हुई। उन दिनों सर चिमनलाल खुद बम्बई विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर थे। बम्बई के गवर्नर सर जॉर्ज लॉयड ने पत्र लिखा कि विश्वविद्यालय को अपनी घड़ी एक निर्धारित तारीख तक ठीक कर लेनी चाहिए अन्यथा सरकार खुद उसे सुधरवाने का प्रबंध करेगी। विश्वविद्यालय की सिंडीकेट ने उत्तर दिया कि घड़ी विश्वविद्यालय की सम्पत्ति है और सरकार की तरफ से उसे हाथ लगाया जाना सहन न किया जायगा।

अंत में सर चिमनलाल ने कहा कि यह प्रस्ताव उपस्थित करते हुए उन्हें कोई प्रसन्नता नहीं हो रही है। आपने कहा कि शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर सीनेट के सदस्य तथा उनके मित्र हैं और उन्हें अपनी गलती मंजूर कर लेनी चाहिए।

आसाम के प्रधानमंत्री डिब्रूगढ़ जिले में राष्ट्रीय युद्ध-मोर्चे की एक बैठक में बड़ी दुविधा में पड़ गये। उन्होंने जनता से कहा कि उसे अपनी कपड़े की समस्या चरखे की सहायता से हल करनी चाहिए। जनता ने कहा कि पिछले ही साल आपके पुलिस के सिपाही हमारे चरखे तोड़ चुके हैं। प्रधानमंत्री ने वचन दिया कि यदि सबूत मिला तो वे इस सम्बन्ध में उचित कार्रवाई करेंगे।

मद्रास की मादक वस्तु-निषेध-नीति में बड़ा प्रतिक्रियापूर्ण परिवर्तन हुआ। मद्रास या किसी दूसरे सूबे में मादक वस्तु-निषेध की नीति की शुरुआत बिना किसी गम्भीर सोच-विचार के

नहीं की गई थी। यह ठीक है कि कांग्रेसजन इसके खासतौर पर हामी थे। लेकिन स्मरण किया जा सकता है कि केन्द्रीय असेम्बली में १९२५ ई० में सभी गैरसरकारी सदस्यों के समर्थन से एक प्रस्ताव मादक वस्तु-निषेध के सम्बन्ध में पास हो चुका था। बाद में १९२८ में सभी प्रान्तीय धारा सभाओं ने मादक वस्तु-निषेध के सम्बन्ध में प्रस्ताव पास किया। १९२८ में कलकत्ता के सर्वदल सम्मेलन में विधान का जो मसविदा तैयार किया गया था उसमें भी मादक वस्तु-निषेध को स्थान दिया गया। १९३१ में कराची के अधिवेशन में मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में जो प्रस्ताव पास किया गया था उसमें भी इसका उल्लेख था। मद्रास के मादक वस्तु-निषेध कार्यक्रम में हस्तक्षेप कितनी बड़ी दुखद घटना थी वह इस बात से जाना जा सकता है कि कार्यक्रम का प्रभाव ४ जिलों व २४, ००० वर्गमील में रहनेवाली ७० लाख जनता पर पड़ रहा था और इसी समय ताड़ी को ६००० दूकानें फिर से खोल दी गईं।

मद्रास-सरकार ने मादक वस्तु-निषेध उठाने के सम्बन्ध में जो विज्ञप्ति प्रकाशित की थी वह पढ़ते ही बनती है। कहा गया है कि नाजायज सूत्र से ताड़ी तैयार करने के ६००० मामले हर साल पकड़े जाते हैं। लेकिन इसका औसत १५ दैनिक के हिसाब से पड़ता है। यह देखते हुए कि 'मादक वस्तु-निषेध-कार्यक्रम' ४ बड़े जिलों में किया गया है और यह करने से पूर्व इस अनैतिक कार्य से लगभग १ करोड़ का आय होती थी, यह औसत अधिक नहीं जान पड़ता। एक क्षण के लिए मान लीजिये कि ताड़ी नाजायज तौर पर तैयार की गई तो क्या खुद सरकार ही उन्हें ताड़ी पीने के लिए निमंत्रण दे, उनके घरों के पास ताड़ीघर खुलवाये और शैतानियत का नंगा नाच होने दे। नाजायज तौर पर ताड़ी बनाये जाने के आंकड़ों से तो मादक वस्तु-निषेध की सफलता का ही पता चलता है न कि उसकी असफलता का। चिरकाल से मद्रास सरकार को सलेम, चित्तूर, कुड्प्पा व उत्तर अर्काट जिलों की स्त्रियों की बद्दुआएं मिल रही थीं। अब उसे अनंतपुर जैसे शेष जिलों की स्त्रियों की दुआएं मिलने को थीं; क्योंकि खासकर अनन्तपुर के लोग अपने यहां मादक वस्तु-निषेध किये जाने की आशा लगाये बैठे थे और इसी आशा में जिले के कुछ भागों में अपने ही आप ताड़ीबन्दी हो भी चुकी थी। परन्तु इस अभागी तहसील को यह गौरव अधिक दिन न मिल सका। सरकार ने नशाबंदी उठाने के सम्बन्ध में अकाल, बाढ़, बजट का घाटा व मुद्रा-बाहुल्य के जो कारण दिये हैं वे बहाने ही अधिक हैं। इससे यही नतीजा निकाला जा सकता है कि सरकार ने नशाबंदी इसलिए उठाई कि उसमें नैतिक भावना का अभाव था और समाज-सुधार के कार्य में नैतिक भावना का महत्व होता है।

दूसरी ध्यान देने की बात यह है कि नाजायज तौर पर 'अड़क' बनाई जा रही थी, जिसके सम्बन्ध में निषेध जारी था। फिर 'अड़क' नाजायज तौर पर बनाई जाने से ताड़ी बनाने की अनुमति देने की बात कहां से पैदा हुई! यह नहीं कहा गया कि ताड़ी नाजायज तौर पर बनाई जाती है इसलिए ताड़ी बनाने की अनुमति दे देनी चाहिए। एक आदमी नारियल चुराने के लिए पेड़ पर चढ़ा; किन्तु जब उसे पकड़ा गया तो उसने कहा कि मैं पेड़ पर नारियल चुराने नहीं बल्कि घास छीलने गया था। मद्रास सरकार को सफाई भी इसी तरह की थी। यदि नशाबंदी कानून तोड़ने के लिए ताड़ी नाजायज तौर पर बनाये जाने का कारण दिया जाता है तो क्या इस बात से इनकार थोड़े ही किया जा सकता है कि नशाबन्दी न होने पर भी तो नाजायज तौर पर ताड़ी बनती थी। फिर आबकारी कानून को किस आधार पर तोड़ा जा सकता है। श्री राजगोपालाचारी ने ठीक ही कहा है कि ताड़ी नाजायज तौर पर बनाये जाने का कारण नशे का प्रेम नहीं बल्कि रुपये

का लोभ है। मद्रास-सरकार का कार्य तो उस आदमी के पागलपन के समान हुआ जिसने चूहों से पीछा छुड़ाने के लिए अपने घर में ही आग लगा दी।

मुद्रा-बाहुल्य के कारण नशेबंदी के हटाये जाने का तर्क पढ़कर हम हँसें या रोयें ? एक क्षण के लिए मान लीजिये कि नशाखोरी के शिकार होने वाले लोगों के पास पैसा ज्यादा है। वास्तव में ये लोग भूखों मरते हैं। तो क्या उनका पैसा खर्च कराने के लिए ताड़ी की दूकानें खुलवाना उचित होगा ? यदि पियक्कड़ लोग पैसा खर्च करते हैं तो वह ताड़ी के ठेकेदारों के ही हाथों में आकर इकट्ठा होता है और वहां उसके दुरुपयोग होने की अधिक सम्भावना है। यह कह देना काफी नहीं है कि पेड़ों पर कर लगा दिया जायगा। सभी जानते हैं कि मद्रास-सरकार को नशे से सिर्फ ४ करोड़ की ही आमदनी होती है; किन्तु नशाखोरों को लगभग १७ करोड़ की रकम खर्च करनी पड़ती है। इस भारी धन-राशि की तुलना में लाइसेंस की फीस या पेड़ों का कर कितना होगा ? सरकार ने मुद्रा-बाहुल्य का सामना करने के लिए तो 'कैश सर्टिफिकेट' की बिक्री की थी जिन्हें युद्ध के बाद फिर भुनाया जा सकता था। इसके अलावा, सरकार के लिए नशे का रुपया और बिक्री-कर दोनों ही पर दावा करना कहां तक उचित था ? बिक्री का कर तो कांग्रेसी सरकार ने मादक वस्तु-निषेध की हानि को पूरा करने के लिए लगाया था। नया कर चीजें खरीदने वालों पर पड़ता था; किन्तु इसके ऐवज में उन्हें नशे से छुटकारे का नैतिक लाभ होता था। परन्तु नौकरशाही तो दोनों ही हाथों से पेट भरना चाहती थी। उसने नैतिक विचार को तिलांजलि दे दी। सलाहकारों की सरकार ने धारा-सभा की अनुमति लिये बिना यह परिवर्तन करके अपने अनैतिक दृष्टिकोण का परिचय दिया और अपने इस दावे का खोखलापन प्रकट कर दिया कि नौकरशाही को सर्वसाधारण की भलाई का खयाल रहता है।

मद्रास की बदनाम नौकरशाही ने सिर्फ नशाबंदी उठाकर ही दम नहीं लिया। उसने शिक्षा के क्षेत्र में ऐसा नियम बनाया कि राजनैतिक आन्दोलन में भाग लेने वाले विद्यार्थियों को कॉलेज या स्कूल में दाखिल होने से पहले शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर की अनुमति लेनी पड़े। स्थानीय शासन के क्षेत्र में नौकरशाही ने जिलों के कलक्टरों को अधिकार दिये कि वे चाहें तो जिला बोर्ड तथा म्यूनिसिपल बोर्ड के कुछ सदस्यों को चेयरमैन या वाइस चेयरमैन के अधिकार दे सकते हैं। कोकनद म्यूनिसिपैलिटी ने म्यूनिसिपल कानून के इस प्रकार संशोधन की निन्दा की और विरोध में उसके चेयरमैन व वाइस-चेयरमैन तथा अन्य कितने ही सदस्यों ने इस्तीफे भी दे दिये।

साम्प्रदायिकता

सिंध के म्यूनिसिपल चुनावों के हिन्दू निर्वाचन क्षेत्र इस बिना पर भंग कर दिये गये कि हिन्दू-निर्वाचनक्षेत्र पाकिस्तान की भावना के खिलाफ हैं। काश्मीर में मुस्लिम कान्फ्रेंस ने कहा कि यदि किसी मामले में कोई एक पक्ष मुसलमान हो तो उस मामले का फैसला मुस्लिम जज द्वारा ही होना चाहिए।

हावड़ा म्युनिसिपैलिटी

भारत में स्थानीय संस्थाओं के खिलाफ जो प्रतिक्रियापूर्ण कार्य हुए उनमें सबसे उल्लेखनीय जून १९४४ में हावड़ा म्यूनिसिपैलिटी के खिलाफ की गई कार्रवाई थी। दूसरे स्थानों पर तो यह कहा जा सकता था कि प्रतिक्रियापूर्ण कार्य धारा ९३ के अनुसार स्थापित सरकार द्वारा किये गये थे; किन्तु बंगाल में तो पहले श्री फ़ज़लुल हक़ और फिर सर नाज़िमुद्दीन की अधीनता में लोकप्रिय सरकारें काम कर रही थीं। बंगाल के गवर्नर

सर जान हर्बर्ट ने मृत्यु से पूर्व अपना अन्तिम कार्य नाज़ीमुद्दीन मंत्रिमंडल की स्थापना किया था और सबसे विचित्र बात तो यह थी कि एक मंत्री श्री पेन, जो हरिजनों के प्रतिनिधि थे, मन्त्री रहते हुए भी हावड़ा म्यूनिसिपैलिटी के चेयरमैन बने हुए थे। इससे कार्पोरेशन के सदस्यों में विद्रोह की भावना भड़क उठी और उन्होंने मन्त्री-चेयरमैन के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव उपस्थित कर दिया। प्रस्ताव पास हो गया और एक एक्जीक्यूटिव अफसर भी नियुक्त कर दिया गया। सरकार ने इस कार्रवाई का मुकाबला करने के लिए भारत-रक्षा-विधान के अन्तर्गत म्यूनिसिपैलिटी को अपनी अधीनता में कर लिया। तब हाईकोर्ट में एक दरख्वास्त दाखिल की गई कि एक्जीक्यूटिव अफसर कार्य न कर सके। यह कहा गया कि भारतरक्षा नियमों की सहायता इसलिए ली गई कि विशेषाधिकार कानून के अन्तर्गत म्यूनिसिपैलिटी को दबाने के लिए घूसखोरी या बदइन्तजामी के आरोप करना आवश्यक था जो प्रांतीय सरकार कर नहीं सकती थी। खैर, हाईकोर्ट ने एक्जीक्यूटिव अफसर पर पाबंदी लगाने की बात अस्थायी रूप से मंजूर कर ली। परन्तु बाद में प्रकट हुआ कि एक्जीक्यूटिव अफसर के हटने ही से काम न चलेगा; क्योंकि सिर्फ इससे म्यूनिसिपैलिटी को अधिकार फिर न दिये जा सकेंगे। अस्तु, सरकार को मामले का फरीक बनाया गया और तब पहले वाली म्यूनिसिपैलिटी फिर से काम करने लगी।

अदालत में उठाये गये एक हलफनामे से एक मनोरंजक बात यह जाहिर हुई कि मन्त्री-चेयरमैन ने कार्पोरेशन के कुछ सदस्यों को यह धमकी दी कि यदि अविश्वास का प्रस्ताव वापस नहीं लिया गया तो म्यूनिसिपैलिटी सरकार की अधीनता में चली जायगी और इस सम्बन्ध में सरकार का आदेश भी उनके पास है। जस्टिस ईजर्ले को इससे काफी परेशानी हुई कि एक ऐसा व्यक्ति म्यूनिसिपैलिटी का चेयरमैन बना हुआ है, जो मन्त्री नियुक्त किया जा चुका है।

स्थानीय संस्थाओं की प्रतिक्रिया

किसी राष्ट्र को तब तक आज़ादी नहीं मिल सकती, जब तक उसकी संस्थाओं में इसकी उत्कंठा जाग्रत नहीं होती। भारत में सार्वजनिक कर्मचारी आजादी के लिए अपने पदों का मोह त्याग नहीं पाये। इसका कारण यह नहीं है कि सरकारी कर्मचारी राजभक्त हैं, बल्कि इसके विपरीत उनके मन में भी असंतोष की घटाएं घिरा करती हैं। बात यह है कि अंग्रेज़ी शिक्षा ने उनमें पराधीनता की भावना भर दी है जिसके कारण उनमें स्वार्थपरता व दब्बूपने की प्रवृत्तियां बढ़ गयी हैं। यही बात भारतीय सेना में देशभक्ति की भावना के अभाव के सम्बन्ध में कही जा सकती है। पेट की जरूरत के कारण देशभक्ति का गला घोंट दिया जाता है। जल्दी विवाह हो जाने तथा जीविका-निर्वाह का कोई दूसरा लाभदायक साधन न होने के कारण पराधीनता की लांछना का अनुभव करने वाले युवकों को भी सेना में भरती होना पड़ता है। परन्तु जब वे सेना से वापस आते हैं तो उनमें असंतोष की मात्रा दस गुनी बढ़ जाती है।

इस तरह लोकमत सिर्फ स्थानीय संस्थाओं-द्वारा ही प्रकट हो सकता है। भारत पूर्ण स्वराज्य चाहता है या नहीं, इसका उत्तर स्थानीय संस्थाओं की कार्यवाही से प्राप्त किया जा सकता है। आधी से कम म्यूनिसिपैलिटियां व स्थानीय बोर्ड राष्ट्रीय झंडा फहरा कर, कांग्रेस के प्रस्ताव का समर्थन करके या कांग्रेसी नेताओं की रिहाई का अनुरोध करके राष्ट्रीय मांग का समर्थन कर चुकी हैं। इनमें से अधिकांश स्थानीय संस्थाओं से अपने प्रस्ताव वापस लेने को कहा गया और ऐसा न करने पर उनके अधिकार छीन लिए गये अथवा वैतनिक अफसर शासन-प्रबन्ध के लिए नियुक्त कर दिये गये या कुछ स्थानों में ग़ैर-सरकारी व्यक्तियों को स्थानीय संस्थाओं के

धन व कर्मचारियों के प्रबन्ध का कार्य सौंप दिया गया।

इन हजारों स्थानीय संस्थाओं में अहमदाबाद म्यूनिसिपैलिटी भी है। अहमदाबाद भारत के सब से बड़े शहरों में से है। उसकी जनसंख्या ६ लाख है और म्यूनिसिपैलिटी को ५० लाख रुपये की आय प्राप्त होती है। बाईस वर्ष तक कांग्रेस इस म्यूनिसिपैलिटी के कार्य का संचालन करती रही है। सरदार वल्लभभाई पटेल इसके पहले कांग्रेसी चेयरमैन रहे और पांच वर्ष तक उन्होंने इसका काम किया। फिर १९२८ में बारदोली का करबंदी आंदोलन छिड़ने पर उन्हें अपने इस पद से इस्तीफा देना पड़ा। यह म्यूनिसिपैलिटी १९४२-४३ तक अपने आत्म-सम्मान की निरन्तर रक्षा करती रही। प्रारम्भिक कक्षाओं के १००० अध्यापक बाहर कर दिये गये और स्कूल बोर्ड बन्द कर दिया गया। कांग्रेसी नेताओं की रिहाई तक कर्मचारियों ने काम करने से इन्कार कर दिया। कार्पोरेशन की शानदार इमारत पर राष्ट्रीय झंडा फहराता रहा और पुलिस के उसे हटाने पर कर्मचारियों ने तब तक काम करने से इन्कार कर दिया जब तक कि झण्डा फिर से न फहरा दिया जाय। कुछ उच्च कर्मचारियों पर राजनैतिक आधार पर काम छोड़ने पर मुकदमा भी चलाया गया। एक इंजीनियर को मातहत-अदालत ने सजा भी दी; लेकिन अपील करने पर उसे छोड़ दिया गया। नागरिकों ने भी कम देशभक्ति का परिचय नहीं दिया। उन्होंने अहिंसात्मक रूप से सत्याग्रह-आंदोलन चलाया। गांधीजी व उनके साथियों की गिरफ्तारी की तारीख पर हर महीने जुलूस निकालकर प्रतिबन्ध-सम्बन्धी आदेश को भंग किया जाता था। हर महीने गोली चलती थी और कहा यही जाता था कि जनता के ढेले फेंकने पर पुलिस को गोली चलानी पड़ी। हर महीने जुलूस निकलता और जनता प्रसन्नतापूर्वक परिस्थिति का सामना करती। नगर तथा म्यूनिसिपैलिटी ने ऐसा काम किया कि इनका नाम स्वाधीनता-संग्राम के इतिहास में अवश्य लिखा जाना चाहिए। ये सभाएं और जुलूस सिर्फ राजनैतिक प्रदर्शनमात्र नहीं होते थे। नीचे एक शिक्षाविद् का मत दिया जाता है जिससे प्रकट होता है कि कांग्रेस का यह उपयोगी कार्य निर्वाचित कमेटी के स्थान पर नियुक्त नयी कमेटी के शासन-प्रबंध में भी जारी रखा गया।

"अहमदाबाद म्यूनिसिपल बोर्ड ने उत्तम कार्य किया है। लगभग ९२ 'बाल्य-सहकारिता-समितियां' हैं। मुस्लिम बालिकाओं की शिक्षा को प्रोत्साहन देने का विशेष ध्यान रखा जाता है; किन्तु मुस्लिम अध्यापिकाओं की सचमुच कमी है।

'पिछड़ी हुई जातियों के विद्यार्थियों की संख्या में ४० प्रतिशत वृद्धि हुई है। इस कार्य का श्रीगणेश कांग्रेस के प्रभाव के कारण हुआ था और यह अब भी (जुलाई, १९४३ में) जारी है। कार्य का सब से मनोरंजक अंश विद्यार्थियों-द्वारा की जानेवाली दस्तकारी है। बारयाला में बड़ा अच्छा सोख्ता, रनपुर में चटाइयां और मोडासा में मोमबत्तियां बनायी जाती हैं। धोलका में कताई का उत्तम प्रबन्ध है। परन्तु दस्तकारी के विद्यालय का सर्वोत्तम उदाहरण अम्बली में है जो अहमदाबाद से १० मील दूर है। उसमें खेती, बढ़ईगीरी, ठठेरे का काम और हाथ की बुनाई की शिक्षा दी जाती है। उत्पादन का अधिकांश विद्यार्थियों में ही बाँट दिया जाता है। प्रत्येक विद्यार्थी अपने लिए कपड़ा प्राप्त करने के अलावा ४०) वार्षिक कमा लेता है। यह उत्तम कार्य अहमदाबाद-जिला स्कूल-बोर्ड के प्रबंधक रावसाहब प्रीतमाराय बी० देसाई की देख-रेख में होता है जो अहमदाबाद सहकारिता के आधार पर गृह-निर्माण के लिए प्रसिद्ध है। गुजरात के सभी स्कूल-बोर्डों को इस उदाहरण से लाभ उठाना चाहिए।

गुजरात के म्युनिसिपल चुनावों में कांग्रेस की विजय होने पर सरकार ने अहमदाबाद के प्रबन्ध के लिए १० सदस्यों की एक समिति कायम की, जिनमें ५ मुसलमान और ५ में से २ हिन्दू सरकारी वकील, १ हरिजन, १ रायवादी और पांचवां पारसी था। मुस्लिम सदस्यों से ज्ञात हुआ कि उन्होंने तीन वर्ष के लिए नियुक्ति की आशा की थी जब कि सरकारी आज्ञा-पत्र में "अगला आदेश होने तक" शब्द लिखे हुए थे।

कलकत्ता कार्पोरेशन

सर नज़ीमुद्दीन की वजारत कायम होने से बंगाल-असेम्बली के यूरोपियन दल को अपनी शक्ति का अनुभव हुआ और तब उसने कलकत्ता कार्पोरेशन की ओर भी ध्यान दिया। कार्पोरेशन को एक छोटा प्रान्त कहा जा सकता है; क्योंकि उसकी आय चार करोड़ के लगभग थी। कार्पोरेशन की प्रधानता विभिन्न दलों के झगड़े का मुख्य कारण भी रह चुकी थी। यूरोपियन एसोसियेशन की कलकत्ता-शाखा ने जल-उपलब्धि तथा सफाई के सम्बन्ध में कार्पोरेशन के प्रबंध की कड़ी आलोचना की और कहा कि कार्पोरेशन के कुप्रबंध के कारण कलकत्ते के नागरिकों तथा सैनिकों के स्वास्थ्य के लिए संकट उपस्थित हो गया है। इस आधार पर यूरोपियनों ने अनुरोध किया कि कलकत्ता म्युनिसिपल ऐक्ट की १५ से १८ धाराओं के अंतर्गत कार्पोरेशन का प्रबंध अधिक जिम्मेदार व्यक्तियों को सौंप दिया जाय।

कार्पोरेशन के प्रबंध में पहले जो भी त्रुटि रही हो, पर जिस समय का यह जिक्र है उस समय उसे विशेष कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा था। उसकी लारियां सेना के अधिकारियों ने ले ली थीं जिसका परिणाम यह हुआ था कि कार्पोरेशन के पास कूड़ा-कर्कट आदि शहर के बाहर ले जाने के लिए यातायात के साधनों का अभाव हो गया था। वाटर-वर्क्स की मशीनों के लिए कोयला की जरूरत थी और अधिकारी आवश्यक मात्रा में कोयला पहुँचा नहीं रहे थे। जबकि १६, जुलाई, १९४३ तक कार्पोरेशन को कोयले के २५० डिब्बे मिलने चाहिए थे, उसे मिले सिर्फ ३० ही डिब्बे थे और यह आशंका उत्पन्न हो गयी थी कि यदि कोयला मंगाने का तुरन्त प्रबंध न किया गया तो कलकत्ते में पानी मिलना बिल्कुल बंद हो जायगा; क्योंकि उपर्युक्त तारीख़ को सिर्फ १७ दिन का कोयला बाकी बचा था, कलकत्ता के यूरोपियन सिर्फ यही आलोचना करके शान्त नहीं हो गये। उन्होंने कार्पोरेशन की आलोचना इसलिए भी की कि भिखारी कूड़े के ढेरों में से अन्न बीना करते हैं और सड़कों पर लाशें पड़ी रहती हैं और उन्हें उठाया नहीं जाता। अन्न की कमी के कारण भूखे कूड़े के ढेरों तक जाते थे और लोग देहातों से भाग-भागकर शहर में आ रहे थे। यूरोपियन लोग ज़रा भी सोचते तो उन्हें पता चल जाता कि ये सब बातें युद्ध-परिस्थिति के परिणामस्वरूप थीं, जिसके सम्बन्ध में वे खुद ही कहते थकते न थे।

इस सिलसिले में इंग्लैंड की स्थानीय संस्थाओं की चर्चा करना असंगत न होगा। वहां भी घूसखोरी की आशंका होती है; किन्तु वोटरों के डर से इसका बचाव होता रहता है। स्थानीय शासन का सुप्रबंध उसी हालत में सम्भव है जब वोटरों के हित को सबसे ऊपर रखा जाय। वहां ३० प्रतिशत वोट पड़ना साधारण बात है।

भारत में पहले तो स्थानीय संस्थाओं के जेल में पड़े सदस्यों के स्थान-रिक्त होने की घोषणा की गयी अथवा कुछ स्थानीय संस्थाओं का शासन-प्रबंध अपने अधिकार में कर लिया गया और फिर वोटरों को अपने अधिकार से काम लेने का अवसर देने के लिए नये चुनाव की घोषणा की गयी। ऐसे चुनावों में दो उदाहरण विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। बम्बई शहर में १५ स्थानों

के और बंगलोर शहर में २४ स्थानों के फिर से चुनाव किये गये। बम्बई में कुल १५ स्थानों पर तथा बंगलोर में २४ स्थानों पर फिर कांग्रेसी उम्मीदवार ही चुने गये। बम्बई में हिन्दू महासभा, परिगणित जाति या लीग के उम्मीदवारों को खड़ा करने का प्रयत्न किया गया; किन्तु सफलता नहीं मिली। और मजा यह कि चुने वही व्यक्ति गये जो पहले इन स्थानों पर थे।

डा० गिल्डर के नजरबंद होने के कारण जो बम्बई का मेयर-पद खाली हुआ था उस पर कांग्रेसी दल के उम्मीदवार श्री एम० आर० मसानी चुने गये। मेयर के पद पर इस युवा कांग्रेस-जन का चुना जाना वास्तव में ईश्वरी न्याय ही था।

खद्दर

दमन के तूफान में खद्दर व उससे सम्बन्ध रखनेवाली संस्थाएं भी अछूती न बचीं। इन्हें राजनीति से जिस सावधानीपूर्वक अलग रखा गया था उससे आशा की जा सकती थी कि कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम के इस अङ्ग को अछूता छोड़ दिया जाता। यह नहीं कहा जा सकता कि अखिल भारतीय चरखा-संघ अथवा इससे सम्बन्धित संस्थाओं के व्यक्तियों ने कभी सत्याग्रह-आन्दोलन में भाग नहीं लिया; लेकिन ऐसे व्यक्तियों से अपने पदों से इस्तीफा देने, अपने प्रावीडेंट फंड के हिसाब खत्म करने और पदों पर कोई दावा न रखने को कहा जाता था और तब कहीं वे आन्दोलन में भाग ले सकते थे। यह नियम व्यक्तिगत सत्याग्रह तथा सामूहिक आन्दोलन, दोनों के ही सम्बन्ध में लागू था। इसके बावजूद, हुआ यह कि संगठन के अवैतनिक मंत्री श्रीकृष्ण जाजू जैसे निरपेक्ष व आकांक्षारहित व्यक्ति को भी, जो १९३८ में मध्यप्रान्त के प्रधान मंत्रित्व का पद स्वीकार करने से इन्कार कर चुके थे, राजनैतिक कार्यकर्ताओं के साथ गिरफ्तार कर लिया गया और दो वर्ष की नजरबन्दी के बाद ही छोड़ा गया। चरखा-संघ के समस्त कार्य में खासकर बिहार, बंगाल व संयुक्तप्रान्त में अव्यवस्था फैल गयी। चरखा-संघ ५ करोड़ रुपये की खादी तैयार कर चुका था और उसमें लाखों नरनारी कताई-बुनाई का काम करते थे। अकाल, महामारी, बाढ़, कपड़े की कमी और अन्न के अभाव के इस काल में निरीह स्त्रियों व जुलाहों से उनकी जीविका का साधन छीन लिया गया। उत्पादन-केन्द्र तथा बिक्री की दुकानों को गैरकानूनी संस्था घोषित कर दिया गया। लाखों रुपये का खद्दर जब्त करके बिगड़ने व नष्ट होने के लिए छोड़ दिया गया।

ऐसे समय जब कि कपड़े की कमी थी और मूल्यों की चर्चा तो क्या की जाय, विदेश से माल आना ही बन्द हो गया था, सरकार ने कांग्रेस द्वारा चलायी कुछ ऐसी संस्थाओं का काम भी बन्द कर दिया जो सहायता मिले बिना ही कायम हो रही थीं। पर सरकार ने क्या किया? उसने सैकड़ों उत्पादन-केन्द्रों व खादी की दूकानों को, खासकर बंगाल व संयुक्तप्रान्त में बन्द कर दिया। इससे बुरी बात सरकार और क्या कर सकती थी? यदि वह आवश्यक समझती तो एक आर्डिनेंस पास करके इन संस्थाओं पर अपना अधिकार कायम कर सकती थी और फिर उनका संचालन कर सकती थी। यदि सरकार अहमदाबाद की कताई व बुनाई की मिलों को तीन महीने बंद रहने के बाद खुलने के लिए मजबूर कर सकती थी तो वह खद्दर व ग्राम-उद्योग संस्थाओं का भी संचालन कर सकती थी। इसके बजाय सरकार ने ग्राम-उद्योग-संगठन के प्रधान को गिरफ्तार कर लिया और उसे जमानत पर रिहा करने से इन्कार कर दिया। फिर मध्यप्रान्तीय सरकार ने ३० जून, १९४३ को वर्धा तहसील के नालवन्दी व पौनार स्थानों में काम करनेवाले ग्रामसेवा-मंडल, सत्याग्रह-आश्रम व गांधी-सेवा-संघ को गैर-कानूनी संस्थाएं घोषित कर दिया।

बिहार में एक विशेष प्रतिक्रियापूर्ण नीति का अनुसरण किया गया। अखिल भारतीय

चरखा-संघ की बिहार-शाखा ने अगस्त, १९४२ में संघ के धन को जब्त कर लिया था। जब शाखा ने उस धन को वापस करने और प्रान्त में अपना कार्य पुनः जारी करने का अनुरोध किया तो प्रान्तीय सरकार के चीफ सेक्रेटरी ने उत्तर देते हुए कहा कि वे इस अनुरोध को कुछ शर्तों के साथ मानने को तैयार हैं। शर्तें यह बतायी गयीं कि अखिल भारतीय चरखा-संघ की बिहार-शाखा और खद्दर-भंडार जिला-मजिस्ट्रेटों की देखरेख में कार्य करें और जिला मजिस्ट्रेटों को समय-समय पर उनका निरीक्षण करने व हिसाब-किताब की जांच करने का अधिकार रहे। जिला-मजिस्ट्रेटों को यह निर्णय करने का भी अधिकार होगा कि दिया हुआ धन किस प्रकार खर्च किया जाय। खुलनेवाले खद्दर-भंडार स्वीकृत-व्यक्तियों की देखरेख में काम करेंगे और वही शर्तें पूरी करने के लिए जिला-मजिस्ट्रेटों के प्रति उत्तरदायी होंगे।

अखिल भारतीय चरखा-संघ की बिहार शाखा ने खादी-उत्पादन करनेवाली संस्था के रूप में कार्य करने की जो अनुमति मांगी थी वह बिहार-सरकार ने देने से इन्कार कर दिया और शाखा की जिन कई लाख रुपये की चीजों पर सरकार ने अधिकार कर लिया था वह भी लौटाने से उसने इन्कार कर दिया। यही नहीं, शाखा के पास कपड़ा व सूत का जो स्टाक था उसे प्रान्तीय सरकार ने डाइरेक्टर तथा स्वीकृत एजेंटों-द्वारा बेचने का निश्चय किया।

अखिल भारतीय चरखा-संघ की १६ संस्थाएं तथा उसी प्रकार की अन्य कितनी ही संस्थाएं बंगाल के विभिन्न भागों में नाजायज घोषित कर दी गयीं। इस प्रकार की २७ संस्थाओं के पास जो खादी व नकद रुपया मिला उसे जब्त कर लिया गया। इस सब का मूल्य १ लाख रुपये के बराबर था। इनमें अखिल भारतीय चरखा-संघ, खादी-प्रतिष्ठान व अभय-आश्रम भी शामिल थे।

बंगाल-लेजिस्लेटिव कौंसिल की बैठक में एक प्रश्न का उत्तर देते हुए बंगाल के प्रधान-मन्त्री सर नज़ीमुद्दीन ने सूचित किया कि "जिस माल व कोष पर कब्जा किया गया है, वह सिवाय उस कपड़े के सबका सब प्रान्तीय सरकार के पास सुरक्षित है, जिसका उपयोग १६ अक्टूबर १९४२ को तूफान व समुद्री लहर से पीड़ितों के लिए उपयोग में लाया जा चुका है। कब्जा किया गया माल ९९,२०१ रु०, ७ आ० ३ पाई मूल्य का है और बैंक में जमा धन को मिलाकर कुल नकदी ४,९९४, १४ आना १॥ पाई है।" सर नज़ीमुद्दीन यह नहीं बता सके कि यह सब संस्थाओं को कब वापस किया जायगा। आपने सिर्फ यही कहा कि संस्थाओं पर से रोक हटाने के बाद ही उनके धन की वापसी के प्रश्न पर विचार किया जायगा।

जुलाई, १९४२ से जनवरी, १९४३ तक अखिल भारतीय चरखा-संघ के कार्य की समीक्षा करते हुए संघ के स्थानापन्न अध्यक्ष श्री वी०वी० जेराजानी ने बताया कि १९४१-४२में खादी का उत्पादन सबसे अधिक यानी लगभग १ करोड़ रुपये का हुआ था। यह कार्य १५००० से अधिक गांवों में होता था और उसमें ३.५ लाख दस्तकार पूरे समय या आधे समय काम में लगे थे और उन्हें ५० लाख रुपये के लगभग मजदूरी दी जाती थी। इस सफलता से प्रोत्साहित होकर अगले वर्ष के लिए उत्पादन में वृद्धि करने का कार्यक्रम तैयार किया गया था। नये वर्ष के प्रारम्भ में अखिल भारतीय चरखा-संघ के पास लगभग ५० लाख रुपये का नकद कोष था। अनुभव के आधार पर हिसाब लगाया गया था कि इससे लगभग १ करोड़ रुपये की खादी तैयार की जा सकेगी। साथ ही बढ़ती हुई मांग को पूरा करने के लिए रुपया उधार भी लिया जा रहा था और गांधी-जयन्ती के अवसर पर १० लाख रुपये चन्दे के रूप में एकत्र करने का भी विचार हो रहा था; परन्तु भविष्य में होना कुछ और ही था। उपर्युक्त निर्णय के कारण प्रान्तीय शाखाएं आत्म-

भरित बनने के कार्यक्रम को पूरा करने के लिए नये कर्मचारी भरती कर रही थीं। एकाएक ६ अगस्त, १६४२ में बिहार-सरकार की विज्ञप्ति ने उन्हें स्तब्ध कर दिया जिसके कारण प्रान्त में इस पुण्य-कार्य पर एक प्रकार से प्रतिबन्ध ही लगा दिया गया था। विज्ञप्ति इस प्रकार थी:—

"चूंकि गवर्नर को यह विश्वास करने का कारण है कि अखिल भारतीय चरखा-संघ की प्रान्तीय समिति के पास नकद या उधार का ऐसा रुपया है जिसे गैर-कानूनी संस्था के कार्य के लिए काम में लिया जा रहा है और जिसका इस तरह से काम में लाने का इरादा है। इसलिए बिहार के गवर्नर १६०८ के भारतीय क्रिमिनल ला एमेंडमेंड ऐक्ट की धारा १७-ई की उप-धारा ४ के अन्तर्गत प्राप्त अपने अधिकार से अखिल भारतीय चरखा-संघ, खद्दर-भंडार व बिहार प्रान्तीय समिति को आदेश देते हैं कि वे इस नकद या ऋण के रूप में जमा रुपया का बिहार-सरकार की अनुमति के बिना किसी भी प्रकार का कोई लेन-देन न करें।"

यह बड़ी विचित्र बात है कि बिहार-सरकार ने यह विज्ञप्ति उसी दिन जारी करने का निश्चय किया जिस दिन महात्मा गांधी, कार्य-समिति के सदस्य तथा अन्य कांग्रेसी नेताओं के विरुद्ध कार्रवाई करने का निश्चय किया गया था। यह भी आश्चर्य की बात है कि जिस खादी-कार्य को अबतक प्रान्तीय सरकारों से सहायता मिल रही थी उसे सन्देह से देखा गया। बंगाल, संयुक्त-प्रान्त और उड़ीसा की सरकारों ने भी बिहार के उदाहरण का अनुकरण किया। हमारी राजस्थान, गुजरात, पंजाब, मध्यप्रान्त, महाराष्ट्र व आसाम वाली शाखाओं को भी छोड़ा नहीं गया, गोकि उनके कार्य में पहले चार प्रान्तों-जितना हस्तक्षेप नहीं किया गया। इस प्रकार के हस्तक्षेप की खबरें हमें केरल, तामिलनाड आंध्र, कर्नाटक व बम्बई की शाखाओं से भी नहीं मिली हैं। इन शाखाओं के कार्य में बाधा उपस्थित नहीं की गयी।

हमारे कितने ही शाखा-सेक्रेटरी व अन्य उच्च कार्यकर्त्ता गैर-कानूनी घोषित कार्यों में भाग लिये बिना ही गिरफ्तार कर लिये गये। खद्दर-भंडारों तथा खादी-उत्पादन-केन्द्रों को काम बन्द करने का आदेश दिया गया, उनमें ताला डाल दिया गया और माल को मुहर लगाकर बंद कर दिया गया। कितनी ही जगहों में माल में आग तक लगायी गयी। अन्य स्थानों में हमारा माल तो छोड़ दिया गया; किन्तु इन क्षेत्रों में काम करने पर रोक लगा दी गयी। सरकार की यह नीति बिलकुल समझ में नहीं आती थी।

सरकारी कार्रवाई के परिणामस्वरूप बंगाल, बिहार व संयुक्तप्रान्त की शाखाओं में हमारा कार्य बिलकुल रुक गया। कार्रवाई के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष परिणामस्वरूप हमारे ४०० से अधिक केन्द्रों ने काम बंद कर दिया। उत्पादन-कार्य ८ लाख रु० से घटकर सिर्फ ४ लाख रुपये का ही रह गया और डेढ़ लाख के लगभग दस्तकार बेकार हो गये।

मध्यप्रान्त व बरार के उद्योग-विभाग के डाइरेक्टर ने महाराष्ट्र चरखा-संघ के एजेंट को सूचित किया कि चरखा-संघ को हाथ की कताई व बुनाई के प्रोत्साहन के लिए १२,५६० रु० की जो रकम बजट में रखी गयी थी उसे काट दिया गया।

पाठकों का ध्यान चरखा-संघ-द्वारा चलाये गये एक मामले की तरफ आकृष्ट किया जाता है जिसमें २७ मार्च, १६४४ के दिन वादी को डिग्री मिली थी। यह मुकदमा ११ अक्तूबर, १६४२ को अखिल भारतीय चरखा-संघ की बंगाल शाखा केद्र फ्तर, गोदाम व दुकान से पुलिस कमिश्नर द्वारा चीजों की जब्ती के सम्बन्ध में अखिल भारतीय चरखा-संघ, कलकत्ता-कार्पोरेशन तथा संघ की बंगाल-शाखा के कर्मचारियों की तरफ से चलाया गया था।

अखिल भारतीय चरखा-संघ की बंगाल-शाखा को ४ मार्च, १९४३ के आदेश-द्वारा गैर-कानूनी संस्था घोषित किया गया था। तब पुलिस कमिश्नर ने सभी चीजों की एक सूची बनायी और कहा कि कोई व्यक्ति किसी वस्तु की मिलकियत का दावा कर सकता है ताकि वह जब्त न की जाय। तब अखिल भारतीय चरखा-संघ के संरक्षकों की तरफ से पी० डी० हिम्मतसिंहका एंड कम्पनी ने संघ की बंबई-शाखा की तरफ से कुछ वस्तुओं का दावा पेश किया, कलकत्ता-कार्पोरेशन ने अचल-सम्पत्ति का तथा बंगाल-शाखा के कर्मचारियों ने कुछ अन्य वस्तुओं का दावा पेश किया।

इस मामले में चीफ जज ने अखिल भारतीय चरखा-संघ, बम्बई के दावे को स्वीकार कर लिया, क्योंकि उसे गैर-कानूनी संस्था नहीं घोषित किया गया था, और यही बंगाल-शाखा की तरफ से सब काम कर रहा था। कलकत्ता-कार्पोरेशन व कर्मचारियों के दावों को भी मंजूर कर लिया गया। पुस्तिकाओं, मैजिक लैंटर्न आदि के सम्बन्ध में संरक्षकों ने अपना दावा त्याग दिया। जज ने इस तर्क को भी अस्वीकार किया कि माल की बिक्री के रुपये का गैर-कानूनी उद्देश्य के लिए उपयोग किया जा सकता है, क्योंकि माल पुलिस की देखरेख में है।

कांग्रेसी हलकों में प्रतिक्रिया

जब कभी असहयोग आन्दोलन अधिक दिन तक चलता है, जैसा १९३२-३३ में हुआ, या समय से पहले खत्म हो जाता है, जैसा १९२१ में हुआ था, तो पीछे रह गये या छोड़ दिये गये कांग्रेसजनों का रुख वैध कार्यक्रम की तरफ होने लगता है। जब फरवरी, १९२२ में गांधीजी ने प्रस्तावित सामूहिक आन्दोलन का विचार त्याग दिया तो देशबंधु दास ने कौंसिल-प्रवेश व कौंसिल के भीतर से असहयोग करने का वैकल्पिक कार्यक्रम बनाया। १९३४ में जब गांधीजी ने सविनय अवज्ञा-आन्दोलन स्वयं ही बंद कर दिया तो फिर केन्द्रीय-असेम्बली के चुनाव का प्रश्न सामने आया। बाद में जब १९४३ में चर्चिल, एमरी और लिनलिथगो बराबर पिछली बातों के वापिस लेने, खेद प्रकट करने, और भविष्य में सहयोग का आश्वासन लेने की बात पर जोर देने लगे तो इसमें आश्चर्य ही क्या था कि कुछ नौजवान लोग आंशिक सहयोग की बातें उठाकर गतिरोध को समाप्त करने का सुझाव पेश करने लगें। पूर्वीय भारत में यह सवाल जीवनलाल पंडित ने उठाया और अपने कथन की पुष्टि में भोजन की समस्या का तर्क दिया और पश्चिम की तरफ से श्री मुन्शी ने भी वही बात कही और यह भी कहा कि युद्ध-स्थिति में परिवर्तन होने के कारण नई परिस्थितियां उत्पन्न हो गई हैं। उच्च क्षेत्रों में भी ऐसे कांग्रेसजनों की कमी न थी जो कार्यक्रम में परिवर्तन के सुझाव का स्वागत करने को तैयार थे।

जून १९४३ के अन्त में संयुक्तप्रान्तीय कांग्रेसियों के एक वर्ग ने राजनीतिक अड़ंगे को समाप्त करने के लिये एक प्रस्ताव किया और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के जो सदस्य जेल से बाहर थे, उनका समर्थन प्राप्त करने की चेष्टा की जाने लगी। भूतपूर्व पार्लीमेंटरी सेक्रेटरी श्री गोपीनाथ श्रीवास्तव ने, जो अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के एक सदस्य थे और हाल ही में जेल से छूटकर आये थे, इस प्रस्ताव के स्पष्टीकरण में एक वक्तव्य प्रकाशित किया, जिसमें कहा गया था:—

"हमारा मत है कि गांधीजी की अनुपस्थिति में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी परिस्थिति की समीक्षा करने की अधिकारिणी है और चूंकि सरकार अगस्तवाले प्रस्ताव को राजनीतिक गतिरोध अनिश्चित काल तक कायम रखने का बहाना बनाये हुए है, हमारा सुझाव है कि अखिल

भारतीय कांग्रेस कमेटी के ऐसे सदस्य, जो जेल से बाहर हों और जिनकी संख्या आवश्यक कोरम से अधिक ही है, सामूहिक रूप से देश की वर्तमान परिस्थिति की समीक्षा करके प्रस्ताव को उस समय तक स्थगित कर सकते हैं जब तक अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी बाकायदा अपनी बैठक करके पिछली घटनाओं तथा भावी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए परिस्थिति पर विचार न कर सके।''

१९२२ में समस्या यह थी कि सत्याग्रह जारी रखा जाय या नहीं ? इस सम्बन्ध में एक समिति नियुक्त की गयी। इस समिति में पक्ष व विपक्ष में बराबर मत थे। परिणाम यह हुआ कि सत्याग्रह वापस ले लिया गया। स्वराज्य पार्टी की स्थापना के लिए भूमि तैयार हो गयी। १९२३ में इस पार्टी को कांग्रेस की केवल अनुमतिमात्र ही थी; किन्तु १९२५ में वह उसकी औरस पुत्री बन गयी। जून १९२५ में देशबंधु की मृत्यु हो गयी। उनके स्थान पर मोतीलालजी दल के एकमात्र नेता बने। १९२९ तक मोतीलाल नेहरू भी कौंसिलों में घुसकर कार्य करने की नीति से ऊब उठे और गांधीजी पर कौंसिलों से बाहर आने की नीति पर जोर देने लगे। फिर कौंसिलों का मोर्चा १९३४ में केन्द्रीय असेम्बली में और बाद में प्रान्तों में किस प्रकार दुबारा कायम हुआ और वाइसराय के आश्वासन देने पर किस प्रकार प्रान्तों में मंत्रिमंडल कायम हुए और १९३९ के अक्तूबर व नवम्बर मास में इन मंत्रिमंडलों को किस तरह अचानक इस्तीफे देने पड़े, यह सब इतने थोड़े समय पहले की कहानी है कि उसे दुहराने की आवश्यकता नहीं है। कांग्रेस-वृक्ष की कुछ शाखाओं में घुन लग चला था और वृक्ष की रक्षा करने के लिए उन घुन लगी हुई शाखाओं का काटा जाना आवश्यक था। दक्षिण भारत में एक भारी तूफान मई, १९२५ में आया था जिससे नारियल के वृक्ष प्रायः अधमरे हो गये थे; किन्तु तीन वर्ष बाद उनमें तिगुने फल लगे। इसी प्रकार कांग्रेस में भी एक तूफान आने को था। वह श्रीवास्तवों, मुंशियों व जीवनलालों की दृष्टि में अधमरा हो रहा था; किन्तु सच्ची आस्था व दूरदर्शिता रखनेवाले व्यक्ति देख रहे थे कि उसमें नये पत्ते आवेंगे और वक्त आने पर पहले से दसगुने फल लगेंगे।

यह बड़ी विचित्र बात थी कि बम्बईवाला प्रस्ताव पास होने के ११ महीने बाद अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का कोई सदस्य हमारे नेता की अनुपस्थिति में अगस्त, १९४२ के प्रस्ताव में परिवर्तन करने की बात सोचता। साथ ही अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी को इस सम्बन्ध में हस्तक्षेप करने का कोई नैतिक अधिकार भी न था।

परन्तु अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक बुलाने और प्रांतों में तथाकथित लीगी वजारत कायम करने के विरुद्ध शीघ्र ही लोकमत कड़ा हो गया। इसका विरोध एक ऐसे व्यक्ति ने किया, जिसकी पत्नी और भाई जेल में थे और जिसने विरोध प्रकट करके अपने परिवार की नेकनामी कायम रखी थी। स्वर्गीय जमनालाल बजाज के पुत्र श्री कमलनयन बजाज ने स्पष्ट व दृढ़ शब्दों में इन सुझावों का विरोध किया। आपने यह भी कहा कि अखिल-भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक बुलाना सिर्फ अनियमित ही न होगा बल्कि ऐसा करना गांधीजी पर विश्वास प्रकट करने या न करने का सवाल भी बन सकता है। श्री बजाज ने यह भी कहा कि वर्तमान परिस्थिति में पार्लीमेंटरी कार्यक्रम बेकार होगा और इस सम्बन्ध में उन्होंने सिंध के अल्लाहबख्श की बर्खास्तगी तथा बंगाल के फजलुल हक के उदाहरण दिये। आपने कहा कि जो लोग जेल से बाहर हैं उन्हें खाद्य तथा भोजन के अभाव से दुखी जनता में आर्थिक व सामाजिक कार्य करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए, गोकि उन्होंने ठीक यह नहीं सोचा था; क्योंकि खाद्य-समस्या सैन्य-समस्या

का अंग थी और राष्ट्र के हाथ में शक्ति आये बिना कुछ भी होना असम्भव था। श्री कमलनयन बजाज के बाद सीमाप्रांत के भूतपूर्व प्रधानमन्त्री की विरोधपूर्ण आवाज़ काबुल तक गूंज गयी।

ब्रिटिश-सरकार की चाल देश के आगे वैध कार्यक्रम लाने की रही है। कभी कांग्रेस का झुकाव अपने क्रांतिकारी लक्ष्य की ओर रहा है और कभी वह वैध कार्यक्रम की ओर झुकती रही है। परिवर्तन-काल में कांग्रेस की स्थिति बड़ी नाज़ुक रही है। वह इस प्रकार के सहयोग से बचती रही है। सच तो यह है कि असहयोग के युग का नाम ही ऐसे निश्चय के कारण पड़ा है। परन्तु जो लोग बौद्धिक स्तर पर लड़ने के आदी रहे हैं वे उसके लिए अत्यन्त ही आतुर रहे हैं। १९२१ में उन्होंने फिर कौंसिल-प्रवेश कार्यक्रम का अनुसरण किया और अपने दल का नाम स्वराज्य पार्टी रखा। १९२६ में स्वयं कांग्रेस ने ही कौंसिल-प्रवेश का कार्यक्रम अमल में लाने का निश्चय किया। १९३० के नमक-सत्याग्रह तथा १९३२-३३ के आंदोलन के परिणामस्वरूप १९३४ में कौंसिल प्रवेश कार्यक्रम फिर आरम्भ हुआ और गांधीजी ने स्वयं ही सविनय अवज्ञा-आंदोलन को बन्द कर दिया। तभी यह भी कहा गया कि कांग्रेस में कौंसिल-प्रवेश का कार्यक्रम अब बना रहेगा। यह सिर्फ बना ही नहीं रहा बल्कि इसका रूप बाधक या विरोधी से रचनात्मक हो गया और तब मन्त्रिमण्डल का निर्माण हुआ। युद्ध छिड़ने पर इस कार्यक्रम में फिर बाधा पड़ी। परन्तु स्मरण रखना चाहिए कि युद्ध से कौंसिल-प्रवेश कार्यक्रम में नहीं बल्कि मन्त्रिमण्डल कार्यक्रम में बाधा पड़ी थी। धारा-सभाओं के सदस्यों ने इस्तीफा नहीं दिया था। अनुकूल परिस्थितियां उत्पन्न होने पर वे अपने पदों पर किसी भी वक्त फिर जा सकते थे। ऐसी हालत में स्वराज्य पार्टी को जन्म देने की बात कहना मूर्खता ही थी। स्वराज्य पार्टी कायम करने का उद्देश्य अन्य दलों से मिलकर मन्त्रिमण्डल कायम करना हो सकता था जब कि कांग्रेस के नेता तथा धारासभाओं के कितने ही कांग्रेसी सदस्य जेलों में थे। जिम्मेदार कांग्रेसजन ऐसे कार्यक्रम को घृणा करते थे।

प्रांतों में प्रतिक्रियापूर्ण नीति

नौकरशाही चुनाव के क्षेत्र में किस प्रकार बाधा उपस्थित कर सकती थी, यह मद्रास के पुलिस कमिश्नर के उस आदेश से स्पष्ट है जो उसने कांग्रेसी उम्मीदवार श्री जी० रंगय्या नायडू की तरफ से होनेवाली चुनाव-सभाओं को रोकने के लिए दिया था। यह चुनाव श्री सत्यमूर्ति की मृत्यु के परिणामस्वरूप केन्द्रीय असेम्बली में रिक्त हुए स्थान के लिए लड़ा जा रहा था। जब जनता ने शहर के पुलिस-अधिकारियों से कांग्रेसी उम्मीदवार के समर्थन में सभाएं करने की अनुमति मांगी, तो पुलिस कमिश्नर ने अनुमति देने से इन्कार कर दिया और इसके समर्थन में अपने २४ अगस्त, १९४२ के उस आदेश का हवाला दिया जिसके द्वारा मद्रास में कांग्रेस कमेटियों तथा उनसे सहानुभूति रखनेवालों पर सभा करने या जुलूस निकालने पर पाबंदी लगादी गयी थी। जस्टिस पार्टी के उम्मीदवार को अपनी तरफ से चुनाव का प्रचार करने की पूरी आजादी थी। दूसरी तरफ नागरिक स्वाधीनता का अपहरण करके चुनाव के लोकतंत्रपूर्ण अधिकार का मजाक बनाया जा रहा था। चार युवक हाथ में पोस्टर लिए चले जा रहे थे। उन्हें बिना अनुमति के जुलूस निकालने के अभियोग में गिरफ्तार कर लिया गया। जुलूस खूब था! दो व्यक्तियों पर १५–१५ रु० और दो व्यक्तियों पर १०–१० रु० जुर्माना किया गया। पुलिस के आदेश से कांग्रेस उम्मीदवार के चुनाव-सम्बन्धी अधिकारों में हस्तक्षेप होता था। आश्चर्य तो यह था कि जनता ने, जो चुनाव के सम्बन्ध में सभा, जुलूस तथा प्रदर्शनों की आदी थी, एक ऐसे उम्मीदवार का समर्थन कैसे किया, जो सिर्फ कांग्रेस का ही प्रतिनिधित्व नहीं करता था बल्कि जिसका विरोधी

उम्मीदवार के ही समान सरकार भी विरोध कर रही थी। चुनाव का नतीजा आशा से कहीं अधिक अच्छा रहा :—

	वोट
जी० रंगय्या नायडू (कांग्रेस)	४,६२८
टी० सुन्दरराव नायडू (जस्टिस)	१,२०८
अनियमित वोट	११६
कुल वोट	६,३६१

मद्रास में चुनाव ५ जून को होनेवाला था इसलिए २८ मई से ५ जून, १६४८ तक होनेवाली अदालती कार्रवाई का लाभ भी कांग्रेस को नहीं मिल सका। पुलिस कमिश्नर के आदेश में सिर्फ अनियमित ठहरायी गयी संस्थाओं के सदस्यों पर ही नहीं, बल्कि उनके समर्थकों या सहानुभूति रखनेवालों पर भी जुलूस निकालने और सभा करने की पाबन्दी लगायी गयी थी। श्री रंगय्या नायडू ने अनुमति पाने के लिए खुद ही लिखा था; किन्तु उनसे पूछा गया कि वे आदेश में निर्दिष्ट किसी कांग्रेस कमेटी के सदस्य हैं या नहीं, और जब श्री नायडू ने इस प्रश्न का उत्तर देने से इन्कार कर दिया तो पुलिस कमिश्नर ने कहा कि उत्तर न देने के कारण वह चुनाव की सभाओं के लिए इजाज़त देने में असमर्थ हैं।

सरकार की इस कार्रवाई से कांग्रेसी उम्मीदवार की शक्ति बढ़ गयी जिससे उन्होंने जस्टिस पार्टी के उम्मीदवार को अच्छे बहुमत से हरा दिया। यदि जुलूस व सभाओं की सुविधा होती तो पड़े वोटों में क्या अंतर होता, इस सम्बन्ध में अनुमान लगाना बेकार है। मद्रास-सरकार की चुनाव-सम्बन्धी नीति का परिणाम खुद उसी के विरुद्ध हुआ और इसे ध्यान में रखते हुए विचार किया जाय तो प्रकट होगा कि संयुक्त प्रांत, बिहार व मद्रास की सरकारों ने उच्च धारा-सभाओं के रिक्त स्थानों के चुनाव का विचार त्यागकर बुद्धिमत्ता का ही परिचय दिया। सरकार को कांग्रेस की सफलता का डर पैदा हो गया। सिर्फ दो महीने पहले ही डा० गिल्डर ने बम्बई के मेयर पद का चुनाव जेल से लड़ा था और अपने प्रतिस्पर्धी को आसानी से हरा दिया था।

मार्च, १६४३ में एक नजरबन्द बाबू श्यामापद भट्टाचार्य बरहामपुर म्युनिसिपैलिटी के अध्यक्ष निर्विरोध चुने गये और उधर दूसरी तरफ केन्द्रीय असेम्बली के लिए १६४१ में पालकोल्ले के श्री ए० सत्यनारायण आंध्र देश से निर्विरोध चुन लिए गये। यह सब नौकरशाही की आंख में कांटे की तरह गड़ रहा था और इसीलिए वह कांग्रेस को चुनाव के क्षेत्र से हटाने के लिए प्रत्येक प्रयत्न करने लगी।

: २६ :

समाचार-पत्रों का सहयोग

ऊपर के पृष्ठों में भारतीय आन्दोलनों की ब्रिटेन व भारत में और भारत के विभिन्न सम्प्रदायों व प्रसिद्ध व्यक्तियों की प्रतिक्रिया की चर्चा की जा चुकी है। ८ अगस्त के दिन महात्मा गांधी ने समाचारपत्रों से निम्न अपील की, "समाचारपत्रों को अपना फर्ज स्वच्छंदता व निर्भयता से अदा करना चाहिए। समाचारपत्रों को यह मौका न देना चाहिए कि सरकार उन्हें दबा सके या घूस देकर उनका मुंह बन्द कर सके। समाचारपत्रों को अपना दुरुपयोग किये जाने के स्थान पर बन्द हो जाना ज्यादा अच्छा समझना चाहिए और फिर उन्हें अपनी इमारत, मशीन व दूसरे साज-सामान से हाथ धो लेने के लिए तैयार रहना चाहिए। सम्पादक-सम्मेलन की स्थायी समिति ने सरकार को जो आश्वासन दिया है, समाचारपत्रों को उससे मुकर जाना चाहिए। पकल साहब को समाचारपत्रों का यही उत्तर हो सकता है। समाचारपत्रों को अपना सम्मान खोकर लांछन के सामने आत्म-समर्पण न करना चाहिए। आजकल की दुनिया में समाचारपत्र ही लोकमत को बनाते या बिगाड़ते हैं और वही सत्य का प्रचार करते हैं या उसके सम्बन्ध में भ्रम फैलाते हैं। दमनकारी कुठार सबसे पहले इन समाचारपत्रों पर पड़ा। सरकार का एक आर्डिनेंस ६ अगस्त, १६४२ को प्रकाशित हुआ, जिससे साफ साफ बता दिया गया कि क्या छपना चाहिए और क्या नहीं।। इस आर्डिनेंस के कारण समाचारपत्र भौचक्के रह गये। समाचारपत्र उस व्यक्ति के समान महसूस करने लगे जो पहले बहते हुए पानी में अबाधित रूप से तैरने का आदी हो और जिसे अब हाथ-पैर बांधकर व आंखों पर पट्टी लगाकर तूफानी नदी में फेंक दिया गया हो और ऐसी हालत में उससे भंवरों व ज्वार-भाटे के प्रवाह से बचने की आशा की गयी हो। यह स्वाभाविक ही था कि समाचारपत्र ऐसी तूफानी नदी में छलांग लगाने से पहले खूब सोच-विचार करते। अखिल भारतीय पत्रकार-सम्मेलन की प्रबन्ध-समिति की बैठक २३ अगस्त को बम्बई में हुई और उसमें इन प्रतिबंधों का विरोध किया गया।

युद्ध एक असाधारण घटना है। उसके कारण युद्धक्षेत्र व अन्य क्षेत्रों को शान्ति व कानून में खलल पड़ जाता है। १० नवम्बर को आस्ट्रेलियन न्यूजपेपर प्रोप्राइटर्स एसोसियेशन के अध्यक्ष ने भाषण करते हुए सिडनी में कहा, "ऐसा कहने से मेरा यह इरादा नहीं है कि लोग समझें कि यह सरकार पिछली सरकार की तुलना में अच्छी या बुरी है या उसकी नीयत में कोई बुराई है... लेकिन यह कहा जा सकता है कि सेंसर-व्यवस्था का अधिकाधिक उपयोग ऐसी बातों के लिए होने लगा है, जिनसे जनता का कल्याण नहीं होता......यदि आप समाचारपत्रों को खबरें पाने या वितरित करने के साधनों से वंचित करते हैं तो आप सेंसर-व्यवस्था के ही समान दमन करते हैं।... समाचारपत्रों की स्वाधीनता का मतलब यही है कि आप जो चाहें कहें और लिखें।......" परन्तु

भारत को इस तथ्य से संतोष न मिल सकता था कि उसीके समान दूसरे देशों में भी सेंसर या निरीक्षण की व्यवस्था काम कर रही है।

समाचारपत्रों की समस्या पर राबर्ट लैश ने प्रकाश डाला, "सच तो यह है कि समाचारपत्र तभी स्वतंत्र हो सकते हैं, जब उनके स्वामी उनका स्वतंत्र होना चाहेंगे। अमरीका में (और भारत में भी) एक वैधानिक क्रान्ति की जरूरत है जिसमें राजाओं यानी प्रकाशकों के अधिकार प्रधान-मंत्रियों यानी सम्पादकों को हस्तांतरित कर दिये जायं। समाचारपत्रों को बाहरी शत्रु से लड़ने के बजाय भीतरी शत्रु से लड़ना चाहिए। जितनी स्वाधीनता का उपभोग वे खुद करते हैं और जितनी स्वाधीनता जनता को प्राप्त है, इसके मध्य एक खाई है और इस बढ़ती हुई खाई को हमें एक चेतावनी के रूप में मानना चाहिए।" ये शब्द 'शिकागो सन'(लेफ्टविंग) के लेखक श्री राबर्ट लैश ने अपने एक लेख में लिखे थे जिसके लिए 'एटलांटिक मंथली' ने उसे १००० डालर पुरस्कार में दिये थे। यही सलाह भारत के समाचारपत्रों की भी पथ-प्रदर्शक होनी चाहिए; क्योंकि इसी तरह हम पूर्व व पश्चिम में समाचारपत्रों के नियंत्रण करनेवालों पर विजय प्राप्त कर सकते हैं।

एडवर्ड थॉम्पसन ने मेटकाफ के जीवन-चरित्र सम्बन्धी अपनी पुस्तक में भारतीय समाचार-पत्रों के विकास पर प्रकाश डाला है:—

भारत में मेटकाफ न समाचारपत्रों को स्वाधीनता प्रदान की जिससे डाइरेक्टर व अवकाश-प्राप्त अधिकारीवर्ग नाराज हुए। परन्तु मेटकाफ ने भारतीय पत्रों को स्वाधीनता थोड़े ही दी थी। उसने तो स्वाधीनता भारत में अंग्रेजों के समाचारपत्रों को दी थी। वारेन हेस्टिंग्स के जमाने में अंग्रेजी पत्रों की गन्दगी व गैर-जिम्मेदारी से बचाव का एक ही तरीका हिंसा थी। कलकत्ता का यूरोपीय समाज अनाचार व अशिष्टाचार के प्रति आंखें मूंदे हुए था। अपने कारनामों की आलोचना उसे प्रिय न थी। यूरोपीय पत्रकारों में सबसे प्रमुख जेम्स ए० हिकी की कई बार मरम्मत हो चुकी थी। शताब्दी के समाप्त होते-होते लार्ड वेलेज़ली ने संकटपूर्ण परिस्थिति होने के कारण समाचारपत्रों पर लगे हुए नियंत्रण को फिर कड़ा किया। जो लार्ड वेलेजली चाहता था उसे पत्रकार लिख सकता था; किन्तु अगर पत्रकार विरोधी बात लिखना चाहता था तो उसे भारत से बाहर चले जाना पड़ता था। लार्ड मिंटो सरकार के इस अस्पष्ट रुख को और आगे ले गये। बिना किसी रुकावट के बातें प्रकट करने का भय अब बहुत बड़ी व्याधि बन गया। उन दिनों हमारी (अंग्रेजों की) नीति हिन्दुस्तान के निवासियों को बर्बरता व अंधकार में रखने की थी और यह नीति कम्पनी-राज्य की सीमा के बाहर में भी काम में लायी जाती थी। एक बार निजाम ने यूरोपीय मशीनों में कुछ दिलचस्पी जाहिर की थी। रेजिडेंट ने तुरन्त निजाम को हवा भरनेवाला पम्प, छपाई की मशीन और जंगी जहाज के नमूना मंगा दिये। साथ ही रेजिडेंट ने इस कार्य की सूचना अपनी सरकार के पास भेजी जिसपर यह कहकर उसकी भर्त्सना की गयी कि छापे की मशीन-जैसी खतरनाक वस्तु एक देशी नरेश के हाथ में क्यों दी गयी। रेजीडेंट ने अपनी सफाई में कहा कि निजाम ने छापे की मशीन में कोई दिलचस्पी नहीं ली है और अगर सरकार जरूरत समझे तो निजाम के तोशाखाने से उसे नष्ट कराया जा सकता है। १८१८ में 'कलकत्ता जर्नल' की शुरूआत की गई। इसमें आरम्भ से ही सरकारी कर्मचारियों की शिकायतों को प्रकट किया जाने लगा। सरकारी अधिकारी अपनी कमजोरियों के इस प्रकार प्रकाश में लाये जाने पर आपत्ति करने लगे; लेकिन लार्ड हेस्टिंग्स ने उपेक्षा-भाव प्रकट करते हुए कोई कार्यवाही करने से इन्कार कर दिया। १४ मार्च व १५ अप्रैल, १८२३ के कानूनों-द्वारा तत्कालीन ब्रिटिश पत्रों का मुंह बन्द कर दिया गया।

यूरोपियनों को इस पर बड़ी नाराजी हुई और लार्ड एमहर्स्ट के वक्त में जब कोई कार्रवाई इस समाचारपत्र-क़ानून के अन्तर्गत न की गई तो भी इस नाराजी में कुछ कमी नहीं हुई। वेंटिंग के वक्त में समाचारपत्रों की स्वाधीनता का काफ़ी विस्तार हुआ। पत्रों में गवर्नर-जनरल को बुरा-भला कहा जाता था; किन्तु वे इसका बुरा नहीं मानते थे। वे कहा करते थे कि समाचारपत्र जानकारी प्राप्त करने के लिये उनके सबसे बड़े साधन हैं। मेटकाफ़ भी उनसे पूर्णतया सहमत थे।

लेकिन मालकम पत्रों की आलोचनाओं से आग बबूला हो गये और उन्होंने लिखा:—

"गोकि मैं सहनशील व्यक्ति हूँ फिर भी मेरी सहनशीलता की सीमा है, जिसे हर शरीफ़ आदमी समझ सकता है...आपका 'कलकत्ता जर्नल' एक गड़बड़-घोटाला है। वह प्रत्येक बात का विरोध करता है। उसमें छापे की ग़लतियों की भरमार रहती है। उसका कहना है कि पार्लमेंट में भारत के सम्बन्ध में जो बहस हुई है उसकी प्रतिलिपि छपाकर बंगाल में रखी जाय, ताकि यहां जनता को प्रकट हो कि भारत में भाषण की स्वतन्त्रता का दमन करने में हम साधारण कानून की सीमाओं को पार कर गये हैं।"

भारत में समाचारपत्र जितने सरकार के समर्थक रहे हैं उतने ही उसके विरोधी भी। एक गुलाम देश में, जिसमें राष्ट्रीय भावना जाग उठी है, यह उम्मीद नहीं की जा सकती कि समाचार-पत्र नौकरशाही की प्रत्येक बात का समर्थन करेंगे। कांग्रेस के जन्म से पहले ही भारत में समाचार पत्रों का दमन आरम्भ हो गया था। १८७८ के 'वर्नाक्यूलर प्रेस ऐक्ट' के अन्तर्गत लार्ड लिटन के समय में समाचारपत्रों का मुंह बन्द कर दिया गया था। उस समय से लेकर अभी तक ब्रिटिश सरकार अंग्रेजी में प्रकाशित होनेवाले पत्रों की तुलना में प्रांतीय भाषाओं के पत्रों से अधिक भयभीत रही है। गोकि १८७८ का कानून बहुत पहले ही रद् कर दिया गया था; लेकिन भारत के राजनीतिज्ञों के समान उसके समाचारपत्र भी दमन-नीति का शिकार होते रहे। समाचरपत्रों का यह दमन राजविद्रोह के सम्बन्ध में धारा १२४—ए (१८९७) द्वारा वर्गघृणा के सम्बन्ध में धारा १५३—ए द्वारा, १९०८ के समाचारपत्र (अपराधों के लिए प्रोत्साहन)-कानून-द्वारा तथा १९१० के समाचारपत्र-कानून-द्वारा होता रहा। जमानत जमा करनेवाला कानून नये तथा पुराने पत्रों पर अलग-अलग ढंग से अमल में लाया जाता था। इस कानून के पास होने से पांच वर्ष की अवधि के भीतर ९९१ पत्रों तथा प्रेसों पर उसका वार हुआ और चेतावनी देने से लेकर भारी जमानतें मांगी जाने और जब्त किये जाने की घटनाएं हुईं। जमानतें मांगी जाने के परिणामस्वरूप १७३ नये छापेखानों व १२९ नये पत्रों की शैशवावस्था में ही मृत्यु हो गयी और १९१० से चालू होने वाले ७० पत्रों व छापेखानों को जमानती कार्रवाई के कारण भारी हानि उठानी पड़ी। १९२१ में अन्य दमनकारी कानूनों के साथ 'समाचारपत्र कानून' को भी रद् कर दिया गया; किन्तु इस एक कानून के रद् होने पर अन्य कितने ही दूसरे कानून पास हुए। इस बार नरेशों की रक्षा के बहाने से समाचारपत्रों पर पाबन्दियां लगायी गयीं और देशी राज्य-दुर्भावना-निवारक कानून व नरेश-संरक्षण कानून पास हुए।

इस तरह हमें सात या आठ साल के लिए कुछ चैन मिल गया। फिर नमक-सत्याग्रह का आरम्भ होते ही आर्डिनेंस-शासन भी आरम्भ हो गया। शायद सबसे पहला आर्डिनेंस समाचार-पत्रों से संबन्धित आर्डिनेंस था और छः महीने के भीतर ही इसके अनुसार १३१ पत्रों से २,४०,००० रु० झटक लिया गया। सबसे अधिक जमानत एक पत्र से ३०,००० रु० की मांगी गयी थी। परन्तु जिन पत्रों ने जमानतें जमा कर दी थीं उनसे कहीं अधिक कष्ट उन पत्रों को हुआ, जो

जमानतें दे नहीं सके। लगभग ४५० पत्र जमानतें नहीं भर सके। १६३५ में ७२ समाचारपत्रों के विरुद्ध कार्रवाई की गयी और लगभग १ लाख रुपये की जमानतें मांगी गयीं। केवल १५ पत्र ही मांगी गयी जमानतें दे पाये। दूसरे महायुद्ध के समय भारत-रक्षा विधान ऊपर से था। अखिल भारतीय सम्पादक-सम्मेलन का कहना है कि अगस्त, १६४२ के पिछले तीन सप्ताहों में ६६ पत्र या तो दबा दिये गये और या उन्होंने अपने ही आप अपना काम बन्द कर दिया। मद्रास प्रान्त में १७ दैनिक पत्रों का और १ साप्ताहिक पत्र का निकलना बन्द हो गया। बम्बई प्रान्त में ६ दैनिक पत्रों, १७ साप्ताहिकों और ५ मासिकों का निकलना बन्द हो गया। अखिल भारतीय पत्र-सम्पादक-सम्मेलन की स्थापना व विकास का इतिहास व्यक्तिगत सत्याग्रह (१६४०-४१) के वर्णन के साथ दिया गया है। १६४२-४३ के उपद्रवों में स्थायी समिति को कितनी ही नाज़ुक व कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा और सम्पादकों के रूप में अपने अधिकारों की रक्षा तथा राष्ट्रीय कार्यों में जनता के प्रति अपना कर्तव्य पूरा करने के लिए उसे कितने ही संघर्ष करने पड़े। उसे सरकार के प्रतिनिधि के रूप में अपने सदस्यों पर भी दृष्टि रखनी पड़ी और कभी-कभी उसके विरुद्ध कार्रवाई भी करनी पड़ी। कितनी ही बार स्थायी समिति बड़ी अप्रिय परिस्थिति में पड़ गयी और उसे दमन का शिकार होनेवाले कुछ ऐसे समाचारपत्रों की आलोचनाओं का शिकार बनना पड़ा, जो आत्म-सम्मान की रक्षा करते हुए सरकार की शर्तें स्वीकार करके उनपर अमल करने में असमर्थ थे। यदि कोई अलिखित समझौता भंग होता है तो लिखित समझौता भंग होने की तुलना में अधिक असन्तोष होता है। यह झगड़ा कानूनी विवाद की अपेक्षा नैतिक झगड़ा बन जाता है। कानूनी झगड़े का निबटारा तो अदालतों में होना सम्भव है; किन्तु नैतिक झगड़े का निबटारा दोनों पक्षों के अन्तःकरण की अदालत के अलावा और कहीं नहीं हो सकता। अलिखित समझौता उसी हालत में भंग होता है, जब अन्तःकरण की वाणी मौन हो जाती है। अखिल भारतीय पत्र-सम्पादक-सम्मेलन को ऐसी कितनी ही कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा।

सरकार ने ६ अगस्त को कांग्रेस पर जो तूफानी हमला किया उसकी शुरुआत प्रकट रूप से तो गांधीजी व उनके साथियों की गिरफ्तारी से हुई थी; किन्तु समाचारपत्र-सम्बन्धी आदेश का मसविदा ८ अगस्त को ही तैयार कर लिया गया था। इस आदेश के द्वारा अखिल भारतीय कांग्रेस-कमेटी-द्वारा कथित सामूहिक आन्दोलन अथवा उसके विरुद्ध सरकारी उपायों के संबन्ध में सरकारी सूत्रों, असोसियेटेड प्रेस, यूनाइटेड प्रेस, ओरियंटल प्रेस अथवा रजिस्टर्ड पत्र-प्रतिनिधि-द्वारा भेजे गये समाचारों के अतिरिक्त और कोई खबर छापने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था। इस संबन्ध में बंबई-सरकार-द्वारा समाचारपत्रों के सम्पादकों के नाम भेजी गयी निम्न गश्ती चिट्ठी मनोरंजक होगी:—

"गोपनीय, अत्यावश्यक

पी० डबल्यू० डी० सेक्रेटेरियट
बम्बई, ४-८-१६४८।

प्रिय महोदय,

कांग्रेस कार्यसमिति के प्रस्ताव के सम्बन्ध में जिस सामूहिक सविनय अवज्ञा-आन्दोलन का हवाला दिया गया है, उसके सम्बन्ध में मैं आपको सूचित करना चाहता हूं कि जहां एक तरफ सरकार की इच्छा प्रस्ताव के रचनात्मक अंश के सम्बन्ध में विवाद या कांग्रेस दल के रुख की व्याख्या पर कोई प्रतिबंध लगाने की नहीं है वहां यह बहुत ही अवांछनीय है कि एक ऐसे

आन्दोलन का समर्थन किया जाय जो खुद गांधीजी के शब्दों में खुला विद्रोह होगा और जिस पर अभी अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की स्वीकृति मिलनी शेष है। इसलिए आपके अपने हित में ही मैं आपको सलाह देता हूँ कि आप ऐसे वक्तव्यों व लेखों को प्रकाशित न करें, जिनके कारण प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से आन्दोलन को समर्थन या प्रोत्साहन मिलता हो अथवा जिनसे आन्दोलन चलानेवालों की योजना के अग्रसर होने की सम्भावना हो।

मैं आपको यह भी स्मरण दिलाना चाहता हूं कि ऐसे आन्दोलन का एकमात्र उद्देश्य सरकार की शासन-व्यवस्था में खलल डालना होगा और इस प्रकार युद्ध-संचालन में हस्तक्षेप होना अनिवार्य है। ऐसी हालत में समाचारपत्रों-द्वारा इस प्रकार के आन्दोलन का समर्थन अखिल भारतीय समाचारपत्र-सम्पादक सम्मेलन-द्वारा दिये वचन के विरुद्ध होगा।

सेवा में— आपका—

बम्बई नगर के समाचारपत्रों (ह०) ह्याम एस० इजराइल

के सभी सम्पादक स्पेशल प्रेस एडवाइजर"

इस गश्ती-चिट्ठी से पूर्व भारत-सरकार के गृह-विभाग ने सम्पादक-सम्मेलन के अध्यक्ष के पास एक तार भेजा था। अध्यक्ष महोदय का गश्ती पत्र, जिसमें उपर्युक्त तार भी सम्मिलित है, नीचे दिया जाता है:—

अखिल भारतीय समाचारपत्र-सम्पादक-सम्मेलन

"गोपनीय

कस्तूरी बिल्डिंग, माउंट रोड

मद्रास, ३१ जुलाई, १९४२

प्रिय मित्र,

मैं आपका ध्यान भारत-सरकार के गृह-विभाग के निम्न तार की ओर आकृष्ट करता हूं। यदि आप इसका सारांश अपने क्षेत्र के अन्य पत्रों के पास भेज सकें तो बड़ी कृपा होगी :—

"श्रीनिवासन, अध्यक्ष, अखिल भारतीय समाचार सम्पादक-सम्मेलन, हिन्दू, मद्रास।

"इधर हाल में हमें समाचारपत्रों में ऐसी बहुत-सी पाठ्य-सामग्री दिखायी दी है, जिसे सरकार के विरुद्ध सामूहिक आन्दोलन करने के लिए प्रोत्साहन कहा जा सकता है। हम आपको स्मरण दिलाना चाहते हैं कि दिल्ली-समझौते के अनुसार समाचारपत्र किसी ऐसे आन्दोलन का समर्थन नहीं कर सकते जिससे युद्ध-संचालन में अनिवार्य रूप से गम्भीर हस्तक्षेप होता हो। यदि आप सम्पादक-सम्मेलन के सभी सदस्यों तथा प्रान्तीय कमेटियों के आयोजकों के पास इसकी सूचना भेज सकें तो हमें बड़ी प्रसन्नता होगी—गृह विभाग।"

आपका शुभचिन्तक—

(ह०) के० श्रीनिवासन।

केन्द्रीय सरकार ने २९ अगस्त के दिन एक आदेश निकालकर अपने ८ अगस्तवाले आदेश को, जहां तक उसका सम्बन्ध दिल्ली प्रान्त के सम्पादकों, मुद्रकों तथा प्रकाशकों से था, रद कर दिया। ८ अगस्तवाले आदेश के अनुसार मुद्रकों तथा प्रकाशकों पर यह प्रतिबंध लगाया गया था कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी-द्वारा मंजूर किये गये सामूहिक आन्दोलन के या उसके दमन के लिए किये गये सरकारी उपायों के सम्बन्ध में उनके संवादों के अतिरिक्त और कोई संवाद नहीं प्रकाशित कर सकते, जो सरकारी सूत्रों, संवाद-समितियों या जिला-मजिस्ट्रेटों-द्वारा रजिस्टर्ड

संवाददाताओं द्वारा प्रेषित हों। गृह-विभाग के इस आदेश के साथ ही चीफ कमिश्नर ने निम्न आदेश भी प्रकाशित किया, "चूंकि चीफ कमिश्नर का विश्वास है कि सार्वजनिक शान्ति व सुरक्षा कायम रखना और युद्ध-सञ्चालन सुचारु रूप से चलते रहना आवश्यक है, इसलिए निम्न आदेश जारी किया जाता है :—

भारत-रक्षा विधान के नियम ४१ के उप-नियम (१) के अंतर्गत प्राप्त विशेष अधिकारों के अनुसार चीफ कमिश्नर ने दिल्ली प्रांत के मुद्रकों, प्रकाशकों व सम्पादकों के नाम निम्न आदेश निकाला है—(क) अखिल-भारतीय कांग्रेस कमेटी ने अपनी बम्बई की बैठक में ८ अगस्त, १९४२ के दिन जिस सामूहिक आंदोलन की मंजूरी दी थी उसके सम्बन्ध में, उस बैठक के समय से भारत के विभिन्न भागों में जो प्रदर्शन व उपद्रव हुए हैं और अधिकारियों ने सामूहिक आंदोलन व प्रदर्शनों व उपद्रवों से सामना करने के लिए जो उपाय किये हैं, इन सब के सम्बन्ध में तथ्य विषयक कोई संवाद या चित्र असिस्टेंट प्रेस एडवाइजर लाला सावित्रीप्रसाद अथवा चीफ कमिश्नर द्वारा इसी उद्देश्य के लिए नियुक्त किसी दूसरे अफसर को प्रकाशित होने से पहले दिखाये जायँ, और (ख) किसी समाचार-पत्र या किसी भी कागज (क) में निर्दिष्ट कोई सामग्री तब तक प्रकाशित न की जाय जब तक नियुक्त अधिकारी उसे प्रकाशन के उपयुक्त प्रमाणित न करदे।"

गृह-सदस्य ने कहा कि सम्पादक-सम्मेलन व सरकार के मध्य दिल्ली में प्रकाशित होने-वाले सभी तथ्य-सम्बन्धी संवादों की जांच के विषय में समझौता हो चुका है। सम्मेलन के सेक्रेटरी ने इससे इन्कार करते हुए कहा, "मुझे अचरज हुआ है कि सरकार के दो जिम्मेदार प्रतिनिधियों ने धारासभाओं में दो ऐसे वक्तव्य दिये हैं जो तथ्यों के विरुद्ध हैं और जिनका खंडन न किया गया तो सदस्यों व जनता में गलतफहमी फैल सकती है।

सम्मेलन के अध्यक्ष ने तुरन्त गृह-विभाग के पास एक पत्र भेजा जिसमें कहा गया था :-

"प्रतिबंधों के सम्बन्ध में प्रांत-प्रांत में अन्तर है और इसीलिए कार्य-पद्धति भी एक जैसी नहीं है। उदाहरण के लिए स्थायी समिति संवाददाताओं के नाम दर्ज कराने की प्रणाली का उद्देश्य यह समझती है कि संवाददाता स्थायी अधिकारियों के पूर्ण नियंत्रण में आ जायँ और साथ ही सम्पादकों के पास अपने संवाददाताओं से निष्पक्ष समाचार पाने का जो साधन है वह भी बन्द हो जाय। समाचार-पत्रों के लिए अधिकारियों को संवाद दिखाने का अनिवार्य नियम बनाने, उपद्रव-सम्बन्धी समाचारों की संख्या सीमित करने और शीर्षकों तथा समाचारों को प्रकाशित करने के स्थान पर प्रतिबंध लगाने का स्थायी समिति के मत से केवल एक ही मतलब हो सकता है और वह यह कि सरकार तथ्य-सम्बन्धी समाचारों के प्रकाशित करने पर ही नहीं बल्कि उनके स्वरूप पर भी प्रत्येक अवस्था में नियंत्रण रखना चाहती है।"

२८ सितम्बर को राज-परिषद् में सरकार की नीति की आलोचना करते हुए पं० हृदयनाथ कुंजरू ने कहा कि सैन्य-आवश्यकताओं के अतिरिक्त अन्य सभी प्रकार के समाचारों का नियंत्रण तोड़ देना चाहिए। पंडित कुंजरू ने राज-परिषद् में निम्न प्रस्ताव उपस्थित किया—"यह परिषद् गवर्नर-जनरल से सिफारिश करती है कि समाचार-पत्रों पर लगाये गये प्रतिबंधों में, जिनसे काफी असंतोष फैल गया है, इस प्रकार संशोधन होना चाहिए जिससे कि समाचार-पत्रों तथा जनता के अधिकारों की रक्षा हो सके। विशेषकर समाचारों और वक्तव्यों की पहले से काट-छांट समाप्त होनी चाहिए। काट-छांट सिर्फ सैनिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए ही होनी चाहिए।"

माननीय पंडित हृदयनाथ कुंजरू ने हिन्दू विश्वविद्यालय के विरुद्ध की गई कार्रवाई के

सम्बंध में कहा :—

"इस गम्भीर घटना के बारे में एक शब्द भी जनता तक नहीं पहुँचने दिया गया है। क्या इसे रंचमात्र भी न्याय कहा जा सकता है। हिन्दू-संप्रदाय के प्रति अपनी जिम्मेदारी के कारण सरकार को यह समाचार प्रकाशित होने देना चाहिये था। प्रतिबन्धों की वर्तमान प्रणाली इस भांति काम कर रही है कि जनता व पत्र यह महसूस करने लगे हैं कि सरकार केवल उन समाचारों के प्रकाशन पर ही प्रतिबंध नहीं लगा रही है, जिनका सैनिक दृष्टि से महत्व हो या जिनसे उपद्रवों को प्रोत्साहन मिलता हो, बल्कि वह तो राष्ट्रीय आंदोलन तथा उसके दमन के सिलसिले में किये जानेवाले अत्याचारों की खबरों को भी दबा रही है। यही नहीं, सरकार देश की वर्तमान अवस्था की खबरें अमरीका, चीन व खुद ब्रिटेन तक जाने से रोक रही है। भारत-सरकार की नीति के संबन्ध में यह सब से गम्भीर आरोप है।"

पंडित कुंजरू ने आगे कहा कि "वर्तमान असाधारण परिस्थिति को ध्यान में रखकर मैं यह आरोप लगा रहा हूँ। मुझे आशा है कि इस बहस के परिणामस्वरूप सरकार की नीति में परिवर्तन हो जायगा। सरकार अनुभव करेगी कि अनुचित उपायों को काम में लाकर तथा इस देश की वास्तविक अवस्था का चित्र भारत की जनता तथा अन्य देशों तक न पहुँचने देकर सरकार अविश्वास व असंतोष में वृद्धि कर रही है। सरकार उन लोगों से भी मुंह मोड़ रही है जो कांग्रेस की नीति के निन्दक हैं।"

यह प्रस्ताव ६ के विरुद्ध २३ मतों से अस्वीकृत हो गया। सर रिचार्ड टोटनहम ने बहस का उत्तर देते हुए कहा :—

"जहां तक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय संबंधी खबरों का संबंध है, मेरा निजी रूप से विश्वास है कि घटना होने के समय खबरों का प्रकाशित होना सार्वजनिक हित के विरुद्ध होता। परन्तु मद्रास के 'हिन्दू' ने यह समाचार १३ सितम्बर को प्रकाशित किया था। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी में गांधीजी का जो भाषण हुआ था वह उस आदेश के अन्तर्गत नहीं आता जो उपद्रवों या सामूहिक आंदोलनों के तथ्य विषयक समाचारों के सम्बन्ध में निकाला गया था। यह संभव है कि संवाद-एजेंसियों ने स्वयं ही भाषण को काट-छांट के लिए उपस्थित किया हो या संवाद-समितियों ने खुद ही सम्पूर्ण भाषण को प्रकाशित न करने का निश्चय किया हो। इस आदेश के संबंध में एक याद रखनेवाली बात यह है कि उसका संबन्ध सिर्फ तथ्यों संबन्धी संवादों से था। संपादकीय आलोचना के संबन्ध में कोई भी प्रतिबंध न था। इस महत्वपूर्ण विषय को सरकार ने संपादकों के निर्णय पर छोड़ दिया था। सूचना-सदस्य सर सी० पी० रामस्वामी अय्यर ने पत्र-प्रतिनिधियों के मध्य भाषण करते हुए यह स्पष्ट कर दिया था कि राजनीतिक विचार प्रकट करने पर कोई प्रतिबंध नहीं है।"

१९४२ में अखिल भारतीय संपादक सम्मेलन के कार्य की समीक्षा करते हुए उसके अध्यक्ष श्री के० श्रीनिवासन ने सरकार पर दिल्लीवाला समझौता तोड़ने और "भीतर शत्रु होने" का भय दिखाकर भारतीय समाचार-पत्रों को बुरी तरह काट-छांट करने का आरोप लगाया। "यदि हमारे मत से कोई प्रस्ताव अपमानजनक तथ्य पेशे की प्रतिष्ठा के विरुद्ध है अथवा जिसके कारण एक जिम्मेदार समाचार-पत्र के रूप में हमारा अस्तित्व असम्भव हो जाता है, तो उसे हमारे स्वीकार करने का कोई प्रश्न नहीं उठता।"

अखिल भारतीय समाचार पत्र-सम्पादक-सम्मेलन से पूर्व अक्तूबर के पहले सप्ताह में

प्रकाशन स्थगित करनेवाले सम्पादकों में कुछ बेचैनी का भाव उत्पन्न हो गया और उन्होंने 'इंडियन एक्सप्रेस' के सम्पादक श्री रामनाथ गोइनका की अध्यक्षता में एक पृथक् सम्मेलन किया और सर्वसम्मति से चार प्रस्ताव पास किये। तीसरा प्रस्ताव इस प्रकार है :—

इस सम्मेलन का मत है कि अखिल भारतीय समाचार-पत्र-सम्पादक-सम्मेलन वर्तमान संकटकाल में देश के राष्ट्रीय समाचार-पत्रों का नेतृत्व करने में असफल रहा है। इसीलिए वह सम्मेलन से अनुरोध करता है कि देश के राष्ट्रीय समाचार-पत्रों की तरफ से वह और कोई वचन न दे। अब तक जो वचन दिये जा चुके हैं उनके सम्बन्ध में जिम्मेदारी से भी वह अपना हाथ खींचता है।"

अखिल भारतीय समाचार-पत्र-सम्मेलन का अधिवेशन अपना नया विधान स्वीकार करने तथा नयी स्थायी समिति का चुनाव करने के बाद ५ अक्तूबर को समाप्त हो गया। इसमें समाचारों की काट-छांट–प्रणाली, समाचार सम्बन्धी तारों के देरी से पहुंचने और पत्रकारों की गिरफ्तारी व नजरबन्दी का विरोध किया गया। सम्मेलन ने मत प्रकट किया कि वह समाचारों की पहले से काट-छांट की प्रत्येक प्रणाली का विरोधी है। सामूहिक आंदोलन या उपद्रवों से सम्बन्ध रखनेवाली किसी भी घटना का विवरण उपस्थित करने के लिए समाचार-पत्र आजाद रहने चाहिए। परन्तु सम्मेलन यह आवश्यक समझता है कि इस प्रकार के विवरण प्रकाशित करते समय पत्र संयम से काम लें और ऐसी कोई चीज प्रकाशित न करें, जिससे

(क) जनता को विध्वंसात्मक कार्य के लिए प्रोत्साहन मिलता हो,

(ख) गैर-कानूनी कार्यों के लिए सुझाव या आदेश प्राप्त हों,

(ग) पुलिस, सैनिक अथवा अन्य सरकारी कर्मचारियों-द्वारा अधिकारों के अत्यधिक या अनुचित प्रयोग के सम्बन्ध में अथवा बंदियों या नजरबंदों के प्रति व्यवहार के सम्बन्ध में निराधार या अतिरंजित विवरण मिलता हो, और

(घ) सार्वजनिक सुरक्षा की भावना कायम होने में बाधा पड़ती हो। यदि कोई समाचार-पत्र इस प्रस्ताव में उल्लिखित नीति के विरुद्ध चले तो उसके सम्बन्ध में प्रांतीय सरकारों को प्रांतीय समाचार-पत्र सलाहकार समिति के परामर्श से कार्रवाई करनी चाहिए।

भारत की विभिन्न प्रांतीय सरकारों ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया।

राजपरिषद् के जाड़ेवाले अधिवेशन में समाचार-पत्रों की स्थिति के सम्बन्ध में एक जोरदार बहस हुई। यह बहस पंडित हृदयनाथ कुंजरू के प्रस्ताव पर हुई थी, जिसमें कहा गया था कि युद्ध के अतिरिक्त अन्य विषयों के समाचारों पर से, खासकर उन समाचारों से जिनमें आंतरिक राजनीतिक परिस्थिति तथा जनता के आर्थिक कल्याण पर प्रकाश पड़ता हो, प्रतिबंध हटा लेना चाहिए, और प्रांतीय सरकारों को भी इसी नीति का अनुसरण करना चाहिए। गृह-विभाग के सेक्रेटरी श्री कॉनॅन स्मिथ ने कहा कि प्रस्ताव बहुत ही संकुचित है और सरकार उसे स्वीकार नहीं कर सकती, गोकि वह प्रस्ताव की भावना से सहमत हैं। परन्तु सच तो यह है कि प्रस्ताव को इसलिए स्वीकार नहीं किया गया कि सरकार इस नीति का अनुसरण नहीं कर रही थी। सरकार के विरुद्ध शिकायत यह थी कि वह देश की आंतरिक, राजनीतिक व आर्थिक परिस्थिति-सम्बन्धी समाचारों को सुरक्षा-सम्बन्धी नियमों के अन्तर्गत प्रकाशित नहीं होने दे रही थी। पंडित कुंजरू ने इस विषय में कई उदाहरणों का हवाला दिया।

जहां तक प्रान्तीय शासन का सम्बन्ध है, केन्द्रीय सरकार ही देश की सुरक्षा का बहाना

बताकर प्रान्तों के राजनीतिक विभागों का प्रबन्ध कर रही थी और उधर ढोल यह पीटे जा रहे थे कि प्रान्तीय स्वायत्त शासन मजे में कायम है। प्रान्तीय शासन के अंतर्गत अन्न के प्रबन्ध से लेकर समाचारपत्रों के नियन्त्रण तक अनेक बातें ऐसी आ जाती थीं जिन पर केन्द्र का प्रभुत्व चल रहा था। बंगाल के तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्री फजलुल हक ने मई १९४३ में इस विषयमें जो रहस्योद्-घाटन किया उससे प्रान्तीय क्षेत्र में हस्तक्षेप का आरोप ठीक प्रमाणित होता है। यह सभी जानते हैं कि १९४२ में उपद्रव जारी रहने के समय कानून व व्यवस्था-सम्बन्धी प्रान्तीय विभागों का संचालन पूरी तरह केन्द्र से हो रहा था। श्री कॉर्नन स्मिथ ने भारत में समाचारपत्रों की स्वाधी-नता के विषय में तुर्की मिशन का हवाला देकर थोथी दलीलों का आश्रय ग्रहण किया।

ब्रिटेन में भारत के सम्बन्ध में कुछ मिथ्या बातों का भी प्रचार किया गया। इस सम्बन्ध में हम 'बंबई क्रॉनिकल' के साप्ताहिक अङ्क से ऐसे ही मिथ्या प्रचार के कुछ उदाहरण देते हैं। पृष्ठ ७२७ पर ५ अगस्त के 'डेली स्केच' के प्रथम पृष्ठ का फोटोचित्र दिया हुआ है। इसमें पांच कालम का निम्न शीर्षक देकर पत्र के लाखों पाठकों में झूठ का प्रचार करने की चेष्टा की गयी है, "गांधी'ज़ इंडिया-जैप पीस प्लान एक्सपोज्ड" (गांधी की भारत-जापानी संधि-योजना का भंडा-फोड़)। समाचार को अधिक मनोरंजक बनाने के लिए नीचे बांये कोने में मीरा बेन (मिस स्लेड) का एक चित्र दिया हुआ है और चित्र के साथ मोटे अक्षरों में शीर्षक दिया गया है—"अंग्रेज स्त्री गांधी की जापानियों के लिए दूत।" गांधीजी की जिस गुप्त योजना को प्रकाश में लाने का दावा 'डेली स्केच' ने किया है वह केवल कार्यसमिति की कार्रवाई का वह अप्रमाणित विवरण है जो सरकार ने कांग्रेस के सदर दफ्तर की तलाशी लेते समय पाया था और जिसे उसने अखिल-भारतीय कांग्रेस कमेटी की बंबईवाली बैठक से ठीक पहले प्रकाशित किया था। इस 'रहस्योद्घाटन' से भारत में किसी को भी संतोष नहीं हुआ और इससे सिर्फ सरकार की ही बदनामी हुई कि एक गलत बात को प्रमाणित करने के लिए उसे कैसे-कैसे साधनों से काम लेना पड़ता है। सच तो यह है कि महात्मा गांधी व पंडित जवाहरलाल नेहरू दोनों ही कह चुके थे कि कांग्रेस ऐसा कोई काम नहीं करना चाहती जिससे मित्रराष्ट्रों और खासकर चीन व रूस के हितों को हानि पहुंचने की संभावना हो। यदि गांधीजी के मस्तिष्क में जापान जाने की बात उठी हो तो यह तो एक महात्मा का विचार था जिसका उद्देश्य कठोर हृदय तथा विकृत मस्तिष्क के जापानियों को समझा-बुझाकर ठीक रास्ते पर लाना था। इस उद्देश्य में चाहे उन्हें असफलता ही मिलती; किन्तु इसे गद्दार का कार्य कहना एक सफेद झूठ था। यह जानबूझ कर लगाया गया एक कमीना आरोप था।

'संडे डिस्पैच' में उसके बम्बई-स्थित संवाददाता एच० आर० स्टिम्सन का एक विवरण प्रकाशित हुआ था, जिसके कुछ अंश नीचे दिये जाते हैं।

नर्तकियां

"पंडित नेहरू ने प्रस्ताव उपस्थित किया और कहा कि उसे ब्रिटेन के प्रति धमकी नहीं कहा जा सकता। आपने कहा कि इसे भारत की तरफ से स्वाधीनता की शर्त पर सहयोग प्रदान करने का प्रस्तावमात्र कहा जा सकता है।

"कार्यवाही के समय कुछ नर्तकियां लाई गईं, जिन्होंने कांग्रेसजनों के आगे गायन और नृत्य किया।

"इस घृणित रिपोर्ट के संबन्ध में स्थानीय पत्रों में पहले ही बहुत कुछ निकल चुका है और श्री स्टिम्सन जो 'टाइम्स आव इंडिया' के संपादकीय मंडल के एक सदस्य बताये जाते हैं, इस

कारण बहुत चिन्तित हैं। श्री स्टिम्सन अपनी सफाई में कहते हैं कि 'संडे डिस्पैच' ने उनके मूल तार को इस विकृत रूप में प्रकाशित किया है और अपने इस कथन की पुष्टि के लिए वे मूल तार की प्रतिलिपि दिखाने और उसे सेंसर-अधिकारियों से प्रमाणित कराने को तैयार हैं।

GANDHI'S INDIA-JAP PEACE
PLAN EXPOSED
Kuban Grain City
Captured
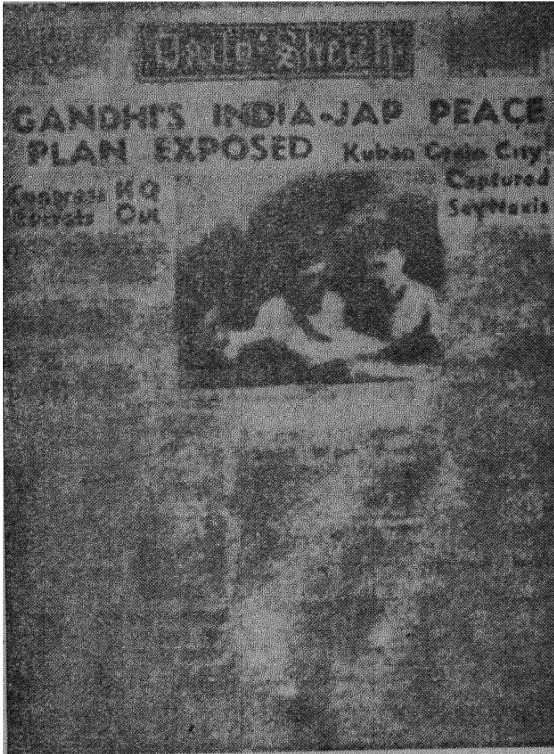
('डेली स्केच' के जिस विवरण का हवाला पृष्ठ २८६ पर दिया गया है उसका असली चित्र।)

"इस प्रकार श्री स्टिम्सन ने रिपोर्ट की जिम्मेदारी लेने से इन्कार कर दिया है; किन्तु 'संडे डिस्पैच' के उसी अङ्क में एक और ऐसी चीज है जिसके साथ उनका नाम छपा है और उन्होंने इस के संबध में अपनी जिम्मेदारी से इन्कार नहीं किया है।

"एक 'कोई श्रीमती गांधी' भी हैं, शीर्षक विशेष लेख है। इस लेख में महात्मा गांधी को एक ऐसे निष्ठुर पति के रूप में दिखाया गया है जो अपनी वृद्धा, अशक्त पत्नी पर बिस्तर लादकर उसे मीलों पैदल जाने के लिए मजबूर करता है जबकि वह खुद मोटर पर जाता हैं। बम्बई पहुंचनेपर महात्माजी के स्वागत का विवरण देते हुए श्री स्टिम्सन लिखते हैं:—

"१५ मिनट बाद, जब प्लेटफार्म लगभग खाली हो चुका था, एक वृद्धा व अशक्त स्त्री ने उसी डिब्बे की खिड़की से बाहर की तरफ झांका। उसके पैर नंगे थे और वह घर में कते सूत की साड़ी पहने हुए थी। चुपचाप उसने बिस्तर लपेटा और उस विशाल बिड़ला-भवन के लिए चल पड़ी जो वहां से तीन मील की दूरी पर था और जहां महात्मा गांधी ठहरे हुए थे। यह गांधीजी

की पत्नी कस्तूर बा थीं। इस घटना से क्या कुछ प्रकट होता है।"

श्री रिचर्डसन, यह सफेद झूठ पच नहीं सकता। प्रोफेसर भंसाली ने आष्टी व चिमूर कांडों के सम्बन्ध में जो अनशन किया था वह ६१ दिन चला था। मध्यप्रान्त की सरकार ने अनशन के समाचार पर प्रतिबंध लगा एक नयी परिस्थिति उत्पन्न कर दी। अखिल भारतीय संपादक-सम्मेलन से जो समझौता हुआ था, वह इस आदेश-द्वारा भंग हो गया। अब सम्मेलन के सामने अपने अधिकार के लिए दावा उपस्थित करने के अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं रह गया।

३० दिसम्बर १९४२ को अखिल भारतीय समाचारपत्र सम्पादक सम्मेलन के अध्यक्ष श्री के० श्रीनिवासन ने निम्न वक्तव्य प्रकाशित किया :—

"अखिल भारतीय समाचारपत्र सम्मेलन की स्थायी समिति ने बम्बई में १८, १९ व २१ दिसम्बर को अपनी बैठक में जो प्रस्ताव पास किया था उसके अनुसार मैंने ६ जनवरी, १९४३ का दिन १ रोज की हड़ताल के लिए निर्धारित किया है। अनुरोध किया जाता है कि संचालकगण उस तारीखवाले पत्र प्रकाशित न करें। प्रतिवाद का दिवस सफल बनाने के लिए भारत भरके समाचारपत्रों से सहयोग प्रदान करने का अनुरोध किया जाता है।

"प्रस्ताव के दूसरे भाग में सिफारिश की गयी है कि भारत भर के समाचार-पत्र आदेश वापस लिये जाने तक अथवा मेरे द्वारा अन्य कोई निर्देश किये जाने तक निम्न पाठ्य-सामग्री प्रकाशित न करें :—

(१) गवर्नमेंट हाउस की सभी गश्ती चिट्ठियां

(२) नये वर्ष की उपाधि-सूची, और

(३) ब्रिटिश सरकार, भारत-सरकार तथा प्रान्तीय सरकार के सदस्यों के पूरे भाषण; किन्तु भाषण के उन अंशों को प्रकाशित किया जा सकेगा जिनमें किसी निश्चय की सूचना होगी अथवा कोई घोषणा की जायगी। यह निर्देश १ जनवरी, १९४३ से अमल में लाया जायगा और आगामी सूचना देने तक जारी रहेगा।

"मुझे बड़ी अनिच्छापूर्वक यह प्रस्ताव अमल में लाना पड़ रहा है; क्योंकि पिछले सप्ताह में भारत-सरकार को राजी करने के सभी प्रयत्न बेकार गये।'

'टाइम्स आफ इंडिया' के सम्पादक ने सरकार व सम्मेलन के मध्य समझौता कराने में प्रमुख भाग लिया था। उन्होंने हड़ताल के प्रस्ताव के सम्बन्ध में अपने पत्रमें निम्न सम्पादकीय नोट लिखा :—

अखिल भारतीय समाचारपत्र सम्पादक-सम्मेलन के अध्यक्ष ने स्थायी समिति के सिफारिश करने पर सरकार के हाल के आदेश का प्रतिवाद करने के लिए समाचारपत्रों की हड़ताल का दिन निश्चित किया है और कुछ समाचारों को प्रकाशित न करने का भी निर्देश दिया है। पिछले दो वर्षों में सम्पादक-सम्मेलन ने भारत के समाचारपत्रों में जिस एकता को जन्म दिया है उसके महत्व को महसूस करते हुए भी हमारे खयाल में विरोध करने का यह तरीका बेकार होगा और इससे कोई अच्छा परिणाम निकलने की ही आशा नहीं की जा सकती है। इसके अलावा समाचारपत्रों को एकदिन प्रकाशित न करने तथा अन्य दिनों में उनमें कुछ संवादों को न रखने से आप जनता को कुछ ऐसी जानकारी से वंचित करते हैं, जिसे पाने की वह अधिकारिणी है। सरकार-द्वारा काम में लाये गये कतिपय उपायों से भले ही हम सहमत न हों; किन्तु यह भी उचित नहीं है कि समाचारपत्र जिन बातों के लिए सरकार को दोषी समझते हों उनके लिए जनता को दंड का

भागी होना पड़े।

मद्रास-सरकार के चीफ सेक्रेटरी ने नये वर्ष की उपाधि-सूची प्रकाशित न करनेवाले अंग्रेजी तथा देशी भाषाओं के पत्रों के पास २ जनवरी, १९४३ को निम्न पत्र भेजा:—

"मुझे आपको यह सूचित करने को कहा गया है कि चूँकि आपने नये वर्ष की उपाधि-सूची प्रकाशित नहीं की है, इसलिए सरकार ने निश्चय किया है कि आपके संवाददाताओं को विज्ञप्तियां तथा अन्य सरकारी पाठ्य-सामग्री प्राप्त करने के लिए सेक्रेटरियट में जाने की जो सुविधाएं अभी प्राप्त हैं उन्हें वापस ले लिया जाय। इस निश्चय को तत्काल ही अमल में लाया जा रहा है। जिन समाचार-पत्रों ने नये वर्ष की उपाधि-सूची प्रकाशित नहीं की है उनके प्रतिनिधियों के हवाई हमले के स्थलों को निरीक्षण करने के परिचय-पत्र भी रद्द किये जा रहे हैं।"

नये वर्ष की उपाधि-सूची प्रकाशित न करने पर मद्रास सरकार का उपर्युक्त आदेश निम्न पत्रों के सम्बन्ध में अमल में लाया गया : 'हिंदू', 'स्वदेश मित्रम्', 'इण्डियन एक्सप्रेस', 'दिनमणि', 'आंध्र-पत्रिका', 'फ्री प्रेस', 'भारत देवी' और 'आंध्र-प्रभा'।

मद्रास सरकार ने अपने विभागों के प्रधानों तथा अपने अधीन अन्य अधिकारियों के पास एक गश्ती चिट्ठी भेजी थी कि जिन पत्रों ने नये वर्ष की उपाधि-सूची प्रकाशित न की हो उन्हें सरकारी विज्ञापन भी न दिये जायँ।

अनशन के समाचारों पर प्रतिबन्ध तथा विज्ञापन-सम्बन्धी आदेश १२ जनवरी को रद्द कर दिये गए। यदि कभी सरकार व सम्पादक-सम्मेलन में कोई समझौता होता था तो सरकार उसे भंग करने के लिए उत्सुक जान पड़ती थी। दिल्ली के चीफ कमिश्नर ने 'हिंदुस्तान टाइम्स' के नाम आदेश निकाला कि प्रकाशित करने से पहले सभी समाचारों का सेंसर करा लिया जाय। इस सम्बन्ध में केन्द्रीय असेम्बली में एक काम रोको-प्रस्ताव भी उपस्थित किया गया।

२७ फरवरी, १९४३ को सरकार ने बम्बई के गुजराती दैनिक 'जन्म-भूमि' के विरुद्ध कार्रवाई की। बम्बई-सरकार ने 'जन्मभूमि मुद्रणालय' के 'कीपर' के नाम आदेश निकाल कर उसे जब्त कर लिया। कारण यह बताया गया कि २५ फरवरी के 'जन्मभूमि' तथा १५ व २६ फरवरी के 'नूतन गुजरात' में महात्मा गांधी के अनशन के सम्बन्ध में समाचार प्रकाशित किये गए थे और प्रकाशित करने से पूर्व इन समाचारों को प्रांतीय प्रेस-एडवाइजर को नहीं दिखाया गया था। सरकार ने 'जन्मभूमि' की जमानत भी जब्त कर ली। इस मामले को हाईकोर्ट तक ले जाया गया। हाईकोर्ट ने फैसला किया कि सरकार-द्वारा जमानत जब्त करना अनुचित था।

समाचार-पत्रों का संचालन

ऊपर समाचार-पत्रों के सम्पादकों की जिन कठिनाइयों का वर्णन किया गया है उनका सम्बन्ध मुख्यतः संवादों तथा टिप्पणियों के प्रकाशन के संबंध में सम्पादकीय दायित्व तथा युद्ध व उपद्रव-संबंधी संवादों के सम्पादन से रहा है। एक दूसरे प्रकार की कठिनाइयां वे भी रही हैं जिनका संबंध सम्पादकों से नहीं बल्कि पत्रों के संचालकों से रहा है। ये कठिनाइयां कागज की उपलब्धि, समाचारपत्रों के मूल्य, विज्ञापन की दरों तथा ऐसी ही अन्य बातों के संबंध में हो रही हैं। यही कारण है कि अखिल भारतीय समाचारपत्र सम्पादक सम्मेलन के साथ-साथ 'भारतीय तथा पूर्वी समाचारपत्र समिति' नामक एक और संस्था काम करने लगी है। समस्याओं के अभाव के कारण इस संस्था के संबंध में पहले अधिक नहीं सुनाई देता था। युद्ध के कारण विदेश से आने वाले अखबारी कागज की कमी हुई। भारत में पहले अखबारी कागज के विषय

में आत्म-भरित बनने की चेष्टा नहीं की गई थी। इसीलिए युद्ध छिड़ने पर समिति को कागज की कमी की समस्या का सामना करना पड़ा। पहले समिति के अध्यक्ष श्री आर्थर मूर थे और फरवरी, १९४३ के बाद श्री देवदास गांधी निर्वाचित हुए। समाचारपत्रों की अखबारी कागज-संबंधी समस्या भी कुछ कम मनोरंजक न थी, किन्तु स्थानाभाव के कारण उसकी समीक्षा करने में हम असमर्थ हैं।

एकाएक सरकार ने देश के सम्पूर्ण अखबारी कागज पर नियन्त्रण कायम कर लिया और समाचारपत्रों के लिए देश के उत्पादन का सिर्फ दशमांश ही देना स्वीकार किया। इससे देशभर में हो-हल्ला मच गया और सरकार से कई डेपुटेशन मिले। तब कहीं सरकार ने कोटा बढ़ाकर ३० प्रतिशत करने का निश्चय किया। जहाँ तक हाथ से बने कागज का सम्बन्ध है, सरकार ने इस उद्योग को प्रोत्साहन नहीं दिया। यही नहीं बल्कि अखिल भारतीय ग्राम-उद्योग-संघ के सेक्रेटरी को गिरफ्तार कर लिया और फिर उन पर 'ग्रामोद्योग-पत्रिका' में प्रकाशित "रोटी के बदले पत्थर" लेख के सम्बन्ध में मुकदमा भी चलाया गया।

भारतीय समाचारपत्रों की वाइसराय भारत व इंग्लैंड में कई बार प्रशंसा कर चुके थे, किन्तु सरकार का रुख भारतीय अथवा विदेशी पत्रों के प्रति बदला नहीं, यह अगस्त १९४३ की दो घटनाओं से स्पष्ट हो जाता है।

कुछ समय तक समाचारपत्रों के सम्बन्ध में कोई उल्लेखनीय घटना नहीं हुई। फिर जून, १९४३ में सरकार ने यह आदेश निकाल कर कि लुई फिशर के लेख अथवा भाषण सेंसर कराये बिना न छापे जायँ, अखबारी दुनिया व जनता में खलबली पैदा कर दी। स्थायी समिति ने परिस्थिति पर विचार करने के लिए जुलाई में एक विशेष बैठक बुलाई। इस बीच में सूचना सदस्य का जो पद सर सी० पी० रामास्वामी अय्यर के इस्तीफे से रिक्त हुआ था उस पर सरकार ने सर सुलतान अहमद को नियुक्त किया। सर सुलतान अहमद ने घोषणा की कि वे अपने विभाग का संबंध लोकमत से कायम करेंगे और सरकार तथा समाचारपत्रों में निकटतम सम्बन्ध कायम करेंगे। जून के अन्त में ज्ञात हुआ कि दो गैर-सरकारी सलाहकार बोर्ड माननीय सदस्य को लोकमत के सम्पर्क में रखेंगे। इनमें से एक बोर्ड में भारत की राजधानी में काम करने वाले देशी व विदेशी पत्र-प्रतिनिधि रहेंगे। दूसरा बोर्ड प्रकाशन सलाहकार बोर्ड होगा और उसमें समाचारपत्रों के सम्पादक, केन्द्रीय धारा-सभा के सदस्य तथा प्रांतीय प्रतिनिधि रहेंगे। इस बोर्ड में भारतीय भाषाओं के समाचारपत्रों के सम्पादकों को भी प्रतिनिधित्व देने का प्रयत्न किया जायगा। दोनों बोर्डों के अध्यक्ष सूचना-सदस्य सर सुलतान अहमद रहेंगे। एक तीसरा बोर्ड सूचना-सदस्य के आधीन विभिन्न विभागों के प्रधानों का रहेगा और यह नीति तथा कार्यक्रम का एकीकरण करेगा।

९ अगस्त से ही 'मेंचेस्टर गार्जियन' भारतीय समस्या को नये दृष्टिकोण से हल करने तथा कांग्रेस से मैत्रीपूर्ण बातचीत शुरू करने का हामी रहा है और अपने न्याय व सहानुभूतिपूर्ण इस दृष्टिकोण के ही कारण उसे भारत में अधिकारियों का कोपभाजन बनना पड़ा। अगस्त के दूसरे सप्ताह में ब्रिटिश तथा अमरीकी पत्र-प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन सर रामास्वामी मुदालियर ने किया था और उस में 'मेंचेस्टर गार्जियन' के प्रतिनिधि को नहीं आमन्त्रित किया गया। कहा नहीं जा सकता कि ऐसा 'मेंचेस्टर गार्जियन' को उसकी वाइसराय-विरोधी तथा एमरी-विरोधी टिप्पणियों के लिए दण्ड देने के लिए किया गया था; यह सम्मेलन ब्रिटिश तथा

अमरीकी पत्रों के सिर्फ श्वेत प्रतिनिधियों के लिए था। यदि पिछली बात ही मानी जाय तो कहा जा सकता है कि भारत-सरकार के एक भारतीय सदस्य ने एक भारतीय श्री वी० शिवराव का अपमान किया और वह भी एक ऐसे भारतीय का, जो "हिन्दू" व 'मेंचेस्टर गार्जियन' के प्रतिनिधि के रूप में पत्रकार जगत में तथा वाइसराय की शासन-परिषद् के सदस्यों में पर्याप्त सम्मान के अधिकारी थे। यह तो गौरव की बात थी कि भारत की राजधानी में कम-से-कम एक ब्रिटिश पत्र का प्रतिनिधि भारतीय है। यदि पहला कारण माना जाय तो कहना पड़ेगा कि शासन-परिषद् के ये भारतीय सदस्य खुद भी ह्वाइट हाल व दिल्ली के देवताओं की दुर्भावना में हिस्सेदार थे और 'मेंचेस्टर गार्जियन' के न्यायपूर्ण रुख की कद्र नहीं कर पाये थे।

इसके अलावा भारत-सरकार व अखिल भारतीय समाचारपत्र सम्पादक-सम्मेलन के मध्य हुए समझौते के भंग होने का एक और भी उदाहरण दिया जा सकता है। करांची के सुप्रसिद्ध सिंधी दैनिक 'हिन्दू' को फिर से प्रकाशित होने की अनुमति नहीं दी गई। यह उन पत्रों में था, जिन्होंने अगस्त, १९४२ में लगाये गये प्रतिबन्धों के कारण काम बंद कर दिया था।

इस मामले पर हमें कुछ अधिक विस्तार से विचार करना चाहिए। 'हिन्दू' उन कितने हो पत्रों में एक था, जिन्होंने अगस्त १९४२ सेंसर की कड़ाई के कारण प्रकाशन बंद कर दिया था। बाद में अखबारी कागज पर भी नियंत्रण लगा। जुलाई १९४३ में संचालकों की फिर पत्र प्रकाशित करने की इच्छा हुई। जब 'हिन्दू' ने अखबारी कागज के लिए आवेदन-पत्र भेजा तो उत्तर मिला कि प्रकाशन का कार्य भारत-सरकार की विशेष अनुमति लिये बिना आरंभ नहीं किया जा सकता। अनुमति मांगने पर उससे प्रकाशन स्थगित करने का कारण पूछा गया। कारण बताने पर अनुमति देने से इन्कार कर दिया गया। यह समझना कठिन है कि अनुमति देने से इन्कार किस आधार पर किया गया; क्योंकि इस सम्बन्ध में सिर्फ एक ही कानून, '१८ फरवरी के आदेश' की बात सोचा जा सकती है और यह आदेश स्थगित होने के बाद फिर से प्रकाशित होने वाले पत्रों पर लागू नहीं हो सकता। उस आदेश में तो सिर्फ यही कहा गया कि केन्द्रीय सरकार के लिखित आदेश के बिना ऐसा कोई पत्र प्रकाशित नहीं हो सकता, जो १८ फरवरी से पूर्व नहीं छपता था। 'हिन्दू' १८ फरवरी से पूर्व छपता व प्रकाशित होता था; किन्तु इसका यह मतलब नहीं हुआ कि १८ फरवरी तक छपता हो। इस प्रकार की गई कार्रवाई व निश्चय दोनों ही गलत थे।

एक अन्य मामले में 'हितवाद' के संपादक श्री मणि से एक संवाददाता का नाम बताने को कहा गया। संपादक को भारत-रक्षा विधान के नियम ११६ ए के अंतर्गत मध्यप्रान्त व बरार के चीफ सेक्रेटरी-द्वारा आदेश दिया गया। श्री मणि ने उत्तर दिया, "आपने जो गोपनीय बात पूछी है उसे बताने से इन्कार करने के अलावा मेरे पास और कोई चारा नहीं है। खेद है कि जो नाम और पता पूछा गया है वह मैं बता नहीं सकता।"

६ दिसम्बर को मध्यप्रान्तीय सरकार ने भारत-रक्षा विधान के नियम ११६-ए के अंतर्गत निकाला आदेश रद्द कर दिया। एक विज्ञप्ति-द्वारा बताया गया कि संपादक के आदेश न मानने पर प्रान्तीय समाचार-पत्र सलाहकार-समिति के सामने यह मामला उपस्थित किया गया। समिति ने सिफारिश की कि इस मामले को जहां-का-तहां छोड़ दिया जाय; क्योंकि संपादक ने संपादक-सम्मेलन के अध्यक्ष को पत्र लिखकर स्पष्ट कर दिया कि उनकी जानकारी में सेंसर के समय रहस्योद्घाटन नहीं हुआ। यह आदेश मि० ब्लेयर के इस्तीफे के सम्बन्ध मे प्रकाशित एक लेख

के विषय में निकाला गया था। मि० ब्लेयर एक आई० सी० एस० अफसर बंगाल के चीफ सेक्रेटरी थे और उन्होंने राजनीतिक कारणों से इस्तीफा दिया था।

परन्तु 'अमृत बाजार पत्रिका' के विरुद्ध निकाला गया आदेश दमन के पिछले सभी कार्यों से बढ़ गया। पत्रिका के २८ और २६ सितम्बर वाले अग्रलेख अन्न की समस्या के संबंध में थे। प्रान्तीय समाचार-पत्र सलाहकार-बोर्ड ने उन्हें निर्दोष बताया; किन्तु बंगाल सरकार की दृष्टि में वे आपत्तिजकक थे। उसने सलाहकार-बोर्ड की राय के विरुद्ध पत्रिका पर पहले से सेंसर का हुक्म तलब कर दिया। यही नहीं, प्रान्तीय सरकार ने बंगाल के समाचार-पत्रों को इस संबंध में कोई टिप्पणी करने से भी मना कर दिया। यह तो बिलकुल एक निराली ही घटना थी। दोनों लेखों को पढ़ने से कार्रवाई करने की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती थी। बंगाल की तत्कालीन परिस्थितियों की क्रान्ति से पूर्व रूस से तुलना करने और फ्रांस की राज्य-क्रान्ति के उल्लेखमात्र से यह परिणाम नहीं निकाला जा सकता था कि जनता को क्रान्ति के लिए उत्तेजित किया गया है, लेखों से अधिकारियों में घबराहट फैल गई। पिछली घटनाओं तथा परिस्थितियों के उल्लेखमात्र में उन्हें संकट दिखाई पड़ा। इससे सेंट्रल जेल में हुई एक घटना का स्मरण हो आता है। बंदियों के पढ़ने के लिए बाहर से आनेवाली पुस्तकों की जांच की जाती है। जांच करने वाले अधिकारी की कर्तव्यनिष्ठा की भावना इतनी तीव्र थी कि उसने 'क्रान्ति' शब्द के कारण "फोटोग्राफी में क्रान्ति" शीर्षक पुस्तक की अनुमति देने से इन्कार कर दिया। 'अमृत बाजार पत्रिका' ने कुछ समय तक अग्रलेख के कालम में कुछ स्थान छोड़ना और जारी रखा और इस प्रकार बंगाल सरकार ने कम-से-कम कुछ समय के लिए "शान्ति" का उपभोग किया।

भारत-रक्षा-विधान के अन्तर्गत घोषित किया गया कि समाचार-पत्रों के लिए विदेश से आने वाले तारों के अलावा अमरीकी पत्रकार लुई फिशर द्वारा भारत के सम्बन्ध में कहे या लिखे गये शब्दों को ब्रिटिश भारत में मूल या अनुवादित रूप में समाचार-पत्र, पुस्तक या पुस्तिका में छापने से पहले उन्हें मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादक-द्वारा जांच के लिए चीफ प्रेस एडवाइजर (नई दिल्ली) के सामने उपस्थित करने चाहिए और इस प्रकार की कोई पाठ्य सामग्री चीफ प्रेस एडवाइजर (नई दिल्ली) की लिखी अनुमति के बिना प्रकाशित न होनी चाहिए। इस सम्बन्ध में पहले निकाली गई आज्ञा को रद्द कर दिया गया।

उन दिनों भारतीय-समाचार-पत्रों पर प्रतिबंध अत्याधिक थे, यह मत भारतीय समाचार पत्रों में दिलचस्पी रखने वालों या भारतीय राजनीति की ओर झुके हुए लोगों का ही नहीं है बल्कि एक ऐसे व्यक्ति का भी है जो भारतीय परिस्थिति का अध्ययन करने के लिए यहां का दौरा कर रहा था। समाचारपत्रों पर लगे हुए प्रतिबन्धों पर मत प्रकट करते हुए पार्लमेंट के अनुदार दल वाले सदस्य श्री ग्रांट फैरिस ने कहा था कि प्रतिबंध "वास्तव में बुरे हैं और शत्रु के लिए उपयोगी हो सकने वाले युद्ध-संवादों को छोड़कर अन्य संवादों पर इंगलैंड में नहीं लगाये जा सकते थे।"

'हितवाद" के सम्पादक श्री ए० डी० मणि के विरुद्ध प्रतिबंध व नजरबंदी आर्डिनेंस के अंतर्गत अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट श्री आर० के० मिश्र ने फर्द जुर्म लगाया। श्री मणि ने एक लिखित वक्तव्य में कहा कि पत्रकारी पेशे का एक आधारभूत सिद्धान्त गुप्त रूपसे काम करना है। अधिकारियों तथा जनता को यह जानने के लिए उत्सुक न होना चाहिए कि कर्मचारी-मंडल के किस सदस्य ने वह संवाद दिया। आपने इस सम्बन्ध में खेद प्रकट किया कि जब सम्पादक

पर मुकदमा चलाया जा रहा है तो श्री ए० के० घोष व श्री एच० सी० नारद पर अभियोग क्यों लगाया गया। आपने यह भी बताया कि संवाद छपने के समय वे खुद दिल्ली में थे और अखिल-भारतीय-समाचार-पत्र सम्मेलन की स्थायी समिति की बैठकों में भाग ले रहे थे। नागपुर से गैरहाजिरी होने तथा संवाद के प्रकाशित होने के लिए किसी प्रकार जिम्मेदार न होने बावजूद यदि कानून उन्हींको जिम्मेदार मानता है तो वे स्वयं वह जिम्मेदारी स्वीकार करने को तैयार हैं।

श्री ए० के० घोष ने एक जबानी बयान में कहा कि वे 'हितवाद' के सम्पादक, मुद्रक व प्रकाशक कभी नहीं थे और न उन्होंने वह संवाद प्रकाशित ही किया; क्योंकि वे रात को काम नहीं कर रहे थे।

श्री नारद के वकील ने कहा कि श्री नारद ने नजरबंदों के विरुद्ध फर्द जुर्म नहीं बताया था, उन्होंने तो सिर्फ अटकलबाजी से काम लिया था।

नये वर्ष की सबसे उल्लेखनीय घटना अखिल भारतीय समाचार-पत्र-सम्पादक सम्मेलन का खुला अधिवेशन था। सम्मेलन अपने जन्म के तीन वर्ष समाप्त कर चुका था और तीन वर्षों में ही पूर्ण यौवन प्राप्त कर चुका था। सम्मेलन की तुलना उन देवताओं से की जा सकती है, जो असुरों का सामना करने के लिए जन्मते थे। असुर देवताओं के तप में हस्तक्षेप करते थे, और उनके अधिकारों की अवहेलना करते थे। इन देवताओं (पत्रकारों) ने भी निरंकुश शासन के विरुद्ध आवाज उठाई और उससे लोहा लेने के लिए कटिबद्ध हो गये। युद्ध के समय आर्डिनेंस अनिवार्य होते हैं; किन्तु एक सतर्क लोकतंत्र में निकाले गये आर्डिनेंस उन आर्डिनेंसों से भिन्न होते हैं जो भारत की गैर-जिम्मेदार सरकार-द्वारा निकाले गये थे। सम्मेलन का जन्म निरंकुशता व असन्तोष के मध्य हुआ था; किन्तु नौकरशाही ने सोचा कि जोश व कटुता समाप्त होने पर सम्मेलन को भी अन्य कितनी ही संस्थाओं की तरह अपना साधन बना लिया जाय, जो अधिकारियों की तरफ से अप्रिय काम करता रहे, बहुत कुछ उसी प्रकार जिस प्रकार कैदियों को जेल में वार्डर बना दिया जाता है और फिर वही दूसरे कैदियों को पीटते हैं। परन्तु सम्मेलन कुछ और ही चीज से बना था और वह प्रान्तीय सरकारों की अनेक चोटों को सफलतापूर्वक बर्दाश्त करता रहा। फिर भी देश में यह भावना फैल गई कि दिल्ली में केन्द्रीय प्रेस सलाहकार से समझौता करते समय सम्मेलन जितना झुक गया वह गांधीजी को पसन्द नहीं आया और इससे उन्हें दुःख भी हुआ, बाद में सम्मेलन पर और भी वार हुए। सम्मेलन ने १९४३ की उपाधि-सूची न छापकर दृढ़ता का ही परिचय दिया; किन्तु उसने विज्ञापन के रूप में चित्रों के साथ विशेष व्यक्तियों का नाम प्रकाशित करने से सदस्यों को नहीं रोका। दोनों तरफ से चुनौतियां दी गयीं। सरकार ने 'अपराधी' समाचारपत्रों को विज्ञापन देना बंद कर दिया; किन्तु एक प्रान्तीय सरकार के झुक जाने से झगड़ा अधिक नहीं बढ़ने पाया। परीक्षा का समय उस समय आया, जब नौकरशाही ने पत्रकारों को सलाहकार-बोर्ड में नियुक्त करने का प्रलोभन दिया। पत्रकार झुक गये। एक समय आया, जब पत्रकार सबके सब इस्तीफा देकर इसका प्रायश्चित्त कर सकते थे; किन्तु इस्तीफा सिर्फ संस्था के सदस्य बने व्यक्तियों ही ने दिया। प्रस्ताव का क्षेत्र भी अधिक व्यापक हो सकता था। इस सबके बाद हमें उसके प्रथम अध्यक्ष की सेवाओं की कद्र करनी चाहिए, विशेषकर ऐसे समय जब कि सम्मेलन का जन्म हुआ था और उसे शरारती नौकरशाही से लोहा लेना था। फिर अध्यक्षता का भार श्री एस० ए० ब्रेलवी के कंधों

पर पड़ा, जो बीस वर्ष से एक प्रमुख पत्र के सम्पादक थे। श्री ब्रेलवी श्री श्रीनिवासन के समान अपने पत्र के स्वामी न थे और उन्हें प्रत्येक अवस्था में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। एक पराधीन देश में समाचारपत्रों को जिन परिस्थितियों में से गुजरना पड़ता है उनसे वे खूब परिचित थे। उनके ये शब्द विशेष महत्वपूर्ण जान पड़ते हैं कि "देश में वास्तविक लोकतंत्रवाद की स्थापना के लिए अन्य किसी संस्था की दिलचस्पी सम्मेलन से अधिक नहीं हो सकती।" दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यही है कि समाचार-पत्रों से लोकतंत्रवाद की उन्नति होती है और लोकतंत्रवाद की उन्नति से समाचारपत्रों को प्रोत्साहन मिलता है। श्री ब्रेलवी को मद्रास के सम्मेलन में एकत्र होने वाले १०० सम्पादकों तथा ३०० प्रतिनिधियों का विश्वास प्राप्त था। सम्मेलन में सरकार के सम्बन्ध में, एक सार्वजनिक संस्था के रूप में समाचार-पत्रों के सम्बन्ध में और पेशे के रूप में पत्रकारों के सम्बन्ध में कितने ही प्रस्ताव पास किये गए और सम्मेलन के जीवन का एक नया अध्याय शुरू होने के लक्षण दिखाई देने लगे।

मार्च, १९४४ में मध्यप्रान्तीय सरकार ने 'नागपुर टाइम्स' की जमानत ज़ब्त करने के लिए बड़ा विचित्र कारण दिया। सरकार का आरोप था कि पत्र ने एक ऐसी बात जान बूझ कर प्रकाशित की है जो १९४४ के आर्डिनेन्स ३ की धारा २ (२) के अन्तर्गत गोपनीय थी और इस अभियोग के कारण सरकार ने पत्र के सम्पादक व मुद्रक को गिरफ्तार कर लिया था। जमानत जब्त किये जाने के समय स्थिति यह थी कि अभियुक्तों का मामला विचाराधीन था। अभियोग यह था कि सरकार ने नजरबन्दों के पास कुछ सूचना भेजी थी और उसे अभियुक्तों ने मध्यप्रान्त की सरकार से अनुमति लिये बिना ही छाप दिया था। उपर्युक्त कार्रवाई के अलावा 'नागपुर टाइम्स' को यह भी आदेश दिया गया कि सुरक्षा के विचार से रखे गये नजरबन्दों के सम्बन्ध में कोई भी बात प्रकाशित करने से पूर्व उसे सेंसर के लिए अवश्य उपस्थित किया जाय। इस तरह जबकि न्यायालय में एक मामला विचाराधीन था, उसी समय सरकार ने उसके सम्बन्ध में दो दण्डात्मक कार्य किये। शासन-सम्बन्धी अधिकारियों को इन दो आदेशों के कारण अदालत में होने वाली कार्रवाई एक प्रकार से व्यर्थ हो गई थी।

इससे स्पष्ट है कि राजनीतिज्ञों की तुलना में नौकरशाही के हथियार अधिक तीक्ष्ण थे। यह बात इसलिए और भी थी, कि युद्ध में समाचार पत्र ब्रिटेन के समर्थक थे और सविनय अवज्ञा आन्दोलन को उन्होंने अधिक महत्व नहीं दिया था, क्योंकि यह कहा जा सकता है कि समाचार पत्र आन्दोलन के सिलसिले में होने वाली नेताओं की गिरफ्तारियों का जोरदार विरोध कर रहे थे।

बम्बई सरकार ने 'बाम्बे सेंटीनेल' के संपादक पर 'सेंटीनेल' को बन्द करने का हुक्म तामील किया। हुक्म इस प्रकार था : "चूंकि ब्रिटिश भारत की सुरक्षा तथा उत्तमतापूर्वक युद्ध-संचालन के लिए इसकी आवश्यकता है, इसलिए बम्बई सरकार भारत रक्षा विधान की धारा ४१ के अनुसार 'बाम्बे सेंटीनेल' के प्रकाशन पर प्रतिबन्ध लगाती है।"

बंगाल में समाचार पत्र सलाहकार समिति नवम्बर, १९४० में स्थापित कर दी गई थी। परन्तु ऐसे बहुत-से मामले हुए जिनमें उससे सलाह लिये बिना ही अधिकारियों ने कार्य किया। प्रधानमन्त्री ने बताया कि १६ मामलों में समिति से सलाह लिये बिना ही कार्रवाई की गई। छः मामलों में कार्रवाई प्रान्तीय समाचार पत्र सलाहकार समिति की सलाह से की गई। इनमें ४ में समिति ने कार्रवाई करने की सिफारिश की थी और २ में उसकी सलाह के विरुद्ध काम

किया गया था। पहले से सेंसर कराने के २, जमानत की जब्ती का १, सम्पादक, मुद्रक व प्रकाशक को दण्ड देने का १ तथा किसी विशेष अंक को सभी प्रतियों की जब्ती का १ हुक्म निकाला गया।

समाचार पत्रों का प्रकाशन कुछ समय के लिए बन्द करने के सात आदेश निकाले गये। इनमें से सिर्फ एक मामला समिति के सामने उपस्थित किया गया और उसमें समिति की सिफारिश के विरुद्ध कार्रवाई की गई। समाचारों का पहले से सेंसर कराने के आदेश चार मामलों में निकाले गये। इनमें से दो मामलों में कार्रवाई समिति की सलाह से और एक मामले में उसकी सलाह के विरुद्ध की गई। यह कार्रवाई पहले से सेंसर कराने का आदेश जारी करना, जमानत ज़ब्त करना, सम्पादक, मुद्रक व प्रकाशक पर मुकद्दमा चलाना, पत्र को अस्थायी रूप से बन्द कर देना, पत्र की प्रतियों को जब्त कर लेना और छापेखाने के मालिक पर मुकद्दमा चलाना आदि भी।

इस प्रकार स्पष्ट है कि सरकार व सम्पादक सम्मेलन में निरन्तर संघर्ष होता रहा। १९४४ में सेंसर के प्रश्न को लेकर सम्मेलन व सेक्रेटरियेट में उग्र विवाद उत्पन्न हो गया, जिसमें सेक्रेटरियट ने यही मत ग्रहण किया कि सैनिक-सुरक्षा के विचार को राजनीतिक व अन्य विचारों से पृथक करना प्रायः असम्भव है। शिकायत की गई कि सम्पादक सम्मेलन द्वारा स्थापित सलाह सम्बन्धी व्यवस्था का प्रान्तीय सरकारों ने पूरा लाभ नहीं उठाया। इसके जवाब में कहा गया कि इस व्यवस्था से सहायता नहीं प्राप्त हुई। इस प्रकार सम्मेलन एक स्थानीय बोर्ड की स्थिति में आगया, जिससे सरकार चाहे तो सलाह ले या न ले और चाहे तो उसकी राय की उपेक्षा ही कर दे।

समाचारों के सेंसर का यह विवाद १४ अगस्त, १९४४ को युद्ध समाप्त होने के कारण खत्म हो गया। भारत सरकार के चीफ प्रेस एडवाइजर ने एक आदेश निकाल कर कहा कि समाचारपत्रों को "सलाह देना" अब और आवश्यक नहीं रह गया है।

: ३० :

प्रचार

प्रत्येक प्रकार के संघर्ष में, वह चाहे युद्ध हो या राजनीतिक विग्रह, शत्रु की शक्ति व आत्म-विश्वास की भावना को घटाने का प्रयत्न किया जाता है। कोई सेना युद्ध-क्षेत्र में सफेद झंडा लगा कर आत्म-समर्पण सिर्फ उसी हालत में करती है जब अपनी शक्ति घट जाय या शत्रु की शक्ति का अनुमान अधिक होने के कारण साहस व आत्म-विश्वास उसके हाथ से जाने लगे। शत्रु की भावना पर प्रचार के द्वारा विजय पाई जाती है। यह प्रचार हमेशा या बहुधा सत्य नहीं होता या सिर्फ अर्द्ध-सत्य होता है। यह रणनीति भारत व ब्रिटेन के बीच होने वाले राजनीतिक संघर्ष में भी उसी प्रकार काम में लाई जा सकती है जिस प्रकार पहले व दूसरे महायुद्धों में उसका प्रयोग किया जा चुका है। इस नये प्रकार के संघर्ष का उद्देश्य, जैसाकि लेखक आर्चिबाल्ड मक्लीन का मत है, अपनी स्थिति तथा उद्देश्य के संबंध में संसार के लोकमत का समर्थन प्राप्त करना होता है। इसमें युद्धक्षेत्र मानव-विचारधारा होती है। लेखक के शब्दों में "कोई राष्ट्र मानसिक सत्ता पर संघर्ष इसलिए करता है जिससे शत्रु को विश्वास हो सके कि वह जीत नहीं सकता तथा शेष संसार को विश्वास हो जाय कि वह खुद हो जीत सकता है वही जीतेगा, उसी को जीतना चाहिए और उसे विजय में सबकी सहायता प्राप्त होनी चाहिए।"

कोष-संग्रह करने वाले विद्वान कोषकार भी किस प्रकार प्रचार के शिकार हो सकते हैं यह पेंग्विन पोलिटिकल डिक्शनरी में कांग्रेस शब्द के दिये हुए अर्थ से प्रकट है। "कांग्रेस मुख्यत: हिन्दुओं की संस्था है, जिसमें कुछ मुस्लिम कार्यकर्ता भी हैं और नेतृत्व ब्राह्मणों के हाथ में हैं।" अज्ञान अथवा गलतबयानी किस हद तक पहुँच सकती है, यह समझ के बाहर की बात है। भारत की जनता को अदालती, रजिस्ट्री के दफ्तरों या रेलवे-स्टेशनों पर निरंतर उनकी जाति का स्मरण दिलाया जाता रहा है। स्टेशनों पर तो विभिन्न जातियों व सम्प्रदायों के लिए अलग-अलग भोजनालय भी हैं।

यदि आप कांग्रेस कार्य-समिति पर ही दृष्टि डालें तो प्रकट होगा कि १९ में से ४ व्यक्ति मुसलमान हैं। एक ऐसी स्त्री है, जिनके पिता ऐक सुप्रसिद्ध ब्राह्मण थे और ब्राह्मण-कुल में जन्म लेकर भी जिन्होंने एक अब्राह्मण से विवाह किया है। दूसरे सदस्य बिहार के एक कायस्थ हैं। एक अन्य सज्जन बंगाल के कायस्थ हैं। तीन खत्री हैं। एक बनिया (अग्रवाल) हैं। एक पट्टीदार (कृषक) हैं। तीन ब्राह्मण हैं, जिनमें सब-के-सब एक-दूसरे के साथ तथा हरिजनों के साथ बैठ कर भोजन करते हैं। कांग्रेस में लोग एक दूसरे की जाति की परवाह नहीं करते। यदि कुछ कांग्रेसी प्रधानमंत्री ब्राह्मण हैं तो लोकतंत्रवाद में उन्हें अपने पद से वंचित कैसे किया जा सकता है।

गोकि अमरीका व इंग्लैंड दोनों में भारत के पक्ष में प्रचार होता रहा है फिर भी ऐसे संवाददाताओं की कमी नहीं रही जो लम्बी सफर करके भारत आये हैं और यहांसे उन्होंने ब्रिटेन व अमरीका में विरोधी प्रचार किया है और यह सब उन्होंने ब्रिटिश अधिकारियों की आवभगत में किया है। जब-जब भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन ने सिर उठाया है। इस देश में विदेशी पत्रकारों का जमघट हो गया है और १९४२-४३ में तो यह जमघट खासतौर पर बढ़ गया था। ऐसे ही विदेशी पत्रकारों में एक थे श्री बेवर्ली निकोलस जिन्होंने भारत में आने से पहले ही इस देश में अपनी इस घोषणा-द्वारा धूम मचा दी थी कि "मैं भारतीय परिस्थितियों का निष्पक्ष अध्ययन करने आ रहा हूँ।" पहुँचते ही उन्होंने वाइसराय के लिए तूमार बांधना शुरू कर दिया कि उन्हें कितना परिश्रम पड़ता है। आपने यह भी बताया कि वाइसराय के महल में संग-मरमर की कितनी प्रचुरता है और साज-सामान कैसा है और साथ ही यह मत भी प्रकट किया कि भारत जैसे पूर्वी देश की जनता में अंग्रेजोंके प्रति सम्मान व आतंक के भाव भरनेके लिए यह सब आवश्यक था। साथ ही आपने भारतीय पाठकों को यह भी बताया कि "इंग्लैंड में ५० व्यक्तियों के पीछे एक को भी यह जानकारी नहीं है कि भारत में कितने लोग जेलों में बंद हैं। वे यह महसूस नहीं करते और यह एक बड़ी खेदजनक बात है।" इंग्लैंड के सम्बन्ध में आपने सूचित किया कि वहां साधारण जनता में क्रान्ति हो चुकी है; लेकिन सम्मानित वर्ग उसे यह संज्ञा नहीं देना चाहते। जहां तक भारत का सम्बन्ध है, साम्राज्य की पुरानी विचारधारा मर चुकी है। ब्रिटिश जनता यह भी महसूस करती है कि भारत को स्वाधीनता मिलनी चाहिए; किन्तु भारतीय लोकमत में परस्पर विरोधी वर्ग को देखकर वह दुविधा में पड़ जाती है, खासकर ऐसी हालत में जबकि स्टालिन और चर्चिल जैसे विरोधियों के सम्मिलन जैसे चमत्कार हो चुके हैं। तभी उन्हें अचरज होता है कि गांधी व जिन्ना मिलकर एक क्यों नहीं हो जाते। मई के अंत में जो घटनाएं हुईं और जिनसे महात्मा गांधी को जि० जिन्ना से मिलने की इच्छा प्रकट हुई, उनसे यह भी पता चल गया कि ब्रिटिश सरकार यह भेंट नहीं होने देना चाहती और साथ ही मि० जिन्ना के अभद्रतापूर्ण उत्तर से भी इंग्लैंड के बेवर्लियों व स्मिथों को भली प्रकार उत्तर मिल जाता है कि दोनों महानुभावों की भेंट में सबसे बड़ी बाधा क्या थी।

'संडे क्रॉनिकल' को भेजे गये एक विवरण में श्री बेवर्ली निकोलस ने भारत के सम्बन्ध में कहा:—

"फिर भी इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि भारत की वर्तमान परिस्थिति असामयिक है। यह आप वाइसराय के भवन में पहुँचकर और उसकी समस्त पृष्ठिभूमि को ध्यान में रखकर अनुभव करते हैं। यह पृष्ठभूमि प्राचीन रीति-रिवाज और पूर्वी तड़क-भड़क की है, जिसे देश के निरंकुश शासकों ने उसकी करोड़ों जनता की आंखों में चकाचौंध पैदा करने के लिए बनाये रखा है। इससे तर्क का गला घुट जाता है। नई दिल्ली इस चित्र के अनुरूप है। पुरानी महान् परम्परा कायम रखी गई है। ह्वाइट हाऊस की सादगी बरती जाना यहां मजाक जान पड़ेगा। उसे देखकर हिन्दू हँसेंगे। मुसलमान घृणा करेंगे। नरेश इसे पागलपन कहेंगे।"

इसका जोरदार उत्तर मार्गरेट पोप ने निम्न शब्दों में दिया:—

"मैं नहीं कह सकती कि श्री बेवर्ली निकोलस को यह किसने सुझाया कि भारत में उन्हें सफलता मिलेगी। लंदन के समाचारपत्रों में वे जो कुछ लिख रहे हैं उससे लेकर ताजमहल होटल के उनके व्याख्यान तक से मैं तो यही अंदाज लगा पाई हूँ कि उन्हें यहां प्रचार करने के लिए भेजा

गया है। नहीं तो उनके जैसा हृष्टपुष्ट युवक को इंग्लैंड से भारत क्यों आने दिया जाता और भारत में 'दौरा' करने के लिए आजाद छोड़ दिया जाता ! ताजमहल होटलमें 'राष्ट्रीय सेवा' के आदेश को लापरवाही से फेंक देने की जो मनोरंजक घटना हुई है उससे यह संदेह घटने के बजाय बढ़ ही गया है। हाल से बाहर जाते वक्त ज्यादातर लोग यही सोच रहे थे कि आखिर ये क्या करने जा रहे हैं। मैं तो यही कहना चाहती हूं कि श्री बेवर्ली निकोलस पत्रकारी करें या प्रचार—इससे इनके अपने तथा जिस राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करने का दावा वे करते हैं, उसके सम्मान के प्रति धब्बा ही लगेगा। मैं तो उन्हें यही सलाह दूंगी कि अधिक हानि होने से पहले ही उन्हें प्रथम उपलब्ध वायुयान द्वारा इस देश से चले जाना चाहिए। श्री निकोलस, ध्यान रखिये कि यह कोई जोशीला भारतीय नहीं बल्कि उन्हींके देश की एक ऐसी स्त्री कह रही है जिसका चमड़ा उन्हींके जैसा श्वेत है। यह ठीक है कि मुझे वाइसराय-भवन को निकट से देखने का अवसर नहीं मिला और न मैं ताजमहल होटल में ही बोल पाई हूँ और न असुविधाजनक प्रश्नों का जवाब देने के लिए मैंने बहानेबाजी ही की है। परन्तु मैंने भारत में गम्भीर जांच-पड़ताल की है। मैंने दिल्ली के वाइसराय-भवन की अपेक्षा कुछ अधिक महत्वपूर्ण चीजों को देखा है और यह स्वाभाविक है कि मैं कुछ ऐसी बातें जान गई हूँ जिनसे श्री निकोलस अनजान हैं। उदाहरण के लिए, भारतीयों को उनकी अपनी समस्याओं के सम्बन्ध में उपदेश देकर मूर्ख न बनने की बात मैं जान गई हूं, जैसे कि वे किसी कॉलेज की प्रथम कक्षा के विद्यार्थी हों। इन कारणों से श्री निकोलस को मेरी सलाह मानकर तुरन्त भारत से चले जाना चाहिए।

"यदि उनकी ताजवाली सभा भाषण की दृष्टि से असफल थी तो उनका 'संडे क्रॉनिकल' वाला लेख तो पत्रकारी की दृष्टि से एक लांछन है। भारत की भूमि पर पैर रखने के समय से अंग्रेज पत्रकारों की दंभपूर्ण शैली के सम्बन्ध में मुझसे शिकायत की जाती रही है और श्री निकोलस का लेख तो सीमा का अतिक्रमण कर गया है। अधिकांश भारतीयों ने, पढ़ने की तो दूर रही, उनकी पुस्तकों के बारे में सुना तक नहीं है और उनके लिए यह विश्वास तक करना कठिन होगा कि वे पत्रकार नहीं बल्कि कहानीकार हैं। इधर हाल में वाइसराय-भवन की तड़क-भड़क के संबन्ध में उन्होंने जो साहित्यिक छटा दिखाई है उसके संबन्ध में भारतीय यह नहीं सोच सकते कि यह उनकी कल्पनाशक्ति का परिणाम है; बल्कि वे तो उसे बौद्धिक बेईमानी ही समझेंगे। मेरी तरह श्री निकोलस भी जानते हैं कि वाइसराय का वेतन इंग्लैंड के प्रधानमन्त्री की अपेक्षा दुगुना है। लेकिन मुझे शक है कि वे जानते हैं या नहीं कि 'चकाचौंध में आने वाली' जनता की औसत आय ५ पौंड वार्षिक से भी कम है। श्री निकोलस ने भारत को ब्रिटिश म्युजियम कहा है; लेकिन म्युजियम यह उसी सीमा तक है जिसतक अंग्रेजों का संबन्ध है। इस म्युजियम की दर्शनीय वस्तुएं पहले तो वह वाइसरायी तड़क-भड़क है जिसे श्री निकोलस पसंद करते हैं; और दूसरे वह पतनोन्मुख साम्राज्यवादी शासन-व्यवस्था है जिसे वैध सरकार का नाम दिया जाता है। आधुनिक भारतीय विचार-धारा में साम्राज्यवाद मर चुका है और वह यहां फिर नहीं पनप सकता। लेकिन इंग्लैंड में साम्राज्यवाद मरा नहीं है। वह अभी तक एमरी व उनके साथियों के मस्तिष्क में बना हुआ है। श्री निकोलस चाहें जो समझें, जादू-द्वारा भी भारत को ब्रिटिश म्युजियम से बदलकर संगठित राष्ट्र नहीं बनाया जा सकता। भारतीय जादू में यकीन नहीं करते। उनका विश्वास जनता की, जनता के द्वारा और जनता के लिए सरकार कायम करने में है, जैसाकि मुझे दिखाई दिया है। उनका विश्वास अपने उस नेता पर है जो जेल में पड़ा है। भारतीय जनता ब्रिटिश राज को

आधुनिक भारत का सबसे बड़ा ऐतिहासिक विरोधाभास मानती है । उसका विश्वास है कि स्वाधीनता उसका जन्मसिद्ध अधिकार है और वह उसे प्राप्त करके रहेगी । उसका अंग्रेजों के प्रचार और उनकी मिथ्यावादिता में तनिक भी विश्वास नहीं है और मुझे खेद है कि वे श्री बेवर्ली निकोलस की बात का भी विश्वास नहीं करते ।

"दोनों देशों के लिए, श्री निकोलस, घर वापस जाइये और यात्रा संबन्धी कोई दूसरी पुस्तक लिखिये । याद रखिये कि 'घर' जैसी जगह और कोई नहीं होती ।"

श्री बेवर्ली निकोलस ने भारत के संबन्ध में एक पुस्तक 'वर्डिक्ट आन इंडिया' लिखी थी । इस पुस्तक में उन्होंने कहा था:—

"गांधीजी की सत्य के प्रति आस्था नहीं है ।"

"हिन्दू-धर्म का कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है ।"

"भारतीय पत्रकार मूर्ख होते हैं ।"

"भारत में सच्ची कला का अभाव है ।"

"भारतीय समाचारपत्र अफवाह, दुर्भावना तथा, अज्ञान का गड़बड़ घोटाला होते हैं ।"

इन बातों से हम यही निष्कर्ष निकालते हैं कि इंग्लैंड से कला-सम्बन्धी रुचि से हीन एक मूर्ख किस प्रकार अफवाह, दुर्भावना तथा अज्ञान का गड़बड़ घोटाला एकत्र कर ले गया और उसे ऐतिहासिक आधार के बिना ही सत्य के रूप में प्रकाशित किया ।

अब हम उन विदेशी पत्रकारों की चर्चा करते हैं जो भारत में रहकर सत्य पर प्रकाश डालने के लिए सचेष्ट रहे हैं । सबसे पहिले हम दो महिला पत्रकारों की चर्चा करेंगे । इनमें पहली मार्गरेट पोप हैं, जिनका उद्धरण हम ऊपर दे चुके हैं । दूसरी हैं सोनिया तोगारा । मार्गरेट पोप ने बताया है कि वे इंग्लैंड में सत्य पर प्रकाश डालने में क्यों असमर्थ हैं.—

"बम्बई पहुंचने के समय से सैकड़ों व्यक्ति मुझसे कह चुके हैं कि जब आप भारत के सम्बन्ध में सत्य से अवगत हैं तो लिखकर इंग्लैंड क्यों नहीं भेजतीं ? हां; मुझे विश्वास है । कि मैं सत्य से अवगत हूँ । परन्तु खुद जानना और युद्ध के समय दूसरों को बताना ये दो भिन्न बातें हैं । मैं एक राष्ट्र की हूँ और आप दूसरे राष्ट्र के हैं, किन्तु इससे कोई अंतर नहीं पड़ता । भारत-सम्बन्धी यथार्थ स्थिति की सूचना देने के बारे में इंग्लैंड से कोई रिआयत नहीं हो सकती । इस सम्बन्ध में प्रतिबन्ध हैं । मैं भारत में दो साल काम कर चुकी हूँ । मैं ऐसी बातें देख और कर चुकी हूँ जिन्हें देखने व करने की हिम्मत अधिकांश विदेशी पत्रकार दस साल में भी न करेंगे । मैं शासन-व्यवस्था के भीतर व बाहर रहकर काम कर चुकी हूँ । परन्तु मैं हमेशा ही साम्राज्यवाद के खिलाफ काम करती रही हूँ । मैं ऐसे स्थानों व पदों से जरूर हट गई हूँ, जिनके कारण तथ्यों की जानकारी के सम्बन्ध में मेरे अनुसंधानों में बाधा पड़ी है, और वह भी ऐसे तथ्यों के सम्बन्ध में जिन्हें मेरे अधिकांश साथी या तो छोड़ देते हैं या जिन्हें वे विकृत रूप में संसार के सामने उपस्थित करते हैं । परन्तु इन साथियों को मेरी तुलना में एक सुविधा प्राप्त है । उनके लिखे हुए विवरण लाखों व्यक्ति पढ़ते हैं और जो भी कुछ वे कहते हैं उस पर ये लाखों पाठक विश्वास कर लेते हैं । जो कुछ वे लिखते हैं उसे उनके उच्च अधिकारी पसंद करते हैं और सेंसर वाले भी उसे पसंद करते हैं । और मैं ? मैं जानती हूं कि भारत के सम्बन्ध में मेरा वही दृष्टिकोण है जो फासिस्टों के एक सच्चे विरोधी का होना चाहिए । इसे मैं सिद्ध कर सकती हूं । परन्तु अपने विचारों को मैं चाहे जहां प्रकट नहीं कर सकती । यदि मैं भारत में अंग्रेजों के सामने उन विचारों को प्रकट करती हूं तो

वे विश्वास नहीं करते; परन्तु हांगकांग से बर्मा तक उन्होंने किसी नई बात पर यकीन नहीं किया। यदि मैं जेलों से बाहर वाले भारतीयों से कहती हूं तो वे अपने मुँह छिपाते हैं। वे जानते हैं कि जो कुछ मैं कहती हूं सत्य है, किन्तु वे इस सत्य को सुनना नहीं चाहते। अंग्रेजों में अभिमान भले ही हो; किन्तु जो भारतीय उनके साथ सहयोग करते हैं उनमें दुर्भावना होती है।"

भारतीय स्वाधीनता की लड़ाई के दौरान में हुए राजनीतिक झगड़े तथा कांग्रेस के विरुद्ध अंग्रेजों का प्रचार समय-समय पर विभिन्न रूप ग्रहण करता रहा है। भारतीय परिस्थिति के विषय में जो समीक्षाएं प्रकाशित हुई उनमें जितनी दिलचस्पी समाचारपत्रों ने ली उससे कम दिलचस्पी सरकार ने नहीं ली। सर वेलेंटाइन शिरोल तथा उनके विरुद्ध लोकमान्य तिलक ने इंग्लैंड में मान-हानि का जो मुकदमा चलाया था वह होमरूल आन्दोलन व उससे पहले की एक चिरस्मरणीय घटना है। १९३० के नमक-सत्याग्रह के समय श्री स्लोकोम्ब भारत आये थे। १९३२-३३ में गांधी-इरविन समझौता भंग होने पर जो दुबारा सत्याग्रह शुरू किया गया उस समय एक मजदूर दल की समिति भारत आई थी, जिसकी सदस्या कुमारी विल्किसन भी थीं। लुई फिशर, एडगर स्नो,स्टील, सोनिया टामारा, मार्गरेट पोप और रेडियम वाली मैडम क्यूरी की पुत्री कुमारी क्यूरी जैसे कितने ही पत्र-प्रतिनिधि स्वयं भी भारत आये थे। 'न्यूज क्रॉनिकल,' 'संडे डिस्पैच' व 'संडे क्रॉनिकल' के अलावा भारत को इन संवाददाताओं-द्वारा लिखे विवरण पढ़ने को नहीं मिले। परन्तु इन पत्र-प्रतिनिधियों में एक लुई फिशर ऐसे थे, जिन्होंने भारत से वापस जाने पर अमरीका में आश्चर्यजनक कार्य किया। उन्होंने पत्रों में भारत के सम्बन्ध में लेख लिखे और व्याख्यान दिये। अपने लेखों पर रोक लगने से पूर्व उन्होंने सबसे महत्वपूर्ण कार्य सानफ्रांसिस्को में एक व्याख्यान देकर किया, जिसका पूरा विवरण मई, १९४३ में भारत के कुछ दैनिक पत्रों में प्रकाशित हुआ था। इससे नौकर-शाही के धैर्य का अंत हो गया और ब्रिटिश भारत में लुई फिशर के लेख या भाषण प्रकाशित करने पर रोक लगा दी गई। यह आदेश पुस्तक में अन्यत्र दिया हुआ है।

लुई फिशर के लेखों व भाषणों के भारत में प्रकाशित होने पर यह प्रतिबंध लगना एक बड़ी विचित्र बात है; क्योंकि १९४२ में एक सभा में भाषण करते हुए उन्होंने भारत में समाचार-पत्रों को दी हुई स्वाधीनता पर आश्चर्य प्रकट किया था। आपने कहा था कि "सरकार व सरकारी उपायों की इतनी आलोचना और कहीं नहीं होने दी जाती।"

परन्तु इस आदेश से न्याय का भी गला घोंटा गया है। भारतीय समाचारपत्रों को लुई फिशर के लेख व भाषण न छापने का आदेश देकर सरकार ने उस समझौते को भंग किया, जो उसने अखिल भारतीय समाचारपत्र सम्पादक-सम्मेलन से किया था और जिसे मानने के लिए सम्मेलन के सदस्य राजी हो गये थे। प्रतिबन्ध दूसरे शब्दों में पहले से सेंसर कराने की आज्ञा देना था। सरकार तथा सम्पादकों के सम्बन्ध युद्ध-प्रयत्नों में बाधा न डालने की एक बात पर निर्भर थे। जहांतक समाचारपत्रों का सम्बन्ध था उन्हें युद्ध-प्रयत्न में बाधा न डालनी चाहिए और उधर सरकार को पहले से सेंसर करने की प्रणाली लागू न करनी चाहिए। सरकार ने ८ अगस्त के बाद के तथ्य-सम्बन्धी समाचारों पर प्रतिबंध लगाने का जो प्रयत्न किया था उसका सम्मेलन ने आरम्भ में ही खात्मा कर दिया था। उसके प्रस्ताव का इससे सम्बन्ध रखने वाला अंश नीचे दिया जाता है।

'सम्मेलन पहले से सेंसर करने की प्रथा के विरुद्ध है। समाचारपत्र पहले किसी जांच के बिना सामूहिक आन्दोलन तथा उपद्रवों के निष्पक्ष विवरण प्रकाशित करने को स्वतंत्र रहने चाहिए। लेकिन सम्मेलन यह आवश्यक समझता है कि सम्पादकों को ऐसे विवरण प्रकाशित करने में संयम

से काम लेना चाहिए और कोई ऐसे विवरण न प्रकाशित करने चाहिए जिनसे जनता को विध्वंसात्मक कार्य के लिए प्रोत्साहन मिलता हो या जिनसे गैर-कानूनी कार्य के लिए सुझाव या आदेश मिलते हों अथवा जो पुलिस, सेना या अन्य सरकारी कर्मचारियों-द्वारा अधिकारों के दुरुपयोग या अत्यधिक प्रयोग या नजरबंदों व दूसरे कैदियों के प्रति व्यवहार के सम्बन्ध में निराधार या अतिरंजित विवरण हों और जिनसे जनता में सुरक्षा की भावना कायम होने में बाधा पड़ती हो । यह जो साधारण नीति निर्धारित की गई है, इसे जानबूझकर भंग करने वाले समाचारपत्र के विरुद्ध प्रान्तीय सरकारें अपने यहां की प्रान्तीय समाचारपत्र सलाहकार-समिति की सलाह से कार्रवाई करेंगी।"

श्री जी० एल० मेहता अंतर्राष्ट्रीय कारबार सम्मेलन के अधिवेशन में शरीक होने के लिए भारतीय प्रतिनिधि-मंडल के उप-नेता होकर अमरीका गये थे। आपने बताया कि अमरीका में भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन और खासकर कांग्रेस के विरुद्ध काफी प्रचार हो रहा है, आपने कहा—"अमरीकी जनता की भारतीय आकांक्षाओं के प्रति सहानुभूति है; किन्तु भारतीय परिस्थिति के सम्बन्ध में उनकी जानकारी अधिक नहीं है । अमरीका की अधिकांश जनता की भारत में दिलचस्पी है; किन्तु वे उसके बारे में जानते कुछ नहीं हैं। भारत के विषय में जानकारी की सचमुच कमी है । यहां तक कि ऐसे व्यक्ति भी जो भारत के लिए काम करते रहते हैं, जैसे पर्ल बक, श्री वाल्श (पर्ल बक के पति), लुई फिशर, श्री लिन यूतंग, श्री नार्मन टॉमस (जो समाजवादियों की तरफ से अमरीका के राष्ट्रपति पद के लिए खड़े हुए थे) ने कहा कि उन्हें खुद भारत के सम्बन्ध में बहुत कम सूचनाएं मिलती हैं।

"यह भी दुर्भाग्य की बात है कि भारतीय एजेंट-जनरल का वाशिंगटन वाला कार्यालय ब्रिटिश दूतावास की शाखा की तरह काम करता है । कार्यालय भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन, और विशेषकर कांग्रेस के विरुद्ध निरंतर नीचतापूर्ण प्रचार करता रहता है । ब्रिटिश सरकार भारत के विरुद्ध प्रचार में जो लाखों पौंड खर्च करती है उसके अलावा भारत सरकार भी लाखों रुपये खर्च करती है। इस प्रचार से अमरीकी जनता में भारत की हालत व आकांक्षाओं के बारे में भ्रम फैलता है। जैसाकि सभी जानते हैं, भारत व इंग्लैंड से अमरीका के लिए प्रचारक भेजे जाते हैं । कुछ ही समय पहले खबर मिली थी कि श्री बेवर्ली निकोलस अमरीका आने वाले हैं या सम्भवतः वहां पहुँच कर उन्होंने अपना दौरा आरम्भ भी कर दिया है।

"यह प्रचार करने के लिए कि भारतीय अनैक्य ही उसकी आज़ादी की राह का रोड़ा है और कांग्रेस व गांधीजी धुरीराष्ट्रों के प्रति सहानुभूति रखते हैं, बीसियों व्याख्यानदाताओं से काम लिया जाता है और कितना ही साहित्य देश भर में वितरित किया जाता है।

"रेडियो पर भारत के सम्बन्ध में लुई फिशर तथा ब्रिटिश दूतावास के एक अधिकारी सर फ्रेडरिक पकल के मध्य तथा एक तरफ श्री नार्मय टॉमस व सिनेटर लेंजर और दूसरी तरफ सर फ्रेडरिक पकल में विवाद हो चुके हे। यदि हिन्दुस्तान में संवादों की काट-छांट सिर्फ सैनिक कारणों से होती है तो इन विवादों की टाइप की हुई प्रतिलिपियां भारत में प्रकाशित की जायं ताकि भारतीय जनता जान सके कि अमरीका में कैसा प्रचार हो रहा है ।

"भारतीय एजेंट-जनरल के कार्यालय की दिलचस्पी यहां आने वाले भारतीय यात्रियों व विद्यार्थियों पर नजर रखने में जितनी अधिक है उतनी उनका सम्पर्क अमरीका की जनता से कायम करने में नहीं है। इसकी तुलना में भारत की राष्ट्रीय संस्थाओं की तरफ से प्रकाशन की

व्यवस्था कम प्रभावहीन है और उसके साधन भी सीमित हैं। डा० सैयद हुसैन, श्री जे० जे० सिंह, श्री अनूपसिंह, श्री कृष्णलाल श्रीधराणी व अन्य भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के सम्बन्ध में जानकारी उपलब्ध करने व भारतीय दृष्टिकोण को उपस्थित करने के लिए यथाशक्ति प्रयत्न कर रहे हैं। न्यूयार्क में एक भारतीय व्यापार-मंडल भी है; किन्तु उसके भी साधन सीमित हैं।

"अमरीका में जो संस्थाएं काम कर रही हैं उनकी शक्ति बढ़ाने तथा उनतक पर्याप्त सूचानाएं पहुँचाने की आवश्यकता है। श्री जे० जे० सिंह कई अमरीकियों के सहयोग से अमरीका इंडिया लीग को चला रहे हैं और साथ ही वे भारतीयों के अमरीका आकर बसने से प्रतिबंध को हटवाने का प्रबंध कर रहे हैं। इस सम्बन्ध में एक बिल अमरीका की कांग्रेस में उपस्थित किया जाने वाला है। डा० अनूपसिंह और उनके साथियों ने वाशिंगटन में भारतीन स्वाधीनता की राष्ट्रीय-समिति कायम की हैं और वे 'वायस आफ इंडिया' नामक एक मासक पत्रिका भी चला रहे हैं। 'इंडिया लीग' एक बुलेटिन प्रकाशित करती है।

श्री मेहता ने आगे कहा, "हमारे प्रतिनिधिमंडल के जाने से पूर्व भारत से जो भी प्रतिनिधिमंडल अमरीका गये थे वे सब-के-सब सरकारी थे या सरकार-द्वारा नामजद किये गये थे। इसलिए यदि वे चाहते तो भी भारत की आर्थिक अवस्था के सम्बन्ध में स्पष्टता व निर्भयता पूर्वक, विचार नहीं रख सकते थे।

"भारतीय दृष्टिकोण सबसे पहले ब्रिटेन वुड्स सम्मेलन में उपस्थित किया गया जिसमें गैर सरकारी सदस्य सर षण्मुखम् चेट्टी व श्री ए० डी० श्राफ ही नहीं बल्कि भारत-सरकार के अर्थ-सदस्य सर जर्मी रेजमैन तक ने स्टार्लिंग पावने तथा देश की युद्ध के कारण हुई आर्थिक परिस्थिति के सम्बन्ध में भारतीय दृष्टिकोण प्रकट किया।

"श्रीमती विजयालक्ष्मी पंडित की यात्रा तथा प्रशान्त सम्पर्क सम्मेलन में भारतीय प्रतिनिधियों की उपस्थिति से भारतीय दृष्टिकोण को बल मिल सकता है और वहां हमारे मित्रों की शक्ति भी बढ़ सकती है। अमरीका में भारतीय संवादों के प्रकाशन के सम्बन्ध में एक समझौता हो चुका है फिर भी मैं यह मानता हूँ कि भारतीय कारबार प्रतिनिधि-मंडल के कार्य का अमरीकी पत्रों में अच्छा प्रकाशन हुआ।

"मेरे लगभग छः सप्ताह के प्रवास में अमरीकी पत्रों में भारत के सम्बन्ध में शायद ही कोई खबर आई हो, सिवाय कुछ एकांकी खबरों के जो वाशिंगटन से भेजी गई थीं, जहां भारत में सार्जेन्ट-योजना की निन्दा की जाती है और उसे खत्म करने का प्रयत्न किया जाता है, अमरीका में खबरें प्रकाशित की जाती हैं कि सरकार योजना को अमल में ला रही है। इसका उद्देश्य अमरीकी जनता को यह दिखाना है कि सरकार युद्धोत्तर पुनर्निर्माण-कार्य तेजी कर रही है और भारतीय जनता का अधिकाधिक कल्याण करना चाहती है।"

श्री मेहता ने बताया कि कतिपय शक्तियों के प्रभाव के कारण श्रीमती पंडित के कार्य को अमरीकी पत्रों में काफी स्थान नहीं मिला।

फिलाडेल्फिया के श्रम-सम्मेलन में भारतीय मिल-मालिकों का प्रतिनिधित्व श्री मुल्हेरकर ने किया था। आपने पत्र-प्रतिनिधियों के एक सम्मेलन में बताया कि अमरीका में भारतीय समस्याओं के सम्बन्ध विचित्र तरीके का प्रचार किया जाता है।

श्री मुल्हेरकर ने कहा—"भारत संसार के राष्ट्रों में सम्मानपूर्ण स्थान पाने लिए जो संग्राम कर रहा है उसकी प्रगति के सम्बध में जानकारी प्राप्त करने की उत्कंठा अमरीका के साधारण

टैक्सी ड्राइवर से लेकर बड़े-से-बड़े उद्योगपति में दिखाई देती है। अमरीका में भारत की आकांक्षाओं के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने की जो इच्छा है इसकी पूर्ति भारत-सरकार व ब्रिटिश-सरकार देश भर में प्रचार के द्वारा कर रही है। वह प्रचार भी ऐसा रहा है कि उसे देखते हुए सरकारों की प्रशंसा नहीं की जा सकती।

"मुझे कितनी ही बार न्यूयार्क के आर्थिक हलकों के प्रमुख व्यक्तियों से भारतीय समस्याओं के विषय में बातचीत करने का अवसर मिल चुका है। उस प्रकार के प्रचार के प्रति विवेकशील तथा उच्च वर्ग के अमरीकी नागरिकों के जो विचार हैं उन्हें जानकर मेरा बड़ा मनोरंजन हुआ। परन्तु भारतीय गद्दारों को देश के एक छोर से दूसरे छोर तक "प्रसिद्ध पत्रकारों तथा सार्वजनिक जीवन में प्रमुख भारतीयों" के रूप में जिस प्रकार उपस्थित किया जाता है उस से देश की राजनीतिक अवस्था के सम्बन्ध में मध्यम श्रेणी के अमरीकी नागरिक भ्रम में पड़ जाते हैं। मेरा ख़याल है कि भारत के रुपये से अमरीका में जो प्रचार हो रहा है और भारत की हालत के सम्बन्ध में अमरीकी जनता में जो भ्रम फैलाया जा रहा है उसके सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार को जानकारी प्राप्त करने का अधिकार है।"

श्री मुल्हेरकर ने बताया कि अमरीका में ३०० व्यक्ति दावतों तथा भोजों के अवसर पर व्याख्यान देते फिरते हैं और इसमें से अधिकांश भारतीय हैं। श्री मुल्हेरकर ने बताया कि ये लोग भारत का जैसा चित्र खींचते हैं उसकी एक झलक पूछे हुए प्रश्नों से मुझे मिल चुकी है। एक उल्लेखनीय बात यह है कि इन व्याख्यानों का प्रबन्ध ब्रिटिश दूतावास के अधिकारियों-द्वारा किया जाता था।

इन व्याख्यानों में ऐसी बातें कही जाती हैं, जैसे भारत से अंग्रेजों के चले आने पर देश से ईसाई धर्म का नाम-निशान मिट जायगा। ऐसी बातें कहने से कम-से-कम महिलाओं में तो भारतीयों के प्रति रोष की भावना फैल ही जाती है। दूसरी आम बात यह कही जाती है कि अंग्रेजों के चले आने पर भारत में गृह-युद्ध छिड़ जायगा; किन्तु स्वाधीन होने के बाद स्वयं अमरीका में गृह-युद्ध चला था इसलिए इस बात का अधिक असर नहीं होता।

श्री मुल्हेरकर ने आगे कहा, "ऐसे वातावरण में अमरीका के औद्योगिक व आर्थिक हलके देश के औद्योगीकरण के सम्बन्ध में भारतीय उद्योगपतियों की विचारधारा के बारे में जब कोई सवाल उठाते थे तो उससे बड़ी राहत मिलती थी। अमरीकी उद्योगपति युद्ध के बाद भारत को मशीनें व कारीगर भेजकर सहायता पहुँचाना चाहते हैं।

"जब अमरीकी पूँजीपतियों से कहा गया कि भारत के पास डालर-सम्बन्धी साधन थे; किन्तु ब्रिटिश सरकार ने उनका व्यय साम्राज्य के हित में कर दिया तो, उन्होंने उत्तर दिया कि युद्ध के बाद ब्रिटेन को अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक जगत् में अपनी स्थिति की रक्षा करने के लिए स्टर्लिंग पावने की समस्या का, जो भारत ने अनेक कष्टों से जमा किया है, न्यायपूर्ण हल करना होगा।"

डालर पावने की समस्या के न्यायपूर्ण हल के सम्बन्ध में अमरीका की सहानुभूति प्राप्त करना भारत के लिए बड़ी अच्छी बात है। यह सहानुभूति क्या रूप ग्रहण करेगी, यह अभी से बताना कठिन है; किन्तु ऐसा जान पड़ता है कि अमरीकी सरकार ब्रिटेन पर इस बात के लिए जोर देगी कि वह भारत को उसके हिस्से के डालर उपलब्ध करे। यह डालर भारत के हिसाब में १९३९ से अबतक अनुकूल व्यापारिक संतुलन होने के कारण तथा अमरीकी सरकार-द्वारा भारतीय सरकार को उस सामान का भुगतान करने के कारण जमा हो गये हैं जो भारत में रखी गई अमरीकी सेना के लिए दिया गया था।

अमरीकी उद्योगपतियों से बातचीत करने के परिणामस्वरूप ज्ञात हुआ कि वे भारत को मोटर, वायुयान, जहाज, भारी रासायनिक पदार्थ, रासायनिक खाद तथा पेट्रोल की जगह काम में आनेवाले अलकोहल के उत्पादन के लिए मशीनें उपलब्ध करने को तैयार हैं। श्री मुल्हेरकर को अमरीका में बड़े-बड़े कारखानों के गुट्ट बनाने के विरुद्ध भावना दिखाई दी, जैसा गुट्ट तेल के उद्योग में है।

श्री मुल्हेरकर ने बताया कि अमरीकी पूँजीपति भारत को पूँजी सम्बन्धी सहायता देने को भी तैयार हैं। यदि भारतीय अमरीका के आर्थिक साम्राज्य की सम्भावना से भयभीत हैं तो ७५ प्रतिशत पूँजी भारतीय और २५ प्रतिशत पूँजी अमरीकी लगाई जा सकती है। आपने यह भी कहा कि अमरीकी कारखानों में अभी कितनी ही उत्पादन शक्ति फालतू पड़ी है हुई है, जिसके कारण युद्ध-सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद भी गैर-सैनिक मांग पूरी करने व निर्यात के लिए उत्पादन-कार्य हो सकता है।

भारतीय सेना के अंग्रेज अफसरों में 'अवर इंडियन एम्पाइर' शीर्षक एक पुस्तिका प्रचारित की जा रही थी जिसका स्वतंत्र मजदूर दल के मंत्री श्री फैनर ब्रेकवे ने विरोध किया। आपने कहा, "मेरा खयाल है कि भारतीय सेना में काम करने के लिए जानेवाले अंग्रेज अफसरों में 'अवर इंडियन एम्पाइर' नामक जो पुस्तिका वितरित की जाती थी और जिसकी कुछ समय पूर्व मैं सार्वजनिक रूप से आलोचना कर चुका हूं, अब युद्ध कार्यालय द्वारा वापस ले ली गई है।

श्री टी० ए० रमन की 'रिपोर्ट ऑन इण्डिया'

भारतीय इतिहास के संकटकाल (१६४२-४४) में भारत के सम्बन्ध में अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुईं। इनमें एक टी० ए० रमन की 'रिपोर्ट ऑन इण्डिया' थी। श्री रमन ब्रिटिश साम्राज्य की सेवा के लिए भारत का दौरा कर रहे थे। उनकी पुस्तक की एक मनोरंजक आलोचना 'न्यू रिपब्लिक' (१० जनवरी, १९४४–पृष्ठ ६०) में प्रकाशित हुई।

"भारत के सम्बन्ध में सर जान सीली ने १८७० में लिखा था—'अधिक समय तक पराधीन रहना किसी देश के राष्ट्रीय पतन का एक सबसे महत्त्वपूर्ण कारण होता है।' यह निस्संदेह सत्य है। इसका सबसे ताजा उदाहरण टी० ए० रमन की 'रिपोर्ट आन इण्डिया' पुस्तक है जिसमें लेखक ने अपने राष्ट्र पर विदेशी प्रभुता के पक्ष में सफाई उपस्थित की है (जरा कल्पना कीजिये कि जर्मनों से धन लेकर कोई फ्रांसीसी एक ऐसी पुस्तक लिखे जिसमें अप्रत्यक्ष रूपसे फ्रांसीसी देशभक्तों की निन्दा की गई हो और फ्रांस के जर्मन प्रभुत्व की प्रशंसा की गई हो, भारतीय की दृष्टि से देखा जाय तो यही टी० ए० रमन के कार्य की असलियत है)। लेकिन सर जॉन के सिद्धान्त का एक दूसरा पहलू है, जिसकी उन्होंने उपेक्षा की थी। ऐसा कोई देश खुद भी, जो किसी दूसरे राष्ट्र को अपनी आधीनता में रखता है, राष्ट्रीय पतन से बच नहीं सकता। यह दुःखद पुस्तक ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस ने प्रकाशित की है जो इसके अतिरिक्त सदा सम्मानपूर्ण रहा है। इसमें हमें दोहरे पतन की बू आती है।"

अमरीका के लिए प्रतिनिधि मंडल

नवम्बर १९४३ में केन्द्रीय असेम्बली में सरकार के विरुद्ध एक निन्दा का प्रस्ताव पास किया गया। यह प्रस्ताव अमरीका को भारत के युद्ध-प्रयत्नों के सम्बन्ध में व्याख्यान देने के लिए भारतीयों का प्रतिनिधिमण्डल भेजने के सम्बन्ध में था।

भारत का युद्ध-प्रयत्न एक मानी हुई बात थी फिर उसे सिद्ध करने के लिए चार राजभक्त

भारतीयों को अमरीका भेजने की जरूरत क्यों पड़ी ? भारत से जन और धन की सहायता के आंकड़े उपलब्ध थे और इन आंकड़ों के बावजूद देश में राजनीतिक असंतोष के बादल घिर रहे थे। केन्द्रीय असेम्बली के सदस्यों को आशङ्का थी कि प्रतिनिधि-मण्डल कहीं राजनीतिक उद्देश्य से तो नहीं भेजा जा रहा। पहले प्रतिनिधि-मण्डल के नेता और बाद में एक सरकारी प्रवक्ता इस आशङ्का का खंडन कर चुके थे। परन्तु भारत जानता था कि पहले दो मिशन अमरीका में कैसा दौरा कर रहे थे। इनमें से पहले मिशन में सर्व श्री एच० एस० एल० पोलक, एस० के० रेटक्लिफ और टी० ए० रमन थे और दूसरे में लंदन-स्थित भारतीय, हाई कमिश्नर सर एस० रंगनाथन थे। दोनों ही कांग्रेस व उसकी राजनीतिक मांग के विरुद्ध भाषण कर रहे थे। यह भी ज्ञात होचुका था कि दोनों भारतीय प्रतिनिधियों का खर्च भारत सरकार ही उठा रही थी।

केन्द्रीय एसेम्बली के जो सदस्य निन्दा के प्रस्ताव के समर्थक थे वे इस कथन को सहन नहीं कर सके कि यह नया प्रतिनिधि-मंडल, जिसमें सिर्फ भारतीय होंगे और उनकी संख्या ४ होगी, कोई राजनीतिक उद्देश्य लेकर नहीं जा रहा है। अंत में १० कांग्रेसजनों की सहायता से, जो कांग्रेस के प्रस्ताव के विरुद्ध असेम्बली में आकर बहस में शरीक हुए थे, यह प्रस्ताव पास हो गया। कांग्रेसी प्रतिनिधि श्री जी० वी० देशमुख ने बहस आरम्भ की थी। कांग्रेसियों की असेम्बली में उपस्थिति तथा निन्दा का प्रस्ताव पास हो जाने से कुछ हलकों में जो संतोष हुआ था वह इस बात से फीका पड़ गया कि प्रतिनिधि-मण्डल उसी दिन इंग्लैंड को रवाना, हो रहा था। मंडल दो-दो सदस्यों के दो दलों में बट गया था और यह निश्चय हुआ था कि दोनों दल बारी-बारी से इंग्लैंड व अमरीका का दौरा करेंगे।

प्रतिनिधि-मण्डल ने इंग्लैंड में जाते ही अपना प्रभाव खो दिया। उसे पहले ही दिन स्वीकार करना पड़ा कि केन्द्रीय असेम्बली उसकी निन्दा का प्रस्ताव पास कर चुकी है और यह असेम्बली भी जनता का पूरी तरह प्रतिनिधित्व नहीं करती। यदि प्रतिनिधित्व न करने वाली असेम्बली ने ऐसा किया तो प्रतिनिधित्व करने वाली असेम्बली न जाने क्या करती ! और फिर उसे यह भी स्वीकार करना पड़ा कि भारत के दो सबसे प्रमुख राजनीतिक दल युद्धप्रयत्नों के विरुद्ध हैं। फिर प्रतिनिधि-मण्डल आखिर किसका प्रतिनिधित्व कर रहा था। प्रतिनिधि-मण्डल के नेता सर एस० शर्मा ने कहा कि उग्र-से-उग्र कांग्रेसजन भी जापान-विरोधी है और जापानियों की विजय की इच्छा नहीं करता। आपने यह भी कहा कि यदि गांधीजी व कांग्रेसी नेताओं को रिहाकर दिया जाय तो समझौता हो सकता है। इसका लंदन में एक खंडन भी प्रकाशित किया गया।

प्रतिनिधि-मण्डल का वास्तविक स्वरूप भी शीघ्र ही प्रकट हो गया। अपने पिछले कथन के बावजूद प्रतिनिधि मण्डल के सभी सदस्य एक-एक करके राजनीति की दलदल मे फंस गये। भारत के उज्ज्वल भविष्य के सम्बन्ध में प्रतिनिधि मण्डल के नेता सर एस. शर्मा ने जो विचार प्रकट किये थे वे उन्हें भारत-मन्त्री कार्यालय के कहने पर वापस लेने पड़े। श्री गियाजुद्दीन ने कूटनीति का चोगा उतार कर खुले शब्दों में मान लिया कि दोनों प्रमुख राजनीतिक दल युद्ध-प्रयत्नों में भाग लेने के विरुद्ध अपना मत प्रकट कर चुके हैं। दलित जातियों या हरिजनों की दुरवस्था के लिए श्री गियाजुद्दीन ने अंग्रेज़ों को ही दोषी ठहराया। हरिजन नेता ने खुद भी कुछ ऐसी बातें कहीं, जो लन्दन की सभा में एकत्रित आई० सी० एस० व आई० ई० एस० के सदस्यों को रुचिकर नहीं लगीं। आपने कहा कि अपने १६० वर्ष के शासन-काल में हरिजनों की हालत के लिए अंग्रेज़ शासक ज़िम्मेदार हैं। प्रतिनिधि मण्डल ने 'साम्प्रदायिक

निर्णय' का भी गुणगान किया; किन्तु इस बात का ध्यान नहीं रखा कि गांधीजी के अनशन के ही कारण साम्प्रदायिक निर्णय में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ और इस परिवर्तन को हरिजनों व श्री रैमज़े मैकडानल्ड ने स्वीकार भी कर लिया। इस परिवर्तन के कारण हरिजनों को लगभग १४१ सीटें मिलीं, जबकि पहले उन्हें सिर्फ ७१ ही सीटें दी गई थीं। कांग्रेसी सरकारों तथा स्थानीय बोर्डों ने उन स्कूलों को आर्थिक सहायता देने से इन्कार कर दिया, जो अपने यहां अस्पृश्यता को कायम रखे हुए थे। कांग्रेस ने हरिजनों के धार्मिक मामले में हस्तक्षेप नहीं किया। सिख, मुस्लिम या ईसाई पंथों में से जिस भी धर्म को ग्रहण करने से उनकी आर्थिक अवस्था में सुधार होने की आशा हो उसे ग्रहण करने के लिए वे स्वतन्त्र थे। संयुक्तप्रान्त में हरिजनों का एक गांव-का-गांव सिख हो गया। परन्तु डा० अम्बेदकर ने जो यह प्रस्ताव किया कि हरिजनों को उसी धर्म में जाना चाहिए, जो उन्हें सबसे अच्छा आर्थिक व सामाजिक पद दे सके, उस पर विचार करके निर्णय करने की आज़ादी तो प्रत्येक सम्मानित व्यक्ति मांग ही सकता है। जहां तक कांग्रेस का सम्बन्ध है, हरिजन हिन्दू धर्म के ही अंग माने गये और उन्हें निर्वाचित संस्थाओं में पृथक् व निश्चित प्रतिनिधित्व दिया गया और उनकी सामाजिक व शिक्षा-सम्बन्धी अवस्था में सुधार के लिए योजनाएं अमल में लाई गईं।

इस गैर-सरकारी प्रतिनिधि मण्डल की अमरीकी शाखा के सम्बन्ध में एक उपहासास्पद पेचीदगी उत्पन्न हो गई उसके अमरीका पहुँचने में देरी होने का यह कारण बताया गया कि सदस्यों के प्रवेश-पत्र देर से पहुँचे। प्रवेश-पत्र उसी हालत में मिल सकते थे जबकि व्याख्यान देने वालों को अमरीका की कम-से-कम दो सार्वजनिक संस्थाओं से निमन्त्रण मिलता। भारत सरकार इन व्याख्यानदाताओं में से प्रत्येक को ६०,००० रु० दे रही थी। यद्यपि उनके भेजे जाने की केन्द्रीय असेम्बली निन्दा कर चुकी थी, फिर भी प्रस्ताव पास होने के दिन ही उन्हें भारत से रवाना कर दिया गया। प्रतिनिधि मण्डल व सरकार दोनों ही का दावा था कि सरकार की तरफ से खर्च मिलने के बावजूद प्रतिनिधि मण्डल गैर सरकारी ही है। इस विचित्र स्थिति के ही कारण प्रवेश-पत्र मिलने में देरी हुई।

बाद की घटनाओं से सर सुलतान अहमद का यह दावा गलत हो गया कि प्रतिनिधि मण्डल का सम्बन्ध सिर्फ भारत के युद्ध प्रयत्नों तक ही सीमित रहेगा। परन्तु व्याख्यानदाता अथवा जनता दोनों में किसीने भी यह प्रतिबन्ध नहीं माना और अन्त में वह राजनीतिक प्रतिनिधि मण्डल ही प्रमाणित हुआ।

इंग्लैंड में श्री एमरी ने कहा कि एक पीढ़ी बाद भारतीय समस्या में ऐसा परिवर्तन हो जायेगा कि उसे पहिचाना भी न जा सकेगा। आपने इस बात का विशेष ध्यान रखा कि स्वीकृत लेखकों व व्याख्यानदाताओं के द्वारा साम्राज्यवादियों के कट्टरपंथी विचारों को ही अमरीका में प्रोत्साहन मिले। हम सर सेमुअल रंगनाथन तथा श्री एच० एस० एल० पोलक द्वारा अमरीका के दौरे का हाल पढ़ चुके हैं। इनमें से रंगनाथन तो भारत के लन्दन-स्थित हाई-कमिश्नर बना दिये गये। इन दोनों सज्जनों के बाद श्री होडसन आये, जो पहले 'राउण्ड टेबुल' के सम्पादक थे और बाद में भारत सरकार के शासन-सुधार कमिश्नर भी रह चुके थे। इन श्री होडसन ने न्यूयार्क के 'फारेन अफेयर्स' में एक लेख लिख कर इंग्लैण्ड व भारत की प्रवृत्तियों की तुलना की। आपने कहा कि जहां भारत में राष्ट्रीय प्रवृत्ति की अधिकता है वहां इंग्लैण्ड में अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण की प्रधानता है और एक ही सम्राट की अधीनता में विश्व-व्यापी संगठन कायम रखने

में अपनी ज़िम्मेदारी महसूस करता है। श्री होडसन के शब्दों में "ब्रिटेन जानता है कि स्वाधीनता एक प्रवंचना है और इसीलिए वह अन्तर्राष्ट्रीय स्थिरता के लिए प्रयत्नशील है; उधर दूसरी तरफ भारत को आशंका है कि कहीं स्थिरता का परिणाम उन्नति में बाधा पड़ना न हो और वह राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए लालायित है।" गांधीजी की प्रवृत्तियों को "तानाशाही व किसी भी वस्तु में विश्वास न करने की प्रवृत्ति की ओर झुकाव" तथा श्री जिन्ना के "दुराग्रह" की चर्चा करने के पश्चात् श्री होडसन ब्रिटेन को उसके कर्तव्य का ज्ञान कराते हुए कहते हैं कि अगस्त १९४० में लार्ड लिनलिथगो ने अपनी शासन-परिषद् में भारतीयों की संख्या बढ़ाने की जो घोषणा की थी उस पर अमल होना चाहिए। श्री होडसन लिखते हैं, "अभी हमें काफ़ी दूर तक इसी नीति का अनुसरण करना है। स्वराज्य के मकसद तक पहुँचने के लिए भारत की प्रगति इसी तरह से हो सकती है, किसी तड़क-भड़क वाली नीति से नहीं।"

श्री डब्ल्यू० एच० चेम्बरलेन 'येल रिव्यू' व 'क्रिश्चियन साइन्स मानीटर' के रूस, सुदूरपूर्व व फ्रांस में प्रतिनिधि रह चुके हैं। श्री चेम्बरलेन ने 'येल रिव्यू' में एक लेख लिख कर भारत को स्व-शासन प्रदान करने के विरुद्ध भारतीयों में समझौते के अभाव का तर्क उठाया और कहा कि अंग्रेज़ों के भारत से चले जाने पर भारत में अराजकता फैल जायगी और ब्रिटेन ने जो शान्ति व व्यवस्था स्थापित की है वह समाप्त हो जायगी। लेख में यह सुझाव भी उपस्थित किया गया कि यदि अमरीका ब्रिटेन को आक्रमण से मुक्ति का आश्वासन दे सके और व्यापार तथा जकात के सम्बन्ध में कुछ रियायतें दे सके तो वह भारत में स्वशासन की गति अधिक तीव्र कर सकता है और साम्राज्यवाद की कुछ विशेषताओं तथा एकाधिकारों से वंचित रहना स्वीकार कर सकता है।

जून, १९४४ में सर सेमुअल रंगनाथन ने, जो फिलाडेल्फिया में होने वाले अंतर्राष्ट्रीय श्रम-सम्मेलन में भारत सरकार के प्रतिनिधि थे, कहा कि "भारतीय राजनीतिक झगड़े के बारे में अमरीकी नागरिक कोई मत नहीं प्रकट करना चाहते; किन्तु अमरीका वाले भारतीय समस्या का निबटारा जरूर चाहते हैं; क्योंकि मित्रराष्ट्रों की युद्ध-सम्बन्धी कार्रवाई का यह आधार है।" हमारे मत में इसमें दो बातें ग़लत कही गई हैं। सर सेमुअल कहते हैं कि लोकमत प्रकट नहीं हुआ। यदि लोकमत प्रकट नहीं हुआ तो उन्हें यह कैसे जान पड़ा कि अमरीका के लोग भारतीय समस्या का निबटारा चाहते हैं। यह ठीक है कि वे एक, या दो, या आधे दर्जन अमरीकियों के विचार प्रकट नहीं कर रहे थे; लेकिन अगर इन आधे दर्जन व्यक्तियों में वेंडेल विल्की, हेनरी वालेस, विलियम फिलिप्स, सुमनर वेल्स, गुंथरकेट, एल० मिचेल्स और लुई फिशर हों तो उनका भी महत्व है। अगर सर सेमुअल का कहना है कि अमरीकी लोग भारतीय समस्या का निबटारा चाहते हैं तो यही मतलब हो सकता है कि अमरीका का अधिकांश लोकमत यही चाहता है। फिर सर सेमुअल के इनकार करने का क्या मतलब है? कारण यह दिया गया है कि अमरीका वाले समस्या का निबटारा इसलिए चाहते हैं कि भारत उनकी युद्ध-सम्बन्धी कार्रवाई का आधार है। यह तो अमरीकियों के विवेक व नैतिक स्तर पर आरोप है। अमरीका के लोग भारतीय समस्या का निबटारा इसलिए नहीं चाहते थे कि वह जापान के विरुद्ध युद्ध का आधार था बल्कि इसलिए कि स्वाधीनता के लिए भारत का दावा न्यायपूर्ण अकाट्य व अत्यावश्यक था, जो अमरीका वाले खूब जानते थे और यह विचार कितनी ही बार प्रकट भी कर चुके थे।

जनवरी, १९४५ में "मैं आरोप लगाता हूँ" शीर्षक से 'लीडर', इलाहाबाद में कई मनो-

रंजक लेख 'इंसाफ' के नाम से प्रकाशित हुए हैं। इन लेखों का सारांश नीचे दिया जाता है:—

अमरीका में ब्रिटिश तथा भारतीय सरकार के दूत भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन विशेषकर कांग्रेस के विरुद्ध जोरदार आंदोलन कर रहे हैं। अमरीका की इण्डिया लीग के कार्यों का मुकाबला करने के लिए श्री हेन्नेसी को प्रकाशन अधिकारी बनाकर भेजा गया; किन्तु यह प्रयोग सफल नहीं हुआ। इसके बाद भारत सरकार के सूचना विभाग के सेक्रेटरी सर फ्रेडरिक पकल तथा भारत-मन्त्री के कार्यालय के प्रकाशन अफसर श्री जोइस दोनों ही को अमरीका भेजा गया। उन्होंने सुझाव उपस्थित किया कि सूचना-सम्बन्धी कार्य ब्रिटिश सूचना-विभाग के सिपुर्द किया जाय तथा भारतीय राजनीतिक परिस्थिति के सम्बन्ध में अमरीका में अंग्रेजों का दृष्टिकोण उपस्थित करने का कार्य भारत-सरकार को सौंपा जाय।

रूस, चीन तथा मध्यपूर्व में भी भारत के सम्बन्ध में भ्रम फैलाया गया। १९४३ में भारत के सम्बन्ध में जो एकमात्र पुस्तक रूसी भाषा में प्रकाशित हुई वह श्री एस० मेलमान की थी और उसमें भारत में ब्रिटिश राज के सम्बन्ध में सदा का मत दोहरा दिया गया था। ऐसा जान पड़ता था जैसे रूस भारत को और भारत रूस को अंग्रेजों की आंखों से देख रहे हैं। 'यूनाइटेड पब्लिकेशंस' रूस को एक संवादपत्र 'मिजान' रूसी भाषा में, एक सचित्र पत्रिका 'दुनिया' अंग्रेजी व रूसी भाषाओं में और 'इण्डियन क्रॉनिकल' रूसी भाषा में भेजने लगा। भारत के सम्बन्ध में चीन के लिए कुछ लिखा जाय और गांधीजी का नाम न हो यह ठीक न था। इसलिए चीन को भेजी जाने वाली 'इण्डिया' पत्रिका में इस बात का खास ध्यान रखा गया। प्रचार के इस गुर का रूस को भेजे जाने वाले 'मिजान' पत्र में भी ध्यान रखा गया। चीन में प्रचार का क्षेत्र अच्छा था और उसका खूब उपयोग किया गया।

ब्रिटिश राष्ट्र-मंडल के विभिन्न देशों में 'जीहुजूर' भारतीयों को हाई कमिश्नर व एजेंट-जनरल के पदों पर नियुक्त किया गया।

'युनाइटेड पब्लिकेशंस' ने अरबी की एक आकर्षक पत्रिका 'अल्-अरब' फारस की खाड़ी के तटवर्ती देशों के लिए भेजनी आरम्भ की। अफगानिस्तान व ईरान को भेजी जाने वाली एक अन्य पत्रिका का नाम विश्व प्रसिद्ध 'ताजमहल' पर रखा गया। 'जहान-इ-आजाद' पत्रिका फारसी व अरबी दोनों ही भाषाओं में प्रकाशित होती है। 'अहांग' अरबी भाषा की एक अन्य पत्रिका थी। भारत की सीमा की कबीली जनता के लिए 'नाहुन पारुन' नामक पत्रिका पश्तो भाषा में निकाली गई। 'जहान-इ-इमरज' फारसी में निकाला गया और फिर उसे बंद कर दिया गया। फ्रेंच, फारसी तथा अरबी भाषाओं में 'त्रंगल' मध्यपूर्व के देशों के लिए निकाला गया। 'दुनिया' कई भाषाओं में प्रकाशित हुई। बालकों के लिए 'नौनिहाल' पत्रिका निकाली गई। उर्दू और हिन्दी में 'आजकल' पत्रिका भी प्रकाशित हुई।

इस प्रचार कार्य में भारी खर्च हुआ। भारत-सरकार २५,००,००० रु० और ब्रिटिश सरकार १,००,००,००० डालर से १,२०,००,००० डालर तक सिर्फ अमरीका में भारत-विरोधी प्रचार पर खर्च करती थी। अमरीका में ब्रिटिश साम्राज्यवाद की वकालत करने के लिए १०,००० व्यक्ति काम कर रहे थे।

३० भारतीयों को प्रचारक के रूप में अमरीका ले जाया गया। इनके अतिरिक्त भारत-विरोधी प्रचार में बीवरब्रुक-गुट्ट के समाचारपत्रों ने भी योग दिया। अमरीका में कितने ही ऐसे मिशनरी थे, जो भारत में रह चुके थे और जिनकी अंग्रेजों के प्रति सहानुभूति थी। इनका उपयोग

किया गया। इनमें श्रीयुत व श्रीमती पीटर भी थे, जो १५ महीनों तक वाइसराय, गवर्नरों व नरेशों की मेहमानी भोगते रहे और इसके बाद उन्होंने एक जहरीली पुस्तक 'दिस इज इंडिया' प्रकाशित की। ऐसे एक और सज्जन थे—श्री पोस्टर व्हीलर, जिन्होंने 'इंडिया, अगेन्स्ट दि स्टार्म' लिखी। लार्ड हैलीफैक्स ने येल विश्वविद्यालय के अध्यापक श्री आर्चर से भारत जाने का अनुरोध किया; किन्तु अमरीकी सरकार ने अनुभव किया कि श्री आर्चर के भारत जाने से अमरीका की बदनामी होगी। यह लार्ड हैलीफैक्स के चेहरे पर थप्पड़ लगा।

कई प्रमुख अमरीकी पत्रकार जैसे वाल्टर लिपमान, डोरोथी टॉमसन, जार्ज फीरिंडग इलिअट, फिलिप सिम्स, बेवर्ली रूट और बार्नेट नोवर अमरीकी पत्रों में ब्रिटिश साम्राज्यवाद की पीठ थपथपा रहे थे।

इस एकांगी प्रचार के बावजूद अधिकांश अमरीकी पत्रों ने भारतीय स्वाधीनता का खुलकर समर्थन किया। भारत सरकार जो प्रचार कर रही है उससे ब्रिटेन हमें उल्लू नहीं बना सकता, यह प्रत्येक विवेकशील अमरीकी कहता था।

भारत के सम्बन्ध में अमरीका में जो मिथ्या प्रचार किया जाता रहा है उसका वाशिंगटन के नागरिक कई बार विरोध भी कर चुके हैं। "भारतीय स्वाधीनता दिवस" की सभा में निम्न विचार प्रकट किये गये.—

(१) यदि भारत की स्वाधीनता की कोई तारीख निश्चित कर दी जाय तो जापान के विरुद्ध जो युद्ध चल रहा है उसमें जल्दी ही विजय प्राप्त की जा सकती है।

(२) आज़ाद होने वाले प्रत्येक देश में एकता आज़ादी मिलने के बाद ही कायम हुई है। यही कारण है कि मुसलमानों की समस्या फिलस्तीन व भारत में है, चीन व फिलिपाइन्स में नहीं।

(३) क्रिप्स-योजना इस प्रकार तैयार की गई थी कि उसका अस्वीकृत किया जाना लाजिमी था। यदि योजना स्वीकार करली जाती तो देश अनेक टुकड़ों में बँट जाता और आर्थिक व राजनीतिक दृष्टि से भी बहुत कमज़ोर हो जाता।

(४) यदि इंग्लैंड सचमुच भारत को स्वराज्य देना चाहता है तो उसे देश पर ब्रिटिश सेना व ब्रिटिश सिविल सर्विसें न लादनी चाहिए।

एक नया विधान

कुछ समय से श्री एमरी यह राग अलाप रहे थे कि भारतीय विश्व-विद्यालयों के युवा विद्यार्थियों को देश के लिए एक ऐसा विधान तैयार करना चाहिए जो भारतीय मनोवृत्ति के अनुकूल हो। आपका कहना था कि पुरानी पीढ़ी ब्रिटिश विधान-प्रणाली से इतनी अधिक प्रभावित है कि वह और कुछ सोच ही नहीं सकती। श्री एमरी ब्रिटेन की शासन-प्रणाली के विरुद्ध जो उपदेश दे रहे थे उसका मुख्य कारण यह था कि मुस्लिम लीग उसके खिलाफ आवाज उठा रही थी। परन्तु श्री एमरी की अपील का कुछ भी नतीजा नहीं निकला। इसलिए इंग्लैंड से एक प्रोफेसर को नुफील्ड ट्रस्ट की वृत्ति देकर सर स्टैफर्ड क्रिप्स से पहले भेजा गया। इनका नाम था प्रोफेसर कूपलैंड और ये पिछली सामग्री का अध्ययन करने, वर्तमान स्थिति की समीक्षा करने और भविष्य के लिए विधान का सुझाव उपस्थित करने के लिए भेजे गये थे। उनके विधान की रूप रेखा लार्ड वेवल के आगमन से पहले प्रकाशित की गई थी।

प्रोफेसर कूपलैंड ने कहा कि छः वर्ष के प्रांतीय स्वायत्त शासन के अनुभव को मद्दे

नजर रखते हुए प्रांतों में बहुमत का शासन कायम करने के स्थान पर स्विस-प्रणाली का अनुसरण करना चाहिए, जिसमें व्यवस्थापिका परिषद् आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर कार्यकारिणी का चुनाव करती है। प्रोफेसर कूपलैंड ने केन्द्र के सम्बन्ध में भी ऐसा ही सुझाव पेश किया है।

प्रोफेसर महोदय ने मुसलमानों की देश के बटवारे की मांग को यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि ऐसा करने पर साम्प्रदायिक समस्याएँ हल होने के बजाय और विषम हो जायँगी। उन्होंने देश के विभाजन तथा संघ-प्रणाली के मध्य का रास्ता निकाला। प्रांतों तथा रियासतों को मिलाकर 'प्रदेश' बनाये जायं और इन प्रादेशिक सरकारों को ऐसे अधिकार दिये जायं जो छोटी इकाइयों के अनुपयुक्त हों या जो केन्द्र को दे दिये गये हों। केन्द्रीय व्यवस्था में जनता के प्रतिनिधि न रहकर प्रदेशों के प्रतिनिधि होंगे। केन्द्रीय व्यवस्था इन अधिकारों को प्रदेशों की तरफ से अमल में लायेगी। यह "गुटबंदी से अधिक व संघ से कम" होगी। प्रदेशों का केन्द्र में समान प्रतिनिधित्व होगा।

प्रोफेसर कूपलैंड ने नदियों के मैदानों के अनुसार "प्रदेश" अलग करने का सुझाव किया था। उनकी योजना के अनुसार भारत भर में ऐसे चार प्रदेश होते जिनमें से दो में हिन्दुओं का और दो में मुसलमानों का बहुमत रहेगा।

'टाइम्स' ने प्रोफेसर कूपलैंड की योजना की समालोचना प्रकाशित की और उसमें केन्द्रीय सरकार के अधिकार, ब्रिटेन का दायित्व आदि समस्याओं के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये। प्रोफेसर कूपलैंड का सुझाव था कि प्रदेशों के प्रतिनिधि केन्द्र में गुटों के रूप में मत प्रदान करें। 'टाइम्स' का मत था कि हिन्दू व मुस्लिम प्रदेशों की केन्द्र में समानता बनाये रखने के लिए यह सिद्धांत परम आवश्यक है। क्या इसका यह भी तात्पर्य है कि प्रदेश सिर्फ बहुमत सम्प्रदाय का प्रतिनिधित्व करेंगे? कुछ भी हो यह स्पष्ट है कि केन्द्र में प्रादेशिक गुट-प्रणाली का परिणाम यही होगा कि अल्पसंख्यकों का मताधिकार बिल्कुल जाता रहेगा। इसका दूसरा परिणाम यह होगा कि दो छोटे प्रदेशों का साधारण बहुमत केन्द्र के ५० प्रतिशत मतों पर नियन्त्रण रख सकेगा, चाहे उनमें सब से बड़े प्रदेश को छोड़कर सम्पूर्ण देश की पंचमांश जनता का भी निवास न हो। इस प्रकार एक-तिहाई जनता दो-तिहाई जनता के निर्णय को उलट सकेगी।

'टाइम्स' आगे कहता है—"यदि प्रदेशों का निर्माण करने में प्रांतों के साथ रियासतों ने भी भाग लिया तो प्रतिनिधित्व-व्यवस्था की और भी दुर्दशा होगी। रियासतों के प्रतिनिधियों को प्रांतों के प्रतिनिधियों से आदेश मिलेंगे। उदाहरण के लिए, निजाम के प्रतिनिधियों को दक्षिणी प्रदेश के हिन्दू बहुमत का आदेश मानना पड़ेगा। इससे हिन्दू व मुसलमानों को केन्द्र में समान प्रतिनिधित्व देने की कठिनाई पर प्रकाश पड़ता है।

"इसका हल केन्द्र को दिये जाने वाले विषयों का महत्त्व कम करने से ही हो सकता है। प्रोफेसर कूपलैंड ने केन्द्र को "कमजोर" बनाने के लिए उसके जिम्मे कम विषय रखने का सुझाव किया है; किन्तु उन्होंने इस प्रश्न का सन्तोषजनक उत्तर नहीं दिया है कि अपने विषयों का प्रबन्ध करने के लिए केन्द्र में कितनी शक्ति होनी चाहिए। अकाल तथा मुद्रानीति सम्पूर्ण आर्थिक क्षेत्र पर प्रभुत्व कर सकती है। संकट के समय रक्षा के क्षेत्र में प्राय. प्रत्येक वस्तु आजाती है। स्पष्ट है कि केन्द्रीय विषयों की सूची कम करने से कुछ भी लाभ नहीं है। हमें विषयों की प्रकार तथा जिस व्यवस्था द्वारा उनका प्रबन्ध होगा उस पर भी ध्यान देना चाहिए।

"यदि हमें केन्द्रीय विधान की कठिनाइयों या राजनीतिक अड़ंगों से बचना है तो ऐसा

प्रबन्ध करना पड़ेगा, जिससे अखिल भारतीय महत्त्व के विषयों, जैसे रक्षा, विदेश-नीति, यातायात, मुद्रा तथा अंन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रबन्ध कतिपय टैकिनकल संस्थाओं के सिपुर्द किया जा सके और इनमें राजनीतिक हस्तक्षेप की कुछ भी सम्भावना न रह जाय। व्यापक क्षेत्र में व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए, जिसमें इस बात का कुछ भी महत्त्व न रह जाय कि भारत उसमें एक या एक से अधिक राजनीतिक इकाइयों के रूप में भाग लेता है।"

ब्रिटेन की जिम्मेदारी के सम्बन्ध में 'टाइम्स' ने आगे कहा, "ब्रिटेन की सब से पहली जिम्मेदारी वैधानिक समस्या के निबटारे के सम्बन्ध में है। उसका भारतीय जनता तथा उसके विशेष वर्गों के प्रति विशेष दायित्व है। प्रोफेसर कूपलैंड का कहना है कि रक्षा भारतीय महासागर क्षेत्र की सुरक्षा के क्षेत्र का एक अंग है। इसी प्रकार ब्रिटेन को रियासतों के प्रति नहीं बल्कि रियासतों के सर्वोत्तम हितों के प्रति अपने को जिम्मेदार मानना चाहिए। हम अपने हाथ में हस्तक्षेप के अधिकार सुरक्षित कर अल्पसंख्यकों के प्रति अपनी जिम्मेदारी को अदा नहीं कर सकते। इस जिम्मेदारी के निर्वाह करने का यही तरीका है कि विभिन्न सम्प्रदायों के नेता जो विधान उपस्थित करें उसे हम स्वीकार करलें। प्रोफेसर कूपलैंड विधान में विभिन्न साम्प्रदायिक व सांस्कृतिक अधिकारों की घोषणा की बात कहते हैं; किन्तु इन घोषणाओं का व्यवहार में क्या महत्त्व रहेगा ?"

लेख के अंत में कहा गया है, "ब्रिटेन की जिम्मेदारियों में से सब से मुख्य व कठिन ऐसी ऐसी परिस्थिति को जन्म देना है, जिसमें सर्व सम्मति से विधान तैयार किया जा सके। यह आशा करना कि युद्ध समाप्त होने के बाद मुख्य दल व सम्प्रदाय नया विधान तैयार करने की व्यवस्था के सम्बन्ध में परस्पर अधिक सहमत हो सकेंगे, व्यर्थ ही है। ब्रिटिश अधिकारियों को पराधीनता से स्वाधीनता की अवस्था में परिवर्तन के लिए भारतीय नेताओं के जरिये क्रमशः प्रयत्न करना चाहिए।"

प्रोफेसर कूपलैंड ने सर फ्रेडरिक ह्वाइट की अध्यक्षता में लन्दन में हुई एक सभा में अपनी योजना का स्पष्टीकरण करते हुए कहा कि तत्कालीन गतिरोध मुख्यतः साम्प्रदायिक है। आपने यह भी कहा कि कांग्रेसी नेताओं की मूर्खता के ही कारण मुस्लिम लीग की इतनी उन्नति हो सकी है। सच तो यह है कि कांग्रेस ने ही लीग को शक्ति प्रदान की।

१९३७ में विजय के मद में आकर कांग्रेस ने संयुक्त-प्रान्त में लीग को नष्ट करने का प्रयत्न किया। उसने मुस्लिम-लीग से कांग्रेस में मिल जाने को कहा और प्रांत में विशुद्ध कांग्रेसी सरकार कायम करने का संकल्प किया। उसने निरक्षर मुसलमानों को कांग्रेस में लाने के लिए जन-सम्पर्क आंदोलन शुरू किया। तीसरे, उसने रियासतों में लोकतन्त्री नियन्त्रण के आंदोलन को आगे बढ़ाया और नरेशों की शक्ति नष्ट करने का उपक्रम किया। इससे साम्प्रदायिकता की वृद्धि हुई; क्योंकि नरेशों में सांप्रदायिकता बहुत कम थी। चौथी और अन्तिम बात यह थी कि गांधीजी भारतीय जनता के स्थान पर कांग्रेस को सत्ता देने की बात ब्रिटिश सरकार से कहने लगे।

प्रोफेसर कूपलैंड ने कहा कि कांग्रेस मुख्यत: हिन्दुओं की संस्था है और उसकी इन चालों से मुसलमान भयभीत होकर मुस्लिम-लीग के झण्डे के नीचे एकत्र हो गये। आज निस्संदेह लीग बहुसंख्यक मुसलमानों का प्रतिनिधित्व करती है और लीग कांग्रेस की अधीनता कभी स्वीकार न करेगी; १९३५ का कानून खत्म हो चुका है और उस दिशा में प्रगति कभी न हो सकगी। यह कानून दो गलत सिद्धांतों पर आधारित है। पहला तो यह कि भारत एक राष्ट्र है। जबकि

वास्तव में वह एक राष्ट्र नहीं है। दूसरा यह कि भारत में पार्लमेंटरी शासन-प्रणाली सम्भव है। इन दोनों ही सिद्धांतों का परित्याग कर देना चाहिए।

प्रोफेसर कूपलैंड ने कहा कि समस्या का हल सिर्फ इसी तरह हो सकता है कि कांग्रेस किसी-न-किसी रूप में पाकिस्तान को स्वीकार कर ले। एक दूसरे सवाल के जवाब में प्रोफेसर कूपलैंड ने कहा कि यह कहना ठीक नहीं है कि कांग्रेस की शक्ति घट रही है। कांग्रेस भारत की सबसे शक्तिशाली संस्था है और दूसरों के अलावा उसे सभी हिन्दू युवकों का समर्थन प्राप्त है।

बम्बई के भूतपूर्व गवर्नर सर अर्नेस्ट हॉस्टन ने प्रोफेसर कूपलैंड के इस मत को स्वीकार नहीं किया कि भारत में पार्लमेंटरी शासन असफल हुआ है।

यह समझना कठिन है कि यह बेसिर-पैर की योजना उस बुराई को दूर कैसे करती, जिस के लिए उसे तैयार किया गया था। दो प्रकार की—प्रान्तीय व केन्द्रीय-सरकारों की स्थापना की जगह इसमें तीन प्रकार की—यानी प्रांतीय, प्रादेशीय व केन्द्रीय सरकारों की कल्पना की गई थी। उसमें केन्द्रीय सरकार को एक प्रकार से प्रादेशिक सरकारों की 'एजेंसी' का रूप दिया गया था। प्रादेशिक प्रतिनिधियों के निर्वाचन की प्रणाली इस प्रकार रखी गई है कि अल्पसंख्यकों को वस्तुत: मताधिकार से वंचित कर दिया गया है। उत्तर के दो प्रदेशों यानी सिंध व गंगा के प्रदेशों में हिन्दुओं के मत को तथा दक्षिण व पश्चिमी भारत में मुसलमानों के मत को दबा दिया गया है। जिन प्रांतों को मिलाकर चार प्रदेश बनाने की कल्पना की गई है उनमें ऐसा प्रान्त कौन है जो स्वावलम्बी नहीं बन सकता या प्रादेशिक सरकार की सहायता का अपेक्षित हो सकता है। इसमें पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत के अलावा, जो सैनिक महत्त्व का प्रदेश है, सिंध और उड़ीसा ही सबसे छोटे हैं और ये भी स्विटजरलैंड से छोटे नहीं हैं, जो २२ 'कैंटनों' में विभाजित है। यही कैंटन स्विस संघ की प्रादेशिक इकाइयां हैं। स्विटजरलैंड की कैंटन भारत की एक तहसील से अधिक बड़ी नहीं है।

मौजूदा केन्द्रीय विषयों में से किन्हें प्रादेशिक सरकारों के सुपुर्द किया जा सकता है? न विदेशी सम्बन्ध को, न युद्ध अथवा संधि करने के अधिकार को, न शस्त्रास्त्र के कारखानों को, न मुद्रा-प्रबन्ध को, न रेलों को, न डाक व तार को, न जकात को और न आय-कर को। केन्द्र का ऐसा कोई भी विभाग नहीं है, जिसे छीनकर प्रादेशिक सरकार को दिया जा सके।

१९वीं शताब्दी के आरम्भ में ब्रिटेन ने अपनी जाति के उपनिवेशों को स्वाधीनता प्रदान की थी। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में दक्षिण अफ्रीका को, जिसमें बोअर जाति के लोग थे, स्वाधीनता दी गई। १९३१ में ब्रिटिश राष्ट्र-मण्डल के विभिन्न भागों की स्वाधीनता को कानूनी तौर पर भी स्वीकार कर लिया गया। यह अन्त नहीं, आरम्भ था। १९३१ के ऐक्ट से ब्रिटिश-राष्ट्रमण्डल का विधान उपलब्ध करने का आयोजन किया गया।

ईस्ट इण्डिया एसोसिएशन की बैठक में भाषण करते हुए भारत-मन्त्री लिओपोल्ड एमरी ने कहा, "मैं पार्लमेंट में और उसके बाहर अनेक बार कह चुका हूँ कि हमारी शासन-प्रणाली भारतीय परिस्थितियों के लिए उपयुक्त नहीं है। हमारी प्रणाली में कार्यकारिणी दिन-प्रतिदिन के कार्य के लिए धारा-सभा पर निर्भर रहती है और धारा-सभा बाहर के एक छोटे दल के इशारे पर नाचती है। भारतीय गतिरोध का यही कारण है कि भारत के राजनीतिक दलों के नेता सोचते हैं कि ब्रिटेन में जिस प्रणाली को ग्रहण किया गया है, केवल वही एकमात्र सफल प्रणाली है। भारतीय राजनीति के विवाद की बहुत-सी कटुता सिर्फ इसीलिए है।"

प्रोफेसर कूपलैंड ने अपने भाषण में कहा, "जब तक ब्रिटिश भारत के हिन्दू व मुसलमानों में तथा उसके प्रांतों और रियासतों में समझौता नहीं हो जाता तब तक भारत एक राष्ट्र का पद नहीं प्राप्त कर सकता। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि हिन्दुओं व मुसलमानों का वैमनस्य निरन्तर बढ़ता जा रहा है। इसका कारण यह है कि कांग्रेस ब्रिटिश सरकार का स्थान लेना चाहती है। मुस्लिम-लीग का भय यह है कि इसके परिणामस्वरूप सिर्फ सात प्रांतों में ही नहीं बल्कि केन्द्र में भी हिन्दू-राज्य कायम हो जायगा। अधिकांश मुसलमान हिन्दू-राज से बचने के लिए पाकिस्तान को ही एकमात्र उपाय मानते हैं।"

वर्तमान विधान के सम्बन्ध में प्रोफेसर कूपलैंड ने कहा, "यह प्रमाणित हो चुका है कि ब्रिटिश तरीके की पार्लमेंटरी शासन-प्रणाली भारत के लिए अनुपयुक्त है। भारत में यह बात आम तौर पर मान ली गई है कि एकदलीय शासन के स्थान पर मिला-जुला शासन कायम होना चाहिए। १९३५ के कानून के निर्माताओं की आशा पूरी न होने के कारण नये विधान में मिली-जुली सरकार की बात कानून-द्वारा आवश्यक कर देनी चाहिए। पार्लमेंटरी शासन-प्रणाली भी भारत के लिए अनुपयुक्त सिद्ध हुई है क्योंकि देश में दल-प्रणाली अच्छी तरह कायम न रहने के कारण धारा-सभा में कार्यकारिणी को अपदस्थ करने के प्रयत्न जारी रहने का खतरा होता है।"

प्रोफेसर कूपलैण्ड ने कहा कि स्विस विधान में इन दोनों कठिनाइयों को दूर किया गया है। उसमें निश्चित कर दिया गया है कि सभी प्रमुख कैंटनों को संघ कार्यकारिणी में प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए। कैंटनों का स्थान आप प्रमुख दलों व सम्प्रदायों को दे दीजिये—आपकी मिली-जुली सरकार बन जाती है। स्विस विधान में भी संघ कार्यकारिणी होती है, जिसका निर्वाचन सङ्घ धारा-सभा आरम्भ में कर लेती है और वह धारा-सभा के कार्यकाल तक रहती है।

प्रोफेसर ने कहा कि भारत को एक मजबूत केन्द्र की जरूरत है; किन्तु वर्तमान मनोवृत्ति में मुसलमान किसी साधारण संघीय केन्द्र को स्वीकार नहीं कर सकते। मुसलमानों का दावा है कि वे एक पृथक् राष्ट्र हैं और अन्य छोटे या बड़े राष्ट्रों के समान प्रतिनिधित्व प्राप्त करने का उन्हें अधिकार है। यदि यह दावा पूरा हो जाता है तो केन्द्र का ख़याल बिलकुल छोड़ देना पड़ेगा। कम-से-कम पाकिस्तान का सिद्धान्त तो स्वीकार करना ही पड़ेगा। भारतीय मुसलमानों के राष्ट्र की कल्पना को वैधानिक शक्ल देना भी जरूरी है और इसके बाद मुस्लिम-राष्ट्र को हिन्दू-राष्ट्र के समकक्ष बराबरी का दर्जा देना पड़ेगा।

प्रोफेसर कूपलैंड ने प्रान्तीय स्वायत्त-शासन में काम करने वाली प्रान्तीय सरकारों की तारीफ में निम्न शब्द कहे:—

"प्रत्येक स्थान पर व्यवस्था कायम रखी गई। कोष का प्रबन्ध किफायत व बुद्धिमत्ता से किया गया। हर जगह समाज-सुधार की प्रगति हुई। समाज-सुधार में कांग्रेस को अपने प्रतिद्वन्द्वियों की तुलना में अधिक सफलता मिली। कांग्रेस ने निरक्षरता-निवारण योजना तथा बुनियादी तालीम योजनाओं में बुद्धि तथा उत्साह दोनों ही का परिचय दिया। उसने गांवों में कर्जदारी के मसले को उठाया तथा कुछ प्रान्तों में निर्माण कार्य भी किये। साम्प्रदायिक झगड़ों को रोकने व दबाने के सम्बन्ध में भी कांग्रेस ने उत्तम कार्य किया।" इस तारीफ के बाद प्रायः प्रत्येक बुराई, और खासकर साम्प्रदायिक कटुता की जिम्मेदारी, कांग्रेस पर लादने का प्रयत्न किया गया है। प्रोफेसर कूपलैंड ने उस केन्द्रीय सरकार के सम्बन्ध में एक शब्द भी नहीं कहा

जिसने देश को एक ऐसे युद्ध में फँसा दिया जिसमें उसका अपना कोई भी हित न था। १६४० के धोखेबाजी से भरे प्रस्ताव तथा चर्चिल के हमले के बारे में भी उन्होंने कुछ नहीं कहा। मुस्लिम-लीग को बातें बढ़ा-चढ़ा कर कहने का आरोप लगाकर सस्ता छोड़ दिया गया है, उधर तानाशाही का आरोप लगाकर कांग्रेस की निन्दा की गई है। क्या कांग्रेस के लिए अपना द्वार प्रत्येक ऐसे व्यक्ति के लिए खोल देना गलत था, जो ४ आने की फीस देने को तैयार था और जो जायज व शान्तिपूर्ण तरीकों से स्वराज्य प्राप्त करने के लक्ष्य को स्वीकार कर चुका था। कांग्रेस पर यह आरोप करने का कारण सिर्फ यही था कि अपने मुस्लिम मन्त्रियों का चुनाव करते समय कांग्रेस उन मुस्लिम-लीगियों को नहीं चुनती थी जो उसके आदर्शों के विरोधी थे।

भारतीय विधान के सम्बन्ध में प्रोफेसर कूपलैंड की योजना का उद्देश्य लीग की विभाजन सम्बन्धी योजना स्वीकार किये बिना उसके उद्देश्य की सिद्धि करना था। प्रोफेसर कूपलैंड ने 'न्यूयार्क टाइम्स' के संवाददाता श्री हर्बर्ट मैथ्यूज के कथन के आधार पर बताया कि "पंजाब के मुख्य प्रान्त में ऐसा कोई भी प्रभावशाली मुसलमान नेता नहीं है, जो पाकिस्तान का समर्थक हो।" आपने यह भी स्वीकार किया कि कटुता के मूल में धार्मिक अत्याचार अथवा अल्पसंख्यकों के प्रति दुर्व्यवहार का भय नहीं है। प्रोफेसर कूपलैंड ने कांग्रेसी सरकारों की उन करतूतों को भी अधिक महत्व नहीं दिया है जिनकी सूची लीग वालों ने तैयार की थी। प्रोफेसर कूपलैंड के मन से इसका मुख्य कारण एक-सी जनता का अभाव है। परन्तु सवाल उठता है कि क्या एक शताब्दी पहले कनाडा या दक्षिण अफ्रीका में एक-जैसी जनता थी ? प्रोफेसर कूपलैंड ने इसीलिए मिलीजुली वजारतों को जरूरी समझा है और कहा है कि ये वजारतें धारा-सभाओं के मुकाबले में अधिक मजबूत होनी चाहिए। प्रोफेसर कूपलैंड अपने तर्क की पुष्टि में कहते हैं कि युद्ध से पूर्व फ्रांस और इटली में धारा-सभाएं कार्य-कारिणियों की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली थीं और इसीलिए वहां अधिक गड़बड़ होती थीं। परन्तु ये पंक्तियां लिखते समय (नवम्बर, १६४३) हम संयुक्त-राष्ट्र अमरीका का उदाहरण दे सकते हैं, जहां हाल के चुनाव में रिपब्लिकनों को डिमोक्रेटों की तुलना में सफलता मिली थी। अमरीका में कार्य-कारिणी को धारासभा की तुलना में अधिक शक्तिशाली माना जाता है; किन्तु सिनेट का विरोध होने के कारण कार्य-कारिणी संकट में पड़ गई। श्री एमरी ने स्वयम् कोई मत प्रकट करने से यह कहकर इन्कार कर दिया कि भावी विधान बनाने की समस्या का सम्बंध भारतीयों का ही है। परन्तु साथ ही उन्होंने प्रोफेसर कूपलैंड के सुझावों को उपयोगी बताया। यह ठीक है कि प्रोफेसर कूपलैंड किसी सरकारी पद पर काम नहीं कर रहे थे; किन्तु क्रिप्स-मिशन से सम्बन्ध रहने के कारण प्रोफेसर कूपलैंड को बिलकुल गैरसरकारी व्यक्ति भी नहीं कहा जा सकता था। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि ये 'उपयोगी सुझाव' १६३५ के विधान के मुकाबले में पेश किये जा रहे थे, जिनके विरुद्ध श्री एमरी खुद कहते नहीं थकते थे, जिन्हें वे भारत के लिए अनुपयुक्त बता चुके थे और कह चुके थे कि युवकों को नये प्रकार के विधान की बात सोचनी चाहिए। परन्तु लार्ड हेली को ये प्रस्ताव उपयोगी नहीं जान पड़े। उन्होंने चार प्रदेशों वाली योजना को 'बनावटी' बताया और कहा कि प्रदेशों की उपयोगिता भी अस्पष्ट है। आपने कहा कि योजना में 'यथार्थता का अभाव' है और प्रोफेसर साहब 'साम्प्रदायिकता के गणित' में जरूरत से कहीं आगे बढ़ गये हैं। लार्ड हेली की कार्य-कारिणी तुलना में धारा-सभा को कमजोर रखने की बात भी पसंद नहीं आई। आपने केन्द्र को कमजोर रखने का भी विरोध किया। प्रोफेसर अर्नेस्ट बाकर ने यह विचित्र मत प्रकट किया कि लोकतंत्र बहुमत का शासन नहीं होता, बल्कि बहुसंख्यक दल तथा

अल्पसंख्यक दल में समझौता ही होता है जैसा कि १८ वीं शताब्दी में था। प्रोफेसर बार्कर ने कहा कि 'प्रदेशवाद' के प्रति मेरा आकर्षण कम नहीं है; किन्तु फ्रांसीसी तथा अंग्रेज विचार-धारा में यह 'वाद' कल्पना की सीमा से आगे नहीं बढ़ पाया। स्विटज़रलैंड के उदाहरण को आपने उपयोगी नहीं बताया और कहा कि भारतीय जिम्मेदार वजारत की जरूरत महसूस कर सकते हैं।

राजनीति में दक्षिण व वामपक्षी दलों की तुलनात्मक समीक्षा कुछ कम मनोरंजक नहीं है। दक्षिणपक्षी दल विचारों की अपेक्षा स्वार्थों का अधिक ध्यान रखता है। अनुदार दल वाले पूंजी के रूप में डिज़रैली, लार्ड सेलिसबरी, चर्चिल या चैम्बरलेन का नाम ले सकते हैं। उनका मुख्य गुण यही है कि युद्ध के समय वे सभी सैनिक बन जाते हैं। वे एकता की जरूरत महसूस करके संगठित रूप से काम करने लगते हैं।

अभी वामपक्षी दलों को उनसे यह शिक्षा ग्रहण करनी है। निस्संदेह वामपक्षियों की विचार धारा प्रगतिशील होती है। वामपक्षियों ने युद्धकालीन प्रधान मन्त्री के रूप में चर्चिल का तो समर्थन किया; किन्तु अभी राष्ट्र ने यह निश्चय नहीं किया है कि नवीन विचारों को किस प्रकार ग्रहण किया जाय।

इसी तरह कहा जा सकता है कि जिम्मेदारीपूर्ण शासन-व्यवस्था की निन्दा नहीं की जा सकती, क्योंकि अभी न तो उसका पर्याप्त परीक्षण हुआ है और न भारत में उसे अमल में लाये ही ज्यादा अरसा हुआ है। ब्रिटेन में जिस प्रणाली पर १०० वर्षों से अमल होता रहा है उसकी निन्दा प्रान्तीय क्षेत्र में किसी वाइसराय या गवर्नर ने नहीं की है। जिस लीग के प्रति प्रोफेसरों तथा भारत मन्त्री की इतनी सहानुभूति है और जो अब इतनी चिल्लाने लगी है वह ६ या ७ प्रांतों में कांग्रेसी शासन के समय चुप थी। साथ ही प्रोफेसर कूपलैंड यह भी स्वीकार कर चुके हैं कि लीग ने कांग्रेस के अत्याचारों की जो सूची पेश की है उसे वे कुछ भी महत्व नहीं देते। फिर वे इस अज्ञात तथा अप्रयुक्त, अपरीक्षित योजना को भारत पर लादने की चेष्टा क्यों कर रहे हैं, जो यदि भारत की तरफ से आती तो उसकी तुरन्त निन्दा की जाती।

प्रोफेसर कूपलैण्ड ने जो यह कहा है कि भारत में एक दल की सरकार के स्थान पर मिली-जुली सरकार कायम होनी चाहिए इससे भ्रम फैल सकता है। कांग्रेस की प्रान्तीय सरकारें कभी एक दल की सरकारें न थीं। वे सिर्फ एक उसी दल की सरकारें थीं जिसने चुनाव में भाग लेकर सफलता पाई थी। हमारा ख्याल है कि साधारण अवस्था में ब्रिटेन में भी ऐसा ही होता है। प्रोफेसर साहब ब्रिटेन के लिए जिस बात की सिफ़ारिश करते हैं, हिन्दुस्तान के लिए उसी बात की निन्दा करते हैं। इसी तरह उनका यह कथन भी गलत है कि हिन्दुस्तान में दलों के संगठन का अभाव है। आपने मिली-जुली सरकारों की कानूनन् व्यवस्था की है। यह जर्मन विधान के समान है, जिसमें विभिन्न दलों को कानूनी रूप दे दिया जाता है।

सारांश यह है कि "प्रादेशवाद" के विचार की वामपक्षी (ट्रिब्यून), मध्यपक्षी, (एन० एस० एन०), दक्षिण पक्षी (टाइम्स), भारतीय सिविलियन (लार्ड हेली), पार्लमेण्ट के सदस्य (सर एडवर्ड ग्रिग), प्रोफेसर (अर्नेस्ट बेकर) किसीने कुछ भी सराहना न की। फिर भी इससे इंकार नहीं किया जा सकता कि योजना उच्च व्यक्तियों के प्रोत्साहन से तैयार की गई थी। अंग्रेज़ लोग दुनिया को यह दिखाना चाहते थे कि हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरे से लड़ने वाले सम्प्रदाय हैं और उनके मतभेद कभी दूर नहीं हो सकते। जबकि भारत में लार्ड लिनलिथगो भौगोलिक एकता तथा संघ-योजना के गुणगान कर रहे थे, वहां इंग्लैण्ड में श्री एमरी एक

प्रोफेसर को ऐसी योजना तैयार करने के लिए प्रोत्साहन दे रहे थे, जिसके अमल में आने पर सिर्फ भारतीय राजनीति में पेचीदगी न बढ़ जाती और पाकिस्तान का उद्देश्य ही सिद्ध न हो जाता बल्कि भारत का प्रादेशिक व व्यापारिक बंटवारा चार भागों में हो जाता और इस तरह केन्द्र में बहुसंख्यकों तथा अल्प-संख्यकों को बराबरी की शक्ति प्राप्त हो जाती। अगर पेचीदगी से भरी इस योजना का उद्देश्य केन्द्र में हिन्दुओं और मुसलमानों को बराबरी की वोट देना था तो कूपलैण्ड और एमरी ने यह साफ-साफ क्यों न कह दिया कि केन्द्र में दोनों सम्प्रदायों को वोट देने की आधी-आधी शक्ति देने के सुझाव की स्वीकृति के बिना वैधानिक प्रगति की दिशा में और कोई कदम नहीं उठाया जा सकता। फिर साम्प्रदायिक आधार पर बंटवारा करने के लिए यह घुमावदार रास्ता क्यों अख्तियार किया गया, गोकि कूपलैण्ड-योजना में बंटवारा प्रादेशिक ही दिखाई पड़ता है। चाहे क्रिप्स ने प्रांतों के अलहदा किये जाने की बात कही हो या कूपलैण्ड ने उसे प्रदेशवाद का रूप दिया हो, उद्देश्य एकमात्र यही था कि भारतीय मतभेदों को सर्व-साधारण के सामने निन्दनीय रूप में लाया जाय। भारत की राजनीतिक व्याधि उसी प्रकार मानव-कृत थी, जिस प्रकार बंगाल के अकाल की ज़िम्मेदारी मनुष्यों पर थी और इसका उपाय भी एकमात्र यही था कि जो इसके लिए ज़िम्मेदार थे उन्हें हटा दिया जाय। सवाल था कि भारत के ये दूषित अंग क्या कभी परस्पर सहयोग कर सकते हैं। भारत ने इसका उपाय सीधा-सादा बताया है। प्रोफेसर कूपलैण्ड का उपाय सिर्फ लाक्षणिक व अस्थायी है, वह पूर्ण या तर्कयुक्त नहीं है। भारत एक शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार चाहता है—एक ऐसी सरकार नहीं जो अपने कुछ काम प्रदेशों की सरकारों के सिपुर्द कर दे और बचे-खुचे कामों को अन्तर्राष्ट्रीय एजेन्सी के हाथों सौंप दे, जिसका परिणाम होगा कि वह केवल नाम की केन्द्रीय सरकार होगी और उसके हाथ में शक्ति कुछ भी न रह जायगी।

विधान की जिन अमरीकी व स्विस प्रणालियों की प्रोफेसर कूपलैण्ड इतनी तारीफ़ कर चुके हैं और जिन्हें भारत के उपयुक्त बता चुके हैं। उनकी प्रोफेसर बेणीप्रसाद निन्दा करते हैं। आप कहते हैं, "यह सुझाव त्रुटिपूर्ण है। स्विस कार्यकारिणी में आठ मन्त्री होते हैं और आठों के अधिकार बराबर होते हैं। इन मन्त्रियों का चुनाव दोनों धारा सभाएं अपने संयुक्त अधिवेशन में तीन वर्ष के लिए करती हैं और इन्हें दुबारा भी चुना जा सकता है। यह कार्यकारिणी नीति तथा कानून बनाने के विषय में धारा-सभाओं के अधीन होती हैं। इसकी विशेषता संघीय कार्यकारिणी में कैंटनों के फ्रेंच, जर्मन व इटालियन वर्गों का प्रतिनिधित्व सम्भव करना है; किन्तु पार्लमेण्टरी प्रणाली में भी यह परम्परा कायम की जा सकती है। स्विस कार्यकारिणी के अध्यक्ष को साधारण रूप से अधिक शक्ति नहीं होती और यह विशेषता भारतीय परिस्थितियों के उपयुक्त नहीं होगी। स्विट्जरलैण्ड में कार्यकारिणी तथा धारा-सभा का सम्बन्ध बहुत कुछ ऐसा होता है जिससे धारा-सभा का भार बढ़ जाता है। यह भार स्विट्जरलैण्ड जैसे देश में ही वहन किया जा सकता है, जो छोटा, पुरातनवादी, शिक्षित तथा सम्पत्ति के विभाजन की असमानताओं से मुक्त है और अन्तर्राष्ट्रीय कानून के द्वारा जिसे तटस्थ माना जा चुका है। यह उल्लेखनीय है कि स्विस प्रकार की कार्यकारिणी का अनुसरण अन्य जिस भी देश में किया गया वहीं उसे असफलता मिली। जिन सरकारों में इस विधान का अनुकरण किया गया उनमें प्रशा, बवेरिया, सेक्सनी तथा जर्मन प्रजातन्त्र के कुछ अन्य प्रान्त (१९१९-३३) तथा १९२२ के बाद आयरिश

प्रजातन्त्र मुख्य हैं। यदि भारत में स्विस प्रणाली का अनुसरण किया जाय और गवर्नर जनरल या गवर्नरों की नियुक्ति की प्रणाली भी कायम रहे तो मन्त्रिमण्डल को दोहरी हानि होगी और उसे दो स्वामियों की अधीनता में रहना पड़ेगा।

'भारत के लिए अमरीका की प्रणाली भी उपयुक्त नहीं है, जिसमें राष्ट्रपति निर्वाचक-मंडलों द्वारा, किन्तु वास्तव में सम्पूर्ण जनता द्वारा, ४ वर्ष के लिए निर्वाचित किया जाता है और वह धारासभा के प्रति उत्तरदायी नहीं होता। १५० वर्षों के अनुभव से सिद्ध हुआ है कि इस प्रणाली में कार्यकारिणी व धारासभा में सहयोग कठिन हो जाता है, दोनों की खाई पाटने के लिए अनेक मध्यवर्ती पुलों की जरूरत पड़ती है, दलों के प्रबन्धकों के हाथ में जरूरत से ज्यादा शक्ति केन्द्रित हो जाती है और निश्चयात्मक कार्रवाई में देरी होती है। इस प्रणाली के अंतर्गत भी गवर्नर-जनरल या गवर्नरों के बनाये रखने से उत्तरदायी शासन के सिद्धान्त को क्षति पहुँचती है। यदि राष्ट्रपति प्रणाली के अंतर्गत भारतीय कार्यकारिणी के प्रधान की नियुक्ति गवर्नर-जनरल या सरकार-द्वारा हुई तो स्थिति वैसी ही होगी, जैसी जर्मन साम्राजीय विधान के अंतर्गत चांसलर की या जापानी विधान के अंतर्गत मंत्री-अध्यक्ष की होती है।

"दो और बातें भी विचारणीय हैं। प्रथम स्विस या अमरीकी प्रणालियों से हमें अपनी साम्प्रदायिक समस्या के लिए कोई शिक्षा नहीं मिलती। हिन्दू-मुस्लिम समस्या फिर भी अछूती ही बनी रहेगी। स्विस तथा अमरीकी प्रणालियों के लाभ-हानि पर हमें सावधानीपूर्वक विचार करना चाहिए और यह भी देखना चाहिए कि भारत की राजनीतिक परिस्थितियों के लिए वे कहां तक अनुकूल हैं और उनके अंतर्गत सामाजिक तथा आर्थिक सुधार की सुविधाएं हमें कहां तक प्राप्त हो सकती हैं। देश के सामने जो साम्प्रदायिक कठिनाइयां उपस्थित हैं, उन्हें हल करने के उद्देश्य से उनकी वकालत करना व्यर्थ है। दूसरे, भारत के लिए पार्लमेंटरी प्रणाली को अभी अनुपयुक्त नहीं ठहराया जा सकता। इस पर अधिकांश भारतीय प्रान्तों में सिर्फ ढाई वर्ष ही तो अमल हुआ है—और इस छोटे काल में असफलता का निर्णय नहीं दिया जा सकता। वस्तुस्थिति तो यह है कि अनेक कठिनाइयों के बावजूद प्रान्तीय कार्यकारिणियों ने कुछ महत्वपूर्ण सुधार किये और कतिपय उल्लेखनीय नीतियों को जन्म दिया। जिस देश को पार्लमेंटरी शासन-प्रणाली का परिचय अभी हाल ही मिला है उस पर नये प्रकार की कार्यकारिणी या धारासभा लादने की चेष्टा करना अनुचित है बल्कि आवश्यकता तो यह है कि उसे वैधानिक संशोधनों, कानूनों तथा परम्पराओं-द्वारा पार्लमेंटरी शासन-प्रणाली को अनुकूल बनाने का अवसर दिया जाय। १९३७ से अब तक भारतीयों को जो राजनीतिक अनुभव प्राप्त हुआ है उसके आधार पर तो कम-से-कम नहीं कहा जा सकता कि यहां पार्लमेंटरी शासन-प्रणाली पर अमल नहीं किया जा सकता। इससे सिर्फ यही जाहिर हुआ है कि हमारी वैधानिक उन्नति में अगला कदम केन्द्र व प्रान्तों में मिलीजुली सरकारें कायम करना होना चाहिए। मिलीजुली वजारतों को काम करने का काफी अवसर देने के बाद ही अगले कदम की बात सोची जा सकती है। इस प्रकार की गलतियों, परीक्षणों तथा प्रयोगों द्वारा ब्रिटेन, अमरीका, आस्ट्रेलिया तथा अन्य देशों में वहांके विधानों का विकास हुआ है, जब तक कोई देश एक प्रणाली की कार्यकारिणी व धारा सभा की सभी सम्भावनाओं के लिए पर्याप्त अवसर नहीं देता तब तक वह दूसरे प्रकार की कार्यकारिणी व धारासभा को नहीं अपना सकता।"

: ३१ :

कष्ट व दंड की कहानी

गांधीजी व कार्यसमिति के सदस्यों के स्थान तथा हालत के बारे में जनता की चिन्ता बहुत बढ़ गई। मार्च, १९४३ में निम्न बातें केन्द्रीय असेम्बली में ज्ञात हुई :—

गांधीजी तथा आगाखां महल में उनके साथ गिरफ्तार व्यक्तियों का खर्च ५५० रु० माहवार था, जब कि कार्यसमिति के हरेक सदस्य का खर्च १००) रु० माहवार था। यह सूचना केन्द्रीय असेम्बली में श्री के० सी० नियोगी के एक सवाल का जवाब देते हुए गृह-सदस्य सर रेजिनाल्ड मैक्सवेल ने दी।

गृह-सदस्य ने यह भी कहा कि गांधीजी तथा कार्यसमिति के सदस्यों पर आराम की कोई चीज़ पाने के बारे में कोई प्रतिबंध नहीं है। इन लोगों के लिए जो पुस्तकें व पत्रिकाएँ आती हैं वे जांच करने पर यदि आपत्तिजनक नहीं पाई जातीं तो उन्हें दे दी जाती हैं। इस प्रकार की कितनी ही पुस्तकें बंदियों तक पहुँचने दी जाती हैं।

गांधीजी या कार्यसमिति के सदस्यों को अपने रिश्तेदारों या मित्रों से मिलने नहीं दिया जाता। कार्यसमिति के सदस्यों के सम्बन्ध में इस नियम का और भी कड़ाई से पालन किया गया है। पिछली फरवरी में अनशन के समय गांधीजी के सम्बन्ध में इस नियम को ढीला कर दिया गया और कितने ही रिश्तेदारों व मित्रों को उनसे मिलने दिया गया। स्वर्गीय श्रीमती गांधी की पिछली बीमारी के दिनों में भी रिश्तेदारों को मिलने दिया जाता था और इस मुलाकात के समय खुद गांधीजी भी मौजूद रहते थे। कार्यसमिति के दो सदस्य डा० राजेन्द्रप्रसाद व श्री जयरामदास दौलतराम अपने ही प्रांतों में थे और गृह-सदस्य को उनके सम्बन्ध में कुछ भी जानकारी न थी।

राजनीतिक बन्दियों के प्रति किये जाने वाले व्यवहार के कारण देश भर में चिन्ता की लहर फैल गई। शुरू के महीनों की कड़ाई दूर होने पर पत्रों व मुलाकातों की अनुमति साधारण तौर पर दी जाने लगी। पत्रों से प्रतिबंध कुछ महीने पहले और मुलाकातों से काफी बाद में हटाया गया। कभी-कभी राजनीतिक कैदियों व गिरफ्तार किये गए गुण्डों को एक साथ ही रखा जाता था। डाक्टरी देख-रेख बहुत कम थी और जो थी भी वह पर्याप्त न थी। राजनीतिक बंदियों के प्रति नजरबन्दों से भिन्न व्यवहार किया जाता था और उन्हें कपड़ा व जूता दिये जाने के सम्बन्ध में शिकायत थी। नजरबन्दों के खर्च व उनके परिवारों की पेंशनों के लिए विभिन्न प्रांतों में विभिन्न तथा एक ही प्रांत के विभिन्न ज़िलों में विभिन्न रकमें मंजूर की जाती थीं। कारण यह था कि इस सम्बन्ध में कोई नियम न था और मंजूर करनेवाले अफसर अपनी इच्छा से निर्णय करते थे। खान अब्दुल गफ्फार खां की गिरफ्तारी तथा जेल में उनकी दशा से भी लोगों को चिन्ता हुई। कहा जाता है कि गिरफ्तार करते समय बल का प्रयोग किया गया था, जिससे

सीमांत गांधी के शरीर में खुरसटें लग गई थीं। बाद में जेल में भी उनके प्रति बुरा सलूक किया गया। देश के अनेक भागों में दण्ड-कर लगाये गये और उनकी वसूली कड़ाई से की गई।

अखिल भारतीय मेडिकल कांफ्रेंस के अध्यक्ष-पद से भाषण करते हुए डा० जीवराज मेहता ने बन्दियों की शिकायतों पर प्रकाश डाला। आपने बताया कि जब वे कस्तूरबा की परीक्षा करने गये थे तब जेलों के इन्स्पेक्टर-जनरल ने गांधीजी को उनसे न बोलने देकर हृदयहीनता का व्यवहार किया। आपने बताया कि जेलों में चिकित्सा का यथोचित प्रबन्ध नहीं है। "कई जेलों में सफाई का प्रबन्ध ठीक नहीं है। थोड़े स्थान में इतने अधिक व्यक्ति रखे जाते हैं कि बन्दियों व नजरबन्दों के स्वास्थ्य पर इसका बुरा असर पड़ा है। दवाइयां आसानी से मिलती नहीं हैं और उनके लिए ऊपर से मंजूरी लेनी पड़ती है। आपने यह भी कहा कि "जेलों में जो दूध दिया जाता है उसमें आधा पानी होता है और कभी-कभी पानी का अनुपात ७० प्रतिशत तक बढ़ जाता है और इसीलिए वह उनके पीने लायक नहीं होता।"

जेलों की साधारण अवस्था का ज़िक्र करते हुए आपने कहा, "पंजाब व संयुक्त प्रांत में काफी सर्दी पड़ती है; लेकिन बंदियों व नजरबन्दों को ठंड से बचने के लिए काफी कपड़े नहीं दिये जाते।" यह उक्ति एक ऐसे प्रख्यात डाक्टर की थी, जो खुद तीन वर्ष जेल काट चुका था।

पंजाब में सुरक्षा सम्बन्धी कानूनों के अनुसार गिरफ्तार किये गये व्यक्ति २० पंक्तियों से अधिक लम्बा पत्र नहीं लिख सकते थे। इसके अलावा वे पत्र हिन्दी में भी नहीं लिख सकते थे। फीरोजपुर जेल की हालत और भी बुरी थी। दूसरी कमियों व बुराइयों के अलावा सफाई व जल की निकासी का इन्तजाम ठीक नहीं था। राजनीतिक बन्दी किले में रखे जाते थे और जेल-विभाग जिन मंत्री के अधीन था उन्हें किले में जाने नहीं दिया जाता था। मंत्री श्री मनोहरलाल ने बंदियों से सवाल किया, "क्या अभी आपको बाहर वालों से मिलने नहीं दिया जाता?" इससे साफ़ ज़ाहिर है कि मिलने की अनुमति देना जिन चीफ सेक्रेटरी के अधिकार में था और वे प्रधान मन्त्री के अधीन थे।

पंजाब में बंदियों के रिहा होने पर भी उन पर अपमानजनक प्रतिबंध लगाये जाते थे। प्रांतीय असेम्बली के कितने ही ऐसे सदस्य, जो जेलों से बाहर थे, असेम्बली की बैठक में भाग नहीं ले सकते थे। एक सदस्य ने इस आदेश को भंग किया और अदालत ने उनके कार्य को उचित ठहराया।

कोल्हापुर में एक बड़ी सनसनीपूर्ण घटना हो गई। एक स्त्री के वस्त्र उसके पति व सन्तान के आगे उतारकर उसे त्रास दिया गया। इस सम्बन्ध में कोल्हापुर रियासत की पुलिस के सब-इन्स्पेक्टर के विरुद्ध गम्भीर आरोप थे। श्री बी० जी० खेर ने इस घटना की जांच की मांग उपस्थित करते हुए निम्न वक्तव्य दिया :—

"पिछले दिसम्बर प्रजा परिषद् के सम्मेलन के सिलसिले में मुझे कोल्हापुर जाना पड़ा था।

"वहां जनता में एक स्त्री काशीबाई हनवार के प्रति कोल्हापुर-राज्य की पुलिस के दुर्व्यवहार के कारण सनसनी फैली हुई थी। पुलिस स्त्री के फ़रार लड़के की तलाश में थी और उसी के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए उसने स्त्री पर दबाव डालना चाहा था। ६ दिसम्बर १६४४ को कोल्हापुर राज्य कार्यकर्ता सम्मेलन ने प्रस्ताव पास करके एक समिति श्रीमती काशीबाई हनवार के द्वारा लगाए गए आरोपों की जांच के लिए नियुक्त की गई। इस समिति ने जांच-पड़ताल की और ५ जनवरी १६४५ को अपनी रिपोर्ट उपस्थित करदी। इसे बाद में एक और

पूरक रिपोर्ट के साथ १९ फरवरी १९४५ को प्रकाशित कर दिया गया।

"ऐसा जान पड़ता है कि समिति इस परिणाम पर पहुँची कि फ़ौजदार इनगावले ने श्रीमती काशीबाई के वस्त्र उसके पति तथा उसके बच्चों के सामने ही उतार दिये और उसे निर्दयतापूर्वक पीटा। समिति का विचार है कि यह विश्वास करने के भी प्रमाण मिलते हैं कि स्त्री पर और भी अत्याचार किया गया। जिस पुलिस अफसर का इस मामले से सम्बन्ध है उसे दो व्यक्तियों की मारपीट करने के अपराध में विभाग-द्वारा की गई जांच के परिणामस्वरूप वास्तव में दंडित किया गया और उसका पद घटाकर जमादार का कर दिया गया। तब प्रजा-परिषद् के कार्यकर्ताओं ने प्रधान मंत्री से अनुरोध किया कि घटना के सम्बन्ध में एक स्वतन्त्र न्यायाधीश नियुक्त करके जांच कराई जाय; किन्तु यह अनुरोध स्वीकार नहीं किया गया। मेरा मत था कि सम्बन्धित पुलिस अफ़सर स्त्री के पति तथा अन्य व्यक्तियों की साधारण मारपीट करने का ही अपराधी नहीं था बल्कि उसने और भी अधिक निन्दनीय कार्य किया था। इसलिए मैंने १९ मार्च १९४५ को कोल्हापुर के प्रधान मन्त्री के नाम एक पत्र लिखा जिसका आख़िरी पैरा इस प्रकार था :—"मुझे कहा गया है कि सिर्फ़ कोल्हापुर की प्रजा ही नहीं बल्कि ब्रिटिश-भारत के भी बहुत से लोगों का विश्वास है कि शिकायत बहुत कुछ सत्य है और सम्बन्धित सबइंस्पेक्टर ने बहुत ही निर्मम तथा पाशविक व्यवहार किया है।

"इसलिए मेरा अनुरोध है कि आपको अपने न्याय प्रबन्ध में जनता का विश्वास कायम करने के लिए किसी स्वतन्त्र न्यायाधीश-द्वारा जांच-पड़ताल का आदेश देना चाहिए। इस घटना से सभी सभ्य नर-नारियों का अंतःकरण क्षुब्ध हो गया है।"

नीचे लंदन के एक मामले का विवरण दिया जाता है—"ब्रिटिश जनता युद्ध-सम्बन्धी समस्याओं में व्यस्त रहने के बावजूद न्याय-प्रबन्ध जैसे घरेलू विषयों में भी काफी दिलचस्पी लेती रही है। इस सप्ताह हाईकोर्ट-द्वारा तीन मजिस्ट्रेटों की निन्दा के कारण जनता में रोष की भावना फैल गई है। इन मजिस्ट्रेटों में से दो स्त्रियां थीं और एक पुरुष और इन्होंने नाबालिगों की अदालत में ११ साल के एक लड़के को किसी बालसुलभ अपराध के लिए बेंत मारे जाने की सजा दी थी। अपील में प्रधान न्यायाधीश ने दंड के आदेश को रद्द करते हुए कहा कि इन स्थानीय मजिस्ट्रेटों ने नाबालिगों की अदालतों में काम करने के सभी नियमों की ही उपेक्षा नहीं की है, बल्कि जितनी भी गलती वे कर सकते थे, उन्होंने की है। लड़के की तरफ़ से मजिस्ट्रेटों के ख़िलाफ़ दावा दायर किया गया और श्री हरबर्ट मारीसन ने घोषणा भी की कि न्यायाधीश गोडार्ड इस मामले की सार्वजनिक रूप से जांच करेंगे। जांच समाप्त होने तक मजिस्ट्रेट अपना काम न कर सकेंगे। इस मामले पर जनता की नाराज़ी जारी है और समाचार-पत्रों में इसीके सम्बंध में संपादकीय टिप्पणियां तथा संपादक के नाम पत्रों की भरमार रहती है। न्यायाधीश महोदय ने मजिस्ट्रेटों को मुलाकात के लिए लन्दन बुलाया है। आशा की जाती है कि अदालत में जब इस मामले की सुनवाई होगी तो संपूर्ण राष्ट्र एक क्षण के लिए युद्ध को भूल जायेगा।"

भारत में मजिस्ट्रेटों ने हज़ारों मामलों में बेंत लगाए जाने की सजाएँ दीं और भारत मंत्री श्री एमरी ने उनका उल्लेख भी पार्लमेंट में किया; किन्तु भारत के सम्बन्ध में इस पर असंतोष प्रकट न किया गया जैसा कि इंग्लैंड में हुई एक घटना पर असंतोष फैल गया था। तीन मजिस्ट्रेटों द्वारा, जिनमें दो स्त्रियां थीं, ११ साल के एक लड़के को बेंत मारे जाने का आदेश दिया गया। बस पार्लमेंट में हो-हल्ला मच गया। हरबर्ट मारिसन ने सज़ा दिया जाना मुल्तवी कर

दिया। प्रधान न्यायाधीश ने मजिस्ट्रेटों को जवाबदेही के लिए बुलाया और तीनों मजिस्ट्रेटों को मुअत्तल कर दिया गया। होम सेक्रेटरी ने मामले की जांच कराने का वादा किया। स्वशासित राष्ट्रों की कार्य-पद्धति ऐसी ही है; किन्तु भारत में न तो यह विज्ञान ही है और न सरकार में इतनी करुणा की भावना ही।

जहां एक तरफ़ भारत में बेतों की सजाएँ बड़ी आसानी से दी गयीं वहां यह ध्यान देने की बात है कि ११ वर्ष पूर्व सेना में भी बेतों की सजा को बहुत गम्भीर माना जाता था।

सैनिक राजनीतिज्ञ

यह घटना १८३२ की है और उसका सम्बन्ध रिफार्म्स बिल से है। स....एक फर्ज पूरा करनेवाला सैनिक था। वह अनुशासन को भी मानता था जिसके अनुसार उसे राजनीति में भाग लेना चाहिये था। एक दिन बरमिंघम की बारकों से बाहर रिफार्म्स बिल की तारीफ में चिट्ठियां भेजी गईं। सन्तरी का काम करते हुए स...को एक सुधार-विरोधी पत्र हाथ लगा और उसने उसका जवाब भी भेज दिया। उसकी हाथ की लिखावट पहचान ली गई। सैनिक को गिरफ्तार करने के बजाय एक बदमाश घोड़ा चढ़ने के लिए दिया गया और जब सैनिक उस पर चढ़ न सका तो उसने इसकी कोशिश भी छोड़ दी। तब सैनिक को गिरफ्तार कर लिया गया। मेजर विंढम के पूछने पर सैनिक ने पत्र लिखने की बात स्वीकार कर ली। तब उसे देशद्रोह का अपराधी घोषित किया गया; किन्तु दण्ड उसे घोड़े पर चढ़ने के लिए सार्जेण्ट का आदेश न मानने के सम्बन्ध में दिया गया। कोर्ट मार्शल होने पर १० मिनट के भीतर ही उसे अपनी रेजिमेण्ट के सामने २०० बेंत लगाने की आज्ञा सुना दी गयी। १०० बेत लगने के बाद उसकी बाकी सजा माफ कर दी गई। वह सिर्फ एक बार कराहा। उसने कहा कि मैं इस घटना को इंग्लैण्ड भर में प्रकाशित कर दूंगा। समाचार-पत्रों-द्वारा इसकी सूचना देश की जनता को हो जायगी। और वास्तव में जनता में इसकी चर्चा हुई। जांच होने पर यह फैसला हुआ कि मेजर विंढम ने न्यायपूर्ण कार्य नहीं किया। इस अफसर के कार्य के लिये सम्राट् ने खेद प्रकट किया। सैनिक को अपना चित्र उतरवाने के लिये ही ५० पौंड मिल गये। उसे जनता से इतना धन मिला कि फौज में काम करने की कोई जरूरत न रह गई।

बन्दूकची स्क्रेटन की कैद और मृत्यु की दुःखद कहानी से जहां अनुशासन का एक अपूर्व उदाहरण मिलता है वहां डाक्टरी परीक्षा के खोखलेपन पर भी प्रकाश पड़ता है। चालीस वर्ष का एक ऐसा आदमी सेना में भर्ती कर लिया गया जो सेना में काम करने-लायक न था। वह सेना में बना रहा और साथ ही उसकी तन्दुरुस्ती भी गिरती गयी। जब उसे दण्ड देने के लिये नजरबन्द कैम्प में भर्ती किया गया तो तपेदिक के कारण उसका बुरा हाल था और पैदल चलने की वजह से लगभग अधमरा हो चुका था। युद्ध-मन्त्री सर जेम्स ग्रिग ने हाईकोर्ट का एक जज मामले की जांच करने के लिए नियुक्त करने का वायदा किया। इसका फैसला पिछले सप्ताह ही हुआ है। गिलिंघम नजरबन्द-कैम्प के दो गैर-कमीशनी अफसरों के अपराध के निर्णय से जनता में बड़ी सनसनी फैल गई है। उस पर एक ऐसे सैनिक की हत्या का इलजाम लगाया गया है जो ४० साल का अशक्त, बहरा और तपेदिक से पीड़ित व्यक्ति था। दोनों को सजा इस कारण दी गई क्योंकि सैनिक को स्वस्थ बता कर दण्ड भोगने के लिये भेजा गया और स्वस्थ बता कर ही नजरबन्द कैम्प में दाखिल किया गया था। ('मैंचेस्टर गार्जियन', १ जुलाई १९४३)।

कांग्रेस के इतिहास के विद्यार्थी अमरीकी मिशनरी रेवरेंड आर० आर० कीथन के नाम से

परिचित हैं। वे चिंगलपट के ईसाई विद्यार्थी-शिविर में भाग ले रहे थे कि अचानक उन्हें मद्रास-सरकार का प्रेसीडेंसी के बाहर चले जाने का आदेश मिला। यह आदेश भारत-रक्षा-विधान के नियम २६ के अन्तर्गत जारी किया गया था। वे तुरन्त बंगलोर के लिये रवाना हो गये। वहां उन्हें मैसूर से निर्वासित किया गया। भारत से जाते समय उन्होंने निम्न वक्तव्य दिया:—

"हमें उस देश को, छोड़ने के लिये कहा जा रहा है जिसे हम प्यार करते हैं, जिसकी हमने सेवा की है और जिसे अब हम अब अपना देश मानते हैं। हिन्दुस्तान के कितने ही हिस्सों से कृपापूर्ण विचार प्रकट किये गये हैं और प्रार्थनायें भी की गयी हैं। इसका हम पर बड़ा प्रभाव पड़ा है। हम आपकी भावना की कद्र करते हैं और विश्वास दिलाते हैं कि हम चाहे जहां भी हों, भारत के लिये प्रयत्न करते रहेंगे। पिछले दस साल से हम भारत के गांवों और उसकी गन्दी बस्तियों में रचनात्मक कार्य करने में लगे हुए थे। हमने नौजवानों की शक्ति और जोश को क्रियात्मक दिशाओं की ओर ढकेलने का प्रयत्न किया और इसमें सफल भी हुए।

"मित्रराष्ट्र बुराई की महान् शक्तियों के चंगुल में फँसे हुए हैं। हम दावा करते हैं, और यह दावा ठीक भी है, कि हम जीवन की महान् स्वाधीनताओं के लिये लड़ रहे हैं और ये स्वाधीनतायें विश्व-व्यापी होनी चाहियें—खासकर हमारे हिन्दुस्तान में। हमें यकीन है कि ज्यादातर आदमियों का विश्वास है कि न्यायपूर्ण तथा स्थायी शांति की व्यवस्था का निर्माण जीवन की रचनात्मक तथा क्रियात्मक शक्तियों—सत्य तथा प्रेम—के ही आधार पर हो सकता है। कम-से-कम यह तो हमारा दृढ़ विश्वास है कि शांति की ऐसी व्यवस्था का निर्माण उस हिंसा व बेईमानी के आधार पर नहीं हो सकता जो नाजीवाद की विशेषतायें रही हैं। गोकि हम नाजी-वाद पर होनेवाले किसी हिंसापूर्ण हमले में अपने आन्तरिक विश्वास के कारण भाग नहीं ले सके, फिर भी मित्र-राष्ट्रों के महान् बलिदानों को मद्देनजर रखते हुए हम ऐसे साधनों-द्वारा, जिनमें हमारा विश्वास है, अपने प्रयत्नों का योगदान करते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि इस समय हमारा यही अपराध है और इसीलिये हमें निर्वासित किया जा रहा है। हम ऐसे सभी कष्टों का स्वागत करते हैं जिनसे जीवन की पूर्णता का मार्ग खुल सकता है और हम सत्य की प्राप्ति के अधिक निकट पहुँच सकते हैं। हम जानते हैं कि आपकी प्रार्थनाएं और आशीर्वाद हमारे साथ हैं और हम उस सुखद दिन की आशा करते हैं जब हम आपके बीच में फिर आ सकेंगे।"

नजरबन्द

शासन-व्यवस्था का यह नियम है कि जब किसी व्यक्ति पर अदालत में मुकदमा नहीं चलाया जाता, बल्कि उसे नजरबन्द ही किया जाता है, तो—चाहे वह अमीर हो या गरीब—उसके लिये अपना व अपने परिवार का खर्च चलाने के लिए मुनासिब भत्ता दिया जाता है। व्यक्तिगत सत्याग्रह-आन्दोलन के दिनों में अधिकांश नजरबन्दों को कुछ भत्ता नहीं दिया जाता था। उन्हें निर्वाह के लिये डेढ़ आना (दूसरे दर्जे के कैदियों के लिये) से चार आने (पहले दर्जे के कैदियों के लिये) तक दिया जाता था। वैलोर सेण्ट्रल जेल में ८० नजरबन्दों-द्वारा १६ दिन तक अनशन करने के बाद निर्वाह की रकमें बढ़ा कर क्रमश: ४ आ० और ८ आ० कर दी गयीं। कुल २५- नजरबन्दों में से सिर्फ आधे दर्जन को ५ रु० से ३५ रु० मासिक तक पारिवारिक भत्ते दिये गये। फिर नजरबन्दों के भत्ते बढा कर क्रमशः १ रु० ४ आ० और १ रु० १२ आ० कर दिये गये।

१९४२-४३ में भत्तों-सम्बन्धी नीति में कुछ सुधार हुआ। मद्रास में १८५ नजरबन्दों

को १५ रु० से १०० रु० प्रति नजरबन्द भत्ता दिया जाता था; किन्तु बंगाल में अधिक उदारता-पूर्ण नीति का अनुसरण किया गया। कारण यह था कि बंगाल में हजारों नजरबन्द थे और उनके सम्बन्ध में नीति निर्द्धारित कर दी गयी थी। बंगाल के मूल्यों में आठ या दस गुनी वृद्धि होने के कारण भत्तों की दरों में संशोधन करना आवश्यक हो गया; किन्तु यह शर्त थी कि भत्ता नजरबन्द की उस आय से अधिक न होना चाहिए जिससे नजरबन्दी के कारण वह वंचित हुआ हो।

सबसे उल्लेखनीय विवरण राजा सर महाराज सिंह की बहन श्रीमती अमृतकौर की गिरफ्तारी व नजरबन्दी के सम्बन्ध में है। यह विवरण नीचे दिया जाता है:—

"इन्हें सायंकाल ८॥ बजे कालका में गिरफ्तार कर लिया गया। सूचित किया गया कि उन्हें अम्बाला जेल ले जाया जायगा। राजकुमारी अमृतकौर ने अपने साथ अपना बिस्तर, चरखा, बाइबिल, गीता तथा पानी पीने का गिलास ले जाने का अनुरोध किया और इसकी इजाजत उन्हें दे दी गयी। उन्हें अपना कपड़े का बक्स ले जाने की इजाजत नहीं दी गयी और कहा गया कि उन्हें लाहौर ले जाया जायगा; क्योंकि महिला नजरबंदों या एक महीने से अधिक काल के लिए कारावास का दंड पानेवाली स्त्रियों को रखने का प्रबंध वहीं है। लेकिन उन्हें कभी लाहौर नहीं ले जाया गया और एक महीने का काल उन्होंने एक जोड़े कपड़े में ही गुजारा। ये कपड़े बुरी तरह मैले हो चुके थे। इनमें कबूतर की बीट व चूहों की लेंडी के निशान थे। रहने के कमरे में ही शौच का स्थान था जिसे इस्तेमाल करने से उन्होंने इन्कार कर दिया। स्नान के लिए कोई बंद जगह तक न थी। रहने के स्थान की मरम्मत बहुत दिन से नहीं हुई थी। एक दिन मिट्टी का एक ढोंका गिर पड़ा और उनके कंधे पर कुछ हलकी चोट लगी। सायंकाल ८॥ बजे गिरफ्तार होने के कारण उनके भोजन का कोई प्रबंध न था। उन्हें मोटी, अधकच्ची रोटी और ठंडी दाल दूसरे दिन दोपहर १ बजे दी गयी। वे यह भोजन न कर सकीं। यही भोजन उन्हें सायंकाल ५॥ बजे दिया गया। अगले दिन फिर यही भोजन दिया गया। तीसरे दिन भूख से परेशान होकर उन्होंने रोटी खाने की कोशिश की; किन्तु इस भोजन का उनके पेट पर बुरा असर पड़ा। चौथे दिन जेलर को दया आई और उसने २ औंस दूध अपने घर से मँगाकर दिया, जिसके लिए राजकुमारी ने उनका आभार माना। सप्ताह भर में ही उन्हें अस्पताल मे भरती कर दिया गया। तब उन्हें कुछ दूध, सब्जी व डबल रोटी नित्य दी जाने लगी। इस तरह डाक्टरों ने इन्हें नजात दिलायी। तीन सप्ताह अकेले रहने पर लाहौर से पांच अन्य महिलाएं भी आ गयीं, जिनमें दिल्ली की श्रीमती सत्य-वती भी थीं। उन्हें पुस्तकें या समाचारपत्र पढ़ने को नहीं दिये जाते थे और न लिखने के लिए कागज की एक भी चिंदी दी जाती थी। दूसरी बहनों के आने पर मांग की गयी कि भोजन उनके अपने सेहन में ही पकाया जाय। उन्हें थाल, कटोरे और गिलास दे दिये गये और इसके बाद उनकी हालत ठीक रही। भीतर ही एक स्नानागार का प्रबंध कर दिया गया। ऐसा जान पड़ता है कि आरम्भ में श्रीमती अमृतकौर के प्रति साधारण अपराधी-जैसा व्यवहार किया जानेवाला था और इसीलिए जेल के अधिकारी चाहते हुए भी कुछ करने में असमर्थ थे। अन्य बहनों के आने से पहले तीन दिन सुबह का भोजन पहुंचाने की किसी को याद ही न रही। ८ सप्ताह में उनका वजन १ स्टोन कम हो गया। इसके बाद उन्हें जेल से लाकर अपने मकान में ही नजरबंद कर दिया गया, जहां वे २० महीने लगातार रहीं। जब वे जेल में थीं, उनके भाई की मृत्यु हो गयी। यहां तक कि उन्हें अपनी भावज के लिए पत्र तक लिखने की अनुमति नहीं दी गयी। यह एक

ऐसी कहानी है, जिसे राष्ट्र कभी भूल नहीं सकता। इस कहानी के साथ श्री पेण्डेरेल मून, आई० सी० एस० का भी सम्बन्ध है। श्रीमती अमृतकौर के भाई के नाम इनके एक पत्र का सेंसर किया गया। जब श्री पेण्डेरेल मून से अपने आचरण का स्पष्टीकरण करने को कहा गया तो उन्होंने इस्तीफा देने की इच्छा प्रकट की।

पंजाब हाईकोर्ट में अपील करने पर एक कैदी को रिहा करने का आदेश दिया गया; किन्तु उसे तुरन्त छोड़ा नहीं गया। पंजाब असेम्बली में सरदार सोहनसिंह जोश ने सरदार तेजासिंह स्वतंत्र की तरफ से प्रश्न किया कि क्या गुजरात ज़िले के सरदार रजवंतसिंह के दरख्वास्त-निगरानी दायर करने पर लाहौर हाईकोर्ट ने उनके तीन वर्ष के कारावास को घटाकर एक वर्ष का कारावास २७ अगस्त १९४३ को कर दिया था और क्या उन्हें एक वर्ष से अधिक कैद भुगतनी पड़ी थी? उन्होंने प्रश्न किया कि सजा घटायी जाने का आदेश लायलपुर जेल ४ अक्टूबर १९४३ को इतनी देरी से क्यों भेजा गया?

सर मनोहरलाल ने प्रश्न का उत्तर देते हुए बताया कि सजा घटायी जाने के सम्बन्ध में आदेश भेजने में देरी होने का कारण यह था कि जिन सेशन जज को आदेश भेजना था वे छुट्टी पर थे और साथ ही सेशन जज को यह भी ज्ञात न था कि बंदी उस समय किस जेल में है।

बंगाल असेम्बली में हुए सवाल व जवाब से प्रकट हुआ कि परिस्थिति बहुत ही असंतोष-जनक है और मंत्रिमंडल को तुरन्त जांच करानी चाहिये। बंगाल के प्रधान मंत्री ने साफ शब्दों में बताया कि मेदिनीपुर की घटनाओं के सम्बन्ध में जांच कराने का जो वचन पिछले प्रधान मंत्री ने दिया था उसे पूरा करने के लिए वे बाध्य नहीं हैं। श्री फजलुल हक ने जांच का जो वचन दिया था वह बंगाल के स्वर्गीय गवर्नर सर जॉन हर्बर्ट को पसंद न था और श्री हक को प्रधान मंत्री के पद से हटाये जाने का एक यह भी कारण था। जनता और पुलिस दोनों ही की तरफ से एक दूसरे के प्रति अत्याचार के इलजाम लगाये जाने के कारण जांच बहुत ही आवश्यक थी; किन्तु सर नज़ीमुद्दीन के पूरे जवाब से जाँच कराने के सम्बन्ध में उनकी हिचकिचाहट साफ झलकती थी। आपने कहा, "जहां तक पुलिस का सम्बन्ध है, उसकी तरफ से यदि कोई अत्याचार हुए हैं तो उनकी जांच कराने को मैं तैयार हूं; किन्तु दूसरी तरफ से जो हत्याएं हो रही हैं, लोगों को भगाया जा रहा है और उनसे जबरन धन लिया जा रहा है, इन्हें बंद कराने के लिए दूसरा पक्ष क्या करेगा?"

भारत-सरकार बराबर इस बात पर जोर देती थी कि लोगों को सिर्फ इसलिए नजरबंद रखा जाता है कि वे अपने हानिकर कार्यों से बचें। नजरबंदों के विरुद्ध जो आरोप थे उन्हें उपस्थित करते समय भी यही बात कही गयी थी। श्री हुमायूं कबीर ने प्रान्तीय धारासभा में प्रस्ताव उपस्थित करके अनुरोध किया कि नजरबंदों के साथ अधिक नर्मी का बर्ताव होना चाहिए। इसका उत्तर देते हुए प्रधानमंत्री ने कहा कि नजरबंदों के परिवारों को सहायता देते समय इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि नजरबंदी लोगों को अप्रिय जान पड़े। एक जिस भय से व्यक्ति विनाश-कारी कार्यों से अलग रहता है वह यह है कि उसके अभाव में परिवारवालों को कष्ट होगा। एक स्वायत्त-शासनप्राप्त प्रान्त की भारतीय प्रधान मंत्री मैक्सवेल को भी मात कर रहा था।

बिहार, उड़ीसा व मद्रास में एक कमीशन ने उन नजरबंदों के मामलों पर विचार करने के लिए दौरा किया, जो विशेषाधिकार-कानून के अन्तर्गत अपना पक्ष उपस्थित करना चाहते थे। जुलाई, १९४३ में केन्द्रीय असेम्बली में श्री के० सी० नियोगी ने सरकार का ध्यान एक इस समा-

चार की ओर आकर्षित किया कि दिल्ली के किले में एक ऐसा तहखाना है, जिसमें कतिपय राजनीतिक बन्दियों को रखा जाता है। श्री नियोगी ने सरकार से अनुरोध किया कि वह इस विषय का स्पष्टीकरण कर दे; किन्तु गृह-सदस्य ने इस प्रश्न की ओर ध्यान नहीं दिया—कम-से-कम उन्होंने सवाल का तुरत जवाब न दिया।

जमीन के नीचे ये कोठरियां १६४१ में बनवाई गई थीं। वे जमीन की सतह से सोलह फ़ीट नीचे थीं; किन्तु कोठरियों के सामने २६ फ़ीट चौड़ा खुला अहाता था। चूंकि कोठरियों में सूरज की किरणें सीधी नहीं आ पाती थीं, इसलिये उनमें कुछ अंधेरा रहता था; किन्तु वे काफ़ी बड़ी और साफ़ थीं, और नज़रबन्दों को पूछताछ के लिये रखने-लायक थीं। इन कोठरियों का उपयोग सिर्फ़ इसी कार्य के लिये किया जाता था।

पं० हृदयनाथ कुंजरू के यह पूछने पर श्री कार्नन स्मिथ ने बताया कि मामूली तौर पर कैदियों को यहां एक महीने से ज़्यादा नहीं रखा जाता और किसी भी हालत में वे उनमें दो महीने से ज़्यादा नहीं रखे जा सकते।

श्री एन० एम० जोशी ने अपने संशोधन के द्वारा नज़रबन्दों के मामलों पर विचार करने के लिये एक समिति नियुक्त करने का अनुरोध किया था। इस संशोधन के पक्ष में ३६ और विपक्ष में भी ३६ ही मत आये और अध्यक्ष के मत से यह संशोधन अस्वीकार कर दिया गया।

बम्बई-सरकार ने जनवरी १६४३ में क्रिमिनल लॉ एमेंडमेंट के अन्तर्गत आदेश निकालकर बच्छराज ऐण्ड कम्पनी को सूचित किया कि सरकार उनके पास जमा ७२,८०० रु० की रक़म को जब्त करना चाहती है; क्योंकि सरकार को विश्वास हो चुका है कि इस धन का उपयोग अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के लिये किया जायेगा। खफ़ीफा अदालत के चीफ़ जज श्री मार्क नोरोन्हा के सामने आदेश के औचित्य का प्रश्न उठाया गया। चीफ़ जज ने निर्णय किया कि जिन दो व्यक्तियों ने दरख़्वास्त दी है और जो कांग्रेस के प्रारम्भिक सदस्य होने का दावा करते हैं उन्हें इस आदेश में कोई हानि नहीं पहुँची। अन्त में चीफ जज ने धन जब्त करने का आदेश बहाल रखा।

पूना के एडिशनल सिटी-मजिस्ट्रेट ने 'भारत छोड़ो' के गुजराती अनुवाद की एक प्रति अपने पास रखने के अभियोग में एस० आर० दिवालकर को ६ महीने की कड़ी कैद, १०० रु० जुर्माना तथा जुर्माना न देने पर और दो महीने की कड़ी कैद की सजा दी।

शान्ताराम उर्फ हनुमन्त अनन्त गुमाश्ता देशमुख, जो सतारा जिले के खानापुर स्थान का था, अगस्त १६४२ में गिरफ्तार किया गया और उसके रिश्तेदारों को तभी से उसके सम्बन्ध में कोई खबर नहीं मिली। अगस्त १६४४ तक उसके घरवाले कोई खबर मिलने का इन्तजार करते रहे। उसके बाद सतारा के जिला-मजिस्ट्रेट से मिले। मजिस्ट्रेट ने उसकी पत्नी और साले को बतलाया कि शान्ताराम दो महीने में जेल से छूटकर घर वापिस आ जायगा। रिश्तेदार खबर मिलने की प्रतीक्षा कर ही रहे थे कि उन्हें उसकी मृत्यु का समाचार मिला। रिश्तेदार इस समाचार का यकीन न कर सके और उन्होंने जेलवालों से उसके कपड़े मांगे। जेलवालों ने कहा कि कपड़े लाश के साथ ही दफना दिये गये। शान्ताराम के साले ने यह सब बातें लिखकर असेम्बली के एक सदस्य के पास भेज दीं। उन्होंने जेलों के इन्सपेक्टर जनरल से पूछताछ की और एक महीने बाद इसका उत्तर मिला कि १६ दिसम्बर १६४२ को शान्ताराम बेलगाँव सेण्ट्रल जेल में मर गया। उन दिनों जेल में एक खास महामारी फैली हुई थी और शान्ताराम उसी का शिकार हुआ था। मृत्यु की खबर १३ दिसम्बर १६४३ को (एक वर्ष बाद) विट्टा तालुका के पुलिस सब-

इन्सपेक्टर के जरिये एक पत्र-द्वारा उसकी पत्नी के पास भेज दी गई थी। इस पत्र में यह खबर गलती से दी गयी थी कि कपड़े लाश के साथ ही दफना दिये गये थे। लाश को जलाया गया था। मृत्यु की खबर देनेवाला पत्र भी उसकी पत्नी तक कभी नहीं पहुंचा और न विट्टा के पुलिस सब-इन्सपेक्टर ने उसकी पत्नी को सूचित ही किया था। जिला-मजिस्ट्रेट ने जो यह सूचित किया था कि शान्ताराम दो महीने में वापस आ जायगा। इससे पता चलता है कि उसे कुछ भी खबर न थी।

सिविलियनों का दुर्भाग्य

युद्ध में सिविलियनों को भी दुर्भाग्य का सामना करना पड़ा। बलिया के श्री निगम तथा डी० एस० पी० श्री रियाजुद्दीन को अपने पदों से अलग कर दिया गया। संयुक्तप्रान्त के श्री दे को जयपुर रियासत में काम मिल गया। पहले दो सज्जनों को २६ फरवरी, १९४४ को बनारस से जारी किये गये एक आदेश-द्वारा अपने पदों से हटाया गया था। कहा जाता है कि कलक्टर ने ५०,००० रु० के नोटों को नष्ट करा दिया था। पंजाब के श्री पेण्डेरेल मून आई० सी० एस० ने श्रीमती अमृतकौर के भाई के पास उनके प्रति दुर्व्यवहार के सम्बन्ध में एक पत्र लिखा और फिर पेंशन लेने से इन्कार कर दिया। बंगाल के श्री ब्लेयर को प्रान्तीय सरकार के विरुद्ध लिखने के अभियोग में इस्तीफा देने के लिए विवश किया गया। मद्रास-सरकार के एक सेक्रेटरी को पत्नी के लिए किसी व्यक्ति-द्वारा लिखे गये पत्र के लिए प्रान्त के किसी अज्ञात कोने में भेज दिया गया। यह पत्र उसकी पत्नी को कभी मिला नहीं; किन्तु इसमें युद्ध के विषय में कुछ चर्चा की गई थी। पंजाब के श्री लाल आई० सी० एस० ने प्रान्तीय सरकार द्वारा अपनी बर्खास्तगी के विरुद्ध अपील दायर करके डिग्री प्राप्त की। मध्यप्रान्त के श्री आर० के० पाटिल, आई० सी० एस० ने इस्तीफा दे दिया; क्योंकि वे सरकार की आन्दोलन-सम्बन्धी नीति से सहमत न थे। कई अन्य सिविलियन आन्दोलन से सम्बन्ध न रखने पर भी निकाल दिये गये।

राजपीपला रियासत में दो आठ-आठ वर्ष के लड़कों को तोड़-फोड़-सम्बन्धी कार्यों के लिए जेल में डाल दिया गया और वे दिसम्बर १९४४ और इसके कुछ समय बाद तक जेल में रहे।

श्रीमती अरुणा आसफअली को दिल्ली के चीफ कमिश्नर ने आदेश दिया था कि वे ७ सितम्बर १९४२ से १० दिन के भीतर सी० आई० डी० पुलिस के सुपरिन्टेन्डेन्ट के सामने हाजिर हों। श्रीमती आसफअली सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस के सामने हाजिर नहीं हुईं और तब उन्हें फरार घोषित कर दिया गया।

तब श्रीमती आसफअली के सामान का नीलाम हुआ। उनकी बेबी आस्टिन कार ३,५००रु० में बेच दी गयी। उनका मकान २०,००० में बेच दिया गया।

लाला फीरोजचन्द, सर्वेन्ट्स आवदि पीपुल्स सोसाइटी के उपाध्यक्ष थे। आप अगस्त, १९४२ से ही नज़रबन्द थे। सियालकोट जेल से लाहौर सेंट्रल जेल जाते समय आपको हथकड़ियां पहनाई गई थीं।

श्री जयप्रकाश नारायण एक सुप्रसिद्ध समाजवादी हैं। स्वराज्य प्राप्त करने के साधनों के सम्बन्ध में उनका कांग्रेस से मतभेद था। इसी प्रकार कार्य-प्रणाली के सम्बन्ध में भी उनका मतभेद था। देवली जेल से जिस पत्र के लिखने की बात उनके सम्बन्ध में कही जाती है उससे भी यही प्रकट होता है। जब देवली कैम्प तोड़ा गया और नजरबन्द विभिन्न प्रान्तों को भेजे गये तो श्री जयप्रकाश नारायण भी बिहार भेजे गये और उन्हें हजारीबाग सेंट्रल जेल में रखा गया। वहां से ९ नवम्बर १९४२ को वे भाग गये। उनकी गिरफ्तारी के लिए भारी इनाम की घोषणा की

गई, जो बढ़ाकर १०,००० रु० तक किया गया। एक बार खबर मिली थी कि वे नेपाल में हैं। फिर बंगाल-मंत्रिमंडल ने उनके बंगाल में रहने की बात की सूचना दी; किन्तु सी० आई० डी० को खबर मिलने से पहले ही वे प्रान्त के बाहर हो गये। उन्हें अक्टूबर में पकड़ लिया गया; किन्तु यह नहीं बताया गया कि यह गिरफ्तारी किस प्रान्त में और किसके आदेश से हुई। अन्त में उन्हें पंजाब में नज़रबन्द करके रखा गया। पंजाब-सरकार ने कहा कि उनके प्रति प्रथम श्रेणी के बंदी का व्यवहार किया जाता है। ७ नवम्बर को प्रान्तीय असेम्बली में एक कार्य-स्थगित-प्रस्ताव उपस्थित करने का प्रयत्न किया गया; किन्तु ६ दिसम्बर को उसके लिए अनुमति देने से इन्कार कर दिया गया। तब लाहौर हाईकोर्ट में उनकी तरफ से दरख्वास्त दी गयी कि नजरबन्दी के सम्बन्ध में जांच के लिए बन्दी को उपस्थित होने दिया जाय। इस दरख्वास्त का परिणाम श्री जयप्रकाश के वकील के लिए विचित्र हुआ। श्री पर्डीवाला यह दरख्वास्त लाहौर हाईकोर्ट में दाखिल करने के लिए ही बम्बई से आये थे। तब स्वयं पर्डीवाला के सम्बन्ध में इसी प्रकार की अर्जी दी गयी; किन्तु उन्हें तीन दिन के भीतर रिहा कर दिया गया। पंजाब हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस के यह कहने पर कि यदि यह प्रमाणित हो गया कि इस वकील को सिर्फ इसीलिए गिरफ्तार किया गया कि वह अपना पेशा-सम्बन्धी कार्य करने आया था, तो वे कुछ गम्भीर कार्रवाई करेंगे—सरकार तुरन्त अपनी स्थिति से हट गयी। जहाँ तक जयप्रकाश नारायण-सम्बन्धी दरख्वास्त का सम्बन्ध है, उस दरख्वास्त की सुनवाई की तारीख के तीन सप्ताह पहले ही एडवोकेट-जनरल ने श्री जयप्रकाश नारायण के वकीलों को सूचित किया कि बन्दी को जिस कानून के अन्तर्गत गिरफ्तार किया गया था उसे अब भारत-रक्षा विधान से बदलकर १८१८ का तीसरा रेगुलेशन कर दिया गया है। इस तरह नजरबन्द का मामला दरख्वास्त के क्षेत्र से बाहर हो गया। एडवोकेट-जनरल का अनुरोध स्वीकार किये जाने पर चीफ जस्टिस तथा नजरबन्द के वकील में कुछ विचित्र बातचीत भी हुई। ७ दिसम्बर को श्री जयप्रकाश नारायण की तरफ से श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी-द्वारा दायर की गयी दरख्वास्त चीफ जस्टिस सर ट्रेवर हैरीज तथा जस्टिस सर अब्दुर्रहमान-द्वारा नामंजूर कर दी गयी।

पर्डीवाला का मामला एक और भी परिस्थिति के कारण मनोरंजक रहा। श्री पर्डीवाला को अपनी गिरफ्तारी के दो दिन बाद जेल में एक सब-इन्सपेक्टर दिखाई दिया जिसे उन्होंने लाहौर हाईकोर्ट में दाखिल करने के लिए एक अर्जी दे दी, और जिसमें उन्होंने अपनी गैर-कानूनी गिरफ्तारी के सम्बन्ध में विचार प्रकट किए थे। यह अर्जी हाईकोर्ट नहीं पहुंचाई गई। स्पष्ट था कि पुलिस के पास श्री पर्डीवाला के विरुद्ध कोई आरोप न था और इसीलिए अपने आचरण के स्पष्टीकरण में उसे कठिनाई हो रही थी और फिर इसीलिए उन्हें दो दिन बाद रिहा कर दिया गया था। श्री पर्डीवाला की गिरफ्तारी के ४ दिन बाद उनकी रिहाई और जयप्रकाश नारायण के सम्बन्ध में भारत-रक्षा-विधान के स्थान पर १८१८ के रेगुलेशन ३ को लागू करने से अधिकारीवर्ग का वास्तविक स्वरूप अपनी पूर्ण नग्नता में हमारे सामने आ जाता है। अर्जी न पहुंचायी जानेवाली बात से एक वैसी ही घटना स्मरण हो आती है, जो इंग्लैंड में एक कप्तान के सम्बन्ध में हुई थी और जस्टिस हम्फ्री के सम्मुख मामला जाने पर उन्होंने इसकी कड़ी आलोचना की थी और साथ ही गृह-मन्त्री सर जान एण्डर्सन ने इसके लिए क्षमा भी मांगी थी। जस्टिस हम्फ्री ने अपने निर्णय में कहा था:—

"किसी व्यक्ति ने, जिसका नाम अदालत के पास नहीं है और जिसकी दरख्वास्त के बारे में भी उसे कुछ ज्ञात नहीं हुआ है, इस कागज को बीच ही में रख लिया और अदालत के पास नहीं भेजा, जिसके लिए वह था। उस अधिकारी का खयाल था कि अदालत के आगे दरख्वास्त पेश करने का वह ढङ्ग ठीक न था। उस अधिकारी के लिए यह परिणाम निकालने की कुछ भी जरूरत न थी। उसने जो कुछ किया वह करना उसके लिए बड़ी धृष्टता की बात थी।"

कहा गया है कि बुराई में से भलाई निकलती है। श्री पर्डीवाला की गिरफ्तारी तथा उनके द्वारा लाहौर हाईकोर्ट के लिए लिखी गयी दरख्वास्त रोक लिये जाने के परिणामस्वरूप यह प्रकट हुआ कि अन्य कई दरख्वास्तें ऐसी थीं, और उनके सम्बन्ध में उपयुक्त कार्रवाई की गयी। इससे भी एक महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि ६ फरवरी, १९४४ को केन्द्रीय-सरकार के विरुद्ध एक निंदात्मक प्रस्ताव आगरे के एक वकील लाला बैजनाथ तथा बम्बई के एक वकील श्री पर्डीवाला की गिरफ्तारियों के सम्बन्ध में पास हो गया। इनका कसूर इसके अलावा और कुछ भी न था कि उन्होंने कई राजनीतिक मामलों में अभियुक्तों की तरफ से पैरवी की थी।

पर्डीवाला के मामले के बाद एक दूसरा मामला अदालत की मान-हानि का सी० आई० डी० के स्पेशल सुपरिन्टेंडेण्ट पुलिस, श्री राबिन्सन तथा सी० आई० डी० के पुलिस सब-इन्सपेक्टर मिर्जा अश्फाक बेग के विरुद्ध चला और दोनों पुलिस अफसर नियमानुसार अदालत की मानहानि के दोषी पाये गए; किन्तु यह भी कहा गया कि मानहानि अधिक गम्भीर नहीं है। पुलिस सी० आई० डी० शाखा के डिप्टी इन्सपैक्टर-जनरल के विरुद्ध मानहानि का अभियोग आगे नहीं बढ़ाया गया।

सी० आई० डी० के सुपरिण्टेडेन्ट श्री राबिंसन ने अदालत में जिरह के समय कहा कि उस समय मैं डिप्टी-इन्सपैक्टर-जनरल की ओर से काम कर रहा था और ऐसा करने का मैं पूरा अधिकारी था। श्री राबिंसन से पूछा गया कि उनके विभाग में किसी दूसरे अफसर की तरफ से काम करनेवाला कोई अफसर उस अफसर के नाम लिखे गये पत्र को नष्ट कर सकता है या नहीं? उन्होंने कहा कि मैं इसका कोई आम जवाब नहीं दे सकता; मैं तो सिर्फ यही कह सकता हूँ कि इस मामले में मैं डिप्टी-इन्सपेक्टर-जनरल की तरफ से काम कर रहा था। मैं जानता था कि पत्र हाईकोर्ट के लिये लिखा गया है, फिर भी मैंने उसे अधिक महत्त्व नहीं दिया। तब राबिंसन से पूछा गया कि क्या उनका खयाल था कि वे उस पत्र को नष्ट कर सकते हैं? श्री राबिंसन ने जवाब दिया, "मैं जानता था कि पत्र में रिहाई की मांग की गई है और चूंकि श्री पर्डीवाला छोड़े जा चुके थे इसलिए और कुछ किया जाना बाकी न था। यह जानते हुए भी कि पत्र हाईकोर्ट के नाम है मैंने उसे नष्ट करने की मूर्खता कर डाली। ऐसा करके मैं पत्र से सम्बन्ध रखनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को परेशानी से बचाना चाहता था; क्योंकि रिहाई का हुक्म जारी हो चुका था और सम्बन्धित व्यक्ति को छोड़ा भी जा चुका था।"

इंग्लैण्ड में कुछ ऐसे मामले हुए जिनसे रक्षा-सम्बन्धी नियमों पर प्रकाश पड़ता है। ऐसा ही एक मामला सुरेश वैद्य का था। सुरेश वैद्य पर इंग्लैंड का अनिवार्य-भरती कानून लागू किया गया; किन्तु उन्होंने इसका विरोध किया। अपील करने पर अदालत ने उन्हें सेना के काम से मुक्त कर दिया। 'न्यू स्टेट्समैन' (१९ फरवरी, १९४४) ने सुरेश वैद्य के बारे में एक विचित्र बात कही कि वे "मजहब के मुसलमान और जाति के मराठे हैं और एक ऐसे जोशीले आदमी हैं जिन्हें कोई भी सेना खुशी से भरती करना चाहेगी।" लेखक आगे लिखता

है, "परन्तु सुरेश वैद्य एक भारतीय देश-भक्त हैं और उन्हें इस बात पर आपत्ति है कि उनके देश को इस युद्ध में उनकी मर्जी के खिलाफ घसीटा गया है। इसीलिए वे सेना में काम करने से इन्कार करते हैं। कानूनी दृष्टि से उन्हें सेना में जबरन भरती किया जा सकता है। लेकिन भारत में अनिवार्य भरती का कानून अभी जारी नहीं हुआ। इसलिये नैतिक व राजनीतिक आधार पर—बाक़ायदा छुटकारा नहीं—हमें उनको छोड़ देने का निश्चय करना चाहिए।" इस मामले से जनता में काफी सनसनी फैल गई और अन्त में सुरेश वैद्य छोड़ भी दिये गए।

मोसले

भारत व इंग्लैंड में राजनीतिक-बन्दी-सम्बन्धी परिस्थितियों की तुलना इस बात से की जा सकती है कि गृह-मन्त्री श्री हरबर्ट मारीसन ने जनता के विरोध के बावजूद सर ओसवाल्ड मोसले और उनकी पत्नी को जेल से रिहा कर दिया और इधर भारत में गृह-सदस्य सर रेजीनाल्ड मैक्सवेल ने भारतीय जनता की रिहाई की ज़ोरदार मांग के बावजूद १६,००० राजनीतिक बन्दियों व नजरबन्दों को जेल में बनाये रखा। सर ओसवाल्ड मोसले लार्ड कर्जन के जमाई हैं। वे पहले समाजवादी थे; किन्तु पिता की मृत्यु के बाद वे काली कमीज़वाले व फासिस्ट बन गये। फिर वे ब्रिटेन के फासिस्टों के नेता व हिटलर और मुसोलिनी के मित्र के रूप में प्रसिद्ध हुए। कैसी अजीब बात है कि इंग्लैण्ड में फासिस्टों का नेता आजाद कर दिया जाय और भारत में फासिज़्म के दुश्मनों को जेलों में बन्द रखा जाय।

जहां एक तरफ ब्रिटेन में वहां के गृहमन्त्री ने स्पष्ट कह दिया था कि सर ओसवाल्ड मोसले के सम्बन्ध में निर्णय करते समय राजनीतिक दुर्भावना का ख़याल नहीं किया गया था, वहां भारत में सर रेजिनाल्ड मैक्सवेल तथा प्रान्तों के अन्य अधिकारी 'राजनीतिक दुर्भावना' का प्रदर्शन खुले शब्दों में कर रहे थे और कह रहे थे कि कांग्रेस का अगस्त, १९४२ वाला प्रस्ताव वापस लेने के समय तक नेताओं को छोड़ा नहीं जा सकता। परन्तु पंजाब के प्रधानमंत्री तो सबसे आगे बढ़ गये। उन्होंने मार्च, १९४३ में कहा कि जिन नज़रबन्दों को बीमारी के कारण छोड़ा जायगा उन्हें ठीक होने पर फिर जेल में वापस जाना पड़ेगा। इस प्रकार छोड़े गये व्यक्तियों में से यदि कोई प्रान्तीय असेम्बली का सदस्य है तो बीच के काल में वे असेम्बली के अधिवेशन में भाग न ले सकेगा। इस तरह जहां सर ओसवाल्ड मोसले को अस्वस्थ होने के कारण जेल से छोड़ा जा सकता है वहां पंजाब के प्रधानमंत्री को यह तर्क ठीक न लगा और वे हरबर्ट मारीसन से आगे बढ़ गये। जहां भी नजरबंद जेल में बीमार पड़े हैं इसका यही मतलब लगाया जा सकता है कि बीमारी उन्हें जेल-जीवन के कारण हुई और फिर जेल से छूटने पर शारीरिक आराम मिलने, चिकित्सा होने व मानसिक शान्ति प्राप्त करने से वे अच्छे हो जाते हैं। परन्तु पंजाब के प्रधान मंत्री सर खिज्र हयात खां का यह विचार है कि जेल में बीमार पड़नेवाले नज़रबंदों को छोड़ तो दिया जाय; पर अच्छा होने पर बीमार पड़ने के लिए जेल में वापस बुला लिया जाय। सर खिज्र यह भी जानते हैं कि दूसरी बार बीमार पड़ने पर ठीक होना कितना कठिन होता है। बहुधा भारतीय अधिकारीवर्ग अपने लोकतंत्र-विरोधी आचरण की सफाई देने के लिए ब्रिटेन की नजीरें दिया करते हैं। अपनी दमन-नीति के समर्थन में वे सुरक्षा की दुहाई दिया करते हैं और इस तरह अपने देशभाइयों की स्वाधीनता का अपहरण किया करते हैं।

'नागपुर टाइम्स' व 'हितवाद' के नागपुर-स्थित सम्पादक को इसलिए गिरफ्तार कर लिया गया कि उन्होंने मध्य-प्रांतीय सरकार-द्वारा कतिपय नजरबंदों की गिरफ्तारी के सम्बन्ध में

बताये गये कारणों को प्रकाशित किया था। इससे एक और पेचीदगी उत्पन्न हुई। मई, १९४४ में जब मामला अदालत में पहुंचा तो प्रकट हुआ कि सरकार कारण दे ही नहीं सकती। अंत में इस सम्बन्ध के आर्डिनेंस में संशोधन किया गया।

गुप्त कार्य

पाठकों को स्मरण होगा कि बम्बई में ८ अगस्त के दिन भाषण करते हुए महात्मा गांधी ने कहा था, "गोपनीयता नहीं रहनी चाहिये। गोपनीयता पाप है; गुप्त कार्य न होना चाहिये।" गांधीजी की इस चेतावनी की तुलना हम राष्ट्रपति रूजवेल्ट के उस भाषण से कर सकते हैं, जो उन्होंने १९४३ में बड़े दिन के अवसर पर दिया था। यूरोप के देशों के गुप्त कार्यकर्त्ताओं की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा था :

"यह हमारी निरन्तर नीति रही है और साधारण विवेक भी इसी नीति को ठीक मानेगा कि स्वाधीनता प्राप्त करने के लिये प्रत्येक राष्ट्र के अधिकार का अनुमान हमें यह देखकर करना चाहिये कि वह राष्ट्र स्वाधीनता के लिये किस सीमा तक लड़ने के लिए इच्छुक है। आज हम अपने उन अनदेखे मित्रों का अभिवादन करते हैं जो शत्रु-द्वारा अधिकृत देशों में गुप्त रूप से लड़ रहे हैं और मुक्ति-सेनाओं का संगठन कर रहे हैं।"

अगर भारत में एक ऐसा गुप्त आंदोलन चल गया जिसके साथ सरकार ने कांग्रेस का नाम ग़लती से जोड़ दिया तो इस परिस्थिति को दुनिया भर की घटनाओं के अनुरूप ही कहा जायेगा। जिन लोगों ने भारत में गुप्त कार्यों की निंदा की है उन्होने फ्रांस व जर्मनी में उनकी तारीफ़ की है। कहा जाता है कि फ्रांस की आधी जनता तक गुप्त कार्यकर्ताओं के समाचारपत्र पहुंचते थे। जर्मनी में आंदोलन दूर-दूर तक फैला था और भीतर-ही-भीतर नाज़ी सत्ता से लोहा ले रहा था। ११ फरवरी, १९४७ को लन्दन से जेलों में काम करनेवाले जर्मन मज़दूरों के नाम एक अपील ब्राडकास्ट की गई जिसमें उनसे युद्ध को जल्दी समाप्त करने के लिये रेलों में तोड़-फोड़ करने को कहा गया था। बी० बी० सी० ने ऐसी ही अपीलें जर्मनी की रेलों में काम करनेवाले विदेशी मज़दूरों के नाम भी डच, चैक, पोलिश व फ्रेंच भाषाओं में ब्राडकास्ट की थीं। मज़दूरों से कहा गया था कि इस काम में बड़े साहस की जरूरत है और ख़तरा भी काफ़ी है। हालैंड में एक ऐसी ही अपील के परिणाम-स्वरूप वहां की रेलों के मज़दूरों ने हड़ताल कर दी और इस तरह मित्रराष्ट्रीय सेना की कार्यवाही में काफ़ी सहायता प्रदान की थी।

यह ठीक था कि गुप्त रूप से कार्य करनेवालों को अपने प्राण हथेली पर लेने पड़ते थे। हमारे भारत में भी सरकार ऐसे लोगों की गिरफ्तारी के लिये कोई प्रयत्न बाकी न छोड़ती थी। हम देख चुके हैं कि श्री जयप्रकाश नारायण जैसे कार्यकर्ताओं की गिरफ्तारी कराने के लिये १०,००० रु०, तक इनाम रखे गये थे। ऐसे कार्यकर्त्ताओं के लिये 'गुप्त' शब्द का प्रयोग करना ठीक नहीं है ; क्योंकि तानाशाही—यह चाहे ब्रिटेन, जर्मनी या भारत अथवा किसी अन्य देश की क्यों न हो—उन पर वैज्ञानिक ढंग से नज़र रखती है। गुप्त पुलिस का कार्य लोकतंत्री ढंग से नहीं चल सकता। परन्तु गुप्त कार्यकर्ताओं ने भी अपने वैज्ञानिक ढंग का विकास किया है, जिससे उन पर सन्देह न किया जाय। ऐसे लोग बीमा कंपनी या मोटर चलाने का काम करते हैं या किसी दूसरे पेशे में लगे रहते हैं। ये लोग डाक, तार या टेलीफोन से संदेश न भेजकर खुद ले जाते हैं। ये किसी काग़ज़ के बिना जले या अधजले टुकड़े नहीं छोड़ते, जिससे कोई गुप्त रहस्य प्रकट न हो जाय। ये एक गुप्त सांकेतिक भाषा निकाल लेते हैं। ये सिर्फ़ जन्मदिन या

त्यौहार पर ही इकट्ठे होते हैं या टिकट इकट्ठे करनेवालों या फोटोग्राफी में दिलचस्पी रखनेवालों के क्लबों के सदस्य बन जाते हैं। ये क्लोरोफार्म लेकर इस भय से आपरेशन नहीं कराते कि कहीं बेहोशी में मुंह से कोई गुप्त भेद प्रकट न हो जाय। जब शत्रु की पुलिस पीछा करती है तो उससे बचने के लिए ये कुबड़े बन जाते हैं और पुलिस के एक मकान में पहुंचने पर दूसरे से निकल जाते हैं। ये लोग अदृश्य स्याही की जगह माइक्रो-फोटोग्राफी से काम लेने लगे हैं। ये लोग या तो डायरियां रखते ही नहीं, और यदि रखते भी हैं तो उन पर दोस्तों के पते नहीं लिखते। अत्यन्त त्रास दिये जाने पर भी ये अपने सहयोगियों का नाम-धाम नहीं बताते। गुप्त रूप से राजनीतिक कार्य करनेवालों के ये तरीके जेन बी० जैन्सेन तथा स्टीफन वेयल ने अपने एक लेख में बताये हैं, जो 'अटलांटिक मंथली' में प्रकाशित हुआ था। इन तरीकों से कांग्रेस के तरीके कितने भिन्न हैं। कांग्रेस ने 'गुप्त कार्रवाई' की निन्दा की है और इस तरह ऊपर बताये सभी तरीकों को छोड़ने की सलाह दी है।

अधिकांश दमन गुप्त संगठन के प्रकट होने के कारण हुआ। यह संगठन कांग्रेस की स्पष्ट घोषणा के बावजूद अपने क्रान्तिकारी तथा विनाशक कार्य करता रहा। इस संगठन के अस्तित्व से इन्कार नहीं किया जा सकता। इन्कार सिर्फ इसी से किया जा सकता है कि इस संगठन का सम्बन्ध कांग्रेसी संगठन से था। वस्तुस्थिति तो यह थी, जैसा कि गांधीजी ने अपनी गिरफ्तारी के बाद वाइसराय के नाम लिखे अपने पत्र में कहा था, कि कांग्रेसी नेताओं की गिरफ्तारी से लोगों में इतनी नाराजी फैली कि संयम उनके हाथ से जाता रहा। सरकार की हिंसा से लोगों के धैर्य का अंत हो गया। सिर्फ इतना ही न था। ऐसे दल व व्यक्ति भी थे जिन्होंने बाद में युद्ध-प्रयत्नों के प्रति चाहे सहयोग न किया हो; किन्तु उन्हें अहिंसा में विश्वास न था और उन्होंने देखा कि गांधीजी की गिरफ्तारी से उन पर जो प्रतिबंध था वह नहीं रहा तो अपने विचार और विश्वास के अनुसार ही उन्होंने कार्य आरम्भ कर दिया। उन्हें रोकने के लिए कांग्रेस नहीं थी। ये लोग गुप्त रूप से कार्य करने लगे और उनकी गिरफ्तारी कराने या गिरफ्तारी के लिए सूचना देने के लिए भारी-भारी इनामों की घोषणा की गयी। सरकार सैकड़ों व्यक्तियों की तलाश में थी, किन्तु उनका कुछ भी पता न चल सका। ये लोग गुप्त रूप से अपने संवादपत्र या पर्चे निकाल रहे थे, क्योंकि गुप्त सम्वादपत्र या पर्चे गुप्त संगठनों के लिए आवश्यक होते हैं। जबतक किसी आन्दोलन में अहिंसा की प्रधानता रहती है तभी तक उसमें मौलिकता भी होती है और जहां अहिंसा का त्याग किया गया वहीं वह यूरोपीय देशों के गुप्त संगठनों की नकल बन जाता है। इस सम्बन्ध में 'न्यू स्टेटस्मैन' (१३ जून, १९४२) में लिखे गये अन्ना जाजूच कोवस्का के लेख का निम्न अंश उल्लेखनीय है—

"जर्मन-अधिकृत देशों के गुप्त आंदोलनों से इन देशों में स्वाधीनता-संग्राम को प्रगति मिली। श्री एच० जी० वेल्स ब्रिटेन में श्री चर्चिल के प्रधानमंत्रित्व को समाप्त कर देने की सलाह देते हुए कहते हैं कि अब यूरोप के विभिन्न राजे उन गुप्त आंदोलनों का समर्थन करने लगे हैं, जिन्होंने महान् संकट के समय माननीय स्वाधीनता की रक्षा की थी।"

पोलैंड की गुप्त सेना सुसंगठित थी और देश भर में फैली हुई थी। उसमें कड़ा अनुशासन था और उसे हथियार भी काफी मात्रा में प्राप्त हो जाते थे। इसके सम्बन्ध में 'टाइम एंड टाइड' ने २७ नवम्बर, १९४३ को अपने एक अग्रलेख में लिखा था, "इसे बड़े पैमाने पर नहीं, किन्तु गुप्त रूप से युद्ध के लिए तैयारी करनी पड़ती है। उसे देश पर अधिकार करनेवाली विदेशी

सेना से लड़ना है। यहां तक कि इस सेना में स्त्रियां भी हैं जो इसके संघर्षों में बहादुरी से हिस्सा बँटाती हैं। गुप्त सेना के कार्य मित्रराष्ट्रीय सेनाओं की रणनीति के अंग होते हैं।"

ऐसे मामले भी देखने में आये हैं, जिनमें 'फरार' व्यक्ति अथवा ऐसे व्यक्ति, जिनके लिए इनामों की घोषणा की गयी है, जेलों अथवा हिरासत से भागे हैं। इस सन्देह के कारण कि गांववाले ऐसे लोगों को छिपाये हुए हैं या पुलिस को उनकी तलाश में सहयोग नहीं प्रदान करते, बिहार में नये आर्डिनेंस निकालने पड़े। इनके अनुसार संदिग्ध गांवों का घेरा डाल दिया गया और घोषणा करदी गयी कि गांव के बाहर जानेवाले व्यक्ति को गोली मारी जा सकती है। इस प्रकार गांवों में घर-घर की तलाशी ली जाती है।

क्या वंदेमातरम् राजविद्रोहात्मक गायन है? क्या इससे भारत-रक्षा विधान का कोई नियम भंग होता है? इससे जनता को मातृभूमि की रक्षा के लिए कार्य करने को प्रोत्साहन मिलता है या उससे 'पंचम सेना' सम्बन्धी कार्यों के लिए उत्तेजन मिलता है?

यह प्रश्न फिल्म सेंसर बोर्ड, बम्बई-द्वारा मराठी चित्र 'मेरा बच्चा' से 'वंदेमातरम्' गायन को काट देने के सम्बन्ध में उठता है।

इधर कुछ समय से सेंसर बोर्ड की कैंची तेजी से काम कर रही थी।

हिन्दी फिल्म 'राजा' में गांधीजी व उनके आदर्शों के बारे में जो कुछ भी था, उसे निकाल दिया गया।

तब क्या फिल्म सेंसर बोर्ड राजनीतिक सेंसर का साधन बन गया है?

इसके विपरीत 'ह्वाइट कार्गो' जैसे अमरीकी चित्र को पास कर दिया गया। हमने उस चित्र को देखा नहीं है; किन्तु अमरीकी पत्रों को देखने से प्रकट हुआ है कि उसमें रंगीन जातियों को अपमानित किया गया है और भारतीय स्त्रियों का उल्लेख बड़े लांछित शब्दों में किया गया है। एक जगह कहा गया है कि वे सिर्फ 'चूड़ियों व साड़ियों' के लिए ही विवाह करती हैं।

कुछ छोड़े गये कांग्रेसजनों पर लगाये गये प्रतिबंधों को यदि ध्यान से देखा जाय तो प्रकट होगा कि प्रतिबंध लगानेवालों में विनोद-भावना की कमी नहीं है। यदि नौकरशाही जीवन में कठिनाइयां उत्पन्न कर देती है तो कभी-कभी वह उसे मनोरंजक भी बना देती है। जरा 'सर्वेन्ट्स आफ़ दि पीपुल सोसाइटी' के लाला मोहनलाल शाह के मामले पर विचार कीजिये। वे रावी रोड पर रावी नदी तक जा सकते हैं; परन्तु मालरोड पर डाकखाने से आगे नहीं जा सकते। एक बार मालरोड पर जाते समय इस स्थल पर पहुँचने पर उन्होंने मित्रों से बिदा मांगकर उन्हें आश्चर्य में डाल दिया; क्योंकि इसके आगे वे जा ही न सकते थे। लाला मोहन-लाल पिछले द्वार से हाईकोर्ट में प्रवेश कर सकते थे; किन्तु सामनेवाले द्वार से नहीं। परन्तु होईकोर्ट के अहाते में आकर्षण न होने के कारण यदि उसका पिछला द्वार भी बन्द कर दिया जाय तो उन्हें कुछ भी आश्चर्य न होता। परन्तु मैक्लियोड रोड के दाहिनी तरफ न जाने दिया जाय तो इसे ज़रूर महसूस करेंगे; क्योंकि इस सड़क पर कितने ही सिनेमाघर हैं। वे मालरोड से मैक्लियोड रोड पर घूमकर लक्ष्मी बीमा कम्पनी की इमारत तक जा सकते हैं; किन्तु उससे आगे बढ़ने पर उनकी मुसीबत हो जायगी। वे रिट्ज़ में 'रामशास्त्री' देख सकते हैं; किन्तु कई सौ गज़ आगे रीजेन्ट में 'शकुन्तला' नहीं देख सकते। यह कोई न कहेगा कि 'शकुन्तला' देखे बिना लाला मोहनलाल का जीवन व्यर्थ हो जायगा। प्रतिबन्ध के कारण उनकी जो हानि हुई है उसकी पूर्ति एक सीमा तक प्रतिबन्ध के कारण होनेवाले विनोद से हो जाती है।

स्वाधीनता-संग्राम में जिन सैकड़ों देशभक्तों का स्वास्थ्य नष्ट हो गया और जिन सहस्रों को जेलों में कष्ट उठाना पड़ा उनके मुकाबले में कम-से-कम दसियों ऐसे देशभक्त थे, जिन्होंने मातृभूमि की सेवा में अपने प्राणों की ही बलि चढ़ा दी। कुछ प्रमुख उदाहरण नीचे दिये जाते हैं :—

पूना में नज़रबन्दी की हालत में श्री महादेव देसाई की हृदय की गति रुकने से अचानक मृत्यु हो गयी। अन्त्येष्ठि क्रिया के समय महात्मा गांधी स्वयं उपस्थित थे।

बम्बई-सरकार ने निम्न विज्ञप्ति प्रकाशित की :—

"बम्बई-सरकार को यह संवाद देते हुये दुःख होता है कि श्री महादेव देसाई की १५ अगस्त, १९४२ को प्रातःकाल ८ बजकर ४० मिनट पर मृत्यु हो गई। श्री देसाई भारत-रक्षा विधान के अन्तर्गत नज़रबन्द थे।

"श्री देसाई जेलों के इन्सपेक्टर-जनरल कर्नल भंडारी आई० एम० एस० तथा अपने दो कैदी-साथियों के साथ बात-चीत कर रहे थे कि उन्होंने बेहोशी आने की बात कही। कर्नल-भंडारी ने उन्हें लेट जाने को कहा। देखने से प्रकट हुआ कि उनकी नब्ज़ धीमी पड़ गई और शरीर भी ठंडा हो गया है। डाक्टर सुशीला नायर को, जो उसी इमारत में नजरबन्द थीं, बुलाया गया और वे तुरन्त आ भी पहुँचीं। चूँकि सिविल सर्जन मिल न सके इसलिए एक और आई० एम० एस० अफसर को बुलाया गया।

"हृदय की गति को ठीक करने के लिए इंजेक्शन दिये गये और श्री देसाई की ताक़त को कायम रखने के लिए जो-कुछ सम्भव था किया गया। लेकिन तबीयत खराब होने के २० मिनट के भीतर ही दिल की धड़कन बन्द होने के कारण उनकी मृत्यु हो गई।

"श्री महादेव देसाई जिस जगह नज़रबन्द थे, उसके पास ही उनकी अन्त्येष्ठि क्रिया की गई। इस सम्बन्ध में प्रबन्ध गांधीजी की इच्छानुसार किया गया जो इस अवसर पर उपस्थित भी थे।"

सैयद अब्दुल्ला ब्रेलवी ने 'बाम्बे क्रॉनिकल' में श्री देसाई का निम्न परिचय प्रकाशित किया था :—

"महादेव देसाई का जन्म लगभग ५० वर्ष पहिले सूरत जिले के ओलपद ताल्लुका के एक गांव में हुआ था। एलिंफिस्टन कालेज के ग्रेजुएट होने के बाद वे बम्बई-सरकार के ओरियण्टल ट्रांसलेटर के दफ्तर में नौकर हुए। बम्बई सेक्रेटरियेट में काम करते समय आप कानून की कक्षाओं में जाते थे और इस तरह आपने एल० एल० बी० परीक्षा पास की। सरकारी नौकरी छोड़ने के बाद आपने अहमदाबाद में दो या तीन वर्ष वकील के रूप में 'प्रैक्टिस' भी की। कानूनी पेशा अपनी प्रकृति के अनुकूल न पाकर वे बाम्बे प्राविंशियल को-आपरेटिव बैंक में को-आपरेटिव सोसा-इटियों के इंस्पेक्टर के रूप में काम करने लगे। इस काम के सिलसिले में श्री देसाई प्रान्त के कितने ही हिस्सों और खास कर गुजरात के किसानों के सम्पर्क में आये और जबकि १९१६ के लगभग आप यह काम कर ही रहे थे गांधीजी की नजर उन पर पड़ी और श्री देसाई भी गांधीजी की ओर आकर्षित हुए। कुछ ही दिनों में आप साबरमती आश्रम में रहने लगे। श्री देसाई आश्रम के सर्व-प्रथम निवासियों में थे। आपने गांधीजी के प्राइवेट सेक्रेटरी के रूप में काम आरम्भ किया और इसी पद पर काम करते हुए आपकी मृत्यु हो गयी। आपने अपना पत्रकारी जीवन 'यंग इण्डिया' तथा 'नवजीवन' के सहकारी सम्पादक के रूप में आरम्भ किया। १९२० में आप 'इण्डिपेंडेंट' का

सम्पादन करने के लिए इलाहाबाद गये; किन्तु शीघ्र ही आपको जेल में डाल दिया गया। १९३० और १९३२ में उन्हें फिर सजा हुई। जब महात्मा गांधी ने यरवड़ा जेल में अपना ऐतिहासिक अनशन किया उस समय आप उनके साथ ही थे।

"१९३१ में जब गांधीजी गोलमेज़ कांफ्रेंस में भाग लेने के लिए इंग्लैण्ड गये थे उस समय श्री देसाई भी उनके साथ थे। पिछले २५ वर्ष में महादेव देसाई गांधीजी के जितने निकट-सम्पर्क में रहे थे उतना और कोई भी व्यक्ति नहीं रहा था। आम यात्राओं के समय भी वे लगातार गांधीजी के साथ रहते थे। गांधीजी हर तरह के स्त्री-पुरुषों से बातचीत करते थे और श्री देसाई इस बातचीत के नोट ले लिया करते थे। गांधीजी सार्वजनिक या गैर-सार्वजनिक सभाओं में जो भाषण दिया करते थे श्री देसाई उनके भी अक्षरशः नोट लिया करते थे। गांधीजी के प्राइवेट सेक्रेटरी के रूप में वही उनके असंख्य पत्रों के उत्तर दिया करते थे। ऐसा शायद ही कोई सार्वजनिक या निजी सम्मेलन हो, जिसमें गांधीजी ने भाग लिया हो और महादेव उपस्थित न हुए हों। पिछले कुछ वर्षों से प्राइवेट सेक्रेटरी के रूप में उसके कार्य में श्री प्यारेलाल तथा अन्य लोग हाथ बँटाते रहे हैं। गांधीजी के सिद्धांतों को जितना महादेव हृदयंगम कर सके और जितनी पूर्णता से उनके विश्वास-भाजन बन सके उतने और कोई नहीं। गांधीजी को अपने सिद्धांतों के प्रतिपादक के रूप में महादेव में जो विश्वास था उसके प्रतीक के रूप में महात्मा जी ने उन्हें 'हरिजन' का सम्पादक भी नियुक्त किया था। गांधीजी के प्रति उनकी भक्ति जितनी स्वार्थहीन तथा मर्मस्पर्शी थी उतनी ही वह अटल तथा गहरी भी थी। गांधीजी के लिए महादेव एक शिष्य—एक पुत्र से भी अधिक थे। गांधीजी को महादेव के निधन से जो सदमा पहुँचा, उसे साधारण व्यक्ति अनुभव नहीं कर सकता। महादेव के परिवार में उनकी पत्नी हैं और एक पुत्र। उनके गहन शोक में समस्त देश हिस्सा बँटाता है।

"इन पंक्तियों के लेखक की तरह अन्य कितने ही व्यक्तियों ने महादेव के रूप में अपना एक प्रिय मित्र खोया है। कालेज में स्वर्गीय कन्हैयालाल एच० वकील, महादेव, वैकुण्ठ लल्लूभाई मेहता तथा लेखक निरन्तर साथ रहे थे। यह मैत्री दिनों-दिन बढ़ती ही रही।

"महादेव को साहित्य से प्रेम था। वे बड़ी प्रभावयुक्त व सुन्दर भाषा लिखते थे। वे कई ग्रन्थ लिख चुके थे, जिनमें सबसे अन्तिम मौलाना अबुल कलाम आज़ाद के जीवन के सम्बन्ध में था।"

महादेव देसाई की मृत्यु के सम्बन्ध में महात्मा गांधी ने सेवाग्राम आश्रम को निम्न तार दिया था:—

"महादेव की अचानक मृत्यु हो गयी। पहले से कुछ भी जान न पड़ा। कल रात को अच्छी तरह सोये। नाश्ता किया। मेरे साथ सैर की। सुशीला (डा० नायर) तथा जेल के डाक्टरों ने जो भी सम्भव था किया; किन्तु परमात्मा की इच्छा कुछ और ही थी।

"धूप-बत्ती जल रही थी। सुशीला व मैंने शांति से पड़े शरीर को नहलाया। सुशीला व मैंने गीता का पाठ किया। दुर्गा (महादेव देसाई की पत्नी), बावला (उनके लड़के) व सुशीला (उनकी भतीजी) से कह देना। शोक की इजाज़त नहीं है।

"अन्त्येष्टि मेरे सामने हो रही है। भस्म रख लेंगे। दुर्गा से कहना कि आश्रम में रहे और ज़रूरी हो तो अपने परिवारवालों के पास चली जाय। आशा है बावला धीरज से काम लेगा। प्यार। बापू।"

सरोजिनीदेवी कहती हैं, 'महात्मा गांधी के सम्बन्ध में एक सबसे मर्मस्पर्शी स्मृति श्री महादेव देसाई की अन्त्येष्टि के सम्बन्ध में है।

'गांधीजी ने कांपते हाथों से शव को खुद ही स्नान कराया। करीब एक घण्टे तक आपने शव में चन्दन लगाया। अपने ही हाथों से उन्होंने चिता को आग दी और तीसरे दिन गांधीजी ने ही अन्तिम कर्म किया।

"महादेव के प्राण निकलते ही गांधीजी को इमारत के दूसरे कोने से बुलाया गया था। वे आये और उन्होंने पुकारा 'महादेव, महादेव', पर उत्तर कुछ न मिला। कस्तूरबा ने कहा, 'महादेव, तुम बोलते क्यों नहीं। बापू बुला रहे हैं!'

"पर सब खत्म हो चुका था। प्रिय शिष्य की आत्मा गुरु की आवाज़ के परे पहुँच चुकी थी।"

१९४५ में महादेव देसाई के सम्मान में स्मारक खड़ा करने और इस सम्बन्ध में ५२ लाख रुपये एकत्र करने का निश्चय किया गया। महादेव की दूसरी वर्षी के समय गांधीजी ने निम्न वक्तव्य प्रकाशित किया:—

"महादेव की स्मृति में जो सबसे बड़ा कार्य मैं कर सकता हूँ वह यही है कि जो काम महादेव अधूरा छोड़ गये हैं उसे पूरा करूं और अपने को महादेव की भक्ति का पात्र बनाऊं। यह सिर्फ स्मारक-कोष एकत्र करने की अपेक्षा कहीं कठिन कार्य है और भगवान की कृपा के बिना असम्भव है।

"१५ अगस्त को महादेव देसाई की दूसरी वर्षी है। दो या तीन पत्र-प्रेषकों ने मुझे हलकी फटकार भी बतायी है। उनकी बातों का संक्षेप इस प्रकार है:—

"आप कस्तूर बा स्मारक-कोष के अध्यक्ष बने हैं। महादेव ने आपके लिए अपना सभी-कुछ छोड़ा और यहां तक कि आप ही के लिए अपने जीवन का भी बलिदान किया। वे कस्तूरबा की अपेक्षा बहुत कम उम्र में मरे; किन्तु इस अल्पकाल ही में उन्होंने कितनी सफलता प्राप्त की। कस्तूरबा एक सती थीं। परन्तु जहां भारत कितनी ही सतियों को जन्म दे चुका है, उसने महादेव सिर्फ एक ही पैदा किया। यदि वे आपके साथ न होते तो शायद आज जीवित होते। अपनी योग्यता के कारण वे साहित्यिक या सेवक के रूप में ख्याति प्राप्त कर सकते। वे अमीर होते, अपने परिवार को आराम से रखते और अपने पुत्र को उच्च शिक्षा दिलाते। आप उन्हें एक पुत्र की तरह मानते थे। क्या हम पूछ सकते हैं कि आपने उनके लिए क्या किया?

"ये विचार उठने स्वाभाविक हैं। दोनों का भेद इतना उल्लेखनीय है कि उससे आंखें नहीं मूंदी जा सकतीं। साधारण रूप से महादेव का जीवन अभी शेष था। उनका ध्येय १०० वर्ष तक जीने का था। वे अपनी भारी नोटबुकों में जो सामग्री छोड़ गये हैं उसे तैयार करने में ही वर्षों लग जायँगे। उन्हें यह सब करने की आशा थी। वे उन बुद्धिमान व्यक्तियों के उदाहरण थे, जो इस भांति काम करते हैं जैसे उन्हें अनन्त काल तक जीवित रहना हो।

"महादेव के प्रशंसकों को मैं सिर्फ यही तसल्ली दे सकता हूं कि मेरे सम्पर्क में आने से उनकी कोई हानि नहीं हुई। उनके स्वप्न विद्वत्ता या विद्या से परे थे। उन्हें धन के प्रति भी मोह न था। परमात्मा ने उन्हें मेधावी मस्तिष्क तथा बहुमुखी रुचि प्रदान की थी। परन्तु उनकी आत्मा में भक्ति की भूख थी।

"महादेव का बाह्य लक्ष्य स्वराज्य की प्राप्ति था; किन्तु अपने अन्तर में वे भक्ति के आदर्श में

पूरा उतरना, और सम्भव हो तो उसमें दूसरों को हिस्सेदार बनाना चाहते थे। मृतक की स्मृति में कोई पार्थिव स्मारक बनाना मेरे क्षेत्र के बाहर की बात है। यह कार्य उनके मित्रों तथा प्रशंसकों का है। क्या कभी कोई पिता अपने पुत्र के स्मारक की बात उठाता है। कस्तूरबा स्मारक की बात मैंने नहीं उठायी थी। यदि महादेव के मित्र या प्रशंसक उनके लिए कोई स्मारक-कोष खोलें और मुझसे उसका अध्यक्ष होने को कहें, ताकि मैं कोष के उपयोग के विषय में मार्ग-प्रदर्शन कर सकूं, तो मैं प्रसन्नतापूर्वक ऐसी स्थिति स्वीकार कर लूंगा।

"कोष एकत्र करना अच्छा व आवश्यक है। परन्तु महादेव के रचनात्मक कार्य का सच्चे दिल से अनुकरण करना और भी अच्छा है। पर ठोस काम करने का स्थान कोष में अच्छी-सी रकम देना नहीं ले सकता।"

कांग्रेस की दूसरी हानि मौ० अबुल कलाम आजाद की पत्नी बेगम जुलेखा खातून की मृत्यु थी। जिन दिनों मौ० साहब की बम्बई में गिरफ्तारी हुई थी उन दिनों भी बेगम साहिबा का स्वास्थ्य ठीक न था। मौलाना साहब उनकी लम्बी बीमारी का दुःख धैर्य व साहस के साथ बर्दाश्त कर रहे थे। बेगम की बीमारी के आखिरी दिनों में जब यह खबर जेल में मिलती थी तो बड़ा दुःख होता था। उनकी उम्र ४५ वर्ष की थी और वे दो साल से बीमार थीं। मौलाना मैंफ-सिद्दीक लिखते हैं:—

"मौलाना अबुल कलाम आजाद को पत्नी बेगम जुलेखा खातून का विवाह भारत के इस सुपुत्र से बहुत थोड़ी उम्र में हुआ था। वे प्रायः जीवन के आरम्भ से ही मौलाना के साथ सच्ची पतिव्रता के रूप में रही थीं।

"उनके पति क्रान्तिकारी मनोवृत्ति तथा राजनीतिक झुकाव के कारण जीवन भर आग से खेलते तथा अनेक कष्ट व यातनाएं सहते रहे। अपने पति की मुसीबतों का उन पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ा; किन्तु यह परेशानी उन्होंने धैर्य के साथ सही, जैसाकि अक्सर स्त्रियां सहती भी हैं। उनका जीवन आराम का जीवन न था। वे अमीर घराने में उत्पन्न हुई थीं और गोकि उनके पति देश के एक प्रमुख तथा नामी नेता थे, पर वे गरीबी और कठिनाइयों से जूझती हुई मरीं।

"गुरुवार, ८ अप्रैल को डा० मजूमदार ने उनकी आशा छोड़ दी और बड़े गम्भीर होकर बीमार के कमरे से बाहर निकले। डाक्टर ने कहा कि अगर मौ० साहब आ जायँ तो वे इस संकट से सफलतापूर्वक गुजर सकती हैं। रात के ११बजे एकाएक उनके जिस्म में कुछ ताकत आयी और उन्होंने कहा कि उन्हें सहारे से बैठा दिया जाय। उन्हें बैठा दिया गया और तब वे परिवार के हरेक व्यक्ति व नौकर से बातचीत करने लगीं और बीमारी के कारण सबको जो तकलीफ उठानी पड़ी उसके लिए माफी मांगी। सब लोग यह देखकर खुश हुए कि उनमें शक्ति आ रही है और हालत भी सुधर रही है।

"दरवाजे की तरफ देखते हुए उन्होंने पूछा कि मौलाना साहब आये या नहीं? यह मालूम होने पर कि वे नहीं आये, वे आंखें बन्द कर चुपचाप बैठ गईं। उन्होंने नौकरों को इनाम देने और कुरान पढ़े जाने को कहा। कुरान शुक्रवार के सुबह ६ बजे तक पढ़ा जाता रहा, जब आपकी मृत्यु हो गई।"

कलकत्ता के मोहम्मद अली पार्क में कांग्रेस के अध्यक्ष मौ० अबुलकलाम आजाद की पत्नी की मृत्यु पर शोक मनाने के लिए एक भारी सभा हुई। सभा में भाषण करते हुए बंगाल असेम्बली के अध्यक्ष माननीय सैयद नौशेरअली ने सभापति के पद से भाषण करते हुए कहा कि बेगम

की मृत्यु जिन परिस्थितियों में हुई उसकी याद भारतवासियों को कई पीढ़ी तक रहेगी।

सभा में प्रान्त के सभी दलों के हिन्दू व मुस्लिम प्रतिनिधियों ने बेगम साहिबा की मृत्यु पर शोक व मौलाना साहब के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए एक प्रस्ताव पास किया।

कांग्रेस के अध्यक्ष मौलाना आजाद को एक और शोक बर्दाश्त करना पड़ा। ३० दिसम्बर, १९४३ को भोपाल में मौलाना साहब की बहन अब्रू बेगम की मृत्यु लम्बी बीमारी के बाद हो गई।

अंतिम क्रिया के समय भोपाल की बेगम तथा रियासत के प्रमुख व्यक्ति उपस्थित थे। वे भोपाल में ही रहती थीं और भोपाल की महिला-समाज की प्रसिद्ध कार्यकर्त्री भी थीं। अखिल भारतीय महिला सम्मेलन में भी वे कितनी ही बार भोपाल की नारियों का प्रतिनिधित्व कर चुकी थीं। आप कई वर्ष तक भोपाल महिला क्लब की मंत्रिणी भी रही थीं तथा विदेशों में लड़नेवाले भारतीय सैनिकों की सुख-सुविधा के लिए भी कार्य करती थीं।

२८ मार्च, १९४३ को श्री एस० सत्यमूर्ति की मृत्यु हुई। अगस्त, १९४२ में बम्बई से से वापसी यात्रा में घर पहुंचने से पहले ही उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। उन्हें गिरफ्तारी के बाद बदलकर जो अमरावती भेजा गया, मृत्यु उसी के कारण हुई।

इस मित्र की मृत्यु पर विश्वास करना कठिन है। श्री सत्यमूर्ति को देखने से ऐसा लगता था, जैसे वे कभी वृद्ध हो न होंगे। भाषण की ओजस्विता, दिल का जोशीलापन, गम्भीर विचार-शीलता, जैसा विचार हो वही कहने का साहस और सच्ची लगन सत्यमूर्ति के ऐसे गुण थे, जो उनका चित्र हमारे सामने लाकर उपस्थित कर देते हैं और इनके कारण श्री सत्यमूर्ति के कितने ही मित्रों का यह मानने को जी नहीं चाहता कि वे आज हमारे बीच में नहीं हैं।

श्री सत्यमूर्ति केवल दक्षिण के ही नहीं, बल्कि सारे हिन्दुस्तान के एक सबसे प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता थे। आपका जन्म १९ अगस्त, १८८९ को हुआ और महाराज कालेज पद्दूकोटा, तथा मद्रास के क्रिश्चियन कॉलेज, ला-कॉलेज में शिक्षा पाई। आप मद्रास हाईकोर्ट के एडवोकेट थे और भारत के फेडरल कोर्ट के भी सीनियर एडवोकेट थे। १९१४-१८ के प्रथम विश्व-युद्ध के समय होमरूल आन्दोलन के जमाने में आप पहले-पहल जनता के सामने आये। १९२३ से से १९३० तक आप मद्रास लेजिस्लेटिव कौंसिल के और १९३५ से भारतीय असेम्बली के सदस्य रहे। १९४१ में आप मद्रास-कार्पोरेशन के मेयर भी निर्वाचित हुए। १९१९ में आप कांग्रेस डेपुटेशन के सदस्य के रूप में और १९२५ में दूसरी बार स्वराज्य दल की तरफ से इंग्लैण्ड गए। आप मद्रास यूनिवर्सिटी की सिनेट के भी सदस्य थे। आप साउथ इण्डियन फिल्म चेम्बर आफ कामर्स तथा इण्डियन मोशन पिक्चर कांग्रेस के अध्यक्ष रह चुके थे। आप असेम्बली की कांग्रेस पार्टी के पहले मन्त्री तथा बाद में उप-नेता निर्वाचित हुए थे और तामिलनाड कांग्रेस कमेटी के मन्त्री और बाद में अध्यक्ष भी रहे थे। आप १९३१, १९३३, १९४१ और फिर १९४२ में चार बार जेल गये। हर बार जेल में उनकी सेहत बिगड़ी। १९४१ में बीमारी के कारण उन्हें जेल से रिहा कर दिया गया। श्री सत्यमूर्ति पार्लामेण्टरी कार्य के जोरदार समर्थक थे और कई बार कांग्रेसजन के कौंसिल-प्रवेश आन्दोलन में प्रमुख रूप से भाग ले चुके थे। आपके भाषण बड़े ओजस्वी तथा निडरतापूर्ण होते थे और असेम्बली की कांग्रेस-पार्टी के उप-नेता के रूप में आम बहसों में आप प्रमुख भाग लिया करते थे और सरकारी अधिकारी आपके भाषणों को बड़े सम्मान व भय के साथ सुना करते थे।

भारतीय राजनीति में स्वाधीनता के पुजारियों को भारी संख्या में अपने प्राणों की भेंट चढ़ानी पड़ी है और जीवित रहने की अवस्था में भी उन्हें त्याग कम नहीं करने पड़े हैं। साधारण रूप से राजनीति अमीर आदमियों के अथवा उन आदमियों के, जो आवश्यक मात्रा में धन प्राप्त कर सकते हैं, विनोद की वस्तु है। ऐसे व्यक्ति के लिए, जो इनमें से किसी श्रेणी में नहीं आता, राजनीति बड़ी खतरनाक व परेशानी में डालनेवाली चीज़ है। फिर भी पिछले २५ वर्ष में हजारों नवयुवकों ने अपने परिवारों, अपने स्वार्थों, अपने स्वास्थ्य और अपनी आकांक्षाओं का बलिदान किया है और कितने ही मृत्यु के मुंह में पहुँचने से बचे हैं। सत्यमूर्ति ऐसे व्यक्तियों में थे, जो किसी प्रान्त या विभाग के मन्त्री के रूप में देश की सेवा करके प्रसन्न होते। परन्तु भाग्य का विधान कुछ और ही था। आगामी वर्षों में दसियों क्या सैकड़ों मन्त्री आयेंगे और चले जायँगे; किन्तु इतिहास में वीरों व शहीदों की सूची में, जिन लोगों का नाम अमिट अक्षरों में अंकित रहेगा वे ऐसे लोग होंगे जिन्होंने जनता के भले के लिए सचाई के साथ प्रयत्न किया। इन लोगों ने अपने स्वार्थ को भूल कर उन परेशानियों तथा अभाव को राष्ट्र का निर्माण करनेवाली शक्तियों के रूप में समझा। श्री सत्यमूर्ति की मृत्यु के सम्बन्ध में एक उल्लेखनीय बात यह है कि उन्हें नागपुर से अमरावती तक ६० मील तक ले जाया गया और अगस्त के गर्म महीने में एक गिलास जल तक पीने को नहीं दिया। उनके पैर में लकवा मार गया और अन्त में उनकी मृत्यु हो गयी।

श्रीमती कस्तूरबा गांधी की मृत्यु २२ फरवरी, १६४४ को आगाखां राजमहल में सायंकाल ७॥ बजे बड़ी शांति से हुई। मृत्यु के समय उनके सबसे छोटे बेटे देवदास, उनके जीवन-संगी महात्माजी, कितने ही पारिवारिक मित्र व भक्त उपस्थित थे। कस्तूरबा के भक्त देश भर में फैले हुए थे और उन्हें प्रेम से 'बा' कहा करते थे। नजरबन्दी की हालत में लगे हुए प्रतिबन्ध के बावजूद आगाखां राजमहल में होनेवाली इस दूसरी अन्त्येष्टि-क्रिया के अवसर पर कुल १०० के लगभग व्यक्ति उपस्थित थे। पहली अन्त्येष्टि-क्रिया १८ महीने पूर्व स्वर्गीय महादेव देसाई की हुई थी। महादेव की तरह बा की मृत्यु अचानक या असामयिक न थी। वे वृद्धा थीं और देश की सेवा भी काफी कर चुकी थीं। वे दसियों वर्ष तक अपने चरणों में राष्ट्र के प्रेम व श्रद्धांजलि को पा चुकी थीं।

कस्तूरबा अपने पति से सिर्फ कुछ ही महीने छोटी थी। दोनों ने जीवन-यात्रा लगभग एक साथ आरम्भ की और आधे से अधिक जीवन तक पूर्ण ब्रह्मचर्य का निर्वाह किया। पुत्र, पौत्र, आश्रम के निवासी तथा देश के करोड़ों नर-नारी ही उनके प्रेम-बन्धन थे और देश व समाज की सेवा में लगे हुए इस दम्पत्ति को जीवन के संयुक्त कार्यक्रम व प्रयत्नों के लिए इसी बन्धन से प्रेरणा मिलती थी। गांधीजी को जीवन में जो इज्जत प्राप्त हुई थी उसी में नहीं, बल्कि राष्ट्र के प्रेम और त्याग व तपश्चर्यापूर्ण जीवन में भी कस्तूरबा अपने पति की सच्ची हिस्सेदार बनी थीं। आश्रम में जिन आदर्शों को स्वीकार किया गया था उन पर चलने में गांधीजी ने उनके साथ कोई रिआयत नहीं की। गांधीजी ने अपने जीवन का आधारभूत सिद्धांत अपरिग्रह बना रखा था और उस पर कड़ाई से अमल कराने में थोड़ी भी भूल-चूक बर्दाश्त नहीं करते थे। एक बार एक भेद प्रकट करके गांधीजी ने मानों बा को सूली पर ही लटका दिया था, किन्तु बा ने इस अवसर पर मर्यादा, मौन तथा विनय के उन सहज गुणों का परिचय दिया, जो युग-युग से भारतीय नारी के आभूषण रहे हैं, और वे उसी आदर्श

पर चलीं, जिसमें समानता व स्वाधीनता के स्थान पर पति में अपने अस्तित्व को विलीन कर देने की भावना रहती है। यज्ञ करने, संन्यासी का जीवन व्यतीत करने तथा जेल जाने में बा ने गांधीजी का अनुसरण किया—क्यों या कैसे का सवाल कभी नहीं उठाया और करने व मरने को सदा तैयार रहीं—और मरीं भी जेल में अपने पति की बाहों में। उस दिन शिवरात्रि थी और सूर्य उत्तरायण में थे। ऐसे समय देह छोड़ने का अवसर भी बिरली स्त्री को ही मिलता है। कस्तूरबा के सम्मान में राज-परिषद् का कार्य आध घण्टे के लिए और सिन्ध असेम्बली का कार्य १५ मिनट के लिए रोक दिया गया। बम्बई कार्पोरेशन तथा अन्य कितनी ही संस्थाओं ने शोक के प्रस्ताव पास किये और बा के सम्मान में कार्य स्थगित किया। कस्तूरबा स्मारक के लिए ७५ लाख रुपये मांगे गये थे; किन्तु एकत्र १२० लाख रुपये हुए, जो भारत के इतिहास में एक अपूर्व घटना थी।

श्रीमती कस्तूरबा की बीमारी के समय गांधीजी को सरकार के आचरण से बड़ा दुःख हुआ। डा० जीवराज मेहता जैसे डाक्टर जब श्रीमती कस्तूरबा को देखने आते थे तो गांधीजी से बात नहीं कर पाते थे। देखनेवाले डाक्टर आगाखां राजमहल में रह नहीं पाते थे, बल्कि वे महल के बाहर अपनी मोटर में रात गुजारते थे ताकि ज़रूरत पड़ने पर उन्हें तुरन्त बुलाया जा सके। गांधीजी को इससे इतना मानसिक कष्ट हुआ कि उन्होने सरकार से कहा कि या तो कस्तूरबा को पैरोल पर छोड़ दिया जाय और या उन्हें ही इस जगह से कहीं अन्यत्र बदल दिया जाय।

ऐसी हालत में हमें बतलाया गया और सर गिरजाशंकर बाजपेयी द्वारा अमरीकी जनता को सूचित किया गया कि "सरकार ने अनेक अवसरों पर स्वास्थ्य के कारणों से कस्तूरबा को छोड़ने के प्रश्न पर विचार किया था, किन्तु वे अपने पति के पास ही रहना चाहती थीं और उनकी इस इच्छा की कद्र की गयी। इसके अलावा वहां रहने पर उन्हें एक प्रसिद्ध डाक्टर की देख-रेख की सुविधा प्राप्त थी, जो वहीं रहते थे।" आश्चर्य तो यह है कि सत्य की जितनी हत्या इस कथन से की गयी उतनी और किसी से नहीं। भारत में सरकार की तरफ से सिर्फ यही कहा गया कि यदि उससे रिहाई के बारे में सलाह ली जाती तो वे वहीं रहना चाहतीं। सर गिरजाशंकर बाजपेयी ने मैक्सवेल को भी मात कर दिया और इस प्रकार भारतीय अधिकारी-वर्ग को सदा के लिए कलंकित किया।

कस्तूरबा की मृत्यु के सम्बन्ध में प्रकट किए गये शोक के सम्बन्ध में एक उल्लेखनीय बात यह थी कि श्री जिन्ना ने इस सम्बन्ध में एक भी शब्द नहीं कहा। और इसमें आश्चर्य भी कुछ न था; क्योंकि अल्लाहबख्श की हत्या के सम्बन्ध में भी उन्होंने एक भी शब्द नहीं कहा था।

१४ जनवरी, १६४४ को पंडित जवाहरलाल नेहरू की बहन श्रीमती विजयलक्ष्मी के पति श्री आर० एस० पंडित की मृत्यु हो गयी।

श्रीयुत पंडित पिछले तीन महीने से 'प्लुरेसी' से पीड़ित थे। श्रीमती पंडित अपने पति के पास ही थीं। श्री पंडित का शव अन्त्येष्टि के लिए इलाहाबाद ले जाया गया।

श्री पंडित संयुक्त प्रांतीय असेम्बली के सदस्य थे और उनकी अवस्था ५१ वर्ष की थी। पत्नी के अलावा आपके तीन पुत्रियां भी हैं—रीता, चंद्र लेखा और नयनतारा। पिछली दो बहनें अमरीका में पढ़ रही हैं।

श्री पंडित अगस्त के उपद्रवों के समय गिरफ्तार किए गये थे और ८ अक्टूबर- १६४३ को उन्हें लखनऊ सेंट्रल जेल से स्वास्थ्य बिगड़ने के कारण छोड़ दिया गया था।

स्वर्गीय श्री पंडित संस्कृत के गहन विद्वान् थे। आपकी प्रकृति बहुत ही सरल थी और देश के प्रति आपके हृदय में अगाध प्रेम व त्याग की भावना थी।

१९ अप्रैल, १९४४ को कांग्रेस के भूतपूर्व अध्यक्ष डा० सी० विजयराघवाचारियर, जो कुछ समय से बीमार थे, अपने मकान पर स्वर्ग सिधार गये। आपकी उम्र ९४ वर्ष की थी। आपके एक पुत्री एक पौत्र तथा दो पौत्री हैं।

डा० सी० विजयराघवाचारियर ने ५० वर्ष तक अपने प्रांत मद्रास व भारत में राजनीतिक कार्य किया। जनता में आपका नाम सब से पहले उस समय आया जब सलेम में एक हिन्दू-मुस्लिम दंगे में १० वर्ष का कठोर कारावास होने पर आपने उसके विरुद्ध हाईकोर्ट में अपील दायर की। अपील में आप जीते और साथ ही अन्य अभियुक्तों को भी छुड़ा लिया।

डा० आचारियर ने कांग्रेस की तरफ से अधिकारों की घोषणा (१९१८) का मसविदा तैयार किया था और वे १९२० में कांग्रेस के और फिर इलाहाबाद वाले 'एकता सम्मेलन' के अध्यक्ष हुए थे। आपने उस सर्व दल सम्मेलन' के आयोजन में प्रमुख रूप से भाग लिया था जिसने साइमन कमीशन के बहिष्कार का निश्चय किया था और जिसमें नेहरू-समिति नियुक्त की गयी थी। आप हिन्दू-महासभा के भी अध्यक्ष रह चुके थे।

डा० आचारियर १८९५ से १९०१ तक मद्रास लेजिस्लेटिव कौंसिल के और १९१२ से १९४६ तक इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्य रहे। आप गहन विचारक, राष्ट्रवादी तथा अंतर्राष्ट्रीयता के उपासक थे और राष्ट्रसंघ की प्रतिष्ठा न रहने पर भी उसके हिमायती थे।

२४ अप्रैल, १९४४ को बनारस में काशी विद्यापीठ के संस्थापक सी शिवप्रसाद गुप्त की मृत्यु हो गयी। आपने ज्ञानमंडल प्रेस खोला था और कुछ समय तक कांग्रेस के खजानची भी थे। आपने भारतमाता-मन्दिर का निर्माण कराया और काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय के लिए धन एकत्र करने के लिए पण्डित मदनमोहन मालवीय के साथ देश का दौरा किया था। श्री गुप्त की उम्र ६१ वर्ष की थी और आप १२ वर्ष तक लकवे के कारण चारपाई पर पड़े रहे थे।

१६ मार्च, १९४४ को राजपरिषद् के एक सदस्य तथा अखिल भारतीय को-आपरेटिव इंस्टीट्यूट्स एसोसियेशन तथा भारतीय प्रांतीय को-आपरेटिव बैंक्स एसोसियेशन के अध्यक्ष श्री वी० रामदास पंतुलू की मृत्यु हो गयी। आप राजपरिषद् में कांग्रेस-दल के नेता थे।

अन्य जिन प्रमुख व्यक्तियों की मृत्यु हुई उनमें श्री रामानन्द चटर्जी भी थे। ३५ वर्ष तक उनका नाम देश में राजनीतिक व साहित्यिक जाग्रति से सम्बद्ध रहा। गोकि श्री चटर्जी कांग्रेस में कभी नहीं रहे; परन्तु उनकी सहानुभूति सदा से राष्ट्रीय आंदोलन के और इसीलिए स्वभावतः कांग्रेस के प्रति थी। कांग्रेस भी उनकी आलोचना का आदर करती थी; क्योंकि व्यापक व निष्पक्ष दृष्टिकोण उनकी आलोचना की सब से बड़ी विशेषता थी। अपनी वृद्धावस्था के अंतिम दिनों में वे हिन्दू-महासभा का पक्ष लेने लगे थे। रामानन्द बाबू कट्टर ब्राह्म थे और हिन्दुओं के संगठित होने की ज़रूरत महसूस करने लगे थे। परन्तु जब रामानंद बाबू जैसा सार्वजनिक व्यक्ति, भी अपने व्यापक भ्रातृत्व का दृष्टिकोण छोड़कर संकुचित साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से विचार करने लगा तब आलोचकों का ध्यान इस बात की ओर आकृष्ट हुआ कि आखिर इस परिवर्तन का कारण क्या है। १९३२ के साम्प्रदायिक निर्णय को वे किसी तरह सहन नहीं कर सके और उन लोगों के अलावा, जो उसे स्वीकार या अस्वीकार कुछ भी नहीं करते थे, अधिकांश हिन्दुओं ने उसके सम्बन्ध में अपना मत स्थिर कर लिया। रामानंद बाबू राजनीति में राष्ट्रवादी होने तथा

धर्म के विचार से ब्राह्म होने के बावजूद हिन्दू-महासभा से प्रभावित हुए। यदि रामानंद बाबू की इस विचारधारा का खयाल न किया जाय तो भारतीय राष्ट्र के विकास, उसकी राजनीतिक तथा आर्थिक मुक्ति, दार्शनिक अंतर्दृष्टि तथा सांस्कृतिक दृष्टिकोण के विचार से १९वीं तथा २० वीं शताब्दी के प्रमुख व्यक्तियों, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, आनंद मोहन बोस, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी तथा स्वामी विवेकानंद के मध्य उनका नाम आ जाता है।

जेलों में अथवा स्वास्थ्य बिगड़ने पर रिहाई के बाद कितने ही देशभक्तों की जानें गयीं। इनका पूरा विवरण प्रांतों से ही प्राप्त किया जा सकता है। परन्तु सब से स्तब्ध करनेवाली घटना सिन्ध में हुई जिसका उल्लेख करना यहां आवश्यक जान पड़ता है। प्रांत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री अल्लाहबख्श को १४ मई, १९४३ को शिकारपुर में गोली मार दी गयी। वे आज़ाद मुस्लिम सम्मेलन में अध्यक्ष थे।

शिकारपुर में भूतपूर्व प्रधानमंत्री अल्लाहबख्श की हत्या का समाचार मिलते ही सिन्ध-सरकार ने कराची के प्रान्तीय सेक्रेटरियेट व अन्य सरकारी दफ्तरों को बंद करने का आदेश जारी कर दिया।

बाजार के दूकानदारों को दूकान खुलने से पहले ही हत्या का समाचार मिल चुका था, इसलिए बाज़ार भी बन्द रहा।

श्री अल्लाहबख्श एक मित्र के साथ शिकारपुर-सक्खर रोड पर सक्खर की तरफ एक तांगे में जा रहे थे। अचानक शिकारपुर पुलिस लाइन के सामने चार अज्ञात व्यक्तियों ने दोनों पर गोलियां चलायीं।

अल्लाहबख्श की छाती में रिवाल्वर की दो गोलियां लगीं और सिविल अस्पताल में उपचार करने से पहले ही उनकी मृत्यु हो गयी।

श्री अल्लाहबख्श मृत्यु से पहले अपना आखिरी बयान भी न दे सके।

परन्तु अल्लाहबख्श के हत्यारों की शिनाख्त हो गयी, और कोर्ट मार्शल के आगे ८ व्यक्तियों को उपस्थित किया गया। कोर्ट मार्शल होते समय जनता को उपस्थित नहीं होने दिया गया था। दो व्यक्ति सरकारी गवाह बन गये। सिंध-सरकार ने प्रकट किया कि हत्या एक षड्यंत्र के कारण हुई थी, जिसमें कुछ प्रमुख ज़मीदारों का हाथ था। २६ फरवरी १९४४ को मामले का फैसला सुना दिया गया, जिसमें तीन व्यक्तियों को मृत्युदंड और शेष को आजन्म कारावास की आज्ञा सुनायी गयी।

बाद में भूतपूर्व माल मंत्री खान बहादुर खुरों, उनके भाई व उनके एक नौकर पर हत्या के सम्बन्ध में मुकदमा चलाया गया। अभियुक्तों को सेशन सिपुर्द किया गया और फिर रिहा कर दिया गया।

सुभाषचन्द्र बोस

आन्दोलन के तीन वर्षों में जिस दुःखद घटना का कांग्रेसजन पर सबसे अधिक असर हुआ, वह १८ अगस्त, १९४५ को हवाई दुर्घटना में श्री सुभाषचन्द्र बोस की कथित मृत्यु की खबर थी। सुभाष बाबू दो बार कांग्रेस के अध्यक्ष रह चुके थे। भारत के लिए स्वाधीनता प्राप्त करने के तरीके के सम्बन्ध में कांग्रेस से मतभेद होने के कारण सुभाष बाबू १९४१ के आरम्भ में गुप्तरूप से भारत के बाहर निकल गये। कहा जाता है कि वे वायुयान द्वारा टोकियो जा रहे थे और मार्ग में दुर्घटना होने पर वे सांघातिक रूप से घायल हुए और उसकी मृत्यु हो गई। सुभाष बाबू ने खुद

ही अपना रास्ता निकाला। गांधीवाद से विद्रोह करके राजनीतिक विषय में उन्होंने अपना अलग तरीका निकाला था। जहां तक दूसरे महायुद्ध में सुभाष बाबू के जर्मनी व जापान का साथ देने का ताल्लुक है, इसकी जिम्मेदारी भी खुद उन्हीं पर थी और अपना रास्ता अलग निकालने के कारण मित्रों का उनके प्रति रंचमात्र भी प्रेम कम नहीं हुआ। हवाई दुर्घटना में उनकी मृत्यु का समाचार एक बार और मिला था और सौभाग्य से वह गलत निकला था। सुभाष बाबू की मृत्यु का समाचार जापानी सूत्रों से मिला था और लोग उस पर विश्वास नहीं करना चाहते थे। युद्ध समाप्त होने पर उनकी तलाश भी काफी की गई। यदि वे मर चुके हैं तो शोक-सागर की उत्ताल तरंगों में चिन्ता की एकाकी लहर विलीन हो जायगी। यदि वे जीवित हैं तो इस रहस्यपूर्ण व्यक्ति के यश में चार चांद लग जायँगे।

—०—

: ३२ :

मेरठ-अधिवेशन

पाठकों को स्मरण होगा कि १६ जून, १९४५ को कार्य-समिति अहमदनगर किले से छोड़ दी गई; परन्तु मेरठ का अधिवेशन २३ नवम्बर, १९४६ को ही हो सका। इस बीच में अध्यक्ष ने, जो १६ मई को ही अधिवेशन के लिये चुन लिये गये थे, पूरे अधिवेशन के पहले अपना कार्य-भार सँभाल लिया और नई कार्य समिति की भी नियुक्ति करदी। परन्तु केन्द्र की अन्तर्कालीन सरकार में उनके पद-ग्रहण के कारण कांग्रेस के विधान के अनुसार बाकायदा नये चुनाव की आवश्यकता पड़ी और श्री जे० बी० कृपलानी नये अध्यक्ष चुन लिये गये। श्री कृपलानी कांग्रेस के लिये नये न थे। उन्होंने अपनी सहज विनोदशीलता से विषय-समिति में भाषण करते हुए ठीक ही कहा कि आप मुझे जानते हैं और मैं आपको जानता हूं। १२ वर्ष तक वे कांग्रेस के प्रधान-मन्त्री रहे थे और कांग्रेस की शक्तियों को संगठित करने व उसके कार्य की व्यवस्था ठीक करने का काम कर रहे थे। उन्हें एक लाभ यह भी प्राप्त था कि उनकी पत्नी सुचेता देवी बड़ी ही संस्कृत तथा उत्साही महिला थीं और कांग्रेस की महिला-मंत्रिणी थीं। पति-पत्नी को सार्वजनिक सेवा के एक ही क्षेत्र में काम करने का सुयोग प्राप्त था और दोनों एक ही दफ्तर में बैठते थे। अपने समय में दोनों ही प्रोफेसर थे। दोनों अच्छे लेखक हैं और धारा-प्रवाह भाषा लिखते हैं। दोनों ही सुसंस्कृत देशभक्त, वाचाल, परिश्रमशील तथा सूझ-बूझवाले व्यक्ति हैं। इस तरह मेरठ-अधिवेशन में कांग्रेस का अध्यक्ष एक ऐसा व्यक्ति था जिसे कर्तव्य पूरा करने में अपनी पत्नी से सहायता मिल सकती थी।

मेरठ शहर व जिले में अचानक उपद्रव हो जाने और अधिवेशन से पूर्व कांग्रेसनगर के एक भाग में रहस्यपूर्ण ढंग से आग लग जाने के कारण वहां घबराहट फैल गई, जिसके परिणाम-स्वरूप मजदूरों की कमी हो गई। तब अधिवेशन के प्रबन्ध में एकाएक कमी कर दी गई और यह घोषित किया गया कि अधिवेशन में सिर्फ डेलीगेट ही भाग ले सकेंगे और दर्शकों को नहीं आने दिया जायगा। इस तरह प्यारेलाल नगर के निर्माण में कठिनाई उत्पन्न हो गई। परन्तु आजाद हिंद फौज की सहायता से यह कार्य सम्भव हो गया, जो पहले असम्भव जान पड़ता था। इतने पर भी खादी तथा सांस्कृतिक प्रदर्शनियों का विचार त्याग दिया गया। राष्ट्रपति कृपलानी ने अपना भाषण हिन्दुस्तानी में दिया। शायद उन्हें इस बात से संतोष था कि जिस मेरठ में वे पिछले बीस वर्ष से रचनात्मक कार्य कर रहे थे उसी में उन्हें कांग्रेस के अध्यक्ष होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। बम्बई-अधिवेशन में राजेन्द्र बाबू के अध्यक्ष होने के समय से राष्ट्रपति के स्थान पर कोई कट्टर गांधी-वादी आसीन नहीं हुआ था। आपने विषय समिति तथा पूर्ण अधिवेशन दोनों ही अवसरों पर कांग्रेस की कार्यवाही का संचालन बड़ी योग्यता व सफलता पूर्वक किया। संशोधनों को वापस कराने की बात हो या भाषणों को कम करने का सवाल हो, आपने पर्याप्त चतुराई का परिचय दिया,

जिससे आपके मित्रों को बड़ी प्रसन्नता हुई। अब यह बात कही जा सकती है कि कांग्रेस के कुछ नेताओं तथा एक वर्ग की सद्भावना शुरू में आचार्य कृपलानी को प्राप्त न थी, फिर भी उन्हें इतनी सफलता अवश्य मिली जिससे वे अधिवेशन के कार्य का सुचारु रूपसे संचालन कर सके और अपने अवशिष्ट कार्यकाल में काम कर सके। आपने अधिवेशन के अन्त में अंग्रेजी में जो भाषण दिया वह एक आश्चर्यजनक वक्तृता थी। उसमें जहां एक तरफ यह बताया गया था कि अहिंसा को कहां तक सफलता मिली है अथवा सफलता नहीं मिली है वहाँ दूसरी तरफ यह कहा गया था कि लोगों से कितनी अहिंसा की आशा की जाती थी। आध घंटे तक जनता मंत्रमुग्ध-सी उनकी गर्जना सुनती रही और उस पर इस भाषण का अभूतपूर्व प्रभाव पड़ा। एक प्रकार से अहिंसा का पुनर्जन्म हुआ और इसमें राष्ट्रपति ने सहायता प्रदान की। कृपलानीजी को कार्य-समिति चुनने में भी कम दिक्कत नहीं हुई; किन्तु सभी जानते हैं कि यह कार्य कितना कठिन होता है और कम-से-कम कार्य-समिति पर किसी व्यक्ति को रखने या न रखने के सवाल पर उन्हें अपने जानकार आलोचक की सहानुभूति तो प्राप्त थी ही। शायद कार्य-समिति में अपने साथियों का चुनाव कांग्रेस के अध्यक्ष का सबसे कठिन कार्य होता है।

अब हम कांग्रेस के मेरठ-अधिवेशन की सफलता पर विचार करना चाहते हैं। इस दृष्टि-कोण से मेरठ में कोई नई या ठोस बात नहीं हुई। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने दिल्ली में सितम्बर में होनेवाली बैठक में जो-कुछ किया था उसी की पुष्टि मेरठ के अधिवेशन में हुई। इसमें अंतर्कालीन सरकार में कांग्रेस के पद-ग्रहण को स्वीकार किया गया। परन्तु अधिवेशन की वास्तविक सफलता विधान-परिषद्वाला प्रस्ताव था, जिसमें कहा गया था कि कांग्रेस 'स्वतंत्र एवं पूर्ण सत्ता-सम्पन्न राज्य' की समर्थक है। इससे प्रकट कर दिया गया कि भारत का भविष्य साम्राज्य के बाहर रहकर ही सुधर सकता है। जिस प्रस्ताव में पिछली घटनाओं का सिंहावलोकन किया गया उसका शीर्षक सिर्फ 'सिंहावलोकन' नहीं बल्कि 'सिंहावलोकन तथा भविष्य-दर्शन' होना चाहिए था; क्योंकि उसमें साफ कहा गया था कि भारतीय स्वाधीनता के संग्राम का अन्त नहीं हुआ है बल्कि अभी बहुत कुछ प्राप्त करना शेष है। अधिवेशन का सब से महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव रियासतों के सम्बन्ध में था, जिसका विस्तृत उद्धरण हम नीचे देते हैं:—

"कांग्रेस हमेशा से हिन्दुस्तान की रियासतों के सवाल को भारतीय स्वाधीनता के सवाल का एक हिस्सा मानती आई है। स्वाधीनता प्राप्त करने का समय निकट आने की वजह से यह सवाल अब और भी जरूरी हो गया है और उसका हल स्वाधीनता की पृष्ठभूमि का ध्यान रखते हुए होना चाहिए। रियासतों के कुछ नरेशों ने देश में होनेवाले इन परिवर्तनों का अनुभव किया है और एक सीमा तक अपने को उनके अनुकूल बनाने का प्रयत्न भी किया है।

"परन्तु कांग्रेस को यह देखकर खेद हुआ है कि अब भी रियासतों के कितने ही शासक व उनके मन्त्री अपने शासन-प्रबन्ध को उत्तरदायी संस्थाएं स्थापित करने तथा शासन-व्यवस्था पर सार्वजनिक नियंत्रण कायम करने के विषय में प्रान्तों के समकक्ष लाने का प्रयत्न नहीं कर रहे हैं। यही नहीं, बल्कि इसके विपरीत जनता की राजनीतिक आकांक्षाओं को कुचलने का प्रयत्न कर रहे हैं और इस प्रकार स्वाधीनता की उत्कंठा की उस महान् भावना का विरोध कर रहे हैं, जो शेष भारत की तरह रियासतों की जनता को भी अनुप्राणित कर रही है। भारत की कुछ बड़ी रियासतें, जिन्हें शेष रियासतों के लिए उदाहरण उपस्थित करना चाहिए था, विशेष रूप से प्रतिक्रियापूर्ण तथा दमनकारी कार्यों की अपराधिनी रही हैं। राजनीतिक विभाग, जो अभी तक सम्राट् के प्रति-

निधि की देखरेख में है और भारत-सरकार के नियंत्रण के परे है, अब भी प्रतिक्रियापूर्ण नीति के अनुसार कार्य कर रहा है, जो रियासती प्रजा की इच्छा के विरुद्ध है।

"कांग्रेस भारत-सरकार के अधिकार-क्षेत्र से राजनीतिक विभाग को पृथक् रखने की नीति को नापसंद करती है; क्योंकि भारत-सरकार उस विभाग के सभी कार्यों में दिलचस्पी रखती है और वह (कांग्रेस) आशा करती है कि इस अनुचित स्थिति का यथाशीघ्र अन्त कर दिया जायगा। ब्रिटिश सरकार के इस दावे को, कि भारत के शासन से पृथक् उसकी वाइसराय या सम्राट् के प्रतिनिधि की मध्यस्थता से रियासतों को कोई दिलचस्पी है, वह नहीं स्वीकार करती।

"सम्बन्धित जनता की अनुमति के बिना रियासतों का संघ बनाये जाने या उन्हें परस्पर मिलाने की किसी भी योजना को कांग्रेस नापसंद करती है। राजनीतिक विभाग ऐसे कार्य प्रजा की जानकारी के बिना ही किया करता है, जो जनता के आत्म-निर्णय के अधिकार के विरुद्ध है। कांग्रेस का यह दृढ़ मत है कि रियासतों के सम्बन्ध में प्रत्येक निर्णय रियासतों की निर्वाचित जनता-द्वारा होना चाहिये और ऐसा कोई भी निश्चय कांग्रेस को मान्य नहीं हो सकता जिसमें जनता की इच्छा की उपेक्षा की गई हो—खासकर विधान-परिषद् में रियासतों के प्रतिनिधि प्रजा-द्वारा निर्वाचित व्यक्ति होने चाहिएं।

"रियासतों की स्थिति गम्भीर होने के कारण कांग्रेस घोषणा करती है कि वह रियासतों में होनेवाले स्वाधीनता के संग्राम को भारत के व्यापक संघर्ष का अंग मानती है। रियासतों के लोग अपने यहां नागरिक स्वतंत्रता व उत्तरदायी शासन कायम करने के लिए जो प्रयत्न कर रहे हैं उनके प्रति कांग्रेस की सहानुभूति है।"

यहां यह बात उल्लेखनीय है कि कांग्रेस ने रियासतों के प्रश्न को हरिपुरा के बाद पहली बार उठाया था। इस बार कांग्रेस ने नरेशों की निरंकुशता के स्थान पर राजनीतिक विभाग के षड्यंत्रों पर जोर दिया था और वह जो कार्य गुप्तरूप से कर रहा था उस पर पहली बार प्रकाश डाला गया था। रोग के जिस किटाणु के कारण सभी तरफ दमन तथा प्रतिक्रियापूर्ण नीति का दौरदौरा हो रहा था उस का उद्गम-स्थल राजनीतिक विभाग ही था। जबतक उसे नष्ट नहीं किया जाता तबतक प्रतिनिधिपूर्ण संस्थाओं के विकास की कोई आशा नहीं की जा सकती और न तबतक एक-तिहाई भारत में उत्तरदायी शासन का ही विकास हो सकता है। प्रस्ताव में जो-कुछ कहा गया था वह तो कहा ही गया था; किन्तु जो प्रकट रूपसे नहीं कहा गया था उसका भी महत्व कम न था। कांग्रेस ने रियासतों में स्वाधीनता के लिए लड़नेवाली प्रजा के प्रति जो सहानुभूति दिखायी थी वह केवल शब्दाडम्बर ही न था बल्कि वह तो सहायता के लिए गम्भीरतापूर्वक किया हुआ एक प्रस्ताव था। उस समय कांग्रेस एक युगांतरकारी घड़ी से गुजर रही थी और मोड़ की ओर बढ़ते हुए मोटर के ड्राइवर के समान रफ्तार धीमी करके व घुमाव को अच्छी तरह देख कर फिर आगे बढ़ने की बात सोच रही थी। कांग्रेस का धैर्य अपनी चरम सीमा को पहुंच चुका था और इसमें किसी को आश्चर्य न होता यदि वह अलग रहने की नीति त्याग कर पहाड़ से नीचे झपटनेवाली बर्फीली नदी अथवा समुद्र की लहर की तरह आगे बढ़ कर स्वाधीनता के मार्ग में आनेवाली बाधाओं को अभिभूत कर देती। कांग्रेस मेरठ में स्वाधीनता की ओर ले जानेवाला एक और मोड़ तय कर रही थी; किन्तु पिछले मोड़ों की अपेक्षा ऊँची सतह पर पहुंच गयी थी, जैसा कि पहाड़ी रेलगाड़ी अक्सर करती है। जहां तक रचनात्मक क्षेत्र का सम्बन्ध है, कांग्रेस के सामने बड़ा कठिन तथा महान् कार्य पड़ा था। हाल में हिंसा,

हत्याकाण्ड, आगजनी, नारी-निर्यातन तथा बलात्कार की जो घटनायें हुई थीं उनसे हुई हानि की पूर्ति कांग्रेस को करनी थी। भाषणकर्ताओं ने इस विषय पर अपना मत गम्भीरतापूर्वक प्रकट किया ताकि लोगों में जोश न फैले। सरदार ने जो यह कहा कि तलवार का मुकाबला तलवार से किया जायगा—इससे कुछ सनसनी फैली थी; किन्तु स्वयं उन्हीं के स्पष्टीकरण के कारण वह शान्त हो गयी। इस तरह प्रत्येक दृष्टिकोण से मेरठवाले अधिवेशन को सिर्फ सफल ही नहीं कहा जा सकता, बल्कि उसे आगामी अधिवेशनों के लिए उदाहरण-स्वरूप भी कहा जा सकता है। विधान-समिति ने अखिल-भारतीय कांग्रेस कमेटी के विचार के लिए जो प्रस्ताव उपस्थित किये थे उनमें अधिवेशन की तड़क-भड़क बन्द करने तथा उसमें अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्यों के ही उपस्थित होने की बात थी और इस सम्बन्ध में कुछ असन्तोष भी था। मेरठ अधिवेशन एक प्रकार से मध्य का मार्ग था। इसमें प्रतिनिधि तो आये थे; किन्तु दर्शकों को बाहर निकाल दिया गया था; जिस तरह १९३९ में त्रिपुरी में अधिवेशन के दूसरे दिन दर्शकों को नहीं आने दिया गया था। पुराने विधान के अन्तर्गत मेरठ का अधिवेशन अन्तिम हो सकता है। मेरठ भारत के इतिहास में एक स्मरणीय नाम है। विद्रोह की चिनगारी पहले-पहल मेरठ में उठी थी, और मेरठ में ही भारत के 'स्वतन्त्र एवं पूर्ण सत्ता-सम्पन्न प्रजातन्त्र' की घोषणा की गयी। भारतीय राज-क्रान्ति की पहली हिंसापूर्ण लड़ाई (१८५७) के बाद गवर्नर-जनरल वायसराय बना था, दूसरी (अहिंसापूर्ण) लड़ाई के बाद भारत से वायसराय का नाम-निशान मिट सकता है।

उपसंहार

साठ वर्ष का काल मनुष्य को बहुत लम्बा जान पड़ता है, किन्तु गन्धर्वों के जीवन से वह दस वर्ष कम है और उपनिषदों ने मानव-जीवन की जो अवधि निर्द्धारित की है उससे वह आधी है। परन्तु किसी संस्था के जीवन में ६० वर्ष का काल अधिक नहीं होता और राष्ट्र के इतिहास में तो वह पलक मारने के समय से अधिक महत्व नहीं रखता। इस अल्पकाल में एक ऐसे प्राचीन राष्ट्र के संघर्ष की कहानी आगई है, जो दासत्व के बन्धन में बँधा था और जिसकी शक्तियां आपसी फूट के कारण बिखर चुकी थीं। इस प्राचीन राष्ट्र को एक ऐसे साम्राज्यवादी आधुनिक राष्ट्र के चंगुल से निकलने के लिए लड़ाई करनी पड़ी थी, जो दूसरों के स्वार्थों को हड़पने के लिए संगठित व निरंकुश था। इन साठ वर्षों में भारत ने अपनी छिन्न-भिन्न शक्तियों को एकत्र किया और अपनी स्वाधीनता के पक्ष में संसार में लोकमत तैयार कर लिया। यही नहीं, भारत में रचनात्मक कार्य भी चल रहा था ताकि स्वराज्य का आधार स्थायी हो सके। इसीलिए १९४५ का साल खत्म होने और नया साल शुरू होने पर देश में नया युग आरम्भ होने की खुशियां नहीं मनायी गई। यह अवसर व्यक्ति तथा राष्ट्र के मध्य आत्मिक सम्बन्ध कायम करने और राष्ट्र के गौरव की अनुभूति का था। इस राष्ट्रीय जागृति के काल में देश को खुशी या जोश दिखाने तक की फुरसत न थी।

केन्द्र में चुनाव समाप्त होचुके थे, किन्तु प्रान्तों में उम्मीदवारों के चुनाव और नामजदगी का कार्य जारी था और इस कार्य में नेता और अनुयायी दोनों ही व्यस्त थे। इस बीच कभी-कभी आजाद हिन्द फौज के सदस्यों के मामलों की सनसनी भरी खबरें सुनायी दे जाती थीं। एक समय तो ऐसा जान पड़ता था कि कर्नल शाह नवाज़, कर्नल सहगल और कर्नल ढिल्लों की ख्याति राष्ट्रीय नेताओं की कीर्ति को भी ढक लेगी। ऐसा प्रतीत होता था जैसे आजाद हिंद फौज कांग्रेस की लोक प्रियता छीन लेगी और विदेश में युद्ध तथा हिंसा से लड़ी जाने वाली लड़ाइयां अहिंसात्मक लड़ाइयों की याद धुंधली बना देंगी। परन्तु कालेपानी की सजा पाये हुए तीनों अफसरों को वाइसराय ने जो क्षमा-प्रदान किया इससे आजाद-हिंद फौज के लिए उठने वाले जोश में कमी हुई। सिर्फ दिसम्बर, १९४५ में कलकत्ते में अधिकारियों की मूर्खता के कारण प्रदर्शनकारी विद्यार्थियों की एक भीड़ पर और फिर सुभाष चन्द्र बोस के पचासवें जन्म दिवस पर बम्बई में गोलियां चलीं, जिसके परिणामस्वरूप कलकत्ता में ४० व्यक्तियों की और बम्बई में १० व्यक्तियों की जानें गयीं। इन दोनों घटनाओं से आजाद-हिंद फौज के लिए फिर जोश उमड़ पड़ा और उसके वीरोंने राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए जो कष्ट उठाये थे तथा जिस वीरता का प्रदर्शन किया था उसकी कहानियां देश के कोने-कोने में फैल गयीं।

सुभाष बाबू के जन्म-दिन के अवसर पर उनके साहसिक कार्यों की कहानियों का देश भर में प्रचार हुआ और उनके कलकत्ते से पलायन तथा जर्मनी पहुँचने के सम्बन्ध में हृदयग्राही वास्तविक विवरण भी प्राप्त होने लगे।

श्री बोस के पलायन की कहानी

दिसम्बर, १९४० में श्री सुभाषचन्द्र बोस के भारत से पलायन का विवरण एक ऐसे व्यक्ति ने दिया जिसे नेताजी की सहायता करने के जुर्म में ब्रिटिश-सरकार ने जेल में डाल दिया था। यह विवरण "हिन्दुस्तान स्टैण्डर्ड" के लाहौर-स्थित संवाददाता ने अपने पत्र के लिये भेजा था। इस विवरण के अनुसार श्री बोस १३ दिसम्बर, १९४० को कलकत्ते से कार द्वारा रवाना हुए और बर्दवान से दूसरे दर्जे के एक डिब्बे पर चढ़े जो उनके लिये पंजाब-मेल में पहले ही से रिजर्व कर लिया गया था। सुभाष बाबू ने दाढ़ी बढ़ा ली थी और उनके केश गर्दन के पीछे लटक रहे थे। पेशावर पहुँचने पर वे बिलकुल पठान जैसे लगते थे। वहां छः दिन ठहरने के बाद वे एक अंगरक्षक के साथ काबुल के लिये रवाना हो गये। पांच मील की दूरी तांगे पर तय करने के अतिरिक्त उन्होंने काबुल तक अपनी सम्पूर्ण यात्रा पैदल ही की।

विवरण में आगे कहा गया है कि श्री बोस एक सी० आई० डी० के आदमी के चंगुल में फँस गये किन्तु उससे उन्होंने दस रुपये का नोट और एक फाउण्टेनपेन दे कर पीछा छुड़ाया। इसके बाद श्री बोस ने रूसी सरकार से पूछताछ की, किन्तु उसने उन्हें यह कह कर शरण देने से इन्कार कर दिया कि रूस-जर्मन संधि भंग होनेवाली है और रूस की बात-चीत ब्रिटिश सरकार से चल रही है। इसलिये रूसी सरकार अंग्रेजों को शिकायत करने का कोई मौका नहीं देना चाहती।

इसी बीच किसी जर्मन को पता लग गया कि श्री बोस भागना चाहते हैं और उसने इस सम्बन्ध में अपनी सरकार से अनुमति मांग ली और फिर हवाई-जहाज द्वारा उन्हें बर्लिन पहुँचाने का भी प्रबन्ध हो गया।

इंग्लैंड की मजदूर-सरकार ने भारत के लिये जो पार्लामेण्टरी शिष्ट-मण्डल भेजा था उससे राजनीतिक घटनाओं की प्रतीक्षा करने वाली भारतीय जनता का ध्यान बँट गया। पहले कहा जाता था कि शिष्ट-मण्डल एम्पायर पार्लामेंटरी एसोसिएशन की तरफ से जायगा, किन्तु इस खबर से सभी लोगों में नाराजी फैल गई। तब पार्लामेंट ने यह दायित्व अपने कंधों पर लिया और शिष्ट-मण्डल में सभी दलों के प्रतिनिधि रखे गये। यह शिष्ट-मण्डल एक अनियमित कमीशन से अधिक और कुछ न था। १९३५ के कानून को पास हुए १९४६ में दस से भी अधिक वर्ष बीत चुके थे इसलिये पार्लामेंटरी शिष्ट-मण्डल भेजकर शाही कमीशन नियुक्त करने की अप्रिय बात से बचा गया।

ब्रिटिश सरकार की यह एक चाल थी, जो चल गयी और छोटे-बड़े सब कांग्रेसजन इस चाल में आ गये। शिष्टमण्डल का बहिष्कार करने की बात अनावश्यक उग्रता मानी जाती थी और कांग्रेस कार्यसमिति के प्रायः सभी सदस्य शिष्टमंडल को अपनी सेवाएं अर्पित करने को तैयार थे—और वह भी ऐसी अवस्था में जबकि शिष्टमंडल के एक सदस्य श्री गोडफ्रे निकलसन स्पष्ट शब्दों में कह चुके थे कि वे भारत में सिर्फ विशिष्ट व्यक्तियों के बयान लेने ही आये हैं। लज्जा की बात तो यह थी कि शेष भारत की तरह कांग्रेस ने भी इस जांच-पड़ताल में सहयोग प्रदान करना स्वीकार कर लिया था।

इस बीच नयी केन्द्रीय असेम्बली की बैठक दिल्ली में आरम्भ हुई और इसमें राष्ट्रवादियों की कुछ विजयें हुईं। पहली विजय एक कार्य-स्थगित प्रस्ताव था, जिसमें हिन्द-एशिया में भारतीय सेना का उपयोग करने के लिए सरकार की निन्दा की गयी थी। परन्तु दूसरी विजय वास्तव में

एक असाधारण सफलता थी। स्पीकर का पद विशेष महत्व का होता है, और सरदार वल्लभभाई पटेल ने इस पद के लिए श्री मावलंकर का नाम सोच कर अपनी दूरदर्शिता का परिचय दिया, जो बम्बई असेम्बली (१६३७-३६) के अध्यक्ष रह चुके थे। आपके पक्ष में ६६ और विपक्ष में ३३ मत आये। यह कांग्रेस की एक वास्तविक विजय थी।

कांग्रेस की शक्ति दिन-प्रति-दिन बढ़ती जा रही थी कि ८ जनवरी, १६४६ को श्री विलियम फिलिप्स की राष्ट्रपति रूजवेल्ट के सम्मुख उपस्थित रिपोर्ट का सारांश प्रकाशित हो गया। यह रिपोर्ट श्री फिलिप्स ने भारत से अमेरिका लौटने पर राष्ट्रपति रूजवेल्ट को दी थी। इससे कांग्रेस की शक्ति में और वृद्धि हुई।

श्री फिलिप्स की रिपोर्ट

'कांग्रेस का उद्देश्य अपने को एक फासिस्ट सरकार के रूप में स्थापित करना न हो कर स्वाधीनता के लक्ष्य की, तथा भारतीयों-द्वारा अपना विधान आप तैयार करने के अधिकार की प्राप्ति के लिए भारत में एकता कायम करना था।''

रिपोर्ट में आगे कहा गया था—''यह कहना ठीक नहीं है कि कांग्रेसी मंत्रिमंडलों के काल में साम्प्रदायिक उपद्रव बहुत अधिक बढ़ गये थे। सत्य तो यह है कि उन दिनों हिन्दू-मुस्लिम दंगे बंगाल और पंजाब में अधिक हुए थे और दंगों की संख्या किसी कांग्रेसी प्रान्त की अपेक्षा पंजाब में ही अधिक थी।''

रिपोर्ट में श्री फिलिप्स ने भविष्यवाणी की थी कि ''आगे जाकर अधिकांश मुसलमान भी अन्य धर्मों के किसानों व मजदूरों के साथ मिल जायँगे और हिन्दू-मुस्लिम समस्या जिस रूप में दिखायी देती है, उस रूप में न रह जायगी।

यह रिपोर्ट एक उर्दू दैनिक ''मिलाप'' में ८ जनवरी, १६४६ को प्रकाशित हुई थी, किन्तु ८ जनवरी, १६४६ तक उसे सरकारी तौर पर प्रकाशित नहीं किया गया है।

मुस्लिम लीग की मांग के सम्बन्ध में रिपोर्ट में कहा गया है—''मुस्लिम नेता यह प्रमाणित करने में सफल नहीं हुए हैं कि कांग्रेस के शासन में मुसलमानों के हितों की हानि हुई है। प्रान्तीय शासन की समीक्षा से सिर्फ यही जाहिर हुआ है कि एक राजनीतिक दल के रूप में मुस्लिम लीग कभी शासन-व्यवस्था पर नियंत्रण नहीं जमा सकेगी और कतिपय प्रान्तों को छोड़ कर धारा सभाओं में अल्पमत में ही रहेगी। वह केन्द्रीय असेम्बली में भी अधिकांश स्थानों पर अधिकार करने में सफल नहीं हो सकती। मुस्लिम लीग की शिकायत दरअसल में यही है। कांग्रेस ने रियासतों के सम्बन्ध में जो रूप ग्रहण किया है उसके सम्बन्ध में श्री जिन्ना तथा दूसरे मुस्लिम नेताओं की चिन्ता तथा उनकी पाकिस्तान की मांग का भी इससे स्पष्टीकरण हो जाता है।

रिपोर्ट में आगे कहा गया है—''मुसलमानों ने भारत को स्वराज्य देने के सम्बन्ध में जो यह आपत्ति की थी कि राजनीतिक क्षेत्र पर कांग्रेस का प्रभुत्व रहेगा वह अब नहीं मानी जा सकती। इसके अलावा यह मानने के काफी कारण हैं कि अन्य राजनीतिक संगठनों में हुए परिवर्तनों का खुद मुस्लिम लीग पर असर पड़ेगा।

श्री फिलिप्स ने अपनी रिपोर्ट में कांग्रेस के सम्बन्ध में कहा—''भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का मुख्य उद्देश्य भारत के लिए स्वाधीनता की प्राप्ति कितने ही वर्षों से रहा है और धारासभाओं में प्रवेश करने और विधान को अमल में लाने का निश्चय सिर्फ इसी विचार से किया गया था

कि इससे स्वाधीनता-संग्राम में सहायता मिलेगी। इसी उद्देश्य से प्रेरित हो कर इस राष्ट्रीय संगठन ने प्रान्तीय मंत्रिमंडलों पर कड़ा नियंत्रण रखा था और प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियों के साथ अपने कार्य के एकीकरण का आदेश निकाला था। श्री जिन्ना ने आरोप किया है कि कांग्रेस का एकमात्र उद्देश्य देश की अन्य सभी संस्थाओं का नाश करना है। उनका कहना है कि इसीलिए कांग्रेस विस्तार की नीति का अनुसरण करती है और इसीलिए भारतीय जनता के प्रत्येक वर्ग से अपने अनुयायी बनाने के लिए वह प्रयत्नशील रहती है। इस में पूर्ण सफलता मिलने पर मुस्लिम लीग तथा अन्य सभी साम्प्रदायिक संस्थाओं का अंत अवश्यम्भावी था।

"परन्तु कांग्रेस का उद्देश्य अपने को एक फासिस्ट संस्था के रूप में कायम करना न हो कर स्वाधीनता की और विधान तैयार करने के अधिकार की प्राप्ति के लिए देश में एकता करना रहा है। फिर भी इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि कांग्रेसी मंत्रिमंडलों के अधिकार के काल में कांग्रेस की समस्त नीति का उद्देश्य अपने संगठन को बनाये रखने तथा भारत के लिए स्वाधीनता की प्राप्ति के उद्देश्य से उसे अधिक मजबूत बनाना था।

"यह उल्लेखनीय है कि श्री जिन्ना के 'मुक्ति दिवस' के अवसर पर जो आरोप किये गये थे उनकी उन प्रमाणों से पुष्टि नहीं होती, जो मुस्लिम लीग-द्वारा प्राप्त समाचारों के आधार पर तैयार किये गये थे। यह आरोप कि कांग्रेसी सरकारों ने मुस्लिम संस्कृति को नष्ट करने के लिए कोई प्रयत्न नहीं उठा रखा—मुख्यतः पाठशालाओं के पाठ्यक्रमों से उर्दू के हटाये जाने या बुनियादी तालीम जारी करने या कतिपय पाठ्य पुस्तकों के प्रयोग के इने-गिने उदाहरणों पर आधारित है। मुसलमानों के खिलाफ आर्थिक या राजनीतिक भेदभाव की नीति बर्ते जाने के उदाहरण तो और भी कम हैं।"

भारत की समस्या के सदा से दो भाग रहे हैं—प्रान्त और रियासत। नया वर्ष आरम्भ होते ही रियासतों की प्रजा को नवाब भोपाल की घोषणा के कारण आशा की किरण दिखायी देने लगी। नवाब साहब नरेन्द्रमंडल के चांसलर थे। १८ जनवरी, १९४६ को उन्होंने निम्न घोषणा की:—

"नरेन्द्र-मंडल ने मंत्रियों की समिति से परामर्श करने के उपरान्त रियासतों में वैधानिक उन्नति के प्रश्न पर सावधानीपूर्वक विचार किया है और वह (समिति) सिफारिश करती है कि नरेन्द्र-मंडल इस सम्बन्ध में अपनी नीति की घोषणा करे और जिन रियासतों में अभी तक इस सम्बन्ध में कोई कार्रवाई नहीं की गई है उनमें तुरन्त उचित उपाय किये जायँ। परन्तु ठीक वैधानिक स्थिति पर इसका कुछ भी प्रभाव न पड़ेगा, जिसके सम्बन्ध में सम्राट् की सरकार की तरफ से घोषणा की जा चुकी है और जिसे श्री वाइसराय भी दुहरा चुके हैं। कहा जा चुका है कि किसी रियासत और उसकी प्रजा के लिए कैसा विधान उपयुक्त होगा—इसका निर्णय स्वयं शासक के ही हाथ में रहेगा।

"अस्तु, नरेन्द्र-मंडल की तरफ से उसके चांसलर को निम्न घोषणा करने का अधिकार दिया जाता है —

"हमारे उद्देश्य ऐसे विधान कायम करना है, जिन में नरेशों की सत्ता का उपयोग नियमित वैध मार्गों से होता रहे, किन्तु इससे इन रियासतों के राजवंश तथा उनकी स्वतंत्रता पर कोई प्रभाव न पड़ना चाहिए। प्रत्येक रियासत में निर्वाचित बहुमतवाली लोकप्रिय संस्थाएं रहें, जिस से रियासत के शासन-प्रबंध से जनता का सम्बन्ध रह सके। प्रत्येक रियासत का विस्तृत

विधान तैयार करते समय उस रियासत की विशेष परिस्थितियों का भी ध्यान रखा जाय।

"अधिकांश रियासतों में कानून का शासन है और व्यक्ति के जान और माल की हिफाजत का भी प्रबंध है। इस सम्बन्ध में स्पष्ट शब्दों में स्थिति का उल्लेख करने के लिए जिन रियासतों में अभी तक निम्न आवश्यक अधिकार न दिये गये हों, उनमें वे दिये जाने चाहिए और साथ ही अदालतों को अधिकार देना चाहिए कि यदि उपर्युक्त अधिकार भंग होते हों तो वे इसका उचित उपाय करें:—

(१) कानून के अलावा और किसी भी जरिये से कोई व्यक्ति न अपनी स्वतंत्रता से वंचित किया जायगा, और न उसका घर या सम्पत्ति ही जब्त या बेदखल की जायगी,

(२) प्रत्येक व्यक्ति को अदालत में सुनवाई कराने का अधिकार होगा। यह अधिकार युद्ध, विद्रोह अथवा गम्भीर आंतरिक विद्रोह की अवस्था में ही छीना जा सकता है,

(३) प्रत्येक व्यक्ति को स्वच्छंदतापूर्वक अपना मत प्रकट करने, एक दूसरे से मिलने और शान्तिपूर्वक एकत्र होने का अधिकार होगा, किन्तु न तो जमाव सैन्य ढंग का हो और न उस जमाव का उद्देश्य कानून अथवा नैतिकता के विरुद्ध ही कुछ कार्रवाई करना हो,

(४) प्रत्येक-व्यक्ति को अंतःकरण की स्वाधीनता होगी और वह मन-चाहे ढंग से अपने धार्मिक कृत्य कर सकेगा, किन्तु इससे सार्वजनिक व्यवस्था तथा नैतिकता भंग न होनी चाहिए,

(५) धर्म, जाति तथा सम्प्रदाय का विचार किये बिना प्रत्येक व्यक्ति की स्थिति कानून के आगे समान होगी।

(६) धर्म, जाति या सम्प्रदाय के कारण किसी नौकरी या पद पर बहाली के लिए या किसी पेशे या व्यापार के लिए किसी व्यक्ति की अयोग्यता न मानी जायगी।

(७) बेगार नहीं रहेगी।

"फिर दुहराया जाता है कि शासन-प्रबंध निम्न सिद्धान्तों पर आधारित रहेगा और जहां ये सिद्धान्त अमल में नहीं आये हैं वहां उन्हें कड़ाई से काम में लाया जायगा:—

(१) न्याय का प्रबंध निष्पक्ष तथा योग्य न्याय-व्यवस्था में निहित रहेगा और व्यक्तियों तथा रियासतों के मध्य विवादास्पद विषयों का निष्पक्ष निर्णय होने का उचित प्रबन्ध रहना चाहिये,

(२) राजाओं को रियासतों में निजी व्यय तथा शासन-प्रबंध-सम्बन्धी रकमों का पृथक् से उल्लेख करना चाहिए और निजी व्यय साधारण आय के उचित अनुपात में निर्धारित होना चाहिए।

(३) कर का भार उचित तथा न्यायपूर्ण होना चाहिए और आय का पर्याप्त भाग जनता के हित के कार्यों—विशेषकर राष्ट्रनिर्माणकारी विभागों में लगना चाहिए।

"जोरों से सिफारिश की जाती है कि घोषणा में जिन सिद्धान्तों की सिफारिश की गई है वे यदि कहीं कार्यान्वित न हुए हों तो उन्हें कार्यान्वित किया जाय।

"यह घोषणा सचाई के साथ की जाती है और रियासतों की जनता तथा रियासतों के भविष्य में विश्वास से अनुप्राणित है। यह नरेशों-द्वारा इन निश्चयों को बिना देरी के अमल में लाने की इच्छा का प्रतिनिधित्व करती है। परमात्मा करे इसके परिणामस्वरूप अभाव व भय से मुक्ति मिले और विचार-स्वतन्त्रता की प्राप्ति हो और परस्पर प्रेम, सहिष्णुता, सेवा तथा उत्तर-दायित्व के सुनिश्चित आधार पर इससे विचार-स्वतन्त्रता की वृद्धि हो।"

उधर ब्रिटिश भारत में घटना-चक्र तेजी से घूमा। वाइसराय ने नरेन्द्र-मण्डल में नरेशों को सूचित किया कि रियासतों में वैधानिक परिवर्तन के लिए उनकी अनुमति लेना आवश्यक होगा और यह भी कहा कि ब्रिटिश-सरकार रियासतों से अपने वर्तमान सम्बन्ध कायम रखने को उत्सुक है। वाइसराय ने नरेशों को मतभेद की एक मुख्य बात पर आश्वासन दे दिया और १९४४ में इसी समस्या यानी सन्धि सम्बन्धी अधिकारों तथा सम्राट् से सम्बन्धों को लेकर गतिरोध उत्पन्न हो गया था।

वाइसराय ने कहा—"मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि इन सम्बन्धों तथा अधिकारों में आपकी रजामन्दी के बिना परिवर्तन करने का हमारा कोई इरादा नहीं है।

"मुझे विश्वास है कि श्रीमान् अपने प्रतिनिधियों के द्वारा उस वार्ता में पूर्ण रूप से भाग लेंगे, जिसकी घोषणा मैंने १९ सितम्बर को की थी और साथ ही आप उस विधान-परिषद् की कार्यवाही में भी हाथ बटायेंगे। जो स्थापित होगी मुझे यह भी विश्वास है कि इस बातचीत के परिणामस्वरूप जो परिवर्तन होंगे उन्हें स्वीकृति प्रदान करने में अनुचित देरी न की जायगी।"

"मुझे यह भी विश्वास है कि इन सब समस्याओं पर विचार करते समय आप भारत की सर्वांङ्गीण उन्नति में बाधा डालने की इच्छा या इरादा नहीं रखते और न अपनी प्रजा की राजनीतिक, आर्थिक या सामाजिक उन्नति में ही रुकावट डालना चाहते हैं।

"जिस प्रकार आप युद्ध के समय नेतृत्व करते रहे हैं उसी तरह आपको शान्ति के समय भी नेतृत्व करके अपनी ऐतिहासिक परम्परा को बनाये रखना चाहिए।"

लार्ड वेवल ने कहा कि जिन रियासतों के आर्थिक साधन अपर्याप्त हैं उन्हें अपनी वैधानिक स्थिति में ऐसे परिवर्तन करने चाहियें ताकि भविष्य में प्रजा का हित-साधन हो सके। आपने यह भी सुझाव उपस्थित किया कि इन रियासतों के लिए पर्याप्त आर्थिक साधन उपलब्ध करने तथा शासन-प्रबन्ध में प्रजा को हिस्सा देने के लिए यह आवश्यक है कि ये छोटी रियासतें या तो किसी-न-किसी बड़ी प्रादेशिक इकाई से मिल जायँ अथवा अन्य छोटी रियासतों के साथ मिल कर स्वयं ही पर्याप्त बड़ी प्रादेशिक इकाइयों का निर्माण करें।

इसके दस ही दिन के भीतर गवर्नर-जनरल ने भारत की राजनीतिक उन्नति के क्षेत्र में ब्रिटेन के रचनात्मक प्रयत्नों के सम्बन्ध में एक उपदेश दिया।

केन्द्रीय-असेम्बली में वाइसराय ने २८ जनवरी, १९४६ को निम्न भाषण दिया:—

"मैं कोई नई या चित्ताकर्षक राजनीतिक घोषणा करने के लिए यहाँ नहीं आया हूं। मैं केवल भारत के नव-निर्वाचित प्रतिनिधियों से मिलने तथा उनका स्वागत करने और उन्हें प्रोत्साहन की कुछ बातें कहने के लिए ही आया हूँ।

"मैं समझता हूं कि सम्राट् की सरकार के मन्तव्य यथेष्ट रूप से स्पष्ट कर दिये गये हैं। राजनीतिक नेताओं-द्वारा संघठित नई शासन-परिषद् स्थापित करने और शासन-विधान बनानेवाली सभा या सम्मेलन यथासम्भव शीघ्र-से-शीघ्र जुटाने का उसका दृढ़ निश्चय है।

"मैं इस समय इस विषय की विस्तृत बातों की चर्चा नहीं कर सकता कि यह परिषद् और सभा किस प्रकार संघठित की जायँगी तथा वे कठिनाइयाँ कैसे दूर की जायँगी जो हमें पूर्णतः ज्ञात हैं। मैं भारत को स्वाधीनता की दिशा में उठाये जानेवाले कदमों को कोई तारीख या तारीखें निर्धारित करने की चेष्टा को भी बुद्धिमानी का कार्य नहीं समझता। मैं आपको केवल यह

आश्वासन दे सकता हूँ कि दिल्ली और ह्वाइटहाल दोनों स्थानों में इस कार्रवाई पर प्राथमिकता की चिप्पी लगी हुई है। इस महान् कार्य में मैं आपके सहयोग और सद्भावना की याचना करता हूँ।

"इस अधिवेशन में आप लोग पहले से हो काम-रोको प्रस्तावों में आजकल की महत्त्वपूर्ण समस्याओं पर सोच-विचार कर चुके हैं। कानून-सम्बन्धी प्रस्ताव सरकारी प्रवक्ताओं-द्वारा आप-लोगों के सम्मुख उपस्थित किये जायँगे। इनमें कुछ महत्त्वपूर्ण विषय भी हैं जो गहरे विवेचन के बाद उपस्थित किये जा रहे हैं और मेरा विचार है कि यदि धारासभा-द्वारा स्वीकृति दे दी गई तो उनसे भारत की साख और कल्याण में वृद्धि होगी। इस कथन से मेरा तात्पर्य वोट प्राप्त करने के लिए आपलोगों को प्रभावित करना नहीं है। शायद आप में से कुछ व्यक्ति यह ठीक समझते हों कि प्रायः प्रत्येक विषय पर सरकार के विरुद्ध वोट दिया जाय और उसे अधिक से अधिक बार पराजित किया जाय। यदि आपका यह विश्वास हो कि ऐसा करना आपका राज-नीतिक कर्तव्य है तो मैं इस बारे में कुछ भी नहीं कहना चाहता। हां, मैं यह अवश्य समझता हूँ कि ऐसे कानून को रोकना या उसे पास करने में विलम्ब करना अदूरदर्शिता होगी, जिससे भारत का वास्तविक हित होने की सम्भावना हो। परन्तु यह निर्णय करना तो आपका काम है।

"फिर भी, मैं यह चाहता हूं कि आप इस अधिवेशन के दौरान में इस सभा की बहसों में ऐसी कोई बात न कहें, जिससे मुझे राजनीतिक आधार पर अपनी शासन-परिषद् को बनाने में कठिनाई पेश आये अथवा मुख्य वैधानिक समस्याओं के समझौते की सम्भावना पर उसका प्रतिकूल प्रभाव पड़े अथवा देश में पहले से ही विद्यमान कटुता और अधिक बढ़ जाय।

"केन्द्रीय असेम्बली के चुनावों के समय काफी से अधिक वैमनस्य पैदा हो गया है और यह सम्भावना है कि प्रान्तीय चुनावों के समय भी ऐसा ही होगा। यदि इस अधिवेशन के दौरान में सभी भाषणों में संयम से काम लिया जाय तो उससे मुझे और मेरा ख्याल है कि आपके दलों के नेताओं को भी बड़ी मदद मिलेगी।

"मुझे आशा है और मैं विश्वास करता हूं कि असेम्बली-द्वारा विनाश-मूलक कार्यों के अन्त का समय निकट है। यदि मुख्य दलों द्वारा समर्थनप्राप्त नई शासन-परिषद् मनोनीत करने मे मैं सफल हुआ, तो अगले अधिवेशन में आपलोगों के सम्मुख अत्यधिक महत्त्वपूर्ण रचनात्मक कार्य उपस्थित किया जायगा।"

पाठकों की सुविधा के लिए हम १ सितम्बर, १९४५ को वाइसराय के भाषण के एक अंश का उद्धरण देते हैं:—

"सम्राट् की सरकार का इरादा यथासम्भव शीघ्र ही एक विधान-परिषद् बुलाने का है और उसने प्रारम्भिक कार्रवाई के रूप में चुनाव के बाद प्रान्तीय असेम्बलियों के प्रतिनिधियों से मुझे यह पता लगाने के लिए बातचीत करने का अधिकार दिया है कि १९४२ की घोषणा के प्रस्ताव स्वीकार्य हैं या नहीं, अथवा कोई अन्य योजना उससे उत्तम जान पड़ती है।

वाइसराय ने यह भी कहा कि "भारतीय रियासतों के प्रतिनिधियों से भी बातचीत होनी चाहिए कि विधान-परिषद् की कार्यवाही में रियासतें किस प्रकार हाथ बँटा सकती हैं।

वाइसराय ने यह भी कहा—"सम्राट् की सरकार ने मुझे यह अधिकार भी दिया है कि प्रान्तीय धारा-सभाओं के चुनाव के परिणाम जैसे ही प्रकाशित हों वैसे ही एक ऐसी कार्य-कारिणी परिषद् स्थापित करूँ, जिसे भारत के मुख्य राजनीतिक दलों का समर्थन प्राप्त हो।"

इस बात की काफी चर्चा थी कि जुलाई, १९४५ में शिमला में जैसा लज्जाजनक नाटक हुआ था उसकी पुनरावृत्ति इस बार न हो। २१ जनवरी, १९४६ को प्रकाशित एक विज्ञप्ति में उससे बचने का एक तरीका निकाला गया:—

"प्रान्तों में चुनाव समाप्त हो जाने और प्रान्तीय मन्त्रिमण्डल स्थापित हो चुकने पर वाइसराय प्रान्तीय सरकारों से कार्यकारिणी परिषद् के लिए कुछ नाम माँगेंगे। ये नाम अधिक नहीं सिर्फ दो या तीन होंगे।

"नाम प्राप्त हो जाने पर वाइसराय एक कामचलाऊ सरकार के सदस्यों का चुनाव कर लेंगे और यदि किसी प्रान्तीय सरकार ने नाम भेजने से इन्कार कर दिया तब भी वाइसराय की योजना पर उसका कुछ प्रभाव न पड़ेगा।

"यदि कोई प्रान्तीय सरकार नाम भेजने से इन्कार करेगी तो वाइसराय प्रान्तीय असेम्बली के दलों के नेताओं से सम्पर्क करेंगे और फिर कार्य-कारिणी परिषद् में उन व्यक्तियों को रख लेंगे, जिन्हें वे प्रतिनिधि समझेंगे।"

इस विज्ञप्ति में सदाशयता की एक झलक दिखायी देती थी। लार्ड वेवेल से भारत के भविष्य के सम्बन्ध में कलकत्ता में प्रश्न किये जाने पर उन्होंने कहा कि वर्तमान राजनीतिक अड़ंगा अधिक समय तक न रहने दिया जायगा और यदि दुर्भाग्यवश भारतीयों के मतभेद मिट न सके तो ब्रिटिश सरकार को कुछ न कुछ घोषणा करनी ही पड़ेगी। यदि किसी दल ने सम्राट्-सरकार की योजना से सहयोग करने से इन्कार कर दिया तो सरकार विरोध के बावजूद योजना को अमल में लायेगी।

योजना क्या हो सकती थी ? निस्संदेह शिमले के नाटक की पुनरावृत्ति तो नहीं होने दी जायगी। यह सिर्फ राष्ट्र का ही सवाल न था। किसी दल या नेता के हठ के कारण राष्ट्र की उन्नति को रोक देना एक बेरहमी ही थी।

शिमला में लार्ड वेवल झुक गये थे। वर्तमान योजना में वे झुकेंगे नहीं। एक अल्पसंख्यक दल के हठ का यही जवाब हो सकता था। प्रस्तावित योजना के अन्तर्गत कांग्रेस-बहुमत वाले प्रान्त दो या तीन ऐसे नाम भेजेंगे, जिन्हें वे शासन-परिषद् में रखना चाहते हों। इसी प्रकार मुस्लिम-बहुमतवाले प्रान्त भी अपने प्रतिनिधियों के नाम भेजेंगे। इस प्रकार ११ प्रान्तों से जो ११ प्रतिनिधि चुने जायँगे वे वास्तव में जनता के प्रतिनिधि होंगे। तब मि० जिना ने अनुभव किया कि वाइसराय ने ऐसी योजना निकाली है, जिसके अतंर्गत यदि प्रान्तीय प्रधान-मंत्रियों ने नाम भेजने से इन्कार कर दिया तो वाइसराय प्रान्तीय असेम्बली के दलों के नेताओं से सम्पर्क कायम करेंगे और शासन-परिषद् के सदस्यों का चुनाव कर लेंगे। वाइसराय ने अपनी दूसरी लंदन-यात्रा के बाद १९ सितम्बर को जो वचन दिया था उसे इस प्रकार पूरा करने में वे समर्थ हो सकेंगे। इस तरह जिस शासन-परिषद् की स्थापना होगी उसे प्रमुख राजनीतिक दलों का समर्थन प्राप्त हो सकेगा। यद्यपि इस अवसर पर वाइसराय ने राजनीतिक नेताओं के परिषद् की बात कही थी फिर भी उन्होंने अपने २८ जनवरीवाले भाषण में ऐसी परिषद् का हवाला दिया, जिसे मुख्य राजनीतिक दलों का समर्थन प्राप्त हो सके। इस प्रकार श्री जिन्ना ने आनेवाली मुसीबत को महसूस किया और यह कह कर कि अंतरिम सरकार का जरूरत ही नहीं है, समस्या से बच गये। दूसरे लफ्जों में यह हार मान लेना था।

भारत के लिए जिस मंत्रि-मिशन की नियुक्ति की घोषणा की गयी थी उसमें लार्ड पैथिक-

लारेंस, सर स्टैफर्ड क्रिप्स तथा श्री एच० वी० अलेग्जैंडर थे।

२१ फरवरी, १९४६ को लार्ड पैथिक-लारेंस के सम्मान में एक भोज दिया गया जिसमें कहा गया कि वे जैसे साथियों के साथ जा रहे हैं उससे इन्हें अपने मिशन में सफलता अवश्य ही मिलनी चाहिए।

लार्ड पैथिक लारेंस ने कहा कि "समस्या बहुत ही पेचीदी है। हमें जिस पथ से चल कर स्वाधीन भारत के आधार के लक्ष्य तक पहुंचना है वह अभी साफ नहीं है। परन्तु हमें स्वाधीन भारत का नज़ारा दिखायी देने लगा है और इस नज़ारे से उत्साहित होकर भारतीय प्रतिनिधियों के साथ प्रयत्न करते हुए स्वाधीनता के मार्ग को हमें खोज निकालना है। हम भारत का संरक्षण बड़े सम्मान और गौरव से उसके नेताओं को सौंप सकते हैं।

लार्ड पैथिक-लारेंस ने आगे कहा "अंग्रेजों ने जो वचन दिये हैं उन्हें पूरा करने के लिए हम आगे बढ़ रहे हैं। अपनी बातचीत के दौरान में हम कोई ऐसी शर्त नहीं रखना चाहते, जिसका भारत की स्वाधीनता से मेल न खाता हो। हमने जिन सिद्धान्तों पर चलने की जिम्मेदारी ली है उनमें से किसी भी सिद्धान्त से हम हटना नहीं चाहते। भारत जिस विधान के आधार पर स्वाधीनता का उपभोग करना चाहता है अथवा एक स्वाधीन राष्ट्र की चिन्ताओं व जिम्मेदारियों को उठाना चाहता है उसका निर्माण स्वयं भारतीय प्रतिनिधियों ही को करना है। भारतीय प्रतिनिधियों के किसी समझौते पर पहुंचने तथा विधान-निर्माण करने में उन्हें सहायता प्रदान करने में हम कोई प्रयत्न बाकी नहीं छोड़ेंगे।

'ऐसे लोग अवश्य हैं जिन्हें संतुष्ट करना कठिन है और इसी तरह ऐसी समस्याएं भी हैं जिन का हल करना मुश्किल है; किन्तु मंत्री के रूप में अपने सात महीने के अनुभव से मैं इसी परिणाम पर पहुंचा हूं कि असंतुष्ट व्यक्तियों को संतुष्ट करना और हल न हो सकनेवाली समस्याओं को हल करना मंत्रियों का ही काम है।

"मेरा विश्वास है कि इस भारतीय महाद्वीप का, जिसमें समस्त संसार की जनता का पांचवां भाग है, भविष्य बहुत ही उज्ज्वल है। संसार के पूर्वीय भाग में उसे सभ्यता के रक्षक का पार्ट अदा करना है। इससे मुझे और भी प्रोत्साहन मिलेगा कि स्वाधीनता प्राप्त करने में भारतीयों की सहायता करके हम एक ऐसी भावना को मुक्त करेंगे, जो भविष्य में नयी प्रेरणा प्रदान करेगी।"

लार्ड पैथिक-लारेंस २३ मार्च १९४६ को भारत पहुंचे और आपने अपने एक वक्तव्य में कहा:—"ब्रिटिश सरकार तथा ब्रिटिश राष्ट्र अपने उन वायदों तथा वचनों को पूरा करना चाहते हैं जो दिये गये हैं और हम विश्वास दिलाते हैं कि अपनी बातचीत के बीच हम ऐसी कोई शर्त उपस्थित न करेंगे, जो भारत के स्वाधीन अस्तित्व से मेल न खाती हो।

"अभी भारतीय स्वाधीनता की ओर ले जानेवाला पथ साफ नहीं हुआ है, किन्तु स्वाधीनता का जो नजारा हमें दिखायी दे रहा है उस से हमें सहयोग के पथ पर अग्रसर होने के लिए प्रेरणा मिलेगी।"

सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने कहा कि वे हिन्दुस्तान में विरोधी दावों का फैसला करने नहीं आये हैं, बल्कि भारतीयों के हाथ में सत्ता सौंपने का उपाय खोज निकालने आये हैं।

लार्ड पैथिक-लारेंस तथा स्टैफर्ड क्रिप्स भारत में आते ही समाचारपत्रों के प्रतिनिधियों से मिले और इन्होंने कितने ही प्रश्नों का उत्तर दिया, जिनमें पाकिस्तान से लेकर सोवियट रूस

के खतरे तक अनेक बातें आ गयी थीं।

लार्ड पैथिक-लारेंस ने एक वक्तव्य में कहा—"जैसे कि मैं और मेरे साथी भारत की भूमि पर पदार्पण करते हैं, हम इस देश की जनता के लिए ब्रिटिश सरकार तथा ब्रिटिश राष्ट्र का एक संदेश लाये हैं और यह संदेश मैत्री तथा सद्भावना का है। हमें विश्वास है कि भारत एक महान् भविष्य के द्वार पर खड़ा है। इस भविष्य में वह स्वयं स्वाधीन रह कर पूर्व में स्वाधीनता की रक्षा करेगा और संसार के राष्ट्रों के मध्य अपने विशेष प्रभाव का उपयोग करेगा।

"हम सिर्फ एक ही उद्देश्य लेकर आये हैं। हम लार्ड वेवल के साथ भारतीय नेताओं तथा भारत के निर्वाचित प्रतिनिधियों से बातचीत करके यह निश्चय करना चाहते हैं कि अपने देश के शासन पर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त करने की आपकी जो आकांक्षा है उसे आप किस प्रकार पूरी कर सकते हैं। हम चाहते हैं कि जिम्मेदारी का हस्तांतरण हम इस भांति करें, जिससे यह कार्य हमारे लिए सम्मान और अभिमान का कारण बन जाय।

"ब्रिटिश सरकार और ब्रिटिश राष्ट्र की यह इच्छा है कि जो भी वचन दिये गये हैं उन्हें बिना किसी अपवाद के पूरा किया जाय और हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि अपनी बातचीत के मध्य हम ऐसी कोई बात न कहेंगे जो स्वाधीन राष्ट्र के रूप में भारत की मर्यादा के विरुद्ध हो।

"इस तरह अपने भारतीय सहयोगियों के समान ही हमारा लक्ष्य है और आगामी सप्ताहों में इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए हम कोई प्रयत्न बाकी नहीं छोड़ेंगे।"

मंत्रि-मिशन का भारत में अच्छा स्वागत हुआ। लार्ड पैथिक-लारेंस ७० वर्ष के थे। उनका अपना व्यक्तित्व था। वे बहुत ही विनम्र, स्पष्टवादी तथा विश्वसनीय थे। सर स्टैफर्ड वही छरहरे बदन के हाजिर-जवाब राजनीतिज्ञ थे, जैसे वे १९४२ में थे। श्री अलैग्जेंडर काम की अपेक्षा अपनी भारतीय यात्रा में अधिक दिलचस्पी ले रहे थे। वे निरपेक्ष तथा शिष्ट जान पड़ते थे और सीधे-सादे व्यक्तित्व के पीछे उनकी विज्ञता छिपी जान पड़ती थी। मिशन भारत के प्रमुख राजनीतिज्ञों से मिला और इस देश की राजनीतिक परिस्थिति से अवगत हुआ। मुलाकातें लम्बी हुईं और कांग्रेस की कार्यसमिति कहीं १२ अप्रैल को बुलायी गयी। मंत्रि-मिशन ने वाइसराय को भी अपना एक सदस्य बना लिया। यह १९४२ की तुलना में नवीनता थी, क्योंकि तब सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने अकेले ही जिम्मेदारी उठा रखी थी। मिशन ने बातचीत चलाने के लिए कांग्रेस तथा लीग से अपने चार-चार प्रतिनिधि चुनने का अनुरोध किया। इन प्रतिनिधियों को मिशन से शिमला में मिलना था। कांग्रेस के प्रतिनिधियों ने निर्द्धारित समय स्वीकार कर लिया, किन्तु श्री जिन्ना ने तीन दिन बाद अपना समय दिया। त्रिदल-सम्मेलन दस दिन तक पहाड़ पर चलता रहा। फिर मिशन दिल्ली आ गया। निमंत्रण के साथ विचार के लिए कतिपय प्रस्ताव उपस्थित किये गये और इन प्रस्तावों का स्पष्टीकरण आवश्यक था।

यहां प्रस्तावों का संक्षेप दे देना अनुचित न होगा—"जिस बालिग मताधिकार पर कांग्रेस जोर दे रही थी उसे सिर्फ इसीलिए रोक लिया गया कि उसे जारी करने में देरी अवश्यम्भावी है। ठीक प्रतिनिधित्व प्राप्त करने के लिए प्रान्तों की मौजूदा निम्न धारासभाओं को चुनाव-समितियां मान लिया गया। १९४२ में क्रिप्स ने भी यही कहा था, किन्तु उनकी योजना में कुल १,५८९ सदस्यों को निर्वाचन समिति का रूप दे दिया गया था। फिर सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने यह सुझाव भी उपस्थित किया था कि प्रान्तीय असेम्बलियों का दस प्रतिशत प्रतिनिधित्व विधान परिषद् में रहना चाहिए। परन्तु स्थानों का सम्बन्ध जनसंख्या से स्थापित करके यानी १० लाख

के पीछे एक प्रतिनिधि के हिसाब से कुल स्थानों की संख्या दुगनी कर दी गयी। अल्पसंख्यकों को जो अतिरिक्त-प्रतिनिधित्व दिया गया था उसका अंत कर दिया गया। मुसलमानों, सिखों तथा अन्यों के लिए स्थान निर्धारित किये गये, किन्तु अन्तिम वर्ग में से भारतीय ईसाइयों तथा एंग्लो-इंडियनों को छोड़ दिया गया। इसीलिए अल्पसंख्यकों, फिरकेवाली और अलग किये गये क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करने के लिए एक विशेष समिति बनायी गयी और कहा गया कि उनके अधिकारों का समावेश प्रान्तों, समूहों अथवा संघ के विधानों में कर लिया जायगा। इसकी पद्धति नीचे दी जाती है:—

"प्रान्त निम्न तीन समूहों (ग्रुपों) में रखे जायँगे:—'ए'—मद्रास, बम्बई, संयुक्तप्रान्त, बिहार, मध्यप्रान्त, उड़ीसा; 'बी'—पंजाब, सीमाप्रान्त, सिंध; 'सी'—बंगाल, आसाम। 'ए' में १६७ आम और २० मुस्लिम प्रतिनिधि रहेंगे। 'बी' में ६ आम, २२ मुस्लिम और ४ सिख प्रतिनिधि रहेंगे। 'सी' में ३४ आम और ३६ मुस्लिम प्रतिनिधि होंगे। रियासतें ९३ प्रतिनिधि भेजेंगी, किन्तु चुनाव का तरीका अभी निश्चित होना बाकी है। इन कुल ३८५ प्रतिनिधियों में दिल्ली, अजमेर-मेरवाड़ा कुर्ग और ब्रिटिश बिलोचिस्तान के एक-एक प्रतिनिधि को जोड़ना चाहिए। ये ३८९ प्रतिनिधि शीघ्र ही नयी दिल्ली में एकत्र होकर अपने अध्यक्ष तथा अन्य पदाधिकारियों का चुनाव करेंगे और एक सलाहकार समिति भी नियुक्त करेंगे। इसके बाद वे नवीन भारत की नींव रखने का कार्य हाथ में लेंगे।

"प्रारम्भिक कार्यवाही के लिए एकत्र होने के बाद प्रतिनिधि तीन भागों (सेक्शनों) में बँट जायँगे जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है। वे अपने समूह के प्रान्तों के लिए विधान तैयार करेंगे। वे यह भी निश्चय करेंगे कि इन प्रान्तों के लिए समूह (ग्रुप) विधान की व्यवस्था की जाय अथवा नहीं और अगर ऐसा किया जाय तो समूह को किन विषयों का प्रबंध सौंपा जाय। इसके बाद सब सदस्य फिर एकत्र होकर भारतीय संघ का विधान तैयार करेंगे।

"हर प्रान्त में प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा विधान-परिषद् के सदस्यों का चुनाव करेगी। इस प्रकार बंगाल से वहां की व्यवस्थापिका सभा आम सीटों के लिए २७ और मुस्लिम सीटों के लिए ३३ मुसलमानों का चुनाव करेगी। व्यवस्थापिका सभा के मुसलमान सदस्य ३३ मुसलमानों का और अन्य सदस्य बाकी २७ सीटों के लिए अन्य सदस्यों का चुनाव करेंगे। उड़ीसा में वहां की व्यवस्थापिका सभा ९ आम सीटों के लिए ही प्रतिनिधियों का चुनाव करेगी, क्योंकि इस प्रान्त में मुस्लिम सीटें नहीं हैं। सिन्ध में व्यवस्थापिका सभा के मुसलमान सदस्य तीन मुस्लिम प्रतिनिधियों का और शेष सदस्य एक गैर-मुसलिम सदस्य का चुनाव करेंगे। संयुक्त प्रान्त की व्यवस्थापिका सभा के मुसलमान सदस्य ८ मुस्लिम प्रतिनिधियों का और शेष सदस्य ४७ गैर-मुस्लिम प्रतिनिधियों का चुनाव करेंगे। पंजाब के अंक में ८ गैर-मुस्लिम, १६ मुस्लिम और ४ सिख हैं। सिखों को प्रतिनिधित्व केवल यहीं दिया गया है। उनका चुनाव व्यवस्थापिका सभा के सिख सदस्य करेंगे।

चुनाव की पद्धति आनुपातिक प्रतिनिधित्वकी रहेगी, जिसमें एकाकी हस्तांतरित मत प्रणाली को आधार माना जायगा। उद्देश्य यह है कि प्रतिनिधि अधिक से अधिक मतों के आधार पर नहीं बल्कि कम से कम मतों के आधार पर चुने जायँ। वितरण-प्रणाली की विशेषता यह है कि मतदाता उतने उम्मेदवारों के लिए मत प्रदान करता है, जितनी सीटें हैं; किन्तु उसे अपनी

पसन्द का क्रम नहीं बताना पड़ता। इसके विपरीत आनुपातिक प्रतिनिधित्व-पद्धति में मतदाता को अपनी पसंद १, २, ३ के क्रम से बतानी पड़ती है और यह पसंद उतने ही अंकों में बतानी पड़ती है जितनी सीटें हैं। यह प्रणाली पेचीदी मानी जाती है। परन्तु पेचीदगी का भार मतों को गिननेवालों पर पड़ता है मतदाताओं पर नहीं, क्योंकि उन्हें तो सिर्फ अपनी पसंद का क्रम ही बता देना पड़ता है। वोट पड़ने पर निर्णय का दायित्व गिननेवालों के कंधों पर चला जाता है और वे निम्न गुर को ध्यान में रख कर निर्णय सुना देते हैं।

$$\text{आवश्यक संख्या} = \left\{ \frac{\text{मतदाताओं की संख्या}}{\text{स्थानों की संख्या} + १} \right\} + १$$

यदि मत देनेवालों की वास्तविक संख्या २,००० है और सीटें हैं ४, तो मतों की आवश्यक संख्या इस प्रकार निकलेगी:—

$$\left\{ \frac{२,०००}{४+१} \right\} + १ = \left\{ \frac{२,०००}{५} \right\} + १ = ४०१$$

प्रश्न किया जा सकता है कि प्रत्येक उम्मीदवार के लिए ४०० वोट (२०००÷५) आवश्यक क्यों नहीं माने जाते। ऐसा हो सकता था, किन्तु इससे सिद्धान्त की हत्या हो जाती है, क्योंकि उद्देश्य न्यूनतम वोटों के आधार पर उम्मीदवार का चुना जाना है, जो उपर्युक्त गुर के अनुसार ४०१ है, ५०० नहीं। यदि प्रत्येक उम्मीदवार को ४०१ वोट मिलते हैं तो वे कुल ४०१×४=१६०४ वोट प्राप्त करेंगे और ३९४ वोट बच जायँगे, जो न्यूनतम निर्द्धारित संख्या से १७ कम हैं। इसीलिए यह गुर निकाला गया है। मंत्रिमिशन की योजना के अंतर्गत विधान-परिषद में चुने जाने के लिए मद्रास-जैसे विशाल प्रान्त में उम्मीदवार के लिए सिर्फ ५ वोट पाना ही काफी है।

मंत्रि-मिशन

मंत्रि-मिशन हिन्दुस्तान में करीब तीन महीने ठहरा। उसने शुरू से ही वाइसराय से मिलकर काम किया, जिससे उस गलती की सम्भावना नहीं रह गयी, जो १९४२ में सर स्टैफर्ड क्रिप्स से हुई थी। पहले चुने हुए नेताओं से बातचीत से उसकी सरगर्मी आरम्भ हुई। फिर कभी काम जोरों से हुआ और कभी धीमी गति से, और इस तरह से वह चलता रहा।

वायुयान पर उड़ते समय जब आप १०,०००फीट की उँचाई पर पहुंच जाते हैं तो आपका वायुयान घने बादलों को चीरता हुआ कभी आगे बढ़ जाता है या उनसे बचकर ऊपर या नीचे निकल जाता है तो आपको जान पड़ता है जैसे समुद्र का किसी लहर के साथ आप ऊपर चढ़ गये हों या उसके उतार के साथ कभी नीचे उतर आये हों। अगर कभी आप आकाश में ऊपर उठते हैं तो आपका हृदय भी ऊपर उछलता है और अगर नीचे उतरते हैं तो आपका सिर भी नीचे झुक जाता है। मंत्रि-मिशन के आगमन और गवर्नर-जनरल के साथ काम के पहले दो महीनों में यह दशा कम से कम उन लोगों की थी, जिन्हें अन्दरूनी बातों की कुछ भी जानकारी थी। पहले दो हफ्तेतक एक-एक व्यक्ति से मिलने की वही पुरानी चाल दुहराई गई, जो १९४२ में सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने चली थी। यह गोलमेज सम्मेलन का ही एक ढंग था। इस तरह विभिन्न दलों के नेताओं, राजनीतिज्ञों, महात्माओं, विद्वानों, शासन-परिषद के सदस्यों, उद्योगपतियों, व्यापारियों तथा वैधानिक कानून के अध्यापकों से मुलाकातें हुईं। यह गतिरोध की अवस्था थी जैसी उस समय होती है जब इंजन के

बॉयलर में भाप रुकी होती है या कार के सेल्फ-स्टार्टर में विस्फोट होने को होता है। साथ ही यह उस शक्ति के संचय का वक्त भी था, जो वायुयान में आपके कदम रखने और उसके आकाश में उठ जाने के दर्मियान आवश्यक होती है। इस बार मिशनरूपी वायुयान के चालक स्वयं गवर्नर-जनरल थे और पहले जैसी गलती नहीं की गयी थी, जबकि सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने अकेले ही उड़ने का प्रयत्न किया था और जिसका परिणाम दुर्घटना हुआ था। हां, तो मिशन का वायुयान उठा और उचित उंचाई पर पहुंच कर शान से मंडराने लगा। मिशन के पहले वक्तव्य का ही देश में अच्छा प्रभाव पड़ा। परन्तु इस वक्तव्य का विश्लेषण भारत-जैसे पूर्वी राष्ट्र के मेधावी मस्तिष्कों ने किया तो प्रकट हुआ कि उसमें जिस व्यवस्था को उपस्थित किया गया है उसमें सजीव शरीर के अंग-प्रत्यंग तो सभी हैं, किन्तु जीवन के लक्षणों का पूर्णतः अभाव है। इस योजना में उस जीवनदायिनी शक्ति और लचीलेपन का अभाव था, जिससे किसी विधान की उन्नति सम्भव होती है। लार्ड अर्विन ने कहा था कि किसी देश का विधान पेड़ की छाल के समान होना चाहिए, जो तने के साथ बढ़ता रहे--दर्जी द्वारा तैयार किये कपड़ों की भांति नहीं, जिन्हें शरीर बढ़ने पर बदलने की जरूरत पड़ती है। वक्तव्य को देखकर पहले जो हर्ष और आशा की लहर दौड़ गयी थी उसका स्थान अब उसकी परस्पर-विरोधिनी बातों को देखकर उदासीनता ने ले लिया। फिर जिन बातों के सम्बन्ध में संदेह उठा उनके स्पष्टीकरण का प्रयत्न जब किया गया तो इन स्पष्टीकरणों से वह उदासीनता निराशा में बदल गयी।

भारत को स्वाधीन होना है, किन्तु अभी नहीं। कांग्रेस भारत को वैधानिक दृष्टि से स्वाधीन देखने को अधिक इच्छुक नहीं थी—वह सिर्फ वास्तविक स्वाधीनता से ही संतुष्ट हो जाती। परन्तु वक्तव्य द्वारा यह वास्तविक स्वाधीनता भी हमें नहीं मिलनी थी। मिशन ने कहा कि विधान-परिषद् का निश्चय होने से पूर्व स्वाधीनता नहीं मिल सकती। विधान-परिषद् थी तो, किन्तु उसे तीन भागों में काम करना था। विधान-परिषद् के सदस्यों को तीन भागों में बंटने के बाद ही फैसला करना था कि समूहों (ग्रुपों) का निर्माण किया जाय अथवा नहीं। समूहों को यह भी निर्णय करना था कि उनकी धारासभाएं और सरकारें अलग रहेंगी अथवा नहीं। वक्तव्य का जो स्पष्टीकरण बाद में मांगा गया उस से उस की स्वाभाविक तथा नियमित व्याख्या को चुनौती मिली, क्योंकि कांग्रेस के शब्दों में खुद मिशन ने ही अपने इरादे उस से भिन्न बताये। यह सत्य है कि पार्लियामेंट में उपस्थित बिल के पास होने पर उसे पेश करनेवाले मंत्री के भाषण से कोई संशोधन या परिवर्द्धन नहीं हो सकता। परन्तु मिशन ने जो अपने वक्तव्य की व्याख्याएं कीं और स्पष्टीकरण किये उन में से अपने अनुकूल बातों को चुन लेना विभिन्न दलों के स्वार्थ की बात थी। पहले कहा गया था कि प्रान्त समूह में जाने के लिये स्वतंत्र है फिर लार्ड पैथिक लारेंस ने व्याख्या की कि किसी प्रान्त के लिये 'ए', 'बी' या 'सी' में से उस समूह में जाना अनिवार्य है, जिस में उसका नाम रखा गया है। सदस्यों के अलग भागों में बँटने के बाद ही निर्णय होगा कि वे कोई विशेष समूह बनाना चाहते हैं या नहीं और उस समूह के लिये अलग धारासभा और सरकार स्थापित करना चाहते हैं या नहीं। चाहे वक्तव्य के शब्दों को लिया जाय अथवा उसकी भारत मंत्री द्वारा की गयी व्याख्या को देखा जाय, इस में कुछ भी संदेह नहीं रह जाता कि समूहों के निर्माण के सम्बन्ध में काफी स्वच्छंदता दी गयी थी। कांग्रेस की तरफ से कहा गया कि प्रान्तों को किसी भाग के साथ बांधा न जाय, क्योंकि इससे प्रान्तीय स्वतंत्रता के सिद्धान्त की हत्या होती है। परन्तु मंत्रि-मिशन के हठ और वाइसराय के इस उत्तर

के लिए क्या कहा जाता कि समूहीकरण योजना का आवश्यक अंग है। इस प्रकार वक्तव्य के इस अंश को विकृत कर दिया गया। कांग्रेस जिस कील को ढीली करके उखाड़ना चाहती थी उसे २५ मई १९४६ के वक्तव्य-द्वारा ठोक-ठोक कर और गहरा गाड़ दिया गया। इस कील को व्याख्या के स्वतंत्र अधिकार-द्वारा उखाड़ा जा सकता था, किन्तु स्पष्टीकरण के लिए ईमानदारी से जो मांग की गई थी उससे वास्तविक गुत्थी और उलझ गई और यहां तक कि व्याख्या के अधिकार से ही इन्कार कर दिया गया। परन्तु यह अंतिम फैसला नहीं हो सकता था।

पत्रव्यवहार के बीच प्रभुता, रियासतों की सार्वभौमिक सत्ता, विधान-परिषद् में यूरोपियनों का प्रश्न, गवर्नर-जनरल का विशेषाधिकार तथा केन्द्रीय असेम्बली के प्रति प्रान्तीय सरकारों का दायित्व आदि विषयों को प्रधानता मिली। समाचारपत्रों में भी इस के सम्बन्ध में खूब सोच-विचार हुआ और साथ ही कांग्रेस के उत्तर पर भी विचार हुआ। मिशन ने इस के अतिरिक्त कुछ भी झुकने से इन्कार कर दिया कि बंगाल और आसाम की धारासभाओं के यूरोपियन सदस्य विधान-परिषद् के सदस्यों के चुनाव में भाग नहीं लेंगे, सेना अन्त तक रहेगी और भारतीयों के इच्छा करने पर उसे बाद में भी रखा जा सकेगा। वक्तव्य में कहा गया था कि प्रभुता-शक्ति न तो ब्रिटेन में रहेगी और न वह अंतरिम सरकार को ही मिलेगी। यह ठीक ही था कि प्रभुता-शक्ति लंदन से चल चकी थी, किन्तु दिल्ली पंहुचने के स्थान पर उसे स्वेज नहर पर ही मंडराते रहना था। परन्तु अन्त में सत्य प्रकट हुआ कि प्रभुशक्ति नरेशों को प्राप्त होगी। ब्रिटिश सरकार कलम की एक लतर से भारत में एक नहीं, बल्कि ५६२ छोटे-बड़े अलस्टर कायम करने जा रही थी। वाह, ब्रिटेन हमारे लिए अच्छी विरासत छोड़े जा रहा था!

मिशन के सम्बन्ध में प्रकाशित प्रत्येक सूचना, ब्राड्कास्ट या वक्तव्य से या तो संतोष होता था और या उदासीनता की भावना उत्पन्न हो जाती थी, जिससे संदेह होता था, कि मिशन का वायुयान तूफान का सामना करता हुआ यात्रियों को स्वराज्य के लक्ष्य तक पहुँचा सकेगा अथवा अधर में बिगड़ जायगा।

कनाडा, आस्ट्रेलिया और दक्षिण अफ्रीका ने अपने विधान खुद तैयार किये थे अथवा नीति के सम्बन्ध में सिद्धान्त निर्धारित कर दिये थे या प्रस्ताव पास किये थे। जहां अमरीका और आयर-लैंड को अपने विधान आप तैयार करने की स्वतंत्रता थी वहां सिर्फ भारत का विधान ही एक ऐसी विधान-परिषद् को तैयार करता था, जिसका जन्म स्वयं नहीं हुआ था और जिसे बातचीत के बाद स्थापित किया जा रहा था। भारत के विधान-परिषद् के अधिकारों पर अनेक प्रतिबंध लगाये जा रहे थे। अधिकार छोड़नेवाली सत्ता ने विरोधी दलों की मांगों के बीच का मार्ग ग्रहण किया और विधान तैयार करने के आधार के संबंध में अपने प्रस्ताव उपस्थित किये। रियासतों को, जो देश के सम्पूर्ण क्षेत्रफल के तिहाई भाग का और सम्पूर्ण जनसंख्या के चौथाई अंश का प्रतिनिधित्व करती थीं, अलग कर दिया गया। अधिकार छोड़नेवाली सत्ता का प्रस्ताव देश को तीन भागों में विभाजित करने और उनका सम्बन्ध एक कमजोर केन्द्र द्वारा कायम करने का था। यह सत्ता फिरकों तथा अल्पसंख्यकों के स्वार्थों की रक्षा के लिए अपनी सेना छोड़ जाना चाहती थी। उसका विचार इन शर्तों का समावेश एक संधि के रूप में करने का था। सम्पूर्ण विधान-परिषद् का प्रान्तीय या सामूहिक विधानों के निर्माण में हाथ नहीं होता था और समूह प्रान्तों को हड़प जाने के लिए आजाद थे। जबकि जनता की मांग पहले केन्द्रीय विधान और फिर प्रान्तीय विधान तैयार करने की थी, मिशन ने कार्यक्रम इससे बिल्कुल उलटा रखा था। यही नहीं, विधान-परिषद् से

अंग्रेजी सेना की संगीनों की साया में काम करने-को कहा गया था। रियासतों के नरेशों को,जो सदा से निरंकुश थे, प्रभुता-शक्ति हटा लेने की घोषणा करके भड़का दिया गया था।

इन सब से अधिक महत्वपूर्ण समान-प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त था। कांग्रेस की कार्यसमिति की बैठक जिन दिनों दिल्ली में हो रही थी उन दिनों निराशा के बादल घिर आये थे। अफवाहें उड़ रही थीं कि वाइसराय श्री जिन्ना को समान प्रतिनिधित्व का वचन दे चुके हैं—वे केन्द्रीय शासन-परिषद् में कांग्रेस और लीग को समान प्रतिनिधित्व देने की बात मान चुके हैं।

मौलाना अबुल कलाम आजाद को लिखे वाइसराय के पत्र से जो आशा उत्पन्न हुई थी वह इन अफवाहों से नष्ट हो गई। २४ मई को कार्य-समिति का प्रस्ताव तैयार होने के समय मौलाना आजाद ने वाइसराय से स्पष्टीकरण मांगा था और वाइसराय ने मौलाना साहब को पत्र लिखकर आश्वस्त भी किया था। लार्ड वेवल ने कहा कि मैंने भारत की शासन-व्यवस्था ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के किसी स्वाधीन उपनिवेश के समान होने की बात नहीं कही, फिर भी स्वाधीन उपनिवेशों से जिस प्रकार सलाह-मशविरा किया जाता है और उनका आदर किया जाता है उसी प्रकार का व्यवहार सम्राट् की सरकार भारत की केन्द्रीय सरकार से करेगी। लार्ड वेवल ने यह भी कहा कि भावना का महत्व गारंटी या लिखित आश्वासन से कहीं अधिक है। उन्होंने बाहरी नियंत्रण से मुक्ति का भी आश्वासन दिया। अब समान-प्रतिनिधित्व तथा आसाम व बंगाल की धारा सभाओं में यूरोपियनों के वोट देने और उनके विधान-परिषद् के लिए उम्मेदवार के रूप में खड़े होने के प्रश्न उठे। बंगाल की धारा-सभा में एंग्लो-इंडियन तथा ईसाइयों को मिलाकर यूरोपियनों के हाथ में ३० वोट थे और इस हिसाब से विधान-परिषद् में उन्हें ६ स्थान मिलते। इसका परिणाम यह होता कि बंगाल के हिन्दुओं को अपने ३४ आम स्थानों में से ६ से हाथ धोना पड़ता। इसी प्रकार आसाम में ६ यूरोपियन हिन्दू व मुसलमानों को अपने इशारों पर नचाते। आसाम में गैर-मुस्लिम व मुस्लिम प्रतिनिधियों का अनुपात यूरोपियनों को छोड़ कर ७ और ३ था। दोनों प्रान्तों को मिलाकर हिन्दू और मुसलमानों का अनुपात लगभग बराबर था। इसके अलावा दो और भी बातें थीं, जिनका महत्व सब से अधिक था। उड़ीसा में मुस्लिम अल्पसंख्यकों की और सीमाप्रान्त में अमुस्लिम अल्पसंख्यकों की पूर्णत. उपेक्षा की गई थी और विधान-परिषद् में उन्हें कोई प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया था। प्रान्तों से विधान-परिषद् के लिए १०,००,००० जनसंख्या के पीछे एक स्थान की व्यवस्था की गयी थी और अल्पमतवालों को अनुपात से अधिक प्रतिनिधित्व देने के सिद्धान्त को त्याग दिया गया था। जबकि यूरोपियनों की संख्या बंगाल में सिर्फ कुछ हजार ही थी, उन्हें विधान-परिषद् में प्रतिनिधित्व कहीं अधिक दिया जा रहा था। दूसरी महत्व की बात यह थी कि यूरोपियन विदेशी थे, जैसा वे स्वयं भी स्वीकार करते थे। ऐसी दशा में उन्हें एक ऐसे देश की विधान परिषद् में कैसे स्थान दिया जा सकता था, जो स्वाधीन घोषित किया जानेवाला था।

साथ ही समान प्रतिनिधित्व का प्रश्न भी गुत्थी बनकर खड़ा था। शिमला के पहले सम्मेलन (जुलाई १९४५) में लार्ड वेवल ने शासन-परिषद् के सदस्यों के नाम, सवर्ण-हिन्दुओं तथा मुसलमानों की बराबरी के आधार पर मांगे थे। यही कारण था कि कांग्रेस ने पांच सदस्यों की सूची में अछूतों को नहीं रखा था, किन्तु १५ सदस्यों की सूची में २ अछूत सदस्यों को सम्मिलित कर लिया गया था। एक साल बाद दिल्ली (जून, १९४६) में १५ की संख्या घट कर १२ रह गयी और समानता का प्रश्न कांग्रेस और लीग के मध्य रह गया। इसीलिए इसके हिस्से में जो

पांच नाम आये थे उन्हीं में उसे अछूतों को प्रतिनिधित्व देना था और साथ ही राष्ट्रीय संस्था के रूप में उसके लिए एक मुसलमान नाम भी सम्मिलित कर लेना आवश्यक था। इस प्रकार १२ सदस्यों की परिषद् में हिन्दुओं के स्थान केवल ३ ही रह गये थे। स्पष्ट था कि लीग की प्रेरणा से ही सदस्यों की संख्या घटाकर १२ की गयी थी, जिसका कारण यह आशंका थी कि अतिरिक्त-सदस्यों का झुकाव कांग्रेस की ओर होता। इसीलिए अतिरिक्त-सदस्यों में ३ की कमी की गयी। इस सूची में मुसलमान ५+१=६ होते और सवर्ण हिन्दू होते केवल ३। परिणाम यह होता कि शासन-परिषद् में बहुसंख्यक अल्पसंख्या में रह जाते। यदि परिषद् के सदस्य योग्य और ईमानदार व्यक्ति हैं तो कांग्रेस को इस बात की पर्वाह न होगी कि उसमें कौन व्यक्ति हैं, पर लीग की समान प्रतिनिधित्ववाली मांग का आधार दो राष्ट्रोंवाला सिद्धान्त था। परन्तु जब मंत्रि-मिशन इस सिद्धान्त को अस्वीकार कर चुका था तो फिर व्यवहार में उस पर जोर देने लाभ ही क्या था। समानता का फल समूहीकरण से उत्पन्न हुआ था और वे समय रहते ही वृक्ष को इतना बड़ा कर देना चाहते थे, जिससे फल-फूल की भरपूर प्राप्ति हो सके। यदि कांग्रेस इस बीज को जमने देती और उसके वृक्ष को फलने-फूलने देती तो यह उसके आत्महत्या करने के ही समान होता।

अक्सर यह सवाल उठाया जाता है कि जब कांग्रेस ने समानता का सिद्धान्त शिमला के पहले सम्मेलन में स्वीकार कर लिया था तो उसने शिमला के दूसरे सम्मेलन में उस पर आपत्ति क्यों उठायी थी? यह सवाल मुनासिब है और इसका उत्तर भी हमें देना चाहिए। पहले शिमला-सम्मेलन में समानता लीग और कांग्रेस के मध्य नहीं बल्कि सवर्ण-हिन्दुओं और मुसलमानों के मध्य स्वीकार की गयी थी। लार्ड वेवल ने भूलाभाई-लियाकत अली समझौते का संशोधन इसी रूप में किया था। दूसरी बात यह है कि शिमला के पहले सम्मेलन में विधान-परिषद् और भविष्य के स्थायी मंत्रिमंडल के सम्बन्ध में बातचीत नहीं हुई थी। शिमला के पहले सम्मेलन में सिर्फ शासन-व्यवस्था में सुधार का ही एक प्रयत्न किया गया था। इसके बावजूद उसे दूसरे शिमला सम्मेलन के समय नजीर माना गया और फिर बाद में विधान परिषद् के समय नजीर माना जा सकता था। एक बात से दूसरी का जन्म होता है। एक बार जिस सिद्धान्त को अस्थायी रूप से माना जाता है वही भविष्य में स्थायित्व ग्रहण कर लेता है। यही कारण है जून, १९४६ में इस का दिल्ली में विरोध किया गया था।

यह भी कहा गया कि कांग्रेस को आदान-प्रदान का सिद्धान्त मानना चाहिए। लेकिन आलोचक भूल जाते हैं कि कांग्रेस कितना अधिक पहले दे चुकी था। और उसने लिया कितना कम था। ११ जून, १९४६ को दिल्ली में वाइसराय ने महात्मा गांधी से उदारता दिखाने की जो अपील की थी। उसमें कांग्रेस-द्वारा किये गये समझौतों को देखते हुए वास्तविकता का अभाव दिखाई पड़ता था। त्याग का मतलब यह नहीं है कि एक पक्ष अपने को बिल्कुल मिटा ही डाले। इसलिए वाइसराय की अपील अनुचित थी। उसके उत्तर में सिर्फ यही कहा जा सकता है कि मन्त्रिमण्डल में सिर्फ सर्वोत्तम व्यक्ति ही चुने जाने चाहिएं।

सत्य तो यह है कि अस्थायी सरकार की स्थापना से ही विधान-परिषद् के लिए प्रेरणा मिलती थी। सच्ची विधान-परिषद् तो वही है जो अस्थायी राष्ट्रीय-सरकार द्वारा बुलायी जाय, किन्तु कभी-कभी क्रांति के बाद कायम होनेवाली परिषद् भी अस्थायी सरकार का रूप धारण कर लेती है। कांग्रेस उन समूहों को अपने में विलीन कर चुकी थी, जिनमें फूट के बीज निहित थे। कांग्रेस यूरोपियनों के प्रतिनिधित्व से पीछा छुड़ाना चाहती थी, जो विष का घूंट निगलते

समय गले में कांटे के समान अटक जाता था। अब कांग्रेस से समान-प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त स्वीकार करने का मतलब यह हुआ कि उसे अपने ही हाथों अपना विनाश करने को मजबूर कर दिया जाय।

इस बातचीत के समय कांग्रेस को एक निश्चित असुविधा थी। जहां लीग की तरफ से उसका प्रतिनिधि उसका एक ही नेता करता था वहां कांग्रेस का नेतृत्व एक से अधिक व्यक्तियों के हाथ में था। उसके वास्तविक नेता महात्मा गांधी, नियमित नेता मौलाना आजाद, प्रकट रूप से पण्डित जवाहरलाल और उसकी क्रियात्मक शक्तियों के नेता सरदार पटेल थे। इस चतुर्दिक नेतृत्व की तुलना में लीग को एक और अखण्डित नेतृत्व का लाभ प्राप्त था। कांग्रेस के प्रत्येक नेता से अलग-अलग अनुरोध करने का अवसर भी इसीलिए वाइसराय को मिल जाता था। कभी वाइसराय अपने किसी सेक्रेटरी को गांधीजी के पास भेज देते थे, कभी टेलीफोन करते थे और कभी उन्हें बुलाने के लिए अपनी कार भेज देते थे। गांधीजी के सम्बन्ध में यह उचित ही था, क्योंकि वे अपने को कांग्रेस, लीग, वाइसराय और मन्त्रि-मिशन के परामर्शदाता कहते थे। या तो वाइसराय मौलाना साहब को पत्र लिख कर मुलाकात का समय निश्चित कर लेते थे या जवाहरलाल को ही खाने के लिए बुला लेते थे। कभी-कभी वे सरदार से मिल कर इनकी खरी बातें भी सुनते थे कि वे गृहयुद्ध से नहीं डरते, और यह कि सरकार-द्वारा एक बार निर्णय करने पर इन धमकियों का अन्त हो जायेगा और यह भी कि समान-प्रतिनिधित्व के प्रश्न पर कांग्रेस कार्य-समिति में कोई मतभेद नहीं है। इन खरी बातों से कभी तो वाइसराय स्तब्ध रह जाते थे और कभी नवीन ज्ञान प्राप्त करते थे। कांग्रेस ने समान-प्रतिनिधित्व के प्रश्न पर अन्त में जो दृढ़ता दिखाई उससे वाइसराय और मिशन जरूर कुछ परेशान हुए। वाइसराय और मिशन ने कांग्रेस और लीग के प्रतिनिधियों से अन्तरिम सरकार के लिए नाम चुनने के उद्देश्य से परामर्श करने का सुझाव उपस्थित किया, किन्तु उन्होंने मौलाना साहब को बुलाने के स्थान पर पण्डित जवाहरलाल को परामर्श के लिए बुलाने की गलती की। उन्हें कदाचित भय था कि यदि मौलाना साहब को बुलाया गया तो श्री जिन्ना शायद बातचीत में भाग न लें। परन्तु मौलाना की जगह पण्डितजी को बुलाने से भी, अधिक लाभ नहीं हुआ। नेहरूजी वाइसराय से मिलने गये, किन्तु श्री जिन्ना १२ जून, १९४६ को नहीं पहुँचे। सर स्टैफर्ड क्रिप्स द्वारा श्री जिन्ना को समझाने-बुझाने के बाद भी यही परिणाम निकला था। इससे एक घटना होने की अफवाह फैल गई, जो वास्तव में हुई नहीं थी। विश्वास किया जाता था कि पण्डित जवाहरलाल नेहरू रात को वाइसराय के साथ ही भोजन करेंगे और इसकी सूचना प्रातःकाल दी गई थी; किन्तु यह सत्य न था। पण्डितजी १० बजे रात तक अखिल भारतीय देशी राज्य-प्रजा-परिषद् के सम्मेलन में व्यस्त रहे और बाद में यह बहाना कर दिया गया कि पण्डितजी का पता न चलने के कारण उन्हें भोजन के लिए नहीं बुलाया जा सका। क्या कभी यह विश्वास किया जा सकता है कि शक्तिशाली ब्रिटिश सरकार को पंडित जवाहरलाल की गतिविधि का पता न हो? क्या कोई समझदार व्यक्ति इस पर यकीन कर सकता है? ठीक बात यह थी कि १२ जून वाली मुलाकात ११ जून की रात्रि को ही होने वाली थी, किन्तु जब एक पक्ष ने आने से इन्कार कर दिया तो बात को हवा में उड़ा देने की कोशिश की गयी। उधर जनता में घटनाओं की प्रगति के सम्बन्ध में बड़ी बेचैनी थी। गांधीजी ने ९, १०, ११ और १२ जून को अपनी प्रार्थना-सभाओं में जो कुछ कहा उससे निराशा ही टपकती थी। वे वार्ता-भंग होने, परमात्मा के हस्तक्षेप, संघर्ष की सम्भावना और अंत में ईश्वर की इच्छा पूरी होने की बातें कहने लगे थे।

इस बीच एक तरफ चार कांग्रेसी नेताओं और दूसरी तरफ ब्रिटेन के चार प्रतिनिधियों के मध्य और मंत्रि-मिशन तथा लीग के बीच बातचीत हुई थीं। श्री जिन्ना ने, जो उस दिन नहीं आये थे, १३ जून को वाइसराय से मुलाकात की। जनता उद्विग्न हो रही थी! "झगड़ा खत्म भी करो—" कुछ बोले; "जरा धीरज धरो"—अन्य लोगों ने सलाह दी, किन्तु ऐसी सलाह देनेवाले कम ही थे। छोटे बच्चे—१० और बारह साल के बच्चे—समान प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त की निन्दा करते थे। गांधीजी ने विधान-परिषद् में यूरोपियनों के भाग लेने की निन्दा की और उन्होंने उन से भारत के संकट के समय उसके अपने झगड़ों में भाग न लेने का अनुरोध किया। बंगाल यूरोपियन असोसियेशन के अध्यक्ष श्री लासन ने यूरोपियनों के हाथ खींच लेने का नहीं बल्कि अपना प्रतिनिधित्व घटा देने का प्रस्ताव किया, किन्तु आपने यह शर्त उपस्थित की कि दोनों बहुसंख्यक दलों को उनसे ऐसा करने का अनुरोध करना चाहिये। आपने यह भी कहा कि अभी उनमें से किसी ने ऐसा नहीं किया है। इस प्रकार, यूरोपियन एसोसियेशन ने एक प्रकार से अपने को मंत्रि-मिशन की स्थिति में रख लिया।

बंगाल और आसाम के यूरोपियनों का दाव उन कांटों के समान ही था, जो झाड़-फूस के साथ होते हैं—उसी झाड़-फूस के साथ जिसका प्रयोग छप्पर बनाने के लिये होता है। वस्तुस्थिति यह थी कि मंत्रि-मिशन की बीसवीं धारा में, जिसमें अल्पसंख्यकों की चर्चा थी, यूरोपियनों का जिक्र तक नहीं किया गया था। आसाम और बंगाल में उनके अस्तित्व की सर्वथा उपेक्षा कर दी गयी थी। इस असावधानी के कारण वे आम स्थानों में ढकेल दिये गये थे और इस गलती को उस समय कई बड़े व्यक्तियों ने स्वीकार किया था। उन दिनों यह भी मान लिया गया था कि यूरोपियनों के लिये जो कठिनाई उत्पन्न हुई थी उसमें उनका कोई कसूर नहीं था। कसूर मिशन का था। परन्तु यूरोपियनों को पूर्णतः निर्दोष नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उन्होंने इस स्थिति से अनुचित लाभ उठाना चाहा था। कसूर चाहे जिसका हो, मिशन और वाइसराय ने वचन दिया कि वे यूरोपियनों से अलग रहने को राजी करने में कुछ नहीं उठा रखेंगे। १४ जून तक यह भी स्पष्ट हो गया कि यूरोपियनों का प्रश्न भी मुख्य समस्या का ही एक अंग है। पंद्रह तारीख को जनता को समाचार मिला कि बंगाल असेम्बली के यूरोपियन दल ने अपना कोई प्रतिनिधि विधान-परिषद् के लिए खड़ा न करने का निश्चय किया है; परन्तु दल ने कहा कि वह बहुसंख्यक दलों में हुए समझौते के अनुसार ही मत प्रदान करेगा। किन्तु यह समझ में नहीं आता कि समझौता होने की अवस्था में वे मत क्यों देंगे, क्योंकि दोनों दलों में समझौता होने पर उनके षड्यंत्रों का भय ही जाता रहेगा और फिर दोनों में से कोई भी पक्ष उनसे सहायता मांगने नहीं आयेगा।

१३ जून को वाइसराय ने पंडित जवाहरलाल नेहरू के सामने १३ सदस्यों की एक योजना रखी और व्यक्तियों के चुनाव तथा अनुपात के सम्बन्ध में कितने ही भ्रमों को दूर कर दिया। परन्तु कांग्रेस ने शासन-परिषद् में १५ सदस्य रखने पर जोर दिया और कहा कि इनमें मुसलमानों की संख्या ५ से अधिक न होना चाहिये। ब्रिटिश भारत में मुसलमानों का अनुपात २६ प्रतिशत है, किन्तु प्रतिनिधित्व उन्हें ३३$\frac{1}{3}$ प्रतिशत दिया जा रहा है। १५ जून को यही स्थिति थी। यह भी स्पष्ट कर दिया गया था कि यदि यह नहीं स्वीकार किया गया तो कांग्रेस सहयोग नहीं प्रदान कर सकेगी। इस प्रकार मिशन के प्रस्तावों को फिलहाल नामंजूर कर दिया गया था। कांग्रेस यह भी तय कर चुकी थी कि अंतरिम सरकार में भाग लेनेवाले वाइसराय के निमंत्रण पर और उनके यहां एकत्र नहीं होंगे। सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने अक्टूबर, १९४२ में कहा था कि जहां वे

समझौता कराने ७००० मील की दूरी तय करके गये थे वहां कांग्रेस, लीग से मिलने के लिये एक सड़क पार करने को तैयार नहीं थी। १९४२ की भी बात जाने दीजिये। १९४६ में क्या हुआ? क्या श्री जिन्ना ने वाइसराय भवन में पंडित नेहरू से मिलने के लिए—मौलाना आजाद की तो बात ही जाने दीजिये—आना ठीक समझा; और वह भी तब जब खुद वाइसराय ही ने उन्हें आमंत्रित किया था? श्री जिन्ना तो एक गली तक तय करने को तैयार नहीं थे। १५ जून के दिन जब वाइसराय को विश्वास हो गया कि अब वार्ता भंग होनेवाली है तो उन्होंने एक और पत्र लिखा। इस पत्र में बहुत ही नर्म शब्दों का प्रयोग किया गया था और अंत में आशा प्रकट की गयी कि अब भी कांग्रेस अंतरिम सरकार में सम्मिलित होना स्वीकार कर लेगी। वाइसराय ने तर्क उपस्थित किया कि ५+६+२के गुर में समान-प्रतिनिधित्व का प्रश्न नहीं उठता। वस्तुत: वाइसराय पिछले प्रस्तावों को ही दुहरा रहे थे और इससे कांग्रेस की स्थिति में कुछ भी सुधार नहीं होता था। इसलिये कार्यसमिति ने वाइसराय को सूचित कर दिया कि वह जो कुछ कह चुकी है वही उसका अंतिम निर्णय है, और १६ जून के दिन वह मंत्रिमिशन और वाइसराय के फैसले का इंतजार करने लगी।

१६ जून आयी और गयी। १६ अक्टूबर, १९०५ को बगाल का विभाजन लागू किया गया था। बाद में १६ मई, १९४६ को भारत के विभाजन की प्रथम रूपरेखा तैयार हुई। १६ जून, १९४६, को अस्थायी राष्ट्रीय सरकार स्थापित करने की घोषणा वाइसराय के पिछले पत्र के अनुसार की गयी। १४ व्यक्ति चुने गये। मुस्लिम लीग ने जो पांच नाम सुझाये थे वे सूची में ज्यों-के-त्यों थे; किन्तु कांग्रेस की तरफ कांग्रेसियों के ६ नामों में एक ऐसा नाम (उड़ीसा के प्रधान मंत्री) था, जो उस की प्रस्तावित सूची में नहीं था। लीग-द्वारा उपस्थित किये गये पांच नामों में से कांग्रेस ने एक, यानी अब्दुर्रब निश्तर के नाम पर आपत्ति की, किन्तु इस आपत्ति को नहीं माना गया और कांग्रेस की जानकारी के बिना ही श्री शरत्चन्द्र बोस के स्थान पर उड़ीसा के प्रधानमंत्री श्री हरेकृष्ण मेहताब का नाम रख दिया गया था। कांग्रेस ने श्रीमती अमृतकौर, डा० जाकिर हुसैन और मुनिस्वामी पिल्ले के जो नाम प्रस्तावित किये थे, उन्हें भी अस्वीकार कर दिया गया। स्पष्ट था कि वाइसराय अंतरिम सरकार को अपनी पुरानी शासन परिषद् ही समझते थे।

कांग्रेस की आपत्तियां तीन थीं—(१) जनाब निश्तर का चुनाव; क्योंकि सीमाप्रान्त के चुनाव में उन्हें कांग्रेसी उम्मीदवार के विरोध में सफलता नहीं मिली थी और औरंगजेब मंत्रि-मंडल के एक सदस्य के रूप में उनके विरुद्ध एक अविश्वास का प्रस्ताव पेश हो चुका था, (२) अंतरिम सरकार में कोई राष्ट्रवादी मुसलमान नहीं रखा गया था और, (३) ये परिवर्तन कांग्रेस की सलाह के बिना ही किये गये थे।

अस्तु, वाइसराय की सूची प्रकाशित होने पर जान पड़ा कि उसे एकाएक स्वीकार नहीं किया जा सकता। सरदार बलदेवसिंह के नाम के सम्बन्ध में सिखों से सलाह लेनी बाकी थी। इसी तरह सीमाप्रान्त के नेताओं से भी परामर्श करना था। इसके अलावा श्री हरेकृष्ण मेहताब की जगह शरत बाबू का नाम रखने का सवाल था। श्री मेहताब से वाइसराय के पत्र का उत्तर देने को कहा गया कि प्रान्त के प्रधानमंत्री तथा कांग्रेसजन के रूप में वे पूरी तरह कार्यसमिति के नियंत्रण में हैं। सवाल था कि क्या इनमें से प्रत्येक आपत्ति को इस सीमा तक बढ़ाया जाय कि उससे गतिरोध उत्पन्न हो जाय? क्या कोई मुसलमान ऐसा स्थान स्वीकार करेगा जो किसी कांग्रेसी हिन्दू का नाम वापस ले कर बनाया गया हो? इसके अलावा, कांग्रेस ने

श्रीमती अमृतकौर का जो नाम उपस्थित किया, उसे भी अस्वीकार कर दिया गया। इस में कांग्रेस की मर्यादा का भी प्रश्न उठता था। इस सम्बन्ध में वाद-विवाद अनेक अवस्थाओं से गुजरा और सम्पूर्ण परिस्थिति—खाद्य समस्या की गम्भीरता, रेलवे हड़ताल की आशंका तुथा वैधानिक बातचीत की असफलता से फैलनेवाली निराशा की तरफ ध्यान आकृष्ट किया गया। परन्तु कांग्रेस इन सब से डरती नहीं थी। किसी न किसी दिन अव्यवस्था और अशान्ति फैले बिना देश स्वतंत्र नहीं हो सकता था। मिस्र २८ फरवरी १९२१ को स्वाधीन घोषित किया गया था, किन्तु १९४६ तक मिस्र ब्रिटिश सेना के हटाए जाने का ही अनुरोध कर रहा था। कांग्रेस बड़ी पेचीदी स्थिति में थी। १८ जून को आंतरिक सरकार की योजना स्वीकार करने का निश्चय कर लिया गया। उस रात प्रस्ताव का मसविदा तैयार कर लिया गया और दूसरे दिन पंडित जवाहरलाल नेहरू काश्मीर चले गये तथा कुछ अन्य सदस्य दिल्ली के बाहर चले गये।

इस के बाद परिस्थिति एकाएक गम्भीर हो गयी। खान अब्दुल गफ्फार खाँ से परामर्श करने के बाद जनाब निश्तर-सम्बन्धी समस्या प्रथम कोटि की नहीं समझी गई। मेहताब-सम्बन्धी मामला इस तरह हल हुआ कि शरत् बाबू को नियुक्त करने की बात मान ली गई। लेकिन अगर कांग्रेस राष्ट्रवादी मुसलमान को न रखने की गुस्ताखी को पी जाती तो उसका राष्ट्रीय स्वरूप नहीं रह जाता। इसी अवसर पर श्री जिन्ना ने अंतरिम सरकार में राष्ट्रवादी मुसलमान को रखने के विरुद्ध चेतावनी दे कर इस प्रश्न पर और भी ध्यान आकृष्ट कर दिया और साथ ही इससे श्री इंजीनियर के चुने जाने को भी महत्व प्रदान कर दिया। इन्हीं दिनों 'स्टेटसमैन' ने वाइसराय तथा श्री जिन्ना के मध्य हुए पत्र-व्यवहार का रहस्योद्घाटन किया। लोकमत का झुकाव कुछ यह हुआ कि श्री जिन्ना अपनी हठधर्मी-द्वारा कांग्रेस से एक-के-बाद एक रियायत प्राप्त कर रहे हैं। तब कांग्रेसी मुसलमान के सम्मिलित न करने और एक सरकारी अफसर का नाम सूची में सम्मिलित करने के प्रश्नों पर अधिक गौर किया गया और उन्होंने पहले की अपेक्षा अधिक महत्व धारण कर लिया—विशेषकर इस कारण और भी कि इस के सम्बन्ध में श्री जिन्ना विष उगल चुके थे और दूसरे के विषय में सर स्टैफर्ड क्रिप्स विशेष अनुरोध कर चुके थे। अनुपस्थित सदस्यों को फिर बुलाया गया, क्योंकि दोनों ही बातों पर फिर से विचार करना अब केवल आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी हो गया था। कार्य-समिति के कंधों पर राष्ट्र की जिम्मेदारी थी और वह किसी समस्या का फैसला खीझकर या निराशा के वशीभूत होकर नहीं कर सकती थी। परिस्थिति के प्रत्येक पहलू पर विचार किया जाना आवश्यक था। इसके अलावा, हमें पिछले दुःखद अनुभवों को ध्यान में रखते हुए गलतियों से बचना था। जुलाई १९४० में जो-कुछ पूना में हुआ उसकी चर्चा करना भी असंगत न होगा। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने कार्यसमिति से प्रभावित होकर कुछ विशेष परिस्थितियों में सरकार को युद्ध में सहायता प्रदान करना स्वीकार कर लिया। गांधीजी इसके विरुद्ध थे। फिर महीने या दो महीने के भीतर ही कार्यसमिति ने गांधीजी से सलाह मांगी। जून, १९४६ के तीसरे सप्ताह में भी घटनाचक्र कुछ इसी प्रकार घूम रहा था। सूची में निश्तर के सम्मिलित करने, मेहताब व इंजीनियर को बिना सलाह किये रख लेने और राष्ट्रवादी मुसलमान और एक कांग्रेसी महिला को न रखने के सम्बन्ध में गांधीजी के दृढ़ विचार स्पष्ट थे। कुछ सोच-विचार के बाद कार्य-समिति भी गांधीजी के ही मत पर आ गयी और इसीलिए अनुपस्थित सदस्यों को बुलाया गया, ताकि यह न कहा जा सके कि उनकी अनुपस्थिति में महत्वपूर्ण निश्चय किये गये।

२१ जून को कांग्रेस के अध्यक्ष ने वाइसराय से श्री जिन्ना-द्वारा उन्हें लिखे गये पत्रों और उन पत्रों के वाइसराय-द्वारा लिखे उत्तरों की प्रतिलिपि मांगी। ये पत्र अंतरिम सरकार में एक कांग्रेसी हिन्दू सदस्य के स्थान पर एक मुस्लिम सदस्य नामजद करने के कांग्रेस के अधिकार के सम्बन्ध में थे। वाइसराय ने पत्रों की प्रतिलिपि तो उपलब्ध नहीं की, किन्तु यह कहा कि वे इस प्रकार का कोई प्रबंध स्वीकार नहीं कर सकते। समाचारपत्रों में छपा था कि श्री जिन्ना ने वाइसराय से कुछ प्रश्न किये हैं। वाइसराय ने इन कथित प्रश्नों के उत्तरों के उद्धरण दिये। उनसे इस बात की पुष्टि होती थी कि वाइसराय इस समस्या के सम्बन्ध में पूर्णतः श्री जिन्ना के साथ हैं। वाइसराय का यह रुख उनके उस दृष्टिकोण से बिलकुल भिन्न था, जिस का परिचय उन्होंने श्री निश्तर के अंतरिम सरकार में सम्मिलित करने की समस्या को लेकर मौलाना आजाद को लिखे गये अपने पत्र में दिया था। इस पत्र में वाइसराय ने लिखा था कि जिस प्रकार लीग कांग्रेस-द्वारा नामजद किसी व्यक्ति का विरोध नहीं कर सकती, उसी प्रकार कांग्रेस भी लीग-द्वारा नामजद किसी व्यक्ति के अंतरिम सरकार में सम्मिलित किये जाने पर आपत्ति नहीं कर सकती। यदि १४ जून तक यह स्थिति थी तो समझ में नहीं आता कि २१ जून या २२ जून को वाइसराय यह कैसे कह सकते थे कि कांग्रेस अंतरिम सरकारके लिये किसी मुसलमान का नाम उपस्थित करने के लिये स्वतंत्र नहीं है। वाइसराय का यह कथन इसलिए और भी आपत्तिजनक था कि ऐसा वे श्री जिन्ना के आपत्ति करने पर कह रहे थे। इसके अलावा वाइसराय ने पहले कांग्रेस को यह भी आश्वासन दे दिया था कि यदि कांग्रेस जाकिर हुसेन का नाम पेश करेगी तो उस पर आपत्ति न की जायगी। यह कहने के बावजूद भी वाइसराय ने अपने २२ जून के पत्र में कांग्रेस के अध्यक्ष के अनुरोध को अस्वीकार कर दिया।

सिर्फ यही काफी नहीं था। श्री जिन्ना के प्रश्नों से कुछ नयी बातें भी उठती थीं। जबकि एक तरफ वाइसराय समान-प्रतिनिधित्व की बात से इन्कार कर रहे थे तो दूसरी तरफ श्री जिन्ना कांग्रेस और लीग के मध्य नहीं, हिन्दू और मुसलमानों के बीच भी नहीं, बल्कि सवर्ण हिन्दुओं और मुस्लिम लीग में समान-प्रतिनिधित्व की बात कह रहे थे, जिसका अर्थ यह हुआ कि उनके मत से कांग्रेस सिर्फ हिन्दुओं की ही नहीं बल्कि सवर्ण हिन्दुओं की संस्था है। प्रश्न नं० ४ के उत्तर में वाइसराय ने जो उत्तर दिया था उससे साफ जाहिर था कि श्री जिन्ना परिगणित जातियों का प्रतिनिधित्व कांग्रेस से अलग चाहते हैं और अल्पसंख्यकों के चार प्रतिनिधियों में एक स्थान उसे भी देना चाहते हैं। इस तरह कांग्रेस के प्रतिनिधियों की संख्या सिर्फ ५ कर दी गयी और कांग्रेस को हिन्दू-संस्था घोषित कर दिया गया। इसके अलावा वाइसराय ने कहा:—

"यदि अल्पसंख्यकों में कोई स्थान रिक्त होता है तो उसे भरते समय मैं मुख्य राजनीतिक दलों से परामर्श करूंगा।"

ये शब्द वाइसराय ने श्री जिन्ना के उस प्रश्न के उत्तर में कहे थे, जिसमें उन्होंने ४ स्थानों पर अल्पसंख्यकों के चार प्रतिनिधि नियुक्त करने की बात कही थी। इससे यह भी जाहिर होता था कि परिगणित जातियों का कांग्रेस या हिन्दुओं से कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा। इसके विपरीत मिशन के वक्तव्य के अनुसार मुसलमानों और सिखों के अलावा अन्य अल्पसंख्यकों को 'आम' समूह में डाल दिया गया था और इस तरह उनका सम्बन्ध कांग्रेस से स्थापित हो गया था। परन्तु अंतरिम सरकार में अल्पसंख्यकों के स्थानों में से कोई स्थान रिक्त होने पर निषेधात्मक अधिकार श्री जिन्ना को सौंप दिया जायगा। इसके अलावा शासन-प्रबन्ध के सम्बन्ध में अंतरिम सरकार

में सामूहिक बहुमत का नियम लागू होगा और साथ ही यह भी कहा गया कि कांग्रेस के अध्यक्ष भी इस सिद्धान्त की कद्र करते हैं। इस तरह अंतरिम सरकार की स्थिति वाइसराय की शासन-परिषद् से भी बुरी हो गयी। सच तो यह है कि १६ मई के वक्तव्य से पूर्व जो भी बातें कही गयी थीं। उनका कुछ भी महत्त्व नहीं रहना चाहिये था। इसके अलावा, जो-कुछ भी कहा गया था वह ऐसे मंत्रिमंडल के लिये कहा गया था, जो धारासभा के प्रति ज़िम्मेदार होता। ऐसा जान पड़ता था, जैसे प्रत्येक विषय में वाइसराय श्री जिन्ना के साथ हों, जैसे उन्होंने श्री जिन्ना से कह दिया हो:—

"आप पाकिस्तान चाहते हैं, जो हिन्दुस्तान का केवल चौथाई भाग है, आप पूरा हिन्दुस्तान ही ले लीजिये और उस पर राज कीजिये। प्रत्येक निर्णय और और प्रत्येक नियुक्ति के सम्बन्ध में आपका विशेषाधिकार रहेगा। आपका फरमान बिना किसी हिचक के माना जायगा।"

मिशन के दृष्टिकोण का यही अर्थ था। इसके अलावा, श्री जिन्ना के प्रश्नों के वाइसराय-द्वारा दिये गये उत्तरों का और क्या अर्थ हो सकता था? विधान-परिषद् के लिए चुने जानेवाले उम्मेदवार से १६ मई वाले वक्तव्य के पैरा १६ को स्वीकार करने की जो मांग की गई थी उसका और क्या तात्पर्य हो सकता था। (बाद में इसका संशोधन कर दिया गया)। अन्त में कार्य-समिति ने साहस करके २३ जून को विधान-परिषद् में जाने का फैसला कर ही लिया। परन्तु १८ जून के निर्णय के समान ही कार्यसमिति का २३ जून का निर्णय भी अनिश्चित अवस्था में था। आसाम और बंगाल से प्राप्त एक तार में कार्यसमिति का ध्यान इस बात की तरफ आकृष्ट किया गया कि प्रत्येक उम्मीदवार से इस घोषणा पर हस्ताक्षर कराया जा रहा है कि वह परिषद् में १६ मई के वक्तव्य के १६ पैरा में वर्णित उद्देश्य की पूर्ति के लिए जा रहा है। इस पैरे का सम्बन्ध परिषद् के भागों और समूहों में विभाजित होने से था। चुनाव से सम्बन्ध रखनेवाला भी यही एकमात्र पैरा था। तब भ्रम का निवारण किया गया, किन्तु कार्यसमिति ने अपनी आपत्ति नहीं उठाई। इस बीच में नेताओं तथा मन्त्रि-मिशन के मध्य हुई बातचीत से प्रकट हुआ कि यदि कांग्रेस ने विधान-परिषद् में जाने का फैसला किया तो १६ जून का वक्तव्य तथा बाद में हुई सब बातों को रद्द माना जायगा और अस्थायी सरकार स्थापित करने का प्रयत्न भी नये सिरे से किया जायगा। यह २४ जून के प्रातःकाल की बात है। परन्तु विधान-परिषद् में जाने के निर्णय से, जो एक दिन पहले ही हो चुका था, इस सूचना का कोई सम्बन्ध नहीं था, क्योंकि आपत्ति मिशन के १६ वे पैरे के सम्बन्ध में थी, जिसे पहले दोषहीन समझा गया था। जब मिशन और वाइसराय को कांग्रेस का निर्णय बताया गया तो प्रत्येक क्षेत्र में हर्ष की लहर दौड़ गई। कांग्रेसी हलकों में सन्तोष इस बात पर था कि लीग ने 'अल्पसंख्यकों' और 'समान प्रतिनिधित्व' के सवाल उठा कर कांग्रेस के लिए जो बेड़ियां तैयार की थीं उनसे वह बच गई। सरकारी अधिकारियों को यह खुशी थी कि आखिर कांग्रेस को विधान-परिषद् में जाने पर उन्हें सफलता मिल ही गई। लीगी हलकों की प्रसन्नता का कारण यह था कि ऐसी अन्तरिम सरकार बन रही थी, जिसमें कांग्रेस नहीं होगी। परन्तु लीग की आंखों पर पड़ा पर्दा शीघ्र ही उठ गया। सरकार की तरफ से २७ जून का वक्तव्य प्रकाशित हुआ, जिसमें बातचीत स्थगित करने की घोषणा की गई थी। दूसरे लफ्जों में इसका यही अर्थ हुआ कि १६ जून का वक्तव्य रद्द किया जाता है, क्योंकि कांग्रेस १६ मई का वक्तव्य स्वीकार कर चुकी थी। तब श्री जिन्ना ने १६ जून के वक्तव्य की आठवीं धारा पूरी करने पर जोर दिया, जिसमें कहा गया था कि यदि अन्तरिम सरकार में कोई अथवा दोनों दल जाने से

इन्कार करेंगे तब परिषद् में रिक्त स्थानों को उन दलों के प्रतिनिधियों से भर दिया जायगा, जो १६ मई के वक्तव्य को स्वीकार करेंगे। कांग्रेस इस वक्तव्य को तो स्वीकार करती थी, किन्तु उसने अन्तरिम सरकार में जाने से इन्कार कर दिया था। मिशन ने ऐसी स्थिति का अनुमान नहीं किया था और इसीलिए उसने ब्रिटिश मन्त्रि-मण्डल से परामर्श किया। तब मिशन ने २७ जून का वक्तव्य प्रकाशित किया और वह २९ जून को इंग्लैण्ड के लिए रवाना हो गया। परन्तु जाने से पूर्व मिशन की श्री जिन्ना से बातचीत हुई। श्री जिन्ना ने विधान-परिषद् स्थगित करने का अनुरोध किया, क्योंकि परिषद् और अन्तरिम सरकार की योजनाएँ परस्पर सम्बद्ध थीं। परन्तु मिशन ने परिषद् को स्थगित करना अस्वीकार कर दिया। वाइसराय ने कहा कि वे धारा ८ के अनुसार कार्य करेंगे और सम्भवतः कुछ समय बीतने पर अन्तरिम सरकार स्थापित होने की पृष्ठभूमि तैयार हो जाय।

अब बातचीत में व्यस्त सभी प्रतिनिधियों के अपने दलों को सूचित करने का समय आया। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक ६ और ७ जुलाई को बम्बई में हुई। उसके सामने एक पंक्ति का प्रस्ताव रखा गया, जिसमें ब्रिटिश सरकार से हुए समझौते की पुष्टि की गई थी। प्रस्ताव में संशोधनों के लिए स्थान नहीं था, क्योंकि प्रतिनिधि समझौता कर चुके थे और कांग्रेस को उस समझौते की सिर्फ पुष्टि ही करनी थी। समझौते को स्वीकार अथवा अस्वीकार ही किया जा सकता था। कमेटी ने ५१ के विरुद्ध २०५ वोटों से प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया।

यह सब हो चुकने के बाद मुख्य बात यह उठी कि विधान-परिषद् को सत्ता-सम्पन्न संस्था माना जा सकता है या नहीं, उसमें हुए चुनाव को कानूनी तौर पर जायज माना जायगा या नहीं और एकाकी हस्तांतरित मत-पद्धति-द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व और विभाजन को भारतीय शासन सुधार ऐक्ट के अन्तर्गत जायज माना जायगा अथवा नहीं। दूसरे लफ्जों में सवाल यह था कि १६ मई के वक्तव्य को कानूनी दस्तावेज माना जा सकता है या नहीं। कानूनी क्षेत्रों में वक्तव्य के कानूनी रूप से इन्कार किया गया। विधान-परिषद् की सत्ता के सम्बन्ध में भी आपत्ति उठाई गई और कहा गया कि इसके लिए शाही घोषणा-द्वारा परिषद् को सत्ता हस्तांतरित किये जाने की आवश्यकता है। पार्लमेण्ट में कानून उसी हालत में पास हो सकता था जब मिशन तथा मन्त्रिमण्डल के १६ मई, १९४६ वाले वक्तव्य की पुष्टि बिना किसी संशोधन के हो। परन्तु मिशन ने ऐसा करना उचित नहीं समझा। इसी अवस्था में धारा-सभाओं ने विधान-परिषद् के सदस्यों के चुनाव शुरू कर दिये और जुलाई १९४६ तक के चुनाव समाप्त भी हो गये।

जुलाई के अंत में प्रतिक्रिया यह हुई कि लीग ने अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन योजनाओं में भाग लेने से इन्कार कर दिया। लीग ने १६ अगस्त 'प्रत्यक्ष कार्रवाई' (डाइरेक्ट ऐक्शन) का दिवस घोषित किया और ऐसा जान पड़ने लगा कि सरकारी कार्रवाई भी आरम्भ हो गयी। ६ अगस्त को वाइसराय ने कांग्रेस के अध्यक्ष से अंतरिम सरकार के निर्माण में सहयोग करने का अनुरोध किया। वाइसराय ने कहा कि ऐसा निर्णय सम्राट् की सरकार की सहमति से हुआ है। कार्यसमिति की बैठक ने वर्धा में इस प्रस्ताव पर विचार किया और १२ अगस्त के सायंकाल ७ बजे वाइसराय के प्रस्ताव और कांग्रेस-अध्यक्ष-द्वारा उसकी स्वीकृति की घोषणा कर दी गयी। इसके बाद घटना-चक्र बड़ी तेज़ी से घूमा। कार्यसमिति ने प्रस्ताव पास किया, जिसमें लीग से मधुर शब्दों में अंतरिम सरकार के निर्माण में सहयोग की अपील की गयी थी। राष्ट्रपति ने तुरंत लीग के अध्यक्ष को इस सम्बन्ध में एक पत्र लिखा। कार्यसमिति के प्रस्ताव की श्री जिन्ना

पर जो प्रतिक्रिया हुई, वह अप्रत्याशित न थी। उसमें उन्हें नये गुम्बद में पुराना चिराग ही दिखायी दिया। वाइसराय ने इस बार श्री जिन्ना को जो सीधे नहीं लिखा उसका कारण श्री जिन्ना की 'प्रत्यक्ष कार्रवाई' की धमकी ही थी। बंगाली सरकार ने 'प्रत्यक्ष कार्रवाई' मनाने के लिए १६ अगस्त को सार्वजनिक छुट्टी कर दी।

१६ अगस्त को 'प्रत्यक्ष कार्रवाई' दिवस मनाने के सम्बन्ध में श्री जिन्ना ने एक वक्तव्य में कहा कि दिवस की घोषणा किसी रूप में भी प्रत्यक्ष कार्रवाई करने के लिए नहीं बल्कि १६ जुलाई को बम्बई में अखिल भारतीय मुस्लिम लीग द्वारा पास किये गये प्रस्ताव को मुस्लिम जनता को समझाने के लिए की गई है। श्री जिन्ना ने मुस्लिम जनता से अनुरोध किया कि उसे शान्तिपूर्ण ढंग से अनुशासित रूप में कार्य करना चाहिए और ऐसा कोई कार्य न करना चाहिए जिससे शत्रु को कुछ कहने का अवसर मिले।

परन्तु चेतावनी बहुत देरी से दी गयी और जनता को यह सिर्फ १५ अगस्त को ही मिली। कलकत्ता और सिलहट में गम्भीर उपद्रव हुए। कलकत्ता की सड़कों पर रक्त की नदियां बह उठीं। मोटे हिसाब से ७००० के लगभग व्यक्ति मारे गये और बहुसंख्यक घायल हुए। कलकत्ता की तुलना में अन्य स्थानों की घटनाओं की तरफ किसी का ध्यान ही नहीं गया। सिलहट और ढाका में भी लोग हताहत हुए। बंगाल के नये गवर्नर को वापस बुलाने की मांग की गयी और कहा गया कि वह अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं कर सका। एक सप्ताह में शान्ति स्थापित हुई, किन्तु हिंसा की इस असाधारण आग को बुझाने के लिए साधारण उपाय पर्याप्त नहीं थे। कलकत्ता की सड़कों पर कुछ समय तक लाशें सड़ती रहीं। हजारों व्यक्ति बेघर हो गये। शीघ्रता से जो प्रबंध किया गया वह अपर्याप्त था। दंगे के कारण की जांच की मांग की गयी और कार्यसमिति ने इस कार्य के लिए एक न्यायाधीश की नियुक्ति का अनुरोध किया। इसका परिणाम भी हुआ। बंगाल-सरकार के आदेश से जांच के लिए फेडरल कोर्ट के प्रधान सर स्पेन्स की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की गयी, जिस के सदस्य श्री सोमाया और सर फज्लअली थे।

विवरण को जारी रखने के लिए हम यहां कुछ बाद में प्रकट हुई बातों का उल्लेख करना आवश्यक समझते हैं। कलकत्ता के दंगे का कारण यह बताया गया कि एक सम्प्रदाय ने पहल की और दूसरे ने उसका प्रतिशोध लिया। प्रतिशोध बहुत उग्र था और मूल उपद्रव की तुलना में वह कहीं अधिक भयानक था। "एक के बदले तीन" की इस नीति से नोआखाली और टिपरा में जनता उत्तेजित हो उठी। इन दोनों ही जिलों में मुसलमान बहुसंख्यक और हिन्दू अल्पसंख्यक हैं। नोआखाली में उनका अनुपात १८ लाख और ४ लाख का है। पूर्वी बंगाल के इन दोनों जिलों में अपराध जितनी भयानकता से हुए थे उसे देखते हुए हताहतों की संख्या अधिक न थी। नारी-निर्यातन, बलपूर्वक विवाह, बलात्कार, जबरन धर्म-परिवर्तन, घरों को आग लगा देने, उन पर सामूहिक हमले और प्रसिद्ध परिवारों के इन हमलों में शिकार होने से पूर्वी बंगाल में जो अविश्वास फैल गया था वह तीन वर्ष पूर्व अकाल में हुई सामूहिक मृत्युओं से भी कहीं अधिक भीषण था। पूर्वी बंगाल से कितने ही हिन्दू भाग कर बिहार आये और वहां अत्याचारों की अनेकों कहानियां फैल गयीं और बिहारी जनता प्रतिशोध के लिए पागल हो उठी। इस अप्रत्याशित और भीषण परिस्थिति से कांग्रेस तथा प्रत्येक समझदार कांग्रेसजन का अंतःकरण चीत्कार कर उठा और जब कि गांधीजी पूर्वी बंगाल की जनता में धैर्य की भावना भरने और

बाहर गये लोगों को उनके घरों में फिर वापस बुलाने के लिए गये तो दूसरी तरफ शासन-परिषद् के उपाध्यक्ष जवाहरलाल नेहरू बिहार की परिस्थिति का नियंत्रण करने गये। यह सच है कि परिषद् के मुस्लिम सदस्य बंगाल और बिहार गये थे, किन्तु श्री जिन्ना ने कलकत्ता और पूर्वी बंगाल की घटनाओं के लिए कहीं भी खेद नहीं प्रकट किया। गांधीजी और उनके साथी हिन्दू जनता से अपने मुसलमान पड़ोसियों की रक्षा की अपील कर रहे थे, किन्तु श्री जिन्ना ने अपने मुस्लिम अनुयायियों से हिन्दुओं की रक्षा के लिए ५ दिसम्बर, १९४६ तक एक शब्द नहीं कहा। समझा जा सकता है कि १६ अगस्त से ६ दिसम्बर तक का अरसा कितना अधिक होता है। यह उस समय की बात है जब श्री जिन्ना अंतरिम सरकार में सहयोगपूर्वक कार्य करने और विधान-परिषद् में हिस्सा लेने की समस्या पर बातचीत करने के लिए लंदन गये थे। वे बार-बार 'प्रत्यक्ष कार्रवाई' का नारा दुहरा देते थे और उसका परिणाम बुरा होता था। यहां तक कि लंदन में भी आपने एक बार यही किया था। इस बीच हिंसा का कुचक्र चल रहा था। उसकी लहर शीघ्र संयुक्तप्रान्त पहुंची। गढ़मुक्तेश्वर में उपद्रव हुआ, जिसकी प्रतिक्रिया डासना में हुई। मेरठ शहर में, जहां कांग्रेस का अधिवेशन होने जा रहा था, कांग्रेस के पंडाल को किसी ने आग लगा दी, जिसके परिणाम-स्वरूप अधिवेशन डेलीगेटों तक सीमित कर दिया गया। मेरठ शहर में कुछ ऐसी घटनाएं हुईं, जैसी पहले कभी नहीं सुनी गई थीं। वहां कुछ व्यक्तियों का जबरन धर्म-परिवर्तन किया गया और वह भी ऐसे धर्म में, जिसमें ऐसा कभी नहीं होता था। समस्या विश्वास और धैर्य उत्पन्न करने की थी। यदि शान्ति स्थापित होती है तो कुचक्र को कहीं न कहीं भंग करना ही होगा, किन्तु एक दूसरे को बुरा-भला कहने से रोष और प्रतिहिंसा की अग्नि नहीं बुझायी जा सकती थी। पूर्वी बंगाल और बिहार में हताहतों की संख्या बहुत बढ़ा-चढ़ा कर बतायी गयी। पूर्वी बंगाल से वापस आने पर पंडित जवाहरलाल ने केन्द्रीय असेम्बली में वक्तव्य देते हुए साफ कह दिया कि दंगे मुस्लिम लीग की पहल और उत्तेजना दिलाने से हुए हैं। इसकी प्रतिक्रिया राज-परिषद् में देखी गई, जिसमें अंतरिम सरकार के एक मंत्री जनाब निश्तर ने बिहार में हुई मृत्युसंख्या ७ अंकों में और पूर्वी बंगाल में अधिक से अधिक ३०० बतायी। इसका उत्तर राज-परिषद् में बाबू राजेन्द्रप्रसाद ने देते हुए अपने सहयोगी-द्वारा दिये आंकड़ों को 'मूर्खतापूर्ण' बताया। एक ही सरकार के दो सदस्यों द्वारा विरोधी वक्तव्य देने से स्पष्ट हो गया कि अंतरिम सरकार मंत्रिमंडल या संयुक्त सरकार में से कुछ भी नहीं थी। कार्य तो आरम्भ मंत्रिमंडल के रूप में हुआ था, किन्तु लीग के सम्मिलित होने पर यह केवल आशामात्र रह गयी और मंत्रिमंडल के भीतर और बाहर झगड़े होते दिखायी देने लगे। इसकी गूंज जिलों में भी सुनायी देने लगी। दिसम्बर, १९४६ के प्रथम सप्ताह में जब वाइसराय तथा कांग्रेस और लीग के प्रतिनिधि लंदन में थे, अहमदाबाद में ३७ घंटे का कर्फ्यू लगा था, बम्बई में छुरों के वारों का अंत नहीं होता दिखायी देता था और ढाका में साम्प्रदायिक उपद्रवों ने पुरानी बीमारी का रूप धारण कर रखा था। यह नगर इतिहास में अपनी मलमल के लिए प्रसिद्ध था, किन्तु इन दिनों संघर्ष और हत्याओं का केन्द्र बना हुआ था। ऐसी घटनाएं हो रही थीं, जिनसे आगे की प्रगति रुकने की आशंका हो चली थी और इसीलिए लंदन में बातचीत की जरूरत पड़ी थी। पहले तो कांग्रेस ने इस बातचीत में भाग लेने से इन्कार कर दिया, किन्तु ब्रिटिश प्रधानमंत्री से आश्वासन मिलने पर पंडित जवाहरलाल अकेले ही गये और फिर ९ दिसम्बर को विधान-परिषद् में सम्मिलित होने के समय तक वापस आ गये।

दुःख और दर्द की घटनाओं, परिवारों के समाप्त हो जाने, स्त्रियों के जबरन भगाये और बलात्कार किये जाने के इस दुःखद कांड के मध्य, जिससे संसार के मध्य होनेवाले ऐसे सभी कांड छोटे जान पड़ते हैं, हमें आशा की केवल एक ही किरण दिखायी देती रही है। हमें बंगाल की दलदल से भरी भूमि में एक व्यक्ति 'अकेला, मित्रहीन और उदास' आगे बढ़ता हुआ दिखायी दिया है, जो हजारों परिवारों-द्वारा छोड़े हुए घरों को देखता हुआ आगे बढ़ता ही गया है। इस व्यक्ति के हाथ में आशा और शान्ति की ज्योति है। वह जनता से भय का त्याग करने और हृदय में विश्वास बनाये रखने का उपदेश करता है। उस व्यक्ति को मानव स्वभाव की सतोगुणी प्रवृत्ति पर अगाध विश्वास है। उसका खयाल है कि अंत में प्रेम घृणा पर विजय प्राप्त कर लेता है। वह असत्य के, अंधकार के मध्य प्रकाश की और मृत्यु के मध्य जीवन की ज्योति जगाये बढ़ा चला जा रहा है। गांधीजी ने कहा कि अपना विश्वास या उत्साह खोने से तो अच्छा पूर्वी बंगाल की दलदलों में मर-खप जाना है। उनके हाथ में जगी हुई अहिंसा की ज्योति का प्रकाश दूर-दूर तक फैल रहा था, किन्तु वे कायरता से हिंसा को अच्छा मानते थे। गांधीजी पूर्वी बंगाल में चट्टान की तरह अचल थे। उनके जैसा बनने के लिये असाधारण साहस और आत्मविश्वास की आवश्यकता है, गांधीजी के मित्र उनके उद्देश्य पर सन्देह करते थे और शत्रु उन्हें ताने देते थे, लेकिन वे हमेशा शहीद बनने के लिये तैयार होकर मनुष्यमात्र में भाईचारे और सद्भावना का उपदेश देते थे—उन्हीं मनुष्यों के बीच जिन्हें परमात्मा ने एक बनाया था किन्तु जो एक दूसरे से दूर होते जा रहे थे। ऐसा जान पड़ता था जैसे परमात्मा की सृष्टि की प्रत्येक वस्तु सुन्दर है, केवल एक मनुष्य ही घृणित है।

हमने आगे की घटनाओं का विवरण दे दिया। अब हम अगस्त १९४६ के मध्य में फिर आते हैं। १७ अगस्त को पंडित जवाहरलाल वाइसराय से मिले और वापस आकर उन्होंने अपने तीनों साथियों से परामर्श किया। अंतरिम सरकार के सदस्यों की प्रस्तावित सूची इस प्रकार तैयार हो गयी। अब आवश्यकता सिर्फ एन० वी० इंजीनियर के स्थान पर नया नाम चुनने और लीगियों की जगह पांच राष्ट्रीय मुसलमान चुनने की थी। जब वाइसराय को यह सूची दे दी गई तो शनिवार २४ अगस्त को उन्होंने नामों की घोषणा कर दी और २ सितम्बर से नयी सरकार ने शपथ ले ली। २४ अगस्त की सायंकाल रात्रि के समय भाषण करते हुए वाइसराय ने एक बार मुस्लिम लीग को अंतिरिम सरकार में सम्मिलित होने का फिर निमंत्रण दिया।

२४ अगस्त को भाषण देने के उपरान्त वाइसराय अपनी आंखों से परिस्थिति का निरीक्षण करने कलकत्ता गये। वे 'साम्राज्य के इस दूसरे नगर' में हुए अत्याचारों से ऐसे प्रभावित हुए कि उन्होंने कांग्रेस से परिस्थिति पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने का अनुरोध किया। आपने कांग्रेस से अपने वर्धा के निश्चय में परिवर्तन करने का अनुरोध किया और कहा कि प्रान्तों-द्वारा समूह में सम्मिलित होने के सम्बन्ध में कांग्रेस को मिशन की व्याख्या स्वीकार कर लेनी चाहिए कि एकबार समूह बन जाने पर कोई प्रान्त उससे तब तक पृथक् न हो सकेगा जब तक कि नये विधान के अन्तर्गत उस प्रान्त की निर्वाचित धारासभा ऐसा निश्चय न करे। यही नहीं, बल्कि वाइसराय ने कुछ कड़ा रुख भी ग्रहण किया और कहा कि यदि ऐसी बात नहीं की जाती तो वे विधान परिषद् ही न बुलायेंगे। यदि यही विचार था तो वाइसराय को अंतरिम सरकार बनाने के लिए कांग्रेस अध्यक्ष से नहीं कहना चाहिए था।

परन्तु, बाद में वाइसराय सँभल गये और २ सितम्बर को अंतरिम सरकार की स्थापना

होगई। यदि वाइसराय विधान परिषद् के सम्बन्ध में हस्तक्षेप करना भी चाहते तो नहीं कर सकते थे, क्योंकि अंतरिम सरकार स्वयं विधान परिषद् बुलाकर कार्यक्रम के अनुसार आगे बढ़ सकती थी।

जिस दिन अंतरिम सरकार, जिसे अस्थायी राष्ट्रीय सरकार कहना अधिक उचित होगा, स्थापित हुई उस दिन सभी विचार करने लगे कि भारत को स्वाधीनता प्रदान करने का जो वचन दिया था उसकी पूर्ति किस सीमा तक हुई। अठारहवीं शताब्दी में मेकाले ने भारत को स्वशासन मिलने के दिन को ब्रिटिश साम्राज्य का सब से गौरवपूर्ण दिन कहा था और उसके लिए भूमि तैयार की थी। इसके उपरान्त १८८४ में देश के विभिन्न वर्गों को एक ही झंडे के नीचे लाकर स्वाधीनता का बीजारोपण श्री डब्लयू० सी० बनर्जी ने किया। १८९८ में मद्रास में श्री आनंदमोहन बोस ने 'प्रेम और सेवा' द्वारा पौधे को सींचा। १९०६ में दादाभाई नौरोजी ने कलकत्ता में उस वृक्ष को स्वराज्य का नाम दिया। १९१७ में वह वृक्ष फूला। १९२९ में उसमें पूर्ण स्वराज्य का फल लगा। इस अवसर पर बागवां जवाहरलाल थे। ये सभी राष्ट्रीय सरकार के लक्ष्य तक पहुंचने की विभिन्न अवस्थाएं थीं। निस्संदेह फल लग चुका था, किन्तु उसे प्राप्त करना बाकी था। स्वराज्य का फल उसे प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले की गोद में स्वयं गिर नहीं पड़ता, उसे पकाने के लिए चतुर मालियों की आवश्यकता होती है। स्वराज्य के फल को पकाने के लिए १४ माली (अंतरिम सरकार के सदस्य) नियुक्त किये गये।

अक्सर सवाल उठाया जाता है कि ब्रिटेन ने सत्ता छोड़ने का निश्चय क्यों किया ? इस सम्बन्ध में कितनी ही बातों की चर्चा की जा सकती है ? सब से अधिक महत्वपूर्ण कारण समय की गति और परिस्थितियों की विवशता है। संसार का लोकमत साम्राज्य-निर्माताओं के विरुद्ध हो गया। साम्राज्य नष्ट हो जाने पर साम्राज्यवादी उन पर एक हसरत-भरी निगाह डालने से नहीं चूकते। विजयी राष्ट्रों को जिन कठिन समस्याओं का सामना करना पड़ता है उनके कारण उनकी आकांक्षाएं धूल में मिल जाती हैं और शान्ति की समस्याएं युद्ध की समस्याओं से कहीं अधिक कठिन होती हैं। प्रथम महायुद्ध के आर्थिक परिणाम विजयी राष्ट्रों के लिए बड़े कष्टदायक हुए और विजित जर्मनी १९१९ के बाद के वर्षों में विजयी ब्रिटेन पर हावी रहा। पहले महायुद्ध के बाद जर्मनी के आत्म-समर्पण के केवल ७॥ महीने बाद ही ७ मई को जर्मनी के आगे संधि का मसविदा उपस्थित कर दिया गया और उस पर २८ जून, १९१९ को हस्ताक्षर होगये। परन्तु दूसरे महायुद्ध के बाद अगस्त, १९४६ तक (इटली के आत्म-समर्पण के ३४ महीने बाद, जर्मनी के आत्म-समर्पण के १४ महीने बाद तक और जापान की पराजय के ११ महीने बाद तक) संधि का कोई मसविदा तैयार नहीं हुआ था, बल्कि इस सम्बन्ध में कार्य ही २९ जुलाई, १९४६ को आरम्भ किया गया था। इससे मित्रराष्ट्रों के बीच कहा सुनी आरम्भ हो गयी और ईर्ष्याग्नि भी भड़क उठी, क्योंकि सोवियट रूस ब्रिटेन या फ्रांस से कम साम्राज्यवादी नहीं साबित हुआ। ब्रिटेन की समाजवादी सरकार तथा रूस की सोवियट सरकारों के मध्य भी साम्राज्यवादी पैंतरेबाजी होने लगी। ब्रिटेन और रूस की प्रतिद्वन्दिता प्रत्यक्ष संसार के सामने प्रकट हो गयी। ब्रिटेन अन्न के लिए अभी तक विदेशी आयात् पर निर्भर था, किन्तु इस आयात् का मूल्य नकद चुकाने में वह असमर्थ हो गया। इस प्रकार, आन्तरिक आवश्यकताओं या बाहरी आशङ्काओं के कारण ब्रिटेन के लिए भारत की सद्भावना प्राप्त करना आवश्यक हो गया। इसके अलावा, ब्रिटेन भारत पर पहले के समान शासन करने में भी असमर्थ हो गया। इस प्रकार एकाधिक कारण से ब्रिटेन के लिए भारतको संतुष्ट करना

आवश्यक हो गया, किन्तु अभी यह देखना शेष है कि ऐसा वह नेकनीयती से कर रहा है अथवा मिस्र या आयर्लैंड की तरह वह भारत में भी अच्छे वक्त की प्रतीक्षा करना चाहता है। परन्तु भारत संसार के स्वाधीन राष्ट्रों के मध्य स्थान प्राप्त करने का दृढ़ संकल्प कर चुका है और ब्रिटेन की किसी योजना से उसके इस संकल्प में हस्तक्षेप नहीं हो सकता। ब्रिटेन के इस कार्य से विश्वसंघ स्थापित हो सकने की सम्भावना उत्पन्न हो गयी है। यदि ब्रिटेन कोई दूसरा मार्ग ग्रहण करता और उस पर चलने के परिणामस्वरूप ब्रिटिश साम्राज्य के साथ स्वयं भी उसी प्रकार विलीन हो जाता जिस प्रकार रोम रोमन साम्राज्य के साथ ही नष्ट हुआ था, तो ब्रिटेन इसके लिए भारत को दोष नहीं दे सकता था।

इस प्रकार कांग्रेस का नाटक अंतरिम दृश्य तक पहुंच गया। पिछले ६० वर्ष में साधारण परिस्थिति से आरम्भ हो कर उसकी कथा में कितने ही उत्तेजनापूर्ण अवसर आये और घटनाचक्र चरमबिन्दु पर भी पहुंचा। कितनी ही बार पर्दा उठा और गिरा, अभिनेता रंगमंच पर आये और चले गये, किन्तु विषय वही राष्ट्रव्यापी स्वाधीनता-संघर्ष का रहा। यह संघर्ष एक ऐसे राष्ट्र का था, जो सांस्कृतिक दृष्टि से तो उन्नति के शिखर पर पहुंच गया था, किन्तु तेजस्वी आधुनिक राष्ट्रों की तुलना में जीवन की दौड़ में पिछड़ा हुआ था। इन राष्ट्रों ने पश्चिमी विज्ञान की सहायता से पदार्थवादी सभ्यता की उन्नति कर ली और पड़ोसी रंगीन जातियों पर प्रभुत्व जमा लिया। इस तरह उन्होंने एशिया के दक्षिण-पूर्व तथा उत्तर-पश्चिम में साम्राज्य स्थापित किये। बीसवीं शताब्दी के मध्य में भारत, चीन, मलाया, इंडोनेशिया, फिलिस्तीन, अरब, मिस्र और सीरिया में अभूतपूर्व जाग्रति हुई और मंगोल, आर्य तथा सेमिटिक जातियां स्वाधीनता के पथ पर अग्रसर हुईं। इस पथ पर उन्हें अनेक बाधाओं से सामना करना पड़ा, किन्तु लक्ष्य तक पहुंचने की धुन में उन्होंने उन सभी को दूर कर दिया। पश्चिम की गुलामी से मुक्त होने के लिये दक्षिण-पूर्वी तथा उत्तर-पश्चिमी एशिया के देशों से जो संघर्ष छिड़ा उसका नेतृत्व भारत ने सत्य और अहिंसा पर आधारित सत्याग्रह का सिद्धान्त ले कर किया—उसी सत्य और अहिंसा पर जो पश्चिम द्वारा फैलायी अव्यवस्था के स्थान पर पूर्व की सद्भावना और भाईचारा कायम करने की एकमात्र आशा है, जिससे सुदूर भविष्य में 'मानवमात्र की पार्लमेंट और विश्वसंघ' का मार्ग प्रशस्त हो सकेगा।

अयं निजः परो वेत्ति गणनां लघुचेतसां।
उदार चरितानां· तु वसुधैव कुटुंबकम् ॥

विधान परिषद्

किन परिस्थितियों में अंतरिम सरकार पहले लीग के प्रतिनिधियों के बिना और फिर उन्हें सम्मिलित करके स्थापित हुई—इसका संक्षिप्त विवरण 'उपसंहार' में दिया गया है। बाद में हुई कुछ घटनाओं के कारण कुछ पुनरावृत्ति आवश्यक हो गयी है। लीग के सम्मिलित होने के समय विश्वास किया जाता था कि वह मिशन की दीर्घकालीन योजना से भी सहमत है और विधान-परिषद् में बिना हिचक के सम्मिलित हो जायगी। ऐसा अंतरिम सरकार में सम्मिलित होने की मूल शर्तों के कारण नहीं, बल्कि लीग की तरफ से लार्ड वेवल द्वारा दिये गये आश्वासन के कारण समझा जाता था। परन्तु अंतरिम सरकार में सम्मिलित होने के कुछ ही समय बाद लीग के नेता ने घोषणा की कि लीग विधान परिषद् में सम्मिलित नहीं होगी और वह अभी तक पाकिस्तान तथा दो विधान-परिषदों की अपनी मूल मांग पर कायम है।

यही स्थिति थी कि एकाएक ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने कांग्रेस तथा लीग के दो-प्रतिनिधियों तथा अंतरिम सरकार के सिख प्रतिनिधि को विधान-परिषद् के सम्बन्ध में बातचीत के लिए लंदन बुलाया। कांग्रेस की पहली प्रतिक्रिया यह हुई कि इस निमंत्रण को स्वीकार न किया जाय, क्योंकि उसका मत था कि विधान-परिषद् का सम्बन्ध भारत के लिये विधान-निर्माण करनेसे है—इसलिये परिषद् सम्बन्धी प्रत्येक बात का फैसला लंदन में न होकर भारत में और भारतीयों द्वारा होना चाहिये। इसी कारण भारत में मंत्रि-मिशन भेजने के विचार का स्वागत किया गया था। कांग्रेस की तरफ से कहा गया कि यदि ब्रिटिश मंत्री इस विषय पर फिर कोई बात करना चाहते हैं तो उन्हें भारत आजाना चाहिए। परन्तु प्रधानमंत्री श्री एटली के आश्वासन देने पर पंडित जवाहरलाल ने इस निमंत्रण को स्वीकार कर लिया—शायद कुछ अनिच्छापूर्वक और कदाचित अपने कुछ साथियों की और भी अधिक अनिच्छापूर्वक। पंडित जवाहरलाल नेहरू और सरदार बलदेवसिंह इंग्लैंड में थोड़े ही समय रहे और इस अर्से में कोई खास बात नहीं हुई। आशा थी कि इस यात्रा का कुछ परिणाम न निकलेगा। भारत से आये मेहमानों से अलग और इकट्ठे मिलने के उपरान्त ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने सभी भारतीय मेहमानों को आमंत्रित किया और उनके मध्य अपना ६ दिसम्बर का प्रसिद्ध वक्तव्य पढ़कर सुनाया, जिसने भारतीय राजनीति में फूट का एक और बीज बो दिया। इस घोषणा के सम्बन्ध में भारतीय नेताओं से पहले कोई परामर्श नहीं किया गया और कांग्रेस तथा सिखों के प्रतिनिधि तुरन्त वापिस आ गये, क्योंकि ९ दिसम्बर को विधान-परिषद् का अधिवेशन आरम्भ हो रहा था।

सम्राट् की सरकार ने ६ दिसम्बर को एक वक्तव्य दिया जो इस प्रकार है:—

"पंडित नेहरू और सरदार बलदेवसिंह कल सबेरे भारत को वापस जा रहे हैं, और सम्राट् की सरकार ने पंडित नेहरू, श्री जिन्ना, श्री लियाकत अली खां और सरदार बलदेवसिंह के साथ जो बातचीत चलायी थी, वह आज सायंकाल समाप्त हो गयी।

"विधान-परिषद् में सब दलों का सम्मिलन तथा सहयोग-प्राप्त करना, इस बातचीत का उद्देश्य रहा है। किसी अंतिम निश्चय पर पहुँचने की आशा नहीं थी, क्योंकि अंतिम निर्णय करने से पहले भारतीय प्रतिनिधियों का अपने सहयोगियों से परामर्श करना आवश्यक था।

मुख्य कठिनाई मंत्रि-मिशन द्वारा १६ मई को दिये गये वक्तव्य के १९ वें पैरे की (५) तथा (८) उप-धाराओं की व्याख्या के सम्बन्ध में है। इन उप-धाराओं में भागों (सेक्शनों) की बैठकों का उल्लेख है और वे इस प्रकार हैं:—

पैरा १९ (५) "ये सेक्शन हर सेक्शन में शामिल किये गये प्रान्तों के प्रान्तीय विधान निश्चित करना आरम्भ करेंगे और यह भी निश्चय करेंगे कि क्या उन प्रान्तों के समूह का भी कोई विधान बनेगा और यदि बनेगा तो समूह के अधीन कैसे प्रान्तीय विषय रहेंगे। नीचे दी गई उप-धारा (८) के अनुसार, प्रान्तों को समूहों से पृथक् होने का अधिकार होना चाहिए।"

पैरा १९ (८) "नवीन वैधानिक व्यवस्था के कार्यान्वित होते ही, किसी भी प्रान्त को, उस समूह से जिसमें कि वह रखा गया है, बाहर निकल आने की स्वतंत्रता प्राप्त होगी। इसका निश्चय, नवीन विधान के अनुसार प्रथम आम निर्वाचन हो जाने के बाद, प्रान्त की नवीन व्यवस्थापिक सभा द्वारा किया जायगा।"

मंत्रि-मिशन का बराबर यही मत रहा है कि सेक्शनों के निर्णय, इसके विपक्ष में किसी समझौते के अभाव में, सेक्शनों के प्रतिनिधियों के साधारण बहुसंख्यक मतों के द्वारा किये जायँ।

मुस्लिम लीग ने इस मत को स्वीकार किया है, किन्तु कांग्रेस ने एक दूसरा मत प्रस्तुत किया है। उसका कहना है कि सारे वक्तव्य को पढ़ने पर वास्तविक अर्थ यह निकलता है कि प्रान्तों की समूह-बंदी और अपने निजी विधान दोनों के बारे में निर्णय करने का अधिकार है।

सम्राट् की सरकार ने सलाह ली है और उससे इस बात की पुष्टि होती है कि १६ मई के वक्तव्य का वही अर्थ है, जिसे मंत्रि-मिशन हमेशा ही अपना अभिप्राय बताता रहा है। वक्तव्य के इस अंश को इसी अर्थ के साथ १६ मई की योजना का एक आवश्यक अंग समझा जाना चाहिए जिससे कि भारतीय राष्ट्र एक ऐसा विधान तैयार कर सके, जिसे सम्राट् की सरकार पार्लमेंट में पेश करने में तत्पर हो सके।

परन्तु यह भी स्पष्ट है कि १६ मई वाले वक्तव्य की व्याख्या के सम्बन्ध में अन्य प्रश्न उठ सकते हैं और सम्राट् की सरकार आशा करती है कि यदि मुस्लिम लीग कौंसिल विधान परिषद् में भाग लेना स्वीकार करे तो कांग्रेस के समान वह भी इस सम्बन्ध में सहमत हो जायगी कि किसी पक्ष-द्वारा व्याख्या का अनुरोध किये जाने पर उस प्रश्न को निर्णय के लिये संघ-न्यायालय के सुपुर्द कर दिया जाय। समाट् की सरकार यह भी आशा करती है कि मुस्लिम लीग कौंसिल इस निर्णय को स्वीकार कर लेगी ताकि संघ विधान-परिषद् और सेक्शनों की कार्य-पद्धति मंत्रि-मिशन की योजना के अनुसार चल सके।

अभी जिस प्रश्न के सम्बन्ध में विवाद चल रहा है उसके विषय में सम्राट् की सरकार कांग्रेस से मंत्रि-मिशन के मत को स्वीकार करने का अनुरोध करती है ताकि मुस्लिम-लीग द्वारा अपने रुख पर फिर से विचार कर सकने का मार्ग निकल आये। यदि मंत्रि-मिशन के आशय की इस प्रकार पुष्टि होने पर भी इस आधारभूत प्रश्न को संघ-न्यायालय के सुपुर्द करने की विधान-परिषद् की इच्छा हो तो ऐसा काफी पहले ही होना चाहिये। इस अवस्था में यह उचित है कि संघ-न्यायालय का निर्णय ज्ञात होने से पूर्व विधान-परिषद् के सेक्शनों की बैठकों को स्थगित रखा जाय।

विधान-परिषद् की सफलता केवल स्वीकृत कार्य-पद्धति द्वारा ही सम्भव है। यदि कोई विधान किसी ऐसी विधान-परिषद्-द्वारा तैयार किया गया हो, जिसमें भारतीय जनता के किसी बड़े भाग का प्रतिनिधित्व न हो, तो सम्राट् की सरकार यह कभी इरादा नहीं रखती—और कांग्रेस भी कह चुकी है कि वह भी ऐसा इरादा नहीं करेगी—कि ऐसे विधान को देश के किसी अनिच्छुक भाग पर जबरन लाद दिया जाय।

ब्रिटिश मंत्रिमण्डल के मतानुसार लंदन में हुई बातचीत का उद्देश्य विधान-परिषद् में सम्मिलित होने के लिए विभिन्न दलों का सहयोग प्राप्त करना था। साथ ही यह भी माना गया था कि भारतीय प्रतिनिधि अपने साथियों से सलाह किये बिना किसी निर्णय पर नहीं पहुँच सकते थे। मुख्य कठिनाई मंत्रि-मिशन के १६ मई के वक्तव्य पैरा १९ (५) और (८) के सम्बन्ध में थी। पहले पैरे का सम्बन्ध समूह बनाने और दूसरे का समूह से प्रान्तों के पृथक् होने से था। वक्तव्य में बताया गया है कि समूह बनाने के लिए बहुमत के सम्बन्ध में मंत्रि-मिशन का क्या मत था। वक्तव्य में इस बहुमत को भाग (सेक्शन) का बहुमत कहा गया है। दूसरे शब्दों में वोट प्रान्तों के अलग-अलग नहीं होंगे, बल्कि व्यक्तियों के होंगे। मंत्रिमण्डल मिशन ने लंदन में प्राप्त कानूनी सलाह-द्वारा अपने मत की पुष्टि भी प्राप्त करली है। फिर वक्तव्य में कहा गया है कि "वक्तव्य के इस अंश को इसी अर्थ के साथ १६ मई की योजना का एक आवश्यक अंग समझा

जाना चाहिए, जिससे भारतीय राष्ट्र एक ऐसा विधान तैयार कर सके, जिसे सम्राट् की सरकार पार्लमेंट में पेश करने में तत्पर हो सके।" इसलिए विधान-परिषद् के सभी दलों को उसे स्वीकार कर लेना चाहिए। मंत्रिमण्डल ने कांग्रेस से मंत्रि-मिशन का यह मत स्वीकार करने का अनुरोध किया है, जिससे मुस्लिम-लीग अपने रुख पर फिर से विचार कर सके। साथ ही मंत्रिमण्डल ने यह भी सिफारिश की है कि यदि इस आधारभूत तथ्य के सम्बन्ध में संघ अदालत को निर्णय के लिए कहा जाय तो ऐसा तुरन्त होना चाहिए और निर्णय होने तक परिषद् के समूहों की बैठक स्थगित रखी जाय। मंत्रिमण्डल के वक्तव्य में आगे कहा गया है:—

"परन्तु यह भी स्पष्ट है कि १६ मई वाले वक्तव्य की व्याख्या के सम्बन्ध में अन्य प्रश्न उठ सकते हैं और सम्राट् की सरकार आशा करती है कि यदि मुस्लिम लीग कौंसिल विधान परिषद् में भाग लेना स्वीकार करे तो कांग्रेस के समान वह भी इस सम्बन्ध में सहमत हो जायगी कि किसी एक पक्ष-द्वारा व्याख्या का अनुरोध करने पर उस प्रश्न को निर्णय के लिए संघ-न्यायालय के सुपुर्द कर दिया जाय।"

वक्तव्य के अंतिम पैरा में यह धमकी दी गयी है कि "यदि कोई विधान किसी ऐसी विधान-परिषद्-द्वारा तैयार किया गया हो, जिसमें भारतीय जनता के किसी बड़े भाग का प्रतिनिधित्व न हो, तो सम्राट् की सरकार यह इरादा कभी नहीं करती—और कांग्रेस भी कह चुकी है कि वह भी ऐसा इरादा नहीं करेगी—कि ऐसे विधान को देश के किसी अनिच्छुक भाग पर जबरन लाद दिया जाय।"

वक्तव्य की मुख्य बातें निम्न हैं:—

(१) परिषद् के भागों (सेक्शनों) में व्यक्तियों के अलग-अलग वोट लिये जायँ, जिससे समूहीकरण अनिवार्य हो जायगा और जिसके परिणामस्वरूप वक्तव्य के १५ (५) पैरा में कहा यह मत व्यर्थ हो जायगा कि प्रान्त समूह बनाने के विषय में स्वतंत्र रहेंगे। इस तरह जो बात ऐच्छिक थी, उसे अनिवार्य कर दिया गया और इसी तरह प्रान्तों-द्वारा अपना विधान बनाने का अधिकार भी, जो प्रान्तीय स्वशासन की पहली आवश्यकता है, छीन लिया गया।

(२) इस व्याख्या को इंग्लैंड के कानूनी पंडितों का समर्थन प्राप्त है। इस उक्ति से वोट प्रदान करने के विषय में संघ-अदालत के निर्णय का पहले ही अनुमान कर लिया गया है और उसे प्रभावित करने की चेष्टा की गयी है। इस प्रकार निर्णय कराने की उपयोगिता नष्ट हो गयी है।

(३) मंत्रिमण्डल ने मत प्रकट किया है कि अन्य किसी विवादास्पद विषय को कोई भी पक्ष निर्णय के लिए संघ-अदालत के सुपुर्द कर सकता है, किन्तु प्रस्तुत प्रश्न—यानी समूहीकरण का प्रश्न सिर्फ विधान-परिषद् की इच्छा से ही संघ-अदालत के सुपुर्द किया जा सकता है।

(४) मंत्रिमण्डल ने कहा है उसकी व्याख्या सभी पक्षों-द्वारा मान्य होनी चाहिए, जिससे सम्राट् की सरकार नये विधान को पार्लमेंट में उपस्थित कर सके।

(५) मंत्रिमण्डल ने अंतिम पैरे में एक पक्ष को उत्तेजित किया है कि यदि परिषद् में जनता के एक वर्ग को प्रतिनिधित्व न प्राप्त हो तो उसे नये विधान को स्वीकार न करना चाहिए। इससे हम वस्तुतः लार्ड लिनलिथगो द्वारा ८ अगस्त १९४० को दिये वक्तव्य की स्थिति में पहुँच जाते हैं, जिसे १४ अगस्त, १९४० को श्री एमरी ने पार्लमेंट में दोहराया था कि १० करोड़ मुसलमानों पर कोई विधान जबर्दस्ती नहीं लादा जायगा और इससे १५ मार्च, १९४६ को श्री

एटली का वह वचन भंग होजाता है, जिसमें कहा गया था कि किसी अल्पसंख्यक जाति को संपूर्ण राष्ट्र की उन्नति नहीं रोकने दिया जायगा।

जिस समय लन्दन से कांग्रेस व सिखों के प्रतिनिधि लौटे थे उसी समय ब्रिटिश मन्त्रि-मण्डल का वक्तव्य प्रकाशित हो गया था। लेकिन कांग्रेस को इस सम्बन्ध में निश्चय करने में कुछ समय लग गया। परन्तु मन्त्रिमण्डल ने कांग्रेस से वक्तव्य को स्वीकार करने का अनुरोध उचित परिस्थिति में नहीं किया। यदि दो दल किसी विषय में कोई समझौता करते हैं और इस समझौते का मसविदा तैयार किया जाता है तो एक दल द्वारा उस समझौते की शर्त में परिवर्तन करना और फिर दूसरे दल से उसे स्वीकार करने का अनुरोध करना अनुचित ही कहा जायगा। ब्रिटिश सरकार ने वक्तव्य का मनमाना अर्थ लगाया और इस अर्थ को समझौते का आवश्यक अंग बना दिया और फिर कांग्रेस को धमकी दी कि यदि वह इस अर्थ को स्वीकार नहीं करती तो ब्रिटिश सरकार विधान-परिषद्-द्वारा तैयार किया गया विधान पार्लमेण्ट के आगे उपस्थित ही नहीं करेगी। ब्रिटिश सरकार की यह धमकी नियम-विरुद्ध ही नहीं बल्कि नैतिक दृष्टि से विश्वास-घात ही थी।

ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल और मुस्लिम-लीग ने जो यह प्रतिक्रियापूर्ण चाल चली थी इसमें उनकी मिली-जुली योजना क्या थी? यह स्पष्ट था कि इस तरह इसमें लीग का ही लाभ था। ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल ने ६ दिसम्बर को एक वक्तव्य निकाला था और उसे स्वीकार करने का अनुरोध भी किया था। समूहों के सम्बन्ध में की गयी व्याख्या को भी स्वीकार करने का अनुरोध कांग्रेस से किया गया था। यदि कांग्रेस उसे स्वीकार करती है तो वह खुशी से पाकिस्तान माने लेती है। यदि वह नहीं स्वीकार करती तो वह उससे जबर्दस्ती ले लिया जायगा। यह इस प्रकार होता कि यदि कांग्रेस व्याख्या नहीं मानती और विधान-निर्माण का कार्य शुरू कर देती तो वह १६ मई के वक्तव्य के अंतर्गत आ जाती है, किन्तु ६ दिसम्बर वाले वक्तव्य के अन्तर्गत नहीं। इस ६ दिसम्बर वाले वक्तव्य में कहा गया था कि ब्रिटिश सरकार विधान-परिषद्-द्वारा तैयार किये गये विधान को पार्लमेंट में उपस्थित करने के लिए विवश नहीं होगी। ऐसी अवस्था में ब्रिटिश सरकार अपने १६ मई के वक्तव्य में परिवर्तन करने को तैयार हो जाती और फिर अपने ६ दिसम्बर वाले वक्तव्य के अनुसार कार्य करती। इसका क्या परिणाम होता? हम अनुमान करते हैं कि लीग क्या करती? लीग के सदस्य पहले विधान-परिषद् में सम्मिलित होते और फिर भागों (सेक्शनों) में बँट जाते। सवाल किया जा सकता है कि ऐसा कैसे होता? १६ मई के वक्तव्य में कहा गया था कि विधान-परिषद् की प्रारम्भिक बैठक के बाद प्रान्तीय प्रतिनिधि तीन भागों में बँट जायंगे जिसका मतलब यह था कि भागों की बैठक बुलाना विधान-परिषद्के अध्यक्ष का काम नहीं था। जैसा कि सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने पार्लमेंट में कहा था, भाग 'बी' और 'सी' को इस प्रकार बनाया गया था जिससे उनमें मुसलमानों का बहुमत होता और ये सदस्य स्वयं भी एकत्र हो कर अपनी बैठकें आरम्भ कर सकते थे, जिस प्रकार विधान-परिषद ने लीगी सदस्यों के बिना ही अपनी बैठकें की थीं। भाग 'बी' और 'सी' अपनी कार्यवाही करते और कांग्रेस द्वारा ६ दिसम्बर का वक्तव्य स्वीकार न किये जाने की बात की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए ब्रिटिश मंत्रिमंडल से अनुरोध करते। यह भी आशा की गयी थी कि नये वक्तव्य के आधार पर 'बी' और 'सी' भागों के लिए दूसरे विधान-परिषद की स्थापना की जाती और इस प्रकार कांग्रेस के विरोध करते रहने पर भी पाकिस्तान की स्थापना हो जाती।

इस त्रिदलीय झगड़े में अन्य दो दल चाहे जो करते लेकिन कांग्रेस का कर्तव्य बिल्कुल स्पष्ट था। सवाल था कि ६ दिसम्बरवाले वक्तव्य में झगड़ा संघ-अदालत के सुपुर्द करने का जो सुझाव किया गया था वैसा किया जाय या नहीं? पहली इच्छा यही होती कि ऐसा न किया जाय। परन्तु कांग्रेस कार्यसमिति ने ऐसा करने का निश्चय किया। लंदन के पत्र-प्रतिनिधि सम्मेलन में श्री जिना ने मामला संघ अदालत के सुपुर्द किये जाने की अवस्था में उसका निर्णय मानने से इन्कार कर दिया, क्योंकि वे इसे वक्तव्य का महत्वपूर्ण अंश समझते थे। फिर भी कार्यसमिति अपने निश्चय से हटी नहीं। कहा गया कि विधान-परिषद् के अध्यक्ष इस सम्बन्ध में पहले एक घोषणा करेंगे, फिर परिषद् एक प्रस्ताव पास करेगी और अंत में परिषद् के अध्यक्ष संघ-अदालत के समक्ष एक अर्जी पेश करेंगे। यह निश्चय ही था कि १७ दिसम्बर के दिन लार्ड पैथिक-लारेंस ने लार्ड सभा में भाषण करते हुए निम्न शब्द कहे:—

"मैं यह बात स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि यह सवाल ऐसा नहीं है, जो ब्रिटिश सरकार की राय में संघ-अदालत के समक्ष उपस्थित करने-योग्य हो। ६ दिसम्बर के वक्तव्य में यह स्पष्ट कर दिया गया था और ब्रिटिश सरकार जो अर्थ ठीक समझती है वह भी बता दिया गया था। सरकार का मत है कि सभी दलों को यह अर्थ स्वीकार कर लेना चाहिए। सरकार संघ-अदालत की चर्चा सिर्फ इसीलिए करती है कि विधान-परिषद इस विषय को संघ-अदालत के सुपुर्द करना चाहती है। कांग्रेस ने यही मत प्रकट किया था। ऐसा तुरंत होना चाहिए। मैं यह बिल्कुल स्पष्ट करना चाहता हूँ कि सम्राट् की सरकार १६ मई के वक्तव्य के सम्बन्ध में अपनी व्याख्या पर कायम है और संघ अदालत से अपील करने पर भी उसका इरादा इस अर्थ से हटने का नहीं है। मुझे आशा है कि ऐसा समझौता हो जायगा, जिससे दोनों दलों की आशंका मिट सके।"

लार्ड पैथिक लारेंस तथा सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने सभी सम्बन्धित दलों को यह भी आश्वासन दिया कि समूह संघटित होने पर किसी बड़े प्रान्त-द्वारा छोटे प्रान्त का ऐसा विधान बनाने की कोई सम्भावना नहीं है, जिससे वह समूह से बाद में अलग न हो सके। उन्होंने कहा कि बड़े प्रान्तों-द्वारा ऐसा करना योजना की मूल व्यवस्था के विरुद्ध होता। अब कांग्रेस बड़ी दुविधा में पड़ गयी। विधान-परिषद् के कांग्रेसी दल ने यह मामला कार्य-समिति के विचार के लिए छोड़ दिया और कार्य-समिति ने कई दिन और रात इस समस्या पर सोच-विचार करने में बिताये। यदि ६ दिसम्बर का वक्तव्य नहीं माना जाता तो समूहों के लिए पृथक् विधान परिषद् बन जाती और आसाम व सीमाप्रान्त के उस परिषद् में सम्मिलित होने या न होने का भी कोई प्रभाव न पड़ता। इस तरह लीग का मनचीता ही होता। यदि ६ दिसम्बर का वक्तव्य अस्वीकार किया जाता या उसकी उपेक्षा की जाती तो ब्रिटेन से कूटनीतिक सम्बन्ध भंग होने के समान ही यह बात होती और तब भारत-मंत्री वाइसराय से कहते :— "लार्ड महोदय, यह तो झगड़ा करने के बराबर है। कांग्रेस विरोध करने से डरती नहीं, किन्तु, प्रत्येक वस्तु का समय और परिस्थिति होती है और भारत के स्वाधीनता-आन्दोलन और ब्रिटिश साम्राज्यवाद के मध्य शत्रुता होने के लिए भी समय और परिस्थिति होनी ही चाहिए। ६ दिसम्बर के वक्तव्य की स्वीकृति लीग की सबसे भारी विजय होती और कदाचित इससे श्री जिन्ना की रियासत झटक लेने की प्रवृत्ति को और भी प्रोत्साहन मिलता और सम्भवतया वे समूह 'ब.' और सी' के लिए पृथक् सेना एं और केन्द्र से उनके लिए सहायता भी मांग बैठते। कार्य-समिति को इस सब पर विचार करना था। इस प्रकार कार्य-समिति के आगे और कोई मार्ग ही नहीं रह गया था। मेरठ में कांग्रेस का

अधिवेशन हुए अभी एक महीना भी नहीं हुआ था, जिसमें कार्य-समिति तथा सम्राट् की सरकार के मध्य हुई सम्पूर्ण व्यवस्था को कांग्रेस स्वीकार कर चुकी थी, किन्तु अब अनेक पेचीदगियों से भरी नयी परिस्थिति उपस्थित थी। कांग्रेस के पूर्ण अधिवेशन में हुए निश्चयों पर केवल अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ही विचार कर सकती थी। अतः कार्य-समिति ने यह मामला उसी के सुपुर्द कर दिया। ५ जनवरी १९४७ को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक हुई। कार्य-समिति ने २२ दिसम्बर, १९४६ को एक विस्तृत वक्तव्य प्रकाशित करके ही संतोष कर लिया। वक्तव्य नीचे दिया जाता है :--

"कार्यसमिति ने ब्रिटिश सरकार के ६ दिसम्बर वाले तथा उसकी तरफ से हाल में पार्लमेंट में दिये गये वक्तव्यों पर विचार किया। गो कि ये वक्तव्य स्पष्टीकरण के विचार से दिये गये हैं, किन्तु वस्तुतः इनके द्वारा उस १६ मई, १९४६ के वक्तव्य में परिवर्तन किया गया है और नयी बातें जोड़ दी गयी हैं, जिस पर विधान-परिषद् की योजना आधारित थी।

"१६ मई, १९४६ के वक्तव्य के पैरा १५ में यह आधारभूत सिद्धान्त बताया गया है कि 'ब्रिटिश भारत तथा रियासतों को मिलाकर एक संघ (यूनियन) बनाया जायगा' और संघीय विषयों के अतिरिक्त शेष सभी विषय प्रान्तों के अधीन रहेंगे और प्रान्त समूह बनाने के लिये स्वतंत्र रहेंगे'। इस तरह प्रान्त स्वशासित इकाइयां होती थीं और सिर्फ कुछ खास मामलों में ही वे संघ के अधीन होतीं। पैरा १९ में दूसरी बातों के अलावा परिषद् के विभिन्न भागों की बैठक करने, समूहों का निर्माण करने या नहीं करने के विषय में निश्चय करने और प्रान्त जिन समूहों में रखे गये थे उनमें से उनके बाहर निकलने की पद्धति बतायी गयी थी।

"२४ मई, १९४६ के प्रस्ताव में कार्य-समिति ने योजना के मूल सिद्धान्तों तथा प्रस्तावित पद्धति के बीच अंतर बताया था और कहा था कि प्रस्तावित कार्य-पद्धति-द्वारा प्रान्तीय स्वशासन के आधारभूत सिद्धान्त पर कुठाराघात होता है। इसलिए मंत्रि-मिशन ने २५ मई, १९४६ को एक वक्तव्य प्रकाशित किया, जिसमें कहा गया था कि 'वक्तव्य के पैरा १५ के सम्बन्ध में कांग्रेस ने जो इस आशय का प्रस्ताव पास किया है कि प्रान्तों को जिस समूह में रखा गया है उसमें रहने या न रहने के सम्बन्ध में वे स्वतंत्र हैं—यह मंत्रिमिशन के इरादे के विरुद्ध है। प्रान्तों के समूहीकरण के कारण स्पष्ट हैं और यह योजना का आवश्यक अंग है। इसमें सिर्फ विभिन्न दलों के मध्य समझौते द्वारा ही परिवर्तन हो सकता है, परन्तु सवाल सिर्फ पद्धति का ही नहीं था, वरन् वह प्रान्तीय स्वायत्त शासन का था—यह कि किसी प्रान्त या उसके किसी हिस्से को उस की इच्छा के विरुद्ध किसी समूह में शामिल किया जा सकता है या नहीं।

"कांग्रेस ने स्पष्टीकरण किया कि उसे प्रान्तों के भागों (सेक्शनों) में जाने पर आपत्ति नहीं है, बल्कि उसकी आपत्ति अनिवार्य समूहीकरण और एक शक्तिशाली प्रान्त-द्वारा दूसरे प्रान्त का विधान उसकी मर्जी के विरुद्ध तैयार करने पर है। वह शक्तिशाली प्रान्त मताधिकार, निर्वाचन क्षेत्र तथा धारासभाओं के सम्बन्ध में ऐसे नियम बना सकता है, जिससे दूसरे प्रान्त-द्वारा बाद में समूह से अलग होने की व्यवस्था ही व्यर्थ हो जाय। यह भी कहा गया था कि मंत्रि-मिशन का यह इरादा कभी नहीं हो सकता था, क्योंकि ऐसा उनकी योजना के मूल आधार के ही विरुद्ध होता।

"विधान-निर्माण की समस्या के प्रति कांग्रेस का दृष्टिकोण यही रहा है कि किसी प्रान्त या देश के भाग के विरुद्ध दबाव न डाला जाय और स्वाधीन-भारत का विधान सभी दलों और

प्रान्तों की रजामंदी से तैयार किया जाय।

"लार्ड वेवल ने अपने १५ जून, १९४६ के पत्र में कांग्रेस के अध्यक्ष मौलाना आजाद को लिखा था—'मंत्रि-मिशन और मैं—दोनों ही आपकी समूहीकरण-सम्बन्धी आपत्तियों से परिचित हैं। परन्तु मैं कहना चाहता हूं कि १६ मई के वक्तव्य के अनुसार समूहीकरण अनिवार्य नहीं है। इसके अनुसार भागों में मिलकर बैठने वाले सम्बन्धित प्रान्तीय प्रतिनिधियों के निर्णय पर समूहीकरण का प्रश्न छोड़ दिया गया है। व्यवस्था केवल यही की गयी है कि कतिपय प्रान्तों के प्रतिनिधि भागों (सेक्शनों) के रूप में बैठेंगे, जिससे वह समूह निर्माण करने अथवा न करने का फैसला कर सकें।

"इस तरह जिस विधान पर जोर दिया गया था वह यही था कि समूहीकरण अनिवार्य नहीं है और भागों में बैठने के सम्बन्ध में भी एक विशेष कार्य-पद्धति बतायी गयी थी। यह कार्य-पद्धति स्पष्ट नहीं थी और इसकी व्याख्या एक से अधिक तरीके से की जा सकती थी, और, चाहे जो हो, कार्य-पद्धति किसी स्वीकृत सिद्धान्त की हत्या नहीं कर सकती थी। हमने कहा था कि वही व्याख्या ठीक कही जायगी जिससे आधारभूत सिद्धान्त की हत्या न होती हो।

"यही नहीं, प्रस्तावित योजना को अमल में लाने में सभी सम्बन्धित दलों का सहयोग प्राप्त करने के उद्देश्य से हमने सिर्फ भागों में जाने की रजामंदी ही प्रकट नहीं कर दी, बल्कि हमने यह सुझाव भी पेश किया कि हम इस प्रश्न को संघ-अदालत के सुपुर्द करने के लिए भी तैयार हैं।

"यह सभी जानते हैं कि समूहीकरण के प्रस्ताव का प्रभाव आसाम और सीमाप्रान्त पर तथा पंजाब के सिखों पर पड़ता है। इसके प्रतिनिधियों ने प्रस्ताव का जोरदार शब्दों में विरोध किया है। २५ मई, १९४६ को लिखे गये पत्र में मास्टर तारासिंह ने सिखों की तरफ से भारत-मंत्री से अपनी चिन्ता प्रकट की थी और कुछ बातों का स्पष्टीकरण मांगा था। भारत-मंत्री ने इस पत्र का उत्तर १ जून, १९४६ को भेजा था, जिसमें उन्होंने लिखा था—'पत्र के अंत में आपने जो बातें उठायी हैं उन पर मैंने सावधानीपूर्वक विचार कर लिया है। मिशन अपने वक्तव्य में और कुछ जोड़ नहीं सकता और न उसकी अधिक व्याख्या ही कर सकता है।'

"इस स्पष्ट उक्ति के बाद भी ब्रिटिश सरकार ने ६ दिसम्बर को एक ऐसा वक्तव्य निकाला, जिसे १६ मई, १९४६ के वक्तव्य की व्याख्या और अतिरिक्त शब्दों का जोड़ना कहा जा सकता है। ऐसा उन्होंने छः महीने से भी अधिक समय के बाद किया, जिस बीच में मूल वक्तव्य के परिणाम-स्वरूप और भी कितनी ही बातें हुईं।

"इस अरसे में ब्रिटिश सरकार व उनके प्रतिनिधियों को कांग्रेस की स्थिति का अनेक बार स्पष्टीकरण किया गया और उस स्थिति को जान कर ही ब्रिटिश सरकार ने मंत्रि-मिशन के प्रस्तावों के सम्बन्ध में अगले कदम उठाये। यह स्थिति १६ मई के वक्तव्य के मूल सिद्धान्तों के अनुसार थी, जिसे कांग्रेस ने पूर्ण रूप से स्वीकार कर लिया था।

"इसके अलावा कांग्रेस आवश्यकता पड़ने पर इस प्रश्न को संघ-अदालत के सुपुर्द करने की इच्छा प्रकट कर चुकी है, जिसका निर्णय सम्बन्धित दलों को स्वीकार कर लेना चाहिए। २८ जून १९४६ के दिन श्री जिन्ना को लिखे गये अपने पत्र में वाइसराय ने लिखा था कि कांग्रेस १६ मई के वक्तव्य को स्वीकार कर चुकी है। २४ मई, १९४६ को मुस्लिम लीग से सहयोग का अनुरोध करते हुए वाइसराय ने कहा था कि कांग्रेस किसी भी सम्भव विवाद को संघ अदालत के सुपुर्द करने को तैयार है।

"मुस्लिम लीग ने अपना पहला निश्चय बदल कर एक प्रस्ताव-द्वारा मंत्रिमिशन की योजना को नामंजूर कर दिया और 'प्रत्यक्ष कार्रवाई' करने का निश्चय किया। लीग के प्रतिनिधियों ने योजना के आधार यानी अखिल भारतीय संघ कायम करने की आलोचना की है और वे भारत के विभाजन को पुरानी मांग पर वापस आ गये हैं। ब्रिटिश सरकार के ६ दिसम्बर के वक्तव्य के बाद भी लीग के नेताओं ने देश के विभाजन और दो स्वतंत्र सरकारें स्थापित करने की मांग पेश की है।

"पिछले नवम्बर के अंत में जब कांग्रेस को ब्रिटिश सरकार की तरफ से अपना प्रतिनिधि लंदन भेजने का निमंत्रण मिला तब भी कांग्रेस की स्थिति का स्पष्टीकरण कर दिया गया था। उस समय ब्रिटिश प्रधानमंत्री का आश्वासन मिलने पर ही कांग्रेस का एक प्रतिनिधि लंदन गया था।

"१६ मई, १९४६ के वक्तव्य की कोई नयी व्याख्या अथवा उसमें परिवर्तन करने के इस तथा अन्य आश्वासनों की बावजूद अब ब्रिटिश सरकार ने एक वक्तव्य निकाला है, जो कई दृष्टियों से उस मूल वक्तव्य से आगे चला जाता है, जिसके आधार पर अबतक बातचीत हुई है।

"कार्य समिति को खेद है कि ब्रिटिश सरकार ने ऐसा आचरण किया है, जो उनके अपने आश्वासनों के विरुद्ध है और जिससे भारत की बहुसंख्यक जनता के मन में संदेह उत्पन्न हो गया है। इधर कुछ समय से ब्रिटिश सरकार तथा उनके भारत-स्थित प्रतिनिधियों का रुख ऐसा रहा है, जिससे देश की परिस्थिति की कठिनाइयां और पेचीदगियां बढ़ गयी हैं। विधान-परिषद् के सदस्यों के चुनाव के इतने समय बाद उन्होंने जो हस्तक्षेप किया है इससे भविष्य में संकट उत्पन्न हो सकता है। इसीलिए कार्य-समिति ने समस्या पर विस्तार से विचार किया है।

"कांग्रेस विधान के जरिये भारतीय राष्ट्र के सभी भागों के इच्छित सहयोग-द्वारा स्वतंत्र भारत के विधान का निर्माण करना चाहती है। कार्य-समिति को खेद है कि लीग के सदस्य विधान-परिषद् के खुले अधिवेशन में सम्मिलित नहीं हुए हैं। परन्तु समिति को हर्ष है कि परिषद् में जनता के अन्य सभी हितों तथा वर्गों के प्रतिनिधि उपस्थित हैं और उसे हर्ष है कि इन्होंने इस कार्य में उच्च कोटि के सहयोग तथा प्रयत्नशीलता की भावना का परिचय दिया है।

'समिति विधान-परिषद् को भारत की जनता की पूर्ण प्रतिनिधि बनाने के लिए अपने प्रयत्न जारी रखेगी और उसे विश्वास है कि मुसलिम लीग के सदस्य उसे इस विषय में सहयोग प्रदान करेंगे। उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए समिति ने परिषद् के कांग्रेसी प्रतिनिधियों को महत्वपूर्ण विषयों पर सोच-विचार को अगली बैठक के लिए स्थगित करने की सलाह दी है।

"ब्रिटिश सरकार ने अपने ६ दिसम्बर, १९४६ के वक्तव्य में कार्यपद्धति-सम्बन्धी एक सन्देहास्पद मद को 'आधारभूत बात' बताया और सुझाव उपस्थित किया कि विधान-परिषद् को उसे जल्दी ही संघ-अदालत के सुपुर्द करना चाहिए। बाद में ब्रिटिश सरकार की तरफ से एक दूसरे वक्तव्य में कहा गया कि यदि संघ अदालत का फैसला उसके लगाये अर्थ के विरुद्ध गया तो वह उसे स्वीकार न करेगी। मुस्लिम लीग की तरफ से भी कहा गया कि वह संघ-अदालत का निर्णय मानने के लिए बाध्य नहीं है। और लीग देश के विभाजन की मांग दुहराती जा रही है, जो मंत्रि-मिशन योजना के मौलिक रूप से विरुद्ध है।

जबकि कांग्रेस इस प्रश्न के संघ-अदालत के सुपुर्द करने को सदा से इच्छुक रही है—इस

समय ऐसा करना अवांछनीय होगा, क्योंकि दलों में से भी कोई भी ऐसा करने अथवा संघ-अदालत का फैसला स्वीकार करने को तैयार नहीं है और दलों में से एक तो योजना का आधार ही मानने से इन्कार कर रहा है। ऐसी हालत में यह प्रश्न संघ-अदालत के सुपुर्द करने से कांग्रेस अथवा संघ-अदालत का मान नहीं बढ़ सकता। ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने अपने निरंतर वक्तव्यों से इसकी कोई आवश्यकता नहीं छोड़ी है।

"कार्य समिति का अब भी यही मत है कि भागों (सेक्शनों) में मत लिए जाने के सम्बन्ध में ब्रिटिश सरकार ने जो अर्थ लगाया है वह प्रान्तीय स्वशासन के अधिकारों के विरुद्ध है—उसी प्रान्तीय स्वशासन के, जो १६ मई के वक्तव्य में प्रस्तावित योजना का मूल सिद्धान्त है। समिति कोई ऐसी बात नहीं करना चाहती, जिससे विधान-परिषद् का कार्य सफलतापूर्वक चलने में बाधा पड़ने की सम्भावना हो और किसी आधारभूत सिद्धान्त की बलि चढ़ाये बिना अधिक से अधिक सहयोग प्राप्त करने के लिए वह प्रत्येक उपाय करने को तैयार है।

"देश के सामने उपस्थित समस्याओं के महत्व को ध्यान में रखते हुए और होनेवाले निर्णयों के जो परिणाम हो सकते हैं उनका अनुमान करते हुए समिति जनवरी में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की एक बैठक दिल्ली में बुला रही है, जिससे उचित निर्देश प्राप्त किया जा सके।

५ जनवरी, १६४७ को, जब अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक हुई, परिस्थिति बहुत कुछ यह थी। श्री जिन्ना की अथवा मुस्लिम लीग की सफलताओंकी संख्या बढ़ती जा रही थी—इस कारण नहीं कि उन्होंने कोई जोरदार आन्दोलन चलाया हो, बल्कि अपने नकारात्मक दृष्टिकोण के कारण और इसलिए कि प्रायः प्रत्येक अवसर पर उन्होंने निष्क्रिय प्रतिरोध किया। राष्ट्रीय आन्दोलन के मध्य कांग्रेस की जो हानि हुई उससे लीग का लाभ हुआ:—

हानि

१६०५—बंगाल का विभाजन १६-१०-१६०५, स्वदेशी की नयी भावना, स्वराज्य की विचारधारा, बायकाट आन्दोलन, राष्ट्रीय शिक्षा—कांग्रेस द्वारा कष्ट-सहन।

१६१६—युद्ध होमरूल, आन्दोलन, श्रीमती बेसेन्ट का नेतृत्व, कांग्रेस द्वारा घोर कष्ट सहन।

१६३१—नमक सत्याग्रह, ६० बन्दी, सत्याग्रह-आन्दोलन, सहस्रों के इस्तीफे, लाठी-चार्ज और गोली-कांड।

१६४५—'भारत छोड़ो' आन्दोलन (१६४२ से १६४५ तक) असंख्य व्यक्ति बंदी बनाये गये और भूमि तथा आकाश से गोलियां चलायी गयीं।

१६४६—बातचीत जारी, मंत्रिमिशन-ब्रिटिश मंत्रिमण्डल का ६ दिसम्बर का वक्तव्य।

१६४७—(क) यदि आप ६ दिसम्बर के वक्तव्य को स्वीकार नहीं करते।
(ख) यदि आप स्वीकार करते हैं।

१६४८—

लाभ

१६०६—हिज हाइनेस आगाखां के नेतृत्व में मुसलमानोंका डेपुटेशन लार्ड मिण्टो से मिला-मुसलमानों को पृथक् निर्वाचन का अधिकार मिला।

१६१६—मुस्लिम अल्पसंख्यक प्रान्तों में मुसलमानों को अतिरिक्त प्रतिनिधित्व।

१६३१—अवशिष्ट अधिकार प्रान्तों को दिये गये। दूसरी गोलमेज परिषद्।

१६४५—प्रथम शिमला सम्मेलन में हिन्दू-मुस्लिम समान प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त की स्वीकृति।

१६४६—२ मई का दूसरा शिमला सम्मेलन समूहीकरण का सिद्धान्त

१६४७—(क) दो पृथक् विधान परिषद्
(ख) समूहों की पृथक सेनाएं

१६४८—सेनाओं (ख) के लिए केन्द्र से आर्थिक सहायता।

१९४७ का नया साल कांग्रेस और देश के लिए महान् घटनाएं लेकर शुरू हुआ। ५ जनवरी को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का अधिवेशन यह विचार करने के लिए हुआ कि ब्रिटिश मंत्रिमण्डल का ६ दिसम्बर का वक्तव्य स्वीकार किया जाय या नहीं। इस समस्या पर विस्तार से विचार किया जा चुका है। फिर भी नयी दिल्ली के अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के अधिवेशन के बाद वह जिस रूप में प्रकट हुआ उसकी चर्चा आवश्यक है । अधिवेशन कंस्टीट्यूशन क्लब में हुआ, जो कंस्टीट्यूशन हाउस से सम्बन्धित है, और जिसमें विधान परिषद् के अधिकांश सदस्यों के क्वार्टर हैं। बहस के मध्य आसाम के मित्रों ने प्रमुख रूप से भाग लिया। वे चाहते थे कि कांग्रेस हाई कमांड ने जो यह वचन दिया था कि आसाम को 'सी' समूह में जबरन ढकेला न जायगा, वह पूरा किया जाय। वे एक घटना से परेशान थे। राष्ट्रपति ने २५ मई के एक वक्तव्य में पहले कहा कि कार्य-समिति ने प्रान्तों के सेक्शनों में विभाजित होने की बात स्वीकार नहीं की है। फिर उन्हों ने सितम्बर, १९४६ में अंतरिम सरकार के उपाध्यक्ष की हैसियत से रेडियो पर भाषण करते हुए प्रान्तों के सेक्शनों में जाने की बात स्वीकार कर ली। आसाम के मित्रों ने कहा कि ऐसा करके वचन भंग किया गया है। उन्हें यह भी स्मरण हुआ कि अंतरिम सरकार के उपाध्यक्ष किस प्रकार अपनी और अपने साथियों की इच्छा के विरुद्ध इंग्लैंड गये और अपने देश को उन्होंने एक ऐसे झमेले में फँसा लिया, जिसमें से उन्हें खुद या देश को निकलना मुश्किल था। इन दोनों ही घटनाओं ने आसाम के मित्रों की आस्था कांग्रेस हाईकमांड के आश्वासनों में घटा दी। आसाम के मित्रों का यह भी विश्वास था कि ६ दिसम्बरवाले वक्तव्य के अंतिम पैरे से उनकी रक्षा नहीं हो सकती, क्योंकि उससे मतलब मुख्यतः मुसलमानों से है और यदि कल्पना की किसी उड़ान-द्वारा उसे प्रत्येक वर्ग और परिस्थिति पर लागू किया जा सके तो यह संदिग्ध ही है कि 'सी' भाग (सेक्शन) में आसामियों की उपस्थिति को कहीं भाग (सेक्शन) में प्रान्त का प्रतिनिधित्व न मान लिया जाय। वक्तव्य में अंतिम पैरे के शब्द इस प्रकार थे:--

"यदि कोई विधान किसी ऐसी विधान-परिषद् द्वारा तैयार किया गया हो, जिसमें भारतीय जनता के किसी बड़े भाग का प्रतिनिधित्व न हो, तो सम्राट् की सरकार यह कभी इरादा नहीं रखती कि ऐसे विधान को देश के किसी अनिच्छुक भाग पर जबरन लाद दिया जाय।"

जिस शब्द का प्रयोग किया गया है वह 'प्रतिनिधित्व' है । आसाम वाले मित्रों को आशङ्का थी कि उनकी उपस्थितिमात्र से प्रतिनिधित्व का मतलब लगा लिया जायगा और जिन शब्दों की सहायता से आसाम की रक्षा की आशा की जा रही है उनसे उसकी रक्षा नहीं होसकेगी, यही उनकी भावना थी।

इसके अलावा समस्या ६ दिसम्बरवाले वक्तव्य को स्वीकार करने या न करने की थी । पहले ही बताया जा चुका है कि वक्तव्य में व्याख्या ही नहीं है, बल्कि कुछ जोड़ भी दिया गया है। ५ और ६ जनवरी की स्थिति की समीक्षा हम करते हैं। यदि वक्तव्य को अस्वीकार किया जाता है तो मतलब यह हुआ कि कांग्रेस १६ मई के वक्तव्य (जैसा उसका अर्थ ६ दिसम्बर वाले वक्तव्य में लगाया गया था) से भी सम्बन्ध त्यागती है और इस प्रकार मुस्लिम लीग को विधान परिषद् में सम्मिलित होने का अवसर नहीं दे सकती । मुस्लिम लीग को समूह 'बी' और 'सी' का विधान तैयार करने और उनके लिए एक केन्द्र स्थापित करने में कठिनाई होती और इसीलिए वह ब्रिटेन से नयी योजना मांगती, जो ब्रिटेन उसे सहर्ष दे देता । बहाना यह बनाया जाता कि कांग्रेस ने ६ दिसम्बर का वक्तव्य स्वीकार नहीं किया और इसीलिए पहले वाला वक्तव्य और उसमें

निर्धारित योजना भी रद्द हुई। इस तरह अंग्रेजों को अपने वचन से मुकरने का अवसर मिल जाता और वे १६ मई के उस वक्तव्य से भी हट जाते, जिसमें कहा गया था कि पाकिस्तान व्यावहारिक हल नहीं है और सम्पूर्ण देश में एक केन्द्र रहना आवश्यक है। परन्तु अब वे पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के लिए दो केन्द्रों की योजना बनाते और दो राष्ट्रों के सिद्धान्तों को आगे बढ़ाते, जिनसे बचना आवश्यक था। अस्तु लीग को पाकिस्तान देने का सबसे सुगम तरीका ६ दिसम्बर वाले वक्तव्य को अस्वीकार कर देना था।

परन्तु यदि वक्तव्य को स्वीकार करना था तब भी उतने ही बुरे खतरों से सामना होना था। उस हालत में श्री जिन्ना की हेकड़ी उठकर आसमान से छू जाती और वे कुछ और भी शर्तें मंजूर करा लेते। इनमें एक शर्त समूह की सेना रखना होती और यदि कोई विदेशी सेना आक्रमण करती तो यह उसके साथ मिलकर देश की सेना को पराजित करने की चेष्टा करती। यही नहीं, जिन्ना साहब धारासभा, सेना और नौकरियों में आधे-स्थान-अपने लिए मांगते। ये झूठे आरोप-मात्र नहीं हैं। उन दिनों जैसी हालत थी उनसे कहा नहीं जा सकता था कि हिन्दुस्तान अंत में रूस के हाथ में पड़ेगा या अरब-संघ की अधीनता में जायगा? इन सभी परिस्थितियों को मद्दे-नजर रखते हुए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने बहुमत से कार्य-समिति के सुझाव को स्वीकार कर लिया और यह मामला यहीं समाप्त होगया।

यहां अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के प्रस्ताव (जो नीचे दिया गया है) के पैरा ४ में वर्णित एक विशेष परिस्थिति की ओर ध्यान आकृष्ट किया जाता है कि "यदि किसी प्रान्त या प्रान्त के भाग पर इस प्रकार का दबाव डालने का प्रयत्न किया जाय तो उसे सम्बधित जनता की 'इच्छा के अनुसार कार्रवाई करने का अधिकार है।" यह वाक्य अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक तथा श्री जिन्ना के विधान-परिषद् में जाने का निश्चय करने के मध्य की किसी अप्रत्याशित स्थिति से सामना करने के सम्बन्ध में है। इस प्रस्ताव-द्वारा सहयोग का जो हाथ बढ़ाया गया है उसे ग्रहण करने को यदि श्री जिन्ना तैयार हुए, तब तो आसाम को संदेह करने का कोई कारण ही न था। परन्तु यदि श्री जिन्ना ने स्पष्टीकरण की मांग की यानी दूसरे शब्दों में सौदेबाजी शुरू कर दी और नयी पेचीदगी उठने की सम्भावना उत्पन्न हुई, तो आसाम चौकन्ना होकर निश्चय करेगा कि उसे सम्मिलित होना चाहिए अथवा नहीं। अस्तु, आसाम के सोच-विचार के लिए काफी समय था और प्रत्येक परिस्थिति और तत्कालीन आवश्यकताओं का खयाल करते हुए ही प्रस्ताव में यह वाक्य जोड़ा गया था और ऐसी कोई बात नहीं थी कि आसाम को ऐसे समूह में सम्मि-लित होने को विवश किया जाय, जिसमें वह न जाना चाहता हो। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी आसाम का मूल्य चुका कर शान्ति नहीं खरीदना चाहती थी। कमेटी का प्रस्ताव इस प्रकार है:—

"अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी पिछले नवम्बर के मेरठ-अधिवेशन से अब तक होनेवाली घटनाओं, ब्रिटिश मंत्रिमण्डल के ६ दिसम्बर के वक्तव्य और कार्यसमिति के २२ दिसम्बर, १९४६ वाले वक्तव्य पर विचार करने के बाद कांग्रेस को निम्न सलाह देती है:—

(१) अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी कार्यसमिति के २२ दिसम्बर, १९४६ के वक्तव्य की पुष्टि करती है और उसमें प्रकट किये विचारों से सहमति प्रकट करती है।

(२) गोकि कांग्रेस विवादास्पद प्रश्न की व्याख्या का मामला संघ अदालत के सुपुर्द करने के पक्ष में हमेशा से रही है; किन्तु ब्रिटिश सरकार की हाल की घोषणाओं को मद्देनजर रखते

हुए अब ऐसा करना बिलकुल निरुद्देश्य और अवांछनीय हो गया है। यदि सम्बन्धित दल निर्णय को स्वीकार करने को तैयार हों और यह आधार मानने को तैयार हों तभी यह मामला संघ अदालत के सुपुर्द किया जा सकता है।

(३) अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का यह दृढ़ मत है कि स्वतंत्र भारत के विधान का निर्माण भारतीय जनता द्वारा और अधिक से अधिक विस्तृत मतैक्य के आधार पर होना चाहिए। इस कार्य में किसी बाहरी शक्ति का हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए, और किसी प्रान्त-द्वारा दूसरे प्रान्त अथवा प्रान्त के भाग पर दबाव न डालना चाहिए। अखिल भारतीय कांग्रेस महसूस करती है कि कुछ सूबों में जैसे आसाम, बलोचिस्तान, सीमाप्रान्त, और पंजाब के सिखों के मार्ग में ब्रिटिश मिशन के १६ मई, १९४६ वाले वक्तव्य से, और खासकर ६ दिसम्बर, १९४६ वाले वक्तव्य की व्याख्या-द्वारा, कठिनाइयां उपस्थित की गयी हैं। जिन लोगों के साथ यह जबर्दस्ती की जा रही है उन पर दबाव डालने में कांग्रेस हिस्सा नहीं ले सकती। यह एक ऐसा सिद्धान्त है, जिसे खुद ब्रिटिश सरकार ने मंजूर किया है।

(४) अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी इस बात के लिए उत्सुक है कि विधान-परिषद् स्वाधीन भारत के लिए विधान बनाने का कार्य सभी सम्बन्धित दलों की सद्भावना से करे, जिससे व्याख्या की विभिन्नता से उठनेवाली कठिनाइयों को दूर किया जा सके, और परिषद् सेक्शनों में अनुसरण की जानेवाली कार्य-पद्धति के विषय में भी ब्रिटिश सरकार की व्याख्या को स्वीकार कर ले। परन्तु यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि इसके कारण किसी प्रान्त पर अनुचित दबाव न पड़ना चाहिए और साथ ही पंजाब में सिखों के अधिकार भी सुरक्षित रहने चाहिएं। यदि दबाव डाला गया तो किसी प्रान्त या प्रान्त के भाग को जनता की इच्छा पूरी करने के लिए आवश्यक कार्रवाई करने का अधिकार होगा। भावी कार्यक्रम आगे की घटनाओं पर निर्भर रहेगा और इसीलिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी कार्य-समिति को निर्देश करती है कि वह प्रान्तीय स्वशासन के आधारभूत सिद्धान्तों का ध्यान रखते हुए आवश्यकता पड़ने पर सलाह प्रदान करे।

गोकि आशा यह की जाती थी कि मुस्लिम लीग ६ जनवरी को पास किये गये कांग्रेस के प्रस्ताव पर विचार करने के लिए अपनी बैठक कुछ पहले बुलायेगी-किन्तु लीग की बैठक विधान-परिषद् होने की तारीख के ९ दिन बाद २९ जनवरी को बुलायी गयी। इससे स्पष्ट था कि लीग का इरादा विधान-परिषद् में सम्मिलित होने का नहीं था।

जनता की आशंका ठीक निकली। सप्ताह प्रति-सप्ताह लेखक सोचता रहा कि कहीं लीग के सम्बन्ध में उसकी आशंका गलत न हो। परन्तु लीग की बैठक २९ जनवरी को ही हुई और उसने विधान-परिषद् में भाग न लेने का निश्चय किया।

लीग की कार्य-समिति ने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के ६ जनवरी के प्रस्ताव को बेईमानी से भरी चाल और शब्दाडम्बर बताया, जिसका उद्देश्य ब्रिटिश सरकार, मुस्लिम लीग और लोकमत को धोखा देना था। आरोप यह था कि सिद्धांतों तथा कार्य-पद्धति के विषय में जो निश्चय किये गये हैं वे १६ मई, १९४६ के वक्तव्य के क्षेत्र से परे हैं और कांग्रेस ने विधान-परिषद् को जैसा रूप दिया है वैसा देने का मंत्रि-मिशन का उद्देश्य कदापि न था। लीग की कार्य-समिति ने सम्राट् की सरकार से यह घोषणा करने को कहा कि मंत्रि-मिशन की योजना असफल हुई है। लीग ने यह भी मत प्रकट किया कि विधान-परिषद् के लिए जो चुनाव हुए हैं वे अनियमित हैं और परिषद् में हुई कार्यवाही और निश्चय भी अनियमित ही हैं।

लंदन के 'टाइम्स' पत्र ने मुस्लिम लीग की कार्य-समिति के इस निश्चय को मूर्खतापूर्ण बताया और कहा कि कार्य-समिति इस अवसर से लाभ उठाने में असमर्थ प्रमाणित हुई है। पत्र ने कहा कि योजना असफल नहीं हुई, किन्तु लीग ही बाधा उपस्थित करने की चालें चल रही हैं। उसने यह भी कहा कि विधान-परिषद् न तो एक दल की प्रतिनिधि है और न इसमें सिर्फ हिन्दू ही हैं। विधान-परिषद् में गैर-मुस्लिम अल्पसंख्यकों को अच्छा प्रतिनिधित्व मिला हुआ है।

इसमें शक नहीं कि लीग की चालें थका देनेवाली थीं और उन्हें अधिक सहन नहीं किया जा सकता था। अंतरिम सरकार में लीग के प्रतिनिधियों की स्थिति के विषय में संदेह प्रकट करने में अधिक समय बर्बाद नहीं किया गया और दोनों राजनीतिक दलों और वाइसराय, तथा वाइसराय और ब्रिटिश मंत्रिमण्डल के मध्य हुए पत्र-व्यवहार को गुप्त रखा गया। परन्तु पत्र-व्यवहार में क्या होगा, इसका अनुमान किया जा सकता। लीग के प्रस्ताव के तीन सप्ताह बाद ही समाचारपत्रों में खबरें आने लगीं कि शायद लार्ड वेवल को वापस बुला लिया जाय और १८ फरवरी, १९४७ को इस आशय का नियमित संवाद भी आ गया और उसके बाद ही ब्रिटिश प्रधानमन्त्री का यह वक्तव्य भी मिला कि अंग्रेज अगले वर्ष (जून १९४८) को भारत छोड़ रहे हैं।

२० फरवरी को हाउस आफ कामन्स में बोलते हुए ब्रिटिश प्रधान-मंत्री श्री क्लेमेंट एटली ने कहा:—

"बहुत समय से ब्रिटिश सरकार की नीति रही है कि भारत मे स्वायत्त शासन की स्थापना कर दी जाय। इसी नीति के अनुसार भारतीयों को अधिकाधिक दायित्व सौंपा जाता रहा है और आज नागरिक शासन तथा सेनाओं की बागडोर बहुत हद तक भारतीय असैनिक व सैनिक अफसरों के ही हाथ है। वैधानिक क्षेत्र में भी, १९१९ तथा १९३५ में ब्रिटिश पार्लीमेंट-द्वारा पास किये गये विधानों द्वारा काफी राजनीतिक अधिकार भारतीयों को दिये गये। १९४० में संयुक्त सरकार ने इस सिद्धान्त को मान लिया कि स्वाधीन भारत के लिए भारतीय अपना विधान आप बनायें और १९४२ के प्रस्ताव में तो उन्होंने युद्ध के पश्चात् इस कार्य के लिये उन्हें एक विधान-परिषद् की स्थापना करने के लिये आमंत्रित भी कर दिया।

सम्राट् की सरकार की धारणा है कि यही नीति उचित है। भारत भेजे जानेवाले मंत्रि-मिशन ने पिछले वर्ष भारतीय नेताओं से विचार-विनिमय करने में तीन मास से अधिक समय व्यतीत किया जिससे कि भावी विधान की रूपरेखा आपस में तय की जा सके और शक्ति सौंपने का कार्य सुगमता तथा शीघ्रतापूर्वक सम्पन्न हो सके। जब मिशन को यह विश्वास हो गया कि उसके पहल किये बिना कोई समझौता हो ही नहीं सकता, तभी उन्होंने अपने प्रस्ताव पेश किये।

ये प्रस्ताव पिछली मई में जनता के सम्मुख प्रस्तुत किये गये थे। इनके अनुसार यह निश्चय किया गया था कि भारत का भावी विधान वर्णित ढंगों से स्थापित विधान-परिषद्-द्वारा बनाया जाय और इस परिषद् में ब्रिटिश भारत व भारतीय रियासतों के सभी वर्गों व समुदायों को प्रतिनिधित्व दिया जाय तथा भारतीय रियासतों के प्रतिनिधि सम्मिलित हों।

प्रतिनिधि-मण्डल के लौट आने के बाद से केन्द्र में बहुसंख्यक जातियों के राजनीतिक नेताओं की एक अंतर्कालीन सरकार स्थापित करदी गयी है जिन्हें वर्तमान विधान के अन्तर्गत विशाल अधिकार प्राप्त हैं। सब प्रान्तों में असेम्बलियों के प्रति उत्तरदायी भारतीय सरकारें ही शासन कर रही हैं।

सम्राट् की सरकार के लिये यह खेद का विषय है कि अभी तक भारतीय दलों में मतभेद है

जिसके कारण विधान-परिषद् का वह कार्य सुचारु रूप से चलने में बाधाएं उपस्थित हो रही हैं जिस के लिये परिषद् की स्थापना हुई थी। इस योजना का सार यह है कि यह परिषद् पूर्णरूप से प्रतिनिधित्व करनेवाली होनी चाहिये।

सम्राट् की सरकार की यह इच्छा है कि मंत्रि-मिशन की योजना के अनुसार, भारत के विभिन्न दलों की स्वीकृति से बनाये गये विधान-द्वारा निश्चित अधिकारियों को अपना दायित्व सौंप दिया जाय। किन्तु दुर्भाग्यवश ऐसे विधान तथा अधिकारियों का अस्तित्व इस समय सम्भव नहीं मालूम होता। वर्तमान अनिश्चित स्थिति विपद् की आशङ्काओं से परे नहीं है और ऐसी स्थिति अनिश्चित समय तक रहने भी नहीं दी जा सकती। सम्राट् की सरकार स्पष्ट रूप से अपने इस निश्चय को सूचित कर देना चाहती है कि वह जून १९४८ तक जिम्मेदार भारतीयों के हाथ में शक्ति सौंप देने के कार्य को सम्पन्न कर देगी।

यह विशाल देश, जिसमें अब चालीस करोड़ से अधिक व्यक्ति रहते हैं, गत एक शताब्दी से ब्रिटिश साम्राज्य के एक अंग के रूप में सुरक्षा तथा शान्ति का जीवन बिताता रहा है। यदि भारत को अपने आर्थिक साधनों में उन्नति करनी है तथा भारतीय जनता के रहन-सहन के मान को उच्च बनाना है तो आज शान्ति तथा सुरक्षा का रहना सब से अधिक आवश्यक है।

सम्राट् की सरकार ऐसी सरकार को अपने दायित्व सौंपने को लालायित है जो जनता के सहयोग की दृढ़ नींव पर खड़ी होकर भारत में न्याय तथा शान्तिपूर्ण शासन कर सके। इसलिये यह आवश्यक है कि सब दल आपसी मतभेदों को भुलाकर अगले वर्ष आनेवाले भारी उत्तरदायित्व को सँभालने के लिये तैयार हो जायँ।

महीनों के कठिन परिश्रम के बाद मंत्रि-मिशन विधान-निर्माण की बहुत हद तक स्वीकृत परिपाटी ढूंढ़ लेने में सफल हुआ था। यह उनके पिछली मई के वक्तव्य में स्पष्ट कर दी गयी थी। सम्राट् की सरकार ने तब यह स्वीकार कर लिया था कि वह पूर्ण प्रतिनिधित्वप्राप्त विधान-परिषद्-द्वारा इन प्रस्तावों के अनुसार बनाये गये विधान की पार्लीमेंट में सिफारिश करेगी। किन्तु यदि उपरोक्त ७वें पैरे में निश्चित की गयी तिथि तक सब प्रकार से प्रतिनिधित्वपूर्ण परिषद्-द्वारा ऐसा विधान न बनाया जा सका तो सम्राट् की सरकार को यह विचार करना पड़ेगा कि ब्रिटिश भारत की केन्द्रीय सरकार का दायित्व पूरे का पूरा, ब्रिटिश भारत की किसी केन्द्रीय सरकार को या विभक्त करके वर्तमान प्रान्तीय सरकारों को, अथवा किसी ऐसे ढंग से जो सर्वोचित तथा भारतीयों के लिये सर्वाधिक लाभपूर्ण हो, सौंपा जाय।

यद्यपि जून १९४८ तक पूर्ण दायित्व सौंपा जाना शायद सम्भव न हो, तब भी उसके लिये आवश्यक तैयारियां तो पहले से ही होनी चाहियें। यह आवश्यक है कि शासन के अधिकारियों की कार्यक्षमता उतनी ही ऊंची रखी जाय जितनी अब तक रही है तथा भारत की रक्षा का कार्य सुचारु रूप से हो। किन्तु यह निश्चित है कि ज्यों-ज्यों दायित्व सौंपने का कार्य आगे बढ़ता जायगा, भारत-सरकार के १९३५ के कानून की शर्तों को निभाना अधिकाधिक कठिन होता जायगा। निश्चित समय पर पूर्ण रूप से दायित्व सौंपने का विधान लागू हो जायगा।

जैसा कि मंत्रि-मिशन द्वारा साफ-साफ बताया गया था, सम्राट् की सरकार अपनी सार्वभौमसत्ता (प्रभुशक्ति) के अंतर्गत भारतीय रियासतों को ब्रिटिश भारत की किसी भी सरकार के सुपुर्द नहीं करना चाहती। अंतिम रूप से दायित्व सौंपने से पहले सम्राट् की सार्वभौम सत्ता का अन्त कर देने की कोई इच्छा नहीं है; किन्तु यह विचार किया जा रहा है कि इस अन्तर्काल में व्यक्ति-

गत रूप से सम्राट् हर देशी रियासत से पारस्परिक परामर्श-द्वारा अपने सम्बन्ध स्थिर करलें।

दायित्व तथा तत्सम्बन्धी समझौतों के लिये सम्राट् की सरकार उन दलों के प्रतिनिधियों से बातचीत करेगी जिनको वह दायित्व सौंपने का निश्चय करेगी।

सम्राट् की सरकार को यह विश्वास है कि नई परिस्थितियों में ब्रिटिश व्यापारियों तथा औद्योगिकों को अपने कार्य के लिये भारत में उचित स्थान प्राप्त होगा। भारत तथा ब्रिटेन के व्यापारिक सम्बन्ध बहुत पुराने तथा मैत्रीपूर्ण रहे हैं और पारस्परिक लाभ के लिये वे ऐसे ही चलते रहेंगे।

इस वक्तव्य को समाप्त करने से पूर्व सम्राट् की सरकार इस देश के लोगों की ओर से भारतीयों के लिये ऐसे समय शुभाकांक्षाएं भेजे बिना नहीं रह सकती जबकि वे पूर्ण स्वराज प्राप्त करने की ओर अग्रसर हो रहे हैं। इन द्वीपवासियों की यह कामना रहेगी कि वैधानिक अदल-बदल के बावजूद ब्रिटिश तथा भारतीय जनता के सम्पर्क का अन्त नहीं होगा और वे अपनी शक्ति-भर भारत की भलाई के लिये प्रयत्नशील रहेंगे।

आज की जानेवाली घोषणा को जानने के लिये सभा उद्विग्न होगी। युद्ध के प्रारम्भ से मध्यपूर्व, दक्षिण-पूर्वी एशिया तथा भारत में अपूर्व कुशलता से उच्च सैन्य पदों का भार सुचारु रूप से सँभालने के पश्चात फील्ड-मार्शल माननीय वाइकाउन्ट वेवल को १६४३ में वाइसराय नियुक्त किया गया था। यह स्वीकार किया गया था कि यह नियुक्ति युद्धकाल के लिये होगी। ऐसे कठिन समय में लार्ड वेवल ने इस उच्च पद का कार्य बड़ी लगन तथा निष्ठा से निभाया है। जब भारत नवीन तथा अंतिम स्थिति को प्राप्त होने जा रहा है यह सोचा गया है कि यह समय इस युद्धकाल की नियुक्ति को समाप्त करने के लिये उपयुक्त है। सम्राट् ने एडमिरल वाइकाउन्ट माउंटबेटन की नियुक्ति लार्ड वेवल के स्थान पर प्रसन्नतापूर्वक की है जिनको भारत की भावी समृद्धि तथा सम्पन्नता को दृष्टिकोण में रखते हुए भारत-सरकार का दायित्व भारतीय हाथों में सौंपने का भार दिया जायगा। यह परिवर्तन मार्च मास में सम्पन्न होगा। सभा को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि सम्राट् ने प्रसन्नतापूर्वक वाइकाउन्ट वेवल को अर्ल की पदवी देना स्वीकार किया है।"

वक्तव्य सदा की तरह अस्पष्ट है, किन्तु वह ऐसा नहीं है कि उसके दो अर्थ लगाये जा सकते हों। इसमें संदेह नहीं है कि वक्तव्य की विभिन्न व्याख्याएं की जा सकती हों, किन्तु वक्तव्य में अनेक विकल्प इस तरह रखे गये थे, जिससे जिन व्यक्तियों को सत्ता हस्तांतरित की जानेवाली थी वे विकल्पों के अनेक अर्थ लगा सकें। कांग्रेस आशा कर सकती थी कि देश की सबसे बड़ी राजनीतिक संस्था के रूप में, और एक ऐसी संस्था के रूप में जिसका अल्पसंख्यक समुदायों से (जिनमें मुसलमान भी थे) गहरा सम्बन्ध था, उसे विशेष महत्व मिलना चाहिए था। उधर लीग 'पूर्ण प्रातिनिधिक' शब्दों के महत्व पर निर्भर थी और उसकी आशा थी कि जब तक वह विधान-परिषद् में भाग नहीं लेती तब तक परिषद् को "पूर्ण प्रातिनिधिक" नहीं कहा जा सकता और इस तरह लीग के दावे को पूरी तरह माना जायगा।

उधर रियासतों का प्रोत्साहन यह कह कर बढ़ाया गया कि सत्ता अंतिम रूप से हस्तांतरित करने तक प्रभु-शक्ति की प्रणाली का अन्त नहीं किया जायगा और दरमियानी काल में रियासतों की शासक-शक्ति से नये सम्बन्ध कायम किये जा सकते हैं। यह कहने के अलावा कि ब्रिटेन भारत छोड़ रहा है, अंग्रेजों की तरफ से विभिन्न दलों में—यानी कांग्रेस, लीग और रियासतों में—एकता स्थापित करने के लिए कुछ भी नहीं किया गया।

गोकि वक्तव्य के कुछ भाग अस्पष्ट थे फिर भी कांग्रेस को वह बुद्धिमत्तापूर्ण और साहसिक जान पड़ा। जो भी हो, विधान-परिषद् को अब अधिक तेजी से काम करना चाहिए। सत्ता-हस्तांतरण के लिए आवश्यक कार्रवाई तुरन्त आरम्भ हो जानी चाहिए, और यह सब बड़ा ही आकर्षक जान पड़ा।

सब से आश्चर्यजनक बात वाइसराय की बरखास्तगी थी। जिस तरह यह संवाद पहले प्रकट हुआ और बाद में सम्राट् के रिश्ते के भाई लार्ड माउंटबेटन की नियुक्ति की बात ज्ञात हुई, उससे प्रकट हो गया कि लार्ड वेवल ने अपनी इच्छा से इस्तीफा नहीं दिया था, बल्कि उन्हें अपने पद से हटाया गया था। श्री चर्चिल ने पार्लामेंट में जो कटु आलोचना की उससे यह और भी स्पष्ट हो गया। लार्ड वेवल को अपनी तरफ से वक्तव्य देने की स्वतंत्रता दे दी गयी,--उससे इस विचार की और भी पुष्टि हुई। इस तरह लार्ड वेवल आये. उन्होंने देखभाल की, वे बोले, उन्होंने कार्रवाई की, नुस्खेबाज़ी की और अपने कार्य से अवकाश ग्रहण कर लिया। इस तरह वाइसराय आये और गये, किन्तु भारत चट्टान की तरह अचल बना रहा। देश मे जो तूफान उठे उनसे वह हिल नहीं उठा। सभ्यताएं आईं और बिलुप्त हो गईं। उनसे वह अछूता बना रहा। जाति के बाद जाति आकर उसमें समा गयी और संस्कृति के बाद संस्कृति तथा धर्म के बाद धर्म उसमें विलीन होगये। इसी तरह भारत अपने सुन्दर तथा धुंधले प्रागैतिहासिक अतीत के युगों में अनन्त शक्ति तथा चिरंतन महत्व की परम्पराओं को जन्म देता रहा है और बहुमूल्य बपौती के रूप में उनकी भेट नयी पीढ़ियों को देता रहा है, जिससे विश्वास और आशा से भरे भविष्य का निर्माण किया जा सके--एक ऐसा भविष्य जो वयोवृद्ध और श्रद्धास्पद होगा। इसी तरह उसकी सत्य और अहिंसा की ज्योति का प्रकाश संसार के दूर-से-दूर कोने में पहुँच चुका है और युगों-युगों में यह प्रमाणित होचुका है कि आत्मा पार्थिव वस्तुओं से बड़ा है, सेवा शक्ति से महान् है और प्रेम घृणा की अपेक्षा कहीं अधिक शक्तिवान है। इसी तरह विजित, गुलाम और पद-दलित भारत ने संसार के राष्ट्रों के मध्य एक सत्तासम्पन्न, स्वतंत्र प्रजातंत्र के रूप में सिर उठाया है। उसने नयी और पुरानी दुनिया के आगे स्वतंत्रता की ज्योति जलायी है, जिसकी किरणें उस दैवी घटना पर-- "मनुष्य की पार्लामेंट और विश्व के संघ" पर केन्द्रित हैं और इसके लिए भारत को संसार के सब से महान् व्यक्ति से, जो सन्त, दार्शनिक और राजनीतिज्ञ सभी कुछ है और जिसने जीवन के सौन्दर्य-द्वारा मनुष्य में एकता स्थापित करने का नुस्खा निकाल लिया है, प्रेरणा मिली है।

× × × × ×

पूरक

यदि इतिहास को घटनाओं का एक ऐसा प्रवाह मान लें, जिसमें कि हरेक घटना दूसरी के साथ केवल काल-क्रम से नहीं वरन् मनोवैज्ञानिक रूप से सम्बद्ध है, तो यह भी मानना पड़ेगा कि ये घटनाएँ एक प्रसंग के चारों ओर जमा होती हैं और उनमें से दार्शनिक विचार पैदा होते हैं। एक क़ौम-द्वारा दूसरी क़ौम का फ़तह हो जाना कभी फुटकर घटना नहीं कहला सकती। यह तो विजित जाति के जीवन की पंगुता और विजयी या शासक के शासन-मद का अनिवार्य परिणाम है। हर हालत में, उदासीनता और सम्मोहन दोनों मिलकर जातीय आलस्य को जन्म देते हैं जिससे उस जातिके सामाजिक और आर्थिक जीवन में अकर्मण्यता तथा अवनति का प्रादुर्भाव होता है। शक्तिशाली क़ौमें भी गिरगिट और बगुले की तरह सदा सावधान रहती हैं और मौक़ा पाते ही अपने कमज़ोर शिकार पर तेज़ी से टूट पड़ती हैं। हिन्दुस्तान की हालत न्यारी थी।

मनोभावनाओं में निमग्न, परलोक के चिन्तन में डूबा हुआ भारत, अपने चारों ओर विरोधी शक्तियों के जमाव से बे-ख़बर रहा। परिणाम यह निकला, कि एक-के-बाद दूसरी विदेशी क़ौम ने इस देश को अपने चुंगुल में फाँस कर, इसका धन-दौलत लूटा, धर्म भ्रष्ट किया, उत्पत्ति तथा समृद्धि के साधनों का शोषण किया, जनता को दुर्बल और सारी क़ौम को निष्प्राण कर दिया। यूनानी, ईरानी, तुर्क, मुग़ल, फ्रेंच और अंग्रेज़ विदेशियों के निरन्तर हमलों ने इसे ऐसा कुचल डाला, कि युरोपियन की गुप्त कूट-नीति अपना काम कर गई। वह स्वायत्त शासक बना रहा; लेकिन, ऐसी चालें चलता रहा कि जिन्हें वैधानिक शासन माना जाय। इस प्रकार, उसने भाड़-काँटों में भी कुछ ऐसा पौदा बो दिया, जिसे अनुकूल धरती मिल गई और वह काफ़ी फल लाया।

इसी पौदे के बढ़ने-फूलने की कथा पहले दो भागों में वर्णन की गई है।

कैबिनेट-शिष्टमंडल, १६४६ की बसन्त ऋतु में आया और जाते हुए पीछे अपने चरण चिह्न छोड़ गया था। उन्हीं के चारों ओर घटनाओं का झुरमट लग गया। १६ फ़रवरी १६४७ को लंदन में प्रकाशित किये गये ह्वाइट पेपर में ब्रिटिश शिष्टमंडल के भारतवर्ष आने-जाने का खर्च ३१, २२० पौंड दिखलाया गया था। इसी तरह अतिरिक्त अनुमान में, एक रक़म ६६, ८८१ पौंड की भी दिखाई गयी जो वाइसराय तथा हिन्दुस्तानी प्रतिनिधियों पर लंदन आने-जाने पर दिसम्बर, ४६ में खर्च हुई, और दूसरी ४, ८०० पौंड की रक़म, जो पार्लीमेंट के शिष्ट-मण्डल पर हिन्दुस्तान आने-जाने पर खर्च की गई। यह खर्च व्यर्थ नहीं हुआ, क्योंकि ब्रिटिश प्रधान-मन्त्री के २० फ़रवरी १६४७ वाले प्रसिद्ध वक्तव्य ने, जिसके अनुसार अंग्रेज़ी सम्राट् द्वारा हिन्दुस्तानी संघ के हाथों में शासन सत्ता सौंपे जाने की अन्तिम तिथि जून १६४८ से पीछे न-हटाये जाने की बात थी, इसे सार्थक कर दिया है। इंग्लैंड के कठोर नीतिज्ञों तथा सीधे-सादे हिन्दुस्तानियों की यह आशा बलवती थी कि श्री बटलर के शब्दों में, "यह काम इतने सुचारु रूप से किया जायगा कि दोनों पक्षों को सम्पूर्ण संतोष प्राप्त होगा।" और एक शताब्दी पहले कहे गये सर हैनरी लारेंस के शब्दों में "हम (अंग्रेज़ों) को ऐसी चाल से चलना चाहिये कि जब, इस सम्बन्ध का विच्छेद हो तो खींचातानी न-हो, बल्कि दोनों ओर से स्नेह तथा मान बना रहे और हिन्दुस्तान इंग्लैंड का बन्धु बना रहे।"

समय, कब किसी का इन्तज़ार करता है। लारेंस की आशा पूरी न-हो सकी। हिंदुस्तान में खींचा-तानी क्या, आपस की मार-काट से ख़ून की नदियां बह गईं और लूट और आग से वह तबाही हुई कि बयान नहीं किया जा सकता। क्या अंग्रेज़ क़ौम, अपने सीने पर हाथ धरकर ख़ुद को इन सब इल्ज़ामों से बरी कर सकती है ? अरब के लारेंस की कारगुज़ारियाँ, जिसने कि बाद में फ़्लाइट लेफटिनेंट बनकर शरारतें कराईं और फिर अफ़ग़ानिस्तान के किंग अमानुल्ला के विरुद्ध क्रांति की आग भड़काई; हमारे अपने सीमाप्रांत में, जबकि अंतरिम सरकार के उप-प्रधान दौरे पर गये थे, षड्यंत्र और बाद में पूरबी तुर्किस्तान में, रूसी बोल्शविक शासन के विरुद्ध मुसलमानों को भड़काने के लिए अनवर-बे को उभारने की अधूरी कोशिशें, सब सिद्ध करती हैं, कि हिंदुस्तान में पाकिस्तानी आंदोलन, १६ अगस्त १६४६ के 'डाइरेक्ट ऐक्शन डे' और बाद की हिंदुस्तान-भर की दुर्घटनाओं में, एक ही तार लगा हुआ था। कलकत्ते और नोवाखाली के क़त्ले-आम, बिहार में उसका बदला, पंजाब के उपद्रव, सब-के-सब हिंसा की निर्मम पक्की योजनाओं के दुष्परिणाम हैं।

मि० जिन्ना का २४ अप्रैल १६४७ का यह बयान, कि उन्हें पूरा भरोसा है कि वाइसराय आम मुसलमानों और ख़ासतौर पर मुस्लिम लीगियों के साथ न्याय करेंगे, उन्हें शान्ति और अमन क़ायम रखना चाहिये, ताकि वाइसराय को स्थिति भलीभाँति समझने का पूरा-पूरा मौक़ा मिले, शब्दों के नीचेवाले असली मतलब का परिचायक है। १५ अप्रैल को गांधीजी के साथ की उनकी सामी अपील, दर-असल उस भावना से नहीं की गई थी, जिससे कि बादवाली व्यक्तिगत अपील की गई। हम यहाँ पहलेवाली के शब्द उद्धृत करते हैं:—

"हमें, अभी हाल में की गई हिंसा और क़ानून-विरुद्ध हरकतों से बहुत दुःख हुआ है। इससे हमारे हिंदुस्तान के माथे पर कलंक का टोका लग गया है और साथ ही, बेगुनाह निरपराधियों पर बहुत मुसीबत पड़ी है, चाहे हमला किसी ने किया और सहन किसी ने किया हो।" "राजनीतिक उद्देश्य-पूर्ति के लिये बल-प्रयोग हर हालत में निंदनीय है। हम हिंदुस्तान के सभी सम्प्रदायों से, भगवान का हवाला देकर कहते हैं कि वे हिंसा-युक्त और शांति भंग करनेवाला कोई काम न करें, बल्कि इन कामों के लिए वाणी और लेखनी से भी उत्तेजना न-दें।"

मुस्लिम लीग की तरफ़ से पंजाब, सिंध तथा सीमाप्रांत में अपना शासन जमाने की चेष्टा—खुलम-खुला निर्लज्जता से अपनी ताक़तों को सजाना, मानो युद्ध-क्षेत्र में मौजूद हों, आसाम की सरहद पर तीन ओर से आक्रमण—इस संस्था की नई रण-कला के प्रत्यक्ष प्रमाण थे, और इस बात के परिचायक थे कि पाकिस्तान बलपूर्वक क़ायम किया जायगा। पंजाब में फ़रवरी और मार्च १६४७ के ज़ुल्म ने, गवर्नर को मजबूर कर दिया, और उसने ५ मार्च को धारा ६३, गवर्नमेंट आफ़ इण्डिया ऐक्ट के अनुसार घोषणा कर दी। और कोई दूसरा मंत्रि-मंडल न-बनने पर गवर्नर ने पंजाब धारासभा को भी स्थगित कर दिया।

संयुक्त मन्त्रिमण्डल का तत्काल बाहर हो जाना, धारा-सभा का स्थगित किया जाना तथा १६३५ के विधान की धारा ६३ के अनुसार घोषणा की सूचना, गवर्नर ने एक वक्तव्य में कर दी थी। वाचकगण को यह परिस्थिति समझने में आसानी होगी यदि मैं इसको सीधे-सीधे बयान करूँ।

"विधान के अनुसार कोई प्रान्त अधिक समय तक एक सरकार के बिना नहीं रह सकता। जब एक मन्त्रिमण्डल त्यागपत्र दे तो रिवाज है, कि जब तक उसकी जगह लेनेवाले तैयार न हो जायँ, उसी को काम चलाते रहना चाहिये। इस मौक़े पर संयुक्त मन्त्रिमण्डल ने बाहर निकल जाने का तय किया है जिसके कारण, उन्होंने जनता के सामने रख दिये हैं। इनके जाने पर रिक्त स्थानों की पूर्ति होनी ही चाहिए। इसका एकमात्र तरीक़ा यही है कि धारा ६३ के अनुसार घोषणा करके सारी ज़िम्मेदारी गवर्नर को सौंप दी जाय।

पंजाब में अपनी तरह की यह पहली ही घोषणा है, और मुझे आशा है कि यह बहुत दिनों तक लागू नहीं रहेगी।

जहाँ मेरी यह कोशिश जारी रहेगी कि दूसरा मन्त्रिमण्डल बनाया जाय, मेरा पहला फ़र्ज़ यह होगा, कि लाहौर तथा अन्य स्थानों में गड़बड़ बन्द करके शांति स्थापित की जाय। साम्प्रदायिक दंगों से किसी का लाभ नहीं होता सिवाय सब पंजाबियों की हानि और तबाही के।

कुछ दिनों तक, लाहौर में जलसे-जुलूसों पर कड़ी पाबन्दियाँ लगानी होंगी। शांति—अमन की ख़ातिर इन पाबन्दियों का होना अत्यावश्यक है। और मुझे भरोसा है, कि सभी सम्प्रदायों के नेता इन पाबन्दियों को लागू रखने में अधिकारियों को अपना सहयोग देंगे।

सीमाप्रान्त के दंगों में जानों का भारी नुक़सान, हिन्दुओं-सिक्खों का बलात् मुसलमान बनाया जाना, उस समय दिखलाया गया जबकि वाइसराय आने ही वाले थे। श्री मेहरचन्द खन्ना, मन्त्री इन्फार्मेशन ने पत्रकारों की कान्फरेंस में बतलाया, कि दिसम्बर से अप्रैल तक, प्रांत भर के दंगों में ४०० हिन्दू और सिख मारे गये, १५० घायल हुए और १६०० घरों तथा ५० हिन्दू या सिख धर्मस्थानों को जलाया गया। ३०० से अधिक को जबरन मुसलमान बनाया गया और ५० को भगा ले जाया गया।

श्री मेहरचन्द ने और भी कहा कि उन्हें कोई ऐसी घटना मालूम नहीं, जिसमें कि इस लगभग ९५ प्रतिशत मुस्लिम-प्रान्त में दंगाइयों ने मुसलमानों को भी मारा हो। अलबत्ता, उन्होंने कहा, कि कुछ-एक मुसलमान और सम्भवतः कुछ हिन्दू भी, पुलिस तथा फ़ौज के हाथों मारे गये।

और सबसे आश्चर्यजनक बात यह थी कि डेरा-इस्माइलखाँ की जेल में भी एक क़ैदी को जबरन मुसलमान बनाया गया। हरीपुरा सेण्ट्रल जेल में भी दंगा हुआ, जहाँ जेलखाने के इन्स्पेक्टर-जनरल पर वार किया गया।

श्री मेहरचन्द खन्ना ने बतलाया कि मुस्लिम लीग आन्दोलन के दो पहलू हो सकते हैं। दूसरा पहलू तब काम करने लगा, जबकि मुस्लिम नेशनल गार्ड्स ने बिहार से लौट कर, फ्रण्टियर के मुसलमानों को कुरान के फटे पन्ने और इन्सानी खोपड़ियाँ दिखला कर, तथा "बिहार का बदला फ्रण्टियर लेगा" और "खून का बदला खून" के नारे लगा कर मुसलमानों को भड़काया।

श्री खन्ना ने कहा, कि मुस्लिम लीग, प्रस्तुत मंत्रिमंडल के विरुद्ध है जो कि प्रांत की आबादी के ९५ प्रतिशत लोगों ने कायम कराई है। लेकिन यह आश्चर्य की बात है कि केवल हिन्दू-सिखों पर वार किये गये और दूसरे सम्प्रदाय को छूआ तक नहीं गया।

कल हज़ारों मुस्लिम लीगी, जिनमें अधिकांश ने मुस्लिम नेशनल गार्ड की हरी वर्दियाँ पहन रखी थीं और बल्लमें तथा लाठियाँ उठाये हुए थे, प्रांत की पहाड़ियों से उतर आये थे, और आज वाइसराय के सामने प्रदर्शन करेंगे। कांग्रेस के लाल-कुर्ती दल ने भी प्रदर्शन करना चाहा; किन्तु उनके नेता फ्रण्टियर गांधी ख़ान अब्दुल ग़फ्फ़ारखाँ ने इसकी इजाज़त नहीं दी, क्योंकि वे नहीं चाहते थे कि मुस्लिम लीगियों और लाल-कुर्तीवालों में भिड़न्त हो। आज शहर पेशावर में लगभग सभी दुकानें बन्द रहीं।

आज सचमुच मि० जिन्ना की नेतागिरी की परीक्षा होगी। उनके अनुयायी उनकी सीख पर नहीं चलते। इस सम्बन्ध में यह याद रखना चाहिए कि गांधीजी के आमरण-व्रत की धमकी, जवाहरलाल जी का दौरा और श्री राजेन्द्रबाबू की अपील ने मिल कर सारे बिहार प्रांत की साम्प्रदायिक ज्वाला को एक सप्ताह के भीतर बुझा दिया था। इस कामयाबी की प्रशंसा मि० चर्चिल तक ने की थी। "देखें, लीग भी ऐसी कामयाब हो सकती है।"

हिन्दुस्तान के लिए, पाकिस्तान कुछ नई चीज़ नहीं थी। १९०६ से शुरू करके, हर वह क़दम जो कि मुस्लिम अधिकारों के लिए उठाया गया, उन्हें देश से दूर ही ले गया और इससे एकता की सम्भावना नष्ट हो गई। किन्तु अन्तिम क़दम, जिससे कि तख़्ता पलट जाय, विचाराधीन रहा। दुःख से कहना पड़ता है कि बल का प्रयोग किया गया। दिल्ली में बड़ी भयानक ख़बरें गश्त लगा रही थीं और फ्रण्टियर तथा पंजाब से छुपे-छुपे आनेवाली ख़बरें चौंकानेवाली थीं। १९४२ में, जैसे हिन्दुस्तान पर जापानी हमले का आतंक छाया था, वैसे ही उत्तर से हर

समय आक्रमण की आशंका थी।

सीमाप्रांत के जिला हज़ारा में ही १२८ व्यक्तियों का वध किया गया। एक सिख औरत को तेल में तल कर मारा गया। किन्तु यह तनातनी महात्मा गांधी के उस प्रार्थना के बादवाले भाषण से, जो उन्होंने नये वाइसराय से मिलने के बाद ४ मई १९४७ को दिया था, कुछ हद तक कम हो गई। वह सारा भाषण यहाँ उद्धृत करने-योग्य है, क्योंकि उस समय यह आशा हो रही थी कि यह शायद घाव पर मरहम का काम करेगा।

भंगी कालोनी नई दिल्ली में प्रार्थना के बाद बोलते हुए महात्माजी ने कहा कि वाइसराय ने उन्हें यक़ीन दिलाया है कि वे हिन्दुस्तान में इसलिए आये हैं कि शान्तिपूर्वक सब शासन हिन्दुस्तानियों के हाथों में सौंप दें। गांधीजी ने और भी कहा, कि उनकी यह दिली ख़ाहिश है, कि हिन्दुस्तान एक रहे और सब लोग, चाहे वे किसी भी सम्प्रदाय के हों, प्रेमपूर्वक मिलकर इकट्ठे रहें। यदि, वाइसराय की कोशिशों के बावजूद, इस बीच झगड़े बंद न हुए तो वे फ़ौजी ताक़त का प्रयोग करने में भी नहीं चूकेंगे।

गांधीजी के प्रार्थना-भाषण का अधिकृत रूप यह है :—

रोज़-मर्रा की तरह, उन्होंने प्रार्थना से पहले पूछा कि सभा में कोई है जिसे आपत्ति हो? एक आवाज़ आई, 'हाँ'। गांधीजी को यह देखकर दुःख हुआ कि हज़ारों नर-नारियों को सम्मिलित प्रार्थना के आनंद से वंचित करनेवाला एक व्यक्ति वहाँ मौजूद था।

फिर भी, गांधीजी ने कहा कि एक आदमी की आवाज़ को दबा देना भी अहिंसा के सिद्धान्तों के विरुद्ध होगा। अतः उन्होंने उपस्थित नर-नारियों से कहा कि वे सब आँखें बंद करके उनके साथ २ मिनट तक मूक-प्रार्थना करें। उन्होंने कहा, कि सब को मनमें राम-राम का नाम जपना चाहिये जिसके लाखों नाम हैं, जो अनन्त, असीम है और जिसे हम जान नहीं सकते। उन्हें उस भ्रम में फँसे नौजवान के ख़िलाफ़ कोई क्रोध न लाना चाहिये, जिसने फिर रविवार को प्रार्थना रुकवा दी।

वाइसराय की सचाई

गांधीजी ने उपस्थित लोगों को बतलाया कि उन्होंने इतवार को वाइसराय से डेढ़ घण्टे तक बातचीत की थी, जिसमें उन्होंने पत्रों में अनेक भ्रमोत्पादक रिपोर्टें छपने की शिकायत की थी। वाइसराय ने बतलाया कि वे हिन्दुस्तान इसलिए आये हैं ताकि शासन-सत्ता शांतिपूर्वक हिन्दुस्तानियों को सौंप दें। ३० जून तक अंग्रेज़ी शासन के निशान तक मिट जायँगे।

उनकी यह सच्ची इच्छा है कि हिन्दुस्तान में एकता रहे और सभी लोग चाहे वे किसी भी सम्प्रदाय के हों, एक-दूसरे के साथ प्रेम-पूर्वक रहें। वाइसराय की इच्छा है कि हिन्दुस्तानी लोग बीती को भूल जायँ और अंग्रेज़ों की नीयत में विश्वास रखें कि वे, यदि हो सका तो, जाने से पहले, हिन्दू-मुसलमानों में समझौता करवा देंगे। यदि साम्प्रदायिक दंगे चलते रहे तो यह इंग्लैंड तथा हिन्दुस्तान दोनों के लिए शर्म की बात होगी।

वाइसराय एक प्रसिद्ध नौसैनिक हैं, अतः उन्हें अहिंसा में विश्वास नहीं; फिर भी उन्होंने, उन्हें (गांधीजी को) विश्वास दिलाया है कि वे भगवान् में विश्वास रखते हैं और हमेशा अपने अंतरात्मा की आवाज़ पर अमल करने की कोशिश करते हैं। अतः उन्होंने सब से आग्रहपूर्वक प्रार्थना की है कि उनकी राह में रोड़े न अटकाएँ। यदि अंग्रेज़ी राजसत्ता छोड़ते-छोड़ते और उनकी पूरी कोशिश के रहते भी दंगे-फ़साद न बंद हुए, तो उन्हें मजबूरन फ़ौजी ताक़त का प्रयोग करना पड़ेगा।

गो, देश में शान्ति-अमन की ज़िम्मेदारी अंतरिम सरकार पर है, फिर भी, जबतक अंग्रेज़ सिपाही हिन्दुस्तान में हैं, वे भी, अपने को शान्ति-स्थापना के लिए पूरी तरह ज़िम्मेदार समझते हैं।

गांधीजी ने कहा, कि वाइसराय ने बड़ी भद्रता और सच्चे दिल से बातें की हैं। उनकी यही इच्छा है, कि यदि सब लोग उनकी ईमानदारी पर भरोसा करके उनको अपना सहयोग दें, तो निश्चय उनकी ज़िम्मेदारी का बोझ हलका हो जायगा।

"परस्पर-दोषारोपण बंद करो"

गांधीजी ने अपनी कलवाली बातों को दुहराते हुए कहा, कि जबतक वाइसराय पर विश्वासघात का इलज़ाम साबित न होजाय, जनता को उनकी नेकनीयती पर भरोसा करना चाहिये। यदि हिन्दू और मुसलमान लड़ते ही रहे तो इसका यह मतलब होगा कि वे अंग्रेज़ों को यहाँ से नहीं भेजना चाहते। तिसपर भी, यदि वे पशुओं की तरह लड़ते रहे, उन्हें (गांधीजी को) पूरा भरोसा है कि अंग्रेज़ जून १९४८ तक ज़रूर चले जायँगे। बेहतर होगा यदि परस्पर-दोषारोपण बंद किया जाय। ऐसा करते रहने से शान्ति कभी स्थापित नहीं हो सकती।

गांधीजी ने खाने-कपड़े के अभाव का ज़िक्र किया और कहा कि हिन्दू-मुसलमान तथा अन्य सब जातियों के आम लोगों को इनका एक-सा कष्ट हो रहा है। यदि ये लोग मैत्रीपूर्ण भाव से रहने लगें तो भूखों को खाना और नंगों को कपड़ा मिलने लगेगा। ऐसा करना सब का फ़र्ज़ है।

इसके बाद, गांधीजी ने उस दिन मेजर-जनरल शाहनवाज़ की मुलाक़ात का ज़िक्र किया, जिन्होंने बतलाया था कि बिहार के एक गाँव के हिन्दुओं ने, जो अब तक रज़ामंद नहीं थे, ऐसे मुसलमान शरणार्थियों को जो चाहें, वापस आकर उनके बीच बसने की अनुमति दे दी है। गाँव-वालों ने अपने हाथों से रास्ते साफ़ किये हैं और टूटे घरों की मरम्मत का ज़िम्मा लिया है। आख़िर, जहाँ-जहाँ पागलपन का राज रहा है, मुसीबतज़दा लोग इतना ही तो चाहते हैं कि उन पर ज़ुल्म करनेवाले, उन्हें समझें और उनसे प्रेम-भरा सलूक करें। बिहार के इन हिन्दुओं का अमल और अन्य ऐसे काम ही तो इस अंधकार में आलोकित स्थान हैं।

यदि शान्ति की अपील पर, क़ायदे-आज़म के हस्ताक्षर उनकी नेकनीयती का प्रमाण हैं, तो पंजाब तथा सीमाप्रान्त के दंगे-फ़िसाद और ज़ुल्म रुक जायँगे।

पंजाब और सीमाप्रान्त में, मार्च-अप्रैल १९४७ में हिंसा की जो आंधी उठी और तीव्र हुई, उसका उद्देश्य मौजूदा मंत्रि-मंडलों को, वैध और क़ानूनी विधि के बजाय बलपूर्वक उखाड़ फेंकना था, किन्तु मनसूबे पूरे न हुए। तिस पर भी, लूट-मार, क़त्लो-ख़ून की वारदातों ने सारे देश को हिला दिया और अंत में कांग्रेस की कार्यकारिणी ने पंजाब के दो प्रान्त बनाये जाने का प्रस्ताव पास कर दिया ताकि हिन्दू-बहुसंख्यक विभाग को विरोधियों के अन्याय से सुरक्षित बनाया जाय। ज्यों ही यह प्रस्ताव मार्च १९४७ के मध्य में पास हुआ कि बंगाल में इसकी प्रतिक्रिया प्रत्यक्ष हो गई और बंगाल को बाँट देने की माँग की गई। बंगालियों ने यह अनुभव किया कि ६२० लाख की आबादी में मुसलमानों की कुल मिलाकर ७० लाख की अधिक संख्या होने से सारे प्रान्त को सदा के लिए मुस्लिम लीग के अधीन नहीं छोड़ा जा सकता। पूर्वी बंगाल में मुसलमानों की जन-संख्या केवल ८.६ प्रतिशत अधिक पाई जाती है। इसी के आधार पर, सारे प्रान्त के आर्थिक, शासन, न्याय तथा संस्कृति-सम्बन्धी जीवन को, इस शायद अचानक या भूल में दिखलाई गई अधिकता के रहम पर नहीं छोड़ा जा सकता। इसके अलावा यह भी जतलाया गया कि ३२००० वर्गमील

के क्षेत्रफलवाला पच्छिमी बंगाल, हिन्दुस्तान के अन्य ६ प्रान्तों से बड़ा रहेगा। इसकी आबादी २½ करोड़ होगी, जिसमें ७ ग़ैर-मुस्लिमों के मुकाबिले में ३ मुसलमान रहेंगे।

क़ुदरती तौर पर यह सवाल उठा, कि पच्छिमी बंगाल के हिन्दू, पूरबी बंगाल के हिन्दुओं की अवस्था को, जो कि अत्यधिक मुस्लिम बहुमत के रहम पर रह जायँगे, किस तरह शान्ति और धीरज से सहन करेंगे? तो इसका उत्तर मिला कि पच्छिमी बंगाल की मुस्लिम अल्पसंख्या जिस तरह दिन गुज़ारेगी, उसी तरह पूरबी बंगाल की हिन्दू अल्पसंख्या रहेगी। फिर यह भी कहा गया कि पूरबी बंगाल को, चावल तथा जूट के सिवा अपनी हर आवश्यकता के लिए पच्छिमी बंगाल पर निर्भर रहना होगा। पच्छिमी बंगाल, यानी हिन्दू-बहुसंख्या प्रान्त, बंगाल-सरकार को भूमि-कर के रूप में बड़ी भारी रक़म देता है, उसमें ग़ैर-मुस्लिम कर देनेवाले २८:१ के अनुपात में हैं। संयुक्त बंगाल घाटे में रहेगा, यदि व्यवसाय-धन्धे के सभी ज़रिये इकट्ठे एक ही के अधीन रक्खे गये। फ़ैक्टरी ऐक्ट के अनुसार चलनेवाले २९ सूत के कारखानों में से, जिन में ३४२३२ मज़दूर काम करते हैं, पूरबी बंगाल में केवल ६ कारख़ाने रहेंगे। कुल ९७ जूट के कारखाने, २,८१,२२९ मज़दूरों समेत, छः-की-छः स्टील के कारखाने, ११ चीनी की मिलें, चारों पेपर मिलें, सब १८ कैमिकल वर्क्स, ११ सोप वर्क्स, सब-के-सब पच्छिमी बंगाल की मिलकियत हैं। जनरल इञ्जीनीयरिंग के १५२ में से केवल ७, और १४ दियासलाई के कारखानों में से केवल ३, १२ काँच के कारखानों में से केवल २, पूरबी बंगाल में चल रहे हैं। इन सभी पर मुस्लिम लीग का प्रभुत्व रहेगा, यदि हम बंगाल का हिस्सा न बाँट लें।

इस समस्या को भली भाँति समझने के लिए हम १९४१ की जनगणना के अनुसार बंगाल की आबादी का ब्यौरा नीचे प्रकाशित करते हैं:—

बंगाल के जिलों और देशी राज्यों की जनसंख्या
(१९४१ की जनगणना के अनुसार)

	क्षेत्र वर्ग मीलों में	मुस्लिम	ग़ैर-मुस्लिम	जोड़
बर्दवान डिवीज़न	१४,१३५	१,४२९,५००	८,८५७,८६९	१०,२८७,३६९
बर्दवान	२,७०५	३३६,६६६	१,५५४,०६७	१,८९०,७३२
बीरभूमि	१,७४३	२८७,३१०	७६१,००७	१,०४८,३१७
बाँकुरा	२,६४६	५५,५६४	१,२३४,०७६	१,२८९,६४०
मिदनापुर	५,२७४	२४६,५५०	२,९४४,०८८	३,१९०,६४७
हुगली	१,२०६	२०७,००७	१,१७०,६५२	१,३७७,७२९
हवड़ा	५६१	२९६,३२५	१,१९३,९७९	१,४९०,३०४
प्रेसीडेन्सी डिवीजन	१६,४०२	५,७११,३५४	७,१०५,७३३	१२,८१७,०८७
२४-परगना	३,६९६	१,१४८,१८०	२,३८८,२०६	३,५३६,३८६
कलकत्ता	३४	४९७,५३५	१,६११,३५६	२,१०८,८९१
नदिया	२,८८९	१,०७८,००७	६८१,८३९	१,७५९,८४६
मुर्शिदाबाद	२,०६३	९२७,७४७	७१२,७८३	१,६४०,५३०
जसोर	२,९२५	१,१००,७१३	७२७,५०३	१,८२८,२१६
खुलना	४,८०५	९५९,१७२	९८४,०४६	१,९४३,२१८

राजशाही डिवीज़न	१९,६४२	७,५२८,११७	४,५१२,३४८	१२,०४०,४६५
राजशाही	२,५२६	१,१७३,२८५	३९८,४६५	१,५७१,७५०
दीनाजपुर	३,९५३	९६७,२४६	९५९,५८७	१,९२६,८३३
जलपाईगुड़ी	३,०५०	२५१,४६०	८३८,०५३	१,०८९,५१३
दार्जिलिंग	१,१९२	९,१२५	३६७,२४४	३७६,३६९
रंगपुर	३,६०६	२,०५५,१८६	८२२,६६१	२,८७७,८४७
बोगरा	१,४७५	१,०७७,९०२	१८२,५६१	१,२६०,४६३
पबना	१,८३६	१,३१३,९६८	३९१,१०४	१,७०५,०७२
मालदा	२,००४	६९९,९४५	५३२,६७३	१,२३२,६१८
ढाका डिवीज़न	१५,४९८	११,९४४,१७२	४,७३९.५४२	१६,६८३,७१४
ढाका	२,७३८	२,८४१,२६१	१,३८०,८८२	४.२२२,१४३
मैमनसिंह	६,१५६	४,६६४,५४८	१.३५९,२१०	६,०२३,७५८
फरीदपुर	२,८२१	१,८७१,३३६	१,०१७,४६७	२,८८८,८०३
बाकरगंज	३,७८३	२,५६७,०२७	९८१,९८३	३,५४९,०१०
चटगाँव डिवीज़न	११,७६५	६,३१२,२६१	२,०८५,५९९	८,४७७,८९०
नोआखाली	१,६५८	१,८०३,९३७	४१३,४६५	२,२१७,४०२
टिपेरा	२,५३१	२,९७५.९०१	८८४,२३८	३,८६७,१३९
चटगाँव का पहाड़ी इलाका	५,००७	७,२७०	२३९,७८३	२४७,०५३
चन्द्रनगर (फ्रान्सीसी)	...	...	...	३८,२८४
देशी राज्य	९.४०४	३७२,११३	१,७७२,७१६	२,१४४,८२९
कूच बिहार	१,३२१	२४२,६८४	३९८,१५८	६४०,८४२
त्रिपुरा	४.०४९	१२३,५७०	३८९,४४०	५१३,०१०
मयूरगंज	४,०३४	५,८५९	९८५,११८	९९०,९७७
बंगाल (तीन रियासतों तथा फ्रांसीसी चन्द्र-नगर को मिलाकर)	८६,८४६	३३,३७७,४४७	२९,११२,१९१	६२,४८९,६३८

इन घटनाओं से फिर यह शक होने लगा कि ब्रिटेन ने जो भारत छोड़ जाने की घोषणा की है उसमें सचाई कहाँ तक है। अगर वे सच्चे हैं तो फिर इस देश के टुकड़े कर जाने का इरादा क्यों रखते हैं? फिर भी पिछले तीन महीनों में जो परिवर्तन हुए हैं उनसे यही प्रतीत होता है कि अंग्रेजों की यह घोषणा सच्ची और गम्भीर है। और यही तथ्य, कि हिन्दुस्तान भर के अंग्रेजों की गणना की जा रही है ताकि उन्हें वापस भेजने का प्रबन्ध किया जाय, जनता के मन से संदेह दूर करने को काफी है। सिविल, मेडिकल तथा पुलिस विभागों को समेट देने की योजना को, जो कि हिन्दुस्तान को ह्वाइट हाल से मालूम हुई है, यों ही नहीं उड़ाया जा सकता। इसे चालाकी की चाल नहीं कहा जा सकता। १५०साल में,प्रथम बार हिन्दुस्तानी फौज का बनाया जाना कुछ मज़ाक नहीं है। रियासतों में, एजण्ट-जनरल का ओहदा हटाये जाने के साथ-साथ पोलिटिकल डिपार्टमेंट का समेटा जाना, और रेज़ीडेंटों के अधिकारों का ह्रास इत्यादि, ऐसे लक्षण

हैं, जिनसे अंग्रेज़ी दुकान के उठाए जाने का निश्चय ज़ाहिर होता है। रुपये का पिंड स्टर्लिंग से बहुत पहले छुटाया जाना चाहिये था, किन्तु यह ब्रिटिश साम्राज्य के प्रतिकूल होने से नहीं हो सका था। शिलिंग कमेटी तथा कोल कमेटियों ने बड़ी प्रबल रिपोर्टें पेश की हैं, जिनसे अब हिन्दुस्तान को इंग्लैंड का पुछल्ला नहीं बना रहना होगा।

जहाँ एक तरफ़ आशावादियों ने हिन्दुस्तान छोड़ जाने के बारे में ब्रिटिश सचाई और नेकनीयती की पुष्टि में प्रमाण इकट्ठे किये, वहाँ निराशावादियों ने भी इसके ठीक विरोधी मसाला जमा करने में कसर नहीं उठा रक्खी। सीमाप्रान्त में दर-पर्दा क्या हो रहा था? भला यह अफ़वाह इतने ज़ोरों से क्यों गरम थी कि नये सीमाप्रान्त के लोग पाकिस्तान चाहते हैं या नहीं, इसका निश्चय करने को, नये चुनाव होंगे? अभी कल की तो बात है,(अप्रैल पिछले साल की) कि इसी प्रसंग पर चुनाव हुए, जिनमें जनता ने अपना फ़ैसला डाक्टर खान साहब को अधिकार दिलाकर दिया और सिद्ध किया कि वे संयुक्त हिन्दुस्तान के हक़ में हैं। फिर भी, एक निर्णित प्रसंग में, गवर्नर ने अपनी टाँग फँसा कर, ज़बरदस्ती, अनावश्यक तथा अन्यायपूर्ण ढंग से जनता पर चुनाव क्यों ठूंसा, विशेषकर जब कि डा० खान साहब के मंत्रिमंडल पर, कानून और विधान की दृष्टि से कोई ऐसा आक्षेप या सन्देह नहीं प्रकट किया गया था कि जिसकी सफ़ाई के लिए जनता-द्वारा पुनः परीक्षा की आवश्यकता हो? एक ओर तो गवर्नर के इस्तीफे की माँग की जा रही थी और दूसरी ओर संयुक्त हिन्दुस्तान की प्रगतिशील शक्तियों तथा विभक्त पाकिस्तान की फोड़नेवाली माँगों के बीच रस्साकशी कराने की ज़बरदस्त माँग की जा रही थी।

जब कि परिस्थिति ऐसी थी, तो यह घोषणा की गई कि वाइसराय ने २ मई को, लार्ड इस्मे के हाथ ब्रिटिश मंत्रिमंडल को अपनी रिपोर्ट भेज दी है। इस प्रकार कैबिनेट-द्वारा हिन्दुस्तान को अधिकार हस्तांतरित करने का ऐलान फिर वही १६ मई को किया गया जैसा कि ठीक एक वर्ष पूर्व किया गया था। किन्तु पार्लीमेंट के अवकाश के कारण, यह महत्वपूर्ण काम २ जून १९४७ तक मुल्तवी किया गया। इस बीच, यह विचार-विभिन्नता बनी रही, कि क्या वाइसराय हिन्दुस्तानी स्वतंत्रता के आयोजन को बराबर आगे बढ़ाए जा रहे हैं या चालाकी से ढील कराते जा रहे हैं?

जब निश्चित तिथि आई तो २ जून को वाइसराय ने थोड़े से नेताओं को दावत दी। जवाहरलाल तथा वल्लभभाई पटेल कांग्रेस के प्रतिनिधि थे। कांग्रेस प्रेसीडेंट का नाम ही नहीं था। कुछ दिनों से काँग्रेस के प्रधान को बराय-नाम माना जाने लगा था। वे जवाहरलाल नेहरू और वाइसराय की बातचीत सुपरिचित नहीं थी। २९ नवम्बर, १९४६ को जब पं० नेहरू लंदन के लिए रवाना हुए तो इनसे इस बारे में राय भी नहीं ली गई। २ जून को जो कान्फरेंस हुई उसमें आमंत्रित व्यक्तियों में उनका नाम ही नहीं था। अतः इन त्रुटियों की ओर वाइसराय का ध्यान खींचा गया और पूछा गया, कि क्या वे अंतरिम सरकार की कान्फरेंस बुला रहे हैं? यदि यह बात है तो जिन्ना को क्यों बुलाया गया अथवा यह दो प्रमुख राजनीतिक संस्थाओं की कान्फरेंस तो नहीं है। अगर ऐसा है तो कृपलानी जी को क्यों नहीं बुलाया गया? इस आपत्ति का असर हुआ और प्रधानजी को कान्फरेंस में बिठा दिया गया; मगर साथ ही वज़न बराबर करने को एक और भी लीगी बुला लिया गया। इस छोटी-सी घटना ने सिद्ध कर दिया कि वाइसराय कैसे छुई-मुई बन रहे थे और वे लीग को ना-ख़ुश न-करने के लिए कितने उत्सुक थे। ३ जून को माउंटबेटन-योजना घोषित हुई और उसके बाद पं० नेहरू, मि० जिन्ना तथा सरदार बलदेवसिंह के रेडियो भाषण हुए।

आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी की कार्यवाही का संक्षिप्त विवरण

३ जून १९४७ के अंग्रेज़ी सरकार के वक्तव्य पर विचार करने के लिए, विधान-परिषद्, कर्ज़न रोड नई दिल्ली में, आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी का एक विशेष अधिवेशन १४-१५ जून १९४७ को दिन के २½ बजे हुआ। आचार्य कृपलानी सभापति, और २१८ सदस्य उपस्थित थे।

कांग्रेस के प्रधान आचार्य कृपलानी ने, अपने प्रारम्भिक भाषण में, आल इंडिया कांग्रेस कमेटी की इस बैठक तक के सब हालात और घटनाओं की आलोचना की।

३ जून के वक्तव्य सम्बन्धी प्रस्ताव

कांग्रेस कार्यकारिणी-द्वारा सिफ़ारिश किये गये प्रस्ताव का मसविदा श्री गोविंदवल्लभ पंत ने पेश किया और मौलाना अबुलकलाम आज़ाद ने उसका अनुमोदन किया।

इस प्रस्ताव पर, प्रधान के पास, १३ संशोधनों की सूचना पहुंची। इनमें से ८ को उन्होंने प्रस्ताव-विरोधी बतला कर बेक़ायदा ठहराया। शेष संशोधनों को पेश करने की आज्ञा दी गई। ३० से अधिक सदस्यों ने प्रस्ताव पर अपने विचार प्रकट करने की सूचना दी थी। प्रस्ताव पर १४ ता० को रात ६ बजे और १५ ता० को तीसरे पहर २-३० बजे तक वाद-विवाद होता रहा। कांग्रेस-प्रधान की प्रार्थना पर महात्मा गांधी ने भी प्रस्ताव पर अपने विचार प्रकट किये।

बहस समाप्त होने पर, प्रस्ताव तथा संशोधनों पर मत लिया गया। सभी संशोधन या तो वापस ले लिये गये या गिर गये। असली प्रस्ताव २९ के विरुद्ध १५३ के बहुमत से पास हुआ। कुछ सदस्य तटस्थ रहे।

आल इंडिया कांग्रेस कमेटी द्वारा पास किये प्रस्ताव के शब्द निम्नलिखित हैं:—

आल इंडिया कांग्रेस कमेटी ने, जनवरी की पिछली बैठक के बाद की घटनाओं पर पूरा-पूरा ध्यान दिया है। ख़ासकर, ब्रिटिश सरकार के २० फ़रवरी तथा ३ जून १९४७ के वक्तव्यों पर गहरा विचार किया है। इस बीच, कार्यकारिणी द्वारा पास किये गये प्रस्तावों का, यह कमेटी अनुमोदन तथा समर्थन करती है।

कमेटी, ब्रिटिश सरकार के इस निश्चय का स्वागत करती है कि आगामी अगस्त तक, सारे अधिकार पूर्णतया हिन्दुस्तानियों को सौंप दिये जायँगे।

ब्रिटिश कैबिनेट-मिशन के १६ मई १९४६ के वक्तव्य तथा बाद में ६ दिसम्बर १९४६ की उस पर की गयी व्याख्याओं को कांग्रेस ने स्वीकार कर लिया है और मिशनकी योजनाके अनुसार विधान परिषद् क़ायम करके, उस पर अमल कर रही है। विधान-परिषद् ६मास से अधिक समय से अपना कामकर रही है। परिषद् ने, अपना ध्येय हिन्दुस्तान के लिए स्वतंत्र लोकतंत्र राज घोषित किया है। इसके अलावा, प्रत्येक हिन्दुस्तानी के लिए, समान बुनियादी अधिकारों और सुअवसरों के आधार पर, आज़ाद हिन्दुस्तान संघ का विधान बनाने में भी विधान-परिषद् ने काफ़ी उन्नति कर ली है।

१६ मई की योजना को मुस्लिम लीग ने अस्वीकृत किया था और विधान-सभा में शामिल होने से इन्कार भी। इसको दृष्टि में रखते हुए तथा कांग्रेस की इस नीति के अनुसार कि, "यह किसी प्रदेश के लोगों को हिन्दुस्तानी संघ में शामिल हो जाने पर बाधित नहीं करेगी," आल इंडिया कांग्रेस कमेटी ने, ३ जून की घोषणा में लिखी तजवीज़ों को मंजूर कर लिया है,जिस में जनता का मत जानने की विधि भी लिखी है।

कांग्रेस ने स्थिरता से हिन्दुस्तान की एकता का समर्थन किया है। ६० साल

पहले, इसके जन्मदिन से ले कर, कांग्रेस ने एक आज़ाद संयुक्त हिन्दुस्तान का सपना देखा है और इसके हासिल करने के लिए, लाखों नर-नारियों ने कष्ट झेले हैं। पिछली दो पीढ़ियों की कुरबानियाँ और कष्ट ही नहीं, वरन् भारत का परम्परागत लम्बा इतिहास इसकी एकता का परिचायक है। समुद्र, पहाड़ और अन्य भौगोलिक स्थिति ने खुद आज का हिन्दुस्तान निर्माण किया है। कोई इन्सानी ताक़त इस के आधार को बदल नहीं सकती और न-ही इसके भाग्य के आड़े आ सकती है। आर्थिक अवस्थाएं तथा अन्तर्राष्ट्रीय मामलों की बढ़ती हुई माँगें, हिन्दुस्तान की एकता को और भी अधिक ज़ोर से आवश्यक बना रही हैं। हमने हिन्दुस्तान का जो चित्र देखा है वह सदा हमारे हृदय और ध्यान में रहेगा। आल इंडिया कांग्रेस कमेटी को पूरा विश्वास है, कि प्रस्तुत जोश ठंडा हो जाने पर, हिन्दुस्तान की समस्याओं पर समुचित दृष्टिकोणों से विचार किया जायगा और उस वक्त दो राष्ट्रों की धारणा निर्मूल सिद्ध होकर त्याग दी जायगी।

३ जून, १९४७ की तजवीज़ों के अनुसार सम्भवतः हिन्दुस्तान के कुछ भाग इससे अलहदा हो जायँ। बड़े खेद के साथ, मौजूदा हालात में आल इंडिया कांग्रेस कमेटी इस सम्भावना को मान रही है।

गो आज़ादी निकट है मगर समय भी विकट है। आज़ादी के दीवानों से, आज के हिन्दुस्तान की परिस्थिति, सतर्क तथा संगठित रहने की माँग कर रही है। आज के संकट-समय में, जबकि देशद्रोही तथा विच्छेद करनेवाली शक्तियां हिन्दुस्तान और इसकी जनता के हितों को आहत करने की चेष्टा कर रही हैं, आल इंडिया कांग्रेस कमेटी, आम जनता और विशेषकर प्रत्येक कांग्रेसी से तक़ाज़ा करती है, कि वह अपने छोटे-मोटे झगड़े भूलकर सतर्क और संगठित हो तथा हिन्दुस्तान की आज़ादी को, हर उस व्यक्ति से जो इसे हानि पहुँचाना चाहता है, अपनी पूरी ताक़त लगाकर सुरक्षित रखने के लिए तत्पर हो जाय।

इसके बाद हिन्दुस्तानी रियासतों-विषयक प्रस्ताव जिसकी सिफारिश कार्यकारिणी ने की थी, श्री पट्टाभि सीतारामय्या द्वारा पेश किया गया और शंकरराव देव ने उसका समर्थन किया।

प्रधान के पास आठ संशोधन प्राप्त हुए थे जिनमें से १ विधि-विरुद्ध घोषित हुआ। शेष संशोधनों पर एक घंटे बहस के बाद मत लिए गये। अधिकांश संशोधन वापस ले लिए गये, और जिन पर मत लिया गया वे भी गिर गये। मूल प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हुआ।

प्रस्ताव के शब्द इस प्रकार हैं:--

हिन्दुस्तानी रियासतें

"आल इंडिया कांग्रेस कमेटी, विधान-परिषद् में बहुत-सी रियासतों के शामिल होने का स्वागत करती है। कमेटी आशा करती है कि शेष सभी रियासतें भी, आज़ाद हिन्दुस्तान के विधान-निर्माण में, जिसके अनुसार रियासती इकाइयाँ संघ में सम्मिलित होनेवाली दूसरी इकाइयों की तरह बराबर की भागीदार होंगी, अपना-अपना सहयोग देंगी।

२. जो वैधानिक तब्दीलियाँ की जा रही हैं उनमें रियासतों की स्थिति, कैबिनट मिशन के मेमोरेंडम ता० १२ मई १९४६ तथा १६ मई, १९४६ के वक्तव्य में निर्धारित कर दी गयी है। ३ जून १९४७ के वक्तव्य ने इस स्थिति में कोई तब्दीली नहीं की। इन दस्तावेज़ों के अनुसार, हिन्दुस्तानी संघ में बृटिश भारत और रियासतें दोनों शामिल होंगी। सर्वोपरि सत्ता, अधिकार हस्तांतरित होने पर समाप्त हो जायगी, और यदि कोई रियासत संघ में सम्मिलित नहीं होती, तो

वह किसी अन्य प्रकार के राजनीतिक-नाते से बँध जायगी। मैमोरेंडम में यह भी लिखा था, कि हिन्दुस्तानी रियासतों ने अपने-अपने तथा सब के हितों के ख़ातिर, ब्रिटिश सरकार को सूचित कर दिया है कि वे विधान-निर्माण में भाग लेंगी और उसके बन जाने पर इसमें अपना-अपना स्थान भी प्राप्त करेंगी। यह आशा भी प्रकट की गयी थी कि अनेक ऐसी रियासतों को, जिन्होंने अभीतक ऐसा नहीं किया, अपने यहाँ की प्रजाओं के साथ नज़दीकी तथा स्थिर सम्बन्ध क़ायम रखने के लिए और प्रजा की राय जानने के लिए प्रतिनिधि संस्थाएँ स्थापित करनी चाहियें। यह भी सुझाया गया था, कि हिन्दुस्तानी सरकार और रियासतों के बीच, साझे मामलों सम्बन्धी जो प्रबन्ध है, नये समझौते हो जाने तक वही बदस्तूर चालू रहे।

३. जहाँ, आल इंडिया कांग्रेस कमेटी, केबीनेट मिशन के मेमोरेंडम के बाद, कुछेक रियासतों में प्रतिनिधि संस्था स्थापना में की गयी थोड़ी-सी उन्नति की सराहना करती है, वहाँ कमेटी को यह खेद भी है कि यह उन्नति बड़ी सामान्य और सीमित हुई है। अधिकार हस्तांतरित होने पर, आगामी दो मास में जो आधारभूत परिवर्तन होनेवाले हैं, उनको दृष्टि में रखते हुए यह अनिवार्य है कि रियासतों में भी ज़िम्मेदार सरकारों की स्थापना द्रुतगति से हो। आल इंडिया कांग्रेस कमेटी को भरोसा है, कि हिन्दुस्तान में वेग से होती हुई तब्दीलियों के मद्दे-नज़र, रियासतों में भी उन्नति की जायगी और के उनकी प्रजाओं में संतोष तथा आत्मविश्वास उत्पन्न किया जायगा।

४. अंग्रेजी सरकार द्वारा सर्वोपरिसत्ता के सिद्धान्तों के अर्थ और स्पष्टीकरण से कमेटी सहमत नहीं है; किन्तु यदि वही स्वीकार कर लिया जाय, तो भी, सत्ता-समाप्ति के जो परिणाम निकलेंगे वे सीमित रहेंगे। सर्वोपरि-सत्ता का अंत, रियासतों और भारत-सरकार के बीच प्रस्तुत ज़िम्मेदारियों, सुविधाओं और अधिकारों पर उलटा असर नहीं डाल सकेगा। आपस में बैठकर, दोनों पक्षोंवाले इन ज़िम्मेदारियों और अधिकारों पर विचार-विनिमय कर लेंगे और तब्दीलियों के अनुसार अपने सम्बन्ध क़ायम करेंगे। सर्वोपरि-सत्ता का अंत, रियासतों और भारत-सरकार के नाते को धराशाई नहीं कर देगा। इस अंत से रियासतें आज़ाद नहीं बन जायँगी।

५. १२ मई ४६ के मेमोरेंडम तथा १६ मई ४६ के वक्तव्य के अभिप्राय तथा संसार भर में जनता के स्वीकृत अधिकारों के अनुसार, यह स्पष्ट है; कि रियासती प्रजाओं को, उनके सम्बन्ध में किये जानेवाले फ़ैसलों में पूरा-पूरा दख़ल होना चाहिये। सत्ता, सभी मानते हैं, कि जनता में रहती है और यदि, सर्वोपरि-सत्ता का अंत होता है, तो रियासतों और बृटिश सम्राट के सम्बन्ध पर कोई बुरा असर नहीं पड़ सकता।

६. सर्वोपरि-सत्ता के अधीन, जो प्रबन्ध चला आ रहा था, वह समस्त हिन्दुस्तान की शान्ति का ज़ामिन था। इस शान्ति की ख़ातिर रियासती अधिकारियों के अधिकारों को सीमित करके उन्हें रक्षा भी प्रदान की गयी थी। हिन्दुस्तान के अमन-शान्ति की समस्या आज भी उतनी ही गम्भीर है जितनी कि पहले थी और रियासतों के भविष्य-निर्णय में इसको नज़र-अन्दाज़ नहीं किया जा सकता।

७. आल इंडिया कांग्रेस कमेटी, हिन्दुस्तान की किसी रियासत के स्वतंत्र हो जाने का हक़ तस्लीम नहीं करती, जिससे कि वह शेष भारत से अलग-थलग रह सके। इसका मतलब हिन्दुस्तानी इतिहास की गति तथा आज के हिन्दुस्तानियों की वास्तविक स्थिति से इन्कार करना होगा।

८. आल इंडिया कांग्रेस कमेटी को भरोसा है कि राजा लोग, आज की स्थिति को भली-भांति समझकर, अपनी प्रजाओं तथा समस्त भारत के हितार्थ, अपनी प्रजाओं के हमराह प्रजातंत्र की इकाइयाँ बनकर हिन्दुस्तानी संघ में सम्मिलत होंगे।

इसके बाद कांग्रेस के प्रधानने अपना भाषण दिया। नीचे हम उनके भाषण के अन्तिम भाग के शब्द देते हैं:—

"जब मैं इस संस्था का प्रधान बना था तो गांधीजी ने अपने एक प्रार्थना-भाषण में कहा था कि मुझे न केवल काँटों का ताज सिर पर धारण करना होगा बल्कि काँटों की सेज पर भी लेटना पड़ेगा। मैं ने जब यह अनुभव नहीं किया था कि सचमुच वही होगा। १६ अक्टूबर को मेरे प्रधान चुने जाने की घोषणा हुई और १७ ता० को मुझे विमान द्वारा नोआखली जाना पड़ा। उसके बाद मुझे बिहार जाना पड़ा और अभी-अभी पंजाब भी गया था। दोनों सम्प्रदाय वाले बढ़-बढ़ा कर हिंसा और मारकाट कर रहें हैं और हाल की भिड़न्त में जिस प्रकार की संगदिली और ज़ुल्म की वारदातें हुई हैं उनकी मिसाल पहले कहीं नहीं मिलती। मैंने एक कुवाँ देखा है जिसमें १०७ स्त्री-बच्चों ने अपनी आबरू बचाने के लिए छलाँगें लगाकर जानें दे दीं। एक दूसरी जगह, एक धर्मस्थान में पुरुषों ने ५० स्त्रियों का इसी कारणवश अपने हाथों वध कर डाला। मैं ने एक घर में हड्डियों के ढेर देखे हैं, जिसमें ३०७ व्यक्तियों—अधिकांश स्त्री-बच्चों को--आक्रमणकारियों ने बंद करके ज़िन्दा जला डाला था।

इन भयानक दृश्यों को देखकर इस समस्या के विषय में मेरे विचारों पर बहुत प्रभाव पड़ा है। कुछ सदस्यों ने हमपर इल्ज़ाम लगाया है कि हमने भयभीत होकर यह निश्चय किया है। मैं इस आरोप के तथ्य को क़बूल करता हूँ मगर उस मतलब में नहीं जिसके अधीन कि यह आरोप किया गया है। जानों की क्षति, या विधवाओं के विलाप या अनाथों के क्रन्दन या अनेक घरों के जलाये जाने का भय नहीं है, बल्कि भय इस बात का है कि यदि हम इस प्रकार एक दूसरे से बदला लेने के लिए वार करते रहे तो अन्त में हम नर-भक्षी राक्षस या इससे भी ज्यादा पतित हो जायँगे। जो नया दंगा होता है उसमें वही पहले वाले की तरह निर्दयता और पशुता के कुकर्म नज़र आते हैं। इस प्रकार हम एक दूसरे को पतित करते जा रहे हैं और सब धर्म की दुहाई देकर, धर्म के नाम पर! मैं हिन्दू हूँ और मुझे हिन्दु होने का गर्व है। इसलिए हिन्दू-धर्म मेरे नज़दीक, सहिष्णुता, सत्य और अहिंसा का परिचायक है या उसे कह लीजियेगा वीरता-पूर्ण अहिंसा। यदि हिन्दू धर्म इन उच्च उद्देश्यों की पूर्ति नहीं करता और इन्सान से नर-वध और नर-भक्षीपन के नीच कुकर्म करवाता है तो मुझे ऐसे धर्म के लिए शर्म से सर झुका लेना पड़ेगा। और इन दिनों, मैं आपसे निवेदन करूंगा, कि मैंने अपने हिन्दुस्तानी होने पर अनेक वार शर्म महसूस की है।

मैं पिछले ३० साल से गांधी जी की संगति में रहा हूँ। मैं चम्पारन में उनके साथ हो लिया था। उनके प्रति मेरी वफ़ादारी और श्रद्धा कभी डाँवाँडोल नहीं हुई। यह निजी नहीं वरन् राजनीतिक वफ़ादारी है। जब-जब उनसे मेरा मतभेद भी हुआ तो मेरी विशाल तर्कसंगत युक्तियों से उनका राजनीतिक सहज-ज्ञान मुझे अधिक ठीक प्रतीत हुआ। आज भी, मैं समझता हूँ कि गांधीजी अपनी श्रेष्ठतम निर्भीकता के साथ ठीक हैं और मेरा मत दोषयुक्त है। तो फिर मैं उनके साथ क्यों नहीं हूं? इसका कारण यह है, कि मैं अनुभव करता हूं, कि गांधीजी ने अभी तक इस समस्या का ऐसा हल नहीं निकाला कि जिसका प्रयोग जनसाधारण पर किया जा सके।

जब उन्होंने हमें अहिंसापूर्ण असहयोग सिखलाया था तो हमें एक निश्चित तरीक़ा समझाया था जिसपर हम मशीन की तरह अमल करते रहे। आज तो वे ख़ुद अंधेरे में टटोल रहे हैं। वे नोआखली गये थे तो परिस्थिति सुधर गई थी। अब वे बिहार गये हैं। वहाँ भी शान्ति हो रही है। किन्तु इससे पंजाब की भड़कती आग तो नहीं बुझती। वे कहते हैं कि बिहार में वे समस्त भारत के लिए हिन्दू-मुस्लिम एकता की समस्या का हल निकाल रहे हैं। होगा! किन्तु हमें तो नज़र नहीं आ रहा कि यह हो रहा है। अहिंसापूर्ण असहयोग की तरह, कोई निश्चित पथ नहीं कि जिसपर चलकर हम अपनी मंज़िल पर पहुंच जायँ।

और फिर, बदक़िस्मती से, गांधीजी आज भी नीतियाँ बना सकते हैं, किन्तु इनपर आचरण आख़िर दूसरों द्वारा ही होगा, और यह दूसरे, अभी उनके विचारों से सहमत नहीं हो पाये।

इन्हीं हृदय-विदारक हालात में, मैंने हिन्दुस्तान का विभाजन स्वीकार कर लिया है। आप जानते होंगे कि मेरा जन्मस्थान, परिवार और घर-बार पाकिस्तान में है। मेरे बन्धु-बांधव सभी वहीं रह रहे हैं। सन् १६०६ में जब मैंने राजनीतिक क्षेत्र में क़दम रक्खा था तो मैंने कभी नहीं सोचा था कि मैं हिन्दुस्तान के किसी भाग-विशेष की आज़ादी की ख़ातिर काम कर रहा हूँ। मैं तो समस्त भारत के लिए काम कर रहा था। इस देश का प्रत्येक नदी-नाला, कोना-कोना मेरे लिए पवित्र है। और इस कृत्रिम बँटवारे के बाद भी वह मेरे लिए वैसा ही बना रहेगा। अपने भाषण के शुरू में मैंने कहा था, कि हिन्दुस्तान में, कम से कम हर व्यक्ति को साम्प्रदायिक आधार पर नहीं वरन् हिन्दुस्तानी नागरिकता के आधार पर सोचना चाहिये। और इस सम्बन्ध में, कल महात्माजी की दी हुई शिक्षा की मैं सिफ़ारिश करूंगा। यदि एक संयुक्त संगठित हिन्दुस्तान बनाना है तो फिर महात्माजी की नीति पर ही चलना श्रेयस्कर होगा।

कहा जाता है कि इस फ़ैसले से साम्प्रदायिक दंगे-फ़िसाद बन्द नहीं होंगे और न हो सकेंगे। हाँ, इस समय तो ऐसा ही प्रतीत हो रहा है कि शैतान की गुड्डी चढ़ी है। तो फिर भविष्य में यह दंगे क्योंकर सँभाले जायँगे? क्या यह ज़हरीला चक्र और भी वेग पकड़ लेगा जैसा कि अभी-अभी बदला लेने से बढ़ा है? इस प्रश्न का उत्तर मैं अपने मेरठ के सभापति के भाषण में दे चुका हूं। मैंने तभी कहा था कि केन्द्र ढीला पड़ जाने से प्रान्तों में मन-मानी होने लगी है। बिहार-सरकार को चाहिए था कि बंगाल-सरकार को चेतावनी दे दे कि यदि बंगाल के हिन्दुओं पर अत्याचार होते रहे तो बिहार-सरकार अपनी नेकनीयती के बा-वजूद बिहारी मुसलमानों की जान-माल की रक्षा नहीं कर सकेगी। इसका मतलब यह होता कि मामला ऊँचे अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में पहुँच गया है जहां सुव्यवस्थित सरकारें इसपर एक दूसरे से बातचीत करेंगी। तब यह मामला उत्तेजित बलवाइयों के हाथों से, जिनके नज़दीक नैतिकता या कानून या संयम तुच्छ होता है, निकल जाता। दंगाइयों का जोश अन्धा होता है। अन्तर्राष्ट्रीय अहिंसा भी किसी विधि से की जाती है। मुझे यक़ीन है कि १६ अगस्त के बाद हिन्दुस्तान की बाग-डोर जिनके हाथों में होगी वे देखेंगे कि पाकिस्तान के अल्पसंख्यक हिन्दुओं के साथ अन्याय नहीं होता। यदि मेरे इन शब्दों का हिन्दुस्तान के पाकिस्तान विभाग पर कुछ भी असर हो सकता है तो मैं ज़रूर कहूँगा कि 'दोनों विधान परिषदों को एक संयुक्त कमेटी नियुक्त करनी चाहिये जो कि अल्पसंख्यकों के अधिकारों का निर्णय करे।'' इस प्रकार व्यक्तियों और दंगाइयों के जन-समूह और उसके बदले की आग से इनकी रक्षा हो सकेगी।

हमने देशी राज्यों के सम्बन्ध में अभी-अभी प्रस्ताव पास किया है। इस सिलसिले में मैं एक बात सुझाना चाहूंगा। जिन रियासतों ने अभी तक अपने प्रतिनिधि विधान-परिषद् को नहीं भेजे हैं उनकी प्रजा ऐसे प्रतिनिधियों को स्वयं भेज दे। जहां व्यवस्थापिका सभाओं का अस्तित्व है वहाँ वहाँ वे एसेम्बलियां ब्रिटिश भारत की एसेम्बलियों की ही भाँति एकाकी हस्तान्तरण-मत पद्धति-द्वारा प्रतिनिधियों का चुनाव करलें। जहां ऐसी एसेम्बलियां नहीं हैं वहां प्रतिनिधियों के चुनने के लिए अन्य उपाय काम में लाये जा सकते हैं। ऐसे प्रतिनिधियों को विधान-परिषद् में, जो कि सर्वप्रधान सत्तात्मक संस्था है। हमारी बुनियादी अधिकारों की कमेटी में हमने सारे देश के लिये एक ही सामान्य नागरिकता मान ली है। प्रत्येक रियासत का नागरिक हिन्दुस्तान का नागरिक है और उसे भारतीय विधान-परिषद् में प्रतिनिधित्व करने का अधिकार है। रियासत के बाहर से आया हुआ दीवान नागरिकों का यह अधिकार सीमित नहीं कर सकता। हमें भारत का विधान बनाने में रियासती प्रजाजन के परामर्श की ज़रूरत है। अब हम १६ मई के दस्तावेज़ से बँधे हुए नहीं हैं। कुछ भी हो, हमारी सभा सर्वोच्च शक्ति रखती है। भारत या इससे बाहर का कोई भी न्यायालय हमारी विधान-परिषद् के फैसले पर कोई न्यायाधिकार नहीं रखती। अब चूंकि इसकी बैठक हो चुकी है और वह अपनी कार्यप्रणाली के नियम बना चुकी है इसलिए वह अपने वोट के अतिरिक्त और किसी के निर्णय से भंग भी नहीं हो सकती। मैं नहीं समझता कि हमारे देशी राज्यों के प्रतिनिधि विधान-परिषद् में क्यों नहीं स्वीकार किये जायँगे।

फैसले के रूप में मैं कहूँगा कि हमें उस आज़ादी से ही संतुष्ट नहीं हो जाना चाहिये जो शीघ्र ही मिलनेवाली है। हमें उस एकता के लिए अपनी सारी शक्ति लगा देनी चाहिए जिसे हमने शीघ्र स्वतंत्रता प्राप्त करने के प्रयत्न में खो दिया है। यह काम केवल भारत को सुदृढ़, सुखी, गणतंत्रात्मक और समाजसत्तावादी राज्य बनाकर किया जा सकता है जहाँ धर्म और जाति के भेदभाव बिना सभी नागरिक विकास का समान अवसर प्राप्त करेंगे। इस प्रकार का भारत अपने बिछुड़े बच्चों को फिर अपनी गोद में बिठा सकता है। इस काम में उन सभी सच्ची सेवाओं और बलिदानों की आवश्यकता होगी जिनकी हमें आज़ादी की लड़ाई में ज़रूरत थी। हमें सभी शक्ति की भूखी राजनीति का परित्याग कर देना चाहिए। हमें उस त्याग कठिनाई और स्वेच्छापूर्ण अकिंचनता की गौरवपूर्ण परम्परा का परित्याग नहीं करना चाहिए जिसका निर्माण हमने जेल जाकर, लाठी-प्रहार सहकर और गोलियाँ खाकर किया है। हमें फिर अपने को उस नये कार्य में लगा देना चाहिए जो स्वतंत्रताप्राप्ति के समान ही महत्वपूर्ण है, क्योंकि हमने जो आज़ादी हासिल की है वह तब तक पूरी नहीं हो सकती जब तक भारत की एकता न स्थापित हो जाय। विभाजित भारत तो गुलाम बन जायगा। इसलिए हम दूसरी गुलामी से जहाँ तक शीघ्र हो सके दूर हो जायँ। हमें स्वभाग्य-निर्णय के जो सुअवसर प्राप्त हुए हैं उन्हें अब हमारे भारत में एकता क़ायम करने के उत्कृष्ट ध्येय में लगा देना चाहिए; इस कार्य में ईश्वर हमारी मदद करे।

परिशिष्ट १

कांग्रेस का घोषणापत्र

केन्द्रीय चुनावों के लिए कांग्रेस ने एक घोषणापत्र प्रकाशित किया था और उसके शीघ्र बाद (११-१२-४५ को) केन्द्रीय और प्रान्तीय चुनावों के लिए एक संयुक्त घोषणापत्र निकाला। यह दूसरा घोषणापत्र यहाँ प्रकाशित किया जाता है:—

"गत सितम्बर में ऑल इंडिया कांग्रेस कमेटी ने अपने बम्बई-अधिवेशन में यह निश्चय किया था कि आम जनता के सूचित करने और कांग्रेस-उम्मेदवारों के पथ-प्रदर्शन के लिए कांग्रेस वर्किङ्ग कमेटी एक ऐसा घोषणापत्र तैयार करे और उसे स्वीकृति के लिए ऑल इंडिया कांग्रेस कमेटी के सम्मुख पेश करे जिसमें कांग्रेस की नीति और कार्यक्रम सम्मिलित कर लिए गये हों । वर्किङ्ग कमेटी को यह अधिकार भी दे दिया गया था कि केन्द्रीय धारा-सभा के निर्वाचनों के लिए वह इस से पहले भी एक घोषणापत्र निकाल दे । इसके अनुसार यह चुनाव-घोषणापत्र जनता के सामने रखा जा चुका है । वर्किंग कमेटी को इस बात का दुःख है कि प्रान्तों में आम चुनाव करीब होने के कारण अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की सम्पूर्ण घोषणापत्र पर विचार करने के लिए निकट-भविष्य में कोई मीटिंग नहीं की जा सकेगी जिसकी आशा ऑल इंडिया कांग्रेस कमेटी ने पहले प्रकट की थी । इसलिए वर्किंग कमेटी ने स्वयम् ही घोषणापत्र तैयार कर लिया है और सर्वसाधारण की सूचना और कांग्रेसी उम्मेदवारों के मार्ग-दर्शन के लिए इसे प्रकाशित करती है ।

घोषणापत्र का सम्पूर्ण रूप इस प्रकार है—

"राष्ट्रीय महासभा—कांग्रेस ने देश की स्वाधीनता के लिए साठ वर्ष प्रयत्न किया है । इस लम्बे काल में इसका इतिहास जनता का इतिहास रहा है, जो सदा उस बन्धन से छूटने का प्रयत्न करती रही है जिसने उसे जकड़ रखा है । छोटे-से आरम्भ से यह प्रगति करते हुए नगरों की जनता से दूर-दूर के गांवों की जनता तक आज़ादी का सन्देश पहुंचाती रही है और इस प्रकार वह इस विशाल देश में फैल गयी है । इस जनता से ही उसे शक्ति और ताकत मिली है और इसी के द्वारा वह ऐसे शक्तिशाली संगठन के रूप में परिवर्तित होसकी है और स्वतंत्रता और स्वाधीनता के लिए भारत के दृढ़ निश्चय की प्रतीक बन गई है । वह इसी पवित्र प्रयोजन के लिए पीढ़ी-दर-पीढ़ी आत्मसमर्पण करती रही है और इसके नाम पर तथा इसके झण्डे के नीचे इस देश के असंख्य स्त्री-पुरुषों ने आत्मबलि दी है और अपनी की हुई शपथ पूरी करने के लिए भीषण कष्ट सहन किये हैं । सेवा और त्याग के द्वारा इस ने हमारे देशवासियों के हृदयों में स्थान पा लिया है; हमारे राष्ट्र के प्रति असम्मानसूचक बातों के सम्मुख आत्मसमर्पण करने से इन्कार करके इसने विदेशी शासन के विरुद्ध शक्तिशाली आन्दोलन खड़ा कर दिया है ।

दृढ़तर शक्तिशाली

"कांग्रेस के कार्यकलाप में जनहित के लिए रचनात्मक कार्यक्रम भी शामिल रहा है और

आज़ादी हासिल करने के लिए अनवरत संघर्ष भी। इस संघर्ष में इसने कितने ही संकटों का सामना किया है और बार-बार एक सशस्त्र साम्राज्य की ताकत से टक्कर ली है। कांग्रेस शान्तिमय साधनों का प्रयोग करते हुए इन संघर्षों के बाद केवल जीवित ही नहीं रही, बल्कि इनसे उसे और भी शक्ति प्राप्त हुई है। हाल के तीन वर्षों में जो अभूतपूर्व सामूहिक उफान आया है उसके क्रूर और निर्मम दमन से कांग्रेस और भी अधिक दृढ़ हो गई है और उस जनता की यह और भी प्रिय होगई है जिसका इसने तूफान और कष्ट के समय साथ दिया है।

सबके लिए समान अधिकार

"कांग्रेस भारत के प्रत्येक नागरिक—स्त्री और पुरुष के समान अधिकारों और अवसरों की समर्थक रही है। इसने सब सम्प्रदायों और धार्मिक दलों की एकता, सहिष्णुता और पारस्परिक शुभेच्छा के लिए काम किया है। वह सभी को उनकी प्रवृत्ति और विचारों के अनुसार उन्नति और विकास का सुअवसर प्राप्त होने का समर्थन करती रही है। वह राष्ट्रके अन्तर्गत प्रत्येक दल और प्रादेशिक क्षेत्रकी आज़ादी के हक़ में है जिससे वह बड़े ढाँचेके अंदर अपने जीवन और संस्कृतिका विकास कर सके, और वह इस बात को घोषित कर चुकी है कि इस कार्य के लिए ऐसे सीमान्तर्गत प्रदेशों या प्रान्तों का निर्माण जहाँतक होसके भाषा और संस्कृति के आधार पर होना चाहिए। यह उन सभी के अधिकारों के पक्ष में है जिन्होंने सामाजिक अत्याचार और अन्याय सहन किये हैं और सभी बाधाएँ दूर कर उनमें समानता कायम करने के हक में है।

"कांग्रेस एक ऐसे स्वाधीन जनसत्तात्मक राष्ट्र की कल्पना करती है जिसके विधान में सब नागरिकों को बुनियादी अधिकार और स्वतंत्रताओं का आश्वासन दिया गया हो। इसके विचार में यह विधान संघीय होना चाहिए और उसकी वैधानिक इकाइयों—प्रान्तों को स्वाधीनता प्राप्त होनी चाहिए और उसको धारा-सभाओं का निर्माण वयस्क-मताधिकार-द्वारा निर्वाचित सदस्यों-द्वारा होना चाहिए। भारत का संयुक्त राष्ट्र विभिन्न खण्डों का मनोनीत संघ होना चाहिए। प्रान्तीय इकाइयों को महत्तम स्वतंत्रता देने के लिए संघशासन के प्रभुत्व में केवल कुछ विभाग और परिमित शक्ति सौंपी जानी चाहिए। यह (नियम) सभी इकाइयों पर लागू होंगे। इसके सिवा एक सूची ऐसे नियमों की भी बन सकती है जिन्हें केवल वही प्रान्त स्वीकार करें जो ऐसा करना चाहें।

वैधानिक अधिकार

"विधान में मौलिक अधिकारों का उल्लेख होगा, जिनमें नीचे लिखी बातें भी सम्मिलित होंगी.—

(१) भारत के प्रत्येक नागरिक को अपने विचार स्वतंत्रता से व्यक्त करने, स्वाधीनता-पूर्वक मिलने-जुलने और समूह बनाने, शान्तिपूर्वक निश्शस्त्र होते हुए एकत्रित होने का अधिकार होगा बशर्ते कि उसका उद्देश्य कानून या नैतिकता के विरुद्ध न हो।

(२) प्रत्येक नागरिक को आत्मिक स्वतंत्रता और अपने धर्म पर प्रत्यक्ष रूपमें चलने का अधिकार होगा बशर्ते कि इससे सार्वजनिक शान्ति या नैतिकता को कोई नुकसान न पहुँचता हो।

(३) अल्प-संख्यक जातियों और विभिन्न भाषा-क्षेत्रों की संस्कृति व भाषा तथा लिपि की रक्षा की जायगी।

(४) धर्म, जाति, वर्ण और लिंगभेद के बावजूद सभी नागरिक कानून की दृष्टि में समान होंगे।

(५) किसी भी नागरिक को धर्म, जाति, वर्ण अथवा लिंगभेद के कारण सरकारी नौकरी और सम्मान अथवा व्यापार, व्यवसाय में कोई बाधा प्रस्तुत न होगी।

(६) कुवों, तालावों, सड़कों, पाठशालाओं और सार्वजनिक स्थानों पर, जिन्हें राष्ट्रीय अथवा स्थानीय धन से बनाया गया हो या व्यक्तियों की ओर से सर्व-साधारण के लिए जिनका दान किया गया हो, सब नागरिकों का समान अधिकार होगा।

(७) इस सम्बन्ध में प्रचलित नियम और संरक्षणों के अधीन रहते हुए प्रत्येक नागरिक को अस्त्र-शस्त्र रखने का अधिकार होगा।

(८) गैर-कानूनी तौर पर किसी भी व्यक्ति की स्वतंत्रता का अपहरण नहीं किया जायगा। उसके निवास-स्थान में प्रवेश या जायदाद पर अधिकार नहीं किया जा सकेगा और न उसे ज़ब्त किया जा सकेगा।

(९) सब धर्मों के विषय में केन्द्रीय शासन निष्पक्षता का व्यवहार करेगा।

(१०) सभी बालिगों को मताधिकार होगा।

(११) केन्द्रीय शासन सब के लिए निश्शुल्क और अनिवार्य शिक्षा का प्रबन्ध करेगा।

(१२) प्रत्येक नागरिक को भारत में कहीं भी घूमने, ठहरने अथवा बस जाने का और कोई भी व्यापार व्यवसाय करने का और कानूनी अभियोगों में समान-व्यवहार प्राप्त करने का तथा भारत के सभी भागों में रक्षा पाने का अधिकार होगा।

"इसके अतिरिक्त राष्ट्र जनता के पिछड़े अथवा दलित अंशों के लिए आवश्यक संरक्षण और निवास के प्रबन्ध का भी उत्तरदायी होगा, जिससे वह शीघ्रता-पूर्वक उन्नति कर सकें तथा राष्ट्रीय जीवन में सम्पूर्णता और बराबरी का हिस्सा हासिल कर सकें। विशेषतया राष्ट्र सीमान्त प्रदेशों की जनता के विकास में और उसकी वास्तविक प्रवृतियों के अनुसार दलित जातियों की शिक्षा तथा सामाजिक व आर्थिक उन्नति में सहायता देगा।

अनेक समस्याएं

"विदेशी शासन के डेढ़ सौ वर्षों ने देश की वृद्धि को रोक दिया है और कितनी ही समस्याएँ उत्पन्न कर दी हैं जिनका तुरन्त ही समाधान होनी चाहिए। इस काल में देश और जनता के गम्भीर उत्पीड़न से सर्व-साधारण भूख और सन्ताप की गहरी खाइयों में गिर चुके हैं। देश को केवल राजनीतिक पराधीनता का ही अपमान नहीं सहना पड़ा, वरन् उसकी आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आत्मिक अवनति भी हुई है। भारतीय हितों और दृष्टिकोण की नितान्त उपेक्षा से एक अनुत्तरदायी शासन द्वारा युद्ध के इन वर्षों में उत्पीड़न, और शासन की अयोग्यता इस सीमा तक जा पहुँची है कि हम भयंकर दुर्भिक्ष और सर्वव्यापी दुर्गति के शिकार होगये हैं। इन में से किसी भी आवश्यक समस्या का हल स्वतंत्रता और स्वाधीनता के बिना सम्भव नहीं है। राजनीतिक स्वतंत्रता के निर्माण में आर्थिक और सामाजिक स्वतंत्रता का सम्मिलित होना आवश्यक है।

गरीबी दूर करना

"भारत के सामने बहुत ज़रूरी सवाल यह है कि गरीबी के कारणों को किस प्रकार हटाया जाय। सर्वसाधारण की इस भलाई और उन्नति के लिए कांग्रेस ने खास ध्यान दिया है और वह रचनात्मक कार्रवाइयाँ करती रही है। उन्हीं की भलाई और उन्नति की कसौटी पर प्रत्येक प्रस्ताव और परिवर्तन की परख इसने की है और घोषित किया है कि हमारे देश की जनता की दुःख-निवृत्ति के मार्ग में जो भी बाधाएँ आयें उन्हें अवश्य ही दूर कर देना चाहिए। उद्योग-धन्धों और कृषि,

सामाजिक सेवाओं और उपयोगिता आदि सभी को प्रोत्साहन मिलना चाहिए तथा इन्हें आधुनिक ढंग पर लाकर इनका शीघ्रता के साथ प्रचार होना चाहिए जिससे देश का मूलधन बढ़े और दूसरों का आश्रय लिये बिना इसकी आत्मोन्नति की शक्ति में वृद्धि हो। लेकिन इन सबका खास मक़सद जनता की भलाई और उसका आर्थिक, सांस्कृतिक और आत्मिक स्तर ऊंचा करना, बेकारी दूर करना तथा वैयक्तिक आत्मसम्मान बढ़ाना ही होना चाहिए। इसके लिए आवश्यक होगा कि सभी क्षेत्रों में समाजसत्तावादी उन्नति की एक योजना बनायी जाय और उसका एकीकरण किया जाय जिससे व्यक्तियों अथवा समूहों के हाथों में धन तथा शक्तियाँ इकट्ठी न हो जायँ, ऐसे स्वार्थों को न पनपने दिया जाय जो सामूहिक हितों के शत्रु हों और भूमि, उद्योग-धन्धा तथा राष्ट्रीय कार्यों के दूसरे अंगों में उत्पत्ति और बँटवारे के तरीकों पर, यातायात् के साधनों और खनिज स्रोतों पर समाज का नियंत्रण हो सके, जिससे आज़ाद हिन्दुस्तान परस्पर सहायक राष्ट्रमण्डल के रूप में विकसित हो सके। मूल उद्योग-धन्धों और नौकरियों पर, खनिज स्रोतों पर, रेल, नहर, जहाज तथा सार्वजनिक यातायात् के दूसरे साधनों पर भी इसीलिए राष्ट्र का आधिपत्य और नियंत्रण होना आवश्यक है। मुद्रा और विदेशी लेन-देन, बैंक और बीमा इन्हें राष्ट्रीय हितों की दृष्टि से अवश्य ही नियंत्रित कर देना होगा।

गाँवों की समस्या

"हालाँकि सारे हिन्दुस्तान में गरीबी फैली हुई है, पर ख़ासतौर पर यह समस्या गाँवों की है। इस की ख़ास वजह यह है कि ज़मीन पर जनसंख्या का दबाव बढ़ता जा रहा है और जीवन-निर्वाह के अन्य साधनों का अभाव है। ब्रिटिश आधिपत्य में हिन्दुस्तान को धीरे-धीरे अधिक ग्राम्य बना दिया गया है, दूसरे धन्धों और काम-काजों के कितने ही रास्ते बन्द कर दिये गये हैं और इस तरह जनसंख्या के एक बहुत बड़े हिस्से को उस ज़मीन पर निर्भर करने के लिए मजबूर कर दिया गया है जिसके लगातार छोटे-छोटे टुकड़े हुए जा रहे हैं और अब जिसका अधिक अंश आर्थिक दृष्टि से बेकार बन चुका है। ऐसी दशा में यह आवश्यक है कि भूमि की समस्या का सभी पहलुओं से निराकरण किया जाय। खेती को वैज्ञानिक ढंग पर उन्नत करना और सब तरह के उद्योग-धन्धों का शीघ्रतापूर्वक विकास करना आवश्यक है जिससे केवल धनोपार्जन ही न हो, बल्कि भूमि पर आश्रित जन-संख्या को भी खपाया जा सके—खासकर गाँवों के उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन मिले जो कि पूरे समय या आंशिक समय के लिए वांछित व्यवसाय के रूप में हो। यह आवश्यक है कि उद्योग-धन्धों की योजना और विकास में जहाँ समाज के लिए अधिक-से-अधिक धनोपार्जन का आदर्श हो इस बात का सदा ध्यान रखा जाय कि इससे और नयी बेकारी न बढ़ने पाये। योजनापूर्वक कामकाज की खोज हो और सभी समर्थ व्यक्तियों को करने के लिए काम मिले। भूमिहीन किसान-मज़दूरों को काम करने के अवसर दिये जाने चाहिए जिससे वह खेती या उद्योग-धन्धों में खप सकें।

भूमि-प्रथा में सुधार

"भूमि-प्रथा में सुधार के लिए, जो इस देश के लिए बहुत ज़रूरी है, किसान और शासन के बीच के माध्यमों को हटाना पड़ेगा। इसलिए इन बीच वालों (ज़मींदारों) के अधिकारों को उचित मूल्य देकर ले लेना होगा। जब व्यक्तिगत खेती और किसान के भूस्वामित्व का जारी रखना ठीक है तो उन्नत कृषि और सामाजिक मूल्य तथा प्रोत्साहन के लिए भारतीय परिस्थिति में उपयुक्त सामूहिक खेती की एक प्रणाली आवश्यक है। परन्तु ऐसा कोई भी परिवर्तन सम्बद्ध किसानों की स्वीकृति और प्रसन्नता से ही हो सकता है। इसके लिए वांछनीय है कि भारत के

भिन्न-भिन्न भागों में परीक्षण के रूप में शासन की सहायता से सामूहिक कृषिक्षेत्र बनाये जायँ। नमूना पेश करने के लिए राष्ट्रकी ओर से बड़े-बड़े कृषिक्षेत्र भी संगठित किये जायँ।

जमीन की उन्नति

"उद्योग-धन्धों और भूमि-सम्बन्धी उन्नति तथा विकास में ग्राम्य तथा नागरिक आर्थिक-स्थिति में उचित सम्बन्ध और सन्तुलन होना चाहिए। विगत समय में ग्रामों की आर्थिक स्थिति बिगड़ती गयी है और ग्रामों का परित्याग होने से शहर और कस्बे समृद्धिशाली होते गये हैं। इसे ठीक करना ही पड़ेगा और इस बात का प्रयत्न करना होगा कि जहाँ तक सम्भव हो नगर और गावों में रहनेवालों के रहन-सहन के ढंग एक से होजायँ जिससे सभी प्रान्तों की आर्थिक स्थिति समान हो सके। किन्हीं विशेष प्रान्तों में औद्योगीकरण केन्द्रित नहीं होजाना चाहिए और जहाँ तक होसके इसे निपुणतापूर्वक सर्वत्र प्रसारित कर दिया जाय।

"भूमि और उद्योग-धन्धों की उन्नति तथा जनता के स्वास्थ्य और कल्याण के लिए देश की बड़ी-बड़ी नदियों की महान् शक्ति का नियंत्रण और उचित प्रयोग आवश्यक है। आजकल यह शक्ति न केवल व्यर्थ जा रही है बल्कि बहुधा भूमि और उस पर रहनेवाले लोगों के नुकसान का कारण होती है। सिंचाई के काम को उन्नत बनाने के लिए तथा पानी के बँटवारे को निरन्तर और एक समान रखने के लिए विनाशकारी बाढ़ों को रोकने के लिए, मलेरिया को दूर करने और पानी की बिजली के विकास के लिए तथा जुदा-जुदा तरीकों से ग्रामीण जनता के रहन-सहन के स्तर को ऊँचा करने में सहायता पहुँचाने के लिए यह आवश्यक है कि नदी-कमीशनों का निर्माण किया जाय। इस प्रकार तथा अन्य उपायों से देश के शक्ति-स्रोतों का शीघ्र ही विकास करना है जिससे उद्योग-धन्धों तथा खेती की उन्नति के लिए ज़रूरी नींव खड़ी की जा सके।

सर्वसाधारण की शिक्षा

"सर्वसामान्य जनता की बौद्धिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और नैतिक दृष्टिकोणों से उन्नति करने के लिए उसकी शिक्षा का समुचित प्रबन्ध करना आवश्यक है जिससे आरम्भ होनेवाले कार्य और सेवाओं को नये क्षेत्र के लिए वह उपयुक्त सिद्ध हो सके। सार्वजनिक स्वास्थ्य-संस्थाओं का जो किसी भी राष्ट्र की उन्नति के लिए आवश्यक हैं, विस्तृत परिमाण में प्रबन्ध होने चाहिए और दूसरे मामलों की तरह इसमें भी ग्रामीण क्षेत्रों की आवश्यकताओं पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। इसके साथ-साथ प्रसूता और शिशुओं के लिए ख़ास सुविधाएँ होनी चाहिएं।

"इस तरह ऐसी स्थिति पैदा करदी जाय जिससे प्रत्येक व्यक्ति को राष्ट्रीय कार्यक्रम के हर क्षेत्र में उन्नति का बराबर अवसर प्राप्त हो तथा सबको ही सामाजिक संरक्षण मिले।

"विज्ञान, कार्य के अगणित क्षेत्रों और मानव जीवन तथा आकांक्षाओं को अधिक परिमाण में प्रभावित करता हुआ आगे बढ़ाता है और भविष्य में यह आज से भी अधिक प्रभावित करेगा। उद्योग, कृषि और संस्कृति-सम्बन्धी सब उन्नति तथा राष्ट्रीय आत्मरक्षा का प्रश्न सब इसी पर आश्रित हैं। इसीलिए वैज्ञानिक अनुसन्धान राष्ट्र का मौलिक कर्त्तव्य हो जाता है। इसका संगठन और प्रचार सुविस्तृत परिमाण पर किया जाना चाहिए।

मजदूरों का संरक्षण

"राष्ट्रीय शासन, उद्योग-धन्धों में लगे मज़दूरों के हितों की रक्षा करेगा और उन्हें एक निश्चित मज़दूरी, रहन-सहन का अच्छा ढंग, रहने के लिए उपयुक्त घर, काम के घण्टों की नियमित और नियंत्रित संख्या आदि, देश की आर्थिक स्थिति का ध्यान रखते हुए जहाँ तक सम्भव

होगा अन्तर्राष्ट्रीय आदर्शों के अनुसार कर पायेगा और मालिक तथा मजदूरों के बीच पैदा होनेवाले झगड़े निबटाने के लिए उचित साधन काम में लायेगा। इसके अतिरिक्त बुढ़ापे, बीमारी और बेकारी के आर्थिक परिणामों के विरुद्ध सुरक्षा के प्रबन्ध जुटायेगा। अपने हितों की रक्षा के लिए संघ स्थापित करने का मजदूरों को अधिकार होगा।

"गुज़रे ज़माने में खेती पर आश्रित ग्रामीण जनता कर्ज के बोझों से पिसती रही है। यद्यपि कई कारणों से गत वर्षों में इसमें कुछ कमी हुई है, किन्तु कर्जों का बोझ अभी जारी है, इसलिए इसे दूर करना है। आसान शर्तों पर उधार दिलाने की सुविधाएँ उन्हें सहयोग-संगठनों से दिलानी आवश्यक है। सहयोगी संगठन तो अन्य कामों के लिए भी ग्रामों और नगरों में बन जाने चाहिए, खास कर उद्योग-धन्धों में तो सहयोग-संगठनों को विशेष प्रोत्साहन मिलने चाहिए। जनतंत्रात्मक आदर्शों पर छोटे परिमाण के उद्योग-धन्धों के विकास के लिए यही विशिष्ट और उपयुक्त साधन है।

"भारत की इन आवश्यक गुत्थियों को एक संयोजित और संयुक्त प्रयत्न से ही सुलझाया जा सकता है जो राजनीतिक, आर्थिक, कृषि तथा उद्योग-सम्बन्धी तथा सामाजिक विषयों में एक साथ व्यवहार में लाया जाय। आज के समय की कुछ महान् आवश्यकताएँ भी हैं। सरकार की असीम अयोग्यता और कुप्रबन्ध से भारत के असंख्य लोगों को अगणित यातनाएँ भोगनी पड़ी हैं। लाखों व्यक्तियों ने भूख से तड़प-तड़प कर प्राण त्यागे हैं और अब भी वस्त्र और खाद्य की कमी चारों ओर स्पष्ट है। सरकारी नौकरियों, जीवन के लिये आवश्यक वस्तुओं की बाँट और नियन्त्रण के विभागों में घूसखोरी फैली हुई है जो असह्य हो गई है। इस समस्या का समाधान तुरन्त ही होना चाहिये।

अन्तर्राष्ट्रीय मामले

"अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में कांग्रेस स्वतन्त्र राष्ट्रों के विश्व-व्यापी संघ-शासन का समर्थन करती है। जब तक ऐसा संघ न बन सके भारत को सभी देशों से मैत्री स्थापित करनी है, विशेष कर अपने पड़ोसियों से। सुदूर पूर्व में, दक्षिण पूर्वी एशिया तथा पश्चिमी एशिया में हजारों वर्षों तक भारत का व्यापारिक अथवा सांस्कृतिक सम्बन्ध बना रहा है और यह अवश्यम्भावी है कि स्वतन्त्र हो जाने के पश्चात् भारत इन पुरातन सम्बन्धों को पुनर्जीवित करे तथा इनका विकास करे। रक्षा के प्रश्न और भविष्य की व्यापारिक प्रवृत्ति के कारणों से भी इन क्षेत्रों से घने सम्बन्ध स्थापित हो जाने सम्भव हैं। वह भारत जिसने अपने स्वतंत्रता के संग्राम में अहिंसक साधन बर्ते हैं, सदा ही विश्व-शान्ति और सहयोग को अपना समर्थन दिया करेगा। वह सभी पराधीन देशों की स्वाधीनता का पोषक रहेगा क्योंकि केवल स्वतन्त्रता की इसी नींव पर और साम्राज्यवाद के हटाए जाने पर ही संसार में शान्ति की स्थापना सम्भव है।

"८ अगस्त १९४२ को ऑल इण्डिया कांग्रेस कमेटी ने एक प्रस्ताव पास किया था जो अब भारत के इतिहास में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका है। उसकी मांगों और चुनौती का आज कांग्रेस समर्थन करती है। उसी प्रस्ताव के मूलाधार पर और उसी के युद्ध-नाद से कांग्रेस आज चुनावों का मुकाबिला कर रही है।

"इसलिए कांग्रेस देश भर के मतदाताओं से प्रार्थना करती है कि वह सब उपायों से कांग्रेसी उम्मीदवार की आगामी निर्वाचनों में सहायता करें और इस नाजुक समय में कांग्रेस का साथ दें जो कि भविष्य की सम्भावनाओं से सारगर्भित है। इन निर्वाचनों में छोटे-छोटे प्रश्नों की

कोई गणना नहीं है, न व्यक्तिगत या संकीर्ण जातीय संबंध के प्रश्न ही कोई कुछ अर्थ रखते हैं; केवल एक ही बात परमावश्यक है और वह है हमारी मातृभूमि की स्वतन्त्रता और स्वाधीनता जिससे शेष सब स्वतंत्रताएँ हमारी जनता को प्राप्त हो जायेंगी। भारत के लोगों ने कितनी ही बार स्वतन्त्रता की शपथ ली है। वह शपथ निभानी अभी शेष है और हमारा वह प्रिय आदर्श, जिसके लिए कि शपथ ली गई है और जिसकी पुकार को हमने कितनी ही बार सुना है, हमें अब भी बुला रहा है। समय आ रहा है जब कि हम उस शपथ को पूर्ण रूप से निभा सकेंगे। यह निर्वाचन तो हमारे लिए एक छोटी-सी परीक्षा है जो आनेवाले महत्तर संघर्षों की तैयारी मात्र है। वह सब लोग जो भारत की स्वतन्त्रता और स्वाधीनता की अभिलाषा और चिन्ता करते हैं इस परीक्षा का शक्ति और दृढ़ता से सामना करें तथा उस स्वतंत्र भारत की ओर बढ़ें जिसका सब स्वप्न देखते हैं।"

परिशिष्ट ३*

दक्षिण अफ्रीका को समस्या

दक्षिण अफ्रीका की समस्या १९०८ से ही घिसटती आ रही थी, और अब वह 'पेगिंग ऐक्ट' कहे जानेवाले कानून से उत्पन्न परिवर्तनों की तीक्ष्णता की मंजिल से गुज़र चुकी थी। यह ऐक्ट और उसके १९४३-४६ तक के परिणाम ऐसे हुए हैं जिन्होंने जनता के ध्यान को अपनी ओर आकर्षित कर लिया था और भीषण सार्वजनिक चिन्ता का विषय बन गया। नीचे लिखे महत्त्वपूर्ण पत्रकों से दक्षिण अफ्रीका के आन्दोलन का अधिकृत वर्णन प्राप्त हो सकेगा।

१८९३ ई० के पहले नेटाल में हिन्दुस्तानियों ने व्यवस्थापक और म्युनिसिपल दोनों ही तरह के मताधिकार युरोपियनों के समान ही प्राप्त कर रखे थे। पहले-पहल १८९३ ई० में उनके व्यवस्थापक मताधिकार छीने गये; पर उन लोगों को अपवाद के रूपमें छोड़ दिया गया जिनके नाम मतदाताओं की सूची में आ चुके थे। किन्तु उस ज़माने में हिन्दुस्तानियों ने इसका जो विरोध किया उसकी सुनवायी हुई और इस (मताधिकार-विधान) पर लन्दन का भी अनुकूल मत मिल गया।

१८९६ ई० में हिन्दुस्तानियों को वहाँ पार्लामेण्टरी मताधिकार से प्रकटतया इस आधार पर वंचित कर दिया गया कि वे (हिन्दुस्तानी) तो अपनी मातृभूमि—भारत में ही इस अधिकार से वंचित हैं। १९२४ ई० में वे म्युनिसिपल अधिकारों से वंचित कर दिये गये जिसका परिणाम यह हुआ कि उनका न तो केन्द्रीय शासन-व्यवस्था पर कोई प्रभाव रह गया, न प्रान्तीय या स्थानीय पर ही। डरबन या अन्य स्थानों में स्थित हिन्दुस्तानी बस्तियों की स्थानीय अधिकारी घोर उपेक्षा करने लगे।

हिन्दुस्तानियों के लिए यहाँ स्कूल अलग खोले गये, और कहीं-कहीं हिन्दुस्तानियों और अफ्रीकनों के लिए अलग अस्पताल भी खोले गये। नेटाल विश्वविद्यालय के कालेज में कोई भी हिन्दुस्तानी दाखिल नहीं हो सकता।

रेलगाड़ियों में सामान्यतः हिन्दुस्तानी सिर्फ उन्हीं ख़ास डब्बों में गैर-युरोपियनों के साथ बैठ सकते हैं जो उनके लिए 'रिज़र्व' होते हैं और सरकारी दफ़्तरों—डाक व तारघरों तथा

---

* परिशिष्ट २ केवल कानूनी मामलों से सम्बद्ध होने के कारण छोड़ दिया गया है। —प्रकाशक

रेलवे टिकटघरों में गैर-युरोपियनों के लिए काउण्टर—कठघरे तक अलग बने हुए हैं। यह भेदभाव और तो और न्यायालयों में भी बर्ता जाता है ।

सरकारी और म्युनिसिपल नौकरियों से हिन्दुस्तानियों को बिल्कुल ही वंचित कर दिया गया है—अपवादस्वरूप उन्हें कहीं-कहीं नीचे की नौकरियों—मोटे कामों पर लगा दिया गया है। हाँ, हिन्दुस्तानियों के लिए अलग खोले गये स्कूलों में अध्यापकों और कुछ कचेहरियों में दुभाषियों के पदों पर भी हिन्दुस्तानियों को रखा गया है ।

अभी हाल तक नेटाल में हिन्दुस्तानियों को जो सुविधाएँ प्राप्त थीं उनमें शहरों और ग्रामों में भूसम्पत्ति खरीदना और उनपर अधिकार करना भी था; परन्तु १९४३ 'पेगिंग ऐक्ट' द्वारा इस सुविधा के उपयोग पर भी कठोर नियंत्रण लगा दिया गया। फील्ड-मार्शल स्मट्स ने अब पार्लीमेण्ट में एक घोषणा की है कि वे नेटाल और ट्रान्सवाल के हिन्दुस्तानियों पर असर डालनेवाले नये कानून पेश करेंगे।

(क) नेटाल में 'पेगिंग ऐक्ट' की अवधि मार्च १९४६ में समाप्त हो जाने पर नया कानून लागू होगा जिसके द्वारा हिन्दुस्तानी वहाँ भू-सम्पत्ति खरीदने में असमर्थ होंगे; केवल कुछ निश्चित हल्कों में वह ज़मीन खरीद सकेंगे ।

(ख) जब कि 'पेगिंग ऐक्ट' केवल डरबन में ही लागू होता है और भूमिका आदान-प्रदान केवल हिन्दुस्तानियों और युरोपियनों के बीच हो सकता है; पर नया कानून तो सारे नेटाल प्रान्त के शहरों और गाँवों पर लागू होता है, और इस तरह भूमि का आदान-प्रदान न केवल युरोपियनों और हिन्दुस्तानियों के बीच बन्द करता है बल्कि किसी भी जातिवाले से हिन्दुस्तानी ज़मीन नहीं खरीद सकते जिसमें युरोपियन, रंगीन जातिवाले बोन्टू, चीनी, मलायी आदि सभी सम्मिलित हैं।

(ग) नये विधान के अनुसार ट्रान्सवाल नगर और गाँवों में हिन्दुस्तानियों के रहने-सहने और रोज़गार-धन्धा करने के लिए अलग ही क्षेत्र नियत कर दिये गये हैं जिसके द्वारा हिन्दुस्तानियों की व्यापारिक क्रियाशीलता को बिल्कुल नष्ट न भी किया गया तो शिथिल और सीमित ज़रूर कर दिया जायगा । इस प्रकार व्यापारिक क्षेत्रों से उन्हें दूर हटाकर और अन्य ऐसी जातिवालों की जनता के—जिन के साथ उनका अबतक व्यापारिक सम्बन्ध रहा है—संस्पर्श से विच्छिन्न करके हिन्दुस्तानी व्यापारी को नष्ट कर दिया जायगा ।

इसके अतिरिक्त ट्रान्सवाल में व्यापार और लाइसेन्स के कानून हिन्दुस्तानियों के विरुद्ध बड़ी कठोरता से काम में लाये जाते हैं—यहाँतक कि लाइसेन्स बोर्ड बिना कारण बताये किसी भी हिन्दुस्तानी को लाइसेन्स देना नामंजूर कर सकता है। एक व्यक्ति से दूसरे के नाम लाइसेन्स बदलने के बारे में भी यही नियम लागू होता है।

नेटाल में भी लाइसेन्स के कानून हिन्दुस्तानियों के ख़िलाफ़ बड़ी कठोरता से काम में लाये जाते हैं, और उसका आधार जातीय भेदभाव को बनाया गया है ।

(घ) हिन्दुस्तानियों को नेटाल और ट्रान्सवाल के यूनियन लेजिस्लेचर में जो प्रतिनिधित्व प्राप्त होगा वह भी उसी प्रकार के जातीय भेदभाव के अन्तर्गत मिलेगा जो दक्षिण अफ्रीका के बोन्टू लोगों और मूल-निवासियों पर लागू होगा। हिन्दुस्तानी समाज का प्रतिनिधित्व उनके द्वारा निर्वाचित तीन युरोपियन सदस्य करेंगे। पर १५० सदस्यों की व्यवस्थापिक सभा में तीन सदस्यों की बिसात ही क्या होगी ।

इस प्रस्तावित बिल के कानून के रूप में परिवर्तित होजाने पर केपटाउन के १९२७ ई० के समझौते के विरुद्ध और फलतः दक्षिण अफ्रीका की यूनियन सरकार और भारत-सरकार के बीच विश्वासघात हो जायगा और समय-समय पर यूनियन सरकार-द्वारा दिये गये वचन और आश्वासन मिट्टी में मिल जायँगे।

सूचना—इस परिशिष्ट-द्वारा हम नेटाल और ट्रान्सवाल में हिन्दुस्तानियों के विरुद्ध की जानेवाली कानूनी असमताओं, शिकायतों और कठिनाइयों का केवल अल्प परिचय दे सके हैं। जीवन के अन्य क्षेत्रों में युरोपियनों का हिन्दुस्तानियों के प्रति दुर्व्यवहार कष्टप्रद होते हुए भी यहां उनका वर्णन छोड़ दिया गया है और केवल पत्र-व्यवहार द्वारा विषय प्रकट किया गया है।

वाइसराय को पत्र

श्रीमान् फील्ड-मार्शल महामान्य वाइकाउण्ट वेवल, वाइसराय और गवर्नर-जनरल, हिन्दुस्तान,—

नई दिल्ली।

महोदय,

हम नीचे हस्ताक्षर करनेवाले व्यक्ति—सर्वश्री सोराबजी रुस्तमजी, सूबाराम नायडू, आज़मशाह अहमद मिर्ज़ा और अहमद सादिक एम० काज़ी--जो दक्षिण अफ्रीका की इंडियन कांग्रेस के प्रतिनिधि हैं, और उसकी केपटाउन में हुई ८ वीं से १३ वीं फरवरी १९४६ ई० की सातवीं कान्फ्रेंस-द्वारा नियुक्त हुए हैं, और नीचे लिखे दक्षिण अफ्रीकन हिन्दुस्तानी, जो इस समय हिन्दुस्तान में हैं, परिषद् के प्रस्ताव के आदेशानुसार आपकी सेवा में उस प्रस्तावित कानून पर यह वक्तव्य प्रेषित करते हैं जिसकी घोषणा फील्ड-मार्शल स्मट्स ने यूनियन पार्लीमेंट में २७ जनवरी १९४६ में की है और जिसमें उन्होंने अपना यह इरादा प्रकट किया है कि यूनियन पार्लीमेंट में इस बैठक में नेटाल और ट्रान्सवाल के हिन्दुस्तानियों के विरुद्ध पड़नेवाला कानून पेश किया जायगा।

२—हम श्रीमान् की इस कृपा के लिए कृतज्ञ हैं कि पहले की विभिन्न व्यस्तताओं के होते हुए भी इतनी शीघ्रतापूर्वक श्रीमान् ने हमको मिलने का अवसर दिया।

३—दक्षिण अफ्रीका की सरकार का वर्तमान इरादा पूरा किये जाने पर हमारी प्रतिष्ठा बहुत घट जायगी जिसके विरुद्ध हम १८९३ ई० से ही निश्चित लड़ाई लड़ते आ रहे हैं। १८९३ ई०में नेटाल में सारे हिन्दुस्तानी समाज को मताधिकार से वंचित कर दिया जायगा। इसको हमने न केवल नेटाल-प्रवासी हिन्दुस्तानियों के लिए, बल्कि मातृभूमि-भारत के प्रति अप्रतिष्ठाजनक समझा। उन दिनों दक्षिण अफ्रीका का यूनियन-संघ नहीं बना था; केप में हिन्दुस्तानियों का कोई असली सवाल नहीं था। आरेंज फ्री स्टेट में जो थोड़े-बहुत हिन्दुस्तानी व्यापारी थे उन्हें निकाला जा चुका था और इसके लिए उसने यह गर्व प्रकट किया था कि उसने एशियाइयों के विरुद्ध पूरी सख्त कार्रवाई करली है। ट्रान्सवाल में छिट-फुट हिन्दुस्तानी व्यापारी थे जिनमें फेरीवाले आदि भी सम्मिलित थे। 'लोकेशन' या बस्ती की वह प्रणाली जो बाद में 'पृथक्करण' या अलग बसावट के नाम से मशहूर हुई, वहाँ काफी बढ़ी। नेटाल के गोरों ने स्वेच्छापूर्वक और अपने स्वार्थवश बहुत-से हिन्दुस्तानियों को "शर्तबन्दी कुली प्रथा" के अनुसार अपने गन्ने के खेतों और चाय बागानों में तथा अन्य कारखानों में काम करने के लिए अपने यहाँ बुलाया। इन श्रमिकों के पीछे कितने ही हिन्दुस्तानी व्यापारी तथा अन्य पेशेवाले वहाँ पहुँचे जिससे

आज वहाँ पँचमेल हिन्दुस्तानी आबादी हो गयी।

४—यूनियन या संघ की स्थापना का अर्थ कुछ लोग यह समझ सकते थे कि शायद इसके द्वारा दक्षिण अफ्रीका में बसी सभी जातियों के लिए संघ बन जायगा जिसमें अफ्रीकन या बोन्टू; युरोपियन और एशियावासी (मुख्यतः हिन्दुस्तानी) सभी सम्मिलित होंगे। इस प्रकार का संघ वास्तव में एक आदर्श परम्परा की चीज बन जाती। पर न तो ऐसा होना था, न हुआ। इसके विपरीत यह यूनियन या संघ अफ्रीका और एशिया के निवासियों का विरोधी संघ बन गया। यूनियन या संघ के विकास का प्रत्येक वर्ष उसको इस प्रकार की प्रगति प्रदर्शित करने लगा और प्रवासी हिन्दुस्तानियों और उनके वंशजों-द्वारा उसका प्रबल विरोध भी बढ़ने लगा। जैसा कि इसके साथ नत्थी परिशिष्ट पत्र 'क' से स्पष्ट है।

५—हम श्रीमान् से केवल इसी दृष्टिबिन्दु से इस पर विचार करने को कहते हैं। जिस कानून का पूर्वाभास फील्ड-मार्शल स्मट्स ने दिया है, और जिसके फलस्वरूप दक्षिण अफ्रीका से प्रतिनिधि-मण्डल शीघ्रतापूर्वक यहाँ पहुँचा है, वह शायद एशियाइयों को स्थायी निकृष्टता कायम रखने का सबसे बड़ा प्रयत्न है। इस खण्डनकारी शस्त्र ने पूर्ण रूप से असमानता और हीनता का प्रसार कर दिया है। इस प्रकार पार्थक्य के अलग-अलग क्षेत्र बन गये हैं जिनमें से एक को गोरों ने अपने लिए इस कारण सुरक्षित कर लिया है, जिससे कानून के द्वारा बाध्य करके अन्य जातियों में भी पार्थक्य को विस्तृत किया जाय। भगवान् ने मनुष्य को 'एक विशाल मानव-परिवार' के रूप में बनाया है। दक्षिण अफ्रीका की गोरी जाति इस (परिवार) को रंग-भेद के अनुसार तीन हिस्सों में बाँट देगी।

६—जिस नये कानून को बनाने की धमकी दी गयी है वह तो खराब है ही, पर भावी मताधिकार-कानून उससे भी खराब है। यह मताधिकार का व्यंग है, और हमारा जो नीचा दर्जा बनाया जानेवाला है, उसका तीक्ष्ण स्मारक है; और वह (दर्जा) इतना नीचा बननेवाला है कि हम अपना प्रतिनिधि तक चुनने के लिए उपयुक्त नहीं समझे जाते।

७—हम सुदूर-दक्षिण अफ्रीका से अपने प्रिय व्यक्तित्व और सम्पत्ति की रक्षा माँगने के लिए नहीं आये हैं, बल्कि हम आये हैं श्रीमान् से और मातृभूमि की जनता से यह कहने के लिए कि समानता का दर्जा प्राप्त करने के लिए हम जो लड़ाई लड़ रहे हैं उसकी आप कद्र करें, क्योंकि यह संघर्ष हमारी ही तरह हमारी मातृभूमि के लोगों का भी है; और हम आपसे तथा उनसे उतनी सहायता चाहते हैं जितनी आप और वे हमें दे सकते हों। दक्षिण अफ्रीका में जो कुछ करने का प्रयत्न किया जा रहा है वह ब्रिटेन और स्वयं फील्ड-मार्शल (स्मट्स) की घोषणाओं के विरुद्ध है।

८—हमें यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई है कि निर्वाचित भारतीय प्रतिनिधियों के हक में ब्रिटिश शक्ति इस देश को छोड़नेवाली है। ऐसी अवस्था में क्या हम श्रीमान् से पूछ सकते हैं कि क्या यह आपका दुहरा और विशेष कर्त्तव्य नहीं है कि समानता के लिए आप अपना रुख स्पष्ट करें और उसे अनिश्चित रूप में न व्यक्त करें।

९—यूनियन सरकार ने नया कानून बनाने की घोषणा करने का इरादा प्रकट करके हिन्दुस्तानी समाज को इतना डरा दिया कि दक्षिण अफ्रीका की इंडियन कांग्रेस ने अपनी उपर्युक्त कान्फरेन्स में फील्ड-मार्शल स्मट्स के पास अपना शिष्टमण्डल भेजने का निश्चय किया। इस शिष्टमण्डल ने उनसे अनुरोध किया कि वे उस व्यवस्था को पेश न करें जो हिन्दुस्तानियों के विरुद्ध पड़ने-

वाली है, और यूनियन सरकार तथा भारत-सरकार की गोलमेज परिषद् बुलाकर उस सिफारिश की पूर्ति करें जिसकी सिफारिश नेटाल इंडियन जुडीशियल कमीशन ने मार्च १६४५ में की थी। फील्ड-मार्शल ने उस अनुरोध को अस्वीकार कर दिया था जिसके बाद कान्फ्रेन्स ने बहुत सोच-विचार के बाद निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया:—

केपटाउन,
१२ फरवरी, १६४६

"दक्षिण अफ्रीका की इंडियन कांग्रेस की यह कान्फरेन्स, उस डेपुटेशन की रिपोर्ट सुनने के बाद, जो प्राइम मिनिस्टर (स्मट्स) से मिला था, इस बात पर अपनी गम्भीर निराशा प्रकट करती है कि उन्हों (प्राइम मिनिस्टर) ने प्रस्तावित व्यवस्था पेश करने और भारत तथा दक्षिण अफ्रीका के बीच गोल मेज परिषद् बुलाने से इन्कार कर दिया है।

यह कान्फरेन्स इस अस्वीकृति को मानव-समस्याओं का, वार्तालाप और पारस्परिक वाद-विवाद के द्वारा निर्णय करने का स्पष्ट विरोध मानती है और इस बात का द्योतक मानती है कि इस समाज पर अत्याचार करनेवाला कानून बनाने की साँठ-गाँठ करली गयी है, और राजनीतिक सुविधा की वेदी पर इस समाज का भाग्य-निर्णय होनेवाला है और इस देश के गोरे प्रतिक्रिया-वादियों के कठोरतम अंश को सन्तुष्ट करने के लिए उसकी बलि दी जानेवाली है। यह व्यवस्था भूसम्पत्ति और साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व से सम्बन्ध रखती है और इसे प्राइम मिनिस्टर पेश करने-वाले हैं; पर यह भारत राष्ट्र के प्रति अनादर और उसके गौरव और प्रतिष्ठा के विपरीत अतः बिल-कुल ही अस्वीकार्य है।

दक्षिण अफ्रीकन इंडियन कांग्रेस की यह कान्फरेन्स प्राइम मिनिस्टर की अस्वीकृति का खयाल रखते हुए यह निश्चय करती है कि इस देश के सभी हिन्दुस्तानी लोगों के साधनों का संग-ठन कर सभी ऐसे उपायों को काम में लायें जिससे "पेगिंग एक्ट" की अवधि निकल जाय, और यूनियन सरकार की प्रस्तावित व्यवस्था का विरोध निम्नलिखित ढंग से किया जाय:—

१—हिन्दुस्तान को शिष्ट-मण्डल भेज कर।

(क) भारत-सरकार से अनुरोध किया जाय कि भारत और दक्षिण अफ्रीका के बीच एक गोलमेज परिषद् बुलाने की योजना की जाय।

(ख) और यदि यह न होसके तो भारत-सरकार से अनुरोध किया जाय कि वह—

१—दक्षिण अफ्रीका से अपने हाई कमिश्नर का दफ्तर हटा ले।

२—दक्षिण अफ्रीका के विरुद्ध आर्थिक कार्रवाई करे।

(ग) भारत में व्यापक प्रचार करके वहाँ की कोटि-कोटि जनता का पूर्णतम समर्थन प्राप्त किया जाय।

(घ) हिन्दुस्तानी नेताओं को दक्षिण अफ्रीका आने के लिए आमंत्रित किया जाय।

२—अमेरिका, ब्रिटेन और संसार के अन्य भागों को शिष्ट-मण्डल भेजा जाय।

३—दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानियों को मेलयुक्त और लम्बे प्रतिरोध के लिये तैयार करने के लिए तत्काल तैयारी की जाय, जिसका विवरण तैयार करने और अधीनस्थ संस्थाओंको कार्रवाई और आदेशानुवर्तन करने को प्रस्तुत करने के लिए यह कान्फरेन्स अपनी कार्यकारिणी समिति को आदेश करती है।

१०—ऐसी अवस्थाओं में हम श्रीमान् से निवेदन करते हैं कि श्रीमान् अपना प्रभाव डालकर

दोनों सरकारों के बीच एक गोलमेज परिषद् कराने की व्यवस्था करें जिससे नेटाल इंडियन जुडीशियल कमीशन के शब्दों में 'दक्षिण अफ्रीका में हिन्दुस्तानियों पर असर डालने वाले सभी मामलों' का निर्णय हो सके। किन्तु यदि इस दिशा में श्रीमान् के प्रयत्न दुर्भाग्यवश असफल हो जायँ तो हम अपने उपर्युक्त प्रस्ताव के अनुसार निवेदन करते हैं कि दक्षिण अफ्रीका की यूनियन से भारत-सरकार अपने हाई कमिश्नर का दफ्तर हटाले और यूनियन सरकार के विरुद्ध आर्थिक और राजनीतिक कार्रवाई अमल में लाये। हम इस बात से अनजान नहीं हैं कि इससे दक्षिण अफ्रीका का कोई बहुत बड़ा भौतिक नुकसान नहीं होगा। हम यह जानते हैं कि बदले की कार्यवाही से हमें कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। परन्तु यह कार्रवाई अमल में लाने पर उसका जो नैतिक मूल्य होगा उसके मुकाबले में इस नुकसान को हम कुछ भी न समझेंगे।

आपके आज्ञाकारी सेवक—

नई दिल्ली,
१२ मार्च १९४६

सोराबजी रुस्तमजी (लीडर)
एस० आर० नायडू
ए० एस० एम० काजी
ए० ए० मिर्जा"

साथ में नत्थी पत्रक

प्रस्ताव नं १

"दक्षिण अफ्रीकन इंडियन कांग्रेस की कान्फरेन्स की यह बैठक, प्राइम मिनिस्टर की उस प्रस्तावित व्यवस्था-सम्बन्धी घोषणा से गम्भीर रूप में क्षुब्ध हुई है, जिसमें ट्रान्सवाल और नेटाल प्रान्तों के भूसम्पत्ति के अधिकार सम्मिलित हैं और जो यूनियन पार्लामेण्ट की इसी बैठक में पेश होनेवाली है, और जिसके द्वारा हिन्दुस्तानी समाज के नेटाल और ट्रान्सवाल में भू-सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकारों और आर्थिक एवं सामाजिक विकास को कठोर रूप में सीमित करने की योजना की गयी है।

"प्राइम मिनिस्टर ने हिन्दुस्तानी सवाल का निबटारा करने के लिए जो प्रस्ताव तैयार किये हैं वे हिन्दुस्तानी समाज के लिए बिल्कुल अस्वीकार्य हैं, क्योंकि उनके द्वारा दक्षिण अफ्रीका के सम्पूर्ण अल्प-संख्यक समाज के मानवीय अधिकारों और मानवीय आज़ादी पर अभूत-पूर्व आक्रमण किया गया है, और वे उन उच्च सिद्धान्तों के विरुद्ध हैं जो अटलाण्टिक और संयुक्त राष्ट्रों के उन समझौतों के अन्तर्गत हैं जिनके प्रति उनके रचयिताओं का असन्दिग्ध विश्वास है कि वह संसार की भावी शान्ति के लिए अनिवार्य हैं।

"यह कान्फरेन्स शिष्टमण्डल को अधिकार देता है कि वह प्राइम मिनिस्टर से अनुरोध करे कि वे हिन्दुस्तानी समाज की विरोधी व्यवस्था पेश न करें, और सादर निवेदन करे कि यूनियन सरकार शीघ्र ही भारत-सरकार को आमंत्रित करे कि वह एक प्रतिनिधि-मण्डल यूनियन सरकार और भारत-सरकार में गोलमेज़ परिषद् करने के लिए यूनियन सरकार के प्रतिनिधियों से बातचीत चलाने को भेजे जिससे उन सभी मामलों के बारे में किसी निर्णय पर पहुँचा जा सके जिनका दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानियों से सम्बन्ध है। इस प्रकार नेटाल इण्डियन जुडीशियल कमीशन की एकमात्र सिफारिश के अनुसार—जिसे प्राइम मिनिस्टर ने इतना महत्त्व प्रदान किया है—यह कार्य सम्पन्न हो। और इसके अतिरिक्त इस प्रकार की गोलमेज़ परिषद् उन परिषदों का सिलसिला होगी जो यूनियन और भारत की सरकारों के बीच हो चुकी है।

दक्षिण अफ्रीकन इण्डियन कांग्रेस कान्फरेन्स के उस शिष्टमण्डल की रिपोर्ट जो ११ फरवरी १९४६ को महामाननीय जनरल जे० सी० स्मट्स से मिला था—

"श्रीमान् सभापति और कांग्रेस के उपस्थित सदस्यगण

आपका शिष्टमण्डल प्राइम मिनिस्टर से आज दोपहर बाद ३ बजे मिला। बातचीत १ घण्टा २० मिनट तक हुई।

२—आपके नेता श्री काजी ने वह प्रस्ताव प्राइम मिनिस्टर की सेवा में उपस्थित किया जो गत रात पास हुआ था और ट्रान्सवाल लैण्ड ऐण्ड ट्रेडिंग ऐक्ट (१९३९) और डरबन पर लागू पेगिंग ऐक्ट (१९४३) के पास होने की कारण-भूत घटनाओं का हवाला देते हुए इस बात पर ज़ोर दिया कि एक गोलमेज़ परिषद् की जाय। उन्होंने यह भी निवेदन किया कि इस ऐक्ट का आशय ट्रान्सवाल के व्यवस्थापक प्रस्ताव और ब्रूम कमीशन की मीमांसा के विरुद्ध है और पेगिंग ऐक्ट का डरबन में जारी रहना केपटाउन-समझौते का भंग करना है, और यह कि हिन्दुस्तानी समाज इसे वापस लेने की मांग करता है।

३—श्री काजी ने प्रधान मंत्री से यह भी निवेदन किया कि उन्होंने अपने ३० नवम्बर १९४४ के पत्रक में यह विघोषित करते हुए कि प्रिटोरिया का समझौता अब मृत हो चुका है, कहा था—'प्रिटोरिया-समझौता अपने उद्देश्य में सफल नहीं हुआ अतः यह आवश्यक हो गया कि समझौते के लिए दूसरे रास्ते खोजे जायँ'। यह रास्ता नेटाल इंडियन जुडीशियल कमीशन का दिखाया हुआ है, और अब चूंकि नेटाल इंडियन जुडीशियल कमीशन ने एकमात्र यही सिफारिश की है कि इस समस्या का हल इंडियन और यूनियन सरकारों के बीच वार्तालाप होने पर ही निकल सकता है, अतः इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यूनियन-सरकार भारत-सरकार को आमंत्रित करे कि वह अपना शिष्टमण्डल इस देश को भेजे।

४—इसके अतिरिक्त प्राइम मिनिस्टर से यह भी निवेदन किया गया कि व्यवस्थापक प्रस्ताव ब्रूम्स कमीशन की सिफारिशों से संघर्ष करते हैं, और वह स्वयं प्राइम मिनिस्टर के ३० मार्च १९४५ को एसेम्बली-भवन में दिये गये उस वक्तव्य के विरुद्ध हैं जो उन्होंने सेन-फ्रांसिस्को के लिए रवाना होते समय कहा था कि (समस्या का) हल स्वेच्छा-पूर्वक निकाला जा सकता है; बाध्यता-पूर्वक नहीं। ऐसी अवस्था में ऐसी व्यवस्था को अमल में लाना जिससे हिन्दुस्तानियों के लिए (पृथक्) क्षेत्र बनें, ज़बर्दस्ती या बाध्य करके पृथक् करने के समान होगा, और श्री काजी ने प्राइम मिनिस्टर से कहा कि वे अपनी व्यवस्था-सम्बन्धी कार्रवाई से बाज़ आयें और एक गोलमेज़ परिषद् बुलायें।

५—श्री काजी ने जनरल स्मट्स से अपील की कि चूंकि वह (स्मट्स) संयुक्त राष्ट्रसंघ के समझौते की भूमिका के स्रष्टा हैं इसलिए उस समझौते के सिद्धान्तों को अपने ही देश में लागू करें।

६—केपटाउन-समझौता एक द्विपक्षीय समझौता था और यह कि वर्तमान प्रस्तावों का अभिप्राय यह है कि समझौते के एक पार्श्व को तोड़ दिया जाय, इसीलिए गोलमेज़ परिषद् बुलाने की ज़रूरत है।

७—श्री काजी ने कहा कि हिन्दुस्तानियों ने पहले ही अपनी आर्थिक क्रियाशीलताएँ बड़ी संख्या में केवल नेटाल प्रान्त में सीमित कर दी हैं, और यह कि उस प्रान्त में और भी सीमित क्षेत्र का निर्माण करने से उन्हें नेटाल के किसी भी भाग में जायदाद खरीदने और अपने अधिकार में करने की उन सुविधाओं से भी वंचित कर दिया जायगा जो इस समय उपलब्ध हैं। इससे

समस्या और भी जटिल हो जायगी।

८—श्री काजी ने और भी कहा कि १९२७ से हिन्दुस्तानी समाज ने केपटाउन-समझौते का पालन अपनी ओर से पूर्णतः किया है, और यह समाज आत्मावलम्बन के द्वारा जीवन के पाश्चात्य मापदंड की ओर अग्रसर हुआ है और वह अपने आर्थिक मापदंड को इतना बढ़ा रहा है कि नेटाल के युरोपियन, जो पहले हिन्दुस्तानी जीवन के निम्न मापदंड को एक खतरा कहकर उसकी शिकायत करते थे, अब यह कहने लगे हैं कि अब हिन्दुस्तानी अपने जीवन का मापदंड उन्नत करके उनके लिए खतरा बनते जा रहे हैं, और हिन्दुस्तानी लोग इसी बिना पर पाश्चात्य मापदंड की आवश्यकताओं के अनुरूप बनने के लिए ज़मीन और मकान की ज़रूरत महसूस कर रहे हैं। इस तरह युरोपियन दोनों ही पहलुओं से अपनी बात का औचित्य सिद्ध करना चाहते हैं। नेटाल के युरोपियन इस तरह अपनी ही बात काट रहे हैं।

९—श्री काजी के बाद वकील क्रिस्टोफर ने प्राइम मिनिस्टर से बड़ी ही मार्मिक और हार्दिक अपील करते हुए कहा कि वे (स्मट्स) स्वतंत्रता-सम्बन्धी विश्व-समझौते के जन्मदाता के रूप में ऐसा कानून बनाने का प्रस्ताव न रखें जो हिन्दुस्तानी समाज के विरुद्ध पड़े, और जनरल स्मट्स से इस बात को तर्कपूर्वक कहा कि वे यूनियन सरकार और भारत-सरकार के प्रतिनिधियों के बीच व्यक्तिगत बातचीत का सिद्धान्त लागू करें, क्योंकि गोलमेज़ परिषद् का यह ढंग मानवीय झगड़ों को निबटाने का सर्वश्रेष्ठ तरीका है।

१०—इसके बाद श्री सोराबजी रुस्तमजी ने श्री क्रिस्टोफर की अपील के समर्थन के अतिरिक्त यह भी कहा कि वे (जनरल स्मट्स) संसार के मामलों में बहुत उच्च स्थान रखते हैं, और उन्हें हिन्दुस्तानी समाज को अपदस्थ नहीं करना चाहिए। उन्होंने यह भी कहा कि हिन्दुस्तानी भी उनके वैसे ही बच्चे हैं जैसे युरोपियन, इसलिए उन्हें उन (हिन्दुस्तानियों) के प्रति अन्याय नहीं करना चाहिए।

११—जवाब में जनरल स्मट्स ने कहा कि यद्यपि वे इस बात को स्वीकार करते हैं कि मानवीय मामलों में गोलमेज़ी बातचीत का बड़ा महत्व होता है, पर उन्हें अफसोस है कि वह दक्षिण अफ्रीका में वार्तालाप करने के लिए भारत-सरकार के प्रतिनिधियों को आमंत्रित नहीं कर सकते।

१२—उन्होंने कहा कि पहली गोलमेज परिषद् भारत-सरकार के अनुरोध पर बुलायी गयी थी और यह कि उस समय दक्षिण अफ्रीका में हिन्दुस्तानी जनसंख्या घटाने के लिए कुछ उपाय सुझाये थे, और यह कि केपटाउन-समझौते का वह अंश इस अर्थ में मर चुका है कि अब दक्षिण अफ्रीका से लोग जा नहीं रहे हैं, और यह इसलिए कि हिन्दुस्तानी इस देश में अपने देश की अपेक्षा अच्छी स्थिति में हैं। केपटाउन-समझौते की केवल अप-लिफ्ट (उन्नति-सम्बन्धी) धारा बाकी रही है।

१३—भारत-सरकार के साथ गोलमेज़ कान्फरेन्स करने का मतलब है दक्षिणी अफ्रीका के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करना। हिन्दुस्तानियों का भारत-सरकार से अपील करने का अर्थ होगा जले पर नमक लगाना। यह अकल्पनीय है। यह तो वैसे ही है जैसे हर बार तकलीफ आते ही डच लोगों का हालैंड से अपील करना।

१४—उन्होंने कहा कि केपटाउन-समझौते के परिणामस्वरूप एक (हिन्दुस्तानी) एजेन्ट जनरल की नियुक्ति हुई थी जिसका दर्जा बढ़ाकर हाई कमिश्नर का कर दिया गया था। इसका दर्जा वैसा ही था जैसा ब्रिटेन, कनाडा या आस्ट्रेलिया के दक्षिण अफ्रीका-स्थित हाई कमिश्नरों

का है। उन्होंने यह भी कहा कि भारत-सरकार से प्रतिनिधित्व पहले भी प्राप्त होते रहे हैं और आगे भी होते रहेंगे। दक्षिण अफ्रीका को जो उच्चाधिकार प्राप्त है उसका यह तक़ाज़ा है कि हिन्दुस्तानी समस्या को वह अपने एक घरेलू मामले की तरह समझे और उसके साथ वैसा ही बर्ताव करे। उसके साथ बाहरी हस्तक्षेप न हो। उन्होंने शिष्टमंडल से कहा कि वह उनके उस प्रस्ताव पर विचार करे जो यह कठिन समस्या सुलझाने के लिए बिल के रूप में पेश किया जायगा और इसके द्वारा एक पृथक् क्षेत्र का निर्माण कर दिया जायगा, जहाँ हिन्दुस्तानी और अन्य लोग जमीन खरीद कर उस पर अधिकार कर सकेंगे। इससे हिन्दुस्तानी समाज बेइज़्ज़ती और पृथक्करण के दोषों से बच जायगा।

१५—उस सीमित क्षेत्र के अतिरिक्त अन्य सभी क्षेत्र केवल युरोपियनों के क़ब्ज़े के लिए सीमित होंगे। और यह कि दो हिन्दुस्तानियों और दो युरोपियनों का एक कमीशन बनेगा जिसका अध्यक्ष एक तटस्थ और विशिष्ट व्यक्ति होगा। यह कमीशन समय-समय पर किसी भी क्षेत्र की स्थिति का निरीक्षण करता रहेगा और ऐसे क्षेत्र निर्धारित करता रहेगा, जिससे उन हिन्दुस्तानी तथा अन्य लोगों की ज़रूरतें पूरी होती रहेंगी जो उन खुले क्षेत्रों में ज़मीन खरीदकर बसना चाहेंगे।

१६—उदाहरण के रूप में उन्हों (जनरल स्मट्स) ने पोर्ट शेपस्टोन और ग्लेंको के स्वेच्छा-पूर्ण समझौतों का ज़िक्र किया और कहा कि इस प्रकार के समझौतों की पुष्टि कमीशन करेगा और उन्हें पार्लीमेंट स्वीकार करेगी।

१७— ब्रूम कमीशन और मिचेल पोस्टवार-कमीशन के द्वारा सरकार को बहुत-सी सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं जिनके आधार पर वह तथा प्रस्तावित कमीशन उन क्षेत्रों की सूची तैयार कर सकेगा जिनके द्वारा डरबन में और उसके आसपास हिन्दुस्तानियों की ज़रूरतें पूरी हो सकेंगी।

१८— श्री काजी के एक प्रश्न के उत्तर में जनरल स्मट्स ने कहा कि ट्रान्सवाल की स्थिति में विशेष परिवर्तन नहीं किया जा रहा है; किन्तु १८८५ के तीसरे कानून के अनुसार ऐसे खुले क्षेत्र तैयार कर दिये जायेंगे जहाँ हिन्दुस्तानी ज़मीन खरीद कर उन पर अधिकार कर सकेंगे। जनरल स्मट्स ने ज़ोरदार शब्दों में यह भी कहा कि व्यापार के मामले में हस्तक्षेप नहीं किया जायगा। इसका नियंत्रण तो लाइसेन्स के कानून द्वारा होगा। उन्होंने यह भी कहा कि नेटाल या ट्रान्सवाल के किसी भी सुस्थिर अधिकार में हस्तक्षेप नहीं किया जायगा।

१९— इसके बाद जनरल स्मट्स ने कहा कि इस बिल द्वारा नेटाल और ट्रान्सवाल के हिन्दुस्तानी समाज को पार्लीमेण्ट प्रांतीय कौन्सिलों तथा सिनेट में प्रतिनिधित्व दिया जायगा। उन्होंने शिष्टमण्डल और कान्फरेंस से अपील की कि वे इन प्रस्तावों को न ठुकरायें। उन्होंने कहा कि इससे बड़ा उपद्रव होगा और इसे ठुकराकर हिन्दुस्तानी तकलीफ उठायेंगे, और अन्त में यह हम सब के लिए नरक बन जायगा। इस समस्या का निराकरण करना ही होगा। नेटाल के युरोपियन बहुत बेचैन हैं और गम्भीर अशान्ति फैल चुकी है। उन्हें डर है कि उनकी उपेक्षा होने जा रही है। वह हिन्दुस्तानियों की आर्थिक प्रतिस्पर्धा से डरे हुए हैं। सरकार को तथ्यों का सामना करना है, इसलिए इन प्रस्तावों को एक नीति के रूप में अमल में लाया जायगा।

२०—श्री काजी ने जनरल स्मट्स से फिर अपील की कि उन्होंने जो कुछ कहा है उसके बावजूद भी उन्होंने अपने ही शब्दों और आश्वासनों की ओर ध्यान नहीं दिया है। श्री काजी ने कहा कि जनरल स्मट्स नेटाल के युरोपियनों के प्रति आत्मसमर्पण इसलिए कर रहे हैं कि वे अधिक शोर मचा रहे हैं और उनके पास अधिक राजनीतिक सत्ता है, और यह कि

"रहा ब्रूम-कमीशन, सो वह तो कोई हल नहीं प्राप्त कर सका। ऐसी अवस्था में हमें स्वयं ऐसा हल ढूंढ़ निकालना चाहिए। हमें ऐसा हल निकालना ही पड़ेगा। मैं इस मामले को बिगड़ते देख चुका हूँ। अन्त में इसके शिकार आप ही होंगे। आपने कहा है कि मैं अपनी जनसंख्या की जातीय विभिन्नता का स्वरूप स्वीकार करता हूँ। मैं इस स्थिति के बारे में गलती नहीं करता। जब तक यह समस्या सुलझ नहीं जाती और आपके लिए कुछ कर नहीं लिया जाता तब तक हमारे हिन्दुस्तानी दोस्तों को सब से अधिक कष्ट उठाना पड़ेगा।

"मैं इस देश में शान्ति चाहता हूँ। लोगों के मिज़ाज बहुत बिगड़ चुके हैं।

"पहली बात तो यह है कि आप ज़मीन की समस्या हल कर लें; इसके बाद राजनीतिक हल प्राप्त करना होगा। आपको राजनीतिक दर्जा प्राप्त करना है, तब तक यह प्रतिद्वन्द्विता चलती रहेगी।

"मैं व्यापार को स्पर्श न करूँगा। आज का प्रश्न आर्थिक नहीं। उसका नियंत्रण तो वर्तमान लाइसेंस के कानून द्वारा हो ही रहा है।

"रहा ज़मीन का प्रश्न, सो आप विशेष क्षेत्रों में पृथक् नहीं होना चाहते। आप यह तो स्वीकार करते हैं कि विलग रहना आवश्यक है। इससे आप पर कोई कलंक नहीं लगेगा। कुछ स्वतंत्र सन्निहित क्षेत्र निश्चित कर दिये जायँगे।

"यदि सामाजिक शान्ति प्राप्त करनी है, तो पृथक् निवास आवश्यक होगा। तीन क्षेत्र बनाये जायँगे, पर उन्हें परस्पर मिश्रित नहीं किया जायगा। जैसे—नेटाल की हदबन्दी दिखाने के लिए वर्तमान क्षेत्रों का स्पर्श नहीं किया जायगा और वर्तमान अधिकारों की रक्षा की जायगी।

"हमें ब्रूम-कमीशन से युद्धोत्तर पुनर्निमाण और मिचेल-कमीशन से बहुत-सी सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं। इरबन की व्यवस्था कर लेना बिल्कुल सम्भव है। पोर्ट शेपस्टोन और ग्लेंको में कुछ इन्तज़ाम हुआ भी था। मेरीत्ज़बर्ग में भी कुछ व्यवस्था थी, पर वह रद कर दी गयी। हमें स्वतंत्र क्षेत्रों की सूची बनानी होगी।

"पर आपको उससे भी और कुछ करना है। दो यूरोपियनों और दो हिन्दुस्तानियों का एक कमीशन नियुक्त होगा जिसका एक चेअरमैन या प्रधान और होगा। इस (कमीशन) को उन क्षेत्रों की सिफारिश करने का अधिकार होगा जहाँ ज़मीन मुक्त रूपमें खरीदी और बेची जा सकेगी। इस कमीशन की सिफारिशें पार्लमेण्ट-द्वारा स्वीकृत होंगी।

ट्रान्सवाल में स्थिति बहुत नहीं बदली जा रही है, क्योंकि १८८५ के तीसरे कानून के अनुसार ऐसे खुले क्षेत्र प्राप्त किये जा सकेंगे जहाँ हिन्दुस्तानी ज़मीन खरीद सकेंगे और उसपर अधिकार भी कर सकेंगे।

"इस प्रश्न का दूसरा हिस्सा है आपका राजनीतिक दर्जा। उस समय आप राजनीतिक दृष्टि से बिल्कुल अदृश्य हो चुके हैं। सरकार साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व का प्रस्ताव करती है, पर दुर्भाग्यवश आप उसे अस्वीकार कर चुके हैं। मैं नहीं समझता कि उस देश में राजनीतिक दृष्टि से कोई और आधार सम्भव है। आपको सामान्य मताधिकार में सम्मिलित करने का प्रश्न कभी पार्लमेण्ट से गुज़र नहीं सकता। व्यवस्था-द्वारा ही आप पर प्रतिबन्ध लगा दिये जायँगे।

एक प्रश्न का उत्तर देते हुए जनरल स्मट्स ने कहा कि "केपटाउन समझौते की तो केवल अपलिफ्ट (उन्नति)वाली धारा रह गयी है—शेष को ठुकराया जा चुका है। हिन्दुस्तानियों को शिक्षा आदि की भी सुविधाएँ दी जायँगी और अटलांटिक और सेनफ्रान्सिस्को-समझौतों द्वारा

विवेचित प्रगति-सम्बन्धी सिद्धान्त उन पर भी लागू होंगे।"

पत्र　　　　　"प्राइम- मिनिस्टर का दफ्तर

केपटाउन,

११ फरवरी, १९४९

प्रिय महाशय

मुझे आपको यह सूचित करने का गौरव प्राप्त हुआ है कि प्राइम-मिनिस्टर ने आज—सोमवा ११ फरवरी को दोपहर-बाद उस प्रतिनिधि-आवेदन को ध्यानपूर्वक सुना है जो श्री काजी एडवोकेट क्रिस्टोफर और श्री रुस्तमजी ने उनकी सेवा में उपस्थित होकर किया है और जिस द्वारा भारत-सरकार के प्रतिनिधियों के साथ गोलमेज़ परिषद् करने का अनुरोध किया गया है श्रीमान् ने आपकी कान्फरेंस में पास हुए प्रस्ताव का भी अध्ययन किया है।

श्रीमान् प्राइम-मिनिस्टर ने प्रतिनिधि-मण्डल से यह बता दिया है कि किन कारणों भारत-सरकार के साथ गोलमेज कान्फरेंस नहीं की जा सकती। उन्होंने भूमि और मताधिकार बारे में बिल के मसविदों के सम्बन्ध में भी एक बयान दिया है, और उन्होंने प्रतिनिधि-मण्डल अपील की है कि वह दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानियों और युरोपियनों के हित की बातों को ध्या में रखते हुए उस पर गम्भीरतापूर्वक विचार करे। इन दोनों के बीच जो वर्तमान कठिनाइयाँ औ मतभेद मौजूद हैं उन्हें दूर कर देना चाहिए।

सेक्रेटरी　　　　　　आपका विश्वासपात्र,

साउथ अफ्रीकन इंडियन कांग्रेस,　　　　　(हस्ताक्षर) हेनरी डब्ल्यू० कूप

केपटाउन　　　　　　प्राइवेट सेक्रेटरी

दक्षिण अफ्रीका की इंडियन कांग्रेस कान्फरेंस-प्रस्ताव नं. ६ का मसविदा, १२ फरवरी १९४

"दक्षिण अफ्रीका की इंडियन कांग्रेस की यह कान्फरेंस उस शिष्टमण्डल की रिपोर्ट सुन के बाद, जो प्राइम-मिनिस्टर से मिला है, इस बात पर अपनी गम्भीर निराशा प्रकट करता है कि उन्होंने प्रस्तावित कानून को छोड़ देने से इन्कार कर दिया है और हिन्दुस्तान और दक्षिण-अफ्रीक के बीच गोलमेज़ कान्फरेंस करना स्वीकार नहीं किया है।

इस अस्वीकृति को यह कान्फरेंस मानव-समस्या को सुलझाने के लिए बातचीत औ पारस्परिक वाद-विवाद करने के सिद्धान्त को अस्वीकार करने के समान मानती है, और इ (अस्वीकृति) को हिन्दुस्तानी समाज पर अत्याचार करने के व्यवस्थापक ध्येय का द्योतक मानती है और यह भी समझती है कि इस प्रकार उस (हिन्दुस्तानी समाज) का भाग्य राजनीतिक उद्देश्य सिद्धि की वेदी पर निछावर करने और कठोर गोरे प्रतिक्रिया-वादियों को परितुष्ट करने के लिए डा दिया है। भू-सम्पत्ति के उपयोग और साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व-सम्बन्धी जो बिल प्राइम-मिनिस्ट पेश करनेवाले हैं, वह बिल्कुल ही अस्वीकार्य है और भारत-राष्ट्र की आत्मप्रतिष्ठा और गौर के विरुद्ध है।

दक्षिण अफ्रीका की इंडियन कांग्रेस की यह कान्फरेन्स प्राइम-मिनिस्टर की अस्वीकृति व ध्यान में रखते हुए इस देश के हिन्दुस्तानियों के सभी साधनों को सुसंगठित करने का निश्च करता है जिससे वह पेगिंग-ऐक्ट समाप्त कराने और सरकार के प्रस्तावित कानून का विरोध करने लिए निम्न प्रकार के सभी उपायों का उपयोग कर सके।

१—भारत को शिष्टमण्डल भेजकरः—

(क) भारत-सरकार से अनुरोध करना कि वह अपने और दक्षिण अफ्रीका की सरकार के बीच गोलमेज कान्फरेन्स बुलाने की योजना करे।

(ख) यह न हो सके तो भारत-सरकार से अनुरोध करना कि वह—

(१) दक्षिण अफ्रीका से अपना हाई-कमिश्नर हटा ले।

(२) दक्षिण अफ्रीका के विरुद्ध आर्थिक कार्रवाई करे।

(ग) भारत में सबल प्रचार-कार्य करना जिससे करोड़ों भारतवासियों का पूर्ण समर्थन प्राप्त हो सके।

(घ) हिन्दुस्तानी नेताओं को आमंत्रित किया जाय कि वह दक्षिण अफ्रीका आयें।

२—अमेरिका, ब्रिटेन और संसार के अन्य भागों को शिष्टमण्डल भेजना।

३—शीघ्र ही दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानियों को ऐसे ऐक्यपूर्ण और लम्बे प्रतिरोध के लिए तैयार करना जिसका विवरण तैयार करके अपने वैधानिक संस्थाओं को भेजने और उस पर अमल करने का आदेश यह कान्फरेन्स अपनी कार्य-कारिणी को देती है।

दक्षिण अफ्रीका की इंडियन कांग्रेस कान्फरेन्स

प्रस्ताव नं० ८; १२ फरवरी, १९४६

यह कान्फरेन्स निश्चय करती है कि प्रस्ताव नं० ६ के अनुसार निम्नलिखित व्यक्तियों का प्रतिनिधि-मण्डल हिन्दुस्तान के लिए रवाना हो जाय।

श्री सोराबजी रुस्तमजी, एडवोकेट ए० किस्टोफर, श्री एस० आर० नायडू, श्री एम० डी० नायडू, श्री ए० एम० काजी, श्री ए० ए० मिर्जा और एस० एम० देसाई।

इनको अधिकार होगा कि वह किन्हीं भी ऐसे दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानी को स्वतः नामजद करके इस मण्डल में ले ले जो वैधानिक संस्था के सदस्य हों।

और इंग्लैंड तथा अमेरिका जाने के लिए नीचे लिखे व्यक्तियों का प्रतिनिधि-मण्डल बनाती है।

श्री ए० आई० काजी, डॉ० वाई० एम० दादू, श्री ए० एम० मूला, रेवरेण्ड बी० एल० ई० सीगामनी और श्री पी० आर० पाथर।

इस मण्डल को अधिकार होगा कि वह किसी भी ऐसे दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानी को नामजद करके अपने में सम्मिलित कर ले जो दक्षिण अफ्रीका की इंडियन कांग्रेस की वैधानिक संस्था के सदस्य हो।

परिशिष्ट ४

कांग्रेस-प्रस्ताव तथा मंत्रिमंडल के प्रतिनिधि-दल और वाइसराय से हुए नेताओं के पत्रव्यवहार और बातचीत आदि।

कार्यकारिणी की कार्रवाई का सारांश

दिल्ली, १२-१८ अप्रैल, २५-३० अप्रैल, १७-२४ मई और ९-२६ जून १९४६ ई०

कांग्रेस-कार्यकारिणी समिति की बैठक दिल्ली में १२ से १८ अप्रैल तक, २५ से ३० अप्रैल तक और फिर १७ से २४ जून और ९ से २६ जून, १९४६ तक मौलाना अबुल कलाम आज़ाद की अध्यक्षता में हुई जिसमें श्रीमती सरोजिनी नायडू और सर्वश्री जवाहरलाल नेहरू, वल्लभभाई पटेल, राजेन्द्रप्रसाद, पट्टाभि सीतारामय्या, खान अब्दुल गफ्फार खाँ, शंकरराव देव, गोविन्दवल्लभ

पन्त, प्रफुल्लचन्द्र घोष, आसफअली, हरेकृष्ण मेहताब और जे० बी० कृपलानी हाजिर थे। खान अब्दुल गफ्फार खाँ और हरेकृष्ण मेहताब समिति की कुछ बैठकों में गैर-हाजिर थे। गाँधीजी कमिटी की दोपहर-बाद की बैठकों में आम तौर पर आया करते थे।

यह बैठकें खासकर मंत्रिमिशन की उस विधान-परिषद्-सम्बन्धी बातचीत पर बहस करने के लिए हुआ करती थीं जो स्वतंत्र और आजाद भारत का शासन-विधान बनाने और एक काम-चलाऊ राष्ट्रीय सरकार की स्थापना करने के लिए बनायी जानेवाली थी।

मंत्रि-मिशन

फरवरी, १९४६ को भारत मंत्री लार्ड पेथिक-लारेंस ने ब्रिटिश पार्लीमेंट की कासन सभा में इस निश्चय की घोषणा की कि एक मंत्रि-मिशन भारत भेजा जायगा जिसमें खुद भारत मंत्री लार्ड पेथिक-लारेंस, व्यापार-संघ के प्रधान सर स्टैफर्ड क्रिप्स और एडमिरल्टी के प्रथम लार्ड श्री ए० वी० अलग्ज़ैन्डर भी सम्मिलित होंगे, और जो भारत के प्रतिनिधियों के साथ वाइसरायके उस कार्यक्रम पर विचार-विमर्श करेगा जिसकी उन्होंने १७ फरवरी, १९४६ को प्रान्तीय सरकार और केन्द्रीय असेम्बली के चुनावों के समय प्रकाशित की थी। घोषणा इस प्रकार थी :—

"सभा को स्मरण होगा कि १९ मई १९४५ को ब्रिटिश सरकार से बातचीत करके भारत लौटने पर वाइसराय ने सरकार की नीति के बारे में जो वक्तव्य दिया था उसमें यह कहा था कि केन्द्रीय और प्रान्तों के चुनाव हो जाने के बाद हिन्दुस्तान के नेताओं की राय से भारत में पूर्ण स्वशासन स्थापित करने की निश्चित कार्रवाही ब्रिटिश सरकार करेगी।

"इन निश्चित कार्यवाहियों में से पहली में वह आरम्भिक बातचीत सम्मिलित होगी जो वह ब्रिटिश भारत के निर्वाचित सदस्यों के साथ करेगी और देशी राज्यों के साथ भी जिससे विधान-निर्माण के सम्बन्ध में अधिक-से-अधिक सहमति प्राप्त की जा सके।

"दूसरी कार्यवाही होगी ऐसी विधान-निर्मात्री संस्था की स्थापना और तीसरी होगी वाइसराय की ऐसी कार्यसमिति का निर्माण जिसे सभी हिन्दुस्तानी दलों का समर्थन प्राप्त हो।

"गत वर्ष के अन्त में केन्द्रीय निर्वाचन हो चुका है और कुछ प्रान्तों में भी चुनाव हो चुके हैं और ज़िम्मेदार सरकारों की स्थापना की कार्यवाही हो रही है। कुछ अन्य प्रान्तों में मतदान की तारीखें आगामी कुछ हफ्तों में पड़ी हैं। चुनाव का संघर्ष समाप्त होने के साथ ही ब्रिटिश सरकार इस बात को सफल बनाने पर विचार कर रही थी जिसका जिक्र मैंने ऊपर किया है।

"भारत या ब्रिटिश उपनिवेशों की ही नहीं, बल्कि सारे संसार की दृष्टि को सामने रखते हुए भारतीय नेताओं के साथ बातचीत करने के लिए सम्राट् की सरकार की आज्ञा से ब्रिटिश सरकार ने एक ख़ास मिशन हिन्दुस्तान भेजने का निश्चय किया है जिसमें भारत-मंत्री (लार्ड पेथिक-लारेंस), व्यापार-संघ के प्रधान सर स्टैफर्ड क्रिप्स और एडमिरल्टी के प्रथम लार्ड मि० ए० वी० अलग्ज़ैन्डर वाइसराय के सहयोगी के रूप में जायँगे।"

१५ मार्च १९४६ को प्रधानमंत्री क्लेमेंट एटली ने भारत के लिए मंत्रि-प्रतिनिधि-मंडल भेजने में ब्रिटिश नीति का खुलासा किया।

मंत्रि-मिशन के सदस्य २३ मार्च को हिन्दुस्तान पहुँच गये और उन्होंने अपना काम साम्प्रदायिक और राजनीतिक नेताओं की मुलाकातों के रूप में शुरू कर दिया। मिशन ने कहा कि उसके पास नेताओं के सामने रखने के लिए कोई ठोस प्रस्ताव नहीं है। ऐसी हालत में जो बातचीत हुई वह एक आम तरीके की और उपाय ढूंढ़ने के लिए की जानेवाली बहस के रूप में

थी। २७ अप्रैल को बातचीत समाप्त हो जाने पर मंत्रि-मंडल के प्रतिनिधि-दल ने कांग्रेस के अध्यक्ष के नाम निम्नलिखित पत्र भेजा :—

"२७ अप्रैल, १९४६

प्रिय मौलाना साहब।

मंत्रि-मिशन तथा माननीय वाइसराय ने उन विभिन्न प्रतिनिधियों-द्वारा व्यक्त किये गये मतों पर सावधानी के साथ फिर से विचार किया, जिन्होंने उनसे भेंट की थी। मंत्रि-मिशन तथा वाइसराय महोदय इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि मुस्लिम लीग और कांग्रेस में समझौता करवाने के लिये उन्हें एक बार और प्रयत्न करना चाहिये।

वे अनुभव करते हैं कि उक्त दोनों दलों से मिलने का अनुरोध करना बेकार होगा जब तक कि वे (मंत्रि मिशन तथा वाइसराय) उनके सामने बातचीत करने का कोई ऐसा आधार न रख सकें, जिसके फलस्वरूप इस प्रकार का समझौता सम्भव हो सके।

अतएव, मुझ से कहा गया है कि मैं मुस्लिम लीग को आमंत्रित करूँ कि वह मंत्रि-मिशन और वाइसराय से मिलने के लिए अपने चार प्रतिनिधि भेजे, जो कांग्रेस कार्य-समिति के इसी प्रकार के चार प्रतिनिधियों के साथ मंत्रि-मिशन तथा वाइसराय से उपयुक्त समझौते के लिए निम्नलिखित मूल सिद्धान्तों के आधार पर बातचीत कर सकें :—

ब्रिटिश भारत के भावी विधान का ढांचा इस प्रकार का होना चाहिये—एक संघ-सरकार, जिसके अधीन पर-राष्ट्र सम्बन्ध, रक्षा तथा यातायात के विषय होंगे। प्रान्तों के दो 'गुट' होंगे, एक हिन्दू-प्रधान प्रान्तों का और दूसरा मुस्लिम-प्रधान प्रान्तों का, जिनके अधीन वे सब विषय होंगे जिन पर अपने-अपने गुटों के प्रान्त एक साथ मिल कर कार्य करना चाहते हों। अन्य सब विषय प्रान्तीय सरकारों के अधीन होंगे और उन्हें (प्रान्तीय सरकारों के) समस्त अवशिष्ट सत्ताधिकार भी प्राप्त होंगे।

ऐसा विश्वास है कि समझौते की बातचीत के फलस्वरूप तय होनेवाली शर्तों के साथ, देशी राज्य भी विधान के इस ढांचे के अन्तर्गत अपना स्थान ग्रहण करेंगे।

मैं समझता हूँ कि सिद्धान्तों के अधिक स्पष्टीकरण की न तो आवश्यकता ही है और न वांछनीयता, क्योंकि बातचीत के अन्तर्गत अन्य सब विषयों पर विचार किया जा सकता है।

यदि मुस्लिम लीग तथा कांग्रेस इस आधार पर समझौते की बातचीत आरम्भ करने के लिये तैयार हैं, तो आप उनकी ओर से बातचीत करने के लिए नियुक्त किये गये चारों व्यक्तियों के नाम मेरे पास लिख भेजने की कृपा करेंगे। उनके मिलते ही मैं आप को बता सकूंगा कि यह बातचीत किस स्थान में शुरू होगी। बातचीत के स्थान की अधिक सम्भावना शिमला की है, जहाँ आजकल मौसम अधिक अच्छा है।

आपका विश्वास-पात्र,

(हस्ताक्षर) पेथिक-लारेन्स"

इस पत्र के प्रस्तावों पर विचार करके कार्यकारिणी ने नीचे लिखा पत्र लार्ड पेथिक-लारेन्स को भिजवाया :—

"प्रिय लार्ड पेथिक-लारेन्स

२७ अप्रैल के आपके पत्र के लिए धन्यवाद। आपके सुझाव के सम्बन्ध में मैंने कांग्रेस कार्य-समिति के अपने सहयोगियों से परामर्श किया है। उनकी इच्छा है कि मैं आप को सूचित

कर दूँ कि भारत के भविष्य से सम्बन्ध रखनेवाले किन्हीं भी विषयों पर मुस्लिम लीग अथवा अन्य किसी संस्था के प्रतिनिधियों से विचार-विनिमय करने के लिए वे सदैव सहमत रहे हैं। फिर भी, मैं बता देना चाहता हूँ कि जिन मूल सिद्धान्तों का आपने उल्लेख किया है, भ्रम-निवारण के लिए उनके स्पष्टीकरण तथा विस्तृत व्याख्या की आवश्यकता है। जैसा कि आप जानते हैं, स्वतंत्रता-प्राप्त इकाइयों (प्रान्तों) के एक संघीय केन्द्र का हमारा विचार है। कई अनिवार्य विषयों का इस संघ के अधीन रहना आवश्यक है, जिनमें से रक्षा तथा उससे सम्बन्ध रखनेवाले विषय सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं। ऐसे केन्द्र का सुदृढ़ होना आवश्यक है और उसकी व्यवस्थापिका सभा तथा शासन-परिषद् का भी होना आवश्यक है। और उक्त विषयों के लिए उसके पास धन का होना तथा उनके लिए स्वयं अपनी ओर से राजस्व संग्रह करने का अधिकार भी आवश्यक है। इन कार्यों तथा अधिकारों के बिना उक्त केन्द्र निर्बल तथा श्रृंखलाहीन होगा और रक्षा तथा साधारण प्रगति के कार्य को क्षति पहुँचेगी। इस प्रकार पर-राष्ट्र संबंध, रक्षा तथा यातायात् के अतिरिक्त मुद्रा, कस्टम, ड्यूटी और टैरिफ तथा अन्य ऐसे विषय, जो जांच करने पर इस से सम्बद्ध प्रतीत हों, संघीय केन्द्र के अधीन रखे जाने चाहियें।

एक हिंदू-प्रधान प्रांतों तथा दूसरा मुस्लिम-प्रधान प्रांतों के गुट का जो उल्लेख आपने किया है, वह स्पष्ट नहीं है। उत्तर पश्चिमी सीमाप्रांत-सिंध तथा बलोचिस्तान के प्रांत ही केवल मुस्लिम-प्रधान प्रांत हैं। बंगाल और पंजाब में मुसलमानों का बहुतम बहुत थोड़ा है। संघीय केंद्र के अधीन प्रान्तीय गुट-बन्दी करना और विशेषतया धार्मिक अथवा साम्प्रदायिक आधार पर ऐसी गुट-बन्दी करना, हम गलत समझते हैं। यह भी प्रतीत होता है कि किसी 'गुट' में सम्मिलित होने अथवा न होने के सम्बन्ध में आप प्रान्तों को स्वतंत्रता नहीं दे रहे हैं। किसी भी प्रकार यह निश्चित नहीं है कि कोई भी प्रान्त, अपनी वर्तमान सीमाओं सहित, किसी गुट विशेष में शामिल होना पसंद करेगा। इसके अतिरिक्त किसी भी प्रान्त को उसकी इच्छा के विरुद्ध कार्य के लिए विवश करना हर प्रकार से पूर्णतया अनुचित है। यद्यपि हम सहमत हैं कि शेष सारे विषयों तथा अवशिष्ट अधिकारों के सम्बन्ध में प्रान्तों को पूर्ण अधिकार प्राप्त हों, किन्तु हमने यह भी बताया है कि किसी प्रान्त को संघीय केन्द्र के साथ अपने अन्य विषय भी रख सकने की स्वतंत्रता होनी चाहिये। संघीय केन्द्र के अन्तर्गत किसी प्रकार के उप-संघ की व्यवस्था केन्द्र को निर्बल करेगी और अन्य प्रकार से भी अनुचित होगी। अतएव, हम इस प्रकार की किसी व्यवस्था के पक्ष में नहीं हैं।

देशी राज्यों के सम्बन्ध में हम स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि हम यह अनिवार्य समझते हैं कि उपर्युक्त समान-विषयों के सम्बन्ध में, उन्हें संघीय केन्द्र का अंग होना चाहिये। केन्द्र में उनके सम्मिलित होने के तरीके पर बाद में पूर्ण रूप से विचार किया जा सकता है।

आपने कुछ मूल सिद्धान्तों का उल्लेख किया है, किन्तु हमारे सामने उपस्थित मूल प्रश्न का अर्थात् भारतीय स्वाधीनता और उसके फलस्वरूप भारत से ब्रिटिश सेना के हटाये जाने के प्रश्न का कोई उल्लेख नहीं किया है। केवल इसी आधार पर हम भारत के भविष्य अथवा किसी अन्तर्कालीन व्यवस्था के सम्बन्ध में बातचीत कर सकते हैं।

यद्यपि भारत के भविष्य के सम्बन्ध में हम किसी भी दल से बातचीत चलाने के लिए तैयार हैं तो भी हम अपना यह विश्वास प्रकट करना आवश्यक समझते हैं कि एक विदेशी शासन-सत्ता के देश में रहते समझौते की किसी बातचीत में वास्तविकता न होगी।

आपके सुझाव के परिणाम-स्वरूप समझौते की जो भी बातचीत शुरू हो, उसमें भाग लेने

के लिए मैंने कांग्रेस कार्य-समिति के अपने तीन सहयोगियों, पं० जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभ-भाई पटेल तथा खान अब्दुलगफ्फार खान को अपने साथ लाने का निश्चय किया है।

आपका विश्वास-पात्र—
(हस्ताक्षर) अबुल कलाम आजाद

लार्ड पेथिक-लारेंस के नाम मुस्लिम लीग के अध्यक्ष का पत्र

"तारीख २६ अप्रैल, १६४६

२७ अप्रैल के आपके पत्र के लिए, जिसे कल सवेरे मैंने अपनी कार्य-समिति में पेश किया, धन्यवाद।

मुस्लिम लीग और कांग्रेस के प्रतिनिधियों के बीच बातचीत के लिए जिस सम्मेलन के सुझाव द्वारा मंत्रि-मिशन तथा वाइसराय महोदय ने समझौता करने का एक बार फिर प्रयत्न किया है, उसका मैं और मेरे सहयोगी पूर्ण रूप से समादर करते हैं। फिर भी उनकी इच्छा है कि मैं आपका ध्यान उस स्थिति की ओर आकृष्ट करूँ जिसे मुस्लिम लीग ने १६४० का लाहौर-प्रस्ताव स्वीकार होने के बाद से ग्रहण किया है और तदनन्तर अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के अधिवेशनों-द्वारा बार-बार जिसका समर्थन हुआ है, तथा अभी हाल में ही ६ अप्रैल १६४६ को हुए मुस्लिम लीगी व्यवस्थापक सम्मेलन-द्वारा जिसका समर्थन किया गया है। (जिसकी एक प्रति साथ भेजी जा रही है) कार्यसमिति की इच्छा है कि मैं आपको लिखूं कि आपके संक्षिप्त पत्र में दिये गये सिद्धांत तथा विस्तार के सम्बन्ध के बहुतेरे महत्वपूर्ण प्रश्नों की व्याख्या तथा स्पष्टीकरण की आवश्यकता है, जो आप-द्वारा प्रस्तावित सम्मेलन में सुलभ हो सकता है। अतएव, बिना किसी प्रकार के पक्षपात अथवा स्वीकृति की भावना के, भारतीय वैधानिक समस्या का सर्व सम्मत हल निकालने के कार्य में सहायता करने के लिए उत्सुक कार्य-समिति ने मुस्लिम लीग की ओर से समझौते की बात-चीत में भाग लेने के लिए तीन प्रतिनिधियों को नामजद करने का अधिकार मुझे दिया है। चारों प्रतिनिधियों के नाम इस प्रकार हैं:—

(१) श्री एम० ए०, जिन्ना, (२) नवाब मुहम्मद इस्माइल खां, (३) नवाबजादा लियाकत अली खान और (४) सरदार अब्दुर्रब निश्तर।

श्री जिन्ना-द्वारा लार्ड पेथिक-लारेंस को २८ अप्रैल १६४६ को लिखे गये पत्र के साथ का कागज

लीग की विषय-निर्धारिणी समिति-द्वारा पास किया गया वह प्रस्ताव, जो ६ अप्रैल, १६४६ को अखिल भारतीय मुस्लिम लीग व्यवस्थापक सम्मेलन के सम्मुख उपस्थित किया गया:—

"चूंकि इस विशाल उप-महाद्वीप भारत में १० करोड़ मुसलमान एक ऐसे धर्म के अनुयायी हैं, जो उनके जीवन के प्रत्येक अंग (शिक्षा सम्बन्धी, सामाजिक, और राजनीतिक) का नियमन करता है, जिसका विधान केवल आध्यात्मिक सिद्धांतों, मतों, धार्मिक कृत्यों अथवा संस्कारों तक ही सीमित नहीं है और जो उस निराले प्रकार के हिन्दू धर्म और दर्शन से बिलकुल भिन्न हैं, जो सहस्रों वर्ष तक कट्टर जात-पात व्यवस्था को बनाये हुए है और उसे पोषित करता रहा है—जिसका परिणाम ६ करोड़ प्राणियों को अस्पृश्यों की पतित अवस्था में रखने, मनुष्य तथा मनुष्य के मध्य अप्राकृतिक भेदभाव बनाये रखने और इस देश के बहुसंख्यक जनसमूह पर सामाजिक तथा आर्थिक असमानताएं लादने के रूप में हुआ है और जिसके कारण मुसलमान, ईसाई तथा अन्य अल्प-

संख्यकों के सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टि से ऐसे दास बन जाने की आशंका उत्पन्न हो गयी है, जिनकी मुक्ति कभी न हो सकेगी;

चूंकि हिन्दू वर्ण-व्यवस्था राष्ट्रीयता, समानता, लोकतंत्रवाद और उन उच्च आदर्शों का गला घोंटनेवाली है जिनका इस्लाम समर्थक है;

चूंकि विभिन्न ऐतिहासिक पृष्ठभूमियों, परम्पराओं तथा विभिन्न आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्थाओं के कारण हिन्दू मुसलमानों का विकास समान आदर्शों तथा आकांक्षाओं-द्वारा अनुप्राणित राष्ट्र के रूप में होना असम्भव हो गया है और चूंकि शताब्दियों के बाद भी अभी तक वे दो विभिन्न महान् राष्ट्र बने हुए हैं;

चूंकि अंग्रेजों-द्वारा पश्चिमी लोकतंत्रों के समान भारत में बहुमत शासन पर आधारित राजनीतिक संस्थाएं स्थापित करने के बाद यह स्पष्ट हो गया कि एक राष्ट्र अथवा समाज दूसरे राष्ट्र अथवा समाज पर विरोध के बावजूद अपनी इच्छा लाद सकता है, जैसा कि हिन्दू बहुमतवाले प्रान्तों में भारतीय शासन-सुधार कानून, १९३५ के अनुसार स्थापित कांग्रेसी सरकारों के ढाई वर्ष के शासन से पर्याप्त मात्रा में प्रदर्शित भी हो गया, जिसमें मुसलमानों को अकथनीय त्रास तथा दमन का सामना करना पड़ा और जिन सबके परिणामस्वरूप मुसलमानों को विश्वास हो गया कि विधान में रखे गये संरक्षण तथा गवर्नरों को दिये गये आदेश उनकी रक्षा की दृष्टि से व्यर्थ तथा प्रभावहीन हैं और मुसलमान अनिवार्य रूप से इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि संयुक्त भारतीय संघमें, यदि वह स्थापित किया जाय, बहुमतवाले प्रान्तों में भी मुसलमानों को अधिक लाभ न होगा और केन्द्र में स्थायी हिन्दू बहुमत रहने से उनके अधिकारों तथा हितों की पर्याप्त रूप से रक्षा न हो सकेगी;

चूंकि मुसलमानों को विश्वास हो चुका है कि मुस्लिम भारत को हिन्दुओं की अधीनता से बचाने के लिए और उन्हें उनकी प्रतिभा के अनुरूप विकास का अवसर उपलब्ध करने के लिए उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में बंगाल और आसाम को मिला कर तथा उत्तर-पश्चिम क्षेत्र में पंजाब, पश्चिमोत्तर, सीमा प्रान्त, सिंध और बलोचिस्तान को मिलाकर एक सत्तासम्पन्न स्वाधीन राज्य स्थापित करने की आवश्यकता है;

अतः भारत के केन्द्रीय तथा प्रान्तीय मुस्लिम लीगी व्यवस्थापकों का यह सम्मेलन सावधानीपूर्वक विचार करके घोषित करता है कि मुस्लिम राष्ट्र कभी भी संयुक्त भारत के किसी भी विधान को स्वीकार न करेगा और न वह इस उद्देश्य से स्थापित विधान-निर्मात्री किसी व्यवस्था में ही भाग लेगा और साथ ही सम्मेलन यह भी घोषित करता है कि अंग्रेजों से भारत की जनता के लिए शक्ति हस्तांतरित करने की ब्रिटिश सरकार-द्वारा तैयार की गयी ऐसी कोई भी योजना भारतीय समस्या का हल करने के लिए सहायक सिद्ध न होगी जो देश की आंतरिक शान्ति तथा सद्भावना बनाये रखने में सहायक निम्नलिखित न्यायपूर्ण तथा उचित सिद्धान्तों के अनुकूल न होगी:—

(१) उत्तर-पूर्व में बंगाल और आसाम और उत्तर-पश्चिम में पंजाब, पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत, सिंध और बलोचिस्तान के पाकिस्तान के क्षेत्रों को, जिनमें मुसलमानों का स्पष्ट बहुमत है, मिलाकर सत्तासम्पन्न स्वाधीन राज्य का रूप दिया जाय और साथ ही पाकिस्तान की शीघ्र स्थापना का स्पष्ट रूप से वचन दिया जाय।

(२) पाकिस्तान तथा हिन्दुस्तान के विधानों को तैयार करने के लिए दो पृथक् विधान निर्मात्री-परिषदों की स्थापना की जाय।

(३) पाकिस्तान तथा हिन्दुस्तान के अल्पसंख्यकों को अखिल भारतीय मुस्लिम लीग द्वारा २३ मार्च १९४० के दिन पास किये प्रस्ताव के अनुसार संरक्षण प्रदान किये जायँ।

(४) केन्द्र में अंतर्कालीन सरकार के निर्माण में भाग लेने और सहयोग प्रदान करने के लिए मुस्लिम लीग की पाकिस्तानवाली मांग का माना जाना और उसे तुरन्त कार्यान्वित किया जाना परमावश्यक है।

सम्मेलन यह भी जोरदार शब्दों में घोषित करता है कि संयुक्त भारत के आधार पर किसी भी विधान को लादने अथवा मुस्लिम लीग की मांग के विरुद्ध केन्द्र में कोई भी अंतर्कालीन व्यवस्था करने के प्रयत्न का यही परिणाम होगा कि मुसलमान अपने राष्ट्रीय अस्तित्व की रक्षा के लिए प्रत्येक सम्भव उपाय से उपर्युक्त लादी गयी व्यवस्था का विरोध करेंगे।

लार्ड पेथिक-लारेंस द्वारा कांग्रेस के अध्यक्ष को पत्र

ता० २९ अप्रैल, १९४६

(इस पत्र-द्वारा लार्ड पेथिक-लारेन्स ने प्रस्तावित कान्फ्रेन्स की गुञ्जाइश और इसके अभिप्राय को स्पष्ट किया)

"आपके २८ अप्रैल वाले पत्र के लिए धन्यवाद। मंत्रि-प्रतिनिधिमण्डल को यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई है कि कांग्रेस ने हमारे तथा मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियों से वार्ता करना स्वीकार कर लिया है।

कांग्रेस कार्यसमिति की तरफ से आपने जो विचार प्रकट किये हैं उन्हें हमने ध्यान में रख लिया है। इन विचारों का सम्बन्ध उन विषयों से जान पड़ता है, जिन पर सम्मेलन में विवाद हो सकता है, क्योंकि हमने यह कभी अनुमान नहीं किया था कि कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग-द्वारा हमारे निमंत्रण को स्वीकार करने का यह भी अर्थ लगाया जा सकता है कि हमारे पत्र में दी गयी शर्तों को उन्होंने स्वीकार कर लिया है। ये शर्तें समझौते के लिए हमारे द्वारा प्रस्तावित आधार के रूप में हैं और हमने कांग्रेस कार्यसमिति से केवल यही करने को कहा था कि वह हम से तथा मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियों से उस आधार पर विचार करने के लिए अपने प्रतिनिधियों को भेजे।

यह मानते हुए कि मुस्लिम लीग ने भी, जिसका उत्तर आज तीसरे पहर तक मिलने की आशा हमें है, हमारा निमंत्रण स्वीकार कर लिया तो हमारा प्रस्ताव है कि यह विचार-विनिमय शिमला में ही हो। हमारा विचार आगामी बुधवार को वहां के लिए रवाना होने का है। हमें आशा है कि आप इस बात का प्रबन्ध कर सकेंगे कि कांग्रेस के प्रतिनिधि शिमला में इतनी जल्दी पहुँच जायँ कि गुरुवार २ मई के प्रातःकाल वार्ता आरम्भ हो सके।"

लार्ड पेथिक-लारेंस का मुस्लिम लीग के अध्यक्ष को लिखा गया पत्र

ता० २९ अप्रैल १९४६

"आपके २९ अप्रैल के पत्र के लिए धन्यवाद। मंत्रि-प्रतिनिधि मंडल को यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई है कि मुस्लिम लीग ने कांग्रेस के प्रतिनिधियों तथा हमारे साथ संयुक्त रूप से वार्ता करना स्वीकार कर लिया है। मुझे यह कहते हुए प्रसन्नता हो रही है कि मुझे कांग्रेस के अध्यक्ष से एक पत्र प्राप्त हुआ है, जिसमें कहा गया है कि कांग्रेस वार्तालाप में भाग लेने के लिए तैयार है और उसकी तरफ से मौलाना आजाद, पंडित जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभभाई पटेल और खान अब्दुल गफ्फार खां प्रतिनिधि मनोनीत किए गए हैं।

मुस्लिम लीग के जिस प्रस्ताव की तरफ आपने हमारा ध्यान आकर्षित किया है उसे हमने

ध्यान में रख लिया है। हमने यह कभी नहीं सोचा था कि कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग-द्वारा हमारे निमंत्रण को स्वीकार करने का अप्रत्यक्ष रूप से यह मतलब लगाया जा सकता है कि मेरे पत्र में दी गयी शर्तों को स्वीकार कर लिया गया है। उपर्युक्त शर्तें समझौते के लिए हमारा प्रस्तावित आधार हैं और हमने मुस्लिम लीग कार्यसमिति को केवल यही करने को कहा था कि वह कांग्रेस के प्रतिनिधियों तथा हमसे मिलने के लिए अपने प्रतिनिधि भेजना स्वीकार कर ले।

हमारा प्रस्ताव है कि यह विचार-विनिमय शिमला में हो और हम स्वयं भी वहां आगामी बुधवार को जा रहे हैं। हमें आशा है कि आप ऐसा प्रबन्ध करने में समर्थ हो सकेंगे, जिस से मुस्लिम लीग के प्रतिनिधि गुरुवार २ मई के प्रातःकाल शिमला में वार्तालाप आरम्भ कर सकें।

कार्यक्रम

१. प्रान्तों के गुट:—
   (क) रचना
   (ख) गुट के विषयों को निश्चित करने का तरीका
   (ग) गुट के संगठन का प्रकार।
२. संघ:—
   (क) संघीय विषय,
   (ख) संघीय विधान का प्रकार
   (ग) अर्थ-व्यवस्था
३. विधान-निर्मात्री व्यवस्था:—
   (क) रचना
   (ख) कार्य
      १. संघ की दृष्टि से,
      २. गुटों की दृष्टि से,
      ३. प्रान्तों की दृष्टि से।"

कांग्रेस के अध्यक्ष का लार्ड पेथिक-लारेंस को पत्र

ता० ६ मई १९४६

"मैंने और मेरे सहयोगियों ने कल के सम्मेलन की कार्रवाई का ध्यानपूर्वक मनन किया और यह भी जानने की चेष्टा की कि हमारी बातचीत हमें किसी दशा में ले जा रही है। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि मैं अपनी बातचीत की अस्पष्टता और उस से जो मतलब निकलता है उसके बारे में कुछ चक्कर में पड़ गया हूँ और परेशान हूँ। यद्यपि हम समझौते पर पहुँचने के लिए कोई आधार ढूंढने का प्रयत्न करने में अपना सहयोग देना पसन्द करेंगे, फिर भी हम अपने को मंत्रि-प्रतिनिधि-मंडल को अथवा मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियों को इस धोखे में नहीं रखना चाहते कि अब तक सम्मेलन ने जिस ढंग से प्रगति की है उससे सफलता की कोई आशा बंधती है। हमारे सम्मुख यहां जो समस्याएं उपस्थित हैं, उनके सम्बन्ध में हमारा साधारण दृष्टिकोण २८ अप्रैल को आपके नाम लिखे गये मेरे पत्र में संक्षिप्त रूप से प्रकट कर दिया गया था। हम देखते हैं कि हमारे दृष्टिकोण की अधिकांश में उपेक्षा की गयी है और उसके विपरीत तरीके को अपनाया गया है। हम यह बात अनुभव करते हैं कि प्रारम्भिक अवस्थाओं में हमें कुछ बातों को मान लेना होगा, वरन् इस दिशा में प्रगति ही नहीं हो सकती। परन्तु ऐसी बातों की कल्पना कर लेने से—जो

आधारभूत समस्याओं के सर्वथा प्रतिकूल हों अथवा उनमें उन मौलिक प्रश्नों की अवहेलना की गयी हो—बाद में जाकर गलतफ़हमियों के उत्पन्न हो जाने की संभावना रहती है।

अपने २८ अप्रैल के पत्र में मैंने लिखा था कि हमारे सम्मुख आधारभूत समस्या भारतीय स्वतंत्रता और उसके परिणाम-स्वरूप भारत से ब्रिटिश सेनाओं को हटा लेना है, क्योंकि जब तक भारत भूमि में विदेशी सेना विद्यमान रहेगी तब तक हमें वास्तविक स्वतंत्रता नहीं मिल सकती। हम तो तत्काल समस्त देश की स्वतंत्रता चाहते हैं, न कि दूरवर्ती अथवा निकट-भविष्य में। अन्य सभी विषय इस प्रश्न की तुलना में गौण हैं और उनके सम्बन्ध में विधान-निर्मात्री परिषद्-द्वारा उचित रूप से सोच-विचार तथा निर्णय किया जा सकता है।

कल के सम्मेलन में मैंने इस विषय का फिर उल्लेख किया था और हमें यह जान कर प्रसन्नता हुई थी कि आपने और आपके सहयोगियों ने तथा सम्मेलन के अन्य सदस्यों ने भारतीय स्वतंत्रता को बातचीत का आधार स्वीकार कर लिया था। आपने कहा था कि अन्ततोगत्वा विधान-निर्मात्री परिषद् ही इस बात का निर्णय करेगी कि स्वतंत्र भारत और इंगलैंड के बीच क्या सम्बन्ध रहेंगे। माना कि यह बात बिलकुल ठीक है फिर भी इससे इस समय स्थिति में कोई फर्क नहीं पड़ता और इसका अर्थ है इस समय भारतीय स्वतंत्रता की स्वीकृति।

यदि यह बात ऐसी ही है तो प्रत्यक्षतः उससे कुछ परिणाम निकलते हैं। हमने अनुभव किया कि कल के सम्मेलन में इनकी ओर ध्यान नहीं दिया गया। विधान-निर्मात्री परिषद् का काम स्वतंत्रता के प्रश्न का निर्णय करना नहीं होगा; उस प्रश्न का तो अभी ही फैसला हो जाना चाहिये और हमारा विचार है कि इसका निर्णय अभी हो गया है। वह परिषद् तो स्वतंत्र भारतीय राष्ट्र की इच्छा व्यक्त करेगी और उसे कार्यान्वित करेगी। वह किसी पूर्व-निर्धारित व्यवस्था से नहीं बंधी रहेगी। उससे पहले एक अस्थायी सरकार की स्थापना करनी होगी, जिसे यथासंभव स्वतंत्र भारत की सरकार की हैसियत से काम करना चाहिए, और उसे संक्रान्ति-काल के लिए सारी व्यवस्था करने का भार अपने ऊपर लेना चाहिये।

हमारी कल की बातचीत के अवसर पर एक साथ मिलकर काम करनेवाले प्रान्तों के 'गुटों' का बारंबार उल्लेख किया गया था और यह सुझाव भी रखा गया था कि इस प्रकार के गुट की अपनी एक पृथक् शासन-परिषद् और व्यवस्थापिका-सभा होगी। अब तक इस इसने प्रकार के गुट बनाने के तरीके पर कोई सोच विचार नहीं किया; फिर भी हमारी बात-चीत से ऐसा संकेत मिलता है कि हमने इस पर बातचीत की है। मैं यह बात सर्वथा स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि हम किसी भी प्रान्तीय गुट अथवा संघीय इकाइयों के लिए किसी भी पृथक् शासन-परिषद् तथा व्यवस्थापिका-सभा के सर्वथा विरुद्ध है। इसका अर्थ यदि और अधिक कुछ नहीं तो एक उपसंघ होगा और हमने आपको पहले ही कह दिया है कि हम इसे स्वीकार नहीं करते। इसके परिणाम-स्वरूप शासन तथा व्यवस्था-सम्बन्धी संस्थाओं के तीन स्तर बन जायेंगे और यह व्यवस्था बोझिल, अप्रगतिशील और विश्रृङ्खलित होगी तथा उसके परिणामस्वरूप निरन्तर संघर्ष उत्पन्न होता रहेगा। हमारे खयाल से ऐसी व्यवस्था किसी भी देश में नहीं है।

हमारा यह जोरदार मत है कि सम्मेलन भारत के विभाजन के लिए इस प्रकार के किसी भी सुझाव पर विचार नहीं कर सकता। यदि ऐसा सुझाव उपस्थित करना ही है तो यह वर्तमान शासन-सत्ता के प्रभाव से स्वतंत्र होकर विधान-निर्मात्री परिषद् के जरिये ही उपस्थित किया जाना चाहिये।

एक और प्रश्न जिसे हम स्पष्ट कर देना चाहते हैं यह है कि हम गुटों के बीच शासन-परिषद् अथवा व्यवस्थापिका सभा के सम्बन्ध में समानता का प्रस्ताव स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं। हम यह अनुभव करते हैं कि प्रत्येक गुट और संप्रदाय के भय और आशंकाओं को दूर करने का प्रत्येक संभव प्रयत्न करना चाहिये। परन्तु यह काम उन अवास्तविक तरीकों से नहीं होना चाहिए जो प्रजातंत्र के उन आधारभूत सिद्धान्तों पर ही कुठाराघात करते हों जिनकी नींव पर हम अपना विधान खड़ा करने की आशा करते हैं।"

लार्ड पेथिक-लारेंस का मुस्लिम लीग और कांग्रेस के अध्यक्षों को पत्र

ता० ८ मई, १९४६

"मैं और मेरे सहयोगी इस बात पर सोच-विचार करते रहे हैं कि हम सम्मेलन के सम्मुख किस सर्वोत्तम तरीके से अपनी राय के अनुसार समझौते का वह संभव आधार उपस्थित करें जो अब तक की बातचीत के परिणामस्वरूप प्रकट हुआ है।

हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि यदि हम इसे लिखकर और उसकी गोपनीय प्रतियां, सम्मेलन की अगली बैठक होने से पूर्व दलों के पास भेज दें तो उससे उन्हें सुविधा होगी।

हमें आशा है कि हम इसे आपके पास सुबह तक भेज देंगे। आज दोपहर बाद ३ बजे सम्मेलन के पुनः प्रारम्भ होने तक उसे पर्याप्त रूप से अध्ययन करने के लिए आपके पास बहुत कम समय होगा—इसलिए मेरा खयाल है कि आप इस बात से सहमत होंगे कि यह बैठक कल वृहस्पतिवार ९ मई दोपहर बाद (३ बजे) तक के लिए स्थगित कर दी जाय। और मुझे आशा है कि आप समय के इस परिवर्तन में मुझ से सहमत होंगे, जो हमें विश्वास है कि सभी दलों के हित में है।

लार्ड पेथिक-लारेंस के निजी सेक्रेटरी का कांग्रेस और मुस्लिम लीग के अध्यक्षों को पत्र

तारीख ८ मई, १९४६

"भारत मंत्री के आपके नाम आज सुबह के पत्र के सम्बन्ध में मंत्रि-प्रतिनिधि-मंडल की इच्छानुसार मैं आपको ये लिफाफे-बन्द मसविदा भेज रहा हूँ और यह वही मसविदा है जिसका भारत मंत्री ने उल्लेख किया था। प्रतिनिधि-मंडल का प्रस्ताव है कि यदि कांग्रेस और लीग के प्रतिनिधि स्वीकार करें तो इस पर वृहस्पति को दोपहर-बाद ३ बजे होनेवाली आगामी बैठक में सोच-विचार किया जाय।"

८ मई के पत्र के साथ भेजा हुआ मसविदा—कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियों के बीच समझौता करने के सुझाव

१. एक अखिल भारतीय संघ-सरकार और व्यवस्थापक मंडल होगा, जिसे विदेशी मामलों, रक्षा, यातायात् मौलिक अधिकारों के बारे में पूरा-पूरा अधिकार होगा और इन विषयों के लिए धन प्राप्त करने के लिए भी उसे आवश्यक अधिकार होंगे।

२. सभी शेष अधिकार प्रान्तों के हाथ में होंगे।

३. प्रान्तों के गुट बनाये जा सकते हैं और ये गुट उन प्रान्तीय विषयों का अपने आप निर्णय कर सकते हैं जिन्हें वे समानरूप से एक साथ रखना चाहते हों।

४. ये गुट अपनी-अपनी शासन-परिषद् और व्यवस्थापक-मंडल भी बना सकते हैं।

५. संघ के व्यवस्थापक मंडल में हिन्दू-प्रधान तथा मुस्लिम-प्रधान प्रांतों में समान अनुपात में सदस्य होंगे, चाहे इन्होंने अथवा उनमें से किसी एक ने गुटबन्दी की हो अथवा नहीं,

इसके साथ-साथ देशी राज्यों के प्रतिनिधि भी उसमें रहेंगे।

६. संघ की सरकार व्यवस्थापक मंडल के अनुपात के अनुसार ही बनायी जायगी।

७. संघ के तथा गुटों (यदि कोई हों तो) के विधानों में ऐसी व्यवस्था रहेगी जिसके अनुसार कोई भी प्रांत अपनी व्यवस्थापिका सभा के बहुमत से पहले १० वर्षों और उसके बाद प्रत्येक १० वर्ष के अनन्तर विधान की शर्तों पर पुनर्विचार करने के लिए कह सकेगा।

इस प्रकार के पुनर्विचार के लिए प्रारंभिक विधान-निर्मात्री परिषद् के आधार पर ही एक संस्था बनायी जायगी और वोट-सम्बन्धी व्यवस्था भी वैसी ही होगी और उसे अपने किसी भी निर्णीत ढंग पर विधान में संशोधन करने का अधिकार होगा।

८. उपर्युक्त आधार पर विधान बनाने के लिए विधान-निर्माण व्यवस्था इस प्रकार होगी :—

(क) प्रत्येक प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा के प्रतिनिधि उस सभा के विभिन्न दलों की शक्ति के अनुपात से चुने जायँगे और ये प्रतिनिधि अपने दल की संख्या के $\frac{1}{10}$ भाग होंगे।

(ख) देशी राज्यों से प्रतिनिधि अपनी जनसंख्या के आधार पर बृटिश भारत के प्रतिनिधियों के अनुपात को देखते हुए बुलाये जायँगे।

(ग) इस प्रकार से बनायी गयी विधान-निर्मात्री सभा की बैठक शीघ्र ही नयी दिल्ली में होगी।

(घ) अपनी प्रारम्भिक बैठक के बाद, जिसमें साधारण कार्यक्रम निश्चित किया जायगा, यह सभा तीन भागों में विभाजित की जायगी। एक भाग में बहुसंख्यक हिन्दू प्रान्तों के प्रतिनिधि, दूसरे भाग में बहुसंख्यक मुसलमानों के प्रतिनिधि और तीसरे भाग में देशी राज्यों के प्रतिनिधि होंगे।

(ङ) अपने-अपने गुट के प्रान्तीय विधानों का, और यदि वे चाहें तो गुट-विधानों का निर्णय करने के लिए पहले दो भागों की अलग-अलग बैठकें होंगी।

(च) यह कार्य पूरा हो जाने के बाद प्रत्येक प्रान्त को अधिकार होगा कि चाहे तो वह अपने मौलिक गुट में रहे या किसी दूसरे गुट में आ मिले अथवा सभी गुटों से पृथक् रहे।

(छ) १ से ७ पैरा तक वर्णित संघ के लिए विधान बनाने के उद्देश्य से तीनों सभाएँ एक साथ बैठकर विचार करेंगी।

(ज) इस सभा-द्वारा संघ-विधान के ऐसे प्रमुख विषय, जिनका साम्प्रदायिक प्रश्न से सम्बन्ध है, तब तक पास किये नहीं समझे जायँगे जब तक दोनों ही प्रमुख सम्प्रदायों का बहुमत इसके पक्ष में राय नहीं देता।

९. श्रीमान् वाइसराय शीघ्र ही उपर्युक्त विधान-निर्मात्री सभा की बैठक करेंगे जो पैरा ८ में वर्णित व्यवस्था के अनुरूप होगी।

मुस्लिम लीग के अध्यक्ष का लार्ड पेथिक-लारेंस को ८ मई १९४६ का पत्र

"अब मुझे ८ मई १९४६ का लिखा हुआ आपके प्राइवेट सेक्रेटरी का पत्र मिल गया है और साथ ही वह मसविदा भी जिसका अपने ८ मई १९४६ के पहलेवाले पत्र में आपने जिक्र किया है। आपने यह प्रस्ताव रखा है कि यदि मुस्लिम लीग के प्रतिनिधि-मंडल को स्वीकार हो तो इस मसविदे पर कान्फरेंस की अगली बैठक में विचार किया जाय जो वृहस्पतिवार को दोपहर के ३ बजे होगी।

आपके २७ अप्रैल १९४६ के पत्र में आपका प्रस्ताव इस प्रकार है :—

एक संघ-सरकार जिसके अधीन पर राष्ट्र रक्षा तथा यातायात् के विषय होंगे। प्रान्तों के दो गुट होंगे, एक हिन्दू-प्रधान प्रान्तों का और दूसरा मुस्लिम-प्रधान प्रान्तों का, जिनके अधीन वे सब विषय होंगे जिन पर अपने-अपने गुटों के प्रान्त एक साथ मिलकर कार्य करना चाहते हों। अन्य सब विषय प्रान्तीय सरकारों के अधीन रहेंगे और उन प्रान्तीय सरकारों को समस्त अवशिष्ट सत्ताधिकार भी प्राप्त होंगे।

इस विषय पर शिमले में विचार होना था और २८ अप्रैल १९४६ के मेरे पत्र की शर्तों के अनुसार हमने रविवार ५ मई १९४६ को कान्फरेंस में शामिल होना स्वीकार कर लिया।

आपने अपने फार्मूला का विवरण प्रकट करने की कृपा की थी और ५ और ६ मई को कई घंटे सोच-विचार करने के बाद कांग्रेस ने अन्तिम तथा निश्चित रूप से ऐसे प्रस्तावित संघ को अस्वीकार कर दिया जिसके अधीन केवल तीन विषय हों और जिसे टैक्स लगाकर अपने लिए धन प्राप्त करने का भी अधिकार प्राप्त हो। दूसरे आपके विचाराधीन हल में स्पष्ट रूप से सबसे पहले हिन्दू और मुस्लिम प्रान्तों के गुट बनाने के सम्बन्ध में तथा इस प्रकार के गुट-बन्द प्रान्तों के दो संघ-निर्माण करने के सम्बन्ध में मुस्लिम लीग और कांग्रेस के बीच एक समझौते की कल्पना की गयी थी और इसके परिणामस्वरूप विधान-निर्माण के लिए दो सभाएँ होनी चाहिएँ। इसी बात के आधार पर आपके विचाराधीन हल में एक प्रकार के संघ का सुझाव पेश किया गया था जिसके अधीन तीन विषय हों और इसको कार्यरूप में परिणत करने के लिए हमारा समर्थन मांगा गया था। यह प्रस्ताव भी कांग्रेस-द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था और इस दिशा में क्या कुछ किया जाय इस पर मंडल द्वारा आगे विचार करने के लिए बैठक को स्थगित करना पड़ा था।

और अब पत्र के साथ यह नया मसविदा इस दृष्टि से भेजा गया है कि 'इस मसविदे पर अगली बैठक में विचार करना चाहिये जो बृहस्पतिवार को दोपहर के ३ बजे होगी।' मसविदे का शीर्षक है—'कांग्रेस और मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियों के बीच समझौते के लिए सुझाव।' यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि ये सुझाव किसने प्रस्तुत किये हैं।

हमारा विचार है कि समझौता के लिए नये सुझाव उस मौलिक हल से बिल्कुल भिन्न हैं जिसका आपके २७ अप्रैल के पत्र में वर्णन किया गया था और जिसे कांग्रेस ने अस्वीकार कर दिया था।

अब इस मसविदे की कुछ महत्वपूर्ण बातों का जिक्र किया जाता है। हमसे अब यह स्वीकार करने के लिए कहा गया है कि इस मसविदे के १ से ७ पैरा तक की शर्तों के अनुरूप एक अखिल भारतीय संघ सरकार होनी चाहिये। संघ सरकार के अधीन विषयों में एक और विषय की वृद्धि करदी गयी है, अर्थात् 'मौलिक अधिकार' की, और यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि संघ-सरकार तथा व्यवस्थापक मंडल को टैक्स-द्वारा अपने लिए धन प्राप्त करने का अधिकार होगा या नहीं।

नये सुझावों में प्रान्तों की गुटबन्दी के प्रश्न को ठीक उसी स्थल पर छोड़ दिया गया है जहां कि कांग्रेस के प्रतिनिधि अब तक की बातचीत में चाहते थे और यह आपको विचाराधीन मौलिक हल से सर्वथा भिन्न है।

हम यह कभी नहीं मान सकते कि विधान-निर्मात्री सभा एक ही होनी चाहिये और न ही मसविदे में सुझाये गये विधान-निर्माण-व्यवस्थाओं के ढंग को हम स्वीकार कर सकते हैं।

इन सुझावों में और भी कई एतराज की बातें हैं जिनका हमने जिक्र नहीं किया है,

क्योंकि हम तो केवल इस मसविदे की मुख्य बातों पर ही ध्यान दे रहे हैं। हमारा विचार है कि इन परिस्थितियों में इस मसविदे पर बातचीत करना लाभप्रद सिद्ध नहीं होगा, क्योंकि यह आपके पहले गुट से सर्वथा भिन्न है, जब तक कि हमने जो कुछ ऊपर कहा है उसके बावजूद भी आप हम से कल कान्फरेंस में इस पर बातचीत करना चाहते हों।"

लार्ड पेथिक-लारेंस का मुस्लिम लीग के अध्यक्ष को ६ मई १६४६ का पत्र

"मुझे आपका कल का पत्र मिला जिसे मैंने अपने साथियों को दिखाया है। इसमें आपने कई प्रश्न उठाये हैं जिनका मैं क्रमशः उत्तर देता हूँ :—

१. आपका कथन है कि कांग्रेस ने 'अन्तिम और निश्चित रूप से ऐसे प्रस्तावित संघ को अस्वीकार कर दिया है जिसके अधीन केवल तीन विषय हों और जिसे टैक्स लगाकर अपने लिए धन प्राप्त करने का अधिकार भी प्राप्त हो।' इस कान्फ्रेंन्स की कार्रवाई के सम्बन्ध में, जो मुझे स्मरण है, यह कथन उसके अनुरूप नहीं है। यह ठीक है कि कांग्रेस के प्रतिनिधियों ने यह राय प्रकट की थी कि यह सीमा बहुत ही संकुचित है और उन्होंने आगे यह तर्क किया था कि यह संघ इतना सीमित है सही; फिर भी इसके अधीन कुछ विषय अवश्य होने चाहियें। कुछ सीमा तक आपने स्वीकार किया था कि इस तर्क में कुछ बल है क्योंकि आपने यह माना था कि, जैसा कि मैं समझता हूँ, आवश्यक धन प्राप्त करने के लिए संघ को कुछ अधिकार देने चाहियें। इस विषय पर (या शायद किसी और विषय पर भी) कोई अन्तिम निर्णय नहीं हुआ था।

२. दूसरे आपका कहना है कि, यदि मैं आपका तात्पर्य ठीक समझता हूँ, प्रान्तों की गुटबन्दी के सम्बन्ध में हमारा मसविदा हमारे निमंत्रण में वर्णित हल से भिन्न है। मुझे दुःख है कि मैं इस विचार को स्वीकार नहीं कर सकता। यह मसविदा निस्सन्देह कुछ विस्तृत रूप में है, क्योंकि इसमें उस ढंग का निर्देश किया गया है जिसके अनुसार प्रान्त किसी भी गुट में शामिल होने का निर्णय कर सकते हैं। मुस्लिम लीग के विचारों तथा गुटबन्दी के फलस्वरूप प्रस्तुत कांग्रेस के प्रारम्भिक विचारों के बीच संयत समझौता कराने के उद्देश्य से हमने यह निश्चित किया है।

३. इससे आगे आपने उस व्यवस्था पर एतराज किया है जिसका हमने विधान-निर्माण करने के लिए सुझाव किया है। मैं आपको बताना चाहूँगा कि स्वयं आपके यह स्पष्ट करते समय कि आपकी दो विधान-निर्मात्री सभाएं किस प्रकार कार्य करेंगी, गत मंगलवार को कान्फरेंस में यह स्वीकार किया गया था कि संघ के विधान का निर्णय करने के लिए इन दोनों सभाओं को अन्त में सम्मिलित होना ही पड़ेगा और कार्य-पद्धति का निर्णय करने के लिए इन दोनों सभाओं के प्रारम्भिक सम्मिलित अधिवेशन पर भी आपने एतराज नहीं किया था। जो कुछ हम प्रस्तुत कर रहे हैं वह वास्तव में ठीक चीज है जो भिन्न शब्दों में कही गयी है। अतः जब आप इन शब्दों का प्रयोग करते हैं कि 'यह प्रस्ताव कांग्रेस-द्वारा स्पष्ट रूप से अस्वीकार कर दिया गया था।' तो मैं आपका तात्पर्य समझने में असमर्थ हूँ।

४—अगले पैरे में आप यह पूछते हैं कि मेरे भेजे हुए मसविदे में कहे गये सुझाव-किसने प्रस्तुत किये हैं। इसका उत्तर यह है कि मंत्रि प्रतिनिधि-मण्डल और श्रीमान् वाइसराय की ओर से ये भेजे गये हैं जो कांग्रेस और मुस्लिम लीग के दृष्टिकोणों की दरार को पाटने का प्रयत्न कर रहे हैं।

५—इसके बाद आपने मेरे निमंत्रण में वर्णित प्रारम्भिक फार्मूला से हमारे द्वारा भिन्न मार्ग ग्रहण करने पर एतराज किया है। मैं आपको स्मरण कराऊंगा कि मेरा निमंत्रण स्वीकार कर

के न तो मुस्लिम लीग ने और न कांग्रेस ने इस हल को पूर्ण रूप से स्वीकार करने के लिए अपने आप को बाध्य किया था और २६ अप्रैल के अपने पत्र में मैंने ये शब्द लिखे थे—

'कभी भी हमारा यह खयाल नहीं है कि मुस्लिम लीग तथा कांग्रेस-द्वारा हमारा निमंत्रण स्वीकार करने का अर्थ यह होगा कि मेरे पत्र की शर्तों को पूर्ण रूप से स्वीकार करके ही वे प्रस्तावित सम्मेलन में भाग ले रहे हैं। ये शर्तें समझौते के लिए हमारी ओर से बातचीत का प्रस्तावित आधारमात्र हैं और मुस्लिम लीग-कार्य-समिति से हमने इस बात का अनुरोध किया है, कि उस के सम्बन्ध में हम से तथा कांग्रेस-प्रतिनिधियों से विचार विनिमय करने के लिए वह अपने प्रतिनिधि भेजने के लिए राजी हो जाय।' निश्चय ही केवल यही समझदारी का रुख हो सकता है, क्योंकि हमारे सारे विचार-विमर्श का उद्देश्य यही है कि समझौते के लिए प्रत्येक सम्भव उपाय की खोज की जा सके।

६— संघ के अधीन विषयों की सूची में (मूल अधिकारों को) विषय बढ़ाने का सुझाव हमने रखा, क्योंकि हमको प्रतीत हुआ कि उसे भी सम्मेलन का एक विचारणीय विषय बनाने में बड़े सम्प्रदायों तथा छोटी अल्प-संख्यक जातियों, दोनों ही का लाभ होगा।

रहा अर्थ व्यवस्था-का प्रश्न, इसके सम्बन्ध में, निस्संदेह सम्मेलन में पूर्णरूप से विचार करने की स्वतंत्रता रहेगी कि इस शब्द को उसके प्रसंग के अंतर्गत सम्मिलित करने का यथार्थ महत्व क्या है।

७—आपके निम्नलिखित दो पैरे मुख्यतया आपके पिछले तर्कों की पुनर्व्याख्यामात्र हैं और उनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। आपके अंतिम पैरा से ज्ञात होता है कि यद्यपि परिस्थिति की दृष्टि से आपका खयाल है कि आज तीसरे पहर के लिए निश्चित सम्मेलन में मुस्लिम लीगी प्रतिनिधि-मण्डल के उपस्थित होने से कोई लाभ न निकल सकेगा, फिर भी यदि हम ऐसी इच्छा प्रकट करें तो आप पधारने के लिए तैयार हैं। मैं और मेरे सहयोगी, पेश किये गये कागज के सम्बन्ध में दोनों दलों के विचार जानने के इच्छुक हैं, और इसलिए आप के सम्मेलन में आने से प्रसन्न होंगे।'

पंडित जवाहरलाल नेहरू का लार्ड पेथिक-लारेंस को पत्र

"मेरे सहयोगियों तथा मैंने बड़ी सावधानीपूर्वक आपके द्वारा भेजे गये खरीते पर विचार किया है, जिसमें समझौते के लिए विभिन्न सुझाव उपस्थित किये गये हैं। २८ अप्रैल को मैंने आपके पास एक पत्र भेजा था, जिसमें आपके २७ अप्रैलवाले पत्र में उल्लिखित 'आधारभूत सिद्धांतों के सम्बन्ध में कांग्रेस के दृष्टिकोण' का मैंने स्पष्टीकरण किया था। सम्मेलन की पहली बैठक होने के बाद ही ६ मई को मैंने आपको पुनः पत्र लिखा था, जिससे सम्मेलन में विचार के लिए उपस्थित किये जानेवाले प्रश्नों के सम्बन्ध में कोई भ्रम न रह जाय।

अब आपके खरीते से प्रकट होता है कि आप के कुछ सुझाव हमारे विचारों तथा कांग्रेस-द्वारा निरंतर प्रकट किये गये विचारों के विरुद्ध हैं। इस प्रकार हम बड़ी कठिन परिस्थिति में हैं। हमारी यह सदा से इच्छा रही है और अब भी है कि समझौते के लिए तथा भारत में शक्ति हस्तान्तरित करने के लिए प्रत्येक सम्भव उपाय को ढूंढ निकाला जाय और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हम काफी आगे बढ़ने को तैयार हैं। परन्तु स्पष्टतः कुछ ऐसी सीमाएं हैं, जिनका अतिक्रमण करना हमारे लिए सम्भव नहीं है—विशेषकर ऐसी अवस्था में जब कि हमें पूर्ण विश्वास हो चुका हो कि ऐसा करना भारत की जनता के लिए और स्वाधीन राष्ट्र के रूप में भारत की प्रगति के लिए हानिकर सिद्ध होगा।

अपने पिछले पत्रों में मैं एक शक्तिशाली संघ की आवश्यकता पर जोर डाल चुका हूँ । मैं यह भी कह चुका हूं कि मैं उप-संघों तथा प्रान्तों की प्रस्तावित गुटबंदी के विरुद्ध हूं और साथ ही मैं असमान गुटों-परिषदों तथा धारा-सभाओं को शासन में बराबर प्रतिनिधित्व दिये जाने के भी खिलाफ हूँ । यदि प्रान्त तथा देश के अन्य भाग परस्पर सहयोग करना चाहें तो हम उनके मार्ग में रोड़े नहीं अटकाना चाहते, किन्तु ऐसा केवल ऐच्छिक आधार पर ही होना चाहिये ।

आपने जो प्रस्ताव उपस्थित किये हैं उनका उद्देश्य स्पष्टतः विधान-निर्मात्री परिषद् के अबाधित रूप से निर्णय करने के अधिकारों को सीमित करना है । हमारी समझ में नहीं आता कि ऐसा किस प्रकार किया जा सकता है । अभी हमारा सम्बन्ध व्यापक समस्या के एक ही अंग से है । यदि इस अंग के सम्बन्ध में अभी कोई निर्णय कर लिया जाय तो वह उस निर्णय के विरुद्ध हो सकता है, जो हम अथवा विधान-निर्मात्री-परिषद् समस्या के अन्य अंगों के सम्बन्ध में आगे जाकर कर सकती है । हमें तो केवल यही उचित मार्ग दिखायी देता है कि विधान-निर्मात्री परिषद् को, अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा-विषयक कतिपय संरक्षणों के अतिरिक्त अपना विधान तैयार करने की पूरी स्वतंत्रता रहनी चाहिये । इस प्रकार हम सहमत हो सकते हैं कि बड़े साम्प्रदायिक प्रश्नों का या तो सम्बन्धित दलों की सहमति से निबटारा कर दिया जाय अथवा इस प्रकार की सहमति न मिलने की अवस्था में पंचायत-द्वारा उनका निबटारा करा दिया जाय ।

आपके वे प्रस्ताव

आपने हमारे पास जो प्रस्ताव भेजे हैं (८ डी० ई० एफ० जी०) उनसे प्रकट होता है कि ऐसे पृथक् विधान तैयार किये जा सकते हैं, जो एक शक्तिहीन केन्द्रीय व्यवस्था-द्वारा जुड़े होंगे और यह व्यवस्था पूर्ण रूप से इन गुटों की दया पर निर्भर रहेगी ।

इसके अतिरिक्त प्रारम्भ में प्रत्येक प्रान्त का अनिवार्यतः एक विशेष गुट में सम्मिलित होना जरूरी है, चाहे वह ऐसा करना चाहें अथवा नहीं । प्रश्न उठता है कि सीमाप्रान्त को, जो एक कांग्रेसी प्रान्त है, एक कांग्रेस-विरोधी गुट में सम्मिलित होने के लिए क्यों विवश किया जाय ?

हम अनुभव करते हैं कि मनुष्यों के प्रति व्यक्ति के रूप में अथवा सामूहिक रूप से व्यवहार करते समय तर्क और युक्ति के अतिरिक्त और कितनी ही बातों का ध्यान रखना पड़ता है। किन्तु तर्क और युक्ति की सदा उपेक्षा नहीं की जा सकती और यदि अन्याय और तर्कहीनता इकट्ठे हो जायँ तो इनका मेल खतरनाक सिद्ध हो सकता है और विशेषकर ऐसी अवस्था में तो और भी अधिक, जब हम करोड़ों प्राणियों के भविष्य का निर्माण करने जा रहे हैं ।

अब मैं आपके खरीते की कुछ बातों के सम्बन्ध में विचार प्रकट करूँगा और उनके सम्बन्ध में सुझाव उपस्थित करूँगा :—

नं० १—आपने अपने सुझावों में यह तो कहा है कि केन्द्रीय संघ को इस बात के लिए अधिकार प्राप्त होंगे कि जो विषय उसके अपने अधीन होंगे उनके लिए वह आवश्यक धन प्राप्त कर सकता है, किन्तु हमारे विचार में यह स्पष्ट रूप से कह देना चाहिये कि केन्द्रीय संघ को राजस्व प्राप्त करने का अधिकार होगा । साथ ही मुद्रा और जकात तथा उनसे सम्बद्ध अन्य विषय भी केन्द्रीय संघ के अधीन हर हालत में रहने चाहियें । एक अन्य आवश्यक संघीय विषय योजना-निर्माण है । योजना-निर्माण का कार्य केवल केन्द्र से ही हो सकता है, यद्यपि प्रान्त अथवा अन्य इकाइयां ही योजनाओं को अपने-अपने क्षेत्रों में कार्यान्वित करेंगी ।

संघ को यह भी अधिकार होना चाहिये कि विधान भंग होने अथवा गम्भीर सार्वजनिक

संकट उत्पन्न होने की अवस्था में आवश्यक कार्रवाई कर सके।

निर्णय पंचायत के सुपुर्द

नं० ५ और ६—हम शासन परिषद् तथा धारासभा दोनों ही में सर्वथा असमान गुटों के प्रस्तावित समान-प्रतिनिधित्व के पूर्णतः विरोधी हैं। यह अनुचित है और इससे गड़बड़ी फैलेगी। ऐसी व्यवस्था में पारस्परिक विरोध और स्वच्छंद प्रगति के सर्वनाशी बीज निहित हैं। यदि इस अथवा किसी ऐसे ही विषय पर समझौता न हो सके, तो हम उसे निर्णय के लिए पंचायत के सुपुर्द करने को तैयार हैं।

नं० ७—हम इस सुझाव को मानने के लिए तैयार हैं कि दस वर्ष के उपरान्त विधान पर पुनर्विचार किया जाय। वास्तव में विधान में ऐसी कोई व्यवस्था तो रखनी ही पड़ेगी जिससे कि किसी भी समय उस में संशोधन किया जा सके।

दूसरी धारा में कहा गया है कि विधान पर पुनर्विचार का कार्य कोई ऐसी ही संस्था करे, जो कि उसी आधार पर बनी हो, जिस पर कि विधान-निर्मात्री परिषद् बनी है। हमें आशा है कि भारत का विधान वयस्क-मताधिकार पर आधारित होगा। आज से दस वर्ष बाद भारत समस्त महत्त्वपूर्ण विषयों पर अपनी राय देने के लिए वयस्क मताधिकार ही चाहेगा, इससे कम में वह संतुष्ट नहीं होगा।

नं० ८ ए—हम सुझाव उपस्थित करते हैं कि चुनाव का न्यायपूर्ण और उचित तरीका, जिससे सभी दलों के प्रति न्याय हो सके, यही है कि एकाकी हस्तान्तरित मताधिकार के द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व हो। स्मरण रखना चाहिये कि प्रान्तीय व्यवस्थापिका-सभाओं के चुनावों के लिए जो मौजूदा आधार है उसमें अल्पसंख्यकों को प्रबल विशिष्ट प्रतिनिधित्व दिया गया है।

१–१० का अनुपात बहुत कम प्रतीत होता है और इससे विधान-निर्मात्री परिषद् के सदस्यों की संख्या अत्यन्त सीमित हो जायगी। सम्भवतः यह संख्या २०० से अधिक नहीं होगी। परिषद् के सम्मुख जो अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण विषय उपस्थित किये जायँगे उन्हें ध्यान में रखते हुए सदस्यों की संख्या काफी अधिक होनी चाहिये। हमारा सुझाव है कि प्रान्तीय व्यवस्थापिका-सभाओं के सदस्य की संख्या का पंचमांश सदस्य विधान निर्मात्री परिषद् में अवश्य रहना चाहिये।

नं०८ बी०—यह धारा अस्पष्ट है और इसके स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। परन्तु अभी हम इसके विस्तार में नहीं जाना चाहते।

नं० ८–डी० ई० एफ० जी०—इन धाराओं के सम्बन्ध में मैं पहले ही लिख चुका हूँ। हमारे विचार में इन गुटों की रचना तथा प्रस्तावित विधि दोनों ही गलत और अवांछनीय हैं। यदि प्रान्त चाहें तो हम गुटों के निर्माण पर आपत्ति नहीं करना चाहते, किंतु इस विषय को विधान-निर्मात्री-परिषद् के निर्णय के लिए छोड़ देना चाहिये। विधान का मसविदा तैयार करने और उसके निर्णय के कार्य का श्रीगणेश केन्द्रीय संघ से होना चाहिये। इसमें प्रान्तों तथा अन्य इकाइयों के लिए समान तथा सदृश नियम होने चाहियें। उसके बाद प्रान्त स्वयं उनमें वृद्धि कर सकते हैं।

नं० ८ एच०—आज की परिस्थितियों में हम बहुत कुछ इसी प्रकार की धारा स्वीकार करने के लिए तैयार हैं पर मतभेद की अवस्था में उसका निर्णय पंचायत-द्वारा कर लिया जाय।

मैंने आपके विचारपत्र के प्रस्तावों के कुछ स्पष्ट दोषों का, जैसे कि वे हमें दीख पड़ते हैं,

ऊपर उल्लेख किया है। यदि, जैसा कि हमने बताया है, उन्हें दूर कर दिया जाय तो हम कांग्रेस से आपके प्रस्तावों को स्वीकार करने की सिफारिश कर सकते हैं। परन्तु जिस रूप में आपने विचारपत्र में अपने प्रस्तावों को रखा है उस रूप में उन्हें मानने में हम असमर्थ हैं।

खेद का विषय

इसलिए सब मिलाकर यदि ये सुझाव हर हालत में हमारे लिए अनिवार्य रूप से स्वीकार्य हों तो हमें दुःख है कि मुस्लिम लीग के साथ समझौते की पूर्ण इच्छा रखते हुए भी, उनमें से अधिकांश सुझावों को हम अस्वीकार कर देंगे। हम तीनों जिस बुराई से बचने का प्रयत्न कर रहे हैं, कहीं ऐसा न हो कि हम उससे भी बड़ी बुराई में फँस जायँ।

यदि कोई ऐसा समझौता न हो सके, जो दोनों दलों के लिए सम्मानजनक हो तथा स्वाधीन और अखंड भारत के विकास के अनुकूल हो, तो हमारी राय है कि केन्द्रीय असेम्बली के निर्वाचित सदस्यों के प्रति उत्तरदायी एक अंतर्कालीन सरकार की स्थापना तुरन्त कर दी जाय और कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग के विधान-निर्मात्री-परिषद्-सम्बन्धी मतभेद को फैसले के लिए किसी स्वतंत्र पंचायत के सुपुर्द कर दिया जाय।

पंडित जवाहरलाल नेहरू के इस प्रस्ताव के बाद कि दोनों दलों के बीच विवादास्पद मामलों पर निर्णय देने के लिए एक मध्यस्थ नियुक्त किया जाना चाहिये। सम्मेलन की कार्रवाई, इस खयाल से कि मध्यस्थ के बारे में दोनों दलों में समझौता होने की संभावना है, स्थगित कर दी गयी और दोनों दलों में निम्न पत्रव्यवहार हुआ:—

पंडित जवाहरलाल नेहरू का मुस्लिम लीग के अध्यक्ष को ता० १० मई १९४६ का पत्र

कल सम्मेलन में किये गये निश्चय के अनुसार मेरे साथियों ने उपयुक्त अध्यक्ष के चुनाव के सम्बन्ध में काफी सोच-विचार किया है। हमारा विचार है मध्यस्थ पद के लिए अंग्रेज, हिन्दू, मुस्लिम और सिख को न चुनना ही अच्छा रहेगा। अतः हमारा चुनाव-क्षेत्र सीमित है। फिर भी हमने एक सूची तैयार कर ली है, जिस में से चुनाव किया जा सकता है। मेरा अनुमान है कि आपने भी अपनी कार्यकारिणी समिति के परामर्श से संभावित मध्यस्थों की ऐसी सूची तैयार की होगी। क्या आप चाहेंगे कि हम—अर्थात् मैं और आप इन सूचियों पर मिल कर विचार करें। यदि हो, तो इस काम के लिए मुलाकात निश्चित कर सकते हैं। हमारे परस्पर विचार के बाद आठों व्यक्ति—चार कांग्रेस और चार लीग के प्रतिनिधि हमारी सिफारिश पर मिल कर विचार करके किसी निश्चय पर पहुँच सकते हैं, जिसे हम कल सम्मेलन में प्रस्तुत कर दें।"

मुस्लिम लीग के अध्यक्ष का पं० जवाहरलाल नेहरू को १० मई, १९४६ का पत्र

"आपका १० मई का पत्र मुझे सायं ६ बजे मिला। कल वाइसराय-भवन में आपकी और मेरी मुलाकात के समय हमने मध्यस्थ निश्चित करने के प्रश्न के अतिरिक्त कई अन्य बातों पर भी विचार-विमर्श किया था। संक्षिप्त बातचीत के बाद हम इस परिणाम पर पहुँचे थे कि कल सम्मेलन में आप-द्वारा पेश किये गये प्रस्ताव के सभी अर्थों पर अपने-अपने साथियों से परामर्श के बाद हम पुनः विचार करेंगे।

"आपके प्रस्ताव के विभिन्न पहलुओं पर विचारार्थ कल प्रातः दस बजे के बाद किसी समय, जो आपको ठीक जँचे, आपसे मिलकर मुझे प्रसन्नता होगी।"

पं० जवाहरलाल नेहरू का मुस्लिम लीग के अध्यक्ष को ११ मई, १९४६ का पत्र

"आपका १० मई का पत्र मुझे कल रात १० बजे मिल गया था।

वाइसराय-भवन में बातचीत के दौरान में आपने मध्यस्थ के चुनाव के अलावा कई अन्य बातों का भी जिक्र किया था और मैंने आपको उनके बारे में अपनी प्रतिक्रिया प्रकट कर दी थी। परन्तु मैं इस खयाल में रहा कि मध्यस्थ नियत करने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया था और इससे आगे नाम तजवीज करना ही हमारा कार्य था। वास्तव में सम्मेलन में ऐसा निश्चय हो जाने के बाद ही हमने बातचीत की, मेरे साथियों ने भी उसी आधार पर कार्रवाई की और उपयुक्त नामों की सूची तैयार कर ली। हमसे आशा की जाती है कि आज दोपहर को सम्मेलन में हम मध्यस्थ के बारे में अपना निर्णय पेश करें। कम से कम इस विषय पर अपने सुझाव तो अवश्य प्रस्तुत करें।

किसी को मध्यस्थ बनाने की मुख्य शर्त उसके निर्णय को स्वीकार करना होती है, यह हम स्वीकार करते हैं। हमारी राय है कि हम इस प्रश्न पर गौर करें और तदनुसार अपना निर्णय सम्मेलन के आगे रखें।

आपके सुझाव के अनुसार मैं आज प्रातः १०-३० बजे आपके निवासस्थान पर आऊँगा।'

मुस्लिम लीग के अध्यक्ष का पं० जवाहरलाल के नाम ११ मई, १९४६ का पत्र

"मुझे ११ मई का आपका पत्र मिला।

वाइसराय भवन में हमारे बीच हुई बातचीत के दौरान में, जो कि १५ या २० मिनट तक रही होगी, मैं ने आपके प्रस्ताव के विभिन्न पहलुओं तथा अर्थों की ओर संकेत किया था और हमारा इसी विषय पर कुछ सोच-विचार भी हुआ था, परन्तु हमारे बीच किसी भी बात पर कोई समझौता नहीं हुआ था। केवल आपके इस प्रस्ताव से सहमत होकर कि आप अपने सहकारियों से परामर्श कर लें और मैं भी ऐसा ही कर लूं, इस प्रश्न पर आगे विचार करने के लिए हमने उस दिन की बैठक को अगले दिन के लिए स्थगित कर दिया था। मुझे प्रसन्नता होगी यदि आप आगे बातचीत के लिए आज प्रातः १०-३० बजे मुझे मिल सकें।"

मुस्लिम लीग के सभापति का स्मृति-पत्र जिसमें १२ मई के सम्मेलन के निर्णयानुसार लीग की मांगें सम्मिलित हैं। इसकी प्रतियां मंत्रिमिशन तथा कांग्रेस को भेजी गयीं।

"हमारे सिद्धान्त जिनकी स्वीकृति अपेक्षित है:—

१—छः मुस्लिम प्रान्तों (पंजाब, उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्त, बलोचिस्तान, सिंध, बंगाल तथा आसाम) का एक गुट बनाया जाय जिसके अधिकार में विदेशी मामलों, रक्षा तथा रक्षा-सम्बन्धी यातायात को छोड़कर समस्त विषय होंगे। इन तीन विषयों पर प्रान्तों के दोनों गुटों—(मुसलमान प्रान्तों का गुट) जिसे आगे पाकिस्तान-गुट कहा गया है तथा हिन्दू-प्रान्तों का गुट—की विधान-निर्मात्री परिषदें एक साथ बैठकर विचार करेंगी।

२—उपर्युक्त ६ मुस्लिम प्रान्तों की पृथक् विधान-निर्मात्री-परिषद् होगी जो गुट के लिए तथा गुट के अन्तर्गत प्रान्तों के लिए विधान बनायेगी तथा यह निर्धारित करेगी कि कौन से विषय पाकिस्तान-गुट के अधीन होंगे और कौन-से प्रान्तों के अधीन। अवशिष्ट सत्ताधिकार प्रान्तों के रहेंगे।

३—विधान-निर्मात्री परिषद् के लिए प्रतिनिधियों का चुनाव ऐसे ढंग से होगा कि पाकिस्तान प्रान्तों में रहनेवाली विभिन्न जातियों को जन-संख्या के अनुपात से प्रतिनिधित्व प्राप्त हो।

४—विधान-निर्मात्री परिषद्-द्वारा पाकिस्तान तथा उसके प्रान्तों के विधान अन्तिम रूप

से बना लिए जाने के बाद, प्रत्येक प्रान्त गुट से बाहर निकलने के लिए स्वतंत्र होगा, बशर्ते कि प्रान्त के लोगों की इच्छा लोकमत द्वारा जान ली गयी हो।

५—संयुक्त विधान-निर्मात्री परिषद् में यह विषय विचारणीय रहना चाहिये कि संघ में व्यवस्थापक मंडल होगा या नहीं। संघ के लिए धन प्राप्त करने का प्रश्न भी संयुक्त परिषद् के निर्णय पर छोड़ देना चाहिये, किन्तु यह धन कर-द्वारा किसी भी दशा में प्राप्त नहीं किया जायगा।

६—संघ की राज्य-परिषद् तथा असेम्बली, में यदि ये बनायी जायँ, दोनों प्रान्तीय गुटों का प्रतिनिधित्व बराबर हो।

७—संघीय विधान में कोई भी ऐसी बात, जो साम्प्रदायिक प्रश्न से सम्बन्ध रखती हो, स्वीकृत नहीं समझी जावेगी जब तक कि उसे संयुक्त विधान-निर्मात्री परिषद्, हिन्दू-प्रान्तों की परिषद् तथा पाकिस्तान-प्रान्तों की परिषद् के सदस्यों के बहुमत का अलग-अलग समर्थन प्राप्त न हो।

८—किसी भी विवादग्रस्त मामले में संघ-द्वारा व्यवस्थापन तथा शासन-सम्बन्धी निर्णय नहीं किया जायगा जब तक कि निर्णय के पक्ष में तीन-चौथाई का बहुमत न हो।

९—गुट के तथा प्रान्तीय विधानों में विभिन्न जातियों के धर्म, संस्कृति तथा सम्बन्धी अन्य आधारभूत विचार सम्मिलित होंगे।

१०—संघ के विधान में यह व्यवस्था होगी कि अपनी असेम्बली के बहुमत से कोई भी प्रान्त विधान की धाराओं पर पुनः विचार का प्रश्न उठा सकता है और प्रथम दस वर्ष के बाद संघ से बाहर निकलने के लिए स्वतंत्र होगा।

शान्तिपूर्ण तथा मैत्रीपूर्ण समझौते के लिए ये हमारे सिद्धान्त हैं। ये शर्तें आंशिक नहीं बल्कि सम्पूर्ण रूप से ही प्रस्तुत की जाती हैं। उपर्युक्त सब शर्तें अन्योन्याश्रित हैं।

समझौते के आधार के रूप में कांग्रेस के सुझाव १२ मई, १९४६

१—विधान-निर्मात्री परिषद् इस प्रकार बनायी जाय :—

(क) प्रतिनिधि प्रत्येक प्रान्तीय असेम्बली-द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व (एकाकी हस्तांतरित मत) के आधार पर चुने जायँ। इस प्रकार चुने गये लोगों की संख्या असेम्बली के सदस्य की संख्या का $\frac{1}{5}$ भाग हो और जिन्हें चुना जाय वे चाहे असेम्बली के सदस्य हों या बाहर के व्यक्ति हों।

(ख) देशी राज्यों-द्वारा प्रतिनिधि ब्रिटिश भारत के समान जन-संख्या के अनुपात से भेजे जायँ। इन प्रतिनिधियों को किस प्रकार चुना जायगा, इस प्रश्न पर बाद में विचार किया जाय।

२—विधान-निर्मात्री परिषद् भारतीय संघ का विधान तैयार करेगी। संघ में एक तो अखिल भारतीय सरकार होगी और एक व्यवस्थापक मंडल होगा जिसके अधिकार में विदेशी मामले, रक्षा, व्यवस्था, यातायात्, आधारभूत अधिकार, मुद्रा, जकात तथा योजना-निर्माण और ऐसे अन्य विषय होंगे जो निकटवर्ती जांच के बाद उल्लिखित विषयों के समकक्ष समझे जायँ। संघ को इन विषयों के संचालन के लिए आवश्यक धन प्राप्त करने के तथा स्वतः राजस्व जुटाने के अधिकार प्राप्त होंगे। विधान के भंग हो जाने की दशा में तथा गंभीर सार्वजनिक आपत्काल के समय प्रतिकारात्मक कार्रवाई करने के भी संघ को अधिकार होने चाहियें।

३—शेष सब अधिकार प्रान्तों अथवा संघ की इकाइयों को प्राप्त होंगे।

४—प्रान्तों के गुट बनाये जा सकते हैं और ये गुट निर्धारित करेंगे कि प्रान्तीय विषयों में से कौन-से विषय सामान्य रूप से वे अपने अधिकार में रखना चाहते हैं।

५—उपर्युक्त पैरा २ के अनुसार जब विधान-निर्मात्री परिषद् अखिल भारतीय संघ का विधान बना चुकेगी, प्रान्तीय प्रतिनिधि प्रान्तीय विधान बनाने के लिए गुट बना सकते हैं और यदि वे चाहें तो सम्बन्धित गुट का विधान भी बना सकते हैं।

६—संघीय विधान में कोई भी प्रमुख मामला, जिसका साम्प्रदायिक प्रश्न से सम्बन्ध हो, विधान-निर्मात्री परिषद् द्वारा स्वीकृत नहीं समझा जायगा जब तक कि सम्बन्धित सम्प्रदाय अथवा सम्प्रदायों के असेम्बली में उपस्थित तथा मतदाता सदस्यों का बहुमत पृथक् रूप से उस मामले का समर्थन न करे। यदि समझौते-द्वारा ऐसे मामले का निबटारा न हो सके, तो वह पंच-द्वारा निर्णय के लिए दे दिया जायगा। ऐसी अवस्था में जब संदेह हो कि अमुक मामला प्रमुख साम्प्रदायिक है अथवा नहीं, असेम्बली का अध्यक्ष फैसला करेगा, और यदि इच्छा हो तो निर्णय के लिए यह प्रश्न फेडरल कोर्ट के सुपुर्द किया जायगा।

७—विधान-निर्माण के कार्य में यदि कोई भी झगड़ा खड़ा हो, तो वह पंच-द्वारा निर्णय के लिए दे दिया जायगा।

८—प्रतिपादित प्रतिबन्धों के अनुसार, विधान में किसी भी समय उस पर पुनर्विचार का प्रबन्ध होना चाहिये। यदि ऐसी इच्छा हो तो यह विशेष रूप से लिख दिया जाय कि प्रति दस वर्षों के बाद सारे विधान पर पुनर्विचार होगा।"

मुस्लिम लीग द्वारा १२ मई, १९४६ को समझौते के लिए सुझाए गये सिद्धान्तों पर कांग्रेस की टिप्पणी

इन मामलों के सम्बन्ध में मुस्लिम लीग का दृष्टिकोण कांग्रेस के दृष्टिकोण से इतना भिन्न है कि उसकी प्रत्येक मद पर शेष मामले का उल्लेख किये बिना पृथक् रूप से सोच-विचार करना कठिन है। कांग्रेस ने इस सम्बन्ध में जो रूप-रेखा तैयार की है उसका एक पृथक् नोट में संक्षेप में उल्लेख किया गया है। इस नोट पर तथा मुस्लिम लीग के प्रस्तावों पर विचार करने से ये कठिनाइयां और सम्भावित समझौता—दोनों ही स्पष्ट हो जायँगे।

मुस्लिम लीग के प्रस्तावों पर संक्षेप में निम्नलिखित विचार किया गया है :—

१—हमारा सुझाव है कि उचित कार्यप्रणाली यह होगी कि प्रारम्भ में समस्त भारत के लिए एक विधान-निर्मात्री संस्था अथवा विधान-निर्मात्री परिषद् बैठे और बाद में यदि सम्बद्ध प्रान्त चाहें तो इस प्रकार बनाये गये गुटों के लिए भी विधान-निर्मात्री परिषद् बैठे। यह मामला प्रान्तों पर ही छोड़ दिया जाना चाहिए और यदि वे एक गुट के रूप में काम करना चाहें और इस उद्देश्य के लिए स्वयं अपना विधान बनाना चाहें तो उन्हें ऐसा करने की स्वतंत्रता रहे।

चाहे कुछ भी हो यह स्पष्ट है कि आसाम को उपर्युक्त गुट में नहीं रखा जा सकता और उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्त, जैसा कि चुनाव के परिणामों से प्रत्यक्ष है, इस प्रस्ताव के पक्ष में नहीं है।

२—केन्द्रीय विषयों के अतिरिक्त अवशिष्ट अधिकार प्रान्तों को देना हमने स्वीकार कर लिया है। वे उनका यथेच्छ उपयोग कर सकते हैं और यदि वे चाहें तो जैसा कि ऊपर कहा गया है, गुट के रूप में भी रह सकते हैं। ऐसे किसी गुट का अन्तिम स्वरूप क्या होगा, वह अभी नहीं

कहा जा सकता और यह बात सम्बद्ध प्रान्तों के प्रतिनिधियों पर ही छोड़ दी जानी चाहिए।

३—हमने यह सुझाव पेश किया है कि निर्वाचन का सर्वोत्तम तरीका 'सिंगल ट्रांसफरेबल वोट' (एकाकी हस्तान्तरित मत-पद्धति) देने का है। इससे विभिन्न सम्प्रदायों के व्यवस्थापक मंडलों में अपने मौजूदा प्रतिनिधित्व के अनुपात में उचित प्रतिनिधित्व प्राप्त हो जायगा। यदि जन-संख्या के आधार पर प्रतिनिधित्व दिया जाय तो हमें भी कोई विशेष आपत्ति नहीं है, परन्तु इससे उन सभी प्रान्तों में कठिनाइयां उत्पन्न हो जायँगी जहां कि कुछ सम्प्रदायों को विशिष्ट प्रतिनिधित्व दिया गया है। जो भी सिद्धान्त स्वीकृत होगा वह अनिवार्यतः सभी प्रान्तों पर लागू होगा।

४—किसी प्रान्त को अपने गुट से पृथक् होने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि उस गुट में शामिल होने के लिए उस प्रान्त की पूर्व-सहमति आवश्यक है।

५—हम यह आवश्यक समझते हैं कि संघ-केन्द्र की अपनी व्यवस्थापिका सभा होनी चाहिये। हम यह भी आवश्यक समझते हैं कि संघ को अपना राज स्वप्राप्त करने का अधिकार होना चाहिये।

६ और ७—हम संघ की शासन-परिषद् अथवा व्यवस्थापिका सभा में प्रान्तीय गुटों के समानता के आधार पर प्रतिनिधित्व के सर्वथा विरोधी हैं। हम समझते हैं कि संघीय विधान में की गई यह व्यवस्था, कि कोई भी बड़ा सांप्रदायिक प्रश्न तबतक विधान-निर्मात्री परिषद्-द्वारा पास नहीं समझा जायगा जबतक कि परिषद् में उसे संप्रदाय अथवा संप्रदायों के उपस्थित प्रतिनिधियों का पृथक् बहुमत तथा सम्मिलित रूप से सब प्रतिनिधियों का बहुमत नहीं प्राप्त हो जाता, सभी अल्पसंख्यकों के लिए काफी और बड़ा वैधानिक संरक्षण है। हमने तो इससे भी कुछ अधिक व्यापक सुझाव रखे हैं और इसमें सभी सम्प्रदाय शामिल कर लिये हैं जैसा कि अन्यत्र नहीं किया गया। छोटे संप्रदायों के मामले में कुछ कठिनाइयां उपस्थित हो सकती हैं; परन्तु ऐसी कठिनाइयों का निराकरण पंच-द्वारा किया जा सकता है। इसे और अधिक व्यावहारिक बनाने के उद्देश्य से हम इस सिद्धान्त को कार्यान्वित करनेकी प्रणाली पर विचार करनेको तैयार हैं।

८—यह प्रस्ताव इतना व्यापक है कि कोई भी सरकार अथवा व्यवस्थापिका सभा चल ही नहीं सकती। एक बार बड़े-बड़े सांप्रदायिक प्रश्नों के लिए संरक्षणों की व्यवस्था कर देने पर अन्य विषयों के लिए, चाहे वे विवादास्पद हों अथवा नहीं, किसी संरक्षण की आवश्यकता नहीं। इसका अर्थ तो केवल यह होगा कि सब प्रकार के निहित स्वार्थ सुरक्षित हो जायँ और वस्तुतः किसी भी दिशा में कोई प्रगति न हो सके। इसलिए हम इसका सर्वथा विरोध करते हैं।

९—हम मौलिक अधिकारों और धर्म, संस्कृति तथा अन्य ऐसे ही मामलों के सम्बन्ध में संरक्षण का विधान में समावेश करने को सर्वथा तैयार हैं। हमारा मत है कि इसके लिए उचित स्थान अखिल भारतीय संघ विधान है। ये मौलिक अधिकार समस्त भारत के लिए एक से ही होने चाहियें।

१०—प्रत्यक्ष है कि संघ के विधान में उसके संशोधन की व्यवस्था तो रहेगी ही। उसमें यह व्यवस्था की जा सकती है कि दस वर्ष के बाद उस पर पूर्णत: पुनर्विचार हो सके। तब इस प्रश्न पर पूर्ण रूप से पुनर्विचार किया जा सकेगा। यद्यपि प्रान्तों के इस संघ से अलग होने की बात तो इसमें है ही, फिर भी हम उसका यहां कोई उल्लेख नहीं करना चाहते, क्योंकि हम इस विचार को प्रोत्साहन नहीं देना चाहते।

सूचना—कान्फरेन्स अपना मकसद हासिल करने में असफल रही। १२ मई को वह भंग होगयी। मंत्रि-मिशन और वाइसराय १६ मई को शिमले से दिल्ली आगये और १६ को उन्होंने एक वक्तव्य प्रकाशित करके विधान-निर्मात्री संस्था की स्थापना के प्रस्ताव रखे।

मंत्रिमण्डल-मिशन और वाइसराय का १६ मई १६४६ का वक्तव्य

१—मार्च को मंत्रि-प्रतिनिधि मंडल को भारत के लिए रवाना करते समय ब्रिटेन के प्रधान मंत्री श्री एटली ने ये शब्द कहे थे :—

"मेरे सहयोगी इस विचार से भारत जा रहे हैं कि वे शीघ्र से शीघ्र पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करने में भारत की सहायता करने के लिए अधिक प्रयत्न कर सकें। वर्त्तमान सरकार की जगह किस प्रकार की सरकार बनाई जायगी, इसका निर्णय भारत स्वयं करेगा, लेकिन हमारी इच्छा है कि वे एक ऐसे संगठन को तत्काल स्थापित करने में उसकी सहायता करें जिससे वह उस निर्णय पर पहुँच सके।

"मुझे आशा है कि भारत और उसके निवासी ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के अन्तर्गत रहने का निर्णय करेंगे। मुझे विश्वास है कि ऐसा करना वे बहुत लाभदायक समझेंगे।

"लेकिन यदि वह ऐसा फैसला करें तो यह उनकी स्वेच्छा से ही होना चाहिये। बृटिश राष्ट्रमंडल और साम्राज्य किसी बाहरी दबाव की शृंखला से परस्पर सम्बद्ध नहीं है।

यह स्वतंत्र राष्ट्रों का स्वतन्त्र संगठन है। इसके विपरीत यदि उसने बिलकुल स्वतन्त्र होने का निर्णय किया तो हमारे दृष्टिकोण से उसे ऐसा करने का अधिकार है। हमारा यह कर्त्तव्य होगा कि इस शासन-परिवर्तन को अधिक से अधिक सरलता और निर्विघ्नता के साथ सम्पन्न करने में हम उसकी सहायता करें।

२—इन ऐतिहासिक शब्दों से प्रतिष्ठित होकर हमने—मन्त्रि-प्रतिनिधि-मंडल और वाइसराय ने—इस बात का पूर्ण प्रयत्न किया कि भारत के दो प्रमुख राजनीतिक दलों में भारत की अखण्डता और विभाजन के आधारभूत प्रश्नों के सम्बन्ध में कोई समझौता हो सके। नयी दिल्ली में अनेक विचार-विनिमय के उपरांत हम कांग्रेस और मुस्लिम लीग को शिमले में एक सम्मेलन में एकत्रित करने में सफल हो गये। पूर्ण रूप से परस्पर विचार-विनिमय हुआ और दोनों दल समझौते पर पहुँचने के उद्देश्य से पर्याप्त रिआयतें देने को तैयार थे। लेकिन अन्त में दोनों दलों के बीच जो अन्तर शेष रह गया वह दूर न किया जा सका। इस प्रकार कोई समझौता न हो सका। चूंकि कोई समझौता नहीं हो सका है अतः हम यह अपना कर्त्तव्य समझते हैं कि भारत में शीघ्रता से नये विधान की स्थापना के लिए हम जिस व्यवस्थाको श्रेष्ठतम समझें उसे प्रस्तुत करें। यह वक्तव्य ब्रिटेन में मौजूदा सम्राट् की सरकार की पूर्ण स्वीकृति के साथ प्रस्तुत किया जा रहा है।

३—तदनुसार हमने निश्चय किया है कि तत्काल कोई ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये जिसके द्वारा भारत के भावी विधान की रूपरेखा का निर्णय भारतीय ही कर सकें तथा जब तक कि नया विधान अमल में न आये तब तक शासन-कार्य चलाने के लिए एक अन्तर्कालीन सरकार की स्थापना की जाय। हमने छोटे और बड़े दोनों वर्गों के साथ न्याय करने और एक ऐसा हल प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है जिसके अनुसार भारत का भावी शासन व्यावहारिक मार्ग का अनुसरण कर सकेगा तथा जिसके द्वारा रक्षा के लिए भारत को एक ठोस आधार और अपनी सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक प्रगति के लिए उत्तम अवसर प्राप्त हो सकेगा।

४—इस वक्तव्य में हम उस विशालकाय प्रमाण-समूह पर दृष्टिपात नहीं करना चाहते हैं

जो मन्त्रि-प्रतिनिधि-मंडल के समक्ष प्रस्तुत किया गया है। लेकिन यह उचित है कि हम यह स्पष्ट करदें कि मुस्लिम लीग को छोड़ कर शेष समस्त वर्गों में भारत की अखण्डता की देशव्यापी इच्छा विद्यमान है।

विभाजन की सम्भावना

५—लेकिन यह हमें भारत के विभाजन की सम्भावना पर निष्पक्ष भाव से विचार करने से नहीं रोक सकी, क्योंकि हम पर मुसलमानों की अत्यधिक उचित और उग्र चिन्तायुक्त इस भावना का बड़ा प्रभाव पड़ा है कि कहीं उन्हें अनन्तकाल के लिए हिन्दू बहुमत के शासन के नीचे न रहना पड़े।

यह भावना मुसलमानों में इतनी दृढ़ और व्यापक है कि इसे केवल कागज़ी संरक्षणों-द्वारा शान्त नहीं किया जा सकता। भारत में आन्तरिक शान्ति के लिए यह आवश्यक है कि उसे ऐसी योजनाओं-द्वारा स्थापित किया जाय जिनसे मुसलमानों को यह आश्वासन प्राप्त हो सके कि उनकी सभ्यता, धर्म और आर्थिक तथा अन्य हितों की दृष्टि से महत्वपूर्ण विषयों पर उनका नियन्त्रण रहेगा।

६—इसलिए हमने सर्वप्रथम एक पृथक् और पूर्ण स्वतंत्र पाकिस्तान-राष्ट्र के प्रश्न पर विचार किया जिसका मुस्लिम लीग ने दावा प्रस्तुत किया है। इस पाकिस्तान में दो क्षेत्र होंगे। एक उत्तर-पश्चिम, में जिसमें पंजाब, सिंध, उत्तर पश्चिमी सीमाप्रांत और ब्रिटिश बलोचिस्तान होंगे। दूसरा उत्तर-पूर्व में, जिसमें बंगाल और आसाम रहेंगे। लीग इस बात के लिए उद्यत थी कि आगे चलकर सीमा-निर्धारण में आवश्यक परिवर्तन कर लिये जायँ; लेकिन उसने इस बात पर जोर दिया कि पहले पाकिस्तान के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया जाय। पाकिस्तान का पृथक् राष्ट्र स्थापित करने का पहला तर्क इस आधार पर था कि मुस्लिम बहुमत को यह अधिकार है कि वह अपनी इच्छानुसार अपनी शासन-प्रणाली का निर्धारण कर सके। दूसरा तर्क यह था कि आर्थिक तथा शासन-सम्बंधी दृष्टि से पाकिस्तान को व्यवहार्य बनाने केलिए इसमें ऐसे पर्याप्त क्षेत्र को मिलने की आवश्यकता है जहां मुसलमान अल्प संख्या में हैं।

उपर्युक्त ६ प्रान्तों के पाकिस्तान में गैर-मुस्लिम अल्पमतों की जनसंख्या, जैसा कि नीचे के आंकड़ों ※ से स्पष्ट है, काफी अधिक होगी :—

उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र	मुसलमान	गैर-मुसलमान
पंजाब	१,६२,१७,२४२	१,२२,०१,५६७
उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्त	२७,८८,७९७	२,४६,२७०
सिंध	३२,०८,३२५	१३,२६,६८३
बृटिश बलोचिस्तान	४,३८,९३०	६२,७०१
	२,२६,५३,२९४	१,३८,४०,२३१
	६२·०७%	३७·९३%

※ इस वक्तव्य में जनसंख्या-सम्बन्धी समस्त आंकड़े १९४१ की नवीनतम जनगणना से लिये गये हैं।

उत्तर पूर्वीय क्षेत्र

बंगाल	३,३०,०५,४३४	२,७३,०१,०९१
	३४,४२,४७९	६७,६२,२५४
	३,६४,४७,९१३	३,४०,६३,३४५
	५१·६९%	४८·३१%

शेष ब्रिटिश भारत की १८,८०,००,००० जनसंख्या में फैले हुए मुस्लिम अल्पमत की संख्या प्रायः २ करोड़ है।

पाकिस्तान सम्भव नहीं

इन आंकड़ों से पता लगता है कि मुस्लिम लीग के दावे के अनुसार एक पूर्ण स्वतन्त्र पाकिस्तान राष्ट्र की स्थापना से साम्प्रदायिक अल्पमतों की समस्या हल न हो सकेगी। हम इस बात को भी न्यायसंगत नहीं समझते कि पंजाब, बंगाल व आसाम के उन जिलों को स्वतंत्र पाकिस्तान में सम्मिलित किया जाय जहां की जनसंख्या में गैर-मुस्लिमों का बहुमत है। जो भी तर्क पाकिस्तान की स्थापना के पक्ष में प्रस्तुत किये जा सकते हैं, हमारे दृष्टिकोण से वही गैर-मुस्लिम बहुमतों के क्षेत्रों को पाकिस्तान से पृथक् करने के पक्ष में प्रयोग किये जा सकते हैं। यह बात सिखों की स्थिति पर विशेष प्रभाव डालती है।

७—इसलिए हम ने इस बात पर विचार किया कि क्या एक छोटा स्वतन्त्र पाकिस्तान जिसमें केवल वही क्षेत्र है जहां मुसलमानों का बहुमत है, समझौते का आधार बनाया जा सकता है? इस प्रकार के पाकिस्तान को मुस्लिम लीग बिलकुल अव्यावहारिक समझती है, क्योंकि इससे पंजाब की अम्बाला और जालंधर की पूरी कमिश्नरियां (ख) जिला सिलहट को छोड़ कर सारा आसाम प्रान्त और (ग) पश्चिमी बंगाल का एक बड़ा भाग, जिसमें कलकत्ता भी मुसलमानों की संख्या २३.०६ प्रतिशत है, सम्मिलित है, पाकिस्तान में से निकल जायँगे। हमारा स्वयं भी विश्वास है कि ऐसा कोई भी हल जिसके द्वारा बंगाल और पंजाब का विभाजन हो, जैसा कि इस पाकिस्तान से होगा, इन प्रान्तों की जनसंख्या के बहुत बड़े भागों की इच्छा और हितों के विरुद्ध होगा। बंगाल और पंजाब दोनों की अपनी-अपनी समान भाषाएँ हैं और दोनों के साथ लम्बा इतिहास और परम्पराएँ सम्बद्ध हैं। इसके अतिरिक्त पंजाब का विभाजन करने पर सिख भी विभाजित हो जायँगे और दोनों भागों की सीमाओं पर पर्याप्त संख्या में सिख रह जायँगे। इसलिए हम बाध्य होकर इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि पाकिस्तान का बड़ा या छोटा कोई भी स्वतन्त्र राष्ट्र साम्प्रदायिक समस्या का स्वीकृत हल प्रस्तुत नहीं कर सकता।

८—उपरोक्त जोरदार तर्कों के अतिरिक्त महत्वपूर्ण शासन-सम्बंधी, आर्थिक और सैनिक प्रश्न भी है। समस्त यातायात् और डाक व तार का संगठन संयुक्त भारत के आधार पर स्थापित किया गया है। इसे भिन्न २ करना भारत के दोनों भागों के लिए अहितकर होगा। देश की संयुक्त रक्षा का प्रश्न और भी अधिक कठिन है। भारतीय सेनाएं सामूहिक रूप से समस्त भारत की रक्षा के लिए संगठित की गयी हैं। सेना का दो भागों में बाँटना भारतीय सेना की उच्च योग्यता और दीर्घकालीन परम्पराओं पर आघात करेगा और इससे बड़ा खतरा उपस्थित हो सकता है। भारतीय नौसेना और भारतीय हवाई सेना का प्रभाव बहुत घट जायगा। प्रस्तावित पाकिस्तान के

दो भागों में सब से अधिक आक्रमण के योग्य भारत की दो सीमाएं सम्मिलित हैं और अपने प्रदेश की रक्षा-व्यवस्था के लिए पाकिस्तान के क्षेत्र अपर्याप्त सिद्ध होंगे।

९—एक अन्य महत्वपूर्ण विचारणीय विषय यह है कि विभाजित ब्रिटिश भारत के साथ सम्बन्ध जोड़ने में देशी रियासतों को अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा।

१०—सब से अन्तिम बात यह भौगोलिक तथ्य है कि प्रस्तावित पाकिस्तान के दो हिस्से एक दूसरे से प्रायः ७०० मील की दूरी पर हैं और युद्ध तथा शान्ति दोनों ही कालों में इन दोनों भागों के बीच यातायात् की व्यवस्था भारत की सद्भावना पर निर्भर करेगी।

११—इसलिए हम ब्रिटिश सरकार को यह सलाह देने में असमर्थ हैं कि जो शक्ति आज ब्रिटिश सरकार के हाथों में है वह बिल्कुल दो राष्ट्रों को सौंप दी जाय।

१२—लेकिन इस निश्चय के कारण हमने मुसलमानों के इस वास्तविक भय की ओर से आंखें बन्द नहीं कर ली हैं, कि एक विशुद्ध अखण्ड भारत में, जिसमें अत्यधिक बहुमत के कारण हिन्दुओं का प्राधान्य रहेगा, उनकी सभ्यता और राजनीतिक तथा समाजिक जीवन अस्तित्व खो बैठेंगे। इस भय के निवारणार्थ कांग्रेस ने एक योजना प्रस्तुत की है जिसके द्वारा प्रान्तों को पूर्ण स्वायत्त-शासन प्राप्त होगा और केन्द्रीय विषय—जैसे विदेशी मामले रक्षा और यातायात्-न्यूनातिन्यून होंगे।

यदि प्रान्त बड़े पैमाने पर आर्थिक और शासन-सम्बंधी योजना-निर्माण में भाग लेना चाहें तो इस योजना के अनुसार प्रान्तों को अधिकार होगा कि बाध्य रूप से केन्द्रीय विषयों के अतिरिक्त वे अन्य किसी विषय को भी केन्द्रीय सरकार के अधीन कर सकें।

१३—हमारी दृष्टि में इस प्रकार की योजना में बहुत-सी वैधानिक हानियां और विषमताएँ रहेंगी। ऐसी केन्द्रीय शासन-परिषद् तथा धारासभा का संगठन अत्यन्त कठिन होगा जिसके कुछ मन्त्री, जिनके हाथ में वह विषय हो और जिन्हें अनिवार्य रूप से केन्द्रीय निर्धारित किया गया हो, समस्त भारत के प्रति उत्तरदायी हों तथा कुछ मंत्री जो ऐच्छिक केन्द्रीय विषयों के अधिकारी हों, केवल उन प्रान्तों के प्रति जिम्मेदार हों जिन्होंने इस प्रकार के विषयों के सम्बन्ध में एक सूत्र से संगठित हो कर कार्य करना स्वीकार किया हो। केन्द्रीय धारासभा में यह कठिनाई और भी बढ़ जायगी जहां जब कोई ऐसा विषय प्रस्तुत हो जिससे किसी प्रान्त का सम्बन्ध न हो तो उस प्रान्त के सदस्यों को बोलने या राय देने से वंचित रखा जायगा।

इस योजना को अमल में लाने की कठिनाई के अतिरिक्त हम समझते हैं कि यह न्याय-संगत न होगा कि जो प्रान्त ऐच्छिक विषयों को छोड़ केन्द्र के सुपुर्द करना चाहें उन्हें यह अधिकार न दिया जाय कि वे इसी प्रकार के उद्देश्यों के लिए एक पृथक् प्रान्त-समूह बना सकें। वस्तुतः इसका तात्पर्य इससे अधिक और कुछ न होगा कि वे अपने स्वतन्त्र अधिकारों का एक विशेष प्रकार से प्रयोग करते हैं।

१४—अपनी सिफारिशें प्रस्तुत करने से पहले हम ब्रिटिश भारत के साथ देशी रियासतों के सम्बन्धों का विवेचन करना चाहते हैं। यह बिलकुल स्पष्ट है कि ब्रिटिश भारत के स्वतन्त्र होने पर, चाहे वह ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के अन्तर्गत रहे या बाहर, देशी रियासतें और सम्राट् के बीच वह सम्बन्ध नहीं रह सकता जो अभी तक रहा है। सर्वोच्चाधिकारों को न तो सम्राट् के हाथ में रखा जा सकता है और न उन्हें नई सरकार को सौंपा जा सकता है। देशी राज्यों की ओर से हमने जिनसे भेंट की उन्होंने इस बात को पूर्ण रूप से स्वीकार किया है। साथ ही उन्होंने हमें यह

आश्वासन दिया है कि देशी राज्य भारत के नवीन विकास में सहयोग प्रदान करने के लिए इच्छुक और तत्पर हैं। उनके सहयोग का वास्तविक रूप क्या होगा, यह नये वैधानिक संगठन का ढांचा तैयार करते समय पारस्परिक विचार-विनिमय से तय हो सकेगा और इसका तात्पर्य यह किसी प्रकार भी नहीं है कि प्रत्येक देशी राज्य के सहयोग का रूप एक ही होगा। इसलिये आगे हमने देशी रियासतों का उसी प्रकार विस्तार से उल्लेख नहीं किया है जिस प्रकार ब्रिटिश भारत के प्रान्तों का किया है।

१५—अब हम उस हल की रूपरेखा निर्दिष्ट करना चाहते हैं जो हमारी सम्मति में सब दलों की मूलभूत मांगों के प्रति न्याययुक्त होगा और साथ ही इसके द्वारा समस्त भारत के लिए स्थायी व्यावहारिक विधान की स्थापना की भी अधिकतम आशा की जा सकती है।

हमारी सिफारिश है कि विधान निम्नलिखित मूलरूप का होना चाहिये :—

(१) एक अखिल भारतीय संयुक्त राष्ट्र होना चाहिये जिसमें ब्रिटिश भारत तथा देशी राज्य दोनों सम्मिलित हों और जिसके अधीन ये विषय रहने चाहियें—विदेशी मामले, रक्षा और यातायात्। इस भारतीय संयुक्त राष्ट्र को अपने विषयों के व्यय के लिए आवश्यक धन उगाहने का भी अधिकार होना चाहिये।

(२) भारतीय संयुक्त-राष्ट्र में एक शासन-परिषद् तथा एक व्यवस्थापिका परिषद् होनी चाहिये जिसमें ब्रिटिश भारत तथा देशी राज्यों के प्रतिनिधि हों। व्यवस्थापिका परिषद् में कोई महत्त्वपूर्ण साम्प्रदायिक मामला प्रस्तुत होने पर उसके निर्णय के लिए दोनों प्रमुख वर्गों के जो प्रतिनिधि उपस्थित हों उनका पृथक् २ तथा समस्त उपस्थित सदस्यों का बहुमत आवश्यक होगा।

३—केन्द्रीय संगठन के लिए निर्धारित विषय को छोड़कर अन्य समस्त विषय तथा समस्त अवशिष्ट अधिकार प्रान्तों को प्राप्त होंगे।

४—देशी राज्य उन सब विषयों और अधिकारों को अपने अधीन रखेंगे जिन्हें वे केन्द्र को सुपुर्द नहीं कर देंगे।

(५) उन प्रान्तों को अपने पृथक् समूह बनाने का अधिकार होगा जिनकी शासन-परिषद तथा धारासभा होगी, और प्रत्येक प्रान्त-समूह यह तय करेगा कि कौन-कौन से विषय समान रूप से सामूहिक शासन में रहें।

(६) भारतीय राष्ट्र तथा प्रान्त-समूहों के विधानों में इस प्रकार की धारा होनी चाहिये जिसके द्वारा कोई भी प्रान्त अपनी धारासभा के बहुमत से प्रथम १० वर्ष के बाद और फिर प्रति दस वर्ष बाद विधान की शर्तों पर पुनर्विचार करने का प्रस्ताव प्रस्तुत कर सके।

१६—हमारा उद्देश्य यह नहीं है कि हम उपर्युक्त रूप-रेखा के अनुसार किसी विधान की विस्तृत बातें प्रस्तुत करें। हम तो केवल ऐसा संगठन चालू करना चाहते हैं जिसके द्वारा भारतीय लोग भारतीयों के लिए विधान तैयार कर सकें।

लेकिन भावी विधान के स्थूल आधार के सम्बन्ध में हमें यह सिफारिश इसलिए करनी पड़ी है कि अपने विचार-विनिमयों के सिलसिले में हमें यह स्पष्ट होगया था कि जब तक हम इस प्रकार की सिफारिश नहीं करेंगे तब तक इस बात की कोई आशा नहीं की जा सकती कि विधान-निर्मात्री-संगठन स्थापना के लिए दोनों प्रमुख वर्गों को एक सूत्र में बाँधा जा सकेगा।

१७—अब हम विधान-निर्माण के उस संगठन की ओर निर्देश करना चाहते हैं जिसके

लिए हमारा प्रस्ताव है कि उसे तत्काल स्थापित करना चाहिये जिससे कि नया विधान तैयार किया जा सके।

विधान-निर्माण-संगठन

१८—किसी नये विधान को तैयार करने के लिए स्थापित की जानेवाली परिषद् के संगठन के सम्बन्ध में सबसे पहली समस्या यह होती है कि समस्त जनता का अधिक से अधिक विस्तृत आधार पर ठीक प्रतिनिधित्व प्राप्त किया जाय। स्पष्टतः सबसे अधिक संतोषजनक प्रणाली वयस्क-मताधिकार के आधार पर निर्वाचन करना होगी। लेकिन इस समय इस प्रकार की व्यवस्था करने का प्रयत्न करने से नये विधान के तैयार करने में ऐसा विलम्ब होगा जो किसी भी प्रकार स्वीकार्य न होगा। व्यावहारिक रूप से इसका दूसरा उपाय केवल यह है कि हाल में ही निर्वाचित प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं का निर्वाचक संस्थाओं के रूप में प्रयोग किया जाय; लेकिन इनके संगठन में दो बातें ऐसी हैं जिनके कारण ऐसा करना कठिन है। प्रथम तो विभिन्न प्रान्तों की व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों की संख्या प्रान्तों की कुल जनसंख्या के साथ समान अनुपात नहीं रखती हैं—उदाहरणार्थ, आसाम में, जिसकी जनसंख्या १ करोड़ है, व्यवस्थापिका परिषद् के सदस्यों की संख्या १०८ है जबकि बंगाल की व्यवस्थापिका सभा में केवल २५० सदस्य हैं यद्यपि उसकी जनसंख्या आसाम से छःगुनी है। दूसरे, साम्प्रदायिक निर्णय के अनुसार अल्प-संख्यक जातियों को अपनी जनसंख्या के अनुपात से जो अधिक प्रतिनिधित्व दिया गया था, प्रान्तीय व्यवस्थापिका परिषदों में विभिन्न समुदायों के प्रतिनिधियों की संख्या उसकी जनसंख्या के अनुपात से नहीं है। इस प्रकार बंगाल की व्यवस्थापिका सभा में मुसलमानों के लिए ४८ प्रतिशत स्थान सुरक्षित है जबकि प्रान्तीय जनसंख्या की दृष्टि से प्रान्त में उनकी संख्या ५५ प्रतिशत है। इन विषमताओं को दूर करने की विभिन्न प्रणालियों पर विचार करने के बाद हम इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि सबसे अधिक न्यायपूर्ण और व्यावहारिक तरीका यह होगा कि :—

(क) प्रत्येक प्रान्त की जनसंख्या के अनुपात से उनके लिए अधिक से अधिक स्थान निश्चित कर दिये जायँ। स्थूलरूप से प्रत्येक १० लाख व्यक्तियों-पीछे एक स्थान दिया जाय। यह वयस्क-मताधिकार के प्रतिनिधित्व का श्रेष्ठतम रूप है।

(ख) इस प्रकार निश्चित किये गये स्थानों को प्रत्येक प्रान्त के प्रमुख सम्प्रदायों के बीच उनकी जनसंख्या के अनुपात से बाँट दिया जाय।

(ग) यह व्यवस्था की जाय कि प्रत्येक समुदाय के लिए निश्चित स्थानों के प्रतिनिधि प्रान्तीय व्यवस्थापिका परिषद् के उसी समुदाय के सदस्यों-द्वारा चुने जायँ।

हम समझते हैं कि इसके लिए यह पर्याप्त होगा कि भारत में केवल तीन प्रमुख सम्प्रदाय माने जायँ—साधारण, मुस्लिम और सिख। चूंकि छोटी अल्पसंख्यक जातियां इस समय प्राप्त अधिक प्रतिनिधित्व को खो बैठेंगी और जनसंख्या के अनुपात से उनका प्रतिनिधित्व बहुत कम या नहीं के बराबर हो जायगा इसलिए हमने पैरा २० में निर्दिष्ट व्यवस्था की है जिसके द्वारा उन्हें अपने सम्प्रदाय के विशिष्ट हितों के मामलों में पूर्ण प्रतिनिधित्व प्राप्त रहेगा।

१९—इसलिए हमारा प्रस्ताव है कि प्रत्येक प्रान्तीय व्यवस्थापिका परिषद् निम्न प्रकार निर्दिष्ट संख्या में अपने प्रतिनिधि चुने और व्यवस्थापिका सभा का प्रत्येक भाग अर्थात् साधारण मुस्लिम और सिख सदस्यों के वर्ग अपने-अपने प्रतिनिधि आनुपातिक प्रतिनिधित्व-प्रणाली के अनुसार चुनें।

प्रतिनिधित्व-तालिका

क–विभाग

प्रान्त	जनरल	मुस्लिम	योग
मद्रास	४५	४	४९
बम्बई	१९	२	२१
संयुक्तप्रान्त	४७	८	५५
बिहार	३१	५	३६
मध्यप्रान्त	१६	१	१७
उड़ीसा	९	०	९
	१६७	२०	१८७

ख–विभाग

प्रान्त	जनरल	मुस्लिम	सिख	योग
पंजाब	८	१६	४	२८
उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्त	०	३	०	३
सिन्ध	१	३	०	४
योग	९	२२	४	३५

ग-विभाग

प्रान्त	जनरल	मुस्लिम	योग
बंगाल	२७	३३	६०
आसाम	७	३	१०
योग	३४	३६	७०

ब्रिटिश भारत का योग	२९२
देशी रियासतों की अधिकतर संख्या	९३
योग	३८५

विशेष—(१) चीफ कमिश्नरों के प्रान्तों के प्रतिनिधित्व के लिए दिल्ली तथा अजमेर की ओर से निर्वाचित केन्द्रीय व्यवस्था परिषद् के सदस्यों को तथा कुर्ग व्यवस्थापिका कौंसिल द्वारा निर्वाचित एक प्रतिनिधि को (क) विभाग में जोड़ दिया जायगा।

ख—विभाग में ब्रिटिश बलोचिस्तान का एक प्रतिनिधि जोड़ा जायगा।

(२) यह विचार है कि अन्तिम रूप से तैयार होने पर विधान-निर्मात्री परिषद् में देशी रियासतों को उचित प्रतिनिधित्व प्राप्त हो। ब्रिटिश भारत के लिए स्वीकृत हिसाब के अनुसार देशी

रियासतों के प्रतिनिधियों की संख्या ९३ से अधिक न होगी। लेकिन उनके चुनाव की प्रणाली विचार-विनिमय-द्वारा निर्धारित की जायगी। प्रारम्भिक काल में एक पारस्परिक चर्चा समिति देशी राज्यों के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करेगी।

(३) इस प्रकार निर्वाचित प्रतिनिधि यथासम्भव शीघ्रता के साथ नई दिल्ली में एकत्रित होंगे।

(४) एक प्रारम्भिक बैठक होगी जिसमें कार्य का सामान्य क्रम निर्धारित किया जायगा, अध्यक्ष और अन्य अफसरों का निर्वाचन होगा और नागरिकों, अल्पसंख्यकों तथा कबाइलों और असम्मिलित क्षेत्रों के अधिकारों के सम्बन्ध में एक सलाहकार समिति (देखिये नीचे का पैरा २०) नियुक्त की जायगी। इसके बाद प्रान्तीय प्रतिनिधि क, ख और ग इन तीन वर्गों में विभक्त हो जायँगे जैसा कि इस पैराके उप-पैरा १ में प्रतिनिधित्व-तालिका में दिखाया गया है।

(५) ये विभाग अपने-अपने समूह के प्रान्तों के विधान को तैयार करेंगे और यह भी तय करेंगे कि क्या उन प्रान्तों के लिए कोई सामूहिक विधान तैयार करना चाहिये, और तैयार किया जाय तो कौन-से विषय सामूहिक विधान के अन्तर्गत रहने चाहिये। नीचे की उपधारा ८ के अनुसार प्रान्तों को किसी समूह से पृथक् होने का अधिकार होगा।

(६) इन विभागों और देशी राज्यों के प्रतिनिधि संयुक्त भारत का विधान तैयार करने के लिए फिर एकत्रित होंगे।

(७) संयुक्त भारतीय विधान-निर्मात्री परिषद् में यदि कोई प्रस्ताव उपर्युक्त पैरा १५ की शर्तों में किसी प्रकार का परिवर्तन करना चाहेगा या यदि कोई महत्त्वपूर्ण साम्प्रदायिक प्रश्न उपस्थित करेगा तो इसकी स्वीकृति के लिए बैठक में उपस्थित तथा राय देनेवाले दोनों प्रमुख सम्प्रदायों के सदस्यों का पृथक् पृथक् बहुमत आवश्यक होगा।

परिषद् का अध्यक्ष इस बात का निर्णय करेगा कि उपस्थित प्रस्तावों में से कौन-सा (अगर कोई हो) ऐसा है जिसके द्वारा महत्त्वपूर्ण साम्प्रदायिक प्रश्न उपस्थित होता है। यदि दोनों में से किसी भी प्रमुख समुदाय के सदस्य बहुमत से अनुरोध करें तो अध्यक्ष अपना निर्णय देने से पहले संघ-न्यायालय की सलाह ले लेगा।

(८) नई वैधानिक व्यवस्था के अमल में आते ही किसी भी प्रान्त को यह अधिकार होगा कि वह उस समूह से बाहर निकल जाय जिसमें उसे रखा गया है। नये विधान के अन्तर्गत पहला चुनाव होने के बाद नयी प्रांतीय व्यवस्थापिका परिषद् इस प्रकार का निर्णय कर सकेगी।

२०—नागरिकों, अल्पसंख्यकों और कबाइली तथा असम्मिलित क्षेत्रों के अधिकारों के निर्धारण के लिए नियुक्त सलाहकार समिति में सम्बद्ध हितों का पूर्ण प्रतिनिधित्व होना चाहिये। इसका कार्य यह होगा कि नागरिकों के मौलिक अधिकारों की सूची, अल्पसंख्यकों के संरक्षण की धाराओं और कबाइली तथा असम्मिलित क्षेत्रों के शासन की योजना के सम्बन्ध में संयुक्त भारतीय विधान-निर्मात्री परिषद् के सम्मुख विवरण प्रस्तुत करे और इस विषय में सलाह दे कि ये अधिकार प्रान्तों के समूहों के या संयुक्त भारत के विधान में सम्मिलित होने चाहियें।

२१—वाइसराय महोदय तत्काल ही प्रान्तीय व्यवस्थापिका परिषदों से अपने प्रतिनिधियों को चुनने तथा देशी रियासतों से अपनी पारस्परिक चर्चा समिति की नियुक्ति के लिए अनुरोध करेंगे। आशा है कि कार्य की पेचीदगियों को ध्यान में रखते हुए विधान निर्माण का कार्य यथा-सम्भव शीघ्रता से सम्पन्न किया जायगा जिससे कि अन्तर्कालीन अवधि, जहां तक हो सके, छोटी की जा सकेगी।

२२—शासन-शक्ति के हस्तान्तरित होने के कारण उत्पन्न कुछ मामलों के सम्बन्ध में संयुक्त भारतीय व्यवस्थापिका परिषद् तथा ब्रिटेन के बीच किसी प्रकार की सन्धि आवश्यक होगी।

२३—विधान-निर्माण का कार्य होने के साथ-साथ भारत का शासन चलाते रहना है। इसलिए हम एक ऐसी अन्तर्कालीन सरकार की स्थापना को अत्यन्त महत्व देते हैं जिसे बड़े राजनीतिक दलों का समर्थन प्राप्त हो। यह आवश्यक है कि अन्त कालीन अवधि में भारत-सरकार के सम्मुख उपस्थित कठिन कार्य को पूरा करने के लिए अधिक से अधिक सहयोग प्रदान किया जाय। दैनिक शासन के कार्य-भार के अतिरिक्त अकाल के खतरे का निवारण करना है, युद्धोत्तरकालीन उन्नति से सम्बद्ध बहुत-से मामलों के विषय में निर्णय करना है, जिनका भारत के भविष्य पर बड़ा व्यापक प्रभाव पड़ेगा, और कितने ही महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों के लिए भारत के प्रतिनिधित्व की व्यवस्था करनी है। इन सब कार्यों के लिए एक ऐसी सरकार की आवश्यकता है जिसे जनता का समर्थन प्राप्त हो। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वाइसराय महोदय ने विचार-विनिमय प्रारम्भ कर दिया है और उन्हें आशा है कि शीघ्र ही वे एक ऐसी अन्तर्कालीन सरकार की स्थापना कर सकेंगे जिसमें युद्ध-सदस्य के विभाग सहित समस्त विभाग जनता का पूर्ण विश्वास रखनेवाले भारतीय नेताओं के हाथों में होंगे। भारत-सरकार में होनेवाले परिवर्तनों के महत्व को समझते हुए ब्रिटिश सरकार इस प्रकार स्थापित सरकार को अपना शासन-सम्बन्धी कार्य पूरा करने और अन्तर्कालीन अवधि को शीघ्रता के साथ निर्विघ्न रूप से समाप्त करने के लिए पूर्ण सहयोग प्रदान करेगी।

२४—भारतीय जनता के नेताओं से, जिन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता का अवसर प्राप्त है, हम अन्त में केवल यह कहना चाहते हैं। कि हमें, हमारी सरकार को तथा हमारे देशवासियों को आशा थी कि यह सम्भव होगा कि भारत के लोग परस्पर एकमत होकर ऐसी प्रणाली निर्धारित करेंगे जिसके द्वारा उनके देश का भावी विधान तैयार किया जाय। लेकिन हमारे और भारतीय दलों के संयुक्त श्रम तथा समस्त सम्बद्ध जनों के धैर्य और सद्भावना के बावजूद यह नहीं हो सका है। इसलिए हम आपके सम्मुख ये प्रस्ताव रखते हैं जो सब दलों की बात सुनने और बहुत विचार करने के बाद हम विश्वास करते हैं कि न्यूनातिन्यून समय में बिना किसी आन्तरिक उपद्रव और संघर्ष के आपको अपनी स्वतंत्रता प्राप्त करा सकेंगे। यह सत्य है कि सम्भवतः ये प्रस्ताव सब दलों को पूर्ण सन्तुष्ट नहीं कर सकते; लेकिन आप इस बात में हमारा समर्थन करेंगे कि भारतीय इतिहास के इस चरम महत्व के काल में राजनीतिज्ञता का तकाजा है कि हम में पारस्परिक आदान-प्रदान की भावना हो।

इन प्रस्तावों को स्वीकार न करने के दूसरे विकल्प पर विचार करने का भी हम आपसे अनुरोध करते हैं। हमने तथा भारतीय दलों ने समझौते के लिये जो प्रयत्न किये हैं उन्हें दृष्टि में रख कर हमें कहना पड़ता है कि भारतीय दलों में पारस्परिक समझौते द्वारा किसी निर्णय के होने की बहुत कम आशा है। इसलिए इसे स्वीकार करने के अतिरिक्त दूसरा विकल्प हिंसा का भयानक खतरा, अव्यवस्था और नागरिक युद्ध है। इस प्रकार का उपद्रव कब तक होगा और उसका क्या परिणाम होगा, इस सम्बन्ध में पहले से कुछ नहीं कहा जा सकता। लेकिन यह निश्चय है कि लाखों पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों के लिए यह एक भयानक विनाशकारी संकट होगा। यह ऐसी सम्भावना है जिससे भारत के निवासियों, हमारे देशवासियों तथा समस्त संसार के

लोगों को समान रूप से घृणा की दृष्टि से देखना चाहिये।

इसलिए हम यह प्रस्ताव आपके सम्मुख इस हार्दिक आशा के साथ रख रहे हैं कि ये उसी प्रकार पारस्परिक आदान-प्रदान और सदिच्छा की भावना से स्वीकार किये जायँगे और अमल में लाये जायँगे जैसे इन्हें प्रस्तुत किया जा रहा है। जिनके हृदय में भारत के भावी कल्याण की भावना है उनसे हम यह अनुरोध करते हैं कि वे अपनी दृष्टि को अपने सम्प्रदाय या हित से आगे ले जायँ और भारत के समस्त ४० करोड़ नर-नारियों के हित का ध्यान रखें।

हमें आशा है कि नया स्वतन्त्र भारत ब्रिटिश राष्ट्रमंडल का सदस्य बने रहना स्वीकार करेगा। कुछ भी हो, हमें आशा है कि आप हमारे देशवासियों के साथ घनिष्ठ और मित्रता के सम्बन्ध बनाये रखेंगे। लेकिन ये आपके स्वतन्त्र निर्णय की बातें हैं। आप कुछ भी निश्चय करें, आपके साथ हमें इस बात की आशा है कि संसार के महान् राष्ट्रों में आप निरन्तर अधिक सफल बनते जायँगे और आपका भविष्य आपके अतीत से भी अधिक गौरवपूर्ण होगा।

भारत मंत्री का १७ मई, ४६ का ब्राडकास्ट-भाषण

मैं आपसे जो कुछ कहने जा रहा हूं उसका सम्बन्ध एक महान् राष्ट्र—भारत राष्ट्र—के भविष्य से है। सभी भारतीयों के दिलों में स्वतंत्रता की उत्कट अभिलाषा है। इस अभिलाषा को भारत के सब राजनीतिक दलों के नेताओं ने व्यक्त किया है। सम्राट् की सरकार तथा सामूहिक रूप से ब्रिटिश राष्ट्र स्वतंत्रता देने को सम्पूर्ण रूप से तैयार है—चाहे यह स्वतंत्रता ब्रिटिश राष्ट्र-मंडल के भीतर हो अथवा बाहर। वे आशा करते हैं कि यह स्वतंत्रता इन दोनों राष्ट्रों के बीच, सम्पूर्ण समता के आधार पर, स्थायी तथा मैत्री पूर्ण सम्बन्धों का आधार बनेगी।

लगभग दो महीने हुए, भारत मंत्री की हैसियत से मैं और मंत्रिमंडल के मेरे दो सहयोगी—सर स्टैफर्ड क्रिप्स और श्री अलेग्जेंडर—सम्राट् की सरकार-द्वारा भारत भेजे गये थे ताकि हम भारतीयों-द्वारा ही उनका विधान बनाने के हेतु प्रारम्भिक कार्य में वाइसराय की सहायता कर सकें।

हमें आते ही एक बहुत बड़ी अड़चन का सामना करना पड़ा। भारत के दो प्रमुख दल—मुस्लिम लीग, जिसने हाल के चुनावों में बहुसंख्यक मुसलमानों की सीटों को जीता है, तथा कांग्रेस, जिसने शेष सीटों में बहुसंख्यक सीटें जीती हैं—में प्रारम्भिक राजकीय मशीन स्थापित करने के प्रश्न पर तीव्र मतभेद था। मुस्लिम लीग भारत को दो पृथक् सत्ता-सम्पन्न राज्यों में विभाजित करना चाहती थी और विधान-निर्माण के कार्य में भाग लेने को तैयार न थी जब तक कि उसका यह दावा पहले से ही न मान लिया जाय। कांग्रेस का आग्रह था कि भारत एक अखंड देश रहे।

भारत में अपने प्रवास के समय हमने भरसक प्रयत्न किया है कि इन दोनों दलों में कोई ऐसा समझौता हो जाय जिस से हम विधान-निर्माण का काम अपने हाथ में ले सकें। हाल में हम दोनों दलों को अपने साथ शिमला में एक सम्मेलन में मिलाने में सफल हो गये थे; किन्तु पूरा समझौता न किया जा सका, यद्यपि दोनों दल भारी रिआयतें करने को तैयार थे। इसलिए इस गुत्थी का हल सुझाने के लिए हम स्वयं बाध्य हो गये हैं—ऐसा हल जिससे दोनों दलों की प्रमुख मांगें पूरी हो जायँ और तत्काल ही विधान-निर्माण-सम्बन्धी कार्य चालू किया जा सके।

यद्यपि हम मुस्लिम लीग के इस भय की वास्तविकता को समझते हैं कि विशुद्ध रूप से संयुक्त भारत से उनका समुदाय अपनी संस्कृति और अपने रहन-सहन की प्रणाली के साथ बहु-

संख्यक हिन्दू-शासन में विलीन हो सकता है, हम सब इस बात को स्वीकार नहीं करते कि साम्प्रदायिक समस्या का हल एक पृथक् सत्तासम्पन्न मुस्लिम राष्ट्र की स्थापना है। 'पाकिस्तान' में जिस नाम से मुस्लिम लीग अपने राष्ट्र को पुकारेगी, केवल मुसलमान ही न होंगे, इसमें दूसरे समुदायों की भी काफी बड़ी अल्पसंख्या होगी और इन सब का औसत ४० प्रतिशत से भी ऊपर पहुँच जायगा और कुछ बड़े-बड़े क्षेत्रों में यह बहुसंख्या का रूप भी धारण कर लेगा, जैसे कि कलकत्ते में, जहां मुसलमानों की संख्या एक-तिहाई से भी कम है। इसके अतिरिक्त हमारी दृष्टि में, पाकिस्तान के शेष भारत से अलग हो जाने से सेना के दो भागों में बँटने और रक्षा-व्यवस्था का व्यापक प्रबन्ध—जो आधुनिक युद्ध में आवश्यक है—अवरुद्ध हो जाने पर समस्त देश की रक्षा-व्यवस्था भीषण खतरे में पड़ जायगी। इसलिए हम इस प्रस्ताव की स्वीकृति का सुझाव नहीं रखते।

हमारी अपनी सिफारिशों में तीन स्तरों के विधान की कल्पना की गयी है जिनमें सबसे ऊपर संबद्ध भारत होगा, जिसमें एक शासन-परिषद् और व्यवस्थापक-मंडल होगा जिसे परराष्ट्र विषयक मामलों, रक्षा-व्यवस्था, एवं यातायात् और इन सर्विसों के लिए आवश्यक धन की व्यवस्था करने का अधिकार होगा। निम्न स्तर में प्रान्त होंगे जिन्हें इन विषयों के अतिरिक्त, जिनका मैंने अभी नाम लिया है, पूर्ण स्वायत्त शासन प्राप्त होगा। लेकिन इसके अतिरिक्त हम यह भी सोचते हैं कि प्रान्त गुटों के रूप में इसलिए एक साथ सम्मिलित होना चाहेंगे कि सामूहिक रूप से वे एक प्रान्त की अपेक्षा और बड़े क्षेत्र की सर्विसों का संचालन कर सकें और ये गुट, यदि वे चाहें, व्यवस्थापक मंडल और शासन-परिषदों का निर्माण कर सकते हैं जो उस स्थिति में प्रान्तों और संघबद्ध भारत के बीच की व्यवस्था होगी।

इस आधार पर, जिससे मुसलमानों के लिए भारत के बँटवारे के अन्तर्भूत खतरों को उठाये बिना पाकिस्तान की सुविधाएं प्राप्त करना सम्भव हो जाता है, मैं सब दलों के भारतीयों को विधान-निर्माण में भाग लेने के लिए आमंत्रित करता हूँ। तदनुसार वाइसराय महोदय ब्रिटिश भारत के उन प्रतिनिधियों को नई दिल्ली बुलायेंगे जो ऐसी प्रणाली से प्रान्तीय असेम्बलियों के सदस्यों-द्वारा चुने जायँगे कि जहां तक सम्भव हो प्रति दस लाख की जनसंख्या-पीछे एक प्रतिनिधि हो और मुख्य समुदायों के प्रतिनिधियों का अनुपात भी इसी आधार पर हो।

आरम्भ की संयुक्त बैठक के बाद प्रान्तों के ये प्रतिनिधि अपने को तीन भागों में, जिनका निर्माण निश्चित किया जा चुका है, विभक्त करेंगे और अन्ततोगत्वा यदि प्रान्त इसके लिए सहमत हुए, तो यह तीनों भाग तीन 'गुट' (ग्रुप्स) हो जायँगे। ये भाग प्रान्तीय तथा गुट-सम्बन्धी विषयों का निर्णय करेंगे। बाद में, संघ (यूनियन) के विधान का निश्चय करने के लिए वे फिर संयुक्त हो जायँगे। नये विधान के अनुसार पहली बार चुनाव होने के बाद, प्रान्त अपने उस 'गुट' में से पृथक् हो जाने के लिए स्वतंत्र होंगे, जिसमें वे अस्थायी रूप से सम्मिलित किये गये हैं। हम खूब समझते हैं कि इस व्यवस्था के द्वारा प्रमुख अल्प-संख्यक दलों के सिवा अन्य अल्पमतों को समुचित प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं होता। अतएव हम एक विशेष समिति की भी व्यवस्था कर रहे हैं, जिसमें अल्प-संख्यक पूरा-पूरा भाग ले सकेंगे। अल्प-संख्यकों के मूल अधिकारों को नियम-बद्ध करके, विधान के अन्दर समुचित रूप में उन्हें शामिल किये जाने की सिफारिश करना, इस समिति का कार्य होगा।

अभी तक मैंने भारतीय राज्यों के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा है, जो भारत के एक-

तिहाई क्षेत्रफल में फैले हुए हैं और देश की आबादी का एक-चौथाई भाग जिनमें निवास करता है। इस समय, इनमें से प्रत्येक राज्य की शासन-व्यवस्था पृथक् है और ब्रिटिश सम्राट् के साथ उनका व्यक्तिगत सम्बन्ध है। यह बात साधारणतः सर्वमान्य है कि ब्रिटिश भारत के पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करने पर, इन राज्यों की स्थिति अप्रभावित नहीं रह सकती और खयाल है कि वे विधान-निर्माण-कार्य में भाग लेने की इच्छा करेंगे और अखिल-भारतीय संघ में उनका प्रतिनिधित्व होगा। किन्तु इस मामले में पहले से ही कोई निर्णय कर सकना हमारे अधिकार में नहीं है, क्योंकि कोई भी कार्रवाई करने से पहले उसके सम्बन्ध में इन राज्यों से बातचीत करनी ही होगी।

विधान-निर्माण-काल में शासन-प्रबन्ध जारी रहना चाहिये, इसलिए हम तत्काल ऐसी अन्तर्कालीन सरकार की स्थापना को अत्यधिक महत्व देते हैं जिसे प्रमुख राजनीतिक दलों का समर्थन प्राप्त हो। इस विषय में वाइसराय महोदय ने पहले ही बातचीत प्रारम्भ कर दी है और उन्हें आशा है कि वे शीघ्र ही एक सफल निर्णय पर पहुंच सकेंगे।

इस संक्रान्ति-काल में ब्रिटिश-सरकार भारत-सरकार में होनेवाले परिवर्त्तनों के महत्व को स्वीकार करते हुए, इस प्रकार से स्थापित की गयी सरकार को उसके शासन-सम्बन्धी कार्यों को पूरा करने और इस परिवर्तन को यथाशीघ्र तथा सरलता के साथ कार्य रूप में देने में पूर्ण सहयोग प्रदान करेगी।

राजनीति-शास्त्र का यह सार है कि सम्भावित भावी घटनाओं को पहले से ही भाँप लिया जाय, परन्तु कोई भी राजनीतिज्ञ इतना बुद्धिमान् नहीं हो सकता कि वह एक ऐसे विधान का निर्माण कर सके जिससे अज्ञात भविष्य की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति होती हो। इसलिए हमें विश्वास है कि भारतीय, जिन पर प्रारम्भिक विधान तैयार करने की जिम्मेदारी है, उसे उचित रूप से लचीला बनायेंगे और समय-समय पर आवश्यकतानुसार इसमें संशोधन करने की भी व्यवस्था रखेंगे।

इस छोटे से भाषण में आप मुझ से हमारे प्रस्तावों-सम्बन्धी विस्तार की बातों में जाने की आशा न करेंगे, क्योंकि ये बातें आप हमारे वक्तव्य में पढ़ सकते हैं, जो आज सायंकाल को प्रकाशन के लिए दिया जा चुका है; परन्तु अंत में मैं उस बात को दुहरा देना चाहता हूं और उस पर जोर भी देना चाहता हूं, जो मेरे विचार से एक आधारभूत प्रश्न है। भारत का भविष्य तथा इस भविष्य का प्रारम्भ किस प्रकार किया जाता है, ये केवल भारत के ही लिए नहीं वरन् सम्पूर्ण संसार के लिए असाधारण महत्व की बातें हैं। यदि एक महान् नये सत्ताधारी राज्य की स्थापना भारत के भीतर और बाहर परस्पर सद्भावना के साथ हो सके तो केवल यही तथ्य विश्व-सुव्यवस्था के प्रति एक महान् योगदान होगा।

यह परिणाम प्राप्त करने के लिए ब्रिटेन की सरकार तथा जनता केवल राजी ही नहीं है, परन्तु अपने हिस्से का पूरा कार्य करने को भी उत्सुक है। भारत के विधान का मसविदा भारतीय ही बनावेंगे और वही उसे कार्यान्वित भी करेंगे। यह कार्य आरम्भ करने में भारतीयों को जिन कठिनाइयों का सामना करना है उनका हम पूर्ण रूप से अनुभव करते हैं और यह भी कहते हैं कि इन कठिनाइयों पर विजय पाने में सहायता प्रदान करने के लिए अपनी शक्ति भर हमारे लिए जो भी सम्भव है, हमने किया है और आगे भी करते रहेंगे। परन्तु दायित्व और सुअवसर स्वयं भारतीयों ही का है और हमारी शुभ कामना है कि इसका निर्वाह करने में वे पूर्ण रूप से सफल हों।

मंत्रि-मिशन के तीसरे सदस्य मि० ए० वी० अलग्ज़ैण्डर, जो दो महीने की बातचीत में अभी तक चुप ही रहे थे, १७ मई १९४६ की रात को पत्र-प्रतिनिधियों-द्वारा घेर लिये गये। मिशन की 'सफलता' पर बधाई दी जाने पर आपने फ़रमाया:—

"हमारी सदा से यह अभिलाषा रही है कि यह महान् राष्ट्र (भारत) घरेलू संघर्ष से टुकड़े-टुकड़े न हो। इसीलिए हमने कोशिश की कि यह दल परस्पर स्वयं समझौता कर लें और इस प्रकार मुख्य दल—कांग्रेस और लीग आपस में रज़ामन्द हो जायँ और किसी भी दुर्घटना की कम-से-कम सम्भवनीयता के साथ हिन्दुस्तान का सवाल हल हो जाय। हमें सचमुच अफ़सोस है कि ऐसा नहीं हो सका। हमें आशा है कि हमारा यह प्रस्ताव अधिकांश हिन्दुस्तानियों के लिए सन्तोषजनक होगा और हिन्दुस्तान को शान्तिपूर्ण आज़ादी मिल जायगी।"

एक पत्र-प्रतिनिधि के यह कहने पर कि "कुछ-न-कुछ खून-ख़राबी तो होनी ही चाहिए, क्योंकि मिशन के लिए मानवीय दृष्टि से यह असम्भव होगा कि वह सभी दलों को सन्तुष्ट कर सके" मि० अलग्ज़ैण्डर ने स्पष्ट रूप से और तुरन्त जवाब दिया कि "अगर मिज़ाज और गुस्से पर काबू पा लिया जाय तो इस (खून-खराबी) से बचना बहुत आसान है।" (अ० प्रे० अमेरिका)

क्रिप्स की व्याख्या

एक पत्र-प्रतिनिधियों की परिषद् में मंत्रि-मिशन के वक्तव्य की व्याख्या सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने की। इस परिषद् में लार्ड पेथिक-लारेन्स और मि० ए० वी० अलेग्जैण्डर भी हाज़िर थे। सर क्रिप्स ने कहा—"हमें इस बात की हार्दिक आशा है कि भारत के लोग हमारे वक्तव्य को उसी सहयोग के भाव से स्वीकार करेंगे जिस भाव से वह तैयार किया गया है, और यह कि एक या दो सप्ताह में विधान-निर्माण का काम शुरू हो जायगा तथा अन्तरिम सरकार की स्थापना की जा सकेगी।

लार्ड पेथिक-लारेन्स ने सर स्टैफर्ड क्रिप्स की बातों का समर्थन करते हुए ज़ोर देकर कहा—"ब्रिटेन के लोग आम तौर पर यह निश्चय कर चुके हैं कि वह आपके देश को अपने और विश्व के इतिहास में महान् स्थान प्राप्त कराने के लिए एक शासन-विधान प्राप्त करने में सहायक हों।"

सर क्रिप्स ने कहा—"मंत्रि-मिशन के वक्तव्य पर आप दो भाषण रेडियो पर सुन चुके हैं वह अब आपके सामने मौजूद है। आज शाम को मिशन के सदस्य आप से मिलने का अवसर इसलिये प्राप्त करना चाहते थे कि वह आपको व्याख्या के कुछ शब्द बता सकें। कल हम आप से फिर मिलेंगे और उन सवालों का जवाब देंगे जो आप हम से पूछ सकेंगे। जब तक भारत-मंत्री रेडियोघर से वापस नहीं आ जाते तब तक मैं वक्तव्य के बारे में कुछ कहूँगा।

"पहली बात जो मैं आप से कहना चाहता हूँ वह यह है कि इस वक्तव्य का अभिप्राय क्या-क्या करना नहीं है। मैं आपको याद दिला दूँ कि यह केवल मिशन के चार सदस्यों का वक्तव्य नहीं है; बल्कि यह तो ग्रेट ब्रिटेन के सम्राट् का है। इस वक्तव्य का आशय यह नहीं है कि वह भारत के लिए विधान बनाने का काम शुरू कर दे। अब हम से यह पूछने से कुछ भी फ़ायदा न होगा कि आप यह बात कैसे करना चाहते हैं और वह बात कैसे करना चाहते हैं। इस सवाल का जवाब तो यही होगा कि विधान के बारे में तो हम कुछ भी नहीं करना चाहते। इसका निर्णय करना हमारा काम नहीं है।

"हमें जो-कुछ करना था वह यही था कि हम दो-एक ऐसे व्यापक सिद्धान्त रख दें तथा

बता दें कि विधान उनके आधार पर कैसे बन सकता है और उन्हीं को बुनियादी रूप में भारतीयों के सामने सिफारिशी तौर पर रख दें। आप ने इस बात पर ध्यान दिया होगा कि हम उस अन्तिम विधान के बारे में 'सिफारिशी' लफ़्ज़ का इस्तेमाल कर रहे हैं जिसके बारे में हमें कुछ करना है।

"पर आप यह बात तो बिल्कुल ठीक तौर पर ही पूछ सकते हैं कि 'तो फिर आप किसी भी चीज़ की सिफ़ारिश क्यों करते हैं?—आप सभी कुछ हिन्दुस्तानियों पर क्यों नहीं छोड़ देते?' इसका उत्तर यह है कि हम तो यह चाहते हैं कि सभी हिन्दुस्तानी जितना भी जल्द हो सके विधान-निर्माण के यंत्र-संचालन में लग जायँ, और इस समय तो हमारे सामने यही एक अड़चन है। इसीलिए हम इसके द्वारा अड़चन दूर कर देने की कोशिश कर रहे हैं जिससे विधान-निर्माण का काम शुरू हो जाय और स्वतंत्र रूप में तथा शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़े। हम हृदय से चाहते हैं कि हमारी कोशिशों का फल यही हो।

"अब चूँकि कतई तौर पर और अन्तिम रूप में यह निश्चय हो चुका है कि भारत को मनचाही आज़ादी मिलेगी—वह चाहे तो ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर रहे या बाहर, इसलिए हम इस बात के लिए चिन्तित हैं कि उसे जल्द-से-जल्द स्वतंत्रता मिल जाय, और यह काम शीघ्रातिशीघ्र तभी हो सकेगा जब भारतीयों-द्वारा विधान का नया ढाँचा तैयार हो जायगा।

"पर हम वह समय आने तक चुपचाप खड़े प्रतीक्षा नहीं करते रह सकते। नये शासन-विधान का ढांचा पूरा होने में कुछ समय लगना लाज़िमी है।

"इसलिए जैसा कि आप जानते हैं, वाइसराय—जिनकी अधिकार-सीमा में मुख्यतः शासन-निर्माण है, इस बात की बातचीत शुरू कर चुके हैं कि प्रतिनिधित्वपूर्ण भारतीय गवर्नमेण्ट की स्थापना जल्द-से-जल्द करदी जाय। हमें आशा है कि अन्य अप्रासांगिक मामलों को छोड़ वह हमारे वक्तव्य के आधार पर प्रतिनिधित्वमूलक दलों की नयी सरकार शीघ्र स्थापित करके उसे कार्य में संलग्न कर देंगे।

"अन्तरिम सरकार की स्थापना का विषय सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इस समय हिन्दुस्तान के सामने बहुत बड़े-बड़े काम हैं। यह बड़े काम—और शायद इनमें सबसे महान् है खाद्य-स्थिति को संभाल लेने का काम—ऐसे हैं कि इनके कारण इस कार्य को सुचारु रूप से संचालित करना तथा कौशलपूर्ण परिवर्तन करना परमावश्यक हो गया है।

"हिन्दुस्तानियों के लिये इस समय इससे अधिक कोई घातक बात न होगी कि जब सामने अकाल का ख़तरा है, तो वह देश के किसी भी भाग में शासन या यातायात् के साधन को भंग करने का प्रयत्न करें, और इसीलिए हम इस बात पर जोर देते हैं कि सभी दलों और सम्प्रदायों में, जिनमें अंग्रेज भी हैं, इस परिवर्त्तनकाल में सहयोग हो।

"यह तो हुई महत्त्वपूर्ण अन्तरिम सरकार की स्थापना की बात। आपमें से कुछ लोग यह आश्चर्य कर रहे होंगे कि इस प्रकार जल्दी ब्रिटिश सरकार भारत से अपना शासन-सम्बन्ध कैसे छोड़ देगी। मैं समझता हूँ कि जो भी होगा भारत के स्वतन्त्र होने पर भी हम उसके घनिष्ठतम मित्र बने रहेंगे। हम निश्चय ही यह नहीं कह सकते। हम यह भी नहीं कह सकते कि विधान कितनी जल्दी तैयार हो जायगा। तो भी एक बात तो बिल्कुल सुनिश्चित है, वह यह कि आप जितनी ही जल्दी काम शुरू करेंगे उतना ही शीघ्र उसे समाप्त कर सकेंगे और उतनी ही जल्दी हम अधिकार, संघीय, प्रान्तीय और अगर फ़ैसला हुआ तो दलीय सरकारों को सौंपकर भारत से हट जायँगे।

"अब मैं सिफारिश की बात को छोड़कर इस बात पर आता हूं कि निश्चय क्या हुआ है फैसला यह हुआ है कि विधान-निर्माण का काम तुरन्त शुरू कर दिया जाय। इसका मतलब यह नहीं है कि हमने विधान का रूप अन्त में क्या होगा, इसका भी निर्णय कर लिया है। इसका फैसला तो भारतीय जनता के प्रतिनिधियों के हाथ में होगा। इसका अर्थ तो यह है कि जिस खिंच के कारण विधान-निर्माण का काम रुका हुआ था वह हमेशा के लिए दूर हो जायगा।

"इसीलिए विधान-निर्मात्री संस्था का जिस रूप में संगठन होगा वह महत्वपूर्ण है। इस से सिफारिश किये हुए रूप में विधानों का फैसला हो सकने की गुंजाइश है। वह एक दृष्टि से तो इस से भी और आगे जाता है। चूंकि हमारा विश्वास है कि दोनों दल हमारी सिफारिशों के आधार पर विधान-निर्माण के काम में लगेंगे इसलिए उनमें से किसी के लिए भी यह ठीक नहीं होगा कि वह हमारी बुनियादी सिफारिशों से दूर चले जायँ।" इसलिए हमारी यह शर्त है कि वक्तव्य के १५वें पैराग्राफ में जो आधार बताया गया है उससे दूर तभी जाया जा सकता है जब दोनों ही सम्प्रदायों का बहुमत उससे सहमत हो। हम समझते हैं कि यह बात दोनों ही दलों के लिए स्पष्टतः उचित है। इसका यह मतलब नहीं है कि सिफारिशों से विलग कुछ हो ही नहीं सकता, पर इसका यह अर्थ अवश्य है कि जिन विशेष व्यवस्थाओं का मैंने जिक्र किया है वह यूनियन की विधान-परिषद् पर लागू होंगे। यह विशेष व्यवस्था विशिष्ट बहुमत के बारे में है। इस तरह की एक दूसरी व्यवस्था कोई खास साम्प्रदायिक मामला पैदा होने पर लागू होगी। अन्य सभी व्यवस्थाएँ मुक्त बहस और स्वतन्त्र मतदान पर निर्भर करेंगी।

"आप सब के मनमें यह सवाल पैदा होगा और इसीलिए हमने तीन प्रान्तीय धाराओं का नाम ले दिया है जिनमें एसेम्बली भंग करके प्रान्तीय और दलीय विधान-रचना के लिए संगठन किया जायगा।

" इस काम के लिए एक अच्छा कारण है। पहले तो यह दल अपना काम करने के पहले किसी-न-किसी तरह संगठित किये जाने हैं। इसके दो उपाय हैं। या तो वर्तमान प्रान्तीय सरकारें स्वेच्छापूर्वक अपने दल बनालें या फिर विधान का निर्माण देख लेने के बाद नयी सरकारें—पूरा संविधान प्रस्तुत हो चुकने पर अपनी इच्छा से निर्णय करें। हमने दूसरा उपाय दो कारण से चुना है—एक तो इसलिए कि कांग्रेस ने प्रान्तों तथा एक संघ के बारे में जो परामर्श रखा था यह उसका अनुसरण करती है। कांग्रेस की राय थी कि आरम्भ में सभी प्रान्तों को इसमें आना चाहिये, पर विधान का निर्माण देखकर वह चाहें तो स्वेच्छापूर्वक अलग हो सकते हैं। हम समझते हैं कि यह सिद्धान्त दलों के लिए लागू हो। दूसरा कारण यह है कि वर्तमान व्यवस्थापक सभाएं वास्तव में सारी जनता के लिए प्रतिनिधित्वपूर्ण नहीं, क्योंकि उन पर साम्प्रदायिक समझौते के अनुसार अल्पसंख्यकों को दिये गये विशेष रिआयती स्थानों का असर है।

"हमने पूर्ण-वयस्क मताधिकार से अधिकाधिक निकट की योजना प्राप्त करने का प्रयत्न किया है जो होगी तो बहुत उचित, पर उसे कार्य रूप में परिणत करने में सम्भवतः दो वर्ष लग जायँगे, और कोई भी यह न पसन्द करेगा कि इतने दिनों प्रतीक्षा करने के बाद विधान-निर्माण का काम शुरू हो। इसलिए हम वर्तमान व्यवस्थापक-सभाओं को स्वेच्छापूर्ण निर्णय पर छोड़ते हैं और उसे तब कार्यान्वित करने की बात स्वीकार करते हैं जब पहला नया निर्वाचन हो जाय, क्योंकि तब तो जनता को अधिक मताधिकार प्राप्त होंगे, और व आवश्यकता होने पर निर्वाचन के समय ऐसे प्रश्न उठाये जा सकते हैं। इस तरह तीनों ही दल ऐसे प्रान्तीय और दलीय विधानों की

रचना कर सकेंगे और जब इतना हो चुके तो वे देशी राज्यों के प्रतिनिधियों के साथ मिलकर संघीय विधान बनायें।

"एक शब्द देशी राज्यों के बारे में भी कहूँ। वक्तव्य के १४ वें पैराग्राफ में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि नया विधान लागू होने पर सर्वश्रेष्ठ सत्ता कायम नहीं रह सकती, न उसे किसी को हस्तान्तरित ही किया जा सकता है। मुझे इसे यहाँ कहने की जरूरत नहीं है। मुझे निश्चय है कि इस प्रकार का ठेका या समझौता दोनों राज्यों की राय के बिना एक तीसरे दल के हाथ में नहीं सौंपा जा सकता। इसलिये देशी राज्य पूर्णतः स्वतंत्र हो जाएँगे; पर उन्होंने यह इच्छा प्रकट की है कि वे यूनियन या संघ में जाने का मार्ग निकालने के सम्बन्ध में बातचीत चलायेंगे, यही कारण है कि हम इस विषय में देशी राज्यों और ब्रिटिश भारत के दलों को परस्पर बातचीत करने के लिए स्वतंत्र छोड़ते हैं।

"एक और महत्वपूर्ण व्यवस्था ऐसी है जिस पर मैं जोर देना चाहता हूँ, क्योंकि वह विधान-निर्माण में कुछ अभिनव-सी है। हमारे सामने यह कठिनाई थी कि हम उन छोटे अल्प-संख्यकों के साथ व्यवहार उचित रूपमें किस प्रकार कर सकते हैं जिनमें कबायली और विलग क्षेत्रों के निवासी सम्मिलित हैं। किसी विधान-निर्माण में उन्हें ऐसी रिआयती सीटें, बहुमत की पार्टी का संगठन गम्भीर रूप में बिगाड़े बिना नहीं दी जा सकतीं। एक छोटा-सा प्रतिनिधित्व दे देना उनके लिए उपयोगी न होगा। इसीलिए हमने निश्चय किया कि अल्पसंख्यकों की व्यवस्था दो प्रकार से की जाय। मुख्य अल्पसंख्यकों—जैसे मुस्लिम-प्रान्तों में हिन्दू अल्पसंख्यक के रूप में हैं, और हिन्दू-प्रान्तों में मुसलमान हैं, सिख पंजाब में हैं और दलित जातियाँ जिन्हें कई प्रान्तों में काफी प्रतिनिधित्व प्राप्त है—को विधान-निर्मात्री संस्थाओं में आनुपातिक प्रति-निधित्व प्रदान किया जाय।

"किन्तु इन अल्पसंख्यकों को—खासकर हिन्दुस्तानी ईसाइयों और ऐंग्लो-इंडियनों तथा कबायलियों को– इस बात का अच्छा अवसर मिलना चाहिए कि वे अल्पसंख्यक-व्यवस्था पर प्रभाव डाल सकें, क्योंकि हम ऐसी व्यवस्था बना चुके हैं जिसके अनुसार एक ऐसा प्रभावशाली परामर्शदाता कमीशन बनाने की गुंजाइश रखी गयी है जो बुनियादी अधिकारों, अल्पसंख्यकों की रक्षा की धाराओं और कबायली क्षेत्रों तथा पृथक् क्षेत्रों के शासन के प्रस्ताव के बारे में आरम्भिक सूची बना सकेगा और कार्रवाई कर सकेगा। यह कमीशन विधान-निर्मात्री परिषद् को सिफारिश करेगा और इस बात की राय देगा कि विधान-निर्माण की किस अवस्था अथवा किन-किन अवस्थाओं में यह व्यवस्थाएँ सम्मिलित की जा सकती हैं— अर्थात् यूनियन या संघ में, दलों या सूबों के विधानों में अथवा इनमें से दोनों या अधिक में।

"मेरे खयाल में इससे आप उन बातों का कुछ आभास पा चुके होंगे जिन्हें हमने अपने वक्तव्य में कहा है।

"कल सुबह तक यह बात आप पर ही छोड़ने के पहले मैं एक बात और कहना चाहता हूँ।

"आप इस बात का अनुभव करेंगे कि भारतीय जनता के लिए यह निर्णय-काल कितना महत्वपूर्ण है।

"हम सभी इस बात से सहमत हैं कि इस विषय का निबटारा जल्द हो जाना चाहिए। अब तक हम इस बात पर सहमत नहीं हो सके हैं कि यह शीघ्रता किस प्रकार लायी जा सकती है। हमने दो महीने की बहस और कठिन श्रम के बाद और अध्ययन तथा श्रवण करके

यह वक्तव्य इस विश्वास से तैयार किया है कि यह सर्वोत्तम है। यह हमारा दृढ़ मत है और हम अब फिर से सारी बातचीत शुरू करना नहीं चाहते। हम चाहते हैं कि जो रेखाएँ हमने खींच दी हैं उन्हीं के आधार पर आगे बढ़ा जाय। हम भारतीयों से कहते हैं कि वह इस वक्तव्य पर शान्तिपूर्वक और सावधानी के साथ विचार करें। मैं समझता हूँ कि उनके भविष्य का सुख इस पर निर्भर करता है कि आज वे क्या करने जा रहे हैं।

"यदि वे आपस में समझौता न कर सके और वे इस हमारे बताये ढंग पर नया विधान बनाने के काम में जुट गये तो हम इस संक्रान्ति-काल को सुचारु रूप से और शीघ्रता पूर्वक पूरा कर सकेंगे; पर यदि योजना स्वीकृत नहीं हुई तो कोई भी नहीं कह सकता कि हिन्दुस्तानियों को कितनी प्रबल और लम्बी यातना भोगनी पड़ेगी।

"हमारा विश्वास है कि यह वक्तव्य सभी दलों के लिए प्रतिष्ठायुक्त और शान्तिपूर्ण उपाय प्रदान करता है और यदि वे स्वीकार करेंगे तो हम में जो भी शक्ति है उससे लगातार हम विधान-निर्माण के काम को आगे बढ़ाने में मदद देंगे जिससे जल्द-से-जल्द समझौते पर पहुँचा जा सके।

"हमारे इरादों पर किसी को शक नहीं होना चाहिए। बृटिश मज़दूर दल की जो नीति अर्से से रही है उसको पूरी करने के लिए ही हम इस देश में आये हैं, और उसी के लिए इतना कठिन परिश्रम किया है—और वह यह है कि हम हिन्दुस्तानियों को, इस काम की कठिनाइयाँ जितनी जल्दी करने देंगी उतनी ही शीघ्रता और अच्छे तथा सहयोगपूर्ण ढंग से, उनके अधिकार सौंप देंगे।

"हमें हार्दिक आशा है कि हिन्दुस्तानी जनता इस वक्तव्य को उसी रूप में स्वीकार करेगी जिसमें यह तैयार किया गया है, और यह कि एक या दो सप्ताह में विधान-निर्माण का कार्य शुरू हो सकता है और अन्तरिम सरकार की स्थापना हो सकती है।"

लार्ड सभा में बहस

लार्ड-सभा में बहस के दरमियान भारत की नवीन योजना का श्वेतपत्र औपनिवेशिक सचिव लार्ड एडिसन ने पढ़ सुनाया।

वाइकाउण्ट साइमन ने इस बहस का आरम्भ करते हुए पूछा कि अन्तरिम सरकार की स्थापना करने का मतलब यह तो नहीं है कि वाइसराय की कौंसिल में बैठने के लिए नये आदमी चुने जायंगे। उन्होंने कहा—"यह तो वैधानिक परिवर्तन नहीं होगा। यदि नहीं, तो क्या इसके द्वारा अधिक विस्तृत परिवर्त्तन होगा।"

जवाब में लार्ड एडिसन ने कहा—"मैं इस बात को ठीक समझता हूँ कि हमें इस पर आगे विचार तब तक नहीं करना चाहिए जब तक कि हमें इस श्वेतपत्र पर हिन्दुस्तानियों की राय मालूम न हो जाय।

"लार्ड साइमन के सवाल का जवाब मेरे ख़याल में काफी साफ है। यह तो व्यक्तियों के बदलने का सवाल है, और हमें आशा है कि यह रज़ामन्दी और सन्तोष के साथ तय पायेगा और विश्वास पैदा करेगा। वाइसराय के अधिकार और कर्त्तव्य ज्यों-के-त्यों रहेंगे।"

लार्ड साइमन—"नहीं तो इसका मतलब पार्लीमेण्ट का एक कानून ही हो जाता।"

लार्ड एडिसन—"जी हाँ।"

('हिन्दुस्तान टाइम्स', रायटर १७—५—४६)

पत्रकार-परिषद्, नई दिल्ली
(१८ मई, १६४६)

बृहस्पतिवार की घोषणा के अनेक पहलुओं को स्पष्ट करने के लिए शुक्रवार को, नई दिल्ली में पत्रकारों का एक सम्मेलन दो घण्टे तक हुआ, जिसमें हिन्दुस्तानी तथा विदेशी १०० से अधिक पत्रकारों ने, भारत-मन्त्री लॉर्ड पेथिक-लारेंस से बीसियों सवाल पूछे, जिनके उत्तर उन्होंने शान्तिपूर्वक दिये। सर स्टैफ़र्ड क्रिप्स, जो लार्ड लारेंस के बाईं ओर बैठे थे, बीच बीच में उनकी सहायता करते थे।

लॉर्ड पेथिक-लारेंस ने साफ़-साफ़ कहा कि वाइसराय तथा शिष्टमण्डल की घोषणा, कोई अन्तिम फ़ैसला नहीं है। यह तो विधान की कुछएक आधारभूत बातों के विषय में सिफ़ारिश मात्र है, ताकि हिन्दुस्तानी प्रतिनिधियों को अपना विधान बनाने के लिए बुलाया जा सके। अतः ज़ाहिर है कि यह अन्तिम फ़ैसले का सवाल नहीं है। ऐसी अवस्था में, अंग्रेज़ी फ़ौजों की मदद का सवाल ही नहीं उठता।

भारत-मन्त्री ने यह भी कहा, कि शिष्ट-मण्डल की ओर से सिफ़ारिश किये गये विधान में ऐसा परिवर्तन नहीं किया जा सकता जिसमें एक दल को लाभ पहुँचे और दूसरे की हानि हो। प्रस्तावित भारत यूनियन में शामिल होनेवाले प्रान्तों के अधिकारों पर लार्ड पेथिक-लारेंस ने लगभग १०० प्रश्नों के उत्तर दिये।

सवाल किया गया, कि उन प्रान्तों को जिन्हें समूह से निकल आने का अधिकार है, क्या भारत यूनियन से भी दो साल के भीतर निकल आने का अधिकार प्राप्त होगा? लार्ड पेथिक-लारेंस ने उत्तर दिया—उन्हें दो साल के अन्दर निकल जाने का अधिकार तो नहीं होगा, पर यह अधिकार ज़रूर होगा कि १० साल बाद, वे विधान पर पुनर्विचार की मांग पेश कर दें।

प्रश्न—मान लीजिये आसाम प्रान्त जिसमें कांग्रेस मंत्रि-मण्डल है, 'सी' समूह में बंगाल के साथ, जिसमें मुस्लिम लीग का मंत्रि-मण्डल है, न रहने का निश्चय करे तो क्या आसाम को किसी अन्य समूह में शामिल हो जाने की इजाज़त होगी?

उत्तर—बाहर निकल आने का अधिकार बाद में आता है, क्योंकि इस अधिकार पर अमल तभी किया जा सकता है, जबकि समस्या को पूरी तरह हल कर लिया जाय।

प्रश्न—क्या कोई प्रान्त एक समूह से निकल जाने पर, दूसरे समूह में शामिल हो सकता है?

लार्ड पेथिक-लारेंस ने उत्तर दिया, यदि किसी एक प्रान्त को दूसरे समूह में मिल जाने का अधिकार दे दिया जाय और वह समूह उसे शामिल न करता हो, तो एक भद्दी-सी परिस्थिति पैदा हो जायगी। इस प्रश्न का उत्तर, वक्तव्य में नहीं रक्खा गया बल्कि विधान-परिषद् पर छोड़ दिया गया है, जो उचित अवसर पर खुद विचार कर लेगी।

प्रश्न—यदि कोई प्रान्त, उस समूह में न रहना चाहे जिसमें कि उसे रक्खा गया है, तो क्या वह प्रान्त अलहदा रह सकेगा?

उत्तर—वक्तव्य में जो 'ए', 'बी', और 'सी' विभाग नियत किये गये हैं, सब प्रान्त अपने-आप ही इनमें आजाते हैं। और शुरू में तो वे उसी विभाग में रहेंगे जिनमें कि वक्तव्य के अनुसार उन्हें रक्खा गया है। बाद में, वह विभाग निश्चय करेगा कि एक समूह बना दिया जाय या नहीं, और यह कि उसका विधान क्या हो। उस विभाग-द्वारा-निर्मित समूह से निकल आने के अधिकार

का सवाल तभी उठता है, जबकि विधान बन चुकता है और धारा-सभा का पहला चुनाव हो लेता है; उसके पहले नहीं।

प्रश्न—एक शर्त यह भी मौजूद है, कि १० साल बीत जाने पर, कोई प्रान्त, अपनी धारा-सभा के बहुमत से, विधान पर पुनः विचार की मांग कर सकता है। क्या 'विधान पर पुनः विचार की मांग' में सम्बन्ध-विच्छेद का अधिकार भी शामिल है ?

उत्तर—यदि आप विधान का संशोधन करेंगे तो ज़ाहिर है कि विधान के समूचे आधार पर पुनः विचार हो सकता है। कोई भी प्रान्त, विधान के संशोधन की माँग कर सकता है और जहाँ तक मैं देखता हूँ जब संशोधन-कार्य शुरू होगा, तो विधान के सभी पहलुओं पर फिर-से विचार किया जा सकेगा।

प्रश्न—यदि 'बी' विभाग के प्रान्त, जिनमें मुसलमानों का बहुमत है, एक समूह तो बना लेते हैं पर यूनियन में शामिल नहीं होते, तो स्थिति क्या होगी ?

उत्तर—यह तो उस शर्त को तोड़ देना होगा जिसके आधार पर वे लोग विधान बनाने को जमा होंगे। फलतः, विधान-निर्माण का प्रबन्ध दम तोड़ देगा, और यह उस समझौते के विरुद्ध होगा, जिसके अनुसार यह लोग मिल कर बैठेंगे। यदि यह लोग किसी एक समझौते के आधार पर जमा होते हैं, यह मानकर, कि मुख्य प्रस्ताव को स्वीकार कर लेंगे, और बाद में अगर उसी से इन्कार कर जाते हैं, तो इसे समझौते का अन्त कहा जायगा। हम ऐसी अवस्था को ध्यान में लाना नहीं चाहते।

प्रश्न—विभाग 'बी' के प्रान्त क्या १० साल बाद एक अलहदा स्वतंत्र राज्य बन सकेंगे ?

उत्तर—यदि विधान का संशोधन हो रहा होगा तो निश्चय ही संशोधनके सभी प्रस्तावों पर बहस हो सकेगी। अलबत्ता, वे स्वीकृत होते हैं या नहीं, यह एक दूसरा प्रश्न है।

प्रश्न—मान लीजिये कि एक समूह यूनियन की विधान-परिषद् में शामिल न होने का फैसला करता है, तो जहाँ तक इस समूह का सम्बन्ध है, स्थिति क्या होगी ?

उत्तर—यह तो कोरा काल्पनिक प्रश्न है। आप अभी से क्योंकर कह सकते हैं कि असहयोग करनेवालों से कैसा सलूक किया जायगा। परन्तु वक्तव्य में रक्खे गये विधान-निर्माण यंत्र को आगे बढ़ाने का इरादा है। यदि कोई व्यक्ति या जनता के कुछ समूह मेरे काम में अड़ंगा लगादें तो अभी से मैं क्या कह सकता हूँ, कि क्या होगा। बहर-हाल मेरा इरादा आगे बढ़ने का है।

प्र०—क्या प्रान्तीय धारासभाएं, अपने सदस्यों के अतिरिक्त, बाहर के लोगों का निर्वाचन भी कर सकेंगी ?

उ०—जी हाँ, वक्तव्य की शर्तों के अनुसार ऐसा करना वर्जित नहीं है।

प्र०—विधान पर पुनर्विचार के लिए, जो १० साल की अवधि नियत हुई है, क्या इसका यह मतलब है कि यूनियन के विधान का १० साल तक उल्लंघन नहीं किया जा सकता ?

उ०—इस का सही मतलब यह है कि विधान-सभा विधान के संशोधन की व्यवस्था करेगी। यह संसार के अनेक देशों की प्रचलित रीति के अनुसार ही है। संशोधन की कुछ व्यवस्था होना तो आवश्यक है। संशोधन के निश्चित नियम क्या हों, इसका फैसला तो विधान-परिषद् ही करेगी। मेरे ख़याल में मुझे और कुछ नहीं कहना चाहिये।

प्र०—क्या यह विधान-परिषद् के हाथ में होगा कि वह यूनियन को सब प्रकार के कर, जिनमें तटकर आयकर आदि हों, लगाने के अधिकार प्रदान करेगी ?

लार्ड पेथिक लारेंस ने उत्तर दिया,—हमारे वक्तव्य में विधान-परिषद् को छूट है कि वह अर्थ-सम्बन्धी शब्दों की व्याख्या कर ले, किन्तु शर्त यह है कि हर उस प्रस्ताव पर, जिसका सम्बन्ध किसी गम्भीर साम्प्रदायिक समस्या से हो, बहस करने को प्रतिनिधियों की अधिकांश संख्या उपस्थित हो और दोनों प्रमुख सम्प्रदाय के प्रतिनिधियों का बहुमत वोट दे। बुनियादी फारमूले में हेर-फेर तथा ऊपर लिखी शर्त के अधीन, विधान-परिषद् का मामूली बहुमत किसी भी प्रस्ताव को पास कर सकेगा।

लार्ड पेथिक-लारेंस ने बतलाया कि मुद्रा को केन्द्राधीन रखने के प्रश्न पर, यदि ज़रूरत हो तो, विधान-परिषद् विचार कर सकेगी।

हिन्दुस्तानी रियासतों के बारे में अनेक प्रश्नों के उत्तर देते हुए भारत-मन्त्री ने यही दुहराया कि अस्थायी काल में सर्वोपरि सत्ता बराबर रहेगी। आप ने बतलाया कि हमारे शिष्ट-मंडल को बहुत-सी बड़ी रियासतों तथा अन्य रियासतों के बड़े-बड़े समूहों के प्रतिनिधियों ने विश्वास दिलाया है कि वे हिन्दुस्तान की आज़ादी की राह में रोड़े नहीं अटकायेंगे, वरन् सहयोग देंगे।

अस्थायी काल में, इण्डिया ऑफिस के बारे में लार्ड पेथिक-लारेंस ने कहा कि कुछ मास से तो इण्डिया ऑफिस इसी अनुमान पर चल रहा है कि वह वक्त आ रहा है जब कि हिन्दुस्तान में भारी परिवर्त्तन होंगे और इण्डिया ऑफ़िस सर्वथा बदला जायगा। इस ऑफ़िस का विशाल कार्यालय और कार्यकर्ताओं की सेवाएं, हिन्दुस्तान के नये विधान को प्राप्य होंगी।

प्र०—यदि विधान-परिषद् यह निश्चय करे कि उसका कार्य आरम्भ होने से पहले अंग्रेज़ी फ़ौजें हटा ली जायँ, तो क्या ऐसा किया जायगा?

उ०—मेरे ख़याल में परिस्थिति को ठीक नहीं समझा जा रहा। देश में क़ानून और व्यवस्था क़ायम रखने के लिए, किसो की ज़िम्मेदारी तो होनी ही चाहिये। प्रान्तों में प्रान्तीय सरकारें क़ानून और व्यवस्था की असली ज़िम्मेदार हैं, परन्तु अन्तिम ज़िम्मेदारी केन्द्रीय सरकार पर ही आती है। हम जल्द-से-जल्द वह ज़िम्मेदारी सौंप देना चाहते हैं, किन्तु केवल विधिपूर्वक स्थापित की गई सरकार के हाथों में। जब वह समय आयेगा, हम ज़रूर सौंप देंगे।

प्र०—अब शिष्टमंडल के कार्यक्रम की मंज़िल क्या होगी?

उ०—सब से पहले तो हमें इस योजना को दोनों मुख्य सम्प्रदाय-वालों से स्वीकार करवाना है, जो हमें आशा है जल्दी हो जायगा।

प्र०—अंतरिम सरकार में मुसलमान कितने प्रतिशत होंगे?

उ०—अंतरिम सरकार का निश्चय हमें नहीं करना, यह काम वाइसराय का है।

प्र०—अंतरिम काल में, क्या वाइसराय को, आजकल की तरह 'वीटो' यानी प्रतिषेध का अधिकार होगा?

उ०—लार्ड पेथिक-लारेंस ने उत्तर देते हुए कहा कि सम्प्रदायों के तीन मुख्य भाग—जनरल, मुस्लिम और सिख—हमने किसी पार्टी की सलाह से नहीं किये हैं। यह वक्तव्य हमारा है और किसी हिन्दुस्तानी राय का प्रतीक नहीं है। किन्तु, भिन्न-भिन्न मतों के हिन्दुस्तानियों के साथ इन सब विषयों पर विचार-विनिमय के बाद ही हमने यह वक्तव्य पेश किया है। और हमारा यही प्रयास है कि सब दलों को स्वीकार होनेवाली योजना तैयार हो जाय।

प्र०—क्या कांग्रेस इससे सहमत है?

उ०—हमने किसी की स्वीकृति के आधार पर यह वक्तव्य पेश नहीं किया। यह हमारा वक्तव्य है और स्वावलम्बी है।

इसके बाद, हाउस ऑफ़ कामन्स में मि० चर्चिल के भाषण पर अनेक सवाल पूछे गये।

प्र०—क्या मि० चर्चिल ठीक कहते हैं कि "हिन्दुस्तान के भावी विधान को तैयार करने की जो ज़िम्मेदारी हिन्दुस्तानियों की बजाय ब्रिटिश सरकार ने अपने-पर ले ली है, यह बड़ा ग़लत क़दम उठाया गया है, और यह कि यह मिशन के उद्देश्य तथा अधिकारों के बाहर जा रहा है?

उ०—विधान के अन्तिम निर्णय की ज़िमेदारी में कोई हेर-फेर नहीं हुआ। यदि हिन्दुस्तानियों के भिन्न-भिन्न दलों की अनुमति प्राप्त हो जाती, और विचार-विनिमय के बाद किसी आधार पर वे विधान-निर्माण के लिए मिलकर बैठ सकते, तो हमारे लिए बड़ी प्रसन्नता की बात होती। इसके अभाव में, हमीं ने यह उचित समझा, कि कुछ-एक सुझाव उनके सामने रखें, जिनके आधार पर वे मिल बैठें। और ख़ुद वाइसराय उस आधार पर एक विधान सभा बुलाने को तैयार हैं। हमें विश्वास है, कि यह सब, न केवल हिन्दुस्तानियों, बल्कि हमारे देश के भी अधिकांश लोगों की इच्छा के अनुकूल है।

प्र०—अंतरिम सरकार की स्थापना, नये विधान की तैयारी और राजा की सम्राट्-उपाधि को रद्द करने के लिए, क्या-क्या क़ानूनी कार्यवाई करनी होगी?

उ०—जहां तक पहली दो बातों का सम्बन्ध है, किसी प्रकार के क़ानून की ज़रूरत नहीं होगी। मगर तीसरी बात वैधानिक क़ानून के अधीन है, अतः मैं तत्काल उत्तर नहीं दे सकता। मेरी राय में, यह यक़ीनी तौर-पर नहीं कहा जा सकता कि इसके लिए वैधानिक व्यवस्था दरकार होगी। बहरहाल, इसे अन्तिम निश्चय न माना जाय। पार्लीमेंट में इस पर बहस ज़रूर होगी और सम्राट् की अनुमति से कोई-न-कोई व्यवस्था की जायगी। लेकिन मुझे इसमें कोई विशेष अड़चन नज़र नहीं आती। आजकल हमारी मज़दूर सरकार है और पार्लीमेंट में हमें काफ़ी बहुमत प्राप्त है, अतः पास करा लेना मुश्किल नहीं होगा।

प्र०—क्या आप मि० चर्चिल के इस कथन से सहमत हैं कि आपने यह परिश्रम, साम्राज्य-प्राप्ति के लिए नहीं, वरन् साम्राज्य खोने के लिए किया है?

उ०—मैं तो इतना ही कहूँगा कि आज हम जो-कुछ भी कर रहे हैं, वह हमारे देश के बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों द्वारा प्रकट किये गये विचारों के एकदम अनुकूल है। और मेरे देश में स्वतंत्रता-सम्बन्धी प्रचलित परम्पराओं के लिए इससे बढ़कर और अधिक श्रेय की बात कोई नहीं होगी, यदि हमारे श्रम के परिणाम-स्वरूप भविष्य में यह हिन्दुस्तान एक स्वतंत्र देश बन सके और हमारे देश के साथ इसका सम्बन्ध मैत्री और बराबरी का हो।

(एसोसिएटेड प्रेस आफ़ इण्डिया)

वायसराय का रेडियो-भाषण

दिल्ली रेडियो-स्टेशन से वायसराय महोदय ने १७ मई १९४६ को निम्न भाषण ब्राडकास्ट किया।

"मैं भारत के लोगों से इस देश के इतिहास में अत्यन्त नाज़ुक अवसर पर बोल रहा हूँ। मंत्रि-मिशन का वक्तव्य तथा उसमें की गयी सिफारिशें गत २४ घंटों से आपके सम्मुख हैं। यह वक्तव्य स्वतंत्रता का रेखा-चित्र है। आपके प्रतिनिधियों को ही इस पर भवन-निर्माण करना है और इस रूप-रेखा को सम्पूर्ण चित्र का रूप देना है।

"आप लोगों में से बहुतों ने उस वक्तव्य को पढ़ा होगा और शायद पहले ही आप उसके सम्बन्ध में अपने विचार स्थिर कर चुके होंगे। यदि आप समझते हैं कि वह उस उच्च शिखर का मार्ग प्रशस्त करता है जो चिरकाल से आपका लक्ष्य रहा है--अर्थात् भारत की स्वतन्त्रता, तो निश्चय ही आप उत्सुकतापूर्वक उसे स्वीकार करेंगे। यदि आपने ऐसी धारणा बनायी है--मुझे आशा है आपने ऐसा नहीं किया होगा--कि उक्त वक्तव्य वह अपेक्षित मार्ग नहीं है, तो मैं आशा करता हूं आप एक बार फिर निर्देशित रास्ते का अध्ययन करेंगे और यह सोचेंगे कि क्या इस मार्ग की कठिनाइयों पर, जो हम जानते हैं बहुत भयानक है, पटुता, सन्तोष तथा साहस-द्वारा विजय प्राप्त नहीं की जा सकती।

"मैं आपको एक बात का पूरा विश्वास दिला दूँ। इन सिफारिशों का आधार घोर परिश्रम, गम्भीर अध्ययन, अत्यधिक विवेचन और हमारी अधिक से-अधिक सद्भावना तथा शुभेच्छा है। हम यह कहीं अच्छा समझते थे यदि भारतीय नेता स्वयं ग्रहणीय मार्ग के सम्बन्ध में समझौता कर लेते। और इसके लिये हमने उन्हें अधिक-से-अधिक प्रेरित किया; किन्तु कोई समझौता न हो सका, यद्यपि दोनों पक्ष रियायतें करने को तैयार थे और एक समय तो सफलता की आशा भी होने लगी थी।

"स्पष्टतः ये प्रस्ताव ऐसे नहीं हैं जिन्हें किसी भी दल ने स्वतन्त्र रहने पर अपनाया होता, किन्तु मेरा यह विश्वास है कि ये प्रस्ताव ऐसे युक्तिसंगत तथा व्यावहारिक आधार प्रस्तुत करते हैं जिस पर भारत का भावी विधान बनाया जा सकता है। इनके द्वारा भारत की अखण्डता, जो प्रमुख दलों के झगड़े के कारण संकट में पड़ गयी है, स्थिर बनी रहती है। और विशेषतः ये भ्रातृत्व की भावना से पूर्ण भारतीय सेना में फूट के संकट को दूर कर देते हैं--भारत आगे ही इस सेना का इतना आभारी है और इसकी शक्ति, एकता और कुशलता पर भावी भारत की सुरक्षा बहुत निर्भर होगी। ये प्रस्ताव मुसलमानों को यह अधिकार देते हैं कि वे अपने आवश्यक हितों, अपने धर्म, अपनी शिक्षा, अपनी सभ्यता, अपने आर्थिक तथा अन्य मामलों का अपनी इच्छानुसार तथा अपने लाभार्थ संचालन करें। एक और महान् सम्प्रदाय--सिखों--के लिए ये प्रस्ताव उनकी पितृ-भूमि पंजाब की अखण्डता बनाये रखते हैं। पंजाब के इतिहास में सिखों ने बहुत बड़ा भाग लिया है और भविष्य में भी वे उसमें महत्वपूर्ण तथा प्रभावपूर्ण भाग ले सकते हैं। विशेष कमेटी के रूप में, जो विधान-निर्माण मशीनरी का एक अंग है, ये प्रस्ताव छोटे अल्पसंख्यकों को अपनी आवश्यकताएं प्रकट करने का तथा अपने हितों की रक्षा करने का सर्वोत्तम साधन प्रदान करते हैं। छोटी-बड़ी सभी रियासतों के लिए बातचीत द्वारा भारतीय संघ में प्रविष्ट होने की व्यवस्था का भी ये प्रस्ताव प्रयास करते हैं। भारत के लिए ये प्रस्ताव दलगत संघर्ष से शान्ति तथा आवश्यक रचनात्मक कार्य करने के लिए शान्ति का सन्देश हैं। ये आपको विधान-निर्मात्री सभा का कार्य समाप्त होते ही सम्पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करने का सुअवसर देते हैं।

"हमारे सामने जो रचनात्मक कार्य है मैं उस पर जोर देना चाहूँगा। यदि आप उस वक्तव्य के प्रस्तावों को अपने विधान-निर्माण के लिए युक्तिसंगत आधार मानने को तैयार हैं, तब हम तत्काल ही भारत की सारी शक्ति और योग्यता को अल्पकालीन अत्यावश्यक समस्याओं से निबटने में लगा सकेंगे। आप उन्हें भली प्रकार जानते हैं--अकाल में तात्कालिक संकट का समाधान और भविष्य में सबके लिए पर्याप्त खाद्य की उपलब्धि के उपाय जुटाना, भारत के स्वास्थ्य

को उन्नत करना, व्यापक शिक्षा की योजनाओं को कार्यान्वित करना, सड़कें बनाना और उनमें सुधार करना, और जन-साधारण के मापदण्ड को ऊँचा करने के लिए अन्य आवश्यक कार्य करना। भारत के जल-स्रोतों के नियन्त्रण की, सिंचाई के विस्तार की, बिजली पैदा करने की, बाढ़ों को रोकने की, नये कारखाने बनाने की और नये उद्योग स्थापित करने की भी बड़ी-बड़ी योजनाएँ हमारे सामने हैं। उधर विदेश में भारत को अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं में भी उचित स्थान प्राप्त करना है। इन संस्थाओं में भारत के प्रतिनिधि आगे ही ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। अतः मैं उत्सुक हूं कि इस संकटपूर्ण आगामी संक्रान्ति-काल में, जब नया विधान बनाया जायगा, भारतीय शासन के सूत्रधार वे अग्रणी व्यक्ति हों जो सर्व-सम्मति से योग्यतम और प्रतिभाशाली माने जाते हैं और जिनमें भारतीयों को विश्वास हो कि वे उनके कल्याणवर्धन एवं लक्ष्य-प्राप्ति में सहायक होंगे।

"जैसा कि वक्तव्य में कहा गया है, इस संक्रान्ति-काल में अन्तर्कालीन सरकार शीघ्राति-शीघ्र बनाने तथा उसे चलाने का भार मुझे सौंपा गया है। मुझे आशा है इसमें किसी को भी सन्देह न होगा कि स्वराज्य के पथ पर भारत का यह बहुत बड़ा क़दम होगा। अन्तर्कालीन सरकार विशुद्ध भारतीय सरकार होगी, केवल प्रधान—गवर्नर जनरल—ही अ-भारतीय होगा। यदि अपनी इच्छानुसार व्यक्ति प्राप्त करने में मैं सफल हुआ, तो मुख्य राजनीतिक दलों के नेतागण इस सरकार के सदस्य होंगे जिनकी योग्यता, प्रतिष्ठा एवं सेवाभाव असंदिग्ध हैं।

"इस सरकार का प्रभाव एवं प्रतिष्ठा न केवल भारत में ही वरन् भारत से बाहर भी होगी। भारत की उच्चतम प्रतिभा, जिसका उपयोग अब तक केवल विरोध करने में ही हुआ है, रचनात्मक कार्यों में लगाई जा सकती है। ये व्यक्ति नवीन भारत के निर्माता होंगे।

"सद्भावना के बिना कोई भी विधान अथवा सरकार सुचारु एवं सन्तोषजनक रूप से नहीं चल सकती। यदि सद्भावना मौजूद हो, तो प्रत्यक्ष रूप से असंगत व्यवस्था भी सफल बनायी जा सकती है। वर्तमान पेचीदा स्थिति में, जिसका हमें सामना करना पड़ रहा है, चार मुख्य दल हैं—अंग्रेज, भारत के दो प्रमुख—दल, हिन्दू और मुस्लिम तथा देशी राज्य। समष्टि के कल्याण में योगदान करने के लिए इन सब दलों को अपने वर्तमान दृष्टिकोण में परिवर्तन करना होगा, यदि इस बड़े परीक्षण को हमें सफल बनाना है। विचारों और सिद्धान्तों में रिआयत करना कठिन और अरुचिकर होता है। इसकी आवश्यकता को अनुभव करने के लिए विशाल हृदय चाहिये, और रिआयत करना तो बड़ी उच्च आत्मा का काम है। मुझे विश्वास है कि मन और आत्मा की इस विशालता का भारत में अभाव न होगा, जिसका मेरे विचार में ब्रिटिश राष्ट्र के इन प्रस्तावों में भी अभाव नहीं है।

"मैं कह नहीं सकता कि आपलोग कहां तक यह समझ सके हैं कि विश्व-इतिहास में शासन-सम्बन्धी यह अत्यन्त महान् प्रयोग किया जा रहा है। ४० करोड़ प्रजाजन के भाग्य का निबटारा करने के लिए यह एक नये विधान का निर्माण होगा। निश्चय ही, हम सब पर, जिन्हें इस कार्य में सहयोग देने का गौरव प्राप्त हुआ है, यह बड़ा गम्भीर दायित्व है।

"अन्त में, मैं इस बात पर ज़ोर देना चाहता हूं कि यह आपके लिए गम्भीर निर्णय का समय है। आपको शान्तिपूर्ण रचनात्मक कार्य और उपद्रवपूर्ण गृहयुद्ध में, सहयोग और फूट में, नियमित उन्नति और अराजकता में चुनाव करना होगा। मुझे निश्चय है कि आप सबका निर्णय निस्सन्देह सहयोग और मेल के पक्ष में होगा।

"तो क्या मैं अब उन वाक्यों के उद्धरण से समाप्त करूँ, जिनका विगत युद्ध के एक नाजुक मौके पर उद्धरण एक महान् व्यक्ति ने दूसरे महान् व्यक्ति को किया था। ये शब्द भारत के वर्तमान संकट-काल में भी बड़े उपयुक्त हैं —

राज्य-पोत तू भी बढ़ा चल,
हे संघ ! महान् एवं शक्तिशाली—बढ़ा चल;
मानवता—अपनी समस्त आशंकाएँ लिए,
भावी वर्षों की आकांक्षाएं लिए,
भाग्य-निर्णय की प्रतीक्षा कर रही।"

प्रधान सेनापति का रेडियो-भाषण

भारत के प्रधान सेनापति जनरल सर क्लाड आकिनलेक ने १७ मई को भारतीय रेडियो के दिल्ली-स्टेशन से जो भाषण दिया वह इस प्रकार है :—

"जैसा कि आप श्रीमान् वाइसराय से सुन चुके हैं ब्रिटिश सरकार ने एक ऐसी योजना उपस्थित की है, जिसके द्वारा भारतीय अपना विधान स्वयं तैयार करने और एक स्वाधीन भारतीय सरकार की स्थापना करने में समर्थ हो सकें। आप सब यह भी जानते हैं कि ब्रिटिश सरकार के सदस्य और वाइसराय इधर कुछ समय से मुस्लिम लीग तथा कांग्रेस के नेताओं से विचार-विनिमय कर रहे थे। वे यह निश्चय करने का प्रयत्न कर रहे थे कि भारत में किस प्रकार की सरकार की स्थापना की जाय। उनका उद्देश्य ब्रिटिश सरकार-द्वारा दिये गये इस वचन का निर्वाह करना था कि भविष्य में भारत का शासन स्वयं उसी की जनता द्वारा होगा, उस पर ब्रिटेन का कुछ भी नियंत्रण न रहेगा और ब्रिटिश राष्ट्र-मंडल के भीतर बने रहने अथवा उससे बाहर निकल जाने के सम्बन्ध में मनचाहा निर्णय करने के लिए भी भारत स्वतंत्र रहेगा।

"शासन-व्यवस्था का ऐसा रूप ढूंढ़ निकालने का प्रत्येक प्रयत्न किये जाने के बावजूद, जो कांग्रेस तथा मुस्लिम दोनों ही को स्वीकार हो, कोई समझौता नहीं हो सका।

"मुस्लिम लीग का विचार है कि भारत में दो पृथक् एवं स्वाधीन राज्य रहने चाहिएं—मुसलमानों के लिए पाकिस्तान और हिन्दुओं के लिए हिन्दुस्तान। कांग्रेस का विचार है कि भारत का विभाजन न किया जाय—एक केन्द्रीय सरकार रहे और प्रान्तों का अपने-अपने क्षेत्र में अधिक-से-अधिक नियंत्रण रहे।

"संक्षेप में दोनों राजनीतिक दलों-द्वारा ग्रहण की गयी स्थिति यह थी—

"आशा थी कि इन दोनों दृष्टिकोणों का कोई-न-कोई ऐसा सम्बन्ध हो सकेगा, जिसे दोनों ही पक्ष स्वीकार कर लेंगे। यद्यपि दोनों दलों ने सद्भावना की वृद्धि के लिए अपने विचारों में बहुत कुछ संशोधन किया फिर भी समझौता नहीं हो सका।

"इसलिए दोनों मुख्य राजनीतिक दलों में समझौता करा सकने में असफल होने पर ब्रिटिश सरकार ने भारत की जनता के प्रति अपने कर्तव्य के सम्बन्ध में यह निश्चय किया है कि भारत को सुव्यवस्थित तथा शान्तिपूर्ण रूप से यथासम्भव शीघ्र ही स्वाधीनता प्रदान करने के लिए उसे अपने विचार प्रकट कर देना चाहिये ताकि सर्वसाधारण को कम-से-कम असुविधा और अव्यवस्था का सामना करना पड़े।

"यह व्यवस्था करते समय ब्रिटिश सरकार ने इस बात का ध्यान रखा है कि भारतीय जनता के बड़े वर्गों के ही प्रति नहीं, वरन् छोटे वर्गों के प्रति भी न्याय का व्यवहार हो सके और

उन्हें स्वाधीनता की प्राप्ति हो सके।

"ब्रिटिश सरकार अनुभव करती है कि मुसलमानों को वास्तव में भय है कि सम्भवतः उन्हें हमेशा के लिए हिन्दू सरकार के अधीन रहने के लिए विवश किया जाय और इसलिए कोई भी नयी सरकार ऐसी होनी चाहिये जिससे सदा के लिए उनका यह भय निर्मूल हो जाय।

"इसी बात को ध्यान में रखते हुए बहुत ध्यानपूर्वक और प्रत्येक दृष्टिकोण से तथा बिना किसी पक्षपात के पूर्ण रूप से एक पृथक् और स्वतंत्र राज्य पाकिस्तान की स्थापना की संभावना पर सोच-विचार किया गया है।

"इस छानबीन के परिणामस्वरूप ब्रिटिश सरकार को बाध्य हो कर यह निर्णय करना पड़ा है कि पूर्ण रूप से ऐसे स्वतंत्र राज्यों की स्थापना से, जिनका एक-दूसरे के साथ किसी प्रकार का भी सम्बन्ध न हो,-हिन्दुओं और मुसलमानों के मतभेदों का हल नहीं निकल सकता।

"उनका मत यह भी है कि दो या उससे अधिक स्वतंत्र राज्यों की स्थापना से भविष्य में भारत को महान् क्षति एवं खतरा उठाना पड़ेगा।

"इसलिए वे भारत को दो पृथक् राज्यों में विभक्त करने के लिए सहमत नहीं हो सकते, यद्यपि उनका विचार है कि यदि बहुसंख्यक मुस्लिम इलाकों में वे अपना शासन स्वयं करना चाहें और अपना जीवन अपने ढंग से बिताना चाहें तो उसके लिए कोई-न-कोई मार्ग अवश्य ढूंढ निकाला जाय। हिन्दू और कांग्रेस दल भी इसे स्वीकार करते हैं।

"इसलिए ब्रिटिश सरकार ने न तो पूर्ण रूप से पृथक् राज्यों की स्थापना को ही स्वीकार किया है और न ही केन्द्र में सारी सत्ता को। उसका खयाल है कि यदि विभिन्न इलाकों के लोगों की इच्छा हो तो उन इलाकों को काफी मात्रा में स्वतंत्रता प्रदान की जाय, परन्तु युद्ध के समय सेना, नौसेना, और वायुसेना तथा समस्त भारत की रक्षा का दायित्व सम्पूर्ण भारत के लिए एक ही सत्ता के ऊपर होना चाहिये।

"इसके अतिरिक्त उन्होंने यह सिद्धान्त भी स्वीकार कर लिया है कि प्रत्येक प्रान्त अथवा प्रान्तों के गुट को केन्द्र के किसी प्रकार के भी हस्तक्षेप के बिना अपनी जनता की इच्छानुसार अपने मामलों की स्वयं ही देखभाल करने के पूर्ण अधिकार दिये जा सकते हैं।

"इन प्रस्तावों का उद्देश्य ऐसी व्यवस्था करना है कि सभी मतावलंबी और वर्ग अपनी शासन व्यवस्था के स्वरूप के सम्बन्ध में अपने विचार उपस्थित कर सकें और जनता के किसी एक वर्ग को किसी दूसरे वर्ग के अधीन होने के लिए विवश न होना पड़े और साथ ही उन्हें किसी भय अथवा अत्याचार के बिना अपना जीवन अपने ढंग से व्यतीत करने का अधिकार हो।

"भारत के लिए इस नयी शासन-प्रणाली की विस्तृत बातों का निर्णय स्वयं भारत की जनता को ही करना चाहिये। यह काम ब्रिटिश सरकार का नहीं है। शासन-व्यवस्था की नयी प्रणाली के निर्माण-काल में, देश के प्रबन्ध-संचालन के लिए, वाइसराय महोदय का प्रस्ताव अन्तर्कालीन सरकार संघठित करने का है, जिसमें उनके अतिरिक्त भारतीय लोकमत के वे नेता भी सम्मिलित होंगे, जो जनता के विश्वासपात्र हैं।

"इस अस्थायी सरकार में युद्धमंत्री का पद, जो इस समय प्रधान सेनापति को (अर्थात् मुझे) प्राप्त है, किसी भारतीय नागरिक को मिलेगा। स्थल, जल तथा आकाश सेनाओं के नायकत्व तथा मंगल के लिए मेरी जिम्मेदारी फिर भी जारी रहेगी, किन्तु राजनीतिक विषय नये युद्ध मंत्री के हाथ में होंगे औरमैं स्वयं उनके अधीन रहकर काम करूंगा, जैसे कि ब्रिटेन में

सेनापतियों को नागरिक मंत्रियों के अधीन रह कर काम करना होता है:—

"तजवीज है कि इधर यह अस्थायी सरकार देश के शासन का दैनिक कार्य चलाती रहे और उधर प्रान्तीय व्यवस्थापक-मंडलों-द्वारा निर्वाचित, सब दलों, मतों तथा वर्गों के प्रतिनिधियों की तीन असेम्बलियां (विधान-निर्मात्री परिषदें) स्थापित की जायँ।

"भारतीय राज्यों के प्रतिनिधियों के साथ मिलकर यह इन्हीं तीनों असेम्बलियों का काम होगा कि वे इस बात का निर्णय करें कि भविष्य में भारत का शासन किस रूप में होगा।

"ब्रिटिश सरकार को आशा है कि इस प्रकार भारत को स्वयं अपने नेताओं के शासन-द्वारा शांति एवं सुरक्षा प्राप्त हो सकेगी और देश महानता एवं सम्पन्नता के अपने न्यायोचित पद पर पहुँच सकेगा।

"स्थल, जल तथा आकाश सेनाओं का कर्तव्य है कि जब ये परामर्श तथा बैठकें चल रही हों, वे सरकार के अधीन रह कर, उसके आदेशों का पालन करें।

"जैसा कि मैं कह चुका हूँ, यह अस्थायी सरकार भारतीयों की सरकार होगी और प्रमुख राजनीतिक दलों के नेताओं में से चुने गये, जनता के पूर्ण विश्वासपात्र सज्जन उस में सम्मिलित होंगे।

"निस्संदेह, देश में आज लड़ाई-झगड़े तथा अशांति की आशंका है। चाहे आप स्थल, जल अथवा आकाश, किसी भी सेना के सदस्य हों, आप सब जानते हैं कि अनुशासन-पालन तथा सहनशीलता से क्या लाभ होते हैं; साथ ही, क्या हिंदू, क्या मुसलमान और क्या सिख अथवा ईसाई, आप सब लोगों ने अपने देश की सेवा के हित से, बिना झगड़ा-झमेला अथवा ईर्ष्या-भाव के एक साथ मिलकर रहना सीखा है।

"आपलोगों में से प्रत्येक ने एक दूसरे का आदर करना और एक साथ मिलकर केवल एक ही उद्देश्य के लिए कार्यशील बनना सीखा है। यह उद्देश्य आपके अपने देश की भलाई का है। इस बात में आपने समस्त भारत के समक्ष एक सुन्दर उदाहरण उपस्थित किया है।

"मुझे आप पर पूरा भरोसा है—सदा की ही भांति पूरा भरोसा। और मुझे विश्वास है कि क्या युद्धकाल में तथा क्या शान्ति के समय, जिस प्रकार आप अपने कर्तव्य-पालन का उदाहरण रखते आये हैं, उसी प्रकार आगे भी अपने कार्य एवं कर्तव्य में दृढ़ रहेंगे।

"स्वयं अपनी ओर से मैं भी यही करूंगा। विश्वास रखें कि जब तक मैं यहां मौजूद हूँ, भूतकाल की भांति भविष्य के लिए भी, आप अपने हितों की सुरक्षा के सम्बन्ध में मुझ पर पूरा भरोसा कर सकते हैं।"

कांग्रेस के सभापति मौलाना अबुल कलाम आजाद ने १७ मई को दिल्ली में कांग्रेस कार्यकारिणी समिति की एक मीटिंग बुलायी। समिति ने मंत्रि-मिशन और वाइसराय के प्रकाशित वक्तव्यों पर विचार किया। वक्तव्य और समिति के द्वारा पास किये गये प्रस्ताव के बारे में जो पत्र-व्यवहार मौलाना साहब और लार्ड पेथिक-लारेंस में हुआ है वह इस प्रकार है:—

भारत मंत्री लार्ड पेथिक-लारेन्स के नाम मौलाना आज़ाद का पत्र

तारीख २० मई १९४६

प्रिय लार्ड पेथिक-लारेन्स,

मेरी समिति ने, मंत्रि-मिशन के १६ मई के वक्तव्य पर सावधानी से विचार किया है और आप तथा सर स्टेफर्ड क्रिप्स के साथ हुई गांधीजी की मुलाकातों के बाद, समिति उनसे भी मिल

चुकी है। कुछ ऐसे विषय हैं, जिनके सम्बन्ध में मुझे आपको लिखने के लिये कहा गया है।

जैसा कि वक्तव्य को हमने समझा है, उसमें विधान-निर्मात्री परिषद् के चुनाव तथा संचालन के लिए कुछ सिफारिशें तथा कार्य-विधि दी हुई हैं। मेरी समिति के मत से, निर्मित हो जाने के बाद परिषद् स्वयं विधान-निर्माण के लिए एक सत्ता-सम्पन्न (सावरेन) संस्था होगी, जिसके कार्य में कोई भी बाहरी शक्ति बाधा न डाल सकेगी और सन्धि में उसके सम्मिलित होने के विषय में भी यही बात लागू रहेगी। साथ ही, मन्त्रि-मिशन द्वारा सुझायी हुई सिफारिशों तथा कार्य-विधि में अपनी इच्छानुसार कोई भी परिवर्तन कर सकने के लिये परिषद् स्वतंत्र होगी और विधान-सम्बन्धी कार्यों के लिए, विधान-परिषद् के एक सत्ता-सम्पन्न संस्था होने के कारण, उसके अन्तिम निर्णय स्वयमेव कार्यान्वित होंगे।

जैसा कि आपको मालूम होगा, आपके वक्तव्य में कुछ ऐसी सिफारिशें भी हैं, जो कांग्रेस के उस रुख के विपरीत हैं, जो उसने शिमले में तथा अन्यत्र ग्रहण किया था। स्वभावतः हम इन सिफारिशों की त्रुटियों को, परिषद्-द्वारा हटवाने का यत्न करेंगे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये हम देश को तथा विधान-निर्मात्री परिषद् को अपने विचारों से प्रभावित करने का यत्न भी करेंगे।

एक बात से, जो गांधीजी ने बताई, मेरी समिति को प्रसन्नता हुई। वह यह कि आप इस बात की कोशिश में हैं कि विभिन्न प्रान्तीय असेम्बलियों में विशेषकर बंगाल तथा आसाम के यूरोपियन सदस्य, विधान-परिषद् के लिए चुने जानेवाले प्रतिनिधियों के निर्वाचन में न तो उम्मेदवार हों और न अपने वोट ही दें।

ब्रिटिश बलोचिस्तान से एक प्रतिनिधि के चुने जाने के सम्बन्ध में कोई व्यवस्था नहीं दी गई है। जहाँ तक हमें मालूम है, बलोचिस्तान में कोई निर्वाचित असेम्बली अथवा अन्य प्रकार की सभा नहीं है, जो इस प्रतिनिधि को चुन सके। ऐसे किसी भी एक व्यक्ति के होने से विधान-परिषद् में अधिक अन्तर भले ही न पड़े, किन्तु यदि वह व्यक्ति एक पूरे सूबे बलोचिस्तान की ओर से बोलने का उपक्रम करे, तो इससे निस्सन्देह भारी अन्तर पड़ सकता है, विशेषतः यदि वह उस सूबे का वास्तविक प्रतिनिधि किसी भी प्रकार से न हो। इस प्रकार का प्रतिनिधित्व रखने की अपेक्षा, कोई भी प्रतिनिधि न रखना कहीं अधिक अच्छा है, क्योंकि ऐसे प्रतिनिधि से गलत धारणा पैदा हो सकती है और बलोचिस्तान के भाग्य का ऐसा निर्णय किया जा सकता है, जो उस सूबे के निवासियों की इच्छा के प्रतिकूल हो। यदि बलोचिस्तान से जन-प्रिय प्रतिनिधि चुने जाने की कोई व्यवस्था की जा सकी, तो हम उसका स्वागत करेंगे। अतएव, मेरी समिति को गांधीजी से यह सुनकर प्रसन्नता हुई कि बलोचिस्तान को आप परामर्श-दात्री समिति के कार्य-क्षेत्र के अन्तर्गत सम्मिलित करना चाहते हैं।

विधान के मूलस्वरूप से सम्बन्ध रखनेवाली अपनी सिफारिशों में आपने कहा है कि प्रान्तों को कार्यकारिणी तथा व्यवस्थापक सभाओं से युक्त गुट बनाने की स्वतंत्रता रहनी चाहिये और प्रत्येक गुट इस बात का निर्णय कर सकेगा कि प्रान्तीय विषयों में से कौन-से विषय उसके अधीन रहने चाहियें। ठीक इससे पहले आपने बताया है कि संघ (यूनियन) के अधीन रहने-वाले विषयों के सिवा अन्य सारे विषय तथा शेष अधिकार प्रान्तों को मिलने चाहियें। वक्तव्य में इसके बाद, पृष्ठ ५ में आपने कहा है कि विधान-परिषद् के प्रान्तीय प्रतिनिधि तीन भागों (सेक्शनों) में विभक्त हो जायँगे और ये विभाग (सेक्शन) हर सेक्शन के प्रांतों के प्रान्तीय

विधान तैयार करने का कार्य शुरू करेंगे और यह भी निर्णय करेंगे कि इन प्रांतों के लिए क्या कोई गुट-विधान भी तैयार किया जायगा।

इन दोनों पृथक् व्यवस्थाओं में, हमें निश्चित रूप से भारी अन्तर प्रतीत होता है। मूल व्यवस्था-द्वारा किसी भी प्रान्त को अपने इच्छानुसार कुछ भी करने की पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त है और तदनन्तर इस विषय में बाध्यता आ गई है, जिससे स्पष्टतः उक्त स्वतन्त्रता पर आघात होता है। यह सत्य है कि आगे चलकर प्रांत किसी भी गुट से पृथक् हो सकते हैं, किन्तु किसी भी प्रकार से यह स्पष्ट नहीं होता कि कोई भी प्रांत अथवा उसके प्रतिनिधि, कोई ऐसा कार्य करने के लिए किस प्रकार बाध्य किये जा सकते हैं, जो वे करना नहीं चाहते। कोई भी प्रान्तीय असेम्बली, अपने प्रतिनिधियों को आदेश दे सकती है, कि वे किसी भी 'गुट' में अथवा किसी विशेष गुट में अथवा सेक्शन में सम्मिलित न हों। चूँकि 'सी' तथा 'बी' सेक्शनों का निर्माण किया गया है, अतएव स्पष्ट है कि इन सेक्शनों में एक प्रांत की प्रभुता रहेगी—'बी' सेक्शन में पंजाब की और 'सी' सेक्शन में बंगाल की। प्रभु-प्रान्त इस प्रकार का प्रान्तीय विधान तैयार कर सकता है, जो सिन्ध, उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्त अथवा आसाम की इच्छाओं के सर्वथा विरुद्ध हो। हो सकता है कि प्रभु प्रान्त विधान के अन्तर्गत निर्वाचन तथा अन्य विषयों के सम्बन्ध में ऐसे नियम भी बना दें, जिनसे किसी भी प्रांत के किसी गुट से पृथक् हो सकने की सारी व्यवस्था बेकार हो जाय। कभी भी ऐसा ख़याल नहीं किया जा सकता, क्योंकि ऐसा विचार स्वयं योजना के आधारभूत सिद्धांतों तथा नीति के विरुद्ध ठहरेगा।

देशी राज्यों का प्रश्न अस्पष्ट ही छोड़ दिया गया है, अतएव उस विषय में इस समय मैं अधिक कुछ कहना नहीं चाहता। किन्तु स्पष्ट है कि विधान-परिषद् में राज्यों के जो भी प्रतिनिधि सम्मिलित हों, उन्हें न्यूनाधिक उसी रूप में आना चाहिए जिस रूप में प्रांतों के प्रतिनिधि आयेंगे। पूर्णतया भिन्न तत्वों के संयोग से विधान-परिषद् का निर्माण नहीं किया जा सकता।

ऊपर मैंने, आपके वक्तव्य से उत्पन्न होनेवाली कुछ बातों का उल्लेख किया है। सम्भवतः उनमें से कुछ को आप स्पष्ट कर सकते हैं तथा उनको दूर कर सकते हैं। किन्तु मुख्य बात, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, यही है, कि 'विधान-परिषद्' को हम एक सर्व-सत्ता-सम्पन्न सभा के रूप में देखते हैं, जो अपने सम्मुख उपस्थित किसी भी विषय पर अपने इच्छानुसार निर्णय कर सकती है। एकमात्र प्रतिबन्ध जिसे हम इस विषय में स्वीकार करते हैं यह है कि कुछ बड़े साम्प्रदायिक प्रश्नों के निर्णय दोनों बड़े सम्प्रदायों में से हर दोनों के बहुमत से होने चाहियें। आपकी सिफारिशों के दोष दूर करने के लिए हम जनता तथा विधान-परिषद् के सदस्यों के समक्ष स्वयं अपने प्रस्ताव उपस्थित करने का प्रयत्न करेंगे।

गांधीजी ने मेरी समिति को सूचित किया है कि आपका विचार है कि विधान-परिषद्-द्वारा दी गई व्यवस्था के अनुसार सरकार की स्थापना हो जाने के बाद तक, ब्रिटिश सेना भारत में रहेगी। मेरी समिति अनुभव करती है कि भारत में विदेशी सेना की उपस्थिति भारतीय स्वाधीनता को नगण्य कर देगी।

राष्ट्रीय अन्तर्कालीन सरकार की स्थापना के क्षण से, भारत को वास्तव में स्वाधीन समझा जाना चाहिये।

ताकि मेरी समिति आपके वक्तव्य के सम्बन्ध में किसी निर्णय पर पहुँच सके, इस पत्र का उत्तर शीघ्र पाकर मैं कृतज्ञ होऊँगा।

आपका विश्वासपात्र—

(ह०) अबुलकलाम आज़ाद

मौलाना आजाद के नाम भारत-मंत्री का पत्र

तारीख २२ मई

ग्रेय मौलाना साहब,

प्रतिनिधि-मंडल ने आपके २० मई वाले पत्र पर सोच-विचार किया है और उसका खयाल है कि इसके उत्तर देने का सर्वोत्तम तरीका यह है कि उसे अपनी साधारण स्थिति आपके सम्मुख स्पष्ट रूप से रख देनी चाहिये। चूंकि भारतीय नेता बहुत लम्बे अर्से तक बातचीत करने के बाद भी किसी समझौते पर नहीं पहुँच सके, इसलिए प्रतिनिधि-मंडल ने दोनों ही प्रमुख दलों के दृष्टिकोणों में निकटतम सामंजस्य स्थापित करने के लिए अपनी सिफारिशें प्रस्तुत की हैं, इसलिए यह योजना संपूर्ण रूप में ही लागू हो सकती है और यह तभी सफल हो सकती है यदि उस पर समझौते और सहयोग की भावना से प्रेरित होकर अमल किया जाय।

प्रान्तों की गुटबन्दी के कारणों से आप भली-भांति परिचित हैं और यह बात इस योजना का नितान्त आवश्यक पहलू है जिसमें कोई संशोधन केवल दोनों दलों के पारस्परिक समझौते द्वारा ही किया जा सकता है।

इसके अलावा दो और बातें भी हैं, जिनका हमारा खयाल है कि हमें उल्लेख कर देना चाहिये। प्रथम आपने अपने पत्र में विधान-निर्मात्री परिषद् को एक सत्ता-सम्पन्न-संस्था कहा है जिसके अन्तिम निर्णयों पर स्वतः अमल होने लगेगा। हमारा विचार है कि विधान-निर्मात्री परिषद् की अधिकार-सीमा, उसका कार्य-क्षेत्र और उसकी कार्यप्रणाली वह जिस पर चलना चाहती है, इन वक्तव्यों-द्वारा स्पष्ट रूप से प्रकट हो जाता है। एक बार विधान-निर्मात्री परिषद् के बन जाने पर और उसके द्वारा इस आधार पर काम करने पर स्वभावतः उसकी स्वाधीन विवेचना में हस्तक्षेप करने अथवा उसके निर्णयों पर आपत्ति करने का कोई इरादा नहीं है। जब विधान-निर्मात्री परिषद् अपना कार्य समाप्त कर चुकेगी, तो सम्राट् की सरकार पार्लीमेंट से ऐसी कार्रवाई करने की सिफारिश करेगी जैसी कि भारतीय जनता को सत्ता हस्तान्तरित करने के लिये आवश्यक समझी जायगी, परन्तु इस सम्बन्ध में सिर्फ दो ही शर्तें रहेंगी, जिनका उल्लेख वक्तव्य में कर दिया गया है और जो, हमारा विश्वास है कि विवादास्पद नहीं है—अर्थात् अल्पसंख्यकों की रक्षा की पर्याप्त व्यवस्था और सत्ता-हस्तान्तरित करने के परिणामस्वरूप उठनेवाले विषयों के सम्बन्ध में सन्धि करने की सहमति।

दूसरे, जब कि सम्राट् की सरकार इस बात के लिए अत्यधिक उत्सुक है कि अन्तर्कालीन अवधि यथासंभव कम-से-कम हो, हमें विश्वास है कि आप यह अनुभव करेंगे कि उपर्युक्त कारणों के आधार पर नये विधान के कार्यान्वित होने से पहले स्वाधीनता का प्रादुर्भाव नहीं हो सकता।

आपका—पेथिक-लारेंस

नरेन्द्र-मण्डल को स्मृति-पत्र

ता० २२-५-४६

नई दिल्ली बुधवार—मंत्रिमिशन के प्रतिनिधि-मण्डल ने नरेन्द्र-मण्डल को जो स्मृति-पत्र भेजा है वह आज प्रकाशित हो गया है। उसमें घोषित किया गया है कि नये विधान के अनुसार सम्राट् की सरकार सर्वोपरि सत्ता का उपयोग समाप्त कर देगी। इस स्थान की पूर्ति या तो देशी राज्य, ब्रिटिश भारत की सरकार या सरकारों के साथ संघीय सम्बन्ध स्थापित करके कर लेंगे या फिर उस सरकार या सरकारों के साथ वह नयी राजनीतिक व्यवस्था कर लेंगे।

यह स्मृति-पत्र तभी तैयार कर लिया गया था जब प्रतिनिधि-मण्डल भारतीय दलों के नेताओं से बहस कर रहा था और इसका सारांश देशी राज्यों के प्रतिनिधियों को उनकी मुलाकात के समय दे दिया गया था।

स्मृति-पत्र इस प्रकार था:—

नरेन्द्र-मण्डल को स्मृति-पत्र

देशी राज्यों की सन्धियों तथा सर्वोच्च सत्ता के सम्बन्ध में मन्त्रि-प्रतिनिधि-मण्डल ने नरेन्द्र-मण्डल के चान्सलर के सम्मुख निम्न विचारपत्र उपस्थित किया :—

कामन्स सभा ने ब्रिटिश प्रधानमंत्री के हाल के वक्तव्य देने से पूर्व नरेशों को आश्वासन दे दिया था कि सम्राट् के प्रति उनके सम्बन्धों तथा उनके साथ की गयी सन्धियों और इकरारनामों-द्वारा गारंटी किये गये अधिकारों में उनकी स्वीकृति के बिना कोई परिवर्तन करने का सम्राट् का इरादा नहीं है। साथ ही यह भी कह दिया था कि वार्ता के परिणामस्वरूप होनेवाले परिवर्तनों के सिलसिले में स्वीकृति को अनुचित रूप से रोक भी न रखा जायगा। उसके बाद नरेन्द्र-मण्डल भी इस बात की पुष्टि कर चुका है कि देशी राज्य भारत-द्वारा अपनी पूर्ण स्वतंत्र स्थिति की तात्कालिक प्राप्ति के लिए देश की आम इच्छा का पूरी तरह समर्थन करते हैं। सम्राट् की सरकार ने अब घोषणा की है कि यदि ब्रिटिश भारत की उत्तराधिकारी सरकार अथवा सरकारें स्वाधीनता के लिए इच्छा करेंगी तो उनके मार्ग में कोई बाधा न डाली जायगी। इन घोषणाओं का प्रभाव यही होता है कि जिनका भारत के भविष्य से सम्बन्ध है वे सब-के-सब चाहते हैं कि भारत ब्रिटिश राष्ट्र-मण्डल के भीतर अथवा बाहर स्वाधीनता की स्थिति प्राप्त करे। भारत-द्वारा इस आकांक्षा के पूरी करने में जो भी कठिनाइयां हैं, प्रतिनिधि-मण्डल उन्हें दूर करने में सहायता प्रदान करने के ही लिए यहां आया हुआ है।

संक्रान्ति-काल में, जिसकी मियाद एक ऐसे नये वैधानिक ढांचे के कार्यान्वित होने से पूर्व अवश्य समाप्त हो जानी चाहिए जिसके अन्तर्गत ब्रिटिश भारत स्वतन्त्र अथवा पूर्ण रूप से स्वशासित होगा, सर्वोच्च सत्ता कायम रहेगी; परन्तु ब्रिटिश सरकार किसी भी परिस्थिति में सर्वोच्च सत्ता एक भारतीय सरकार को हस्तान्तरित नहीं कर सकती और न ही करेगी।

इस बीच देशी राज्य भारत के लिए वैधानिक ढांचे के निर्माण-कार्य में महत्त्वपूर्ण भाग लेने की स्थिति में रहेंगे और देशी राज्यों-द्वारा सम्राट् की सरकार को सूचित कर दिया गया है कि वे अपने और समस्त भारत के हितों की दृष्टि से इस नये ढांचे के निर्माण में भाग लेने और उसके पूरा हो जाने पर उसमें अपना उचित स्थान प्राप्त करने के इच्छुक हैं। इसका मार्ग प्रशस्त करने के निमित्त वे अपने शासन-प्रबन्ध को यथाशक्ति उच्चतम मान तक पहुँचाने की व्यवस्था करके निस्संदेह अपनी स्थिति को सुदृढ़ बना लेंगे। जहां-कहीं भी देशी-राज्यों के वर्तमान साधनों के अन्तर्गत इस मान तक पर्याप्त रूप से नहीं पहुंचा जा सकता, वे निस्संदेह यह प्रबन्ध करेंगे कि शासन-प्रबन्ध की दृष्टि से ऐसे देशी राज्यों के इतने बड़े संगठन बना दिये जायँ अथवा वे ऐसी बड़ी इकाइयों में शामिल हो जायँ जिससे कि वे इस वैधानिक ढांचे में उपयुक्त स्थान प्राप्त कर सकें। इससे विधान-निर्माण-काल में देशी राज्यों की स्थिति भी सुदृढ़ हो जायगी, क्योंकि यदि विभिन्न सरकारों ने पहले से ही ऐसा नहीं किया होगा तो उन्हें प्रतिनिधित्वपूर्ण संस्थाओं की स्थापना-द्वारा अपने यहां के जनमत के साथ घनिष्ठ और निरन्तर संपर्क स्थापित करने के लिए सक्रिय भाग लेने का अवसर मिल जायगा।

संक्रान्ति-काल में देशी राज्यों के लिए यह आवश्यक होगा कि वे ब्रिटिश भारत के साथ समान मामलों—विशेषकर औद्योगिक एवं आर्थिक क्षेत्रों से सम्बन्ध रखनेवाले मामलों—की भावी व्यवस्था पर ब्रिटिश भारत से बात-चीत चलायें। यह बात-चीत जो हर हालत में आवश्यक है—चाहे रियासतें नवीन विधान-निर्माण में भाग लेना चाहें अथवा नहीं—सम्भवतः काफी समय लेगी और नये विधान के लागू होने के समय भी कई दिशाओं में अधूरी रह सकती है। अतः शासन-सम्बन्धी अड़चनों से बचने के लिए यह आवश्यक है कि नई रियासतों तथा सरकार अथवा सरकारों के भावी सूत्रधारों के बीच किसी प्रकार का समझौता हो जाय ताकि उस समय तक समान मामलों में वर्तमान अवस्था जारी रह सके जब तक कि नया समझौता सम्पूर्ण नहीं हो जाता। ब्रिटिश सरकार और सम्राट् का प्रतिनिधि इस सम्बन्ध में यथाशक्ति सहायता करने को तत्पर रहेगा।

जब ब्रिटिश भारत में नई, पूर्ण रूप से स्वाधीन तथा स्वतन्त्र सरकार या सरकारें स्थापित हो जायँगी, तब सम्राट् की सरकार का इन सरकारों पर ऐसा प्रभाव नहीं होगा कि ये सर्वोच्च सत्ता के कर्तव्यों को निभा सकें। इसके अतिरिक्त वे ऐसी कल्पना नहीं कर सकते कि इस कार्य के लिए भारत में ब्रिटिश सेना रख ली जायगी। अतः यह युक्तिसंगत ही है, तथा देशी राज्यों की ओर से जो इच्छा प्रकट की गई है उसके अनुरूप है, कि सम्राट् की सरकार सर्वोच्च सत्ता के रूप में कार्य न करेगी। इसका यह तात्पर्य हुआ कि देशी राज्यों के वे सर्व अधिकार, जो सम्राट् के साथ सम्बन्धों पर आश्रित हैं, अब लुप्त हो जायँगे और वे सब अधिकार जो इन राज्यों ने सर्वोच्च सत्ता को समर्पित कर दिये थे, अब उन्हें वापस मिल जायँगे। इसलिए देशी राज्यों तथा ब्रिटिश भारत और सम्राट् के मध्य राजनीतिक व्यवस्था का अब अन्त कर दिया जायगा। इस रिक्त स्थान की पूर्ति या तो देशी राज्यों-द्वारा उत्तराधिकारी सरकार से या ब्रिटिश भारत की सरकारों से संघीय सम्बन्ध स्थापित करने पर होगी, अथवा ऐसा न होने पर इस सरकार या सरकारों से विशेष व्यवस्था करने पर होगी।

एक प्रेस-विज्ञप्ति में लिखा है कि कैबिनेट-शिष्टमंडल यह स्पष्ट कर देना चाहता है, कि बुधवार को "नरेन्द्रमंडल के प्रधान को, रियासतों, सन्धियों तथा सर्वोपरि-सत्ता-सम्बन्धी पेश किया गया मैमोरेंडम" शीर्षक से जो पत्र जारी किया गया है, वह मिशन ने उस समय तैयार किया था, जबकि भिन्न-भिन्न दलों के नेताओं से परामर्श शुरू नहीं हुआ था और यह कि उस वार्तालाप का सारांश-मात्र था,जो कि मिशन ने रियासतों के प्रतिनिधियों से पहली बार किया था। इस विज्ञप्ति को "उत्तराधिकारी सरकार या ब्रिटिश इण्डिया की सरकारें" शब्दों के प्रयोग की व्याख्या समझा जाय, जो मंडल के पिछले बयान के बाद प्रयुक्त न किये जाते। मेमोरेंडम के ऊपर दिया गया नोट भूल थी।

सर एन० जी० आयंगर का वक्तव्य

"यह अफ़सोस की बात है, कि कैबिनेट-शिष्टमण्डल ने, हिन्दुस्तानी रियासतों से अपने विचार उतने खुले और साफ़ शब्दों में प्रकट नहीं किए, जितने कि उन्होंने हिन्दुस्तान के विधान को कुछ आधार-भूत बातों के विषय में किये हैं।

कांग्रेस कार्यकारिणी को शिकायत है, कि देशी रियासतों के बारे में जो कहा गया है वह अस्पष्ट है और बहुत-कुछ भविष्य के फ़ैसलों पर छोड़ा गया है। महात्मा गांधी ने ठीक ही कहा है, कि शिष्टमंडल ने, सर्वोपरि-सत्ता की समस्या को त्रिशंकु के समान छोड़ दिया है। रियासतों-विषयक निर्णय जानने के लिए, हमें मंडल के १६ मई के वक्तव्य और 'रियासतों,

सन्धियों तथा सर्वोपरि सत्ता' पर दिये गये स्मृति-पत्र को देखना होगा, जो कि उन्होंने नरेन्द्रमंडल के प्रधान को पेश की थी और २२ मई को प्रकाशनार्थ दी थी। इसके बाद, मैं पहली बात को 'फ़ैसला' और दूसरी को 'स्मरण-पत्र' नाम से लिखूंगा।

यदि इन दोनों दस्तावेज़ों की पूरी छान-बीन की जाय, तो मालूम होगा, कि मंडल ने देशी रियासतों के बारे में निम्नलिखित प्रस्तावों को पसंद किया है:—

(क) हिन्दुस्तान का एक संघ बनाया जाय, जिसमें देशी रियासतें तथा अंग्रेज़ी इलाके सभी शामिल हों।

(ख) कोई देशी रियासत या प्रान्त, इस संघ के बाहर नहीं रह सकेगा। दूसरे शब्दों में, संघ में शामिल न-होने का अधिकार किसी प्रान्त या देशी रियासत को नहीं दिया गया। अलबत्ता संघ का सदस्य बनते वक्त, कोई देशी रियासत, चाहे तो बाक़ी हिन्दुस्तान की सरकार के साथ सम्मिलित संबन्ध रख सकती है और चाहे इसके साथ किसी दूसरे प्रकार का राजनीतिक संबन्ध स्थापित कर सकती है।

(ग) सभी देशी रियासतों को, विदेशी विभाग, बचाव तथा रेल-तार-डाक के प्रबन्ध, संघ के हाथों में सौंपने होंगे।

(घ) उन देशी रियासतों को, जो शेष हिन्दुस्तान के साथ सम्मिलित सम्बन्ध स्थापित करेंगी, संघ की धारा-सभा तथा प्रबन्ध-विभाग में प्रतिनिधित्व प्राप्त होगा। अतः वे संघ-शासित विभागों में भी पूरा पूरा भाग ले सकेंगी। सम्मिलित सबन्ध के बजाय, कोई दूसरी प्रकार का राजनीतिक सम्बन्ध क़ायम करने की सूरत में भी, संघ-सरकार की सर्वोपरि-सत्ता को अवश्य स्वीकार करना होगा, क्योंकि प्रस्तावित संघ के विधान के अनुसार, जैसा कि वह इस समय है, विदेशी विभाग और रक्षा-विभाग, हर हालत में सारे हिन्दुस्तान के लिये संघ-केन्द्र ही से निरीक्षित होंगे।

(ङ) 'फ़ैसले' में, प्रान्तों के समूहीकरण-सम्बन्धी जो व्यवस्था दी गई है, उसके अनुसार रियासतों के किसी एक समूह—'ए', 'बी' या 'सी' में शामिल हो सकने की सम्भावना नहीं रहती। रियासतें, केवल अन्तिम अवस्था में, अर्थात् संघ-केन्द्र के लिए विधान-निर्माण के समय पर ही भाग ले सकेंगी।

(च) 'फ़ैसले' में, किसी भी प्रान्त या रियासत को, संघ से संबन्ध-विच्छेद का अधिकार नहीं दिया गया। एक प्रान्त उस वक्त जबकि उसकी पहली निर्वाचित धारासभा बैठे, किसी एक समूह से बाहर निकल सकता है, किन्तु संघ के बाहर नहीं। एक रियासत सम्मिलित-संबन्ध न रखने में स्वतन्त्र है, मगर संघ में उसको रहना ही पड़ेगा। इस 'फ़ैसले' के अनुसार, कोई एक प्रान्त, पहले १० साल गुज़रने पर, और बाद में दस-दस-साल के अन्तर से भी अपनी धारासभा के बहुमत से, किसी समूह अथवा संघ के विधान पर पुनः विचार की माँग करने का अधिकार रखता है। इसका तो यही मतलब हुआ, कि एक प्रान्त, संघ या समूह के विधान के संशोधन का प्रस्ताव रख सकता है; लेकिन, अपनी यकतर्फ़ी इच्छा से, संघ या समूह के बाहर नहीं जा सकता। इसके संशोधन-संबन्धी प्रस्ताव पर तभी अमल-दरामद हो सकता है, जबकि सारा समूह या संघ स्वीकृति दे दे, और जबतक कि यह उस विशेष व्यवस्था के अनुसार पास न किया जाय, जो कि ऐसे संशोधनों की सूरत में संघ-विधान के लिए निश्चय ही बनाई जायगी।

(छ) अंतरिम सरकार के समय, ब्रिटिश सर्वोपरि-सत्ता बदस्तूर रहेगी; हिन्दुस्तान के

स्वतन्त्र होने पर ही इसका अंत होगा।

(ज) अंतरिम-काल में, अंग्रेजी हिन्दुस्तान और देशी रियासतों के बीच आर्थिक तथा पारस्परिक हानि-लाभ के विषयों की आगामी व्यवस्था-सम्बन्धी बात-चीत आरंभ हो जानी चाहिये। यदि यह बात-चीत, हिन्दुस्तान का विधान बन जाने तक सम्पूर्ण न हो पाये, तो नया प्रबन्ध सम्पूर्ण हो जाने तक, प्रस्तुत अवस्था ही को चालू रखने की व्यवस्था होनी चाहिए।

३. अंतरिम सरकार के समय में, अनुमानतः देशी रियासतों-संबन्धी ब्रिटिश सर्वोपरि सत्ता पर भी पुनर्विचार होगा, ताकि उन रियासतों के साथ जो सम्मिलित-प्रबन्ध में आती हैं या दूसरी रियासतों के साथ, नई सरकार की तरफ से सर्वोपरि सत्ता की जगह कोई दूसरा संबन्ध स्थापित किया जा सके। यह तो यकीनी बात है, कि जब तक, एक-न-एक तरह की राजनीतिक व्यवस्था ब्रिटिश सर्वोपरि सत्ता का स्थान नहीं लेती, हिन्दुस्तान की एकता क़ायम नहीं रखी जा सकती।

४. 'स्मरण-पत्र', अनेक रूप से असाधारण राजनीतिक दस्तावेज़ है। जो लोग, सर्वोपरि-सत्ता क़ायम रखने के लिए, हिन्दुस्तानी ब्रिटिश सरकार या ब्रिटिश सम्राट् की सरकार के सलूक के इतिहास से परिचित हैं, उन्हें इस 'स्मरण-पत्र' के कुछ-एक बयानों पर भारी आश्चर्य हुआ होगा। मुझे सन्देह है, कि 'स्मरण-पत्र' के बयानों को, शिष्टमंडल से मिलनेवाले रियासती प्रतिनिधियों ने स्वीकार भी किया होगा, गोकि यह ज़रूर कहा जा सकता है, कि यह 'स्मरण-पत्र' उन प्रतिनिधियों के सामने एकदम अचानक नहीं पेश किया गया।

५. सर्वोपरि-सत्ता ख़ाली एक इक़रारनामेका-सा सम्बन्ध नहीं है। आजकल के हालात में इसके प्रयोग की सीमा नहीं बांधी जा सकती। इसका अधिकार सन्धियों, सनदों और अन्य बन्धनों से मुक्त रहकर बढ़ता ही रहा है। इन सन्धियों, बन्धनों और सनदों-द्वारा प्राप्त विशेष अधिकारों से, सर्वोपरि-सत्ता के वश में रहकर ही लाभ उठाया जा सकता है। किसी सन्धि या सनद् के ऐसे मतलब नहीं लिए जा सकते कि जिससे, कोई रियासत अपने को सर्वोपरि सत्ता से मुक्त मानने लगे। यही सत्ता, रिवाज तथा रियासत की विशेष आवश्यकताओं को सामने रखते हुए फ़ैसला करती आई है, कि समस्त भारत या रियासतों तथा उनकी प्रजाओं के हितों की सुरक्षा कैसे की जानी चाहिये। अंग्रेज़ी राज्य और उसकी सरकार की सर्वोपरि-सत्ता भले ही बन्द हो जाय, किन्तु, जबतक कि हर रियासत अपने यहाँ वैधानिक शासन स्थापित नहीं कर देती और अन्य प्रान्तों की तरह भारतीय संघ में शामिल नहीं हो लेती, सर्वोपरि-सत्ता की सत्ता सर्वथा रद् नहीं की जा सकती। तो विचारणीय समस्या केवल यह रह गई, कि इस देश से अंग्रेज़ी सत्ता समाप्त हो जाने पर, जबतक कि अनिवार्य हो, यह अनुशासन किस के अधिकार में रहे। ज़ाहिर है कि नये विधान के अनुसार जो भारतीय संघ कायम होगा, यह उसी के हाथों में रहनी चाहिये। इस प्रसंग में यह भी याद रहे कि अबतक, सर्वोपरि-सत्ता का सम्बन्ध, कानूनी, नाममात्र या काल्पनिक, जो भी बृटिश सम्राट् या उसकी सरकार से रहा हो, अधिकारों का प्रयोग सदा से हिन्दुस्तान की अंग्रेज़ी सरकार ही करती आई है और कर रही है। हिन्दुस्तान का नवीन संघ-शासन मौजूदा हिन्दुस्तानी सरकार का उत्तराधिकारी होगा। फ़र्क़ केवल इतना रहेगा, कि यह रियासतें, इस संघ में ख़ुद शामिल हुई होंगी, अतः सामान्यतः हिन्दुस्तान के नये संघ को सर्वोपरि-सत्ता अपने-आप पहुंचती है। ख़ासकर, जबकि अवस्थाएँ ऐसी हों, कि जिनमें शासन की शान्तिपूर्वक तब्दीली की राह में कोई विशेष अड़चन पड़ने की सम्भावना न हो। यह तब्दीली, हिन्दुस्तानी रियासतों की अनुमति और सर्वोपरि-सत्ता के प्रयोग में हेर-फेर के साथ, आसानी से

हो सकेगी। किन्तु, रियासतों के साथ यह सलाह-मशविरा ऐसा परिणाम न निकाले कि जिससे लाभ उठाते हुए उन्हें ऐसी मांग पेश करने का मौक़ा मिल जाय कि अंग्रेज़ी सत्ता दूर होने पर, हरेक रियासत राजनीतिक-रूप से स्वतन्त्र है और यह कि भारतीय संघ में शामिल होने-न-होने को वह आज़ाद है। कैबिनेट-शिष्टमण्डल का 'स्मरण-पत्र' ख़ुद तो इन विचारों का पोषक नहीं है; किन्तु सदस्यों-द्वारा व्यक्तिगत रूप से किये गये अर्थों ने मुझ-जैसे कुछ व्यक्तियों को भ्रम में अवश्य डाल दिया है, जो कि 'फ़ैसले' की व्याख्या युक्ति-संगत रूप से करने की चेष्टा करते आ रहे हैं।

'स्मरण-पत्र' में लिखा निम्न पैरा मुझे असाधारण प्रतीत होता है:—

"अंतरिम काल, ब्रिटिश हिन्दुस्तान के लिए वह नया विधान बनने और लागू होने से पहले ही समाप्त हो जायगा, जिसके अनुसार देश स्वतंत्र होगा और इसमें 'पूर्ण स्वराज' स्थापित होगा। इस काल में, सर्वोपरि-सत्ता चालू रहेगी। किन्तु, ब्रिटिश सरकार, किसी अवस्था में भी अपनी सर्वोपरि-सत्ता को हिन्दुस्तानी सरकार के हवाले नहीं कर सकती, और न करेगी।"

यह वाक्य इस बात का उदाहरण है कि विचारों में काफ़ी ढीलापोलापन है। अंतरिम-काल में ब्रिटिश सम्राट् के प्रतिनिधि के ऑफ़िस के साथ सम्बन्ध-विच्छेद हो जायगा, लेकिन इसी काल में सर्वोपरि-सत्ता फिर से आ जायगी, जिसको हिन्दुस्तान की अंग्रेजी सरकार चालू रखेगी। यदि हिन्दुस्तान में पूर्णतया स्वतंत्र क़ौमी हुकूमत बन जाती है तो सर्वोपरि-सत्ता उसके हवाले करने से इन्कार करना मुझे युक्ति-संगत नज़र नहीं आता। इस हालत में, क़ौमी सरकार, सर्वोपरि-सत्ता को, केवल ब्रिटिश सत्ता का परियाचक मात्र मानकर लागू करेगी। यह कहना तो हास्यजनक होगा कि समस्त हिन्दुस्तान की एक ऐसी सरकार, जिसके अधीन विदेशी मामले, देश-रक्षा इत्यादि होंगे, ब्रिटिश राज्य को अपने मातहत रियासतों के बारे में उचित सलाह देने में असमर्थ होगी। मान लिया, कि १९३५ के भारत-सरकार ऐक्ट में ऐसी तबदीली नहीं की जा सकती कि जिससे अंतरिम-काल में राजा के प्रतिनिधि के ऑफ़िस से छुटकारा मिले, लेकिन क्या यह भी असम्भव होगा कि राजा के प्रतिनिधि के लिए एक हिन्दुस्तानी राजनीतिक सलाहकार नियुक्त कर दिया जाय? ऐसी नियुक्ति से हिन्दुस्तान के लिए ऐसा विधान बनाने में अवश्य सुगमता होगी, जिसमें ख़ुशी से शामिल होकर देशी रियासतें भी सन्तुष्ट रहें। देशी रियासतों के प्रतिनिधि, जिन्होंने अपनी राजनीतिक बुद्धि का प्रशंसनीय प्रमाण देते हुए पहले ही घोषित कर दिया है कि वे कांग्रेस के साथ विधान-निर्माण में पूरा-पूरा सहयोग करेंगे, अंतिरिम-काल में पोलिटिकल डिपार्टमेंट के प्रबन्ध में इस प्रकार की तब्दीली का स्वागत करेंगे। अभी कुछ दिन पहले जबकि मैं दिल्ली में था, मुझे यह जानकर आश्चर्य और दु:ख हुआ था, कि कुछ-एक राजाओं ने वाइसराय से प्रार्थना की है कि अंतरिम-काल में किसी अंग्रेज़ का पोलिटिकल सलाहकार रखा जाना उन्हें पसन्द है!

यह धारणा, कि अंग्रेज़ों ने सर्वोपरि-सत्ता, बृटिश सम्राट्-द्वारा देशी राजाओं को दिये गये इन आश्वासनों से प्राप्त की है, कि बाहरी हमले, भीतरी गड़बड़ और उत्तराधिकारी को गद्दी पर बिठाने में मदद दी जायगी, बटलर कमेटी-द्वारा कभी-की धराशायी की जा चुकी है, और बाद में प्रामाणिक अधिकारी-द्वारा निर्मूल सिद्ध हो चुकी है। यह आश्चर्य की बात है कि आज, ऐसे अवसर पर 'स्मरण पत्र' उन अधिकारों का, जो कि रियासतों ने सर्वोपरि-सत्ता को सौंपे थे और जिनको अब वे अपनी इच्छा और आज़ादी से चाहे जिसे दे सकती हैं, फिर से उन्हीं को दिये जाने का ज़िक्र कर रहा है। अंग्रेज़ी सत्ता हट जाने पर, यदि देशी रियासतों को इस धारणा के आधार पर

अमल करने दिया गया तो अराजकता फैलेगी। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, शिष्ट-मण्डल की सारी स्कीम में, सर्वोपरि-सत्ता हटायी जाने के पूर्व ही उसकी स्थान-पूर्ति का प्रबन्ध किया गया है। कितना अच्छा हो, यदि, जैसा कि अंग्रेज़ी शासन शान्तिपूर्वक हिन्दुस्तान को सौंपा जा रहा है, और जैसा कि आर्थिक समझौते कर लिये गये हैं, यह भी स्वीकृत हो जाय कि उत्तराधिकारी सरकार मौजूदा प्रबन्ध के अनुसार सर्वोपरि-सत्ता का संचालन तब तक करती जाय, जब तक कि नयी राजनीतिक व्यवस्थाएँ न हो जायँ और प्रत्येक देशी रियासत संघ में शामिल न हो जाय या संघ में रहते हुए केन्द्र से कोई दूसरा राजनीतिक सम्बन्ध न पैदा कर ले।

देशी रियासतों की समस्या को हल करने में, शिष्ट-मंडल का एक दोष तो यह है, कि इसने रियासतों के भविष्य का निर्णय करते वक्त हिन्दुस्तानी नेताओं को नज़दीक नहीं आने दिया। आज का ब्रिटिश भारत, इस विषय में कि यह रियासतें नये विधान में क्योंकर बैठाई जायंगी, उतनी ही दिलचस्पी रखता है, जितनी कि स्वयं रियासतें रखती हैं। रजवाड़ों का मसला केवल अंग्रेज़ी सरकार और राजाओं में बातचीत से हल नहीं हो सकता। विधान-निर्माण की प्रारम्भिक बातों में भी अंग्रेज़ी हिन्दुस्तान तथा रियासती प्रजा के नेताओं का गहरा सम्बन्ध और मेल-जोल ज़रूरी है। और यह भी आवश्यक है कि अन्तरिम सरकार बनाने की जिम्मेदारी लेने-वाले राजनीतिक दल, यह आश्वासन दिलायें कि अंतरिम-काल में सर्वोपरि-सत्ता का ऐसा नियंत्रण किया जायगा कि जिससे एक ओर गवर्नर-जनरल और दूसरी ओर ब्रिटिश शासक के प्रतिनिधि तथा उसके राजनीतिक सलाहकार में सम्पूर्ण सहयोग और एक-जैसी नीति पर अमल होगा; अन्यथा नित-नये विरोध होंगे, खींचा-तानी चलेगी और काम ठप हो जायगा। महात्मा गांधी के अचूक राजनीतिक सहज-ज्ञान ने भी, नीचे लिखे शब्दों में, जो उनके 'हरिजन' में छपे लेख से लिये गये हैं, एक ताज़ा उदाहरण खोज निकला है :—

"यदि इस (सर्वोपरि-सत्ता) का अन्त, अंतरिम सरकार की स्थापना के साथ न हो सके, तो इसका नियंत्रण रियासतों की प्रजा के सहयोग और शुद्धतः उन्हीं के हितार्थ होना चाहिये। यदि राजालोग अपने कथन और घोषणाओं पर दृढ़ हैं, तो उन्हें सर्वोपरि-सत्ता के इस सार्व-जनिक प्रयोग का स्वागत करना चाहिये और उसे नयी योजना में विवेचित जनता की सत्ता में उपयोगी सिद्ध होना चाहिये।"

नरेशगण का शिष्टमण्डल-प्रस्ताव स्वीकार

बम्बई, जून १०—हिन्दुस्तान के नरेशों ने आज भारत की भावी वैधानिक उन्नति के लिए शिष्टमण्डल के प्रस्तावों को स्वीकार कर लिया और अंतरिम काल में, जिन विषयों में हेर-फेर की आवश्यकता होगी, वाइसराय से उन पर बातचीत करने का फैसला भी कर लिया।

नरेन्द्रमण्डल की स्थायी समिति की ओर से, जिसकी बैठक आज यहाँ हुई, मण्डल के चान्सलर नवाब भूपाल ने शिष्टमण्डल के प्रस्तावों का स्वागत किया। स्थायी समिति के निश्चयों की सूचना इसी सप्ताह वाइसराय को दे दी जायगी।

स्थायी समिति ने, वाइसराय की ओर से शिष्टमण्डल की तजवीज़ के अनुसार, एक बात-चीत करनेवाली कमेटी बनाने की दावत भी क़बूल करली। यह कमेटी, दिल्ली में जून के मध्य से अपना काम चालू कर देगी।

इस कमेटी में चांसलर नवाब भूपाल, उप चांसलर महाराजा पटियाला, नवानगर के जाम-

साहब, हैदराबाद के नवाब अलीयार जंग, ग्वालियर से सर मनूभाई मेहता, ट्रावनकोर से सी० पी० रामस्वामी अय्यर, चांसलर के सलाहकार सर सुल्तान अहमद, कूचबिहार से सरदार डी० के० सेन, बीकानेर से के० एम० पनीकर और दीवान डूंगरपुर शामिल होंगे। मीर मक़बूल अहमद इस कमेटी के मन्त्री होंगे।

ऐसा समझा जाता है, कि यह बातचीत करनेवाली कमेटी यूनियन की विधान-परिषद् के लिए रियासतों के प्रतिनिधियों के चुनाव की विधि, विशेषकर राजाओं के राजत्व और राजवंश, रियासतों की हदबन्दी की विश्वस्तता, विधान-परिषद् के फ़ैसलों पर अन्तिम स्वीकृति देने के हक़, संघ के साथ रियासतों की आर्थिक व्यवस्था और संघ केन्द्र को रियासतों के शुल्क इत्यादि विषयों पर रोशनी डालने की मांग करेगी।

यह तजवीज़ भी की जा रही है, कि विधान-परिषद् में ऐसी विशेष समस्याओं का निश्चय, जिनका सम्बन्ध कि रियासतों से है, उपस्थित प्रतिनिधियों के बहुमत से होना चाहिये।

बातचीत करनेवाली कमेटी अन्य विषयों पर भी विचार-विनिमय करेगी,—जैसे संघ को सौंपे जानेवाले विभाग, भीतरी सुधार और विधान-परिषद् के सभापति तथा पदाधिकारियों के चुनाव में रियासती प्रतिनिधियों की स्थिति इत्यादि।

स्थायी समिति ने रियासतों को आदेश दिया है, कि वे, गत जनवरी की बैठक में चांसलर द्वारा उपस्थित किये गये सुझावों की रोशनी में, अपने यहां अगले १२ मास में भीतरी सुधार शुरू करदें।

आज शाम को स्थायी समिति की बैठक की कार्यवाही समाप्त हो गई। वाइसराय के राजनीतिक सलाहकार सर कारनर्ड कोरफ़ील्ड ने भी अपने विचार प्रकट किये।

महाराजा ग्वालियर, पटियाला, बीकानेर, नवानगर, अलवर, नाभा, टिहरी-गढ़वाल, डूंगरपुर, बघाट और देवास उपस्थित थे। (अ० प्रे०)

रियासती प्रजामण्डल की मांग

अखिल भारतवर्षीय रियासती प्रजामण्डल की स्थायी समिति ने, शिष्टमण्डल की सिफ़ारिशों के विषय में एक प्रस्ताव-द्वारा यह मांग पेश की है कि बातचीत करनेवाली समिति तथा सलाहकार समिति में, जो अंतरिम सरकार, नरेशों और रियासतों की प्रजा के प्रतिनिधियों से बनाई जा रही है, प्रजा के प्रतिनिधि अवश्य लिये जायँ।

उक्त प्रस्ताव में कहा गया है, कि जब तक नया विधान चालू नहीं हो लेता, यह आवश्यक होगा कि अंतरिम सरकार, प्रांतों और रियासतों के लिए एक-जैसी नीति पर अमल करे। प्रस्तावित सलाहकार समिति को सभी आम मामलों को सम्हालना चाहिये और एकरूपता की ख़ातिर सारी रियासतों को एक ही नीति पर चलाने की चेष्टा करनी चाहिये।

विधान-परिषद् के बारे में प्रस्ताव में कहा गया है, कि जहाँ-जहाँ, सुव्यवस्थित धारा-सभाएं काम कर रही हैं, उनके निर्वाचित सदस्यों में से ही प्रजा के प्रतिनिधियों का चुनाव कर लिया जाय। अन्य स्थानों से, रियासती प्रजामण्डल की प्रादेशिक समितियां विधान-परिषद् के लिए प्रतिनिधि चुनेंगी।

स्थायी समिति ने तीन प्रस्ताव और भी पास किये। पहले में राजनीतिक क़ैदियों की रिहाई तथा नागरिक आज़ादी की मांग, दूसरे में बलोचिस्तान स्थित क़लात स्टेट को शेष हिन्दुस्तान से पृथक् करने की मांग का विरोध और तीसरे में हैदराबाद रियासती कांग्रेस पर

निरन्तर प्रतिबंध की निंदा की गई ।

हैदराबाद रियासत के विषय में प्रस्ताव इस प्रकार है—"कोई रियासत, जिसमें कि प्रारम्भिक नागरिक आज़ादी तक मौजूद नहीं, भविष्य के लिए किये जानेवाले विचारों में शरीक नहीं हो सकती। हिन्दुस्तान के भविष्य के बारे में निश्चय करनेवाली सभाओं में हिस्सा ले सकने के पहले, हैदराबाद को अपनी नीति बदलनी होगी। यदि रियासती कांग्रेस पर प्रतिबंध जारी रहा और नागरिक आज़ादी न दी गई तो कांग्रेस को अधिकार होगा कि वह प्रतिबंध के बावजूद अपना काम करती रहे।"

रियासती प्रजामण्डल की स्थाई समिति ने सोमवार की बैठक में निम्न प्रस्ताव पास किया—"अखिल भारतीय रियासती प्रजामण्डल की जनरल कौंसिल ने, हिन्दुस्तान के लिए नये विधान-सम्बंधी, वाइसराय तथा शिष्टमण्डल के वक्तव्यों पर विचार किया है। कौंसिल को आश्चर्य और खेद है कि मंडल ने विचार-विनिमय के लिए, प्रजा के प्रतिनिधियों को पूछा तक नहीं।

कोई ऐसा विधान ६ करोड़ रियासती जनता पर प्रामाणिक रूप से लागू नहीं हो सकेगा जिसके निर्माण में प्रजा के सच्चे प्रतिनिधियों को शामिल नहीं किया गया। अतः जनरल कौंसिल हिन्दुस्तान के इतिहास के ऐसे नाज़ुक मरहले पर शिष्टमण्डल की ओर से रियासतों के प्रतिनिधियों की अवहेलना के लिए नाराज़गी प्रकट करती है।

इतने पर भी एक आज़ाद, संगठित हिन्दुस्तान बनाये जाने की ख़ातिर, जिसमें कि रियासतों के सम्पूर्ण स्वतंत्र हिस्से शामिल होंगे, कौंसिल अपना सहयोग पेश करने को तैयार है। प्रजामण्डल की नीति, विगत उदयपुर-कान्फरेंस में नियत की गई थी और कौंसिल उसी पर आरूढ़ है। और उस नीति का आधार है—रियासतों को प्रजा-द्वारा स्वतंत्र राज बनाना और आज़ाद हिन्दुस्तान-संघ में शामिल होना; और यह भी कि हर विधान बनानेवाली सभा को, रियासती प्रजाओं के निर्वाचित प्रतिनिधियों को शामिल करना चाहिये। भावी भारतीय संघ में छोटी-छोटी रियासतों की स्थिति पर भी उक्त कन्फरेंस में रोशनी डाली गई है।

कौंसिल, नरेशों-द्वारा की गई उन घोषणाओं का स्वागत करती है, जो उन्होंने एक संगठित स्वतंत्र हिन्दुस्तान के पक्ष में की है। स्वतंत्र हिन्दुस्तान में निश्चय ही लोकतंत्रीय राज्य होना चाहिये और यह उसका क़ुदरती उप-सिद्धांत होगा, कि रियासतों में भी ज़िम्मेदार सरकारें कायम की जायँ।

हिन्दुस्तान के लिए जो भी विधान बने वह लोकतंत्र तानाशाही और जागीरदारी की खिचड़ी नहीं हो सकता। कौंसिल को दुःख है कि नरेशों ने इस ओर पूरा ध्यान नहीं दिया।

कैबिनेट-शिष्टमण्डल तथा वाइसराय-द्वारा जारी किये गये १६ मई के वक्तव्यों में रियासतों सम्बंधी ज़िक्र अल्प और अस्पष्ट है, तथा यह ठीक पता नहीं चलता कि विधान-निर्माण की विधियों में वे किस प्रकार अमल करेंगी। रियासतों के भीतरी प्रबन्ध का तो सर्वथा ज़िक्र ही नहीं। यह समझ में नहीं आ सकता कि रियासतों के मौजूदा शासन-प्रबन्ध को, जो इस समय जागीरदारी और तानाशाही है, एक लोकतंत्रीय विधान-परिषद् या संघ में क्योंकर मिलाया जा सकेगा।

बहर-हाल, कौंसिल इस बयान का स्वागत करती है कि नवीन अखिल भारतीय विधान लागू हो जाने पर सर्वोपरि-सत्ता का अन्त हो जायगा। सर्वोपरि-सत्ता के अंत का मतलब है उन

संधियों का अंत, जो कि नरेशों तथा ब्रिटिश सर्वोपरि-सत्ता में मौजूद हैं। अन्तरिम काल में भी सर्वोपरि-सत्ता का संचालन इस ढंग से होना चाहिये कि जिससे अन्त में इसकी इतिश्री हो जाय।

शिष्टमंडल तथा वाइसराय द्वारा प्रस्तावित योजना के अनुसार विधान-परिषद् में प्रान्तों तथा रियासतों दोनों के प्रतिनिधि लिये जायँगे। किन्तु रियासतों के प्रतिनिधियों का प्रवेश केवल सम्पूर्ण परिषद् की अन्तिम बैठकों में हो सकेगा, जब कि संघ केन्द्र के विधान पर विचार हो रहा होगा। जब कि प्रान्तों तथा समूहों के प्रतिनिधियों के जिम्मे, समूहों का विधान बनाना लगाया गया है, तो रियासतों के विधान के विषय में ऐसा ही कोई प्रबन्ध नहीं किया गया।

कौंसिल की राय में, इस खाली स्थान की पूर्ति अवश्य होनी चाहिये। यह वांछनीय है, कि शुरू से ही विधान-परिषद् में, प्रान्तीय तथा रियासती प्रतिनिधि सम्मिलित हों, ताकि बाद में, वे भी प्रान्तीय प्रतिनिधियों की तरह अलग बैठकर अपनी-अपनी रियासत के लिए बुनियादी बातें पेश कर सकें।

इस मतलब के लिये, कौंसिल का यह मत है, कि जहाँ-जहाँ सुव्यवस्थित धारा-सभाएं चल रही हों, वहाँ-वहाँ के निर्वाचित सदस्यों में से विधान-परिषद् के लिए रियासती प्रतिनिधियों का चुनाव कर लिया जाय। ऐसी रियासतों से भी तभी प्रतिनिधि लिये जायँ, जब वहाँ नये चुनाव हो लें।

शेष अन्य अवस्थाओं में, विधान-परिषद् के लिए प्रतिनिधियों का चुनाव अखिल भारतीय रियासती प्रजामंडल की प्रादेशिक समितियां करें। इस विधि से छोटी-छोटी रियासतों की ओर से भी प्रजा के सच्चे प्रतिनिधि जायँगे।

जो भी अस्थायी प्रबन्ध किया जाय, उससे यह आवश्यक है कि, अंतरिम सरकार, प्रान्तों तथा रियासतों के बीच एकरूपी नीति पर अमल करे। इस उद्देश्य के लिए, अंतरिम सरकार, नरेशों तथा रियासती प्रजा के प्रतिनिधियों की एक सलाह देनेवाली कौंसिल नियुक्त की जाय।

आम मामलों पर यही कौंसिल विचार करे और कोशिश करे कि भिन्न-भिन्न रियासतों की विभिन्न नीतियों को मिलाकर यकसाँ रखा जाय। इस परामर्श देनेवाली कौंसिल का फ़र्ज़ होगा कि रियासतों के भीतर जल्दी-से-जल्दी ऐसी तब्दीलियां कराये जिनसे कि ज़िम्मेदार सरकारें क़ायम की जा सकें।

यह परामर्श-दात्री समिति, रियासतों के समूह बनाये और संघ के लिए उपयुक्त इकाइयाँ पैदा करे। रियासतों को प्रान्तों में मिला देने पर भी यही विचार करे। कुशासन तथा उत्तराधिकार-सम्बन्धी मामलों को एक ट्रिब्यूनल के सिपुर्द किया जा सकता है।

अंतरिम काल के अन्त पर, रियासतों को अलग-अलग या समूह-रूप में, हिंद-संघ का समान भागीदार बनना होगा, ताकि इनको भी प्रान्तों-जैसे अधिकार प्राप्त हों और लगभग प्रान्तों-जैसी लोकतंत्र सरकारें इनमें भी स्थापित हो सकें।

यह जनरल कौंसिल, स्थाई समिति को आदेश देती हुई यह अधिकार भी देती है कि इस प्रस्ताव में आये साधारण सिद्धान्तों पर अमल-दरामद के लिए आवश्यक कार्रवाई करे।"

(अ० प्रे० इ०)

वाइसराय के नाम नरेन्द्र-मण्डल के चान्सलर हिज-हाईनेस नवाब भोपाल का पत्र

१६ जून १९४६

"हाल ही में नरेशों की स्थायी समिति की जो बैठकें बम्बई में हुई थीं उनमें दीर्घकालीन

और अन्तर्कालीन वैधानिक प्रबन्ध के सम्बन्ध में मंत्रि-प्रतिनिधि-मण्डल और आपके प्रस्तावों पर बड़ी सावधानी से विचार किया गया है। उसके विचार साथ के वक्तव्य में निहित हैं जो समाचार-पत्रों को दे दिया गया है और जिसकी एक अग्रिम प्रति सर कोनरैड कोरफील्ड को, जो सम्राट्-प्रतिनिधि वाइसराय के राजनीतिक सलाहकार हैं, भेज दी गयी थी। मैं आपका ध्यान देशी राज्यों के आन्तरिक सुधारों के प्रश्न के सम्बन्ध में स्थायी-समिति के रुख की ओर विशेष रूप से आकृष्ट करूँगा, जिसका निर्देश समाचार-पत्रोंवाले वक्तव्य के चौथे अनुच्छेद में किया गया है।

स्पष्ट कठिनाइयों के होते हुए भी भारतीय वैधानिक समस्या का यथासम्भव सर्वसम्मत हल निकालने के लिए मन्त्रि-प्रतिनिधि-मण्डल और आप-महानुभाव ने जो हार्दिक प्रयत्न किये हैं उनके लिये स्थायी समिति ने यह इच्छा प्रकट की है कि मैं उसकी ओर से आपलोगों के प्रति कृतज्ञतापूर्ण समादर-भावना प्रकट करूँ। स्थायी समिति की राय में योजना में ऐसे आवश्यक साधन हैं जिनसे भारत स्वाधीनता प्राप्त कर सकता है और जो अतिरिक्त-वार्ता के लिए उचित आधार बन सकते हैं। सर्वोच्च सत्ता के सम्बन्ध में वह मन्त्रि-प्रतिनिधि-मण्डल की घोषणा का स्वागत करती है, किन्तु साथ ही यह भी खयाल करती है कि अन्तर्कालीन अवधि के लिए कुछ हेर-फेर आवश्यक हैं जिनका निर्देश वह पहले ही कर चुकी है। देशी राज्यों और स्थायी-समिति का अन्तिम निर्णय उस पूर्ण स्वरूप पर निर्भर होगा जो प्रस्तावित वार्ता और समझौतों के फलस्वरूप अस्तित्व में आ सकेगा, और इसमें सन्देह नहीं कि इनके इस रवैया का स्वागत किया जायगा।

आप महानुभावों ने देशी राज्यों के वैध हितों की रक्षा के लिए इन वार्त्ताओं के अवसर पर जो मूल्यवान परामर्श और सहायता प्रदान की है उसके लिए स्थायी समिति आपके प्रति विशेष रूप से अपना आभार प्रकट करना चाहती है और यह निवेदन करती है कि उसका आभार-पूर्ण धन्यवाद सर कोनरैड कोरफील्ड तक पहुँचा दिया जाय, जिन्होंने, जैसा कि आपको विदित है, विशेष सहायता पहुँचायी है। समिति को विश्वास है कि जिन विविध विषयों की व्याख्या नहीं हुई या जो भावी वार्ता के लिए छोड़ दिये गये हैं, उनका ऐसा उचित निबटारा हो जायगा कि उससे रियासतों को सन्तोष होगा।

आपके निमन्त्रण के अनुसार स्थायी समिति ने एक समझौता-समिति स्थापित करने का निर्णय किया है जिसके सदस्यों की नामावली साथ की तालिका में दी गयी है (यह तालिका अभी गोपनीय है इसलिए प्रकाशित नहीं की गयी)। आपकी इच्छानुसार समिति ने सदस्यों की संख्या कम करने का भरसक प्रयत्न किया है; किन्तु उसके विचार से इस संख्या को अब और भी कम करना सम्भव न हो सकेगा। मैं कृतज्ञ हूंगा यदि मुझे यथासम्भव काफी पहले सूचित कर दिया जाय कि इस समिति की बैठक के कब और कहां होने की आशा की जाती है और वैसी ही समिति के जो विधान-निर्मात्री परिषद् के सम्बन्ध में ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधियों-द्वारा स्थापित होगी, सदस्य कौन-कौन होंगे। विचार है कि इन समझौतों के परिणाम पर नरेशों की स्थायी समिति, मन्त्रियों की समिति, और विधान-परामर्श-समिति-द्वारा, जिसकी सिफारिशें देशी राज्यों के शासकों और प्रतिनिधियों के साधारण सम्मेलन के सम्मुख उपस्थित की जायँगी, सोच-विचार किया जाय। इस प्रश्न का निर्णय कि रियासतें विधान-निर्मात्री-परिषद् में अपने प्रतिनिधि भेजें या न भेजें, इसी सम्मेलन-द्वारा किया जायगा और यह आगे की समझौता-वार्ता पर निर्भर होगा।

ब्रिटिश भारत और रियासतों के सामान्य हितों के सम्बन्ध में स्थापित होनेवाली प्रस्तावित समिति में रखे जानेवाले प्रतिनिधियों की नामावली साथ में लगी हुई है। इसमें रियासतों के विविध महत्वपूर्ण हितों और क्षेत्रों के प्रतिनिधियों को स्थान देना, और उन विषयों के सम्बन्ध में, जो इस समिति के सम्मुख विचारार्थ उपस्थित होंगे, विशेष जानकारी रखनेवाले व्यक्तियों को सम्मिलित करना आवश्यक था। खयाल किया जाता है कि इस समिति के सदस्यों के लिए प्रत्येक बैठक में उपस्थित होना आवश्यक न होगा और साधारणतः चान्सलर-द्वारा कार्यक्रम के विषयों के स्वरूप के अनुसार विचार-विनिमय में भाग लेने के लिए पांच या छः से अधिक को, ब्रिटिश भारत की संख्या चाहे जो हो, न बुलाया जायगा। उस रियासत या रियासती गुट के सदस्यों को सम्मिलित करने की भी व्यवस्था की जायगी जिसे इस समिति में प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व प्राप्त न होगा। ऐसा उस समय किया जायगा जब उनसे सम्बन्ध रखनेवाले विशिष्ट प्रश्नों पर विचार हो रहा होगा। कार्य-सम्पादन करने के नियमों के मसविदे और इस समिति से सम्बन्ध रखनेवाली अन्य बातों के सम्बन्ध में सर कोनरैड के साथ विचार-विनिमय किया जायगा और विश्वास किया जाता है कि सम्भवतः आपको भी इन विषयों के सम्बन्ध में अन्तर्कालीन सरकार से परामर्श करना पड़े।

इसी बीच आपकी इच्छानुसार अन्तर्कालीन अवधि में सर्वोच्च-सत्ता के उपयोग से सम्बन्ध रखनेवाले विषयों पर सर कोनरैड के साथ विचार किया जायगा और जो भी महत्वपूर्ण प्रश्न उपस्थित किये जायँगे उनपर शीघ्र ही किसी निर्णय पर पहुँचने के लिये स्थायी समिति ने अतिरिक्त-बातचीत करने का अधिकार मुझे सौंप दिया है।"

श्रीमान् वाइसराय का नरेन्द्र-मण्डल के चांसलर नवाब भोपाल को लिखा गया पत्र—ता० २६ जून, १६४६

"मैं श्रीमान् के जूनवाले पत्र के लिए बड़ा अनुगृहीत हूँ, जिसमें श्रीमान् ने मुझे उन परिणामों के सम्बन्ध में सूचित किया है, जिन पर नरेशों की स्थायी समिति अपनी बम्बई की जून के दूसरे सप्ताह में हुई बैठक में पहुँची थी।

भारत की वैधानिक समस्या के निबटारे के लिए हमारे द्वारा प्रस्तावित योजना के सम्बन्ध में नरेशों ने जो दृष्टिकोण ग्रहण किया है उसका हम—मन्त्रि-मिशन और मैं स्वागत करते हैं। भारत के नवीन वैधानिक ढांचे में योग प्रदान करने के लिए रियासतें किस प्रकार सर्वोत्तम तरीके से अपना उचित स्थान ग्रहण कर सकती हैं, इस सम्बन्ध में हमारे सुझावों को स्वीकार करने की स्थायी समिति की कार्रवाई की हम और भी विशेष रूप से कद्र करते हैं। हमें विश्वास है कि रियासतों-द्वारा अन्तिम निर्णय करने का जब समय आवेगा तो उस निर्णय को करते समय भी रियासतें यथार्थता तथा समझदारी की इसी भावना का परिचय देंगी।

स्थायी समिति ने मेरे तथा मेरे राजनीतिक सलाहकार के सम्बन्ध में जो विचार प्रकट किये हैं उनकी भी मैं कद्र करता हूं। मैं श्रीमान् की स्थायी समितिको विश्वास दिलाना चाहता हूं कि आगामी वार्ता के मध्य भी रियासतों तथा ब्रिटिश भारत के लिए समान रूप से सन्तोषजनक परिणामों पर पहुँचने में हम शक्ति भर सहायता प्रदान करना जारी रखेंगे।

वार्ता-समिति में प्रतिनिधित्व करने के लिए रियासतों ने जिन महानुभावों को चुना है उनकी सूची को मैंने ध्यान से देखा है। श्रीमान् को वार्ता-समिति की बैठक के स्थान और समय की सूचना देने में समर्थ होते ही मैं तुरन्त ऐसा करूँगा। मेरा खयाल है कि विधान-निर्मात्री-

परिषद् का प्रारम्भिक अधिवेशन हुए बिना ब्रिटिश भारत की वैसी ही वार्ता-समिति के सदस्यों की सूची के सम्बन्ध में कोई निर्णय नहीं हो सकता।

मुझे सर कोनरैड कोरफील्ड से ज्ञात हुआ है कि ब्रिटिश भारत तथा रियासतों से सम्बन्ध रखनेवाले समान विषयों के सम्बन्ध में सलाहकार-समिति नियुक्त करने के नरेशों के प्रस्ताव को कार्यान्वित करने के लिए वे (सर कोनरैड) पहले ही से केन्द्रीय सरकार के अधिकारियों से बातचीत कर रहे हैं। इस वार्ता की प्रगति के सम्बन्ध में सर कोनरैड निस्सन्देह ही श्रीमान् को सूचित करते रहेंगे और मेरा इरादा बाद में इस प्रस्ताव को अन्तर्कालीन सरकार के समक्ष उपस्थित करने का है।

भारत के सम्मुख उपस्थित पेचीदी वैधानिक समस्याओं के सम्बन्ध में ग्रहण किये सहायतापूर्ण दृष्टिकोण की मैंने कद्र की है। मेरे इस विचार को यदि श्रीमान् नरेशों की स्थायी समिति तक पहुंचा देंगे तो मैं बड़ा अनुग्रहीत हूँगा। मुझे विश्वास है कि श्रीमान् ने जो मार्ग-प्रदर्शन किया है उसका भारत के सभी नरेश अनुसरण करेंगे।"

मि० जिन्ना का वक्तव्य

मि० जिन्ना का जो वक्तव्य ओरियण्ट प्रेस ने प्रकाशित किया था वह इस प्रकार है:—

"ब्रिटिश शिष्टमण्डल और श्रीमान् वाइसराय का १५ मई १९४६ ई० का दिल्ली से प्रकाशित वक्तव्य मेरे सामने है। मैं इस वक्तव्य पर कुछ भी कहने के पहले उस बातचीत की पृष्ठ-भूमि दे देना चाहता हूं जो ५ मई से कान्फरेंस की समाप्ति घोषित होने और उसके १२ मई, १९४६ को भंग हो जाने तक शिमले में हुई थी। ५ मई को हम कान्फरेंस में इस फार्मूला पर विचार करने के लिए इकट्ठे हुए थे जिसको २७ अप्रैल के भारत-मन्त्री के उस पत्र में शामिल किया गया है और जिसके द्वारा लीग के प्रतिनिधियों को आमन्त्रित किया गया है। फार्मूला इस प्रकार था:—

"संघ-सरकार इन विषयों पर अधिकार रखेगी—वैदेशिक मामले, देश-रक्षा और यातायात्।

"प्रान्तों के दो समूह होंगे—एक वह जिनमें हिन्दुओं की प्रधानता होगी और दूसरे में मुसलमानों की, जो उन सभी विषयों के अधिकार अपने हाथ में रखेंगे जो अपने-अपने समूह के प्रान्त आम तौर पर रखने चाहेंगे। प्रान्तीय सरकारें अन्य सभी विषयों की अधिकारिणी होंगी और उन्हें अवशिष्ट शक्तियों का पूरा अधिकार प्राप्त होगा।

"मुस्लिम-लीग की स्थिति यह थी कि पूर्वोत्तर में बंगाल और आसाम का क्षेत्र और पश्चिमोत्तर में पंजाब, सीमाप्रांत, सिन्ध और बलूचिस्तान का सारा इलाक़ा पाकिस्तान बनेगा और वह पूर्णतः स्वतन्त्र होगा और यह कि ऐसे पाकिस्तान की स्थापना को शीघ्र कार्य रूप में परिणत करने की स्पष्ट ज़िम्मेदारी ली जाय।

"दूसरे, पाकिस्तान और हिन्दुस्तान की जनता को अपना-अपना पृथक् विधान बनाने के लिए अलग-अलग विधान-निर्मात्री संस्थाएँ बना दी जायँ।

"तीसरे, लाहौर-प्रस्ताव के अनुसार पाकिस्तान और हिन्दुस्तान में अल्पसंख्यकों को संरक्षण प्रदान किये जायँ।

"चौथे, लीग का सहयोग प्राप्त करने के लिए उसकी मांग का पहले स्वीकार किया जाना अनिवार्य है, और केवल इसी शर्त पर लीग केन्द्र में अंतरिम सरकार के निर्माण में भाग ले सकती है।

"पाँचवें, ब्रिटिश सरकार को चेतावनी दे दी गई थी कि वह अखण्ड भारत के आधार पर संघीय विधान लादने की कोशिश न करे और किसी भी केन्द्र पर कोई भी अंतरिम व्यवस्था ज़बर्दस्ती न लादे, क्योंकि यह लीग की मांग के विपरीत होगा और यह कि यदि इसे ज़बर्दस्ती लादने का प्रयत्न किया गया तो मुस्लिम भारत इसका विरोध करेगा। इसके अतिरिक्त इस प्रकार की कोशिश-द्वारा सम्राट्-सरकार के अगस्त, १६४० वाले वक्तव्य का प्रबलतम भंजन होगा जो कि ब्रिटिश पार्लामेंट-द्वारा स्वीकार किया गया था और जिसका समर्थन भारतमन्त्री तथा अन्य ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने समय-समय पर किया था।

"हमने कान्फरेंस में भाग लेने का आमन्त्रण इस रूप में स्वीकार किया था कि हम उसकी किसी बातचीत और कार्रवाई से अपने को बाध्य नहीं समझते थे और न मिशन के इस छोटे-से फार्मूले से अपने को बँधा समझते हैं जिसे भारतमंत्री ने २६ अप्रैल, १६४६ के पत्र में इस प्रकार लिखा था—"हमारा यह आशय कभी नहीं था कि मुस्लिम लीग या कांग्रेस-द्वारा हमारा आमन्त्रण मंजूर कर लेने का अर्थ यह होगा कि मेरे पत्र में लिखी हुई शर्तें पहले मान ली गयीं। यह शर्तें तो समझौते के लिए हमारा प्रस्तावित आधार हैं और हमने मुस्लिम-लीग की कार्य-कारिणी-समिति से यही कहा है कि वह अपने प्रतिनिधि हमसे और कांग्रेस के प्रतिनिधियों से मिलने के लिए भेजे जिससे इसके बारे में बातचीत हो सके।

"आमन्त्रण के जवाब में २८ अप्रैल, १६४६ को कांग्रेस ने अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए लिखा था कि वर्तमान प्रान्तों को संघीय इकाई मानते हुए प्रान्त में संघीय सरकार स्थापित की जाय और उसमें यह भी कहा गया था कि वैदेशिक मामले, देशरक्षा, मुद्रानीति, यातायात्, कर और टेरिफ तथा अन्य ऐसे विषय जो निकट के अध्ययन से इन विषयों से सम्बद्ध प्रतीत हों केन्द्र की संघीय सरकार को सौंपे जायँ। उन्होंने—कांग्रेसवालों ने प्रान्तों के समूहीकरण के विचार का समर्थन नहीं किया, फिर भी उन्होंने कैबिनट के शिष्टमण्डल के साथ उसके फार्मूले पर बात-चीत करने के लिए कान्फरेंस में भाग लेना स्वीकार कर लिया है।

"कई दिनों की बातचीत के बाद भी कोई परिणाम नहीं निकला। अन्त में मुझे कहा गया कि हमारी कम-से-कम मांग को मैं पूर्ण रूप में दूँ। फलतः हमने अपनी शर्तों के कुछ बुनि-यादी सिद्धान्त तैयार करके कांग्रेस के सामने इस आशा से पेश कर दिया है कि शांतिपूर्ण पारस्परिक समझौते के लिए हमारी हार्दिक इच्छा है और उसके द्वारा हम भारत की स्वतन्त्रता जल्द-से-जल्द हासिल कर लेंगे। यह शर्तें १२ मई को कांग्रेस के पास भेजी गयी थीं और उसी समय उसकी एक-एक प्रतिलिपि मंत्रि-मिशन के पास भेज दी गयी थी।

शर्तें इस प्रकार थीं:—

(१) छः मुसलमानी प्रान्त (पंजाब, सीमाप्रान्त, बलूचिस्तान, सिन्ध, बंगाल और आसाम) का समूह एक अलग रूप में कायम किया जाय जो विदेशी, देश-रक्षा और उसके लिए आवश्यक यातायात् विभाग को छोड़ अन्य सभी विषयों व मामलों के अधिकार अपने हाथ में रखे, जिनका निर्णय दो विधान निर्मात्री संस्थाएँ—मुस्लिम प्रान्तों (जो अब पाकिस्तान कहा जायगा) और हिन्दू-प्रान्तों की एक साथ बैठकर तय कर लेंगी।

(२) ऊपर कहे छः मुस्लिम प्रांतों के लिए एक अलग विधान-निर्मात्री होगी जो इस समूह और इसके प्रांतों के लिए विधान तैयार करेगी और इन विषयों की सूची तैयार करेगी जो (पाकिस्तान के) प्रांतीय और केन्द्रीय होंगे और अवशिष्ट पूर्णाधिकार प्रांतों को दे दिये जायँगे।

(३) विधान-निर्मात्री संस्था के लिए चुनाव का ढंग इस प्रकार का होगा जो पाकिस्तान-समूह के प्रत्येक प्रांत के विभिन्न सम्प्रदायों को उनकी आबादी के अनुपात से समुचित प्रतिनिधित्व प्रदान कर सके।

(४) इस तरह विधान-निर्मात्री संस्था-द्वारा पाकिस्तान की संघीय सरकार और उसके प्रांतों का विधान अन्तिम रूप में बन जाने के बाद (पाकिस्तान) समूह के किसी भी प्रान्त को यह अधिकार होगा कि वह समूह से निकल जाय, बशर्ते कि उस प्रांत के निवासियों की अलग होने न होने की इच्छा मत संग्रह-द्वारा पहले निश्चित कर ली जाय।

(५) संयुक्त विधान-निर्मात्री संस्था में इस बात की बहस खुले रूप में हो सकेगी कि यूनियन या समूह में व्यवस्थापक सभा होगी या नहीं। समूह की आर्थिक-व्यवस्था के बारे में भी दोनों विधान-निर्मात्री संस्थाओं की संयुक्त सभा में बहस होगी; पर किसी भी अवस्था में यह अर्थ-व्यवस्था कर लगाकर नहीं की जायगी।

(६) यूनियन की नौकरियों और व्यवस्थापक सभाओं में दोनों समूहों—पाकिस्तान और हिन्दुस्तान—को समान प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए।

(७) समूह या यूनियन के विधान का कोई भी ऐसा मुख्य विषय, जिसका साम्प्रदायिक मामलों से सम्बन्ध होगा, संयुक्त विधान-निर्मात्री संस्था में नहीं भेजा जायगा जब तक हिन्दू प्रान्तों और पाकिस्तान-समूह के बहुसंख्यक उपस्थित और मतदाता सदस्य अलग-अलग उसके पक्ष में न हों।

(८) समूह और प्रान्तों के विधानों के बुनियादी अधिकारों में विभिन्न सम्प्रदायों के धर्म, संस्कृति और संरक्षण पर प्रभाव डालनेवाले मामलों की व्यवस्था की जायगी।

(९) यूनियन के विधान में ऐसी व्यवस्था दी जायगी जिसके अनुसार कोई भी प्रान्त अपनी व्यवस्थापक-सभा के वोटों के बहुमत द्वारा विधान की शर्तों पर पुनर्विचार कर सकता है और वह आरम्भिक दस वर्षों के बाद यूनियन से कभी भी अलग हो सकता है।

हमारे प्रस्ताव का निचोड़, जैसा कि इस मसौदे से ज़ाहिर होगा, अन्य बातों-समेत यह था, कि छः मुस्लिम प्रान्तों के समूह को पाकिस्तान-संघ और शेष प्रान्तों को हिन्दुस्तान-संघ बना दिया जाय। और फिर हम शुद्ध विदेशी मामलों, सुरक्षा तथा यातायात् को लेकर एक संयुक्त-राज्य-संघ बनाये जाने तथा इन तीनों विभागों सम्बन्धी अधिकार दोनों संघों की ओर से इसी राज्य-संघ को सौंपे जाने पर विचार करने को तैयार थे। बाकी विभाग तथा बचे-खुचे मामले, दोनों संघों तथा प्रान्तों के अधीन रहने चाहियें। यह सब अंतरिम काल के लिए किया गया था, क्योंकि पहले १० साल बीत जाने पर, हमें संघ से बाहर निकल जाने की छूट होगी। किन्तु दुर्भाग्य से हमारी यह वाजिबी और मैत्रीपूर्ण तजवीज़ भी कांग्रेस ने ठुकरा दी, जैसा कि उनके उत्तर से ज़ाहिर है। उल्टे, कांग्रेस के अन्तिम सुझाव भी वही थे, जो कि उन्होंने, केन्द्राधीन रखे जानेवाले विभागों के सम्बन्ध में, कान्फ्रेन्स में शामिल होने से पहले रक्खे थे। इतना ही नहीं, उन्होंने हमारी स्वीकृति के लिए एक और भी प्रखर सुझाव यह रख दिया है, कि "विधान टूटने की सूरत में, या गम्भीर सार्वजनिक परिस्थितियाँ उपस्थित होने पर, केन्द्र को, प्रतिकारक कार्रवाई करने का अधिकार अवश्य प्राप्त होगा।" यह उनके १२ मई १९४६ के उत्तर में मौजूद है जो हमें भेजा गया था।

यहाँ पहुँचकर बात-चीत का सिलसिला टूट गया था और हमें सूचित किया गया था कि

शिष्टमंडल अपना वक्तव्य जारी करेगा, जो अब जनता के सामने है।

पहले तो मैं यही कहूंगा, कि वक्तव्य, अस्पष्ट और अनेक शून्य स्थानों से भरा है, और यह कि कार्यविभाग को थोड़े-से छोटे पैरों में समाप्त कर डाला है। अस्तु, इसका ज़िक्र मैं बाद में करूंगा।

"मुझे खेद है कि मंडल-द्वारा मुसलमानों की इस माँग को, कि पाकिस्तान का स्वतंत्र राज क़ायम कर दिया जाय, ठुकरा दिया गया है। हम फिर यही कहेंगे कि इण्डिया की वैधानिक समस्या का एकमात्र हल यही है और इसी में, न-केवल हिन्दू और मुस्लिम, वरन् इस विशाल देश की सभी जातियों का कल्याण होगा। और यह और भी खेद का विषय है कि मंडल ने, पाकिस्तान के विरुद्ध, वही हल्की और पिटी हुई युक्तियाँ देना पसंद किया है, और ऐसी शोचनीय भाषा में विशेष दलीलें दी हैं कि जिन से मुसलमानों के दिलों को ठेस पहुंची है। मेरी राय में यह केवल कांग्रेस को राज़ी और खुश करने के लिए किया गया है, कारण कि जब मंडल के सामने असलियतें आईं थीं, तो उसने खुद, अपने बयान के पैरा पाँच में यह सम्मति दी थी:—

"इस विचार ने हमको हिन्दुस्तान को बाँट देने की सम्भावना पर निष्पक्ष और गहरी सोच करने से नहीं रोका, क्योंकि हम पर, मुसलमानों की इस खरी और गहरी चिन्ता का पूरा-पूरा प्रभाव पड़ा है, कि ऐसा-न-हो कि उन्हें सदा के लिए हिन्दू-बहुसंख्यक शासन के अधीन रहना पड़े।

"यह भय मुसलमानों के दिलों में ऐसा घर कर चुका है कि खाली काग़ज़ी संरक्षणों से इसे दूर नहीं किया जा सकता। यदि हिन्दुस्तान में सच्ची शान्ति स्थापित करना है तो वह ऐसी कार्रवाइयों से हो सकेगी जिनमें कि मुसलमानों को अपने आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक विषयों में निज-अधिकार मिलने की गारंटी हो"

"पैरा नं० १२ में और भी लिखा है:—

"हमारा यह निश्चय, मुसलमानों की उन वास्तविक शंकाओं के साथ, जो कि उन्हें अपने सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक जीवन के बारे में, एक ही आज़ाद हिन्दुस्तान में, हिन्दुओं को अत्यधिक बहुसंख्या से दबाये जाने के भय से पैदा हो रही हैं, हमें किसी प्रकार पाबन्द नहीं करता।"

"और अब, अपने साफ़ साफ़ और पुर-ज़ोर फ़ैसलों की रोशनी में, अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने क्या-क्या सिफ़ारिशें की हैं, वे इस वक्तव्य के पैरा १२ में हैं।

"अब मैं, वक्तव्य के सक्रिय भाग के कुछ आवश्यक नुक़्तों पर रोशनी डालूंगा:—

(१) "उन्होंने पाकिस्तान को दो भाग में, 'बी' उत्तर-पश्चिम की पेटी और 'सी' उत्तर-पूरब की पेटी में विभक्त कर दिया है।

(२) "दो विधान-परिषदों के बजाय, वर्ग ए, बी और सी के साथ, एक विधान-सभा की रचना कर डाली है।

(३) "उन्होंने तय किया है कि 'ब्रिटिश हिन्दुस्तान तथा देशी रियासतों का एक ही संघ बनाया जाय, जिसको विदेश, सुरक्षा और यातायात् के विभागों पर अधिकार होगा, तथा वह उक्त विभागों के लिए, आवश्यक अर्थ-उपार्जन भी कर सकेगा।

"यह कहीं भी ज़ाहिर नहीं होता, कि यातायात् पर उतना ही नियंत्रण रक्खा जायगा, जितना कि सुरक्षा के लिए आवश्यक है। और न ही यह स्पष्ट किया गया है कि उपर्युक्त तीनों

विभागों में आवश्यक धन एकत्रित करने के लिए, संघ को किस प्रकार के अधिकार दिये जायँगे। हमारी राय यह थी, कि अर्थ-उपार्जन, कर लगाकर नहीं, वरन् केवल चंदे द्वारा प्राप्त किया जाय।

(४) "यह तय पाया है कि 'संघ में, अंग्रेज़ी हिन्दुस्तान तथा देशी रियासतों के प्रतिनिधियों द्वारा, एक धारासभा और एक प्रबन्धकारिणी कायम की जाय। किसी भी गम्भीर सांप्रदायिक समस्या का निर्णय, धारासभा में उपस्थित सदस्यों के बहुमत तथा दोनों मुख्य संप्रदायों के प्रतिनिधियों के बहुमत और सभी उपस्थित सदस्यों के बहुमत से ही किया जा सकेगा।' उधर हमारा मत यह था कि .—(क) संघ के लिए कोई धारासभा न हो, किंतु इस समस्या का हल विधान-परिषद् पर छोड़ दिया जाय। (ख) संघ में, पाकिस्तान समूह और हिन्दुस्तान समूह के प्रतिनिधि, संघ, प्रबंधकारिणी और धारासभा में बराबर-बराबर हों। और (ग) कि, धारासभा, प्रबन्धकारिणी अथवा राज-प्रबंध का कोई फ़ैसला, जिसमें कि मतभेद हो, तीन-चौथाई के बहुमत ही से किया जाय। वक्तव्य से हमारी यह तीनों तजवीज़ें निकाल दी गई हैं।

"निश्चय, संघ की धारासभा की कार्यविधि में, एक यह संरक्षण ज़रूर है, कि 'किसी भी गम्भीर सांप्रदायिक समस्या का फ़ैसला, दोनों सम्प्रदायों के प्रतिनिधियों के बहुमत तथा सभी उपस्थित सदस्यों के बहुमत से ही हो सकेगा।

"लेकिन यह भी अस्पष्ट और कार्यरूप दिये जाने-लायक नहीं। लीजिये, भला यह कौन फ़ैसला करेगा कि कौनसी समस्या गम्भीर सांप्रदायिक है और कौन-सी सामान्य और कौन-सी ख़ालिस क़ौमी ?

(५) "हमारा यह प्रस्ताव, कि पाकिस्तान-समूह को पहले १० साल बीत जाने पर संघ से बाहर जा सकने का अधिकार होना चाहिए, गो कांग्रेस की तरफ़ से इस पर कोई विशेष आपत्ति नहीं थी, छोड़ ही दिया गया। अब हमें, संघ विधान पर, केवल पहले १० साल बाद ही पुनः विचार का अधिकार रह गया।

(६) "अब विधान-निर्माण के काम को लीजिये। समूह 'बी' में, ब्रिटिश बलोचिस्तान का एक प्रतिनिधि ले लिया गया है। लेकिन उसका चुनाव क्योंकर होगा यह नहीं कहा गया।

(७) 'विधान-निर्माण के विषय में, संघ का विधान बनानेवालों में हिन्दुओं का अत्यधिक बहुमत रहेगा, क्योंकि अंग्रेज़ी हिन्दुस्तान के २१२ सदस्यों के सामने कुल ७६ मुसलमान होंगे। और यदि देशी रियासतों के ९३ सदस्य भी शामिल हो जायँ, तो मुस्लिम अनुपात और भी गिर जायगा। ऐसी धारासभा, प्रधान, अन्य अफ़सरों और प्रतीत होता है कि सलाहकारि समिति का चुनाव भी, अपने बहुमत से करेगी। हां, मुझे केवल बचाव-वाली धारा ज़रूर नज़र आई है :—

"संघ की धारासभा में, पैरा १५ में वर्णित व्यवस्थाओं में परिवर्तन करनेवाले प्रस्ताव तथा गम्भीर सांप्रदायिक मामलों के प्रस्तावों के लिए, उपस्थित सदस्यों के बहुमत तथा दोनों सम्प्रदायों के प्रतिनिधियों के मत का होना आवश्यक होगा।

"धारासभा का प्रधान यह निश्चय करेगा कि प्रस्तुत किये गये प्रस्तावों में से, कौनसा गम्भीर साम्प्रदायिक है और यदि किसी एक सम्प्रदाय के बहुमत ने मांग पेश की हो, तो प्रधान को अपना फ़ैसला देने से पहले फेडरल कोर्ट की सलाह लेनी होगी।

"तो इसका यह मतलब निकला कि प्रधान ही इसका फैसला करेगा। फेडरल कोर्ट की सलाह उस पर बाध्य नहीं होगी और न ही कोई जान सकेगा कि क्या सलाह मिली, क्योंकि

प्रधान को तो केवल सलाह करना ही होगा।

(८) "जैसा कि हमने जनमत लेकर तय करने का प्रस्ताव किया था, उसे न मानकर, प्रांतों का अपने-अपने समूहों से निकल सकना, उस प्रांत की धारासभा के हाथों में छोड़ा गया है।

"पैरा २० में लिखा है :–

"नागरिक अधिकारों, अल्पसंख्याओं, कबायली तथा अतिरिक्त इलाकों के अधिकारों पर सलाहकार समिति में उक्त सभी लोगों के प्रतिनिधि रहने चाहियें। इनका फ़र्ज़ होगा कि वे संघ विधान-परिषद् को रिपोर्ट करें कि यह अधिकार प्रांतीय, समूह या संघ के विधान में सम्मिलित किये जायँ या न किये जायँ।

"इससे सचमुच एक और भी गहरी समस्या उठ खड़ी हुई। वह यह कि, यदि विधान सभा इन मामलों को बहुमत से संघ-विधान में लेना या न लेना तय करेगी तो कल को संघ में और विषयों पर विचार किने जाने का दरवाज़ा खुल जायगा। इसमे तो वह बुनियादी असूल बरबाद हो जायगा, जिसके अनुसार संघ को अपने अधिकार केवल ३ मामलों तक सीमित रखने होंगे।

"इस आवश्यक दस्तावेज़ पर विचार करके मैंने यह मोटे-मोटे नुक्ते जनता के सामने रखने की कोशिश की है। मैं मुस्लिम लीग की कार्यकारिणी और कौंसिल के निर्णय को पहले नहीं देख रहा, जिनकी बैठक दिल्ली में जल्द होनेवाली है। इस मामले के गुण-दोषों पर पूरा विचार करके फैसला देने का अधिकार तो उसी को है और ब्रिटिश शिष्टमण्डल तथा वाइसराय के वक्तव्यों की पूरी-पूरी छान-बीन भी वही करेगी।"

कार्यकारिणी समिति का प्रस्ताव

२४ मई १९४६ को कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति ने जो प्रस्ताव पास किया वह इस प्रकार है :—

"ब्रिटिश सरकार की ओर से कैबिनेट शिष्टमण्डल और वायसराय ने १६ मई १९४६ को जो वक्तव्य प्रकाशित किया है और इस सम्बंध में कांग्रेस के सभापति और शिष्टमण्डल के सदस्यों के बीच जो पत्रव्यवहार हुआ है, उस पर इस समिति ने बड़ी सावधानी से विचार किया है। समिति ने आज़ाद और स्वाधीन भारत की स्थापना के लिए शांति और सहयोगपूर्वक शक्ति हस्तांतरित कराने के लिए इस पर गौर किया है। इस प्रकार के (स्वाधीन) भारत के निर्माण के लिए केन्द्र का सुदृढ होना आवश्यक है जिससे संसार के लोकमत में वह शक्ति और गौरव का प्रतिनिधित्व कर सके। इस वक्तव्य पर विचार करते हुए समिति ने उस रूप में भारत के भविष्य पर भी विचार किया है जिसका चित्र शिष्टमण्डल के सदस्यों ने कामचलाऊ सरकार की स्थापना करने के स्पष्टीकरण द्वारा खींचा है। चित्र अभी तक अधूरा और अस्पष्ट है। केवल पूर्ण चित्र के आधार पर ही समिति इस बात का निर्णय कर सकती है कि यह (वक्तव्य) उसके उद्देश्यों के अनुरूप कहां तक है। यह उद्देश्य हैं—भारत के लिए स्वाधीनता, केन्द्र में सीमित होने पर भी दृढ अधिकार-शक्ति, प्रांतों के लिए पूर्ण स्वशासन, केन्द्र में और इकाइयों में प्रजातंत्रीय ढांचा, प्रत्येक व्यक्ति को बुनियादी अधिकार का आश्वासन जिससे वह विकास का पूर्ण और समान सुअवसर प्राप्त कर सके और यह कि प्रत्येक सम्प्रदाय इस विशाल ढांचे के अन्दर अपनी इच्छा के अनुसार जीवन व्यतीत करने का अवसर प्राप्त कर सके।

समिति को यह देखकर अफसोस हो रहा है कि इन उद्देश्यों और ब्रिटिश सरकार के

विभिन्न प्रस्तावों में विरोधाभास पाया जा रहा है, और खास कर उस अन्तरिम काल में, जब कि यह कामचलाऊ सरकार अमल में आयेगी, जोरदार परिवर्तनों की विवेचना नहीं की है, यद्यपि वक्तव्य के २३वें पैराग्राफ में उसके लिए आश्वासन दिया गया है। अगर भारत की आज़ादी लक्ष्य में है तो कामचलाऊ सरकार का कार्यकलाप वास्तव में उस आज़ादी के निकटतम पहुँच जाना चाहिए चाहे कानूनी रूप में ऐसा भले ही न हो सके, और ऐसा होने के मार्ग में जितनी भी अड़चनें और बाधाएँ हैं उन्हें दूर कर दिया जाना चाहिए। विदेशी फौजों का यहाँ लगातार बनी रहना आज़ादी का प्रतिरोध है।

कैबिनेट शिष्टमंडल और वाइसराय ने जो वक्तव्य प्रकाशित किया है उनमें कुछ ऐसी सिफारिशें सम्मिलित हैं और उसके द्वारा ऐसी कार्रवाई की सिफारिश की गयी है जिससे विधान-परिषद् का निर्माण हो सके, जो विधान-निर्माण के कार्य में पूर्ण अधिकारिणी होगी। समिति इन (वक्तव्य की) सिफारिशों में से कुछ से सहमत नहीं है। उसकी राय में विधान-परिषद् को ही यह अधिकार होगा कि वह किसी स्थिति पर पहुँचकर इनमें ऐसे परिवर्तन और भिन्नताएँ पैदा न करके ऐसी व्यवस्था कर दे कि कुछ प्रमुख साम्प्रदायिक मामलों में दोनों ही सम्प्रदायों के बहुमत का निर्णय लेना आवश्यक हो।

विधान-परिषद् के लिए चुनाव की पद्धति दस लाख पर एक के प्रतिनिधित्व के अनुपात पर आधारभूत है ; पर एसेम्बली के यूरोपियन सदस्यों—और खासकर बंगाल के बारे में इस बात की ओर ध्यान नहीं दिया गया है। इसलिए समिति आशा करती है कि इस भूल को सुधार दिया जायगा।

विधान-परिषद् पूर्णतः निर्वाचित संस्था बननेवाली है जिसके सदस्यों का चुनाव प्रान्तीय व्यवस्थापक-सभाएँ करेंगी। बलूचिस्तान में निर्वाचित एसेम्बली नहीं है और न अन्य कोई ऐसा चेम्बर है जो विधान-परिषद् के लिए प्रतिनिधि चुन सके। सारे बलूचिस्तान प्रान्त की ओर से किसी भी एक नामज़द व्यक्ति के लिए बोलना उचित न होगा, क्योंकि वह वास्तव में उसका प्रतिनिधित्व किसी भी प्रकार नहीं करता।

कुर्ग में व्यवस्थापिका कौन्सिल में कुछ तो नामज़द सदस्य हैं और कुछ हैं युरोपियन जो सौ से भी कम सदस्यों के खास चुनाव-क्षेत्र से चुने गये हैं। केवल आम चुनाव-क्षेत्रों से निर्वाचित सदस्य ही इस (विधान-परिषद् के) निर्वाचन में भाग ले सकते हैं।

कैबिनेट-शिष्टमंडल के वक्तव्य-द्वारा प्रान्तों को स्वायत्त सत्ता और अवशिष्ट शक्तियों के अधिकार देने के बुनियादी सिद्धान्त का समर्थन किया गया है। यह भी कहा गया है कि प्रान्तों का समूह बनाने के लिए स्वतंत्र होना चाहिए। फलतः यह सिफारिश भी की गयी है कि प्रान्तीय प्रतिनिधि ऐसे दलों में विभाजित हो जायँगे जो प्रत्येक दल में प्रान्तीय विधानों का निर्णय करेंगे और इस बात का फैसला भी करेंगे कि प्रान्त के लिए कोई समूह-विधान भी बनाया जाना चाहिए। इन पृथक् व्यवस्थाओं में स्पष्ट त्रुटि दिखायी देती है और यह मालूम हो जायगा कि इसमें बाध्यतामूलक विधान रख दिया गया है जो प्रान्तीय स्वायत्त अधिकारों के बुनियादी सिद्धान्त पर कुठाराघात करता है। वक्तव्य का सिफारिशी रूप कायम रखने के लिए और इस दृष्टि से कि ये धाराएँ एक दूसरी के साथ प्रासंगिक बनी रहें (प्रकरण-विरुद्ध न हो जायँ) समिति ने १५ वें पैराग्राफ का पाठ किया है जिससे सम्बद्ध प्रान्त सर्व प्रथम इस बात का निर्णय करेंगे कि वे उस दल में रहें या नहीं जिन्हें उनमें रखा गया है। इस प्रकार विधान-परिषद् को एक स्वतंत्र

संस्था समझा जाना चाहिए और विधान बनाने और उसे अमल में लाने के बारे में अन्तिम अधिकारिणी संस्था भी।

वक्तव्य का जो अंश देशी राज्यों के सम्बन्ध में है उसका बहुत-सा अंश भविष्य के निर्णय पर छोड़ दिया गया है। फिर भी यह समिति इस बात को स्पष्ट कर देना चाहती है कि बिल्कुल विसदृश तत्वों से नहीं बन सकती, और विधान-परिषद् के लिए देशी राज्यों से जो प्रतिनिधि नियुक्त करने का ढंग हो वह जहाँ तक हो सके प्रान्तों-द्वारा स्वीकृत ढंग का होना चाहिए। समिति को इस बात का गम्भीर दुःख है कि इस वर्तमान युग में भी कुछ रियासतें इस बात की कोशिश कर रही है कि वे अपनी प्रजा का मनोबल सशस्त्र सेनाओं-द्वारा कुचल दें। देशी राज्यों में हाल की यही घटनाएँ भारत के वर्तमान और भविष्य दोनों ही के लिए महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि वे इस बात को प्रकट करती हैं कि कुछ देशी राज्यों की सरकारों की नीति में कोई वास्तविक परिवर्तन नहीं हुआ है और न सर्वोपरि-सत्ता का उपयोग करनेवालों की नीति में ही।

कामचलाऊ राष्ट्रीय सरकार की बुनियाद तभी होनी चाहिए और उस पूर्ण स्वतंत्रता की पूर्वसूचक होनी चाहिए जो विधान-परिषद् से पैदा होगी। वह इस तथ्य को समझकर ही अमल में आनी चाहिए यद्यपि वर्तमान अवस्था में कानून में परिवर्तन नहीं भी हो सकते। अन्तरिम-काल में गवर्नर-जनरल शासन के प्रधान बने रह सकते हैं; पर सरकार मंत्रिमंडल के रूप में कार्य करे और वह केन्द्रीय व्यवस्थापिका-सभा के प्रति उत्तरदायी हो। प्रान्तीय सरकार का दर्जा, अधिकार और रचना की परिभाषा पूर्णतः की जानी चाहिए जिससे समिति किसी निर्णय पर पहुँच सके। मुख्य साम्प्रदायिक मामलों का निबटारा ऊपर बताये ढंग पर होना चाहिए जिससे अल्पसंख्यकों के मन से संदेह दूर हो जाय।

कार्यकारिणी समिति का विचार है कि प्रान्तीय सरकारों और विधान-परिषद् की स्थापना से सम्बद्ध समस्याओं पर साथ ही विचार किया जाना चाहिए जिससे वे एक ही चित्र के दो अंग प्रतीत हों और दोनों में क्रमबद्धता होनी चाहिए और यह भावना भी कि भारत की आजादी अब स्वीकार कर ली गयी है और अब प्राप्य है। इस विश्वास के साथ ही कि ये उस स्वतंत्र, महान् और स्वाधीन भारत के निर्माण में लगी हैं: यह कार्यकारिणी समिति इस कार्य में हाथ बँटा सकती है और सारे भारतवासियों का सहयोग आमंत्रित कर सकती है। पूरे चित्र की गैरहाज़िरी में समिति इस समय कोई भी राय देने में असमर्थ है।"

मास्टर तारासिंह का भारत मंत्री के नाम २५ मई का पत्र

"भारत के भावी विधान के लिए ब्रिटिश मंत्रि-प्रतिनिधि-मंडल की सिफारिशें प्रकाशित होने के बाद से समस्त सिख-सम्प्रदाय में निराशा, विरोध और रोष की लहर फैल गयी है। इसके कारण स्पष्ट हैं।

सिखों को बिल्कुल मुसलमानों की दया पर छोड़ दिया गया है। पंजाब, उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्त, सिंध और बिलोचिस्तान का "बी" गुट बनेगा और इस गुट में प्रत्येक सम्प्रदाय को जो प्रतिनिधि दिये गये हैं वे इस प्रकार होंगे—२३ मुसलमान, ६ हिन्दू और चार सिख। क्या कोई व्यक्ति इस सभा में सिखों के प्रति न्याय की आशा कर सकता है? मंत्रि-प्रतिनिधि-मंडल मुसलमानों की "बहुत ठीक और तीव्र चिन्ता' को स्वीकार करता है क्योंकि इस बात की आशंका है कि उन्हें 'निरन्तर हिन्दू बहुमत शासन के अधीन' रहना पड़ेगा।

किन्तु क्या सिखों को ठीक और तीव्र चिन्ता नहीं है और क्या यह आशंका नहीं है कि

उन्हें निरन्तर मुस्लिम बहुमत-शासन के अधीन रहना पड़ेगा ? यदि ब्रिटिश सरकार सिखों की भावनाओं से भिज्ञ नहीं है और यदि सिखों को निरन्तर मुस्लिम शासन के अधीन रखा गया तो प्रत्येक सम्बन्धित व्यक्ति को सिखों की चिन्ता का विश्वास दिलाने के लिए उन्हें कुछ उपायों को काम में लाना पड़ेगा। मंत्रि-प्रतिनिधि-मंडल ने मुस्लिम शासन के अधीन केवल पंजाब और बंगाल के ही गैर-मुस्लिम क्षेत्रों को नहीं रखा है बल्कि इसमें आसाम के समस्त प्रान्त को भी शामिल कर दिया है जहां गैर-मुस्लिम जनता अत्यधिक संख्या में है। स्पष्टतः यह मुसलमानों को संतुष्ट करने के लिए किया गया है। यदि प्रतिनिधि-मंडल की सिफारिशों का सर्वोपरि विचार मुसलमानों को रक्षा प्रदान करना है तो यही ध्यान सिखों के लिए क्यों नहीं रखा गया, लेकिन मालूम होता है कि सिखों को जानबूझ कर किसी प्रान्त, गुट या केन्द्रीय संत्र में सार्थक प्रभाव रखने से वंचित किया गया है।

१५ (२) और १६ (७) धाराओं का मैं उल्लेख करता हूँ जिनमें यह निश्चित रूप से व्यवस्था की गयी है कि कुछ विशिष्ट कार्यों के लिए हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों ही का बहुमत आवश्यक है। सिखों को बिल्कुल छोड़ दिया गया है, यद्यपि उनका अन्य सम्प्रदायों के समान ही कार्यों से सम्बन्ध है।

मंत्रि-प्रतिनिधि-मंडल की सिफारिशों का मैं तो यही तात्पर्य समझता हूँ, किन्तु प्रश्न अत्यन्त गम्भीर और महत्वपूर्ण है, इसलिए इससे उत्पन्न हुई स्थिति पर विचार करने के लिए यहां एकत्रित सिख प्रतिनिधियों ने मुझे आपसे कुछ बातें स्पष्ट करवाने तथा यह मालूम करने के लिए सलाह दी है कि क्या कोई ऐसा संशोधन करने की आशा है जो सिखों को निरन्तर अधीनता से बचा सके।

इसलिए मैं तीन प्रश्न करता हूं :—

(१) सिखों को सम्प्रदायों में एक सम्प्रदाय मानने का क्या तात्पर्य है ?

(२) मान लीजिये कि गुट "बी" का बहुसंख्यक दल १६ (५) धारा के अन्तर्गत एक विधान बनाता है कि किन्तु सिख सदस्य उसमे सहमत नहीं हैं तो क्या इसका अर्थ गति-अवरोध होगा अथवा सिख सदस्यों के विरोध का अर्थ केवल असहयोग होगा ?

(३) १५ (२) और १६ (७) धाराओं के अन्तर्गत मुसलमानों और हिन्दुओं को जो अधिकार दिये गये हैं क्या सिखों को भी ऐसा अधिकार मिलने की कोई आशा है ?"

मास्टर तारासिंह के नाम भारत मंत्री का पत्र ता० ११ जून १९४६

"२५ मई के आपके पत्र के लिए आपका धन्यवाद।

मंत्रि-प्रतिनिधि-मंडल के वक्तव्य का मसविदा तैयार करते समय, हमने सिखों की आशंकाओं को प्रमुख रूप से अपने ध्यान में रखा था, और मैं निश्चित रूप से यह दावा कर सकता हूँ कि हमारे सम्मुख उपस्थित विभिन्न विकल्पों में से सिखों के दृष्टिकोण से सर्वोत्तम उपाय को ही हमने चुना। मेरा विश्वास है कि आप यह बात स्वीकार करेंगे कि यदि भारत को दो पूर्ण सत्ता-संपन्न राज्यों में विभक्त कर दिया जाता अथवा पंजाब के टुकड़े कर दिये जाते तो इसमें सिखों को कोई भी निर्णय उतना मान्य नहीं हो सकता था, जितना कि वास्तव में किया गया यह निर्णय।

आपने अपने पत्र के अन्त में जिन विस्तृत बातों को उठाया है मैंने उन पर खूब मननपूर्वक

विचार किया है। मुझे खेद है कि मिशन उक्त वक्तव्य का कोई और 'पूरक' अथवा व्याख्या प्रकाशित नहीं कर सकता। किन्तु पंजाब में अथवा उत्तर-पश्चिमी गुट में सिखों की स्थिति बुरा बनाने का कोई इरादा नहीं है और न हो मेरे खयाल से उनकी स्थिति खराब की गयी क्योंकि यह कभी सोचा तो नहीं जा सकता कि विधान-निर्मात्री परिषद् अथवा पंजाब की को भावी सरकार पंजाब में सिखों की विशेष स्थिति की अवहेलना करेगी। आपके संप्रदाय के महत्त्व का अनुमान विधान-निर्मात्री परिषद् में सिखों को दी गयी सीटों की संख्या पर नहीं निर्भर करेगा। श्रीमान् वाइसराय ने मुझे बताया है कि उन आशंकाओं को ध्यान में रखते हुए, जो आप अपने संप्रदाय की ओर से प्रकट की हैं, उन्हें विधान-निर्मात्री परिषद् के बन जाने पर प्रमुख दल के नेताओं से विशेष रूप से सिखों की स्थिति के सम्बन्ध में सोच-विचार करने के लिए बड़ी प्रसन्नता होगी, उन्हें आशा है कि यदि उन्हें (नेताओं को) समझा कर राजी करने की आवश्यकता हुई तो वे उन्हें यह समझाकर राजी कर सकेंगे कि किसी भी हालत में सिखों के हितों की अवहेलना न की जाय।

यदि आप और सरदार बलदेवसिंह जून के प्रथम सप्ताह में मंत्रि प्रतिनिधि मंडल और वाइसराय से भेंट करना चाहें तो हमें आपसे भेंट करने में बड़ी प्रसन्नता होगी।

कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति की बैठक २४ मई को होने के बाद ९ जून के लिए स्थगित की गयी है। २४ मई की बैठक में समिति ने कैबिनट मिशन के वक्तव्य पर अपनी अंतिम राय जाहिर करने में तब तक के लिए असमर्थता प्रकट की है जब तक कि उसके सामने केन्द्र में स्थापित की जानेवाली राष्ट्रीय कामचलाऊ सरकार का पूरा चित्र न हो।

मिशन की सिफारिशों पर गांधीजी का वक्तव्य (२-६-४६)

अहमदाबाद, २ जू

महात्मा गांधी आज के 'हरिजन' में 'महत्त्वपूर्ण दोष' शीर्षक से लिखते हैं—

"मैं समझता हूँ कि सरकारी घोषणा पत्र, जैसा कि उसका वास्तविक और कानूनी तौर पर विश्लेषण किया गया है, उदार एवं स्पष्ट है। तिस पर भी उसका सार्वजनिक विश्लेषण सरकारी पक्ष की अपेक्षा भिन्न होगा। और यदि यह ऐसा ही हो और इसी भांति यह लागू न हो तो यह बुरा है।"

महात्माजी आगे कहते हैं—"भारत में अंगरेज़ी राज के दीर्घकालीन शासनकाल इतिहास में, सरकारी विश्लेषण तो अप्रकट रहने पर भी लागू किया ही गया। इससे पूर्व भी यह कहने में मैंने कभी संकोच नहीं किया कि भारत में कानून बनाने वाला, न्यायाधीश और फांसी देनेवाला—तीनों एक ही हैं। क्या यह सत्य नहीं कि प्रस्तुत सरकारी घोषणा-पत्र साम्राज्यवादी परिपाटियों से बिदाई लेनेवाला है? मैंने इसका उत्तर दिया है, 'हां'। इसे जैसा होना चाहिए वैसा ही हो, किन्तु हमें तो इसमें की त्रुटियों पर दृष्टि डालनी चाहिए।"

कुछ समय विश्राम करके प्रतिनिधि-मंडल शिमला से १४ जून को दिल्ली लौट आया और उसने १६ जून को एक वक्तव्य दिया; किंतु अभी हम केन्द्र से बहुत दूर हैं। यह अनुमान किया जाता था कि प्रतिनिधि-मंडल वक्तव्य जारी करने से पूर्व केन्द्रीय सरकार का निर्माण कर चुका होगा। किन्तु प्रतिनिधि मंडल ने वक्तव्य तो पहले जारी कर दिया और तब वह अन्तरिम सरकार की योजना की तलाश में निकला। इस प्रकार इस समय को आने में यथेष्ट विलंब होना था जब कि लाखों अन्न और वस्त्र के बिना तड़प रहे थे। यह है पहला दोष।

सर्वोपरि सत्ता का प्रश्न अभी तक हल नहीं हुआ और यह कहना पर्याप्त नहीं कि भारत से अंगरेज़ी शासन की समाप्ति के साथ ही सर्वोपरि सत्ता का अन्त हो जायगा। अंतरिम काल में यदि इस पर बंधन नहीं होगा, तो स्वतंत्र सरकार हो जाने पर उसके सामने अनेक कठिनाइयां उपस्थित होंगी। यदि यह अंतरिम सरकार के निर्माण के साथ समाप्त नहीं हो जाती तो उसे अंतरिम सरकार के सहयोग से रियासती प्रजा के हित को मुख्यतः दृष्टि में रखते हुए कार्य करना चाहिए। यह तो जनता ही है जो स्वतंत्रता के लिए लड़ रही है, न कि राजे-महाराजे। इनका यह कहना है कि सर्वोपरि सत्ता जनता की आज़ादी को दबाने के लिए नहीं है। यदि नरेश अपनी बात के सच्चे हैं तो उन्हें इस नई स्कीम में बताई सार्वजनिक सर्वोपरि सत्ता का स्वागत करते हुए अपने को तदनुसार बनाना चाहिए। यह है दूसरा दोष।

यह घोषणा की गई है कि अंतरिम काल में भीतरी शांति एवं व्यवस्था बनाये रहने तथा बाहरी आक्रमण से रक्षा करने के हेतु फौज रखी जायगी। यदि फौज को इस काल के लिए रखा ही गया तो यह विधान-परिषद् के लिए बोझा साबित होगी। एक राष्ट्र, जो, बाहरी अथवा भीतरी रूप में अपनी रक्षा के लिए दूसरे राष्ट्र की फौजें अपने यहां रखने का इच्छुक हो, उसे किसी भी रूप में स्वतंत्र नहीं कहा जा सकता।

इसका तो यही मतलब हुआ कि वह जाति स्वायत्त शासन के अयोग्य है। कहने का तात्पर्य यह है कि इसे अकेला' अचल और अडिग रहने दिया जाय। यदि हमें स्वतंत्र होकर चलना है तो हमें अंतरिम काल में बिना सहायता के खड़े होना सीखना चाहिए। हमें चम्मच से दूध पीना छोड़ देना होगा। ब्रिटिश सरकार अथवा उसके लोगों की अनुदारता के कारण जैसा कि हम चाहते हैं वैसा नहीं हो रहा, किन्तु हैं यह हमारी ही कमज़ोरियां। जो कुछ भी हमें मिलना है, वह हमें मिलना ही था। उसे समुद्र पार की भेंट नहीं कहा जा सकता। जो तीन मंत्री यहां आये हैं, उन्होंने जो करना है उसकी घोषणा की है। यदि वे पुरानी ब्रिटिश घोषणाओं की भांति ही करेंगे और ब्रिटिश शासन को बनाये रहने के ताने-बाने रचेंगे, तो वह समय उन्हें दोषी ठहराने का होगा। यद्यपि भयभीत होने का आधार है तथापि दूर क्षितिज पर ऐसा कोई चिह्न नहीं कि उन्होंने कही एक बात हो और की दूसरी। (ए० पी० आई०)

अन्तःकालीन राष्ट्रीय सरकार की स्थापना के सम्बन्ध में कांग्रेस के अध्यक्ष, पंडित जवाहरलाल नेहरू और वाइसराय के बीच पत्र-व्यवहार।

लार्ड वेवल के नाम कांग्रेस के अध्यक्ष का २५ मई, १९४६ का पत्र।

२० अकबर रोड,
नई दिल्ली,
२५ मई, १९४६

प्रिय लार्ड वेवल,

आपको स्मरण होगा कि अन्तर्कालीन सरकार की स्थापना के सम्बन्ध में जो वर्तमान बात-चीत चल रही है उसके प्रारम्भ से ही कांग्रेस की यह मांग रही है कि उसमें कानूनी तौर पर और वैधानिक रूप से परिवर्तन होना चाहिए ताकि उसे वस्तुतः एक राष्ट्रीय सरकार का रूप दिया जा सके। वर्किंग कमेटी ने अनुभव किया है कि भारतीय समस्या के शांतिपूर्ण निपटारे के लिए ऐसा करना नितान्त आवश्यक है। इस प्रकार का स्वरूप दिये बिना, अन्तर्कालीन सरकार भारतीय लोगों में स्वतन्त्रता का उद्‌बोधन नहीं कर सकेगी, जो कि आज अत्यधिक आवश्यक है। परन्तु

लार्ड पेथिक-लारेंस और आप दोनों ने ही इस प्रकार के वैधानिक परिवर्तन के मार्ग में आनेवाली कठिनाइयों की ओर ध्यान आकृष्ट किया है, यद्यपि इसके साथ ही आपने हमें यह विश्वास भी दिलाया है कि यदि कानूनी तौर पर नहीं तो कम-से-कम वास्तव में अन्तर्कालीन सरकार का स्वरूप सत्यशः एक राष्ट्रीय सरकार का ही होगा। ब्रिटिश सरकार की इस घोषणा के उपरान्त कि विधान-निर्माण का अन्तिम उत्तरदायित्व विधान-निर्मात्री परिषद् पर ही होगा और उसके द्वारा बनाया गया विधान बाध्य होगा, वर्किंग कमेटी यह अनुभव करती है कि भारतीय स्वतन्त्रता की स्वीकृति सन्निकट है। यह तो स्पष्ट ही है कि विधान-निर्मात्री परिषद् की अवधि-पर्यन्त जो अन्तर्कालीन सरकार कार्य करेगी, उसमें इस स्वीकृति का प्रतिबिम्ब अवश्य रहेगा। आपके साथ मेरी जो अन्तिम बातचीत हुई थी, उसमें आपने कहा था कि आपका यह इरादा है कि आप सरकार के एक वैधानिक अध्यक्ष की हैसियत से काम करेंगे और व्यावहारिक रूप से अन्तर्कालीन सरकार को स्वाधीनता प्राप्त उपनिवेशों के मंत्रिमंडलों जैसे ही अधिकार प्राप्त होंगे। परन्तु यह विषय इतना अधिक महत्वपूर्ण है कि इसे अनियमित रूप से हुए वार्तालाप पर छोड़ देना न तो आपके प्रति न्यायपूर्ण होगा और न ही कांग्रेस की कार्य-कारिणी के प्रति। कानून में कोई परिवर्त्तन किये बिना भी नियमित रूप से कोई ऐसा समझौता हो सकता है कि जिससे कांग्रेस की कार्य-कारिणी को यह विश्वास हो जाय कि अन्तर्कालीन सरकार व्यावहारिक रूप में एक स्वाधीनता प्राप्त उपनिवेश के मन्त्रिमंडल की भाँति ही कार्य करेगी।

केन्द्रीय असेम्बली के प्रति अन्तर्कालीन सरकार के उत्तरदायित्व के प्रश्न पर भी इसी भाँति सोचविचार किया जा सकता है। वर्तमान कानून के अन्तर्गत ऐसी शासन-परिषद् की व्यवस्था है जो केन्द्रीय व्यवस्थापिका परिषद् से सर्वथा स्वतन्त्र हो, लेकिन एक ऐसी परम्परा की नींव डाली जा सकती है जिसके परिणामस्वरूप शासन-परिषद् तभी तक प्रतिष्ठित रहसकती है जब तक कि उसे व्यवस्थापिका-परिषद् का विश्वाश प्राप्त रहे। अन्तर्कालीन सरकार के मन्त्रिमंडल के स्वरूप, आकार-प्रकार और संगठन इत्यादि के सम्बन्ध में अन्य विस्तृत बातें भी, जिनका उल्लेख आपके साथ हुई मेरी बात-चीत के दौरान में आया था, उपर्युक्त दोनों मूलभूत प्रश्नों के सन्तोषजनक निर्णय पर ही निर्भर करेंगी। यदि अन्तर्कालीन सरकार की स्थिति और उसके उत्तरदायित्व का प्रश्न सन्तोषजनकरूप से हल हो गया तो मुझे आशा है कि हम अन्य प्रश्न भी अविलम्ब सुलझा लेंगे। जैसा कि मैं आपको पहले भी लिख चुका हूं कि कांग्रेस-कार्यकारिणी की बैठक स्थगित हो चुकी है और ज्योंही आवश्यकता पड़ेगी उसे पुनः बुला लिया जायगा। मैं आप से अनुरोध करूंगा कि आप मुझे इस संबंध में अपने निर्णय और कार्य-क्रम की सूचना दीजिये जिससे कि तदनुसार वर्किंग कमेटी की बैठक बुलाई जा सके। मैं सोमवार को मसूरी के लिए प्रस्थान कर रहा हूं और आपसे प्रार्थना करूँगा कि आप मेरे पत्र का उत्तर वहीं दें।

आपका सच्चा,
(हस्ताक्षर) ए० के० आजाद

हिज एक्सेलेंसी मार्शल वाइकाउण्ट वेवल,
वाइसराय भवन,
नयी दिल्ली।

कांग्रेस के अध्यक्ष के नाम लार्ड वेवल का ३० मई, १९४६ का पत्र।

वाइसराय भवन,
नई दिल्ली।

प्रिय मौलाना साहब,

अन्तर्कालीन सरकार के सम्बन्ध में मुझे आपका २५ मई का पत्र मिल गया है।

२. हम अनेक अवसरों पर इस विषय पर बातचीत कर चुके हैं और आप तथा आपकी पार्टी अन्तर्कालीन सरकार के अधिकारों की सन्तोषजनक परिभाषा को जो महत्व देती है उसे मैं स्वीकार करता हूं और जिन कारणों से प्रेरित होकर आप इस प्रकार की परिभाषा की मांग करते हैं उनकी भी मैं सराहना करता हूं। मेरी कठिनाई यह है कि अत्यधिक उदारतापूर्ण इच्छाओं को भी यदि नियमित रूप से किसी दस्तावेज के रूप में प्रस्तुत किया जाय तो संभवतः इन्हें स्वीकार न किया जा सके।

३. निस्संदेह मैंने आप से यह नहीं कहा कि अन्तर्कालीन सरकार को वही अधिकार प्राप्त होंगे जो कि स्वाधीनताप्राप्त उपनिवेशों के मन्त्रिमंडलों को हैं। संपूर्ण वैधानिक स्थिति सर्वथा विभिन्न है। मैंने यह कहा था कि मुझे निश्चय है कि सम्राट् की सरकार नयी अन्तर्कालीन सरकार के प्रति वैसा ही घनिष्ठ बर्ताव करेगी जैसा कि किसी स्वाधीनताप्राप्त उपनिवेश की सरकार के प्रति।

४. सम्राट् की सरकार यह बात पहले ही कह चुकी है कि वह देश के दिन-प्रतिदिन के शासन-प्रबन्ध में भारतीय सरकार को यथासंभव अधिक-से-अधिक स्वतन्त्रता प्रदान करेगी, और शायद मेरे लिए आपको यह आश्वासन दिलाने की कोई आवश्यकता नहीं है कि मैं सम्राट् की सरकार के इस वचन का अक्षरशः पालन करने का इरादा रखता हूं।

५. मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि जिस भावना से प्रेरित होकर सरकार काम करेगी वह किसी नियमित दस्तावेज और आश्वासन की अपेक्षा कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। निस्सन्देह यदि आप मुझपर विश्वास करने को तैयार हैं तो हमलोग इस तरीके से एक-दूसरे के साथ सहयोग कर सकेंगे कि जिससे भारत को बाह्य नियन्त्रण से स्वतन्त्रता का अनुभव हो सकेगा और ज्योंही नया विधान बन जायगा हम पूर्ण स्वाधीनता के लिए अपने-आपको तैयार कर लेंगे।

६. मुझे हार्दिक रूप से यह आशा है कि कांग्रेस इन आश्वासनों को स्वीकार कर लेगी और ननुनच के बिना उन महान् समस्याओं को सुलझाने में हमारा हाथ बँटायेगी, जिनका हमें सामना करना पड़ रहा है।

७. जहां तक कार्य-क्रम का प्रश्न है, आपको ज्ञात ही होगा कि मुस्लिम लीग कौंसिल की बैठक ५ जून को होने जा रही है, जिसमें, जैसा कि हमें पता चला है, निश्चित निर्णय किया जायगा। इसलिए मेरा यह सुझाव है कि यदि आप शुक्रवार, ७ तारीख को दिल्ली में वर्किंग कमेटी की पुनः बैठक बुला लें तो संभव है कि आगामी सप्ताह के शुरू में ही सभी दल महत्वपूर्ण प्रश्नों के सम्बन्ध में कोई अन्तिम फैसला कर सकें।

आपका सच्चा,
(हस्ताक्षर) वेवल।

मौलाना अबुल कलाम आजाद।

श्री जिन्ना के नाम वाइसराय का ४ जून, १६४६ का पत्र।

(यह पत्र श्री जिन्ना की स्वीकृति से प्रकाशित किया जा रहा है।)

"आपने कल मुझे उस कार्रवाई के सम्बन्ध में, जो यदि एक दल-द्वारा प्रतिनिधि-मंडल के १६ मई वाले वक्तव्य की स्वीकृति और दूसरे के द्वारा अस्वीकृति की हालत में की जायगी—एक आश्वासन देने को कहा था।

"आपको प्रतिनिधि-मण्डल की ओर से निजी रूप से यह आश्वासन दे सकता हूँ कि हम दोनों दलों में से किसी भी एक दल से भेद-भाव-पूर्ण बर्ताव नहीं करना चाहते और यदि कोई दल उसे स्वीकार कर लेता है तो जहां तक परिस्थितियां अनुकूल होंगी हम वक्तव्य में उल्लिखित योजना के अनुसार कार्य को आगे बढ़ायेंगे; परन्तु हम आशा करते हैं कि दोनों ही दल उसे स्वीकार कर लेंगे।

"मैं आपका कृतज्ञ हूंगा यदि आप इस आश्वासन को सार्वजनिक रूप से प्रकट न होने दें। यदि आपके लिए अपनी कार्यकारिणी को यह बताना आवश्यक-प्रतीत होता है कि आपको यह आश्वासन दिया गया है तो मैं कृतज्ञ हूँगा, यदि आप कार्यकारिणी के सदस्यों के लिए इस शर्त की व्याख्या कर दें।"

वाइसराय के नाम श्री जिन्ना का १२ जून १६४६ का पत्र।

"मुझे आपका १२ जून का पत्र मिला।

"अपने ८ जून के पत्र द्वारा मैं आपको पहले ही सूचित कर चुका हूँ कि हमने मंत्रि-मंडल के वक्तव्य में निर्दिष्ट योजना की स्वीकृति का निर्णय आपके समता के फार्मूले के आधार पर ही किया था, जो कि लीग की वर्किङ्ग कमेटी और कौंसिल-द्वारा अन्तिम निर्णय पर पहुँचने में एक अत्यधिक महत्वपूर्ण कारण था।

"मुझे पता चला है कि कांग्रेस ने इस सम्बन्ध में अभी तक कोई फैसला नहीं किया है और मैं यह अनुभव करता हूँ कि जब तक वह कोई फैसला न कर ले तब तक अन्तर्कालीन सरकार के सदस्यों की सूची अथवा विभागों के वितरण के प्रश्न पर सोच-विचार करना उचित नहीं होगा। मैं आपकी इस बात से सहमत हूं कि महत्वपूर्ण विभागों का बँटवारा दोनों बड़े दलों के मध्य समान रूप से ही होना चाहिये और हमारी यह कोशिश होनी चाहिए कि इन विभागों के लिए हम यथासम्भव योग्य-से-योग्य व्यक्तियों को चुनें। लेकिन मेरी यह राय है कि जब तक मन्त्रि-मण्डल के १६ मई वाले वक्तव्य में निर्दिष्ट योजना के बारे में कांग्रेस कोई फैसला नहीं कर लेती तब तक कोई लाभ नहीं होगा।

"यदि आप किसी और विषय पर विचार-विनिमय करना चाहते हैं तो मैं अकेले ही आपसे मिलना पसन्द करूँगा।

पंडित जवाहरलाल नेहरू के नाम लार्ड वेवल का १२ जून, १६४६ का पत्र।

वाइसराय भवन,
नई दिल्ली,
१२ जून, १६४६

प्रिय पंडित नेहरू,

मैं श्री जिन्ना और आपसे अन्तर्कालीन सरकार के विभिन्न पदों पर नियुक्तियां करने के सम्बन्ध में सलाह-मशविरा करने के लिए अत्यधिक उत्सुक हूं। क्या आज शाम को ४ बजे आप

इस सम्बन्ध में मुझसे मिलने आ सकेंगे ?

'समता' अथवा ऐसे ही किसी और सिद्धान्त पर सोच-विचार करने का मेरा इरादा नहीं है, बल्कि मैं तो सारा विचार-विनिमय केवल 'हम सबों के समान उद्देश्य' पर केन्द्रित करना चाहता हूँ अर्थात् एक ऐसी अन्तरिम सरकार की स्थापना की जाय जिसमें दोनों बड़े दलों और कतिपय अल्प-संख्यकों के यथासम्भव योग्य-से-योग्य व्यक्ति शामिल हों और उन्हें कौन-कौन से विभाग सौंपे जायँ ।

मैं इसी प्रकार का एक पत्र श्री जिन्ना को भी भेज रहा हूँ ।

आपका सच्चा
(हस्ताक्षर) वेवल ।

पंडित जवाहरलाल नेहरू,

लार्ड वेवल के नाम पं० जवाहरलाल नेहरू का १२ जून, १९४६ का पत्र ।

१८, हार्डिंग एवेन्यू,
नई दिल्ली,
१२ जून, १९४६

प्रिय लार्ड वेवल,

मुझे खेद है कि आपके आज की तारीख के पत्र का उत्तर देने में मुझे कुछ विलम्ब हो गया है । अन्तर्कालीन सरकार की स्थापना के सम्बन्ध में आपने श्री जिन्ना और अपने साथ आज सायंकाल ५ बजे परामर्श करने का जो निमन्त्रण भेजा है, उससे मैं कुछ कठिनाई में पड़ गया हूँ । मुझे आपसे किसी समय भी मिलने में प्रसन्नता होगी, परन्तु ऐसे मामलों में हमारे अधिकृत प्रवक्ता स्वाभाविक रूप से हमारे अध्यक्ष मौलाना आजाद हैं । वे ही अधिकृत रूप से कोई बातचीत कर सकते हैं और कुछ कह सकते हैं, जो कि मैं नहीं कर सकता । इसलिए, उचित यही है कि किसी भी अधिकृत बातचीत में हमारी ओर से केवल वे ही शामिल हों । लेकिन चूंकि आपने मुझसे आने को कहा है, मैं अवश्य आऊँगा । फिर भी, मुझे आशा है कि आप मेरी स्थिति को अनुभव करेंगे और मैं केवल अनधिकृत रूप से ही कुछ कह सकूँगा, क्योंकि अधिकृत रूप से कुछ कहने का अधिकार तो हमारे प्रधान और वर्किङ्ग कमेटी को ही है ।

आपका सच्चा
(हस्ताक्षर) जे० नेहरू

हिज़ एक्सेलेन्सी
फील्ड मार्शल वाइकाउण्ट वेवल,
वाइसराय भवन, नई दिल्ली ।

वाइसराय भवन,
नई दिल्ली
१२ जून, १९४६

संख्या ५१२/४७
मेरे प्रिय पंडित नेहरू,

हिज़ एक्सेलेंसी ने मुझसे कहा है कि मैं आपसे यह निवेदन करूँ कि वे आपसे आज दोपहर बाद ३॥ बजे अथवा इसके बाद किसी और समय जैसे भी आपको सुविधाजनक हो, मिलकर प्रसन्न होंगे ।

यह मुलाकात केवल आप में और हिज़ एक्सेलेंसी में ही होगी।

मैं आपका बड़ा अनुगृहीत हूंगा यदि आप मुझे टेलीफोन-द्वारा यह सूचित कर सकेंगे कि क्या आप आज आ सकेंगे अथवा नहीं। मेरे टेलीफोन का नम्बर २११६ है।

आपका सच्चा,

पंडित जवाहर लाल नेहरू। (हस्ताक्षर) सी० डब्ल्यू० वी० रैन्किन।

लार्ड वेवल के नाम कांग्रेस के अध्यक्ष का १३ जून, १६४६ का पत्र।

२०, अकबर रोड,
नई दिल्ली,
१३ जून, १६४६।

प्रिय लार्ड वेवल,

आपके १२ जून के पत्र के लिए, जो कि मुझे अभी-अभी मिला है, और जिसमें आपने मेरे स्वास्थ्य के बारे में पूछा है, धन्यवाद। अब मैं बहुत-कुछ स्वस्थ हो गया हूँ।

आपके और पंडित जवाहरलाल नेहरू के मध्य जो बातचीत हुई है, उसका सारांश उन्होंने मेरी कमेटी को और मुझे बताया है। मेरी कमेटी को खेद है कि अस्थायी राष्ट्रीय सरकार बनाने के लिए आपने जो सुझाव प्रस्तुत किये हैं, उन्हें स्वीकार करने में वह असमर्थ है। इन अस्थायी प्रस्तावों में 'समता' के सिद्धान्त पर जोर दिया गया है, जिसका हमने सदैव विरोध किया है और अब तक पूर्णतः विरोध करते हैं। मंत्रिमंडल की संख्या के बारे में आपने जो सुझाव रखा है, उसके अनुसार हिन्दुओं, जिनमें परिगणित जातियां भी शामिल हैं, और मुस्लिम-लीग में 'समता' रखी गई है, जिसका अर्थ यह है कि सवर्ण हिन्दुओं की संख्या वास्तव में मुस्लिम लीग के मनोनीत प्रतिनिधियों की अपेक्षा कम रहेगी। इस प्रकार स्थिति उस स्थिति की अपेक्षा और भी अधिक खराब हो जायगी जो जून १६४५ में शिमला में थी अर्थात् आपकी तत्कालीन घोषणा के अनुसार सवर्ण हिन्दुओं और मुसलमानों में 'समता' थी और शेष अतिरिक्त सीटें परिगणित जातियों के हिन्दुओं को दी गई थीं। उस समय मुसलमानों की सीटें केवल मुस्लिम लीग के लिए ही सुरक्षित नहीं थीं, बल्कि उनमें गैर-लीगी मुसलमान भी लिए जा सकते थे। इस प्रकार वर्तमान प्रस्ताव के अनुसार हिन्दुओं के प्रति बड़ा अन्याय होता है और साथ ही गैर-लीगी मुसलमान भी खत्म हो जाते हैं। मेरी कमेटी ऐसा कोई भी प्रस्ताव मानने को तैयार नहीं। वास्तव में, जैसा कि हम बारंबार कह चुके हैं, हम किसी भी रूप में 'समता' के सिद्धान्त के विरुद्ध हैं।

'समता' के इस सिद्धान्त के अतिरिक्त हमें यह भी कहा गया है कि एक समझौता होगा जिसके अनुसार बड़े-बड़े सांप्रदायिक प्रश्नों का निर्णय पृथक्-पृथक् रूप से गुटों के वोट के आधार पर होगा। यद्यपि यह ठीक है कि हमने यह सिद्धान्त दीर्घकालीन व्यवस्था के रूप में स्वीकार किया है, फिर भी हमने यह बात दूसरे संरक्षणों के बदले में एक प्रभावशाली साधन के रूप में स्वीकार की थी। परन्तु आपके मौजूदा प्रस्ताव के अन्तर्गत 'समता' और इस प्रकार का समझौता दोनों ही चीजें कही गई हैं। इसके परिणाम-स्वरूप अस्थायी सरकार का संचालन प्रायः असंभव हो जायगा और निश्चित रूप से प्रतिरोध पैदा हो जायगा।

जैसा कि मैं आपसे कई बार कह चुका हूं, हमारी यह जोरदार राय है कि अस्थायी

सरकार में १५ सदस्य रहने चाहिएँ। देश का शासन-प्रबन्ध योग्यता और कुशलतापूर्वक चलाने के लिए और छोटे-छोटे अल्पसंख्यकों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्रदान करने के उद्देश्य से ऐसा करना नितान्त आवश्यक है। हम इस बात के लिए चिन्तित हैं कि इस प्रकार की सरकार में विभिन्न अल्पसंख्यकों के लिए गुंजाइश रहनी चाहिए। अस्थायी सरकार के पास अपेक्षाकृत अधिक और कठिन काम होने की संभावना है। आपके प्रस्ताव के अनुसार संदेशवहन-विभाग में रेलें, यातायात्, डाक, तार और हवाई विभाग सम्मिलित होंगे। हमारे लिए यह कल्पना करना कठिन है कि इन सभी को एक ही विभाग के अन्तर्गत किस प्रकार सम्मिलित किया जा सकता है। किसी भी समय ऐसा करना अत्यधिक अवांछनीय होगा। औद्योगिक झगड़ों और रेलों की हड़तालों की संभावना को ध्यान में रखते हुए यह प्रबन्ध सर्वथा गलत साबित होगा। हमारी यह भी राय है कि योजना-निर्माण-विभाग केन्द्र का एक नितान्त आवश्यक विभाग है। अतः हमारा मत है कि अस्थायी सरकार में १५ सदस्य अवश्यमेव रहने चाहिएँ।

विभागों का प्रस्तावित विभाजन हमें वांछनीय और न्यायसंगत नहीं प्रतीत होता।

मेरी कमेटी यह बात भी स्पष्ट कर देना चाहती है कि संयुक्त सरकार के सफलतापूर्वक संचालन के लिए कम-से-कम फिलहाल कोई समान दृष्टिकोण और कार्यक्रम अवश्य रहना चाहिए। इस प्रकार की सरकार की स्थापना के लिए जो तरीका अपनाया गया है, उसे दृष्टि में रखते हुए तो यह सवाल पैदा ही नहीं होता और मेरी समिति का यह विश्वास है कि इस तरह की संयुक्त सरकार कभी सफलतापूर्वक नहीं चल सकती।

कुछ और बातों के बारे में भी हम आपको लिखना चाहते थे, लेकिन जिन कारणों से हमें लिखने में विलम्ब हो गया है, उन्हें आप भलीभांति जानते हैं। इन अन्य बातों के बारे में मैं आपको बाद में लिखूंगा। इस समय यह पत्र लिखने का मेरा प्रधान उद्देश्य आपको अविलम्ब अपनी उस प्रतिक्रिया से अवगत करा देना है, जो आप-द्वारा प्रस्तुत किये गये आज के अस्थायी प्रस्तावों के कारण हमारे ऊपर हुई है।

आपका सच्चा,
(हस्ताक्षर) ए० के० आज़ाद।

हिज एक्सेलेंसी फील्ड-मार्शल,
वाइकाउण्ट वेवल,
वाइसराय भवन,
नई दिल्ली।

लार्ड वेवल के नाम कांग्रेस के अध्यक्ष का १४ जून, १९४६ का पत्र।

२०, अकबर रोड,
नई दिल्ली,
१४ जून, १९४६।

गोपनीय

प्रिय लार्ड वेवल,

आज हमारे मध्य जो बातचीत हुई है, उसके दौरान में आपने जिक्र किया था कि अस्थायी सरकार के लिए मुस्लिम लीग की ओर से जो व्यक्ति नामजद किये गए हैं, उनमें उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्त के एक ऐसे सज्जन भी शामिल हैं, जो हाल में प्रान्तीय निर्वाचन में हार

गए थे। आपने यह बात गोपनीय रूप से कही थी और हम निस्संदेह उसे गोपनीय ही रखेंगे। परन्तु मैं अनुभव करता हूं कि मैं आपको यह अवश्य सूचित कर दूँ, जिससे कि किसी गलत-फहमी की गुंजाइश न रहे कि हम इस तरह का कोई भी नाम आपत्तिजनक समझेंगे। हमारी आपत्ति वैयक्तिक नहीं है, लेकिन हम यह अनुभव करते हैं कि यह नाम केवल राजनीतिक कारणों से प्रेरित होकर प्रस्तुत किया गया है और हम इस तरह की कोई भी चीज़ मानने के लिए तैयार नहीं।

आपका सच्चा,
(हस्ताक्षर) ए० के० आज़ाद।

हिज एक्सेलेंसी फील्ड मार्शल
वाइकाउण्ट, वेवल,
वाइसराय भवन,
नई दिल्ली।

कांग्रेस के प्रधान के नाम लार्ड वेवल का १४ जून १९४६ का पत्र।

वाइसराय भवन,
नई दिल्ली,
१४ जून, १९४६।

संख्या ५९२—९७

गोपनीय

मेरे प्रिय मौलाना साहब,

मेरा यह पत्र आपके १४ जून के उस गोपनीय पत्र के उत्तर में है, जिसमें मुस्लिम लीग-द्वारा मनोनीत व्यक्तियों में से एक का उल्लेख था।

मुझे खेद है कि मैं कांग्रेस-द्वारा मुस्लिम लीग के मनोनीत व्यक्तियों पर आपत्ति करने के अधिकार को उसी प्रकार नहीं मान सकता, जिस प्रकार मैं दूसरे पक्ष-द्वारा उठाई गई इसी प्रकार की आपत्ति को नहीं मानता। कसौटी का आधार योग्यता होनी चाहिये।

आपका सच्चा,
(हस्ताक्षर) वेवल

मौलाना अबुल कलाम आजाद।

लार्ड वेवल के नाम कांग्रेस के प्रधान का पत्र

२० अकबर रोड,
नई दिल्ली,
१४ जून, १९६६

प्रिय लार्ड वेवल,

मैंने अपने कल के पत्र में एक और पत्र लिखने का वायदा किया था। वह पत्र मैं अब लिख रहा हूँ।

२४ मई का वर्किङ्ग कमेटी का प्रस्ताव मैं आपको भेज चुका हूं। उस प्रस्ताव में हमने ब्रिटिश मंत्रिमंडल के १६ मई के वक्तव्य में और ब्रिटिश सरकार की ओर से जारी किये गए आपके वक्तव्य पर अपनी प्रतिक्रिया का उल्लेख किया था। हमने उसमें बताया था कि हमारी दृष्टि में उस वक्तव्य में क्या-क्या त्रुटियां रह गई हैं और कौन-कौन-सी बातें छूट गई हैं। इसके अलावा हमने उस वक्तव्य की कुछ धाराओं की अपनी व्याख्या का भी जिक्र किया था। बाद में

आपने और मंत्रि-प्रतिनिधिमंडल ने जो वक्तव्य जारी किया था, उसमें हमारे दृष्टिकोण को स्वीकार नहीं किया गया।

आप जानते हैं और हमने इस पर बारंबार जोर दिया है कि हमारा तात्कालिक उद्देश्य भारत की स्वाधीनता रहा है और है। हमें इसी मापदंड से हरेक चीज़ को नापना-तौलना है। हमने कहा था कि यद्यपि इस समय कोई कानूनी परिवर्तन करना संभव न हो सकेगा, फिर भी व्यावहारिक रूप में स्वाधीनता स्वीकार की जा सकती है। यह बात स्वीकार नहीं की गई।

मेरे नाम ३० मई, १९४६ के अपने पत्र में आपने बताया था कि आपकी राय में अन्तरिम सरकार की स्थिति और अधिकार क्या होंगे। यह चीज भी हमारे अभीष्ट से बहुत कम है। फिर भी, आपके पत्र की मैत्रीपूर्ण ध्वनि और कोई तरीका ढूंढ़ निकालने की अपनी इच्छा के कारण हमने इन मामलों में आपका आश्वासन मान लिया। हमने यह निर्णय भी किया कि यद्यपि आपके मई १६ के वक्तव्य की कितनी ही धाराएं असन्तोषजनक हैं, फिर भी हम अपनी व्याख्या के अनुसार तथा अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उस योजना पर अमल करने की कोशिश करेंगे।

इस वक्तव्य की कुछ धाराओं, विशेषकर गुट बनाने के सम्बन्ध में जनता के एक बड़े भाग में जो बड़ा क्षेत्र है, उससे निःसन्देह आप भलीभांति परिचित हैं। सीमाप्रांत और आसाम ने अनिवार्य गुटबन्दी के बारे में काफी जोरदार शब्दों में अपना विरोध प्रकट किया है। इन प्रस्तावों के कारण सिक्ख क्षुब्ध हैं और यह अनुभव करते हैं कि उन्हें बिल्कुल अलग छोड़ दिया गया है और वे काफी जोरदार रूप में विरोध कर रहे हैं। पंजाब में तो वे पहले से ही अल्पसंख्या में हैं। जहां तक संख्या का सम्बन्ध है 'ब' गुट में उनकी स्थिति और भी अधिक शोचनीय हो जाती है। हमने इन सभी आपत्तियों की कद्र की, क्योंकि विशेषरूप से हमें भी इन बातों पर आपत्तियां हैं। फिर भी हमें आशा थी कि 'गुट-निर्माण से सम्बन्ध रखनेवाली धाराओं का हमने जो अर्थ लगाया है—और जिसे हम अब तक ठीक समझते हैं, क्योंकि यदि उनका कोई अर्थ लगाया जाय तो प्रान्तीय स्वायत्त शासन के आधारभूत सिद्धान्त को नुकसान पहुँचता है—उससे शायद हम कुछ प्रत्यक्ष कठिनाइयों पर काबू पा सकें।

परन्तु दो कठिनाइयां फिर भी बनी रहीं, जिनका हल मुश्किल था और हमें आशा थी कि आप उन्हें दूर कर देंगे। इनमें से एक का सम्बन्ध प्रान्तीय-धारासभाओं के यूरोपियन सदस्यों की उस कार्रवाई से था जो शायद वे विधान-परिषद् के चुनाव के सम्बन्ध में कर सकते थे। हमें अंग्रेजों अथवा यूरोपियनों के प्रति वैयक्तिक रूप से कोई आपत्ति नहीं है, परन्तु हमें यह सख्त आपत्ति है कि ऐसे व्यक्ति, जो विदेशी हैं और भारत के निवासी नहीं हैं और जो यह दावा करते हैं कि वे शासक-जाति से हैं, विधान-परिषद् के चुनावों में भाग लें और उन्हें प्रभावित करें। मंत्रि-प्रतिनिधि-मंडल के वक्तव्य में यह बात स्पष्ट रूप से कही गई है कि भारत के भावी विधान का निर्णय स्वयं भारतीय ही करेंगे। १६ मई के वक्तव्य का आधारभूत सिद्धान्त यह था कि १० लाख व्यक्तियों का एक प्रतिनिधि विधान-परिषद् में चुना जायगा। इस सिद्धान्त के आधार पर उड़ीसा के १,४६,००० मुसलमानों और १,८०,००० हिन्दुओं तथा उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्त के २८,००० सिक्खों को विधान-परिषद् में अपना कोई प्रतिनिधि भेजने का अधिकार नहीं दिया गया है। बंगाल और आसाम में यूरोपियनों की संख्या केवल २१,००० है, लेकिन उनके प्रतिनिधियों को यह अधिकार दिया गया है कि वे विधान-परिषद् के ३४ सदस्यों में ७ को स्वयं अपने ही वोट से चुन सकते हैं, इस प्रकार उन्हें ७० लाख व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करने का

अधिकार प्राप्त हो जाता है। प्रान्तीय धारासभाओं में भी वे अपने पृथक् निर्वाचक-मंडल-द्वारा चुने जायँगे और उन्हें विवेकहीन आधार पर अनुपात से अधिक प्रतिनिधित्व दिया गया है। विधान-परिषद् में यूरोपियनों को यह प्रतिनिधित्व अ-मुस्लिमों के हितों को क्षति पहुँचाकर दिया गया है, जोकि मुख्यतः हिन्दू हैं और जो बंगाल में पहले ही अल्पसंख्यक हैं। इस प्रकार किसी अल्पसंख्यक को नुकसान पहुंचना सरासर गलती है। एक सैद्धान्तिक प्रश्न के अलावा, व्यावहारिक रूप से भी इसका अत्यधिक महत्व है और उसका प्रभाव बंगाल और आसाम के भविष्य पर पड़ सकता है। कांग्रेस की कार्यसमिति इसे अत्यधिक महत्वपूर्ण समझती है। हम यह बात भी कह देना चाहते हैं कि यदि यूरोपियन स्वयं चुनाव में खड़े न भी हों और केवल वोट ही डालें, फिर भी परिणाम उतना ही खराब होगा। मंत्रि-मिशन ने हमें सूचित किया है कि वे हमें इससे अधिक और कोई आश्वासन नहीं दे सकते कि वे अपनी ओर से यूरोपियनों को समझाने की कोशिश करेंगे, लेकिन वे यह आश्वासन नहीं दे सकते कि यूरोपियन सदस्य उस अधिकार का प्रयोग ही नहीं करेंगे। जैसा कि हमें परामर्श दिया गया है,जो उन्हें १६ मई के वक्तव्य के अन्तर्गत प्राप्त नहीं है। लेकिन यदि प्रतिनिधि-मंडल का विभिन्न मत है, जैसा कि स्पष्ट है, तो हम विधान-परिषद् में यह कानूनी लड़ाई नहीं लड़ सकते कि उन्हें परिषद् में शामिल न होने दिया जाय। इसलिए, इस सम्बन्ध में एक स्पष्ट घोषणा की आवश्यकता है कि वे विधान-परिषद् के निर्वाचन में मतदाताओं अथवा उम्मेदवारों के रूप में कोई भाग नहीं लेंगे। जहां तक अधिकारों का प्रश्न है, हम किसी की कृपादृष्टि अथवा सद्भावना पर निर्भर नहीं रह सकते।

हमारी दृष्टि में प्रस्तावित अस्थायी राष्ट्रीय सरकार में 'समता' का प्रश्न भी उतना ही अधिक महत्वपूर्ण है। इस विषय में, मैं आपको पहले ही लिख चुका हूं। हमने इस 'समता' का अथवा इसे चाहे कोई संज्ञा दी जाय, सदैव विरोध किया है। हम इसे बड़ी खतरनाक परिपाटी समझते हैं, क्योंकि इससे एकता के बजाय निरन्तर संघर्ष और कठिनाइयां पैदा होंगी। इसके परिणामस्वरूप हमारा भविष्य विषमय बन सकता है। जैसे कि भूतकालीन प्रत्येक पृथक्वादी कार्रवाई के कारण हमारा सार्वजनिक जीवन विषपूर्ण बना रहा है। हम से कहा गया है कि यह एक अस्थायी व्यवस्था है और इसे एक मिसाल नहीं समझना चाहिये, लेकिन इस तरह के किसी भी आश्वासन से बुराई को नहीं रोका जा सकता। हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि इस प्रकार की किसी भी व्यवस्था का तात्कालिक परिणाम भी हानिकारक साबित होगा।

यदि यूरोपियनों के वोट और 'समता' के सिद्धान्त के सम्बन्ध में यही स्थिति ठीक रही तो, मेरी कार्यसमिति को अनिच्छापूर्वक आपको यह सूचित करना होगा कि वह आपको भावी कठिन कार्यों में सहायता देने में असमर्थ होगी।

आपसे आज हमारी जो बातचीत हुई है, उससे आधारभूत स्थिति में कोई बड़ा परिवर्तन नहीं होता। हमने यह बात भी ध्यान में रख ली है कि आपके नये सुझाव के अनुसार प्रस्तावित महिला सदस्य की जगह शायद किसी हिन्दू को ले लिया जाय और इस प्रकार परिगणित जातियों के प्रतिनिधियों समेत हिन्दू सदस्यों की संख्या छः तक पहुँच जायगी। हमें खेद है कि उसमें महिला सदस्य नहीं रहेगी, लेकिन इसके अलावा भी नये प्रस्तावों में शिमला का १६४५ का पुराना फार्मूला कायम रखा गया है, जिसके अनुसार सवर्ण हिन्दुओं और मुसलमानों के मध्य एकता बनी रहेगी। अगर केवल यह होगा कि इस बार मुसलमानों से अभिप्राय मुस्लिम

लीग-द्वारा मनोनीति प्रतिनिधियों से है। हम यह प्रस्ताव स्वीकार करने में असमर्थ हैं और हमारा अभी तक यही दृढ़ विश्वास है कि अस्थायी सरकार में कम-से-कम १५ सदस्य अवश्य होने चाहिएं और उनके निर्वाचन से समान प्रतिनिधित्व का कोई खयाल नहीं रहना चाहिये।

आपका सच्चा,
(हस्ताक्षर) ए० के० आजाद

हिजएक्सेलेंसी, फील्ड-मार्शल वाइकाइण्ट,
वेवल,
वाइसराय भवन, नई दिल्ली।

कांग्रेस के अध्यक्ष के नाम लार्ड वेवल का १५ जून, १६४६ का पत्र

वाइसराय भवन,
नई दिल्ली।
१५ जून, १६४६।

संख्या ५६२—४७
मेरे प्रिय मौलाना साहेब,

आपका १४ जून का पत्र मिला। मैं इसका विस्तृत उत्तर आज किसी समय दूंगा।

इस बीच आपके पत्र के अन्तिम पैरे से मैं यह अनुमान लगाता हूँ कि अन्तरिम सरकार की स्थापना के सम्बन्ध में, मैं दोनों बड़े दलों में समझौता कराने का जो प्रयत्न कर रहा था, वह असफल रहा है। इसलिए मंत्रि-प्रतिनिधिमंडल और मैंने कल एक वक्तव्य जारी करने का फैसला किया है जिसमें यह बताया जायगा कि हम क्या कार्रवाई करना चाहते हैं और हम प्रकाशन से पूर्व उसकी एक प्रति आपके पास भेज देंगे।

आपका सच्चा,
(हस्ताक्षर) वेवल।

मौलाना अबुल कलाम आजाद।

कांग्रेस के अध्यक्ष के नाम लार्ड वेवल का १५ जून, १६४६ का पत्र।

वाइसराय भवन,
नई दिल्ली,
१५ जून, १६४६।

संख्या ५६२—४७
मेरे प्रिय मौलाना साहेब,

आपका १४ जून का पत्र मिला। आपने उसमें ऐसे विषयों का उल्लेख किया है, जिन पर हम पहले ही काफी विचार-विनिमय कर चुके हैं।

भारत की स्वाधीनता को अग्रसर करने में हम यथासंभव हर चेष्टा रहे हैं। परन्तु जैसा कि हम पहले भी कह चुके हैं, सबसे पहली बात यह है कि भारत के लोगों-द्वारा एक नया विधान बनाया जाय।

'गुटबन्दी' के सिद्धान्त के बारे में आपकी जो आपत्तियां हैं, उनसे प्रतिनिधि-मंडल और मैं भलीभांति परिचित हैं। परन्तु, मैं यह बात स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि १६ मई के वक्तव्य के अनुसार 'गुटबन्दी' अनिवार्य नहीं है। इसका निर्णय विभागों (सेक्शनों) में सामूहिक

रूप से शामिल होनेवाले सम्बद्ध प्रान्तों के निर्वाचित प्रतिनिधियों की मर्जी पर छोड़ दिया गया है। केवल एक धारा यह रखी गई है कि कतिपय प्रान्तों के प्रतिनिधि-विभागों में शामिल हों जिससे वे यह फैसला कर सकें कि क्या वे गुट बनाना चाहते हैं अथवा नहीं। जब यह हो जायगा तब भी अलग-अलग प्रान्तों को यह स्वतंत्रता रहेगी कि यदि वे चाहें तो सम्बद्ध गुट में से अलग हो जायँ।

यूरोपियनों से सम्बन्ध रखनेवाली कठिनाई को मैं स्वीकार करता हूं। वे बड़ी कठिन परिस्थिति में हैं, हालांकि उनका कोई दोष नहीं है। मुझे अब भी आशा है कि इस समस्या का कोई सन्तोष-जनक हल निकल आयेगा।

जहां तक अन्तर्कालीन सरकार के निर्माण के सम्बन्ध में हमारे विचार-विनिमय का प्रश्न है, उसका आधार जातियां न होकर राजनीतिक दल ही हैं। मुझे पता चला है कि इस बात को अब अपेक्षाकृत पसन्द किया जा रहा है, जैसा कि प्रथम शिमला-सम्मेलन के समय था। प्रस्तावित अन्तर्कालीन सरकार में मेरे अलावा १३ अन्य सदस्य रहेंगे, जिसमें से ६ कांग्रेसजन और ५ मुस्लिम लीगी होंगे। मेरी समझ में नहीं आता कि उसे आप 'समता' कैसे कहेंगे। न ही उसमें हिन्दुओं और मुसलमानों की संख्या में समता होगी, क्योंकि उसमें से ६ हिन्दू और ५ मुसलमान होंगे।

इस अन्तिम समय में भी मैं यही आशा करता हूं कि अब कांग्रेस उस वक्तव्य को स्वीकार कर लेगी और अन्तर्कालीन सरकार में शामिल होने पर राजी हो जायगी।

आपका सच्चा
(हस्ताक्षर) वेवल

मौलाना अबुल कलाम आजाद,

लार्ड वेवल के नाम कांग्रेस के अध्यक्ष का १६ जून, १९४६ का पत्र।

२० अकबर रोड,
नई दिल्ली,
१६ जून, १९४६

प्रिय लार्ड वेवल,

मुझे आपके १५ जून के दोनों पत्र मिल गये हैं।

गुटबन्दी के बारे में आपने जो कुछ लिखा है, उसे मैंने ध्यान में रख लिया है। इस सम्बन्ध में हमने जो व्याख्या की है, हम उसी पर दृढ़ हैं।

जहां तक यूरोपियनों का सम्बन्ध है, हमारी स्पष्ट राय है कि अन्य बातों के अलावा १६ मई वाले वक्तव्य की कानूनी व्याख्या के आधार पर भी उन्हें विधान परिषद् के चुनावों में भाग लेने का अधिकार नहीं है। मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आपको आशा है कि यह समस्या सन्तोषजनक रूप से सुलझ जायगी।

हमने अपने पत्र-द्वारा और अपनी बातचीत के दौरान में यह स्पष्ट रूप से बताने का प्रयत्न किया है कि किसी प्रकार के भी समान प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में हमारी क्या स्थिति है। आपको स्मरण होगा कि समान-प्रतिनिधित्व का उल्लेख और उस पर विचार विनिमय प्रथम शिमला-सम्मेलन के अवसर पर किया गया था। वह समान प्रतिनिधित्व ठीक वैसा ही था जैसा कि अब आप कह रहे हैं अर्थात् सवर्ण हिन्दुओं और मुसलमानों को समान रूप से प्रतिनिधित्व मिले। उस

समय की परिस्थितियों और लड़ाई के दबाव के कारण हम इसे स्वीकार करने को तैयार थे; किन्तु केवल उसी अवसर के लिए। इसे हमें कोई मिसाल नहीं बनाना था। इसके अलावा इसमें एक शर्त यह थी कि कम-से-कम एक राष्ट्रीय मुसलमान अवश्य लिया जाय। अब परिस्थिति सर्वथा बदल गई है और हमें इस प्रश्न पर और रूप में सोच-विचार करना है अर्थात् आसन्न स्वाधीनता और विधान-परिषद् की दृष्टि से। जैसा कि हम आपको लिख चुके हैं, हम वर्तमान परिस्थिति में इस प्रकार के समान प्रतिनिधित्व को न्यायसंगत नहीं समझते और यह खयाल करते हैं कि इससे कठिनाइयां पैदा हो जाने की सम्भावना है। १६ मई के वक्तव्य में आपके द्वारा प्रस्तावित संपूर्ण योजना किसी प्रकार के भी अनुपात से अधिक प्रतिनिधित्व के अभाव पर आधारित है। इतने पर भी, प्रस्तावित अस्थायी सरकार में अन्य व्यापक साम्प्रदायिक संरक्षणों के अलावा अनुपात से अधिक प्रतिनिधित्व प्रदान करने की बात विद्यमान है।

हमने किसी सन्तोषजनक समझौते पर पहुँचने की भरसक चेष्टा की है और इसे आगे भी जारी रखेंगे और निराश नहीं होंगे। परन्तु ऐसा समझौता तभी दीर्घकाल तक टिक सकता है, अगर उसका आधार दृढ़ हो। जहां तक १६ मई के वक्तव्य का सम्बन्ध है, जैसा कि हमने आपको लिखा था, हमारी मुख्य कठिनाई यूरोपियनों के वोट हैं। अगर यह मामला सुलझ जाय, जैसा कि अब सम्भव प्रतीत होता है, तो फिर यह कठिनाई भी दूर हो जाती है।

अब रही दूसरी कठिनाई, जिसका सम्बन्ध अस्थायी सरकार से सम्बन्ध रखनेवाले प्रस्तावों से है जिन पर हमें उस वक्तव्य के साथ-साथ सोच-विचार करना है। उन्हें हम एक दूसरे से पृथक् नहीं कर सकते। अब तक हमने ये प्रस्ताव स्वीकार नहीं किये, लेकिन यदि उनके सम्बन्ध में कोई सन्तोषजनक समझौता हो जाय तो हम यह भार उठाने में समर्थ हो सकेंगे।

आपका सच्चा

(हस्ताक्षर) ए० के० आजाद

हिज़ एक्सेलेंसी फील्ड मार्शल वाइकाउण्ट वेवल,

वाइसराय भवन, नई दिल्ली।

इस पत्र-व्यवहार से उन प्रस्तावों पर प्रकाश पड़ता है जो वाइसराय ने अन्तर्कालीन राष्ट्रीय सरकार में कांग्रेस का सहयोग प्राप्त करने के उद्देश्य से समय समय पर प्रस्तुत किये थे। कांग्रेस की कार्यकारिणी ने ये सभी प्रस्ताव नामंजूर कर दिये। ये प्रत्यक्ष रूप से कांग्रेस और छोटे-छोटे अल्पसंख्यकों के लिए अनुचित और अन्यायपूर्ण थे।

एक अन्तर्कालीन सरकार बनाने के लिए जब कोई स्वीकृत आधार ढूंढने की चेष्टा विफल हो गई तो वाइसराय और मंत्रि-प्रतिनिधिमंडल ने १६ जून को एक वक्तव्य जारी किया, जिसमें उन्होंने एक अन्तर्कालीन सरकार की स्थापना के सम्बन्ध में अपने सुझाव प्रस्तुत किये।

मंत्रि-प्रतिनिधिमंडल और हिज एक्सेलेंसी वाइसराय का १६ जून, १९४६का वक्तव्य

१. इधर कुछ समय से श्रीमान् वाइसराय मंत्रि-प्रतिनिधिमंडल के सदस्यों के परामर्श से एक ऐसी संयुक्त सरकार बनाने की सम्भावना के सम्बन्ध में प्रयत्न करते रहे हैं, जिसकी रचना दोनों प्रमुख दलों तथा कतिपय अल्पसंख्यक समुदायों में से की गयी हो। इस सम्बन्ध में हुई वार्ता से उन कठिनाइयों पर प्रकाश पड़ा, जो दोनों दलों के समक्ष उपर्युक्त सरकार की रचना के सम्बन्ध में किसी स्वीकृत आधार पर पहुंचने के सम्बन्ध में वर्तमान हैं।

२. इन कठिनाइयों तथा उन पर विजय पाने के लिए दोनों दलों ने जो प्रयत्न किये हैं

वाइसराय तथा प्रतिनिधि-मंडल उनका आदर करते हैं। परन्तु साथ ही वे यह भी अनुभव करते हैं कि इस वाद-विवाद को अधिक समय तक जारी रखने से कोई लाभ नहीं हो सकता। वास्तव में इस समय इस बात की अत्यन्त आवश्यकता है कि हमारे सामने जो भारी तथा महत्त्वपूर्ण कार्य हैं उसे करने के लिए शीघ्र ही एक मजबूत तथा प्रतिनिधित्वपूर्ण-अन्तर्कालीन सरकार की स्थापना कर दी जाय।

सज्जनों के नाम

३. इसलिए इस आधार पर कि १६ मई के वक्तव्य के अनुसार विधान-निर्माण-कार्य प्रारम्भ होगा, श्रीमान् वाइसराय अंतर्कालीन सरकार के सदस्यों के रूप में काम करने के लिए निम्न सज्जनों के नाम निमंत्रण भेज रहे हैं:—

सरदार बलदेवसिंह
सर एन० पी० इंजीनियर
श्री जगजीवनराम
पं० जवाहरलाल नेहरू
श्री एम० ए० जिन्ना
नवाबजादा लियाकत अली खां
श्री एच० के० मेहताब
डा० जान मथाई
नवाब मोहम्मद इस्माईल खां
ख्वाजा सर नजीमुद्दीन
सरदार अब्दुररर्ब निश्तर
श्री सी० राजगोपालाचारी
डा० राजेन्द्र प्रसाद
सरदार वल्लभभाई पटेल

यदि निमंत्रित व्यक्तियों में से कोई निजी कारणों से निमंत्रण स्वीकार करने में असमर्थ हो तो श्रीमान् वाइसराय परामर्श के उपरान्त उसके स्थान पर किसी दूसरे व्यक्ति को निमंत्रित करेंगे।

४. वाइसराय विभिन्न विभागों के वितरण की व्यवस्था दोनों प्रमुख दलों के नेताओं के परामर्श से करेंगे।

५. अंतर्कालीन सरकार की उपर्युक्त रचना अथवा अनुपात किसी अन्य साम्प्रदायिक समस्या के हल के लिए परम्परा के रूप में नहीं माना जायगा। यह तो केवल वर्तमान कठिनाई को हल करने तथा यथासम्भव सर्वोत्तम संयुक्त दलीय सरकार की स्थापना कर सकने के लिए एक मार्ग प्रस्तुत किया गया है।

६. वाइसराय तथा मंत्रि-प्रतिनिधि-मंडल का विश्वास है कि सभी सम्प्रदायों के भारतीय इस मामले का शीघ्रता से निबटारा हो जाने के इच्छुक हैं, जिससे कि विधान-निर्माण का कार्य प्रारम्भ हो सके और मध्यवर्ती काल में भारत का शासन अधिक उत्तमता से किया जा सके।

७. इसलिए उन्हें आशा है कि सभी दल, विशेषतः दोनों प्रमुख दल, वर्तमान कठिनाइयों को हल करने के लिए इस सुझाव को स्वीकार करेंगे और अन्तर्कालीन सरकार को सफलता पूर्वक चलाने

के हेतु अपना सहयोग देंगे। यदि यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया तो वाइसराय महोदय का लक्ष्य प्रायः २६ जून को नई सरकार की स्थापना करने का होगा।

८. दोनों प्रमुख दलों अथवा उनमें से किसी एक के द्वारा अन्तर्कालीन सरकार में निर्दिष्ट आधार पर सम्मिलित होने की अनिच्छा प्रकट करने पर वाइसराय का इरादा है कि वे अन्तर्कालीन संयुक्त दलीय सरकार-निर्माण के कार्य में अग्रसर रहें। जो लोग १६ मई, १९४६ के वक्तव्य को स्वीकार करते हैं यह सरकार उनका यथासम्भव अधिक-से-अधिक प्रतिनिधित्व करेगी।

९. वाइसराय प्रान्तीय गवर्नरों को भी आदेश दे रहे हैं कि वे तुरन्त ही प्रान्तीय असेम्बलियों के अधिवेशन बुलायें और १६ मई, १९४६ के वक्तव्य के अनुसार विधान-निर्मात्री परिषद् स्थापित करने के लिए आवश्यक चुनाव आरम्भ करें।

वाइसराय ने निम्नलिखित पत्र के साथ इस वक्तव्य की एक अग्रिम प्रति कांग्रेस के अध्यक्ष के पास भेज दी।

संख्या ५९२/४७.

वाइसराय भवन,
नयी दिल्ली,
१६ जून, १९४६ ई०

प्रिय मौलाना साहब,

इसके साथ मैं उस वक्तव्य की प्रति भेज रहा हूँ, जो, जैसा कि मेरे कल के पत्र में निर्देश किया गया था, आज शाम को ४ बजे प्रकाशित कर दिया जायगा।

जैसा कि वक्तव्य से प्रकट है, मंत्रि-प्रतिनिधि-मंडल तथा मैं उन कठिनाइयों से पूर्णतः परिचित हैं जिनके कारण अन्तर्कालीन सरकार की रचना के सम्बन्ध में समझौता नहीं हो सका है। दो प्रमुख दलों तथा अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधियों के बीच व्यावहारिक साझेदारी की आशा को हम छोड़ने के लिए तैयार नहीं हैं। इसलिए विभिन्न विरोधी दावों तथा योग्य और प्रतिनिधि-पूर्ण शासकों की सरकार स्थापित करने की आवश्यकता पर ध्यान देते हुए, हमने एक व्यावहारिक व्यवस्था पर पहुंचने का भरसक प्रयत्न किया है। हमें आशा है कि देश के राजनीतिक दल उस आधार पर, जो हमारे नये वक्तव्य में प्रकट किया गया है, देश के शासन में अपना हिस्सा बँटायेंगे। हमें निश्चय है कि हम आप पर तथा आपकी कार्यकारिणी समिति पर यह भरोसा रख सकते हैं कि आप व्यापक प्रश्नों और सामूहिक रूप से देश की तात्कालिक आवश्यकताओं की ओर ध्यान देंगे और इन प्रस्तावों पर पारस्परिक आदान-प्रदान की भावना से विचार करेंगे।

आपका सच्चा,
(हस्ताक्षर) वेवल

कार्यकारिणी ने १६ जून के इस वक्तव्य पर खूब ध्यानपूर्वक सोच-विचार किया। उसने वक्तव्य के स्वेच्छिकृत स्वरूप की सराहना की, लेकिन अन्तर्कालीन सरकार की स्थापना के बारे में जो ठोस प्रस्ताव पेश किया गया था, उसमें बहुत बड़ी और महत्वपूर्ण त्रुटियां रह गई थीं। कार्यकारिणी की यह कोशिश थी कि यदि हो सके तो उन्हें दूर कर दिया जाय और कांग्रेस के लिए अन्तर्कालीन सरकार में सम्मिलित होने का द्वार खुल जाय। १६ जून के वक्तव्य के सम्बन्ध में कांग्रेस के अध्यक्ष और वाइसराय में हुआ पत्र-व्यवहार नीचे दिया जाता है।

लार्ड वेवल के नाम कांग्रेस के अध्यक्ष का १८ जून, १९४६ का पत्र ।

२० अकबर रोड,
नई दिल्ली,
१८ जून, १९४६ ।

प्रिय लार्ड वेवल,

मैंने आप से वायदा किया था कि अगर मेरी समिति किसी निर्णय पर पहुँची तो मैं आज सायंकाल आपको पत्र लिखूंगा । समिति की बैठक आज दोपहर-बाद कई घण्टे तक होती रही। अपने सहयोगी खान अब्दुलगफ्फ़ार खां की अनुपस्थिति में, जो कि कल सुबह यहां आनेवाले हैं, कार्यसमिति ने अपनी बैठक कल तक स्थगित करने का फैसला किया है। इसलिए मैं आज सायंकाल तक आपको किसी भी निर्णय के बारे में सूचित करने में असमर्थ हूँ । ज्योंही मेरी समिति किसी निर्णय पर पहुँचेगी, मैं आपको सूचित कर दूंगा ।

आपका सच्चा,
(हस्ताक्षर) ए० के० आज़ाद

हिज एक्सेलेंसी,
फील्ड-मार्शल वाइकाउण्ट वेवल,
वाइसराय भवन, नई दिल्ली ।

लार्ड वेवल के नाम श्री जिन्ना का १८ जून, १९४६ का पत्र ।

आपके साथ आज सायंकाल मेरी जो बातचीत हुई है, उसमें आपने मुझे बताया था कि कांग्रेस उन सवर्ण हिन्दुओं में से एक की जगह, जिन्हें आपने अन्तरिम सरकार में शामिल होने का निमंत्रण दिया है, डा० जाकिर हुसेन को रखना चाहती है, यद्यपि आपने यह आशा प्रकट की थी कि वह ऐसा नहीं करेगी । मैंने आपको बता दिया था, कि इस बारे में मुसलमानों की प्रतिक्रिया बड़ी खराब होगी और मुस्लिम लीग, किसी लीगी मुसलमान के अतिरिक्त आपके द्वारा मनोनीत किसी और मुसलमान का नाम कभी स्वीकार नहीं करेगी । मैंने यह मामला अपनी वर्किंग कमेटी के सामने रखा था और उसने सर्वसम्मति से उक्त राय का समर्थन किया है और वह इसे अत्यधिक महत्वपूर्ण और बुनियादी प्रश्न समझती है ।

वाइसराय के नाम श्री जिन्ना का २१ जून, १९४६ का पत्र ।

(यह पत्र वाइसराय की इस पूछ-ताछ के बारे में था कि क्या वे पत्र की प्रति कांग्रेस के अध्यक्ष को भेज सकते हैं अथवा नहीं ?)

"आपके २० जून, १९४६ के पत्र के लिये धन्यवाद ।

"जहां तक आपके पत्र के पैरा दो का सम्बन्ध है, मुझे खेद है कि मैं आपके दृष्टिकोण से सहमत नहीं हूं । [इसका सम्बन्ध अन्तरिम सरकार की स्थापना के बारे में वाइसराय के दृष्टिकोण से है ।]

"जहाँ तक आपकी इस प्रार्थना का सम्बन्ध है कि क्या आप मेरे पत्र के ४ (ए) और ४ (बी) प्रश्नों की प्रतियां और उत्तराधीन आपके पत्र के पैरा ४ और ५ के बारे में मेरा उत्तर कांग्रेस के अध्यक्ष को भेज सकते हैं या नहीं, मेरा निवेदन है कि यदि आप ऐसा करना उचित समझते हों तो मुझे उस पर कोई आपत्ति नहीं है ।"

कांग्रेस के अध्यक्ष के नाम लार्ड वेवल का २० जून, १९४६ का पत्र।

वाइसराय भवन,
नई दिल्ली,
२० जून, १९४६।

प्रिय मौलाना साहेब,

मुझे निश्चय है कि आप इस बात को अनुभव करेंगे कि मंत्रि-प्रतिनिधिमंडल के सदस्यों के सम्मुख इंग्लैण्ड में बहुत-सा आवश्यक कार्य पड़ा है और वे इस देश में अनिश्चित रूप से अधिक समय तक नहीं ठहर सकते। इसलिए मैं आप से प्रार्थना करूँगा कि आप १६ जून के हमारे वक्तव्य में उल्लिखित प्रस्तावों के बारे में अपनी वर्किंग कमेटी का अन्तिम उत्तर जल्दी-से-जल्दी भेजने की कोशिश करेंगे। मुझे पता चला है कि वर्किंग कमेटी के जो सदस्य दिल्ली से चले गये थे, उन्हें आपने पुनः आने को कहा है और इस परिस्थिति में हम आप से प्रार्थना करेंगे कि आप अपना जवाब हमें अधिक-से-अधिक अगले रविवार अर्थात् २३ जून तक भेज दें।

आपका सच्चा,
(हस्ताक्षर) वेवल

लार्ड वेवल के नाम कांग्रेस के अध्यक्ष का २१ जून, १९४६ का पत्र।

२० अकबर रोड,
नई दिल्ली,
२१ जून, १९४६

प्रिय लार्ड वेवल,

मुझे श्रीमान् का २० जून १९४६ का पत्र मिला।

अन्तरिम सरकार की स्थापना के बारे में शीघ्र ही कोई निर्णय करने के लिए आपने जो चिन्ता प्रकट की है, मैं उसकी कद्र करता हूं और मैं आपको आश्वासन दिलाता हूं कि मेरी वर्किंग कमेटी भी आपकी भांति ही इस बारे में चिन्तित है; परन्तु पुरानी कठिनाइयों के अलावा एक नई कठिनाई और पैदा हो गई है, जो आपके नाम श्री जिन्ना के कथित पत्र की बातों के अखबारों में छापने के कारण हुई है और जिसमें उन्होंने अन्तरिम सरकार में कांग्रेस-द्वारा मनोनीत किये गये व्यक्तियों के बारे में आपत्ति उठाई है। यदि इन कथित पत्रों की प्रतियां और उनके सम्बन्ध में आपके उत्तर की प्रति कांग्रेस की वर्किंग कमेटी को उपलब्ध हो सकेगी तो इससे उसे अन्तिम कोई निर्णय करने में बड़ी मदद मिलेगी, क्योंकि उनका सम्बन्ध ऐसे महत्वपूर्ण विषयों से है जिन पर हमें सोच-विचार करना है।

आपका सच्चा,
(हस्ताक्षर) ए० के० आजाद।

हिज एक्सेलेंसी,
फील्ड-मार्शल वाइकाउण्ट वेवल,
वाइसराय भवन, नई दिल्ली।

वाइसराय भवन,
नयी दिल्ली,
२१ जून, १९४६

मेरे प्रिय मौलाना साहब,

विधान-परिषद् के निर्वाचनों के सम्बन्ध में गवर्नरों के नाम जो हिदायतें भेजी गई हैं उनकी एक नकल मैं आपके पास भेज रहा हूँ। ये हिदायतें धारासभाओं के स्पीकरों के नाम भेजी गई हैं और श्रीमान् वाइसराय महोदय आशा करते हैं कि इन्हें तब तक प्रकाशित नहीं किया जायगा जब तक कि स्पीकरों द्वारा उनकी घोषणा नहीं की जाती।

आपका सच्चा,

मौलाना आजाद (हस्ताक्षर) जी० ई० एबल

मंत्रि-प्रतिनिधिमंडल और श्रीमान् वाइसराय-द्वारा उन प्रतिनिधियों के निर्वाचन के लिए, जिनका उल्लेख १६ मई, १९४६ के उनके वक्तव्य में किया गया है, निम्नलिखित कार्य-प्रणाली का प्रस्ताव किया गया है।

(१) प्रत्येक प्रान्त का गवर्नर तारीख.........को और ऐसे स्थान पर जिसे वह निर्वाचन के लिए उचित समझता हो प्रान्तीय धारासभा की बैठक बुलायेगा। समनों के साथ-साथ धारासभा के प्रत्येक सदस्य के पास वक्तव्य और इन हिदायतों की एक-एक प्रति भेजी जायगी।

(२) कोई भी व्यक्ति निर्वाचन में खड़ा हो सकता है; बशर्ते कि (अ) वह प्रान्तीय धारा-सभा के किसी सदस्य-द्वारा नामज़द किया गया हो और किसी दूसरे सदस्य-द्वारा उसका समर्थन किया गया हो, और (ब) नामजदगी के साथ उसकी ओर से यह प्रतिज्ञापत्र भी भर कर दिया गया हो कि उसका नाम किसी और प्रान्त का प्रतिनिधित्व करने के लिए उम्मेदवार के रूप में नहीं पेश किया गया है और वह वक्तव्य के पैरा १९ में उल्लिखित उद्देश्य के लिए प्रान्त का प्रतिनिधि बनकर काम करने के लिए तैयार है।

(३) किसी भी प्रान्त में कोई भी व्यक्ति जो मुसलमान अथवा सिख नहीं है, वह क्रमश: मुसलमानों अथवा सिखों के लिए निर्धारित स्थानों के चुनाव के लिए खड़ा नहीं होगा। कोई भी मुसलमान और पंजाब में कोई भी मुसलमान या सिख किसी साधारण सीट के लिए उम्मेद-वार खड़ा नहीं होगा।

(४) सभी नामजदगियां तारीख.........को अथवा उससे पूर्व प्रान्तीय धारा-सभा के सेक्रेटरी के पास भेज दी जाएंगी।

(५) सेक्रेटरी तारीख.........को अथवा उससे पूर्व नामजदगियों की जांच-पड़ताल करेगा और ऐसी सभी नामजदगियों को नामंजूर कर देगा जिनके साथ आवश्यक प्रतिज्ञापत्र नहीं होगा।

(६) कोई भी उम्मेदवार तारीख.........को या उससे पूर्व अपना नाम वापस ले सकेगा।

(७) तारीख.........को जिस दिन प्रान्तीय धारा-सभा की बैठक प्रारंभ होगी गवर्नर धारा-सभा के पास एक संदेश भेजेगा, जिसमें वक्तव्य के पैरा २७ के अन्तर्गत वाइसराय की प्रार्थना का उल्लेख किया गया होगा और उसके बाद धारासभा एकाकी हस्तान्तरण-मत-पद्धति के आधार पर आनुपातिक प्रतिनिधित्व से अपने प्रतिनिधि चुनेगी और धारा-सभा का प्रत्येक भाग

(आम, मुस्लिम और सिख) अपने-अपने प्रतिनिधि चुनेगा।

१—चुनाव खत्म होने के बाद यथासंभव शीघ्र-से-शीघ्र गवर्नर निर्वाचित प्रतिनिधियों के नाम सरकारी गजट में प्रकाशित करा देगा और जिन व्यक्तियों के नाम इस प्रकार प्रकाशित किये जायँगे उन्हें वक्तव्य के १६ वें पैरा के उल्लिखित उद्देश्य के लिए सम्बद्ध प्रान्त का प्रतिनिधि समझा जायगा।

२—आपको पता चलेगा कि नामजदगी का कागज उपस्थित करने, उनकी जांच-पड़ताल, नामजदगी वापस लेने और धारा-सभा का अधिवेशन बुलाने की तारीखों का कोई उल्लेख नहीं किया गया है। उद्देश्य यह है कि सभी प्रान्तों में चुनाव १५ जुलाई तक समाप्त हो जाने चाहिये। इस आधार पर कि चुनाव के परिणामों की घोषणा १५ जुलाई को हो जाएगी, निम्न-लिखित कार्यक्रम प्रस्तुत किया जाता है :—

समन जारी करने की तारीख	१५ जून
नामजदगी की अन्तिम तारीख	२० जून
नामजदगी की जांच पड़ताल	२ जुलाई
नामजदगी की वापसी की तारीख	४ जुलाई
चुनाव की तारीख	१० जुलाई
परिणाम की घोषणा की तारीख	१५ जुलाई

कार्यक्रम की इस रूपरेखा में विशिष्ट प्रान्त अपनी-अपनी परिस्थितियों के अनुकूल परिवर्त्तन कर सकते हैं।

३— उपर्युक्त हिदायतें फिलहाल केवल गवर्नरों के लिए ही हैं। जब वाइसराय चुनाव-सम्बन्धी कार्यप्रणाली को कार्यान्वित करना चाहेंगे तो वे तार-द्वारा सभी गवर्नरों को सूचित कर देंगे। फिलहाल वे ऐसा नहीं करना चाहते, क्योंकि अभी तक उन्हें इस सम्बन्ध में विभिन्न दलों की प्रतिक्रिया मालूम नहीं हो सकी है।

नोट :—उक्त तारीखें उसके बाद से स्थगित कर दी गई हैं। नामजदगियों के लिए ८ जुलाई पहला दिन रखने का प्रस्ताव किया गया है।

कांग्रेस के अध्यक्ष के नाम वाइसराय का २१ जून, १९४६ का पत्र।

वाइसराय भवन,
नई दिल्ली,
२७ जून, १९४६

संख्या ५९२—४७

प्रिय मौलाना आजाद,

आपके आज के पत्र के लिए धन्यवाद। श्री जिन्ना ने मेरे नाम १९ जून के अपने पत्र में निम्नलिखित प्रश्न किये थे :—

(१) क्या एक अन्तर्कालीन सरकार स्थापित करने के लिए वक्तव्य में उल्लिखित प्रस्ताव अब अन्तिम हैं अथवा नहीं, और क्या किसी भी दल अथवा सम्बद्ध व्यक्ति के कहने से उनमें अब भी कोई परिवर्त्तन अथवा संशोधन किया जा सकता है;

(२) क्या संक्रान्ति-काल में सरकार के सदस्यों की कुल संख्या १४ ही रहेगी जैसा कि वक्तव्य में कहा गया है;

(३) यदि चारों अल्पसंख्यकों अर्थात् परिगणित जातियों, सिखों, भारतीय ईसाइयों और पारसियों के प्रतिनिधि के रूप में बुलाया गया कोई व्यक्ति किसी निजी अथवा किसी और कारणवश अन्तरिम सरकार में सम्मिलित होने का निमन्त्रण स्वीकार करने में असमर्थ हो तो वाइसराय-द्वारा उस रिक्त स्थान अथवा स्थानों की पूर्ति कैसे की जायगी; और क्या ऐसे रिक्त स्थान अथवा स्थानों की पूर्ति करने में मुस्लिम लीग के नेता से सलाह-मशविरा किया जायगा और उसकी राय ली जायगी ?

(४) अ—क्या संक्रान्तिकाल में जिस अवधि के लिए कि संयुक्त सरकार की स्थापना की जारही है सरकारी सदस्यों का अनुपात, संप्रदायगत आधार पर ही कायम रहेगा जैसा कि प्रस्तावों में कहा गया है।

ब—क्या चारों अल्पसंख्यकों अर्थात् परिगणित जातियों, सिखों, भारतीय ईसाइयों और पारसियों को इस समय जो प्रतिनिधित्व दिया गया है वह कायम रहेगा और उसमें कोई परिवर्तन अथवा संशोधन नहीं किया जायगा ?

(५) प्रारंभ में सदस्य-संख्या १२ रखी गई थी, लेकिन अब उसे बढ़ाकर १४ कर दिया गया है। क्या ऐसी परिस्थिति में, मुस्लिम हितों के रक्षार्थ ऐसी कोई व्यवस्था की जायगी जिसके अनुसार शासन-परिषद् किसी ऐसे बड़े सांप्रदायिक विषय में, कोई निर्णय नहीं करेगी, जिसके विरुद्ध मुस्लिम सदस्यों का बहुमत होगा ?"

इस पत्र के जवाब में, मैंने २० जून को जो पत्र लिखा था, उसका क्रियात्मक अंश इस प्रकार था:—

"१६ जून के वक्तव्य का आशय यह था कि जब दोनों दल इस योजना को स्वीकार कर लेंगे तो फिर बाद में इन दोनों बड़े दलों के नेताओं के साथ विभागों के सम्बन्ध में बातचीत की जायगी। और अब तक भी हमारा यही इरादा है। जब तक सदस्यों के नाम का पता नहीं चल जाता तब तक विभागों के विभाजन के सम्बन्ध में कोई फैसला करना कठिन है।"

१६ जून के हमारे वक्तव्य के अन्तर्गत बनाई जानेवाली सरकार के सम्बन्ध में आप जिन प्रश्नों के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण चाहते हैं, उनका उत्तर मैं प्रतिनिधिमंडल के परामर्श से दे रहा हूं जो इस प्रकार है.—

(१) अन्तरिम सरकार में सम्मिलित होने के लिए जिन सज्जनों को आमन्त्रित किया गया है, जब तक मुझे उनकी स्वीकृति नहीं पहुँच जाती तब तक वक्तव्य में उल्लिखित नाम अन्तिम नहीं समझे जा सकते। परन्तु दोनों बड़े दलों की अनुमति के बिना वक्तव्य में सैद्धान्तिक रूप से कोई परिवर्तन नहीं किया जायगा।

(२) दोनों बड़े दलों की अनुमति के बिना अन्तरिम सरकार के १४ सदस्यों की संख्या में कोई परिवर्तन नहीं किया जायगा।

(३) इस समय अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधियों को जो स्थान दिये गये हैं यदि उनमें कोई स्थान रिक्त हो जायगा तो मैं जैसा कि स्वाभाविक है उसकी पूर्ति करने से पूर्व दोनों बड़े दलों से सलाह-मशविरा लूंगा।

(४) (अ) और (ब) सम्प्रदायगत आधार पर निर्धारित सदस्यों की संख्या के अनुपात में कोई परिवर्तन नहीं किया जायगा।

(५) किसी भी सांप्रदायिक प्रश्न के बारे में अन्तरिम सरकार कोई निर्णय नहीं करेगी यदि

दोनों बड़े दलों में से किसी एक दल के बहुमत को भी उसपर आपत्ति होगी। मैंने यह बात कांग्रेस के अध्यक्ष से भी कही थी और उन्होंने भी यह स्वीकार किया कि कांग्रेस इस दृष्टिकोण की कद्र करती है।

आपका सच्चा,
(हस्ताक्षर) वेवल

मौलाना अबुलकलाम आज़ाद

लार्ड वेवल का कांग्रेस-प्रधान को पत्र
ता० २२ जून, १६४६

वाइसराय भवन,
नई दिल्ली,
२२, जून, १६४६

प्रिय मौलाना साहब,

समाचार-पत्रों से मालूम हुआ है कि कांग्रेस-क्षेत्रों में इस बात पर बल दिया जा रहा है कि कांग्रेस दल को, अन्तरिम सरकार में कांग्रेस-प्रतिनिधि भेजते समय, एक मुस्लिम को स्वेच्छापूर्वक चुनने के अधिकार पर दृढ़ रहना चाहिए।

उन कारणों के आधार पर कि जिन्हें आप पहले से ही जानते हैं, मंत्रिमंडल या मैं इस प्रार्थना को स्वीकार नहीं कर सकता, किन्तु मैं आपका ध्यान १६ जून की घोषणा के पैराग्राफ ६ की ओर आकर्षित करना चाहता हूं—जो इस प्रकार है—

"अन्तरिम सरकार का ऊपरी निर्माण अन्य किसी भी साम्प्रदायिक प्रश्न के निर्णय के लिए किसी भी रूप में उदाहरण नहीं ठहराया जायगा। यह तो केवल वर्तमान की कठिनाई को हल करने का हेतुमात्र है और इसके द्वारा ही सर्वोत्तम सम्मिलित सरकार की प्राप्ति सम्भव है।"

इस आश्वासन को दृष्टि में रखते हुए कि कोई मिसाल नहीं बनेगी, हम कांग्रेस से अपील करते हैं कि वह अपनी इस मांग को छोड़ दे और उस अन्तरिम सरकार में भाग ले कि जिसकी देश को एकाएक आवश्यकता है।

आपका सच्चा
(ह०) वेवल

मौलाना अबुल कलाम आजाद

कांग्रेस-प्रधान का लार्ड वेवल को उत्तर
ता० २४ जून, १६४६

२० अकबर रोड,
नई दिल्ली,
२४ जून, १६४६

प्रिय लार्ड वेवल,

अभी हाल ही आपकी ओर से मुझे टेलीफोन मिला है कि मैं आपको अस्थायी सरकार में शामिल होने के कार्य-समिति के निर्णय की फौरन सूचना दूँ। वास्तव में निर्णय तो कल ही हो चुका था किन्तु हमारा विचार था कि यदि हम आपकी और मंत्रिमंडल की तजवीज़ों की बाबत सब बातों को दृष्टि में रखते हुए पत्र लिखें तो बहुत ठीक रहेगा। कार्य-समिति की प्रायः निरन्तर बैठकें हो रही हैं और आज पुनः २ बजे भी बैठक होगी। पूर्णतया विचार-विनिमय के अनन्तर

कार्य-समिति को अनिच्छापूर्वक अन्तरिम सरकार में शामिल होने की आपकी तजवीज के विरुद्ध निर्णय करना पड़ा है। विस्तृत एवं युक्तिपूर्ण उत्तर बाद में भेजा जायगा।

आपका सच्चा
(ह०) ए० के० आजाद

हिज़ एक्सेलेंसी फ़ील्ड-मार्शल वाइकाउण्ट वेवल
वाइसराय भवन, नई दिल्ली।

कांग्रेस-प्रधान का वाइसराय को पत्र
ता० २५ जून, १६४६

२०, अकबर रोड,
नई दिल्ली,
२५, जून १६४६

प्रिय लार्ड वेवल,

जब से १६ जून का वक्तव्य प्राप्त हुआ है, मेरी कमेटी नित्यप्रति उसपर विचार करती आ रही है। इसके अतिरिक्त आपकी तजवीज़ों और राष्ट्रीय सरकार बनाने के लिए व्यक्तिगत जारी किये गये निमंत्रणों पर भी कमेटी ने गम्भीरतापूर्वक विचार किया है। चूंकि वर्तमान असंतोष-जनक परिस्थिति में से कोई मार्ग निकाल लेना चाहते हैं इसलिए हमने आपके दृष्टिकोण और मार्ग-विन्यास की सराहना की भरसक चेष्टा की है। अपनी बातचीत के सिलसिले में हम पहले से ही आपको अपनी कठिनाइयां बतला चुके हैं। दुर्भाग्यवश यह कठिनाइयां हाल ही के पत्र-व्यवहार से और भी बढ़ गई है।

कांग्रेस, जैसा कि आप जानते हैं, राष्ट्रीय संगठन है, जिसमें भारत के सभी धर्मों और जातियों के सदस्य शामिल हैं। आधी सदी से अधिक काल से इसने भारत की स्वतंत्रता और सब भारतीयों के समानाधिकार के लिए श्रम किया है। जिस शृंखला ने विभिन्न दलों और संप्रदायों को संगठित करके कांग्रेस-बद्ध कर लिया वह है राष्ट्रीय स्वतंत्रता, आर्थिक उन्नति और सामाजिक एकता। यह है वह दृष्टिकोण जिसे समक्ष रखते हुए हमें प्रत्येक तजवीज़ को परखना है। हमें आशा थी कि जो अस्थायी राष्ट्रीय सरकार बनाई जायगी वह इस स्वतंत्रता को क्रियात्मक रूप देगी। आपकी कुछेक कठिनाइयों को दृष्टि में रखते हुए हमने एकाएक स्वतंत्रता लागू करने के लिए किसी वैधानिक परिवर्तन पर जोर नहीं दिया, किन्तु हम यह ज़रूर आशा करते थे कि तथ्यों के आधार पर स्वतंत्रता लानेवाली सरकार के चलन में परिवर्तन होगा ही। इस प्रकार अस्थायी सरकार का दर्जा और शक्ति महत्वपूर्ण विषय हैं। हमारे विचार में यह पूर्णतः वाइसराय की शासन-परिषद् से भिन्न वस्तु होने जा रही है। इसे नये दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करना है। नये ढंग का कार्य करना है, और घरेलू एवं बाहरी समस्याओं के बारे में भारत-द्वारा मनोवैज्ञानिक ढंग से नई पहुंच का प्रादुर्भाव करना है। आपने ३० मई १६४६ के पत्र-द्वारा हमें अस्थायी सरकार के दर्जे और अधिकारों की बाबत कुछ आश्वासन दिये थे। यह हमारे विचारों के अनुकूल नहीं बैठते, किंतु हमने आपके मित्रतापूर्ण पत्र की सराहना करते हुए आपके आश्वासनों को स्वीकार कर लिया है और इस प्रश्न को अधिक न बढ़ाने का निश्चय किया है।

अस्थायी सरकार की संख्या का महत्वपूर्ण प्रश्न बना रहा। इस संबंध में हमने इस बात पर ज़ोर दिया कि हम एक अस्थायी दल के रूप में भी समान प्रतिनिधित्व को किसी भी रूप में

मानने को तैयार नहीं। इसके अलावा हमने यह भी कहा कि अस्थायी सरकार में १५ सदस्य होने चाहिएँ ताकि देश का शासन-प्रबंध कार्य-कुशलता से चलाया जा सके और छोटे-छोटे अल्पसंख्यकों को प्रतिनिधित्व मिल सके। इस बारे में कुछ नामों का उल्लेख किया गया था। जहाँ तक हमारा प्रश्न है, हमने अनियमित रूप से कुछ नाम पेश किये थे, जिसमें एक नाम एक ग़ैर-लीगी मुसलमान का भी था।

१६ जून के अपने वक्तव्य में आप-द्वारा उल्लिखित कुछ नामों पर हमें बहुत आश्चर्य हुआ। कांग्रेस ने अस्थायी तौर पर जो सूची पेश की थी, उसमें कई परिवर्तन किये गये हैं। आपने जिस तरह से नामावली तैयार की है और जिस प्रकार उसे एक संपादित तथ्य के रूप में उपस्थित किया है, उसे देख कर ऐसा जान पड़ता है कि समस्या को ग़लत ढंग से सुलझाने का यत्न किया गया है। उसमें एक नाम ऐसा है, जिसका उल्लेख इससे पहले कभी नहीं हुआ था। और वे एक ऐसे व्यक्ति हैं, जो सरकारी पद पर हैं और जिनका किसी भी सार्वजनिक कार्यवाही से संपर्क नहीं रहा है। हमें वैयक्तिक रूप से उनके साथ विरोध नहीं लेकिन हम ख्याल करते हैं कि इस तरह के नाम को शामिल करना और खास कर बिना किसी पिछले उल्लेख अथवा परामर्श के अवांछनीय था। और यह इस बात का द्योतक है कि समस्या को ग़लत ढंग से सुलझाने का यत्न किया गया है।

इसके अलावा हमारी सूची में से एक नाम निकाल दिया गया है और उसकी जगह हमारे ही साथियों में से एक और नाम ले लिया गया है, लेकिन जैसा कि आपने कहा है, उसे सुधारा जा सकता है, इसलिए मैं उस बारे में और अधिक नहीं कहूंगा।

इस नामावली की एक और उल्लेखनीय बात यह थी कि उसमें किसी भी राष्ट्रवादी मुसलमान का नाम शामिल नहीं था। हम समझते हैं कि यह एक भारी भूल थी। हम उस सूची में कांग्रेस के प्रतिनिधियों में से एक की जगह एक मुसलमान का नाम रखना चाहते थे। हमारा ख़याल था कि स्वयं अपने ही व्यक्तियों के नाम में हमारे इस परिवर्तन पर किसी को कोई आपत्ति नहीं होगी।

वास्तव में जब मैंने आप का ध्यान इस बात की ओर दिलाया था कि मुस्लिम लीग-द्वारा नामजद किये गये व्यक्तियों में एक ऐसे व्यक्ति का नाम भी शामिल है जो सीमाप्रान्त के हाल के चुनाव में वास्तव में पराजित हो चुके हैं और जिन का नाम हमारी राय में राजनीतिक कारणों से प्रेरित होकर शामिल किया गया है, तो इसके जवाब में आपने मुझे इस प्रकार लिखा था—"मैं कांग्रेस द्वारा मुस्लिम लीग के मनोनीत व्यक्तियों पर आपत्ति करने के अधिकार को उसी प्रकार नहीं मान सकता, जिस प्रकार मैं दूसरे पक्ष-द्वारा उठायी गयी इसी प्रकार की आपत्ति नहीं मानता। कसौटी योग्यता की होनी चाहिये।" परन्तु हम अभी अपनी ओर से कोई प्रस्ताव भी नहीं उपस्थित कर सके थे कि आप का २२ जून का पत्र मिला, जिसे देखकर हम सभी को बड़ा आश्चर्य हुआ। आपने यह पत्र अखबारों में छपे कुछ समाचारों के आधार पर लिखा था। आप ने हमें बताया कि मन्त्रि-प्रतिनिधि मण्डल और आप अन्तरिम सरकार के कांग्रेस के प्रतिनिधियों में कांग्रेस-द्वारा नामजद किये गये किसी मुसलमान का नाम स्वीकार करने को तैयार नहीं है। हमें यह एक असाधारण निर्णय प्रतीत हुआ। यह बात स्वयं आपके उपर्युक्त पत्र से प्रत्यक्षतः कोई मेल नहीं खाती थी। इसका अर्थ यह हुआ कि कांग्रेस को स्वयं अपने ही प्रतिनिधि चुनने की पूरी आजादी नहीं थी यह कहने से कि इसे मिसाल ही न समझना चाहिये कोई फ़र्क नहीं

पड़ता। ऐसे महत्वपूर्ण सिद्धान्त की यदि अस्थायी रूपसे अवहेलना भी कर दी जाय तो भी हम उसे किसी भी समय अथवा स्थान या परिस्थिति में मानने को तैयार नहीं थे।

२१ जून के अपने पत्र में आपने श्री जिन्ना-द्वारा आपके नाम १६ जून के पत्र में किये गये कुछ प्रश्नों और आप-द्वारा दिये गए उनके जवाब का उल्लेख किया है। हमने श्री जिन्ना का पत्र नहीं पढ़ा है। तीसरे प्रश्न में "चार अल्पसंख्यकों, अर्थात परिगणित जातियों, सिखों, भारतीय ईसाइयों और पारसियों" का उल्लेख किया गया है और यह सवाल किया गया है कि "यदि इनकी जगह खाली हो जाय तो उसकी पूर्ति कौन करेगा?" और क्या उनके रिक्त स्थानों की पूर्ति करते समय मुस्लिम लीग के नेता से सलाह-मशविरा किया जायगा और उसकी स्वीकृति ली जायगी?"

अपने जवाब में आपने लिखा है—"इस समय अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधियों को जो सीटें दी गई हैं, उनमें से यदि कोई जगह खाली होगी तो उसकी पूर्ति करने से पूर्व मैं स्वाभाविक तौर पर दोनों बड़े दलों से सलाह-मशविरा करूंगा।" इस प्रकार श्री जिन्ना ने परिगणित जातियों को अल्पसंख्यकों में शामिल करने की चेष्टा की है। और शायद आपने भी इससे सहमति प्रकट की है। जहां तक हमारा सम्बन्ध है, हम इस बात का विरोध करते हैं और परिगणित जातियों को हिन्दू-समाज का अविछिन्न अंग मानते हैं। आपने भी १५ जून के अपने पत्र में परिगणित जातियों को हिन्दुओं में ही शामिल किया है। आपने यह कहा था कि आपके प्रस्ताव के अनुसार हिन्दुओं और मुसलमानों अथवा कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच समान प्रतिनिधित्व का प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि कांग्रेस की ओर से ६ हिन्दू होंगे और लीग की तरफ से ५ मुसलमान—अर्थात छः हिन्दुओं में से एक परिगणित जातियों का प्रतिनिधि होगा। हम यह बात कभी मानने को तैयार नहीं हैं कि एक ऐसे दल का नेता, जो एक अल्पसंख्यक जाति का प्रतिनिधित्व करने का दावा करता हो, या तो परिगणित जातियों के प्रतिनिधियों के नामों के चुनाव में, जिन्हें आपने कांग्रेस के प्रतिनिधियों के कोटे में शामिल माना है, अथवा उल्लिखित अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधियों के चुनाव में हस्तक्षेप करे।

चौथे प्रश्न में उन्होंने परिगणित जातियों का उल्लेख पुनः अल्पसंख्यकों के रूप में किया है और यह पूछा गया है कि क्या सरकार के सदस्यों का संप्रदायगत अनुपात, जिसकी व्यवस्था प्रस्तावों में की गई है, कायम रखा जायगा। आपने इसका जवाब यह लिखा है कि इस अनुपात में दोनों बड़े दलों की राय के बिना कोई परिवर्तन नहीं किया जायगा। यहां फिर एक सांप्रदायिक दल को जो प्रत्यक्ष रूप से अपनी ऐसी स्थिति स्वीकार करता हो, दूसरे दलों में परिवर्तन करने का निषेधाधिकार प्रदान किया गया है, हालांकि उनके साथ उसका कोई सरोकार नहीं है। अगर मौका मिला तो शायद हम परिगणित जातियों के प्रतिनिधियों की संख्या में वृद्धि करना चाहें अथवा जब हो सके तो किसी और अल्पसंख्यक को, मिसाल के तौर पर एंग्लो-इंडियनों को, प्रतिनिधित्व देना चाहें। लेकिन यह सारी चीज मुस्लिम लीग की स्वीकृति पर निर्भर करेगी। हम यह बात स्वीकार नहीं कर सकते। हम यहां यह भी कहना चाहते हैं कि आपने श्री जिन्ना को जो उत्तर दिया है उससे कांग्रेस का प्रतिनिधित्व केवल सवर्ण हिन्दुओं तक ही सीमित रह जाता है और इस प्रकार मुस्लिम लीग और कांग्रेस दोनों को ही समान प्रतिनिधित्व मिल जाता है।

अन्त में आपने पांचवें प्रश्न के बारे में कहा है कि किसी बड़े साम्प्रदायिक प्रश्न के सम्बन्ध

में अन्तरिम सरकार कोई निर्णय नहीं करेगी। यदि दोनों बड़े दलों में से एक भी दल का बहुमत उसके विरुद्ध होगा। आपने यह भी जिक्र किया है कि आपने यह बात कांग्रेस के अध्यक्ष से भी कह दी है और वे इस बात से सहमत हैं कि कांग्रेस इस दृष्टिकोण की कद्र करती है। इस बारे में मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि हमने यह बात संघ की धारासभा में दीर्घकालीन व्यवस्था के लिए स्वीकार की थी और उसे हम अस्थायी सरकार पर भी लागू कर सकते हैं बशर्ते कि वह धारासभा के प्रति उत्तरदायी हो और उसमें बड़ी-बड़ी जातियों के प्रतिनिधि जनसंख्या के आधार पर चुने गए हों। इसे अस्थायी सरकार पर किसी प्रकार भी नहीं लागू किया जा सकता, क्योंकि उसका तो आधार ही सर्वथा विभिन्न है। मैंने १३ जून १९४६ के अपने पत्र में बताया था कि इससे शासन-प्रबन्ध का संचालन असंभव हो जायगा और निश्चित रूपेण गतिरोध पैदा हो जायगा। स्वयं श्री जिन्ना-द्वारा किये गए प्रश्न में भी यह कहा गया है कि, "शुरू में प्रस्तावित १२ सदस्यों के स्थान पर अब जो १४ सदस्यों का प्रस्ताव किया गया है, उसे ध्यान में रखते हुए किसी भी ऐसे बड़े सांप्रदायिक प्रश्न का निर्णय न किया जाय यदि मुसलमान सदस्यों का बहुमत उसके खिलाफ हो" इस प्रकार यह सवाल तब पैदा हुआ जब कि आपने सदस्यों की संख्या १२ के बजाय १४ करदी अर्थात् आपके १६ जून के वक्तव्य के बाद। वक्तव्य में इस प्रकार के किसी नियम का कोई जिक्र तक भी नहीं किया गया है। यह महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तन प्रायः अनियमित रूप से और निश्चय ही हमारी स्वीकृति के बिना किया गया है। इसके परिणाम-स्वरूप भी स्थायी सरकार में मुस्लिम लीग को निषेधाधिकार अथवा अड़चन पैदा करने का अधिकार मिल जाता है।

हमने १६ जून के आपके प्रस्तावों तथा श्री जिन्ना-द्वारा किये गये प्रश्नों के जवाब के सम्बन्ध में अपनी आपत्तियों का उल्लेख ऊपर कर दिया है। ये बहुत बड़ी और गंभीर त्रुटियां हैं जिनकी वजह से अस्थायी सरकार का संचालन असम्भव हो जायगा और गतिरोध निश्चित रूप से पैदा हो जायगा। इन हालात में आपके प्रस्ताव परिस्थिति की तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकते और न ही उससे वह काम आगे बढ़ सकता है, जिसे हम इतना महत्त्व-पूर्ण, प्रिय और आवश्यक समझते हैं।

इसलिए मेरी कार्यसमिति अनिच्छापूर्वक इस परिणाम पर पहुंची है कि वह ऐसी कोई अस्थायी सरकार बनाने में आपकी सहायता करने में असमर्थ है, जिसका उल्लेख १६ जून, १९४६ को आपके वक्तव्य में किया गया है।

जहां तक १६ मई, १९४६ के वक्तव्य में उल्लिखित उन प्रस्तावों का सवाल है जिनका सम्बन्ध विधान-निर्मात्री संस्था के निर्माण और कार्य से है, कांग्रेस की वर्किङ्ग कमेटी ने २४ मई, १९४६ को एक प्रस्ताव पास किया था और इस सम्बन्ध में एक ओर श्रीमन् और मंत्रिमंडल तथा दूसरी ओर मेरे और मेरे कुछ सहयोगियों के मध्य वार्तालाप और पत्र-व्यवहार हुआ है। इन अवसरों पर हमने यह बताने की भरसक चेष्टा की है कि हमारी दृष्टि में इन प्रस्तावों में क्या-क्या-त्रुटियां रह गई हैं। वक्तव्य की कुछ धाराओं के सम्बन्धमें हमने अपनी व्याख्या भी की थी। अपने विचारों पर दृढ़ रहते हुए भी, हमें आपके प्रस्ताव स्वीकार किये हैं और हम अपने उद्देश्य की प्राप्ति-हेतु उन्हें कार्यान्वित करने को भी तैयार हैं। परन्तु हम यह भी कह देना चाहते हैं कि

विधान-परिषद् का सफल संचालन मुख्यतः एक संतोषजनक अस्थायी सरकार की स्थापना पर आश्रित है।

आपका सच्चा,
हस्ताक्षर (ए० के० आजाद)

हिज एक्सेलेंसी, फील्ड-मार्शल
वाइकाउण्ट वेवल,
वाइसराय भवन, नई दिल्ली।

मौलाना आज़ाद के नाम वाइसराय का २७ जून, १६४६ का पत्र।

मुझे आपका २५ जून का पत्र मिला।

मंत्रि-प्रतिनिधि-मंडल और मुझे बहुत दुःख है कि १६ जून के वक्तव्य में कहे गये प्रस्तावों को कांग्रेस कार्यसमिति स्वीकार न कर सकी, क्योंकि यदि कांग्रेस कार्य-समिति इन प्रस्तावों को स्वीकार कर लेती तो उस कार्य को पूरा करना संभव हो जाता जिसके लिए हम और भारतीय राजनीतिक नेता गत तीन महीनों से यत्न कर रहे हैं। अन्तर्कालीन सरकार में बड़े साम्प्रदायिक मामलों के बारे में यदि कोई गलतफहमी हो गई थी, तो उसके लिए मुझे दुःख है। हमने निश्चय ही यह सोचा कि आपने स्वतःसिद्ध योजना, के रूप में, जैसी कि यह है, इस बात को मान लिया था कि मिली-जुली सरकार में, दोनों में से किसी भी बड़े दल के विरोध करने पर, इस प्रकार की समस्याओं को जबर्दस्ती स्वीकार नहीं कराया जा सकता।

मंत्रि-प्रतिनिधि-मंडल और मुझे आपके पत्र के अन्तिम पैरा से यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि कांग्रेस कार्य-समिति उन प्रस्तावों को स्वीकार करती है और भारत के लिए एक विधान-निर्माण के लिए उन्हें कार्यान्वित करने को तैयार है, जो १६ मई के मंत्रि-प्रतिनिधि-मंडल के वक्तव्य में प्रस्तुत किये गये थे। आपका कथन है कि आप इस वक्तव्य की उस राय तथा व्याख्या पर स्थिर है जो कांग्रेस कार्यसमिति के २४ मई के प्रस्तावों में तथा हमारे साथ किये गये पत्र-व्यवहार और मुलाक़ात में प्रकट की गयी है। कल हमारी मुलाक़ात के समय २५ मई के हमारे वक्तव्य के ५वें पैरा की ओर हमने आपका ध्यान दिलाया था। हमने इस बात पर ज़ोर दिया था कि गुटों में बांटने की पद्धति को विधान-निर्मात्री-परिषद् के एक ऐसे प्रस्ताव से ही बदला जा सकता है जो १६ मई के वक्तव्य के १६ (७) पैरा के अन्तर्गत दोनों सम्प्रदायों के बहुमत से पास किया गया हो। इस मुलाकात से हमें यह सुनकर प्रसन्नता हुई कि कांग्रेस का इरादा विधान-निर्मात्री परिषद् में रचनात्मक भावना से प्रवेश करना है।

कांग्रेस की असमर्थता

हमने आपको यह भी सूचित किया था कि चूंकि कांग्रेस हमारे १६ जून के वक्तव्य में प्रस्तावित अन्तर्कालीन सरकार में सम्मिलित होने में असमर्थ है इसलिए एक ऐसी स्थिति पैदा हो गयी है जिसमें उस वक्तव्य का आठवां अनुच्छेद लागू हो जाता है। तदनुसार मैं शीघ्र ही एक ऐसी अन्तर्कालीन सरकार की स्थापना का प्रयत्न करूंगा जो दोनों मुख्य दलों के लिए अधिक-से-अधिक प्रतिनिधिपूर्ण होगी। किन्तु इसके साथ ही मैंने यह निर्णय किया है कि चूँकि वार्ता को चलते अभी ही काफी समय हो चुका है और किसी समझौते पर पहुँचने में हम हाल ही में असफल हो चुके हैं, इसलिए अच्छा हो कि इस विषय को फिर से उठाने से पहले

हमें थोड़ी मुहलत मिल जाय। तदनुसार मैंने, अस्थायी रूप से शासनकार्य चलाने के लिए अफसरों की एक रखवालिया सरकार स्थापित करने का निश्चय किया है।

मन्त्रि-प्रतिनिधि-मण्डल और वाइसराय के १६ मई और १६ जून के वक्तव्यों के सम्बन्ध में कांग्रेस वर्किंङ्ग कमेटी ने निम्नलिखित प्रस्ताव अन्तिम रूप से पास किया:—

"२४ मई को वर्किंङ्ग कमेटी ने ब्रिटिश मन्त्रि-प्रतिनिधि-मण्डल के १६ मई के वक्तव्य के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव पास किया। इस प्रस्ताव में उसने उक्त वक्तव्य की कुछ त्रुटियों का उल्लेख करते हुए उसके कुछ भागों के सम्बन्ध में अपनी व्याख्या बताई।

"उसके बाद से कार्यकारिणी ब्रिटिश-सरकार की ओर से १६ मई और १६ जून को जारी किये गए वक्तव्यों में उल्लिखित प्रस्तावों पर निरन्तर सोच-विचार करती रही है और उनके सम्बन्ध में कांग्रेस के अध्यक्ष तथा मन्त्रि-प्रतिनिधि-मण्डल और वाइसराय के मध्य जो पत्र-व्यवहार हुआ है—उस पर भी उसने खूब सोच-विचार किया है।

"कार्यसमिति ने इन दोनों प्रकार के प्रस्तावों की कांग्रेस के, देश की तात्कालिक स्वाधीनता के उद्देश्य के दृष्टिकोण से समीक्षा की है और साथ ही उसने इन प्रस्तावों की समीक्षा इस दृष्टि से भी की है कि इनके परिणामस्वरूप देश की जनता किस सीमा तक आर्थिक और सामाजिक उन्नति कर सकती है, जिससे कि उसका भौतिक मान ऊंचा हो सके और उसकी गरीबी, रहन-सहन के मान का निम्नस्तर, अकाल और जीवन-निर्वाह की आवश्यक वस्तुओं का अभाव सदा के लिए समाप्त किया जा सके और देश के सभी लोगों को अपनी प्रतिभा के अनुकूल उन्नति करने की आजादी और मौका मिल सके। ये प्रस्ताव उक्त उद्देश्यों से बहुत कम हैं। इनसे उनकी पूर्ति नहीं होती। फिर भी समिति ने उनके सभी पहलुओं पर पूरी तरह से सोच-विचार किया है, चूंकि उसकी यह प्रबल इच्छा रही है कि किसी प्रकार से भारत की समस्या शान्तिपूर्वक सुलझ जाय तथा भारत और इंग्लैण्ड के पारस्परिक संघर्ष समाप्त हो जायँ।

"कांग्रेस जिस तरह की स्वाधीनता चाहती है, उसके अनुसार वह देश में एक संयुक्त प्रजातन्त्रीय भारतीय संघ की स्थापना करना चाहती है। इस संघ का शासन-भार एक केन्द्रीय सरकार के हाथों में होगा। उसे संसार के सभी राष्ट्रों का मान और सहयोग प्राप्त रहेगा। उसके अन्तर्गत सभी प्रान्तों को अधिक-से-अधिक स्वायत्त-शासन का अधिकार रहेगा और देश के सभी स्त्री-पुरुषों को समान रूप से अधिकार रहेंगे। इन प्रस्तावों के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार के अधिकार जिस प्रकार सीमित रखे गये हैं और जिस प्रकार से प्रान्तों को गुटबन्दी की गई है, उसके कारण सारा ही ढांचा कमजोर हो जाता है और उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्त और आसाम जैसे कुछ प्रान्तों तथा कुछ अल्पसंख्यकों, जैसे कि सिखों के साथ घोर अन्याय किया गया है। समिति को यह कभी मान्य नहीं था। फिर भी, उसने यह अनुभव किया कि यदि प्रस्तावों पर समष्टि-रूप से सोच-विचार किया जाय तो उसमें केन्द्रीय सत्ता को सुदृढ़ बनाने और विस्तृत करने की ओर गुटबन्दी के मामले में हरेक प्रान्त को अपनी-अपनी मर्जी के अनुसार काम करने की स्वतन्त्रता तथा ऐसे अल्पसंख्यकों को, जिन्हें अन्यथा नुक्सान पहुँचता हो, अपने लिए संरक्षण प्राप्त करने की काफी गुंजायश है। उसने इनके अलावा और आपत्तियां उठाई थीं, विशेषकर अ-भारतीयों-द्वारा विधान-निर्माण में भाग लेने की सम्भावना। यह स्पष्ट है कि यदि विधान-परिषद् के चुनाव में किसी अ-भारतीय ने वोट दिया अथवा उसके लिए वह खड़ा हुआ तो १६ मई के वक्तव्य के वास्तविक उद्देश्य की भावना की अवहेलना हो जायगी।

"जहां तक १६ जून के वक्तव्य में अन्तरिम सरकार से सम्बन्ध रखनेवाले प्रस्तावों का प्रश्न है, उनमें ऐसी त्रुटियां हैं, जो कांग्रेस की दृष्टि से अत्यधिक महत्व रखती है। कांग्रेस के प्रधान ने वाइसराय के नाम २५ जून के अपने पत्र में इनमें से कुछ त्रुटियों की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया है। अस्थायी सरकार को अधिकार, सत्ता और उत्तरदायित्व प्राप्त होना चाहिए और यदि कानूनी तौर पर नहीं तो कम-से-कम तथ्यों के आधार पर वस्तुतः उसे एक स्वतन्त्र सरकार की तरह काम करने का अधिकार होना चाहिए, जिससे कि बाद में उसे पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त हो जाय। इस तरह की सरकार के सदस्य किसी बाहरी सत्ता के प्रति उत्तरदायी न होकर केवल जनता के प्रति उत्तरदायी हो सकते हैं। अस्थायी अथवा किसी और प्रकार की सरकार की स्थापना में कांग्रेसजन, कांग्रेस के राष्ट्रीय स्वरूप को कभी नहीं छोड़ सकते। इसी प्रकार वे अप्राकृतिक और अन्यायपूर्ण समान प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त नहीं स्वीकार कर सकते और न ही यह बात मान सकते हैं कि किसी साम्प्रदायिक दल को निषेधाधिकार दिया जाय। इसलिए समिति अन्तरिम सरकार की स्थापना के सम्बन्ध में १६ जून के वक्तव्य में उल्लिखित प्रस्तावों को स्वीकार करने में असमर्थ है।

"परन्तु समिति ने फैसला किया है कि कांग्रेस को प्रस्तावित विधान-परिषद् में अवश्य शामिल होना चाहिए, ताकि एक स्वतन्त्र, संयुक्त और प्रजातन्त्रात्मक भारत के लिए विधान बनाया जा सके।

"यद्यपि समिति ने यह स्वीकार कर लिया है कि कांग्रेस विधान-परिषद् में शामिल हो जाय, फिर भी उसकी यह राय है कि देश में जल्दी-से-जल्दी एक प्रतिनिधित्वपूर्ण और उत्तरदायी अस्थायी राष्ट्रीय सरकार की स्थापना नितान्त आवश्यक है। एक तानाशाह और अप्रतिनिधित्वपूर्ण सरकार को जारी रखने का परिणाम केवल पीड़ित और भूखी जनता के कष्टों में वृद्धि और उसके असन्तोष की भावना को प्रोत्साहन देना होगा। इसके कारण विधान-परिषद् का कार्य भी खटाई में पड़ जायगा, क्योंकि ऐसी परिषद् का कार्य तो केवल स्वतन्त्र वातावरण में ही आगे बढ़ सकता है।

"तदनुसार वर्किङ्ग कमेटी अखिल भारतीय महासमिति से उक्त सिफारिश करती है और इस सिफारिश पर सोच-विचार करने और उसके लिए समर्थन प्राप्त करने के उद्देश्य से बम्बई में ६ और ७ जुलाई १९४६ को उसकी एक आवश्यक बैठक बुलाना चाहती है। यह प्रस्ताव बाद में ६ और ७ जुलाई को अखिल भारतीय महासमिति की बम्बई में बुलाई गई आवश्यक बैठक में बड़े भारी बहुमत-द्वारा (२०४ के मुकाबले में ५१० वोट से) पास कर दिया गया।"

नयी दिल्ली, २६ जून, १९४६।

मौलाना आजाद द्वारा समझौते की बातचीत का सिंहावलोकन (२७-६-१९४६)

"मन्त्रि-मिशन और वाइसराय के साथ इतनी देर तक हमलोग जो बातचीत करते रहे हैं, उसमें मेरे सहयोगियों और मैंने केवल एक ही मूलभूत सिद्धान्त को सामने रखा है। और यह सिद्धान्त था भारतीय स्वाधीनता की प्राप्ति तथा सभी महत्वपूर्ण समस्याओं का शान्तिपूर्ण उपायों से सुलझाने की प्रबल इच्छा।" ये शब्द मौलाना आजाद ने पिछले तीन महीने की बातचीत का सिंहावलोकन करते हुए २७ जून, १९४६ को कहे।

आगे उन्होंने कहा—"इस प्रकार के उपायों से लाभ और बन्दिशें—दोनों ही बातें होती हैं। हिंसा और संघर्ष-द्वारा प्राप्त की गई स्वाधीनता अपेक्षाकृत उल्लेखनीय और रोमांचकारी भले ही

हो, लेकिन उसके कारण अथाह कष्ट उठाने पड़ते हैं और रक्तपात होता है तथा अन्त में कटुता और घृणा शेष रह जाती है। परन्तु शान्तिपूर्ण उपायों का परिणाम कटुतापूर्ण नहीं होता और न उनके परिणाम हिंसात्मक क्रान्ति की भांति आश्चर्यजनक और रोमांचकारी ही होते हैं।

इसलिए हम समझौते की वर्तमान बातचीत को इसी दृष्टिकोण से परखना चाहते हैं। हमने जिन साधनों का अवलम्बन किया है, उन्हें तथा हमारी समस्याओं के विशिष्ट स्वरूप को ध्यान में रखते हुए तटस्थ प्रेक्षकों को विवश होकर इसी निष्कर्ष पर पहुँचना होगा कि यद्यपि हमारी सभी आशाओं की पूर्ति न हो सकी, फिर भी हमने अपने उद्देश्य की ओर अग्रसर होने में एक निर्णयात्मक और उल्लेखनीय कदम बढ़ाया है। खूब छानबीन और विश्लेषण करने के उपरान्त वर्किंङ्ग कमेटी इस नतीजे पर पहुँची है, और तदनुसार उसने दीर्घकालीन प्रस्ताव स्वीकार कर लिए हैं।

जैसा कि मैंने १४ अप्रैल, १९४६ के अपने वक्तव्य में स्पष्ट किया था भारत की राजनीतिक और वैधानिक समस्या को सुलझाने के लिए कांग्रेस ने जो योजना प्रस्तुत की है उसका आधार दो मूलभूत सिद्धान्त हैं। कांग्रेस का यह मत था कि भारत की असाधारण परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, देश में एक ऐसी सीमित परन्तु सजीव और शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार की स्थापना अनिवार्य है, जिसके पास कुछ आधारभूत विषय हों। एकात्मक राज्य-पद्धति पर आधारित सरकार इससे अधिक और कुछ नहीं कर सकती कि भारत का विभाजन करके उसे बहुत से स्वतन्त्र राज्यों में बांट दे। इस प्रकार हम देखते हैं कि वह हमारी समस्या को नहीं सुलझा सकती। दूसरा आधारभूत सिद्धान्त प्रान्तों की पूर्ण स्वाधीनता और उनके सभी अवशिष्ट अधिकारों की स्वीकृति था। कांग्रेस का मत यह था कि प्रान्तों को आधारभूत केन्द्रीय विषय छोड़कर शेष सभी अधिकार रहेंगे। परन्तु यदि प्रान्त चाहें तो केन्द्र को ऐसे ही और विषय भी सौंप सकते हैं। यह एक खुला भेद है कि मन्त्रि-मिशन के दीर्घकालीन प्रस्ताव कांग्रेस की योजना में उल्लिखित सिद्धान्तों के अनुसार ही तैयार किये गये हैं।

हाल के शिमला-सम्मेलन में प्रान्तीय स्वायत्त शासन के वास्तविक अर्थ के सम्बन्ध में एक सवाल उठाया गया था। यह सवाल किया गया था कि यदि प्रान्तों को पूर्णतः स्वायत्त शासन प्राप्त रहेगा तो क्या उन्हें यह हक नहीं होगा कि यदि वे चाहें तो दो या उससे अधिक प्रान्त मिलकर कोई ऐसी अन्तर्प्रान्तीय व्यवस्था कर लें जिसे वे अपनी इच्छा से कुछ ऐसे विषय सौंप दें, जिनका संचालन उस संस्था के आधीन हो? प्रान्तीय स्वायत्त शासन के सम्बन्ध में कांग्रेस के जो घोषित विचार हैं, उनके अनुसार इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता।

मन्त्रि-मिशन की योजना का एकमात्र उल्लेखनीय पहलू यही है कि उसमें प्रान्तों को तीन विभागों में रखा गया है। मिशन के प्रस्तावों के अनुसार ज्योंही विधान-परिषद् की बैठक होगी वह अपने-आपको तीन कमेटियों में बाँट लेगी। हरेक कमेटी में सम्बद्ध विभागों के अन्तर्गत प्रान्तों के प्रतिनिधि रहेंगे और वे एक साथ मिलकर यह फैसला करेंगे कि क्या उन्हें कोई गुट बनाना चाहिये अथवा नहीं। मंत्रि-मिशन के प्रस्तावों की धारा १९ में यह बात साफ तौर पर कही गई है कि प्रान्तों को गुट बनाने या न बनाने का पूरा अधिकार है। मिशन यह चाहता है कि प्रान्त इस अधिकार का प्रयोग एक विशिष्ट स्थिति में पहुंचने पर ही करें।

कांग्रेस वर्किंग कमेटी की यह राय है कि, मिशन की चाहे जो भी मंशा रही हो, १६ मई के वक्तव्य से तो ऐसा अर्थ नहीं निकलता। इसके विपरीत समिति का यह मत है कि प्रान्त पूर्णतः स्वाधीन हैं और उन्हें हक है कि वे जब भी चाहें इस सवाल का फैसला कर लें। वक्तव्य की

धारा १५ और प्रस्तावों की साधारण भावना से कांग्रेस की इस व्याख्या का समर्थन होता है। प्रान्तों को अधिकार है कि वे चाहें तो गुट का विधान बनने से पूर्व ही अथवा विधान-परिषद् की कमेटी-द्वारा गुट का विधान बनने और उसके छानबीन कर लेने के बाद फैसला कर सकते हैं।

मुझे यकीन है कि कांग्रेस ने प्रस्तावों का जो अर्थ लगाया है, उसे चुनौती नहीं दी जा सकती। यदि कोई प्रान्त शुरू से ही गुट से बाहर रहना चाहे तो वह ऐसा कर सकता है और उसे गुट में शामिल होने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता।

समझौते की बातचीत के परिणाम का मूल्यांकन करते समय हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि कांग्रेस के सामने दो बड़े उद्देश्य भारत की स्वतन्त्रता और देश की एकता रहे हैं। इन दोनों ही विषयों में कांग्रेस की स्थिति स्पष्ट रही है और कसौटी पर पूरी उतरी है। विधान-निर्मात्री संस्था विशुद्ध रूप से भारतीयों-द्वारा निर्वाचित एक परिषद् होगी। उसे भारत का विधान बनाने और ब्रिटिश कामनवेल्थ और शेष संसार के साथ हमारे सम्बन्ध निर्धारित करने का अमर्यादित और बे-रोक-टोक अधिकार रहेगा। और यह सर्वोच्चसत्ता-संपन्न तथा स्वतन्त्र विधान-परिषद् खंडित भारत के लिये नहीं, बल्कि अखंडित और संपूर्ण भारत के लिये कानून बनायगी। भारत के विभाजन की सभी योजनाएँ हमेशा के लिए खत्म कर दी गई हैं। संघीय सरकार को भले ही सीमित अधिकार रहें, लेकिन वह सजीव और शक्तिशाली होगी और आज भारत में जो कितने ही प्रान्तीय, भाषाजन्य तथा सांस्कृतिक विभेद दिखाई पड़ते हैं, उन्हें एकता के एक सुसंबद्ध सूत्र में पिरो देगी।

रक्षक सरकार की घोषणा (२७-६-१९४६)

नई दिल्ली, बुधवार—आज रात मन्त्रि-मिशन और वाइसराय ने एक घोषणा में बताया कि सरकारी अफसरों की एक अस्थायी रक्षक सरकार बनाई जायगी और एक प्रतिनिधित्व-पूर्ण सरकार की स्थापना के सम्बन्ध में वार्तालाप कुछ समय तक के लिए स्थगित रखा जायगा, जबकि विधान-परिषद् के लिए चुनाव हो रहे होंगे।

पता चला है कि अस्थायी सरकार का स्वरूप यह होगा कि विभिन्न विभागों के सेक्रेटरी वाइसराय के अधीन अपने-अपने विभाग के अध्यक्ष के रूप में काम करेंगे। संभव है कि इनके अलावा वाइसराय की शासन-परिषद् में सिविल सर्विस के एक या दो व्यक्ति बने रहें।

मंत्रि-मिशन शनिवार को भारत से प्रस्थान कर जायगा।

पूरा वक्तव्य इस प्रकार है:—

२६ जून को मन्त्रि-प्रतिनिधि मंडल तथा वाइसराय महोदय ने निम्न वक्तव्य प्रकाशित किया:—

"मन्त्रि-प्रतिनिधि-मंडल तथा वाइसराय को प्रसन्नता है कि अब दो प्रमुख राजनीतिक दलों तथा देशी राज्यों के सहयोग के साथ विधान-निर्माण का कार्य प्रारम्भ किया जा सकता है।

"कांग्रेस और मुस्लिम लीग के नेताओं-द्वारा अपने समक्ष रखे गये इन वक्तव्यों का वे स्वागत करते हैं जिनमें उन्होंने यह विचार प्रकट किया है कि वे विधान-निर्मात्री परिषद् में कार्य करेंगे जिससे वे उसे ऐसी वैधानिक व्यवस्था स्थापित करने का एक प्रभाव-पूर्ण साधन बना सकें जिसके अन्तर्गत भारत पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त कर सके। उन्हें निश्चय है कि विधान निर्मात्री परिषद् के सदस्य, जिनका चुनाव होनेवाला है, इसी भावना से कार्य करेंगे।

"मंत्रि-प्रतिनिधि-मंडल और वाइसराय को खेद है कि अभी तक संयुक्त अन्तर्कालीन

सरकार की स्थापना नहीं की जा सकी है। लेकिन वे इस बात पर दृढ़ हैं कि उनके •१६ जून के वक्तव्य के ८वें पैरा के अनुसार इसकी स्थापना के प्रयत्न फिर जारी किये जायँ।

"परन्तु इस बात को ध्यान में रखकर कि वाइसराय तथा दलों के प्रतिनिधियों को पिछले ३ महीनों में अत्यन्त अधिक कार्य करना पड़ा है, यह विचार किया गया है कि अब आगे कुछ समय के लिये बातचीत स्थगित रखी जाय जब तक कि ,विधान-निर्मात्री परिषद् के चुनाव होते रहें। आशा की जाती है कि जब बातचीत फिर प्रारम्भ होगी तो दोनों प्रमुख दलों के प्रतिनिधि जिन सबने वाइसराय तथा मंत्रि-प्रतिनिधि-मंडल के साथ इस बात में सहमति प्रकट की है कि शीघ्र ही एक अन्तर्कालीन प्रतिनिधि सरकार स्थापित होनी चाहिए, इस प्रकार के संगठन के सम्बन्ध में कोई समझौता करने का यथाशक्ति पूरा प्रयत्न करेंगे।

प्रतिनिधि-मंडल की वापसी

चूंकि नई अन्तर्कालीन सरकार की स्थापना होने तक भारत का शासन-कार्य चलता रहना चाहिए इसलिये वाइसराय का इरादा है कि सरकारी अधिकारियों की एक अस्थायी काम चलाऊ सरकार स्थापित कर दी जाय।

चूंकि मंत्रि-प्रतिनिधि-मंडल को ब्रिटिश सरकार तथा पार्लीमेंट के सम्मुख अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करनी है और अपने काम को फिर सँभालना है जिससे वह ३ मास से भी अधिक समय से अलग रहा है, इसलिए यह संभव नहीं है कि मंडल अब और अधिक दिन तक भारत में ठहर सके। इसलिए उसका विचार शनिवार ता० २६ जून को भारत से प्रस्थान करने का है। इस देश में अतिथि के रूप में उसे जो समादर तथा सौजन्यतापूर्ण व्यवहार प्राप्त हुआ है उसके लिए वह हृदय से धन्यवाद देता है। मंडल को हार्दिक विश्वास है कि अब जो पग उठाये गये हैं उनके द्वारा शीघ्र ही भारतीय जनता की इच्छायें और आशाएँ पूर्ण हो सकेंगी।"

(१६ जून के वक्तव्य का ८वां पैरा इस प्रकार है:—"दोनों प्रमुख दलों अथवा उनमें से किसी एक के द्वारा अन्तर्कालीन सरकार में निर्दिष्ट आधार पर सम्मिलित होने की अनिच्छा प्रकट करने पर वाइसराय का इरादा है कि वे अन्तर्कालीन संयुक्त दलीय सरकार-निर्माण के कार्य में अग्रसर रहें। जो लोग १६ मई, १९४६ के वक्तव्य को स्वीकार करते हैं, यह सरकार उनका यथासंभव अधिक-से-अधिक प्रतिनिधित्व करेगी।")

अखिल भारतीय मुस्लिम लीग ने २७ जुलाई को बम्बई की अपनी बैठक में नीचे लिखे दो प्रस्ताव पास किये :—

६ जून, १९४६ को अखिल भारतीय मुस्लिम लीग की कौंसिल ने मंत्रि-मिशन और वाइसराय के १६ मई के वक्तव्य में उल्लिखित योजना को, जिसका स्पष्टीकरण उन्होंने बाद में अपने २५ मई के वक्तव्य में किया था,—स्वीकार किया था।

मंत्रि-प्रतिनिधिमंडल की योजना, मुस्लिम जाति की इस मांग से कि तत्काल एक स्वतंत्र और सर्वाधिकार संपन्न पाकिस्तान राष्ट्र स्थापित किया जाय, जिसमें मुस्लिम-प्रधान ६ प्रान्त शामिल हों—यद्यपि बहुत कम है, फिर भी कौंसिल ने दस साल तक की अवधि के लिए एक ऐसे संघ-केन्द्र की बात स्वीकार कर ली, जिसके अधीन केवल तीन विषय—अर्थात् रक्षा, विदेश-सम्बन्ध और यातायात् ही रहेंगे, क्योंकि उक्त योजना में कुछ आधारभूत सिद्धान्त और संरक्षण निहित थे और उसके अन्तर्गत विभाग ब और स के ६ मुस्लिम-प्रधान प्रान्तों को संघ-द्वारा किसी प्रकार के भी हस्तक्षेप के बिना अपना प्रान्तीय और गुट-विधान बनाने के उद्देश्य अपना पृथक्-पृथक् गुट

बनाने की व्यवस्था की गई थी; इसके अलावा हम यह भी चाहते थे कि हिन्दू-मुस्लिम गतिरोध को शान्तिपूर्ण उपाय से सुलझा लिया जाय और भारत के विभिन्न लोगों की स्वाधीनता का मार्ग प्रशस्त हो।

इस फैसले पर पहुँचने में, कौंसिल अपने प्रधान के उस वक्तव्य से भी बहुत अधिक प्रभावित हुई थी, जो उन्होंने वाइसराय के समर्थन से दिया था और जिसमें यह कहा गया था कि अन्तरिम सरकार जो कि मिशन की योजना का एक अविच्छिन्न अंग है, एक ऐसे फार्मूले के आधार पर स्थापित की जायगी, जिसके अन्तर्गत मुस्लिमलीग के पांच, कांग्रेस के पांच, सिखों का एक और भारतीय ईसाइयों अथवा एंग्लो-इंडियनों का एक प्रतिनिधि रहेगा। इसके साथ ही उस फार्मूले में यह भी कहा गया था कि महत्त्वपूर्ण विभागों का बँटवारा दो प्रमुख दलों अर्थात् मुस्लिम लीग और कांग्रेस के मध्य समान रूप से होगा।

कौंसिल ने अपने प्रधान को यह अधिकार भी प्रदान किया कि वे अन्तरिम सरकार की स्थापना से सम्बन्ध रखनेवाली अन्य विस्तृत बातों के बारे में ऐसा कोई भी निर्णय और कार्रवाई कर सकते हैं, जिसे वे उचित और जरूरी समझते हों। उसी प्रस्ताव में कौंसिल ने अपना यह अधिकार भी सुरक्षित रख लिया था कि यदि घटनाचक्र को देखते हुए आवश्यकता पड़े तो इस नीति में परिवर्तन और संशोधन किया जा सकेगा।

कौंसिल की राय है कि ब्रिटिश-सरकार ने मुस्लिम लीग के साथ विश्वासघात किया है, क्योंकि मंत्रि-मिशन और वाइसराय अन्तरिम सरकार की स्थापना के लिए कांग्रेस को खुश करने के उद्देश्य से अपने प्रारंभिक फार्मूले अर्थात् ५ : ५ : २ के अनुपात से फिर गये।

वाइसराय ने अपने उस प्रारंभिक फार्मूले से पलट जाने के बाद, जिसका विश्वास करके लीग कौंसिल ने ६ जून को अपना निर्णय किया था, एक नया फार्मूला पेश किया जिसमें ५ : ५ : ३ का अनुपात रखा गया था। और कांग्रेसके साथ काफी समय तक बातचीत करते रहने और उसे मनाने में असफल हो जाने के बाद १५ जून को विभिन्न दलों को सूचित किया कि अन्तरिम सरकार की स्थापना के सम्बन्ध में वे अपना और मिशन का अन्तिम वक्तव्य देंगे।

तदनुसार १६ जून को मुस्लिम लीग के प्रधान को एक वक्तव्य मिला, जिसमें अन्तरिम सरकार की स्थापना के सम्बन्ध में वाइसराय का अन्तिम निर्णय उल्लिखित था। उस वक्तव्य में वाइसराय ने यह बात स्पष्ट कर दी थी कि यदि दोनों प्रमुख दलों में से किसी एक ने भी १६ जून का वक्तव्य अस्वीकार कर दिया तो वे उस बड़े दल और अन्य ऐसे प्रतिनिधियों की सहायता से, जिन्होंने उसे स्वीकार कर लिया होगा, अन्तिरिम सरकार स्थापित करने में अग्रसर होंगे, यही बात १६ जून के वक्तव्य के आठवें पैरे में स्पष्ट रूप से कही गई थी।

कांग्रेस ने अन्तरिम सरकार को स्थापना के सिलसिले में मंत्रि-मिशन का १६ जून का अन्तिम निर्णय भी अस्वीकार कर दिया, जब कि लीग ने उसे निश्चित रूप से स्वीकार कर लिया था—हालांकि यह प्रारंभिक फारमूले से अर्थात् ५ : ५ : २ से सर्वथा विभिन्न था—क्योंकि वाइसराय ने संरक्षणों की व्यवस्था की थी और इसी प्रकार के दूसरे आश्वासन दिये थे, जिनका उल्लेख उनके २० जून, १९४६ के पत्र में किया गया है।

परन्तु वाइसराय ने १६ जून का प्रस्ताव रद्दी की टोकरी में डाल दिया और अन्तरिम सरकार की स्थापना स्थगित कर दी और इसके लिए उन्होंने मंत्रि-मिशन की कानूनी प्रतिभा-द्वारा गढ़े गये झूठे बहाने पेश किये। उन्होंने १६ जून के वक्तव्य के आठवें पैरे का अर्थ अत्यधिक

विवेकहीनता और बेईमानी से लगाया और यह कहा कि चूंकि दोनों बड़े दलों अर्थात् मुस्लिम लीग और कांग्रेस ने १६ मई का वक्तव्य स्वीकार कर लिया है, इसलिए अन्तरिम सरकार की स्थापना के प्रश्न पर दोनों दलों के सलाह-मशविरे से फिर नये सिरे से सोच-विचार किया जायगा।

यदि हम उनकी यह बात मान भी लें, हालांकि इसके लिए कोई आधार नहीं है, तो भी कांग्रेस ने अपनी शर्त-स्वीकृति और उस वक्तव्य की अपनी व्याख्या-द्वारा, जैसा कि कांग्रेस के अध्यक्ष के २५ जून के पत्र और कांग्रेस वर्किंग कमेटी के दिल्ली में पास किये गये २६जून के प्रस्ताव से स्पष्ट है। उस योजना के मूलभूत सिद्धान्तों को ही मानने से अस्वीकार कर दिया और वास्तव में उसने १६ मई का वक्तव्य ही नामंजूर कर दिया और इसलिए १६ जून के अन्तिम प्रस्तावों को किसी भी बिना पर खत्म कर देना न्यायोचित नहीं था।

जहां तक मंत्रि-मिशन और वाइसराय के १६ मई २५ मई के वक्तव्यों में उल्लिखित प्रस्ताव का प्रश्न है, दोनों बड़े दलों में से केवल लीग ने ही उसे स्वीकार किया है।

'कांग्रेस ने उसे स्वीकार नहीं किया, क्योंकि उसकी स्वीकृति बिना शर्त के नहीं है और उसका आधार उनकी अपनी ही व्याख्या है, जोकि मिशन और वाइसराय-द्वारा १६ और २५ मई को अधिकृतरूप से जारी किये हुए वक्तव्य के सर्वथा प्रतिकूल है। कांग्रेस ने यह बात साफ तौर पर कही है कि वह इस योजना की कोई भी शर्त अथवा मूलभूत सिद्धान्त मानने को तैयार नहीं है और उसने केवल विधान-परिषद् में भाग लेना स्वीकार किया है। इससे अधिक उसने और कुछ नहीं किया। इसके अलावा कांग्रेस ने यह भी कहा है कि विधान-परिषद् एक सर्वसत्ता-संपन्न स्वाधीन संस्था है और वह उन शर्तों और आधार का कतई खयाल किये बिना, जिसकी बिना पर वह बनाई जा रही है, जो चाहे निर्णय कर सकती है। बाद में उसने इस बात को अखिल भारतीय महासमिति की बम्बई की बैठक में, जो ६ जुलाई को हुई थी, कांग्रेस के प्रमुख सदस्यों के भाषणों और कांग्रेस के प्रधान पंडित जवाहरलाल के उस वक्तव्य में भी स्पष्ट कर दिया है जो उन्होंने १० जुलाई को बम्बई के पत्र-प्रतिनिधियों की बैठक में दिया था। इतना ही नहीं, पार्लामेण्ट में हुई बहस के बाद भी उन्होंने दिल्ली में दिये गए २२ जुलाई के अपने एक सार्वजनिक भाषण में भी इसे फिर दोहराया है।

इस सब का यह परिणाम निकलता है कि दोनों प्रमुख दलों में से केवल लीग ने ही १६ मई और २५ मई के वक्तव्यों में उल्लिखित प्रस्तावों को अक्षरशः स्वीकार किया है। १३ जुलाई को हैदराबाद दक्षिण से मुस्लिम लीग के प्रधान ने अपने एक वक्तव्य में इस बारे में भारत-मंत्री का ध्यान आकर्षित किया था, लेकिन उसके बावजूद भी हाल में पार्लामेण्ट में जो बहस हुई है, उसके दौरान में न तो सर स्टेफर्ड क्रिप्स ने कामन-सभा में, और न ही लार्ड पेथिक-लारेंस ने लार्ड सभा में किसी ऐसी व्यवस्था पर प्रकाश डालने का कष्ट किया है, जिसके जरिये विधान-सभा को अपने अधिकार-क्षेत्र के बाहर के निर्णय करने से रोका जा सकेगा। इस विषय में भारत-मंत्री ने सिर्फ इतना ही कहना मुनासिब समझा है और यह सद्आकांक्षा प्रकट की है कि, "ऐसा करना उन दलों के प्रति न्यायपूर्ण नहीं होगा जो विधान-परिषद् में शामिल हो रहे हैं।"

एक बार विधान-परिषद् का अधिवेशन बुला लिये जाने पर कोई ऐसी व्यवस्था अथवा शक्ति नहीं है जो कांग्रेस को उसके प्रबल बहुमत की सहायता से कोई भी ऐसा निर्णय करने से रोक सके, जो उसकी अधिकार-सीमा से बाहर हो या जिसके लिए वह असमर्थ हो अथवा वह

निर्णय चाहे इस योजना के कितना ही प्रतिकूल क्यों न हो। बहुमतवाले जैसा भी चाहेंगे फैसला कर लेंगे। कांग्रेस को पहले ही सवर्ण हिन्दुओं के बहुसंख्यक वोट मिल गये हैं, क्योंकि हिन्दुओं के वोटों की संख्या कहीं अधिक थी और इस प्रकार वह जैसा चाहेगी विधान-परिषद् में करेगी—जैसा कि वह पहले ही घोषणा कर चुकी है अर्थात् वह प्रान्तों की गुटबन्दी का आधार ही तोड़ देगी और संघकेन्द्र के क्षेत्र, उसके अधिकारों और विषयों को विस्तृत कर देगी, हालांकि १६ मई के वक्तव्य के १५ वें और १६ वें पैरे में यह बात साफ तौर पर कही गई है कि विधान-परिषद् को केवल तीन विशिष्ट विषयों पर ही सोच-विचार करने का अधिकार है।

मंत्रि-प्रतिनिधि मंडल और वाइसराय ने सामूहिक और पृथक्-पृथक् रूप में कई बार यह कहा है कि मूलभूत सिद्धान्त इसलिए रखे गये थे ताकि दोनों बड़े दल विधान-परिषद् में सम्मिलित हो सकें और जब तक सहयोग की भावना से प्रेरित होकर काम नहीं किया जायगा तब तक योजना को क्रियात्मक रूप नहीं दिया जा सकेगा। कांग्रेस के रवैये से यह बात साफ जाहिर हो जाती है कि विधान-निर्मात्री संस्था के सफलतापूर्वक संचालन की ये आवश्यक शर्तें बिल्कुल खत्म हो चुकी हैं और उनका कोई अस्तित्व ही नहीं है। उसकी इस बात से और कांग्रेस को खुश करने के लिए मुस्लिम जाति तथा भारतीय जनता के कुछ अन्य निर्बल अंगों—विशेषकर परिगणित जातियों के हितों को बलि पर चढ़ा देने की ब्रिटिश सरकार की नीति, और जिस तरह से वह समय-समय पर मुसलमानों को दिये गये अपने मौखिक और लिखित दोनों ही तरह के वायदों और आश्वासनों से पलटती रही है, कोई सदेह नहीं रह जाता कि इस परिस्थितियों में मुसलमानों के लिए विधान-निर्मात्री संस्था में भाग लेना खतरे से खाली नहीं है और अब कौंसिल प्रतिनिधि मंडल के प्रस्तावों को अपनी उस स्वीकृति को वापस लेने का फैसला करती है जिसकी सूचना मुस्लिम लीग के प्रधान ने ६ जून, १९४६ को भारत-मंत्री को दी थी।

प्रत्यक्ष कार्रवाई के सम्बन्ध में लीग का प्रस्ताव

प्रत्यक्ष कार्रवाई के सम्बन्ध में मुस्लिम लीग का प्रस्ताव इस प्रकार है:—

"चूंकि अखिल भारतीय मुस्लिम लीग ने आज मंत्रि-प्रतिनिधि-मंडल और वाइसराय के १६ मई के वक्तव्य में उल्लिखित प्रस्तावों को नामंजूर करने का फैसला किया है, इस कारण जहां एक ओर कांग्रेस की हठधर्मी है, वहां दूसरी ओर मुसलमानों के प्रति ब्रिटिश सरकार का विश्वासघात है। और चूंकि भारत के मुसलमानों ने समझौते और वैधानिक उपाय-द्वारा भारतीय समस्या को शान्तिपूर्ण ढंग से सुलझाने की हर संभव चेष्टा की है और उसे सफलता नहीं मिली, और चूंकि कांग्रेस अंग्रेजों को अप्रत्यक्ष सहायता से भारत में सवर्ण हिन्दू राज्य स्थापित करने पर तुली हुई है और चूंकि हाल की घटनाओं से यह स्पष्ट हो गया है कि भारतीय मामलों में निर्णायक बात न्याय और औचित्य न होकर शक्ति-राजनीति है और चूंकि यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो चुकी है कि भारत के मुसलमानों को तब तक किसी और चीज से सन्तोष नहीं हो सकता जब तक कि स्वतंत्र और पूर्ण सर्वसत्ता-सम्पन्न पाकिस्तान स्थापित नहीं हो जाता और यदि मुस्लिम लीग की मर्जी के बिना मुसलमानों के ऊपर कोई दीर्घकालीन अथवा अल्पकालीन विधान लादने, अथवा केन्द्र में कोई अन्तरिम सरकार स्थापित करने की कोशिश की जायगी तो वह उसका डटकर विरोध करेगी अतः मुस्लिम लीग की कौंसिल को पूरा यकीन होगया है कि अब वह समय आगया है जब कि पाकिस्तान की प्राप्ति के लिए उसे प्रत्यक्ष कार्रवाई के मार्ग का अवलंबन करना होगा और अपने अधिकारों का प्रतिपादन करना होगा और अपनी प्रतिष्ठा को स्थिर

रखना होगा, अंग्रेज़ों की मौजूदा गुलामी तथा सवर्ण हिन्दुओं के भावी प्रभुत्व से छुटकारा पाना होगा।

यह कौंसिल मुस्लिम जाति से अनुरोध करती है कि वह अपने एकमात्र प्रतिनिधित्वपूर्ण संगठन की छत्रछाया में एक होकर सन्नद्ध हो जाय और हर संभव बलिदान देने के लिए प्रस्तुत हो जाय। यह कौंसिल वर्किंग कमेटी को हिदायत करती है कि वह उपर्युक्त नीति को क्रियात्मक रूप देने के लिए तत्काल प्रत्यक्ष कार्रवाई करने का एक कार्य-क्रम तैयार करे और मुसलमानों को उस आगामी संघर्ष के लिए संगठित करे, जो आवश्यकता पड़ने पर शुरू किया जायगा। अंग्रेजों के रुख के विरोध में और क्षोभ के रूप में यह कौंसिल मुसलमानों से अनुरोध करती है कि वे विदेशी सरकार-द्वारा उन्हें प्रदान पदवियों को तुरन्त त्याग दें।

कामनसभा में प्रधानमंत्री क्लेमेण्ट एटली का भाषण (१५-३-४६)

"मुझे इस सभा में अपने मित्रों से जो अभी हाल में भारत से लौटे हैं, भारतीयों के पत्रों से और सभी विचारों के भारत में रहनेवाले अंग्रेजों से पता चला है कि वे इस बात से पूर्णतः सहमत हैं कि इस समय भारत में बड़ी बेचैनी और तनाव पाया जाता है और वस्तुतः यह एक बड़ा गम्भीर मौका है। इस समय भारत में राष्ट्रीयता की लहर बड़ी जोरों से दौड़ रही है और वास्तव में देखा जाय तो संपूर्ण एशिया में ही यह लहर दौड़ रही है।

श्री बटलर का सुझाव यह नहीं था कि सरकार मिशन के वास्तविक विचारणीय विषय प्रकाशित करे। हमने अपने साधारण उद्देश्य घोषित कर दिया है और हमारी यह मंशा है कि प्रतिनिधि-मंडल को उसके काम में यथासंभव अधिक-से-अधिक स्वतंत्रता दी जाय।

मुझे निश्चय है कि सभा का प्रत्येक सदस्य यह अनुभव करता है कि मिशन के सदस्यों ने वाइसराय के साथ मिलकर कितने कठिन काम का बीड़ा उठाया है और कोई भी व्यक्ति ऐसी कोई बात नहीं कहना चाहेगा जिससे उनका यह काम और भी अधिक कठिन हो जाय।

मैं श्री बटलर के इस विचार से पूर्णतः सहमत हूं कि मिशन को वहां रचनात्मक और ठोस दृष्टिकोण बनाकर जाना चाहिए और इसी दृष्टिकोण को लेकर वस्तुतः वे अपना काम करने जा रहे हैं।

श्री एटली ने कहा, "मैं श्री बटलर का उनके बुद्धिमत्तापूर्ण, उपयोगी और रचनात्मक भाषण के लिए धन्यवाद करता हूँ। उन्होंने कितने ही वर्ष तक भारतीय मामलों को निबटाने में बड़ा महत्वपूर्ण कार्य किया है और उनका सम्बन्ध एक ऐसे परिवार से है जिसने बहुत से प्रसिद्ध सार्वजनिक कार्यकर्ता इस देश को दिये हैं।

उन्होंने जिस ढंग से सभा में अपना भाषण दिया है आज हमें ठीक उसी की आवश्यकता है, क्योंकि इस समय इन दोनों देशों के सम्बन्ध के मामले में एक बड़ी ही नाजुक घड़ी है और इसके लिए वातावरण में भी बड़ा ही तनाव पाया जाता है।

यह समय निस्सन्देह कोई निश्चित और स्पष्ट कदम उठाने का है। मैं कोई लम्बा-चौड़ा भाषण नहीं देना चाहता। मेरी राय में ऐसा करना बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं होगा और विशेषकर भूतकालीन घटनाओं का सिंहावलोकन करना अत्यधिक अनुचित होगा। पिछली बातों को फिर से उठा लेना बड़ा आसान है और असाधारण रूप से कठिन इस समस्या के सम्बन्ध में चिरकाल से जो विचार-विनिमय चल रहा है, उसकी असफलता के लिए किसी के मत्थे दोष मढ़ देना भी बड़ा आसान है। इस कठिन समस्या से मेरा अभिप्राय भारत को पूर्णतः एक स्वराज्यप्राप्त राष्ट्र

के रूप में उन्नत करने से है।

भूतकालीन लम्बी अवधि में यह बताना और कहना बड़ा आसान है कि फलां वक्त पर इस पक्ष ने या उस पक्ष ने अपनी गलती से मौका हाथ से खो दिया।

पिछले लगभग २० वर्षों से इस समस्या से मेरा घनिष्ठ संपर्क रहा है और मेरी यह राय है कि दोनों ही पक्षों ने गलतियां की हैं, लेकिन इस बार हमें पिछली बातों का रोना न रोकर भविष्य की ओर अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। इसलिए मैं तो इस प्रकार कहूँगा कि अब हमारे लिए वर्तमान स्थिति में भूतकालीन दृष्टिकोण से इस समस्या पर विचार करना उचित नहीं। १९४६ की परिस्थितियां १९२०,१९३० अथवा १९४२ की परिस्थितियों से सर्वथा विभिन्न हैं। पिछले सब नारे अब खत्म हो जाने चाहिए। कभी-कभी देखने में आया है कि आज से कुछ समय पूर्व अपनी आकांक्षाओं को प्रकट करने के लिए भारतीय जो शब्द ठीक समझते थे आज उन्हें एक ओर छोड़कर नये शब्द और विचारों का प्रयोग किया जा रहा है।

सार्वजनिक विचारधारा को जितना प्रोत्साहन किसी बड़े युद्ध से मिलता है उतना किसी और बात से नहीं। पिछले दोनों महायुद्धों के बीच जिन लोगों का भी इस समस्या से कोई वास्ता रहा है, वे खूब अच्छी तरह से जानते हैं कि १९१४-१८ की लड़ाई का भारतीयों की आकांक्षाओं और विचारों पर कितना गहरा प्रभाव पड़ा था। शान्तिकाल में जिस लहर का वेग अपेक्षाकृत धीमा होता है उसकी गति युद्ध के दिनों में बड़ी प्रचण्ड हो जाती है और खासकर उसकी समाप्ति के बाद, क्योंकि उस लहर को बहुत हद तक लड़ाई के जमाने में प्रश्रय मिल जाता है।

मुझे निश्चय है कि इस समय भारत में राष्ट्रीयता की लहर बड़े जोरों से चल रही है और वास्तव में देखा जाय तो संपूर्ण एशिया में ही लहर बड़ा जोर पकड़ रही है।

आपको हमेशा यह याद रखना होगा कि एशिया के दूसरे हिस्सों में जो कुछ भी होता है उसका भारत पर भी प्रभाव पड़ता है। मुझे खूब स्मरण है कि जब मैं साइमन-कमीशन के सदस्य के रूप में वहां था तो उस समय जापान ने जो चुनौती दी थी उसका एशिया के लोगों पर कितना गहरा प्रभाव पड़ा था और राष्ट्रीयता की यह लहर जो एक सभ्य भारत के लोगों के अपेक्षाकृत एक छोटे से भाग में ही पाई जाती थी, विशेषकर कुछ थोड़े से पढ़े-लिखे लोगों में' वह दिन प्रतिदिन व्यापक-से-व्यापक रूप धारण करती गई है।

मुझे याद है कि साइमन कमीशन की रिपोर्ट के समय यद्यपि उग्रवादियों और नरम दल-वालों के राष्ट्रीय विचारों में काफी अन्तर था और यद्यपि कई मामलों में सांप्रदायिक दावों का इतना अधिक दबाव पड़ा कि राष्ट्रीय विचारधारा को एक ओर रख देना पड़ा, फिर भी हमने देखा कि हिन्दुओं, मुसलमानों, सिखों और मराठों, राजनीतिज्ञों और सरकारी नौकरों—प्रायः सभी में राष्ट्रीय विचारधारा जो पकड़ती जा रही थी और आज मेरा खयाल है कि यह विचार-धारा सभी जगह घर कर चुकी है और शायद कम-से-कम उन सैनिकों में भी राष्ट्रीयता की यह लहर दौड़ गई है, जिन्होंने लड़ाई में इतनी अमूल्य सेवा की है।

इसलिए आज मैं भारतीयों के पारस्परिक मतभेदों पर इतना अधिक जोर नहीं देना चाहता, बल्कि हम सभी को आज यह अनुभव करना चाहिए कि भारतीय लोगों में चाहे कितने ही मतभेद क्यों न हों और इस मार्ग में कितनी ही कठिनाइयां क्यों न हों, भारत के सभी लोगों की यही मांग है।

निस्संदेह कुछ मामलों में हमें भूतकाल का भी आश्रय लेना पड़ेगा, लेकिन इस समय

स्थिति यह है कि हम भारत के सभी नेताओं में अधिक-से-अधिक सहयोग और सद्भाव स्थापित करने की भरसक चेष्टा कर रहे हैं। ऐसी हालत में जो लोग फूंक-फूंक कर कदम रख रहे हैं, उन्हें किसी बन्धन में बांधना अथवा उनके क्षेत्र को सीमित करना हमारे लिए बुद्धिमतापूर्ण नहीं होगा।

मंत्रि-प्रतिनिधि-मंडल भेजने का प्रत्यक्ष कारण यह है कि आप ऐसे जिम्मेदार लोगों को वहां भेज रहे हैं जो फैसला करने की योग्यता रखते हैं। निस्संदेह उनका कार्य-क्षेत्र ऐसा होना चाहिए जिसमें संभवतः उन्हें आश्रय लेना पड़े।

श्री बटलर ने बताया है कि भारत ने युद्ध में कितना महत्वपूर्ण भाग लिया है। श्री एटली ने कहा कि हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि पिछले २५ वर्षों में भारत ने अत्याचार का दमन करने और उसके उन्मूलन में दो बार बहुत बड़ा भाग लिया है। इसलिये क्या यह आश्चर्य की बात है कि आज वह देश—जिसकी ४० करोड़ जनता ने दो बार अपने सुपुत्रों को स्वाधीनता की रक्षार्थ अपना बलिदान देने के लिए भेजा है—यह मांग कर रहा है कि उसे भी अपने भाग्य का निर्णय करने की पूर्ण स्वाधीनता होनी चाहिए ? (करतल-ध्वनि)

मेरे सहयोगी वहां इस उद्देश्य को लेकर जा रहे हैं कि वे भारत को यह स्वाधीनता यथासंभव जल्दी-से-जल्दी और पूर्णतः प्राप्त करने में अपनी ओर से अधिक-से-अधिक सहयोग प्रदान कर सकें। वर्तमान सरकार के स्थान पर कैसी सरकार स्थापित होनी चाहिए, इसका निर्णय स्वयं भारतीयों को ही करना है, किन्तु हमारी इच्छा उसे यह निर्णय करने के लिए तुरन्त कोई व्यवस्था करने में मदद देना है।

ऐसी व्यवस्था करने में आपको प्रारंभिक कठिनाई पेश आ रही है, लेकिन हमने ऐसी व्यवस्था कायम करने का दृढ़ निश्चय कर रखा है और इस काम में भारत के सभी नेताओं का अधिकतम सहयोग प्राप्त करना चाहते हैं।

संसार में भारत की भावी स्थिति क्या होगी, इसका फैसला भी स्वयं भारत को ही करना है, भले हो राष्ट्रसंघ या कामनवेल्थ के जरिये एकता स्थापित हो जाय, किन्तु कोई भी बड़ा राष्ट्र अकेले ही अपने पैरों पर नहीं खड़ा हो सकता, उसे संसार में जो-कुछ हो रहा है, उसमें हाथ बंटाना ही होगा। मेरी यह आशा है कि भारत ब्रिटिश राष्ट्रसमूह में ही रहने का फैसला करे। मुझे निश्चय है कि ऐसा करने में उसे बड़ा लाभ रहेगा। अगर वह ऐसा फैसला करता है तो यह निर्णय उसे स्वेच्छा से और स्वतंत्रतापूर्वक करना होगा, क्योंकि ब्रिटिश राष्ट्रमंडल और साम्राज्य किसी बाहरी दबाव के कारण एक दूसरे से नहीं बँधे हुए हैं। यह तो स्वतंत्र लोगों का स्वतंत्र संघ है।

अगर इसके विपरीत वह स्वतंत्र रहना चाहता है—और हमारी राय से उसे ऐसा करने का पूरा हक है—तो हमारा फर्ज यह होगा कि हम उस परिवर्त्तन को जहां तक हो सके आसान-से-आसान और व्यवस्थित रूप में होने में पूरी-पूरी मदद करें।

श्री एटली ने आगे कहा—"हमने भारत को संयुक्त बनाया है उसे राष्ट्रवाद की एक ऐसी भावना दी है, जिसका गत कितनी शताब्दियों से उसमें अभाव था और उसने हम से प्रजातंत्र और न्याय का सबक भी सीखा है।

जब भारतीय हमारे शासन की आलोचना करते हैं तो उनकी आलोचना का आधार भारतीय सिद्धान्त न होकर, ब्रिटेन-द्वारा प्रतिपादित मापदण्ड ही होते हैं।

श्री एटली ने बताया कि अभी हाल में जब वे अमरीका गये थे, तो उन पर वहां भी एक

घटना का गहरा प्रभाव पड़ा। वे बहुत से प्रतिष्ठित अमरीकियों और भारतीयों के साथ बैठकर खाना खा रहे थे कि यह प्रसंग छिड़ गया किस प्रकार ब्रिटेन-द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों पर अमरीका में अमल हो रहा है। आगे प्रधानमंत्री ने कहा कि उस वार्तालाप के दौरान में यह बताया था कि अमरीका ने ब्रिटेन से बपौती के रूप में बहुत कुछ हासिल किया है।

लेकिन मेरे भारतीय मित्र ने कहा कि कभी कभी अमरीकी लोग यह भूल जाते हैं कि एक बड़ा राष्ट्र भी है जिसने ब्रिटेन से ये सिद्धान्त सीखे हैं और वह राष्ट्र है भारत। हम यह अनुभव करते हैं कि हमारा यह कर्त्तव्य, अधिकार और विशेष हक है, क्योंकि हमने यहां ब्रिटेन में जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है, उन्हें हमने संसार को भी दिया है और स्वयं भी उन पर अमल करते हैं।

आगे उन्होंने कहा कि जब मैं भारत का उल्लेख करता हूँ तो मैं खूब अच्छी तरह से जानता हूँ कि वहां जातियों, धर्मों और भाषाओं की कितनी भरमार और उनके कारण जो कठिनाइयां पैदा होती हैं, उन्हें भी मैं खूब समझता और जानता हूँ. लेकिन इन कठिनाइयों पर केवल भारतीय ही काबू पा सकते हैं।

हम अल्पसंख्यकों के अधिकारों के प्रति जागरूक हैं और अल्पसंख्यकों से निर्भय होकर रहने की सामर्थ्य होनी चाहिए। दूसरी ओर हम किसी अल्पसंख्यक को बहुसंख्यक की प्रगति में बाधक नहीं बनने देना चाहते।

हम यह नहीं बता सकते कि इन कठिनाइयों को कैसे दूर किया जाय। हमारा पहला काम निर्णय करने की शक्ति रखनेवाली कोई व्यवस्था करने का है और मंत्रि-मिशन तथा वाइसराय का यही प्रमुख उद्देश्य है।

हम भारत में एक अंतरिम सरकार स्थापित करना चाहते हैं। आज जिस बिल पर बहस हुई है उसका यह भी एक उद्देश्य है। हम इस दिशा में वाइसराय को अधिक आजादी देना चाहते हैं ताकि उस अवधि में जब कि विधान-निर्माण का कार्य चल रहा हो भारत में एक ऐसी सरकार शासनभार संभाले हुए हो जिसे देश की जनता यथासंभव अधिक-से-अधिक समर्थन और सहयोग प्राप्त हो। मैं विभागों के निर्वाचन में वाइसराय के निर्णय को किसी प्रकार के भी बन्धनों में नहीं बांधना चाहता।

कितनी ही भारतीय रियासतों में बड़ी प्रगति हुई है और ट्रावनकोर में जो परीक्षण हो रहा है, वह विशेष रूप से उल्लेखनीय और आकर्षक है। निस्संदेह भारत में राष्ट्रीयता की जो भावना विद्यमान है उसे उन सीमाओं तक ही महदूद नहीं रखा जा सकता जो रियासतों और प्रान्तों को एक-दूसरे से पृथक् करती हैं।

मुझे आशा है कि ब्रिटेन के राजनीतिज्ञ और भारत के नरेश विभिन्न सम्बद्ध और सम्मिलित भागों को एक-दूसरे के साथ निकट लाने की समस्या को सुलझा सकेंगे और इस मामले में भी हमें यह ध्यान में रखना है कि भारतीय रियासतों को उनका उचित अधिकार अवश्य मिले। मैं एक क्षण के लिए भी यह बात मानने को तैयार नहीं कि भारतीय नरेश भारत की प्रगति में बाधक बनेंगे।

यह एक ऐसा मामला है, जिसका निर्णय स्वयं भारतीयों को ही करना है। मैं भारत में अल्पसंख्यकों की समस्या से भली-भांति परिचित हूं। यदि भारत को भावी वर्षों में व्यवस्थित रूप से अपना काम आगे बढ़ाना है तो मेरा खयाल है कि सभी भारतीय नेता अल्पसंख्यकों की

इस समस्या को सुलझाने की अधिकाधिक आवश्यकता अनुभव करते हैं और मुझे भरोसा है कि विधान में उनके लिए व्यवस्था रहेगी।

मिशन निश्चय ही इस समस्या की अवहेलना नहीं करेगा, लेकिन आप यह नहीं कर सकते कि एक ओर तो भारतीयों को स्वराज्य दे दिया जाय और दूसरी ओर अल्पसंख्यकों का उत्तरदायित्व और उनकी ओर से हस्तक्षेप करने का अधिकार हम यहां अपने हाथ में बनाये रखें।

हम सरकारी नौकरों की तथा उन लोगों की स्थिति से भी भली प्रकार परिचित है, जिन्होंने भारत की महान् सेवा की है। भारत में इतनी अक्लमंदी अवश्य होगी कि वह उन लोगों के प्रति अपनी जिम्मेदारी का अनुभव करे, जिन्होंने इसकी सेवा की है।

जो सरकार वर्तमान सरकार की सम्पत्ति लेगी वह उसकी जिम्मेदारियां भी अपने ऊपर लेगी अर्थात् वर्तमान सरकार की लेनी-देनी उसी पर होगी। इस प्रश्न पर भी हमें बाद में सोच-विचार करना है। इसका सम्बन्ध निर्णय करने के लिए तत्काल स्थापित की जानेवाली व्यवस्था से नहीं है।

जहां तक संधि का प्रश्न है, हम कोई ऐसी चीज़ नहीं करना चाहते जिससे केवल हमें ही लाभ पहुँचता हो और भारत को केवल नुकसान।

मैं इस बात पर फिर जोर देना चाहता हूँ कि हमारे सामने जो काम है वह बड़ा ही नाजुक है। यह समस्या न केवल भारत और ब्रिटिश-राष्ट्र-समूह और साम्राज्य के लिए ही महत्वपूर्ण है, बल्कि संपूर्ण संसार के लिए भी। युद्ध-द्वारा उत्पीड़ित और ध्वस्त एशिया में, जिसकी व्यवस्था अस्त-व्यस्त है। हमारे सम्मुख एक ऐसा क्षेत्र पड़ा है जो प्रजातंत्र के सिद्धान्तों पर अमल करने की कोशिश करता रहा है। मैंने स्वयं सदैव यह अनुभव किया है कि राजनीतिक और प्रबुद्ध भारत सम्भवतः एशिया का पथ-प्रदर्शक और ज्योति बने। यह अत्यधिक दुर्भाग्य की बात है कि ऐसे समय में जबकि हमें ऐसे बड़े-बड़े राजनीतिक प्रश्नों को सुलझाना पड़ रहा है देश के सामने गंभीर आर्थिक कठिनाइयां उपस्थित हों। हमें भारत की खाद्य-समस्या के बारे में विशेष रूप से चिन्ता है।

सभा जानती है कि ब्रिटिश सरकार इस समस्या के बारे में बड़ी चिन्तित है और हमारे खाद्य-मंत्री इस समय भारतीय प्रतिनिधि-मंडल के साथ अमरीका गये हुए हैं। हम इस दिशा में भारत की मदद करने की भरसक चेष्टा करेंगे।

मेरा ख्याल है कि मेरे लिए सामाजिक और आर्थिक कठिनाइयों का जिक्र करना उचित नहीं है। मैं तो सिर्फ यही कहना चाहता हूं कि इन कठिनाइयों को केवल स्वयं भारतीय ही सुलझा सकते हैं, क्योंकि वही भारतीय जीवन के तरीके और दृष्टिकोण से इतनी घनिष्ठता के साथ बँधे हुए हैं। उनकी मदद के लिए हमसे जो कुछ भी बन पड़ेगा, हम करेंगे। मेरे सहयोगी भारत यह दृढ़ निश्चय करके जा रहे हैं कि वे अवश्य सफल होकर लौटेंगे और मुझे निश्चय है कि प्रत्येक व्यक्ति उनकी सफलता की कामना करेगा।

परिशिष्ट ५.

अन्तरिम सरकार के सदस्यों की घोषणा (२५-८-४६)

वाइसराय-भवन से कल केन्द्र में स्थापित होनेवाली प्रथम अखिल भारतीय राष्ट्रीय अन्तरिम सरकार के सदस्यों की घोषणा की गई थी। [illegible] १४ सदस्य रहेंगे, जिनमें से १२ के

नाम घोषित कर दिये गए थे, शेष दो मुसलमान सदस्य बाद में नियुक्त किये जायँगे। नयी सरकार २ सितम्बर को अपना कार्य-भार सँभालेगी। सम्राट् ने वाइसराय की शासन-परिषद् के वर्तमान सदस्यों का इस्तीफा स्वीकार कर लिया है और उनकी जगह निम्नलिखित व्यक्तियों को नियुक्त किया है:—

पंडित जवाहरलाल नेहरू,
सरदार वल्लभभाई पटेल,
डा० राजेन्द्रप्रसाद,
श्री आसफ अली,
श्री सी० राजगोपालाचारी,
श्री शरत्चन्द्र बोस,
डा० जान मथाई,
सरदार बलदेवसिंह,
सर शफात अहमद खां,
श्री जगजीवनराम,
सैय्यद अली जहीर, और
श्री कुवरजी हरमुसजी भाभा।

दो और मुस्लिम सदस्यों को बाद में नियुक्त किया जायगा।

जो नाम प्रकाशित किये गए हैं उनमें पांच हिन्दू, तीन मुसलमान और एक-एक प्रतिनिधि क्रमशः परिगणित जातियों–भारतीय ईसाइयों, सिखों और पारसियों—का भी शामिल है। यह नामावली वही है जिसका उल्लेख १६ जून के वक्तव्य में किया गया है। इसमें केवल पारसियों और मुसलमानों के प्रतिनिधि वही नहीं हैं और साथ ही श्री हरेकृष्ण मेहताब के स्थान पर श्री शरतचन्द्र बोस का नाम है।

वाइसराय का रेडियो-भाषण (२५-८-४६)

"मेरा विचार है कि आपलोग जो भी नई सरकार के निर्माण के विरोधी हैं सम्राट् की सरकार की उस मूल नीति के विरोधी नहीं हैं कि भारत को अपने भाग्य का निर्माण करने की स्वतन्त्रता देकर वह अपने वचनों को पूरा कर दे। मेरा विचार है कि आप इस बात से भी सहमत होंगे कि हमें तत्काल भारतीयों की एक ऐसी सरकार की आवश्यकता है जो देश के राजनीतिक लोकमत का यथासम्भव अधिक से अधिक प्रतिनिधित्व करती हो। इसी के लिए मैंने प्रयत्न प्रारम्भ किया। लेकिन, यद्यपि १४ में से ५ जगहें मुस्लिम लीग को प्रस्तुत की गईं, यद्यपि इस बात के आश्वासन दिये गये कि विधान-निर्माण की योजना निर्धारित पद्धति के अनुसार ही कार्यान्वित की जायगी और यद्यपि नई अन्तर्कालीन सरकार वर्त्तमान विधान के अन्तर्गत ही काम करेगी फिर भी इस संयुक्त दलीय सरकार की स्थापना नहीं की जा सकी है। इस असफलता पर मुझसे अधिक दुःख किसी को नहीं होगा।

मुझ से अधिक किसी और को यह निश्चय नहीं हो सकता कि इस समय भारत के समस्त दलों और वर्गों के हित में एक ऐसी संयुक्त दलीय सरकार की आवश्यकता है जिसमें दोनों प्रमुख दलों के प्रतिनिधि हों। मुझे ज्ञात है कि कांग्रेस के अध्यक्ष पं० जवाहरलाल नेहरू और उनके सहयोगियों का भी इस विषय में इतना दृढ़ विश्वास है जितना मेरा अपना, और मेरी ही तरह वे

भी लीग को सरकार में सम्मिलित होने के लिये प्रेरित करने का प्रयत्न करते रहेंगे।

मुस्लिम लीग के प्रति जो प्रस्ताव रखा गया है और जो अभी तक वैसा ही बना रहा है उसे मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। १४ सदस्यों की सरकार में वह ५ नाम मुझे प्रस्तुत कर सकती है। ६ सदस्य कांग्रेस-द्वारा मनोनीत होंगे और तीन अल्प-संख्यक जातियों के प्रतिनिधि रहेंगे। यदि ये नाम मुझे स्वीकृत हुए और सम्राट् को उनमें कोई आपत्ति न हुई तो उन्हें अन्तर्कालीन सरकार में सम्मिलित कर लिया जायगा और उसका तत्काल नया संगठन किया जायगा।

मुस्लिम लीग को इस बात का भय नहीं होना चाहिए कि किसी भी आवश्यक प्रश्न पर उसे विरोधी बहुमत के कारण पराजित होना पड़ेगा। संयुक्त सरकार केवल इसी शर्त पर बनी रह सकती है और कार्य कर सकती है कि उसमें सम्मिलित दोनों प्रमुख दल संतुष्ट रहें। मैं इस बात की व्यवस्था करूँगा कि सब से अधिक महत्व के विभागों का समुचित विभाजन हो। मुझे हार्दिक विश्वास है कि लीग अपनी नीति पर पुनः विचार करेगी और सरकार में सम्मिलित होने का निश्चय करेगी।

परन्तु इस अवधि में भारत का शासन तो चलता ही रहना है और बड़े २ प्रश्न निश्चय करने को पड़े हैं। मुझे प्रसन्नता है कि देश के राजनीतिक लोकमत के बहुत बड़े भाग के प्रतिनिधि शासन कार्य चलाने में मेरे सहयोगी होंगे। मैं अपनी शासन-परिषद् में उनका स्वागत करता हूँ। मुझे इस बात की भी प्रसन्नता है कि अब सिखों ने विधान निर्मात्री-परिषद् में तथा अन्तर्कालीन सरकार में सम्मिलित होने का निश्चय कर लिया है। मैं समझता हूँ कि निस्सन्देह उनका निश्चय बुद्धिमत्तापूर्ण है।

जैसा कि मैं पहले ही स्पष्ट कर चुका हूँ, सम्राट की सरकार की इस नीति को कि नई सरकार को देश के दैनिक शासन कार्य में अधिकतम स्वतन्त्रता दी जाय मैं पूर्ण रूप से कार्यान्वित करूँगा। प्रान्तीय सरकारों को प्रान्तीय स्वायत्त शासन के क्षेत्र में निश्चय ही बहुत व्यापक अधिकार प्राप्त हैं जिनमें केन्द्रीय सरकार हस्तक्षेप नहीं कर सकती। मेरी नई सरकारको कोई अधिकार नहीं होगा; वस्तुतः उसकी इच्छा ही नहीं होगी कि प्रांतीय शासन-क्षेत्र में वह अनधिकार चेष्टा करे।

कलकत्ते की हाल की घटनाओं ने हमें बड़ी गम्भीरता से यह स्मरण करा दिया है कि यदि भारत को स्वतंत्रता-प्राप्ति के परिवर्तन-काल के बाद जीवित रहना है तो सहनशीलता की बहुत अधिक परिमाण में आवश्यकता होगी। मैं न केवल विचारशील नागरिकों से बल्कि युवकों से और वस्तुस्थिति से असंतुष्ट लोगों से यह अनुरोध करना चाहता हूँ कि वे यह समझ लें कि उन्हें, उनके वर्ग को या भारत को हिंसात्मक शब्दों या हिंसात्मक कार्यों से किसी भी प्रकार के लाभ की सम्भावना नहीं है। यह आवश्यक है कि प्रत्येक प्रांत में कानून और व्यवस्था की रक्षा की जाय, एक दृढ़ तथा निष्पक्ष शक्ति के द्वारा शांतिपूर्ण सामान्य नागरिकों की निश्चित रूप से सुरक्षा की जाय और किसी भी समुदाय को पीड़ित न किया जाय।

कलकत्ते में शान्ति-स्थापना के लिए सेना बुलानी पड़ी और यह ठीक ही था। लेकिन मैं आपको स्मरण दिलाना चाहता हूँ कि सामान्य रूप से शहरी दंगों को रोकना सेना का कार्य नहीं है, बल्कि प्रान्तीय सरकारों का है। सेना का प्रयोग अन्तिम उपाय ही है। शहरी जनता तथा सेना दोनों के ही दृष्टिकोण से इस मौलिक सिद्धान्त को सामान्य रूप से स्वीकार कर लेना आवश्यक है। कलकत्ते में जो सैन्यदल काम में लाये गये उनकी कुशलता और उनके अनुशासन की मैंने बड़ी प्रशंसा सुनी है और इस समय अपने ही सेवा-संगठन की मैं भी अपनी ओर से ऐसे कार्य में

उसके व्यवहार के लिए प्रशंसा करना चाहता हूँ जो सैन्य दलों के सम्मुख पड़नेवाले कार्यों में सब से कठिन और नीरस है।

नई सरकार में युद्ध-सदस्य एक भारतीय होगा और यह एक ऐसा परिवर्तन है जिसका धान सेनापति तथा मैं दोनों ही हृदय से स्वागत करते हैं। लेकिन सेनाओं की वैधानिक स्थिति कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। अपनी शपथ के अनुसार वे अब भी सम्राट के अधीन हैं जिनके और पार्लामेंट के प्रति मैं अब भी उत्तरदायी हूँ।

समस्त तात्कालिक रूप-रचना के होते हुए भी मेरा विश्वास है कि दोनों प्रमुख दलों में समझौते की अब भी सम्भावना है। मुझे बिलकुल निश्चय है कि दोनों दलों में बहुत से लोग ऐसे हैं तथा बहुत से तटस्थ दल के लोग हैं जो इस प्रकार के समझौते का स्वागत करेंगे और मुझे आशा है कि वे इसके लिए प्रयत्न करेंगे। मैं समाचारपत्रों से भी अनुरोध करूँगा कि वे अपने विशाल प्रभाव को संयम और समझौते की ओर लगायें। स्मरण रहे कि यदि लीग सम्मिलित होना स्वीकार करे तो अन्तर्कालीन सरकार का कल ही पुनर्संगठन हो सकता है। इस बीच यह सरकार देश के सामूहिक हित में शासन करेगी, किसी एक दल या वर्ग के हित में नहीं।

यह भी वांछनीय है कि विधान-निर्मात्री परिषद् का कार्य यथासम्भव शीघ्रता के साथ प्रारम्भ होना चाहिये। मैं मुस्लिम लीग को आश्वासन देना चाहता हूँ कि १६ मई के वक्तव्य में प्रान्तीय और समूह विधानों के निर्माण के लिए जो पद्धति निर्धारित की गयी है उस पर पूर्ण रूप से अमल किया जायगा। मंत्रि-प्रतिनिधि-मण्डल के १६ मई के वक्तव्य के १५ वें अनुच्छेद में विधान-निर्मात्री परिषद् के जो आधारभूत-सिद्धांत प्रस्तावित किये गये हैं उनमें किसी प्रकार के परिवर्तन का प्रश्न ही नहीं हो सकता और न इस बात का ही कोई प्रश्न हो सकता है कि किसी भी मुख्य साम्प्रदायिक प्रश्न पर दोनों प्रमुख वर्गों के बहुमत के बिना कोई निर्णय हो सके। कांग्रेस इस बात के लिये उद्यत है कि किसी भी धारा के अर्थों के सम्बन्ध में यदि कोई मतभेद हो, तो उसे संघ-न्यायालय के सम्मुख निर्णय के लिये प्रस्तुत कर दिया जाय।

मुझे हार्दिक विश्वास है कि ऐसी योजना में भाग न लेने के अपने निर्णय पर मुस्लिम लीग पुन विचार करेगी जिसके द्वारा उन्हें भारतीय मुसलमानों के हितों की रक्षा करने और उनके भविष्य का निर्माण करने के लिये इतना व्यापक क्षेत्र प्राप्त होता है।

भारतीय मामलों में हम एक और विषम तथा गम्भीर स्थिति को पहुँच गये हैं। विचारों और कार्यों में इतनी सहनशीलता और गम्भीरता की इससे अधिक आवश्यकता कभी नहीं रही है और कुछ लोगों के असंयत वचन और उत्तेजनापूर्ण कार्य लाखों लोगों के लिये इससे अधिक भयंकर कभी नहीं रहे हैं। यही समय है जब कि किसी भी प्रकार का अधिकार या प्रभाव रखनेवाले भारतीयों को अपने विवेक और संयम से यह दिखला देना चाहिये कि वे अपने देश की सन्तान कहाने के योग्य हैं और उनका देश इस स्वतंत्रता को प्राप्त करने के योग्य है जो उसे मिल रही है।"

श्री जिन्ना का वाइसराय को जवाब (२६-८-४६)

अखिल भारतीय मुस्लिमलीग के प्रधान श्री जिन्ना ने पत्रों के नाम निम्नलिखित वक्तव्य जारी किया है:—

यह खेद की बात है कि शनिवार (२५-८-४६) को वाइसराय ने अपने ब्राडकास्ट भाषण में इस प्रकार का भ्रमात्मक वक्तव्य दिया है जो तथ्यों के सर्वथा प्रतिकूल है। उन्होंने

कहा है कि यद्यपि १४ सीटों में से ५ मुस्लिम लीग को दी गई थीं, यद्यपि उसे यह आश्वासन दिया गया था कि विधान-निर्मात्री योजना पर उल्लिखित कार्यप्रणाली के अनुसार आचरण किया जायगा और यद्यपि नई अन्तरिम सरकार को वर्तमान विधान के अन्तर्गत कार्य करना होगा, फिर भी संयुक्त सरकार बनाना संभव न हो सका। सच तो यह है कि वाइसराय ने २२ जुलाई को मुझे एक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने ऐसे प्रस्ताव रखे थे, जो अन्तरिम सरकार के सम्बन्ध में १६ जून के वक्तव्य में उल्लिखित प्रस्तावों और मुस्लिम लीग को दिये गये आश्वासनों से वास्तव में और काफी हद तक विभिन्न थे। इस पत्र के साथ ही उन्होंने मुझे इसी प्रकार पत्र की एक प्रति भी भेजी थी, जो उन्होंने पंडित जवाहरलाल नेहरू को लिखा था।

यह पत्र मुझे अखिल भारतीय मुस्लिम लीग की कौंसिल की बैठक से एक दिन पहले लिखा गया था और वाइसराय यह बात पूरी तरह जानते थे कि गंभीर स्थिति पैदा हो गई थी और सम्राट् की सरकार की नीति के बारे में गंभीर आशंकाएं और संदेह पैदा हो गये थे, फिर भी उन्होंने २२ जुलाई के अपने पत्र में, कांग्रेस के निर्णय, कांग्रेसी नेताओं की घोषणाओं और आसाम की धारा-सभा-द्वारा विधान-परिषद् में अपने प्रतिनिधियों को दी गई इस हिदायत के बारे में कि उन्हें 'स' गुट से कोई सरोकार नहीं है, और विधान-परिषद् में हमारी स्थिति के बारे में एक शब्द तक भी नहीं कहा।

मैंने वाइसराय को ३१ जुलाई को उत्तर दिया, जिसमें मैंने उनकी नई चाल के बारे में, जिसका उद्देश्य प्रत्यक्षतः कांग्रेस की मांग की पूर्ति थी, अपनी स्थिति साफ-साफ बता दी थी, अन्यथा उनके पास क्या औचित्य था कि वे १६ जून के वक्तव्य में उल्लिखित अन्तिम प्रस्तावों की इस प्रकार अवहेलना करते? क्या वाइसराय महोदय हमें यह स्पष्ट करने का कष्ट करेंगे कि इन प्रस्तावों पर क्यों अमल नहीं किया गया और हमें जो आश्वासन दिये गये थे, उनकी अवहेलना क्यों कर की गई और उनके इस नये प्रस्ताव का उद्देश्य किसे लाभ पहुंचाता है?

३१ जुलाई के मेरे पत्र का उत्तर उन्होंने ८ अगस्त को दिया। यह आश्चर्यजनक बात है कि उन्होंने इस पत्र में लिखा है कि २२ जुलाई के पत्र में उन्होंने जो प्रस्ताव पेश किया था वह वैसा ही प्रस्ताव था जैसा कि लीग की वर्किंग कमेटी ने जून के अन्त में स्वीकार किया था अर्थात् ५ : ५ : ३। जैसा कि मैं ३१ जुलाई के अपने पत्र में बता चुका हूं यह बात बिलकुल गलत है। उन्होंने आगे लिखा है :—

"२९ जुलाई को लीग ने जो प्रस्ताव पास किया है, उसके प्रकाश में, अब मैंने कांग्रेस को अन्तरिम सरकार बनाने के लिए प्रस्ताव पेश करने का आमंत्रण दिया है और मुझे निश्चय है कि यदि वह आपको उचित आधार पर एक संयुक्त सरकार स्थापित करने के लिए आमंत्रित करे तो आप उसे स्वीकार कर लेंगे।"

मुझे इस बात का न तो कोई ज्ञान था और न अब तक है कि वास्तव में वाइसराय और कांग्रेस के नेताओं में क्या बात-चीत हुई, परन्तु पंडित जवाहरलाल नेहरू, जैसा कि मेरा ख्याल है, पूर्वनिश्चित कार्यक्रम के अनुसार मेरे पास १५ अगस्त को आये। यह महज एक रस्मी कार्रवाई थी और उन्होंने अपना यह प्रस्ताव पेश किया कि कांग्रेस १४ सीटों में ५ लीग को देने को तैयार है और शेष ९ सीटों के लिए वह स्वयं नामजद करेगी, जिन में उसकी मर्जी का एक मुसलमान भी शामिल होगा। पंडित नेहरू ने आगे यह भी कहा कि वे वर्तमान विधान के अन्तर्गत शासन-परिषद् नहीं बना रहे, बल्कि वे एक ऐसी अस्थायी राष्ट्रीय सरकार बना रहे हैं जो वर्तमान धारा-

सभा के प्रति उत्तरदायी होगी और उन्होंने १५ अगस्त के मेरे पत्र के जवाब में उसी तारीख के अपने पत्र में यह बात स्पष्ट कर दी कि यद्यपि वे बड़े-बड़े प्रश्नों पर मेरे साथ विचार-विनिमय करने को तैयार हैं, परन्तु उनके पास कोई और नया प्रस्ताव नहीं। इस सिलसिले में उन्होंने लिखा—'शायद आप समस्या पर किसी नये दृष्टिकोण से विचार करने का मार्ग बता सकें'' और जब मैंने वास्तव में एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया तो उन्होंने यह कहकर उसे ठुकरा दिया कि कांग्रेस की स्थिति वही है जो उसने २६ जून को पास किये अपने दिल्ली-प्रस्ताव में निर्देशित की थी, और यह कि १० अगस्त को वर्धा में पास किये गये प्रस्ताव में केवल उसी स्थिति की पुष्टि की गई है। यही बात उन्होंने वाइसराय से भेंट करने के लिए दिल्ली-प्रस्थान करने से पूर्व १६ अगस्त के एक प्रेस-सम्मेलन में भी दुहराई। मैंने पंडित नेहरू को सूचित कर दिया कि इन परिस्थितियों में मेरी वर्किंग कमेटी अथवा अखिल भारतीय मुस्लिम लीग कौंसिल के उनका प्रस्ताव स्वीकार कर लेने की कोई गुंजाइश नहीं है।

उसके बाद से वाइसराय, पंडित नेहरू और कांग्रेसी नेता लगभग एक सप्ताह से मेरी पीठ के पीछे और मेरी जानकारी के बिना विचार-विनिमय और समझौते की बातचीत कर रहे हैं। मुझे इस बारे में इससे अधिक और कुछ नहीं पता कि कल रात एक विज्ञप्ति प्रकाशित की गई है जिसमें अन्तरिम सरकार की स्थापना की घोषणा की गई है तथा वाइसराय ने एक ब्राडकास्ट किया। चूंकि वाइसराय कथित प्रस्ताव का उल्लेख कर चुके हैं और उन्होंने यह बताने का कष्ट नहीं किया कि मेरा उत्तर क्या था, मैं इस सम्बन्ध में अपना और उनका निम्नलिखित पत्र-व्यवहार प्रकाशित कर रहा हूं:—

श्री जिन्ना के नाम वाइसराय का २२ जुलाई, १९४६ का पत्र।

निजी और गोपनीय

प्रिय मि० जिन्ना,

मेरा इरादा यथासंभव शीघ्र-से-शीघ्र वर्तमान रक्षक सरकार की जगह पर एक अन्तरिम संयुक्त सरकार की स्थापना करना है और मैं इस सम्बन्ध में आपके पास मुस्लिम लीग के प्रधान के रूप में और कांग्रेस के प्रधान के सम्मुख निम्नलिखित प्रस्ताव प्रस्तुत कर रहा हूं:—

मेरा ख्याल है कि आप शायद मुझ से सहमत होंगे कि इन गर्मियों और पिछले साल की हमारी बातचीत में पत्रों में प्रकाशन-सम्बन्धी नीति से बड़ी बाधा पड़ी है। इसलिए मैं बातचीत की प्रारंभिक अवस्था में आपके साथ सर्वथा निजी और गुप्त रूप से विचार-विनिमय करना चाहता हूं। इसके लिए मुझे आपका सहयोग अपेक्षित है। मैं चाहता हूं कि यह बातचीत केवल मेरे और दोनों संस्थाओं के अध्यक्षों तक ही सीमित रहे। मुझे आशा है कि आप इस बात का ध्यान रखेंगे कि यह पत्र-व्यवहार तब तक पत्रों तक न पहुंचे जब तक कि हमें यह पता न चल जाय कि हम में कोई समझौता हो सकता है या नहीं। निस्संदेह मैं यह अनुभव करता हूं कि आपको किसी-न-किसी अवस्था में इस सम्बन्ध में अपनी वर्किंग कमेटी की स्वीकृति प्राप्त करनी होगी, लेकिन मेरा यकीन है कि यह अधिक बेहतर होगा कि हम लोग प्रारंभिक कदम के रूप में आपस में समझौते का कोई आधार ढूंढने और उस पर पहुंचने की कोशिश करें।

प्रस्ताव

मैं निम्नलिखित प्रस्ताव आपके विचारार्थ प्रस्तुत करता हूँ:—

(क) अन्तरिम सरकार के सदस्यों की संख्या १४ होगी।

(ख) ६ सदस्य, जिनमें एक परिगणित जातियों का प्रतिनिधि भी शामिल है, कांग्रेस-द्वारा नामजद किये जायँगे। पांच सदस्य मुस्लिम लीग नामजद करेगी। अल्पसंख्यकों के तीन प्रतिनिधि स्वयं वाइसराय नामजद करेंगे, जिनमें से एक स्थान सिखों के लिए सुरक्षित रखा जायगा।

कांग्रेस अथवा मुस्लिम लीग को एक-दूसरे-द्वारा नामजद किये हुए नामों पर आपत्ति उठाने का कोई अधिकार नहीं होगा बशर्ते कि वाइसराय ने उन्हें मंजूर कर लिया हो।

(ग) विभागों का बँटवारा तब तक नहीं किया जायगा जब तक कि पार्टियां सरकार में शामिल नहीं हो जायँगी और अपने-अपने सदस्यों के नाम नहीं पेश कर देंगी। महत्वपूर्ण विभागों का बँटवारा कांग्रेस और मुस्लिम लीग में समान रूप से किया जायगा।

(घ) मैं ऐसे समझौते का स्वागत करूंगा, यदि स्वेच्छा से कांग्रेस उसका प्रस्ताव करेगी क बड़े-बड़े साम्प्रदायिक प्रश्नों का फैसला केवल दोनों बड़े दलों की मर्जी से ही किया जायगा; लेकिन मेरा ऐसा कभी विचार नहीं रहा कि इसे एक नियमित शर्त के तौर पर पेश किया जाय, क्योंकि कोई संयुक्त सरकार किसी और आधार पर चल ही नहीं सकती।

४. मुझे पूरा यकीन है कि आपकी पार्टी उक्त आधार पर भारत के शासन-प्रबन्ध में अपना सहयोग प्रदान करना स्वीकार कर लेगी जबकि दूसरी ओर विधान-निर्माण का कार्य अग्रसर होता रहेगा। मुझे विश्वास है कि इससे यथासंभव अधिकतम लाभ पहुंचेगा। मेरा सुझाव है कि हमें और अधिक समय बातचीत में नहीं लगाना चाहिए, बल्कि प्रस्तावित आधार पर तुरन्त एक ऐसी ही सरकार स्थापित करने में जुट जाना चाहिए। यदि यह न चल सके और आप यह पायें कि स्थिति असन्तोषजनक है तो आपको उस सरकार में से हट जाने की खुली छुट्टी होगी; लेकिन मुझे विश्वास है कि आप ऐसा नहीं करेंगे।

५. कृपया आप मुझे जल्दी ही यह सूचित करने की कोशिश करें कि क्या इस आधार पर मुस्लिम लीग अन्तरिम सरकार में शामिल होने को तैयार है? मैंने इसी तरह का एक पत्र पंडित नेहरू को भी लिखा है, जिसकी प्रति मैं साथ में भेज रहा हूँ।

आपका सच्चा,

(हस्ताक्षर) वेवल।

पुनश्च—मैं पंडित नेहरू से आज दोपहर-बाद दूसरे मामलों पर बातचीत कर रहा हूँ और यह पत्र उन्हें उसी समय दे दूंगा।

उक्त पत्र के जवाब में श्री जिन्ना का ३१ जुलाई, १९४६ का पत्र।

प्रिय लार्ड वेवल,

मुझे आपका २२ जुलाई का पत्र मिला और मैं देखता हूँ कि अपनी अन्तरिम सरकार बनाने के लिए आपने यह चौथा सुझाव पेश किया है। ५:५:२ की बजाय आप ५:५:३ पर आये और फिर ५:५:४ पर, जिसका उल्लेख मंत्रि-प्रतिनिधिमंडल और आपके १६ जून १९४६ के वक्तव्य में किया गया है और जिसे आपने अन्तिम बताया था। और अब आप यह चौथा प्रस्ताव अर्थात् ६:५:३ का पेश कर रहे हैं।

हर बार कांग्रेस ने पिछले तीनों प्रस्ताव रद्दी की टोकरी में डाल दिये, क्योंकि आप उसे खुश करने अथवा संतुष्ट करने में असफल रहे और हर बार आपने उन आश्वासनों की अवहेलना की जिनका उल्लेख २० जून के पत्र में किया गया था।

आपने २० जून के अपने पत्र के ४वें पैरे में यह बात असंदिग्ध रूप से कही है कि अन्तरिम सरकार किसी भी बड़े सांप्रदायिक प्रश्न के बारे में कोई निर्णय नहीं देगी, बशर्ते कि दोनों बड़े दलों में से एक दल के प्रतिनिधियों का बहुमत भी उसका विरोध करेगा। अपने इन नये प्रस्तावों में आप मुझे यह बता रहे हैं कि आप एक ऐसे समझौते का स्वागत करेंगे जिसे यदि कांग्रेस स्वेच्छापूर्वक पेश करे।

चूंकि आपने यह पत्र मुझे लिखा है जो कि विशुद्ध रूप से निजी और अत्यन्त गोपनीय है, अतः मैं यही कह सकता हूँ कि मेरी वर्किंग कमेटी-द्वारा इस प्रस्ताव को स्वीकार करने की कोई गुंजाइश नहीं है।

आपका सच्चा,

(हस्ताक्षर) एम० ए० जिन्ना।

श्री जिन्ना के नाम वाइसराय का ८ अगस्त १९४६ का पत्र

(निजी और गोपनीय)

प्रिय मि० जिन्ना,

अन्तरिम सरकार के सिलसिले में प्रयत्न किये गये अपने प्रस्ताव के जवाब में मुझे आपका ३१ जुलाई का पत्र मिला।

२. मुझे खेद है कि स्थिति ने यह रूप धारण कर लिया है, लेकिन मेरी राय में इस समय उन प्रश्नों पर विस्तृत रूप से सोच-विचार करने से कोई लाभ नहीं होगा जिन्हें आपने अपने पत्र में उठाया है। मैं आपको केवल इतना ही स्मरण दिलाना चाहता हूं कि मैंने अपने पत्र में प्रतिनिधित्व का जो आधार प्रस्तुत किया है, और जिसके जवाब में अपना यह पत्र लिखा है, वही है जो लीग की वर्किंग कमेटी ने जून के अन्त में स्वीकार किया था, अर्थात् ६:५:३।

३. मुस्लिम लीग ने २९ जुलाई को जो प्रस्ताव पास किया है उसे ध्यान में रखते हुए मैंने अब यह फैसला किया है कि कांग्रेस को आमन्त्रण दूं कि वह अन्तरिम सरकार के लिए अपने प्रस्ताव पेश करे और मुझे यकीन है कि अगर वह आपके सामने संयुक्त सरकार में शामिल होने के लिये कोई न्यायोचित प्रस्ताव रखे तो आप उसे तुरन्त स्वीकार कर लेंगे। मैंने कांग्रेस के प्रधान से कह दिया है कि जो भी अन्तरिम सरकार बनाई जायगी उसका आधार मौलाना आजाद के नाम मेरे ३० मई के पत्र में उल्लिखित आश्वासन होंगे।

श्री जिन्ना का वक्तव्य (२७—८—१९४६)

श्री जिन्ना का मूल वक्तव्य इस प्रकार है :—

"वाइसराय के ब्राडकास्ट की मेरे ऊपर यह प्रतिक्रिया हुई है कि उन्होंने मुस्लिम लीग और भारत के मुसलमानों पर गहरा आघात किया है। लेकिन मुझे यकीन है, भारत के मुसलमान इस आघात को धैर्य और साहस के साथ सहन करेंगे, और अपनी असफलताओं से सबक लेंगे ताकि हम अन्तरिम सरकार और विधान-परिषद् में अपना सम्मानपूर्ण और न्यायोचित स्थान प्राप्त कर सकें।

मैं अपना यह प्रश्न एक बार फिर दोहराता हूँ कि मंत्रि प्रतिनिधि-मंडल और वाइसराय ने १६ जून के वक्तव्य में घोषणा की थी कि इनका यह निर्णय अन्तिम है। और इसके अलावा २० जून के अपने पत्र में उन्होंने मुस्लिम-लीग को जो आश्वासन दिये थे—उनसे अब वे क्योंकर मुकर हो गए हैं? १६ जून और २२ जुलाई के मध्य ऐसी कौन-सी घटना हुई है जिसकी वजह से उन्होंने उस फार्मूले में इतना महत्वपूर्ण और काफी परिवर्तन करना उचित समझा और २२

जुलाई और २४ अगस्त के मध्य ऐसी कौन-सी घटना हुई है जिससे प्रेरित होकर उन्होंने आगे कदम बढ़ाया है और एकदलीय सरकार को गद्दी पर बैठा दिया है ?

उन्होंने अपने ब्राडकास्ट में फर्माया है कि वे उन लोगों को संबोधित करके यह भाषण दे रहे हैं जिन्होंने यह राय दी थी कि उन्हें इस समय अथवा इस तरीके से यह कदम नहीं उठाना चाहिए था। दुर्भाग्य से मैं भी उनमें से एक व्यक्ति था और मैं अब भी कहता हूँ कि उन्होंने जो कदम उठाया है वह बहुत ही अविवेकपूर्ण और अदूरदर्शितापूर्ण है और उसके परिणाम बड़े गंभीर और खतरनाक साबित हो सकते हैं, और उन्होंने तीन मुसलमानों को नामजद करके केवल घाव पर नमक छिड़का है और वे यह बात अच्छी तरह से जानते हैं कि इन लोगों को न तो मुस्लिम भारत का सम्मान प्राप्त है और न ही उसका विश्वास। इसके अलावा अभी दो और मुसलमानों के नाम घोषित किए जायँगे।

वे अभी तक वही पुराना राग अलाप रहे हैं कि हम सम्राट् की उस मुख्य नीति के विरोधी नहीं हैं जिसके अनुसार उसने घोषणा की है कि वह अपने वायदे पूरे करेगी और भारत को अपने भाग्य का निर्णय करने की पूरी आजादी देगी। निस्संदेह हम भारत के निम्न लोगों की स्वाधीनता के विरोधी नहीं हैं और हम यह बात बार-बार स्पष्ट कर चुके हैं कि भारतीय समस्या का एक-मात्र हल यह है कि भारत को पाकिस्तान और हिन्दुस्तान में विभक्त कर दिया जाय, जिसके परिणामस्वरूप दो बड़ी जातियों को वास्तविक स्वतंत्रता मिल जायगी और सम्बद्ध राज्य में अल्पसंख्यकों को हर संभव संरक्षण प्राप्त हो जायगा।

संयुक्त सरकार नहीं बन सकी, इसका दुःख मुझे वाइसराय से अधिक है। लेकिन मेरे खेद का कारण उनसे भिन्न है। मुझे खुशी है कि वाइसराय यह अनुभव करते हैं कि वास्तविक आवश्यकता एक ऐसी संयुक्त सरकार की स्थापना है, जिसमें दोनों ही बड़े दल शामिल हों और मुझे यह भी खुशी है कि वे पंडित जवाहरलाल नेहरू और कांग्रेस की तरफ से भी यह कह रहे हैं कि उनके भी ऐसे ही दृढ़ विचार हैं और उनकी कोशिश अभी यह रहेगी कि लीग को सरकार में शामिल होने के लिए मना लिया जाय। मेरी समझ में नहीं आया कि वाइसराय ने अपने ब्राडकास्ट में यह जो कहा है कि उनके प्रस्ताव अब भी कायम हैं, उसका क्या अर्थ है। यह एकदम अस्पष्ट है और इसके अनुसार लीग को ५ सीटें दी जायँगी। इसके अलावा और कोई भी बात साफ-साफ नहीं कही गई।

उन्होंने और भी बहुत-सी बातों का जिक्र किया है, जिनमें मैं इस समय नहीं जाना चाहता। जहाँ तक विधान-परिषद् का सवाल है मुझे नहीं मालूम कि उनके इस कथन का क्या तात्पर्य है कि इस सम्बन्ध में भी मैं आपको याद दिला दूँ कि लीग को यह आश्वासन दिया गया था कि प्रान्तीय-विधान और गुट-विधान के निर्माण के सम्बन्ध में १६ मई के वक्तव्य में उल्लिखित कार्यप्रणाली पर पूरी ईमानदारी के साथ अमल किया जायगा। यह कोई कार्यप्रणाली नहीं है; यह एक बुनियादी और मूलभूत चीज है। सवाल तो यह है कि क्या उसमें किसी प्रकार का भी परिवर्तन किया जा सकता है।

इसके बाद वे फर्माते हैं कि १६ मई के १५वें पैरे में विधान-परिषद् के सम्बन्ध में उल्लिखित मूलभूत सिद्धान्तों में किसी प्रकार के परिवर्तन का सवाल ही नहीं उठता और उन्होंने भी अनुकरण के तौर कह दिया है कि कांग्रेस इस बात के लिए राजी है कि कोई भी विवादास्पद प्रश्न अथवा उस वक्तव्य की व्याख्या का प्रश्न फेडरल कोर्ट के सुपुर्द किया जा सकता है। किन्तु १६

मई के वक्तव्य के मूलभूत सिद्धान्तों और शर्तों के बारे में वे किसी समझौते की आशा कैसे कर सकते हैं जब कि एक दल-मिशन के २५ मई के अधिकृत वक्तव्य के विपरीत अपना अभिप्राय पेश करता है और दूसरा दल उसका और अर्थ निकालता है, जो पहले पक्ष की तुलना में २५ मई के वक्तव्य के अधिक निकट है। लेकिन वे बड़े आत्मसंतोष के साथ यह कहते हैं कि कोई भी झगड़ा अथवा विवादास्पद प्रश्न या व्याख्या फेडरल कोर्ट के सामने निर्णय के लिए रखी जा सकती है। पहले तो इस तरह की कोई व्यवस्था ही नहीं कि ऐसे मामले संघ-दल के सामने रखे जायँ, फिर प्रारंभ में ही विभिन्न दल मौलिक सिद्धान्तों का अलग-अलग अर्थ लगा रहे हैं। क्या हम विधान-परिषद् की कार्रवाई संघ-अदालत में मुकद्दमेबाजी से शुरू करने जा रहे हैं? क्या इसी भावना से प्रेरित होकर हम इस उप-महाद्वीप की ४० करोड़ जनता के लिए भावी विधान बनाने जा रहे हैं?

यदि वाइसराय की अपील में सत्यता और ईमानदारी है, और यदि वे वास्तव में सच्चे हैं तो उन्हें इसे ठोस रूप में पेश करना चाहिए और अपने कार्यों से इसकी सत्यता प्रमाणित करनी चाहिए।"

पं० जवाहरलाल नेहरू का ब्राडकास्ट

"मुझे और मेरे साथियों को भारत सरकार में ऊँचे पदों पर बैठे हुये आज छः दिन होगये हैं। उस दिन इस प्राचीन देश में एक नई सरकार का जन्म हुआ जिसे अन्तर्कालीन या अस्थायी सरकार कहते हैं और जो पूर्ण स्वराज प्राप्त करने की सीढ़ी है। संसार के सभी भागों से और हिन्दुस्तान के हर कोने से हमें हजारों शुभ कामना के सन्देश मिले। और फिर भी हमने इस ऐतिहासिक घटना के मनाये जाने के लिए नहीं कहा, बल्कि यहाँ तक कि लोगों के जोश को दबाया क्योंकि हम चाहते थे वे यह महसूस करें कि हमें अभी और चलना है और हमारे उद्देश्य की प्राप्ति अभी नहीं हुई है। हमारे रास्ते में बहुत मुश्किलें और रुकावटें हैं और हो सकता है मंजिल इतनी नज़दीक न हो जितनी हम समझते हैं। अब किसी भी तरह की कमजोरी या ढीलापन हमारे उद्देश्य के लिये घातक होगा।

कलकत्ते की भयानक दुर्घटना और भाई-की-भाई से निरर्थक लड़ाई के कारण हमारे दिलों पर बोझ भी था। जिस स्वतंत्रता की हमने कामना की थी और जिसके लिये हम पीढ़ियों से कष्ट और मुसीबतें झेलते आये हैं, वह हिन्दुस्तान के सब लोगों के लिए है, किसी एक गुट या वर्ग के या धर्म के लोगों के लिये नहीं। हमारा लक्ष्य सहयोगिता के आधार पर एक व्यवस्था कायम करना था जिसमें बराबर के साझेदार की हैसियत से सभी को जीवन की जरूरी चीजों में हिस्सा मिले। फिर यह झगड़ा, यह आपसी सन्देह और डर क्यों?

आज मैं आपसे सरकारी नीति या भविष्य के कार्यक्रम के बारे में नहीं—वह तो फिर कभी बतलाया जायगा--बल्कि उस प्रेम और संदेश के लिए जो आपने हमें उदारता से भेजा है, आपको धन्यवाद देने के लिये बोल रहा हूँ। उस प्रेम और सहयोग की भावना की हम कद्र करते हैं किन्तु हमारे सामने जो कठिन दिन हैं उनमें हमें इनकी अधिक जरूरत पड़ेगी। एक मित्र ने मुझे यह सन्देश भेजा है! 'मेरी प्रार्थना है कि आप सब विपत्तियों पर विजय पायें। राष्ट्र के जहाज के प्रथम चालक, मेरी शुभ कामना आपके साथ है।' कितना अच्छा सन्देश है पर हमारे आगे अनेक तूफान हैं और हमारा जहाज पुराना, घिसा हुआ और धीमे चलनेवाला है, इसलिये तेज रफ्तार के इस जमाने के लायक वह नहीं है। हमें इसे फेंक कर दूसरा जहाज लेना होगा। परन्तु जहाज कितना ही पुराना और चालक कितना ही कमजोर क्यों न हो जब करोड़ों दिल और

हाथ अपनी इच्छा से सहायता देने को तैयार हैं; हम समुद्र के झकोरे सह सकते हैं और भविष्य का भरोसे के साथ मुकाबिला कर सकते हैं।

उस भविष्य का आज ही निर्माण हो रहा है और हमारा पुराना और प्यारा देश हिन्दुस्तान दुःख-दर्द के बीच एक बार फिर ऊपर उठ रहा है। उसमें आत्म-विश्वास है और अपने लक्ष्य में उसकी श्रद्धा है। वह फिर से जवान हो गया है और उसकी आँखों में चमक है। मुद्दतों तक वह एकतंत्र-संसार में रहा है और आत्म-चिन्तन में खोया सा रहा है। पर अब उसने विशाल दुनिया पर नजर डाली है और संसार की दूसरी कौमों की तरफ दोस्ती का हाथ बढ़ाया है, यद्यपि संसार अभी भी संघर्ष और लड़ाई के विचारों में उलझा है।

अन्तर्कालीन सरकार बड़ी योजना का एक भाग है। उस योजना में विधानपरिषद् शामिल है जो आजाद और स्वाधीन हिन्दुस्तान का विधान बनाने के लिये जल्दी ही बैठनेवाली है। पूर्ण स्वराज्य के जल्द मिलने की आशा के कारण ही हमने यह सरकार बनायी है और हमारा इरादा है हम इस तरह काम करें कि दोनों आन्तरिक और विदेशी मामलों में हम व्यवहार में क्रमशः आजादी हासिल कर सकें। हम अन्तर्राष्ट्रीय कान्फ्रेंसों में पूरा हिस्सा लेंगे, और यह काम हम दूसरे राष्ट्र के पुछल्ले के रूप में नहीं बल्कि एक आजाद राष्ट्र की हैसियत से और अपनी ही नीति से करेंगे।

हमारा इरादा दूसरे राष्ट्रों से सीधे और गहरे मेल-मिलाप बढ़ाने और दुनिया की शान्ति और आजादी के लिए उनसे सहयोग करने का है। जहाँ तक हो सके, हम गुटों की शक्ति-राजनीति से, जो एक दूसरे के खिलाफ होती है और जिसके कारण पहले इतनी लड़ाइयाँ हुई हैं और जो फिर संसार को और भी बड़े संकट में ढकेल सकती है, दूर रहना चाहते हैं। हमारा विश्वास है कि शान्ति और आजादी अविभाज्य हैं। कहीं भी आजादी का अभाव किसी और जगह शान्ति को खतरे में डाल सकता है और लड़ाई तथा संघर्ष के बीज बो सकता है। उपनिवेशों और पराधीन देशों और उनमें रहनेवालों की आजादी में हमारी खास दिलचस्पी है।

सिद्धांत रूप से और व्यवहार में सब जातियों को बराबर मौका मिले, इसमें भी हमारी दिलचस्पी है। जातीयता के नाजी-सिद्धांत का हम तीव्र खंडन करते हैं चाहे वह कहीं भी और किसी भी रूप में प्रचलित हो। हम किसी पर कब्जा जमाना नहीं चाहते और न ही दूसरी कौमों के मुकाबिले में खास रियायतें ही चाहते हैं; पर हम अपने लोगों के लिये चाहे वे कहीं भी जायँ सम्मानपूर्ण और बराबरी का बर्ताव जरूर चाहते हैं। हम उनके खिलाफ भेदभाव नहीं सह सकते।

आन्तरिक संघर्षों, क्लेशों और प्रतिद्वन्द्वों के बावजूद संसार अनिवार्य रूप से निकटतर सहयोग और संसार-व्यापी राष्ट्रमण्डल की स्थापना की ओर बढ़ रहा है। ऐसे राष्ट्रमण्डल की स्थापना के लिये आजाद हिन्दुस्तान कार्य करेगा--वह राष्ट्रमण्डल जिसमें स्वतंत्र सहयोग और स्वतंत्र राष्ट्र हो और जिसमें कोई वर्ग या गुट दूसरे गुट का शोषण न करे।

संघर्षों से भरे अपने पिछले इतिहास के बावजूद हमें आशा है कि हिन्दुस्तान के इंग्लैंड और ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के देशों से मैत्रीपूर्ण और सहयोगपूर्ण सम्बन्ध होंगे। पर राष्ट्रमण्डल के एक भाग में आज जो कुछ हो रहा है उस पर नजर डालना ठीक ही होगा। दक्षिण अफ्रीका में वहाँ की सरकार ने जातीयता के सिद्धांत को अपनाया है और वहाँ एक जातीय अल्पमत के अत्याचार के विरुद्ध हिन्दुस्तानी वीरता से मोर्चा ले रहे हैं। अगर यह सिद्धांत स्वीकार कर लिया गया

तो यह दुनिया को व्यापक संघर्षों और संकटों की ओर ले जायगा।

अमेरिका के लोगों को, जिन्हें विधि ने अंतर्राष्ट्रीय मामलों में निर्णायक भाग दिया है, हम अपनी शुभ कामनाएं भेजते हैं। हमारा विश्वास है कि यह महान दायित्व सब जगह मानवीय शान्ति और आजादी की उन्नति का आधार बनेगा। संसार के उस महान् राष्ट्र-सोवियट यूनियन को भी जिसका दायित्व भी नवसंसार के निर्माण में कम नहीं है—हम शुभ कामनाएं भेजते हैं। रूस और अमेरिका एशिया में हमारे पड़ोसी हैं, और अनिवार्य रूप से हमें बहुत से काम मिलकर करने हैं और एक दूसरे से व्यवहार करना है।

हम एशियावासी हैं और एशियावाले औरों की अपेक्षा हमारे अधिक निकट हैं। भारत की स्थिति ऐसी है कि वह पश्चिमी, दक्षिणी और दक्षिण-पूर्वीय एशिया की धुरी है। बीते काल में भारत की सभ्यता का बहाव इन सब देशों की ओर रहा और उनका प्रभाव भी भारत पर कई तरह से पड़ा। वह पुराना सम्बन्ध फिर कायम हो रहा है और आगे भारत और दक्षिण-पूर्वीय एशिया और भारत और अफगानिस्तान ईरान और अरब राष्ट्रों में फिर से नाता जुड़ने जा रहा है। इन आजाद देशों के परस्पर-सम्बन्ध को हमें और बढ़ाना चाहिये। इंडोनेशिया के स्वतंत्रता-संग्राम में भारत की गहरी दिलचस्पी रही है और आज हम उस देश को अपनी शुभ कामनाएं भेजते हैं।

हमारा पड़ोसी चीन, वह बड़ा देश, जिसका अतीत महान् था, सदा से हमारा मित्र रहा है। अब यह दोस्ती और भी बढ़ेगी और निभेगी। हमारी दिली इच्छा है कि चीन में वर्तमान झगड़े जल्दी ही खतम होजायँ और शीघ्र ही उस देश में एकता और लोकतंत्रता कायम हो, ताकि चीन संसार के शांति-प्रगति के कार्य में हाथ बटा सके।

मैंने घरेलू नीति के बारे में कुछ नहीं कहा है और न ही इस समय कुछ कहने की मेरी इच्छा है। परन्तु हमारी घरेलू नीति के आधार भी वे ही सिद्धांत होंगे जिन्हें हमने सालों से अपनाया है। हम बिसराये हुये जनसाधारण का खयाल करेंगे और उसे मदद देना व उसके जीवन के स्तर को ऊँचा करना हमारा काम होगा। छुआछूत और तरह-तरहकी जबरन लादी हुई असमानता के खिलाफ हमारी लड़ाई चलेगी और हम खास कर उनकी सहायता करने की कोशिश करेंगे जो आर्थिक या किसी दूसरी तरह से पिछड़े हुए हैं। आज हमारे देश में करोड़ों जन भूखे, नंगे और बेघर हैं और बहुत-सारे भुखमरी के द्वार पर हैं। इस तात्कालिक आवश्यकता को मिटाना हमारा जरूरी और कठिन काम है और हमें आशा है कि दूसरे देश अनाज भेजकर हमारी सहायता करेंगे।

इतना ही जरूरी काम हमारे लिए उस कलह को मिटाना है जिसका आज हिन्दुस्तान में बोलबाला है। आपस की लड़ाई से आजादी के उस भवन का हम निर्माण कर सकेंगे, जिसका हम देर से सपना देख रहे हैं। राजनीतिक मंच पर चाहे कुछ भी घटनाएँ घटती रहें, हम सबको यहीं रहना है और यहीं मिलकर गुजर करनी है। हिंसा और घृणा से यह आधारभूत बात बदली नहीं जा सकती। और न ही इनसे भारत में होनेवाले परिवर्तन रुक सकते हैं।

विधान-परिषद् में दलों और गुटबन्दी के बारे में बहुत गर्मागर्म बहस हुई है। हम उन दलों में बैठने को बिलकुल तैयार हैं—और हम इस बात को स्वीकार भी कर चुके हैं—जिनमें गुटबन्दी के प्रश्न पर विचार होगा। अपने साथियों और अपनी ओर से मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि विधान-परिषद को हम ऐसा अखाड़ा नहीं समझते जहाँ जबर्दस्ती किसी के ऊपर कोई मत थोपा जाय। संगठित और संतुष्ट भारत के निर्माण का यह मार्ग नहीं है। हमारी तलाश तो ऐसा सच्चा हल ढूँढने की है जिसके पीछे बहुमत

की सहमति और सद्भावना हो। विधान-परिषद् में हम इसी इरादे से जायँगे कि हम विवादग्रस्त मामलों में भी समान आधार ढूंढ़ सकें और इसलिये जो-कुछ हुआ है और जो कुछ कठोर शब्द कहे गये हैं, उनके बावजूद सहयोग का द्वार खुला रखा है। हम उन्हें भी, जिन्हें हम से मतभेद है, दावत देते हैं कि वे हमारे बराबर के साथी बन कर विधान-परिषद् में आयें वे किसी भी तरह अपने को बँधा हुआ न समझें। हो सकता है जब हम मिलकर समान कार्यों में जुटें तो मौजूदा अड़चनें दूर हो जायँ।

हिन्दुस्तान आज आगे बढ़ रहा है और पुराना ढाँचा बदल रहा है। बहुत देर तक हम दूसरों को कठपुतली बने जमाने की रफ्तार को बेबस हुए देखते रहे। आज हमारी जनता के हाथ में शक्ति आ गई है और अब हम अपना इतिहास अपनी इच्छा के अनुकूल बना सकेंगे। आइये, हम सब मिलकर इस महान् कार्य में जुटें और हिन्दुस्तान को अपने दिल का तारा बनायें—वह हिन्दुस्तान जो राष्ट्रों में महान् शांति और प्रगति के कार्यों में सबसे आगे होगा। द्वार खुला है और भावी हम सबको बुला रही है। हार और जीत का तो सवाल ही नहीं उठता, क्योंकि हम सब को मिलकर साथियों की तरह आगे बढ़ना है। या तो हम सबकी सारी जीत होगी, नहीं तो सभी गड्ढ़े में गिरेंगे। पर असफलता का क्या काम? आइये, हम सब मिलकर सफलता की ओर पूर्ण स्वराज्य की ओर ४० करोड़ जनता के कल्याण और आजादी की ओर बढ़े चलें।

जय हिन्द!"

भारत की वैदेशिक नीति

नेहरू जी की प्रेस-कान्फरेन्स (२७-९-१९४६)

"हिन्दुस्तानी वैदेशिक सर्विस की सृष्टि करने के लिए योजनाएँ बनायी जा चुकी हैं जिससे विदेशों तथा ब्रिटिश साम्राज्य के देशों में कूटनीतिज्ञों के स्थान पर अपने आदमी नियुक्त किये जायँ।"

आज एक प्रेस-कान्फरेन्स में उपरोक्त घोषणा करते हुए भारत-सरकार के वाइस-प्रेसीडेंट और वैदेशिक विभाग के अध्यक्ष पं० जवाहरलाल नेहरू ने कहा कि भारत को कूटनीतिज्ञ स्थानों की पूर्ति करने के लिए ३०० से अधिक व्यक्तियों की आवश्यकता होगी जब कि इस विषय के अनुभवी हिन्दुस्तानी अफसरों की संख्या मुश्किल से इसका छठा अंश होगी।

उन्होंने कहा कि इस सर्विस की सृष्टि करने और इन पदों के लिए अपेक्षित सदस्यों की अपेक्षित भर्ती और शिक्षण की योजनाएँ शीघ्र ही कैबिनट के सामने स्वीकृति के लिए पेश होंगी।

पंडित नेहरू ने कहा कि मध्यपूर्व को एक शुभेच्छा-शिष्टमंडल भेजने की योजना की गयी है, और बिना विधि-विहित व्यवस्था के पूर्वीय और पश्चिमीय युरोप से सम्पर्क स्थापित करने की व्यवस्था कर ली गयी है। यह भी प्रस्तावित किया गया है कि बैंकाक में अन्तर्कालीन कान्सल (राजदूत) और सेगान में वाइस-कान्सल निकट-भविष्य में नियुक्त किये जायं।

पंडित नेहरू ने बतलाया कि सरकार यथासम्भव शीघ्र ही बलूचिस्तान में शासन को मदद देने के लिए सलाहकार समिति नियुक्त करनेवाली है।

"वैदेशिक मामलों के क्षेत्र में भारत स्वतंत्र नीति ग्रहण करेगा, और उसमें परस्पर-विरोधी गुटबन्दी की राजनीतिक शक्ति से दूर ही रहेगी" पंडित नेहरू ने कहा। उन्होंने यह भी कहा कि भारत पराधीन लोगों की स्वतंत्रता के सिद्धान्त का समर्थन करेगा और जहाँ कहीं भी जातीय भेद-

भाव प्रकट होगा यह उसका विरोध करेगा । वह शान्तिप्रिय राष्ट्रों के साथ अंतर्राष्ट्रीय सहयोग और शुभेच्छा के लिए काम करेगा और एक राष्ट्र द्वारा दूसरे के शोषित होने का विरोध करेगा ।

पंडित नेहरू ने वक्तव्य जारी रखते हुए कहा—"यह आवश्यक है कि भारत अंतर्राष्ट्रीय जगत् में अपना पूरा दर्जा हासिल करलेने के बाद, संसार के सभी महान् राष्ट्रों के साथ सम्पर्क करे, और उसका अपने पड़ोसी एशियाई राष्ट्रों के साथ और घनिष्ठ सम्बन्ध हो जाय ।

"जहाँ तक उसके पड़ोसी देशों का सम्बन्ध है, भारत फिलस्तीन, इंडोनीशिया, चीन, श्याम और इंडोचीन तथा इस देश के विदेशी-अधिकृत भागों की प्रगति को दिलचस्पी के साथ देखेगा, और वहां के लोगों की उन आकांक्षाओं के साथ सहानुभूति रखता है जिनके द्वारा वे अपने देशों के लिए शान्ति (जहां अशांति है) और संसार के राष्ट्रमंडल में समुचित स्थान प्राप्त करना चाहते हैं ।

"संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, चीन के साथ भारत का पहले ही से कूटनीतिज्ञ सम्पर्क है । इस प्रकार अब तक जो सम्बन्ध स्थापित हो चुके हैं, वह स्वतंत्र कूटनीतिज्ञ आधार पर स्थापित होकर अधिक मजबूत हो जायँगे ।

"विदेशों में भारत के पृथक् प्रतिनिधित्व को कायम करने के लिए पहला कदम होगा हिन्दुस्तानी वैदेशिक सर्विस की सृष्टि और हमारे कूटनीतिज्ञ राजदूत, व्यापार विशेषज्ञ विदेशों में तथा ब्रिटिश साम्राज्य के सभी देशों में नियुक्त होंगे।

इस सर्विस की सृष्टि के लिये पहले से योजना बनाई जा चुकी है किन्तु उसे कार्य रूप में परिणत करने में कुछ समय लगेगा क्योंकि उनकी संख्या भी काफ़ी है और यह काम भी उसकी क्रियात्मक कठिनाइयों को देखते हुये जटिल है । नवयुवकों को नौकरी में भर्ती कर लेना अपेक्षाकृत आसान काम है और उनके शिक्षण तथा छोटे स्थानों पर उनकी नियुक्ति भी उतनी कठिन नहीं है, क्योंकि वह उन स्थानों से उन्नति करके धीरे-धीरे ऊपर चढ़ सकते हैं । पर अनुमान किया गया है कि हमें इन जगहों के लिये तीन सौ से अधिक व्यक्तियों की आवश्यकता होगी जिसमें उच्च श्रेणी से लेकर निम्न श्रेणी के सामान्य अफ़सर भी आ जायँगे जबकि हमारे पास इस काम को जाननेवाले अनुभवी व्यक्ति इसके षष्टमांश से अधिक नहीं हैं ।

ऐसी अवस्था में भर्ती विभिन्न अवस्था के लोगों की होगी जिसमें अनुभव और योग्यता का ही पूरा ख्याल रखा जायगा । किन्तु चुनाव हो जाने के बाद हमें यह देखना होगा कि उन व्यक्तियों को आगे क्या शिक्षण देना है, क्योंकि सभी के लिए शिक्षण आवश्यक नहीं होगा ।

विदेशों में भारत का पृथक् प्रतिनिधित्व उच्च श्रेणी की सामग्री-द्वारा होना चाहिये और इस बात को सावधानी के साथ देखा जायगा कि सभी श्रेणी के ऐसे लोग, जिनमें आवश्यक योग्यतायें मौजूद हैं, चुनाव के लिये अपनी सेवायें अर्पित करें । पुराने उम्मेदवारों के लिये शिक्षण बहुत संक्षिप्त रखा जायगा । क्योंकि उनकी नियुक्ति यथासम्भव शीघ्र की जायगी । पर इरादा यह है कि नये उम्मेदवारों को अर्थशास्त्र, संसार का इतिहास, वैदेशिक मामलों और विदेशी भाषाओं का समुचित ज्ञान करा दिया जाय और वे अपने शिक्षण-काल का कुछ भाग किसी विदेशी विश्व-विद्यालय में व्यतीत करें, अन्य विवरण—जैसे वेतन, जेबखर्च, परीक्षा के विषय ऐसे हैं जिन पर इस समय विचार हो रहा है ।

इस समय हिन्दुस्तान के राजदूत संयुक्तराष्ट्र अमेरिका और चीन में मौजूद हैं, आस्ट्रेलिया और साउथ अफ्रीका में हाई कमिश्नर हैं (जिनमें से अन्तिम इस समय हिन्दुस्तान में है) और

बर्मा, लंका तथा मलाया में हमारे प्रतिनिधि हैं। कई देशों में हमारे व्यापारिक कमिश्नर भी हैं। नई सर्विस की सृष्टि हो जाने के बाद वर्तमान जगहें अधिक मज़बूत बना दी जायँगी एवं नये स्थान और खोल दिये जायंगे यह आवश्यक होगा कि पूर्वत्व या तरजीह देने की प्रणाली काम में लाई जाय। किन्तु यह स्पष्ट है कि पहिले हमें उन देशों को अपने विचार में लाना होगा, जिनके साथ हमारा पहले से सम्पर्क स्थापित है और जो पूर्व और पश्चिम में हमारे पड़ोसी हैं।

पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त की नीति के बारे में बोलते हुये पं० नेहरू ने कहा—"जहाँ तक सम्भव होगा सरकार शीघ्र ही सभी सम्बद्ध हितों की सलाह से पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त की समस्या को सुलझायेगी। यह प्रश्न अखिल भारतीय महत्व का है, क्योंकि ये जातियाँ भारत के पश्चिमोत्तर मार्ग की रक्षक हैं और इस क्षेत्र की रक्षा और खैरियत हमारे देश की रक्षा के लिए आवश्यक तथ्य हैं।

"मैं यह बात बिल्कुल स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि इस समस्या का विचार करते हुए हमारा इरादा यह नहीं है कि हम इन जातियों को उनकी वर्तमान स्वतंत्रता से वंचित करें जिसकी रक्षा उन्होंने वर्षों से बड़ी वीरता और साहस से किया है और हम उनकी इच्छा के विरुद्ध कोई योजना उन पर लागू करना चाहते हैं। इसका यह मतलब है कि इस समस्या को सुलझाने के लिये सरकार उन लोगों से मित्रतापूर्ण भाव, सहयोग की आकांक्षा रखती है और यही कबाइली समस्याओं को हल करने का, उनकी आर्थिक कठिनाइयाँ दूर करने का और उनकी भलाई चाहने का तथा इस प्रकार उनके साथ पारस्परिक सुखद और लाभदायक सहयोग का ठीक मार्ग है क्योंकि इसके द्वारा उनके पार्श्ववर्ती जमी हुई बस्तियोंवाले जिलों का भी पारस्परिक कल्याण है।

"मैं कह चुका हूँ कि यह प्रश्न अखिल भारतीय महत्व का है। सो बात तो ऐसी ही है, लेकिन इसका एक बड़ा क्षेत्र भी है। पश्चिमोत्तर सीमा के कबाइली क्षेत्र उस अन्तर्राष्ट्रीय सीमा के अन्तर्गत हैं जो हिन्दुस्तान को अपने पड़ौसी दोस्त अफ़गानिस्तानसे जुदा करता है। ऐसी स्थिति में हमारे दोस्त अफ़गानों का भी कुछ अन्तर्राष्ट्रीय कर्तव्य हो जाता है और उनके देश की शान्ति के लिए भी हमें इन कबाइली क्षेत्रों की व्यवस्था करनी पड़ती है। उनको इस बात का विश्वास रखना चाहिये कि इस समस्या का कोई भी नया हल करते समय हम उनके प्रति भी अपने कर्तव्य का पालन करेंगे ?

पं० नेहरू ने बलोचिस्तान के सुधारों की भी चर्चा की और कहा कि यह बात तो विधान-परिषद् के लिये विचारणीय है कि हिन्दुस्तान के नये राजनीतिक शरीर में बलोचिस्तान किस प्रकार भाग लेगा और भविष्य में उसका शासन किस प्रकार होगा इसका निर्णय सम्बद्ध हितों से परामर्श करके विधान-परिषद् करेगी।

"पर बलोचिस्तान राजनीतिक विकास में जिस प्रकार पिछड़ा हुआ है उसको देखते हुये सरकार ने यथासम्भव शीघ्र वहाँ एक सलाहकार कौंसिल बनाने का निश्चय किया है, जिसके सदस्य वहाँ की प्रतिनिधित्वपूर्ण संस्थाओं से लिये जायँगे। यह कौंसिल गवर्नर-जनरल के बलूचिस्तान-स्थित एजेण्ट को सहायता देगी। इसके बाद वहाँ पूर्णतः प्रजातन्त्रीय-प्रणाली शासन-कार्य के लिये जारी कर दी जायगी।

"हर मरहले पर सरकार बलूचिस्तान के निवासियों की सलाह ले लिया करेगी और उनकी देशी संस्थाओं, जिरगाओं आदि की उपेक्षा नहीं करेगी। यह जरूरी हो सकता है कि वहाँ की

स्थानीय स्थिति और लोगों की आकांक्षाओं को देखते हुये प्रजातंत्रीय संस्था के रूप में भी हेर-फेर किया जा सके।

पं० नेहरू ने फिर कहा "संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रति हिन्दुस्तान का रुख पूर्ण और हार्दिक सहयोग का है और वह पूरे तौर से उसके नियमों का पालन करने को तैयार हैं। इसके लिये हिन्दुस्तान उसकी सभी क्रियाशीलताओं और प्रयत्नों में भाग लेगा और उसकी जो कौंसिलें आदि होंगी उनमें भी अपनी भौगोलिक स्थिति, जनसंख्या द्वारा शान्तिपूर्ण प्रगति में उसको सहायता देगा। खासकर हिन्दुस्तानी प्रतिनिधि-मण्डल यह बात स्पष्ट कर देगा कि हिन्दुस्तान सभी उपनिवेशों और पराधीन देशों की आज़ादी और स्वभाग्य-निर्णय के अधिकार का हामी है।

"राष्ट्रसंघ की अगली आम असेम्बली में जानेवाला हिन्दुस्तान का प्रतिनिधि-मण्डल अभी पूरा नहीं हुआ है, पर उसके लिये श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित, नवाब अली यारजंग, मिस्टर चागला, मिस्टर फ्रैंक अन्थोनी, मि० के० पी० एस० मेनन और मि० आर० एम० देशमुख ने आमंत्रण स्वीकार कर लिया है। इस मंत्रिमंडल के लिए सलाहकारों की भी एक मज़बूत और प्रतिनिधित्वपूर्ण संस्था बनेगी।

"भारत के दृष्टिकोण से उस असेम्बली में सब से महत्त्वपूर्ण विचारणीय विषय होगा दक्षिणी अफ्रीका के विरुद्ध। ऐसा समझा जाता है कि दक्षिणी अफ्रीका यह विचार प्रकट करेगा कि यह मामला आम एसेम्बली का विचारणीय विषय नहीं है क्योंकि यह उसका घरेलू विषय है। परन्तु भारत-सरकार इस विषय से सहमत नहीं हो सकती। उसके विचार से दक्षिणी अफ्रीका के हिन्दुस्तानियों के साथ जैसा व्यवहार हो रहा है वह बुनियादी तौर पर नैतिक और मानवीय मामला है। संयुक्त राष्ट्रसंघ की नियमावली के उद्देश्य और सिद्धान्त को देखते हुए जनरल असेम्बली इसकी उपेक्षा नहीं कर सकती।

"एक और महत्त्वपूर्ण विषय होगा नयी अन्तर्राष्ट्रीय ट्रस्टीशिप-पद्धति। हिन्दुस्तानी प्रतिनिधि-मण्डल इस बात पर जोर देगा कि सभी देशों में वहाँ के निवासियों को हर सर्वोच्च अधिकार प्राप्त हों। अगर किसी कारण से शीघ्र ही आज़ादी न दी जा सके तो भारत को इसमें कोई आपत्ति न होगी कि ऐसे देश को संयुक्त राष्ट्र के ट्रस्टीशिप के अधीन कुछ समय के लिए रख दिया जाय। प्रतिनिधि-मण्डल का रुख यह होगा कि सभी एशियावासी और पराधीन देश आज़ादी के लिए इकट्ठे हो जायँ और इस तरह विदेशी नियन्त्रण से छुटकारा पा लें, क्योंकि संसार में शांति और प्रगति क़ायम करने का यही एक मार्ग है।

"दूसरा महत्त्वपूर्ण विषय है दक्षिणी अफ्रीका-द्वारा दक्षिण पश्चिमीय अफ्रीका के अधिकृत शासनादेश प्राप्त क्षेत्रों को हड़प जाने की आशंका। इस प्रस्ताव का विरोध हिन्दुस्तानी प्रतिनिधि-मंडल सिद्धान्त की दृष्टि से करेगा। भारत-सरकार का विचार है कि ऐसे शासनादेशप्राप्त क्षेत्र को शासनादेश या ट्रस्टीशिप के अन्तर्गत नहीं लाया जा सकता, और उसका सर्वोच्च अधिकार वहां के निवासियों को होना चाहिए जिनकी इच्छाएं और हित ही सर्वश्रेष्ठ समझे जाने चाहियें, भारत-सरकार की दृष्टि से ठीक मार्ग यह होगा कि दक्षिण पश्चिमीय अफ्रीका को पहिले तो संयुक्त राष्ट्र की आम असेम्बली के ट्रस्टीशिप कौंसिल के अधीन कर दिया जाय और फिर उसके भविष्य पर विचार किया जाय।

विचारणीय विषयों में दो मदें ऐसी हैं जो सुरक्षा समिति की पाँच महान् शक्तियों के प्रतिरोध-सम्बन्धी सुविधाओं से सम्बन्ध रखती हैं। सम्बद्ध देश वाले सुरक्षा समिति को कोई और

नाम दे सकते हैं—जैसे 'महान् शक्तियों के एकमत का शासन'। इस विवादास्पद विषय के बारे में हमारे प्रतिनिधि-मण्डल का रुख यह होगा कि यद्यपि सिद्धान्त की दृष्टि से हिन्दुस्तान आवश्यक रूप से ऐसी गणतन्त्र-विरोधी व्यवस्था को विशेषाधिकार में सम्मिलित करने को पसन्द न करेगा, फिर भी वह महान् शक्तियों में एकता और सहयोग राष्ट्रसंघ के ढांचे के अन्तर्गत कायम रखने के हक में है और इस स्थिति को हानि पहुँचाने के लिये कुछ भी नहीं करेगा।" पेरिस की शान्ति-परिषद् के बारे में बोलते हुए पं० नेहरू ने कहा—"पेरिस में इस समय, इटली, रूमानिया, बलगारिया, हंगरी, और फिनलैण्ड में शान्ति स्थापन की शर्तें तैयार करने के लिए शांति-परिषद् जो बैठक कर रही है उसका काम खेदजनक सुस्ती के साथ हो रहा है। जहाँ-कहीं भी सभव हुआ है हिन्दुस्तानी प्रतिनिधि-मण्डल ने अच्छे समझौते का स्वतन्त्र मार्ग ग्रहण किया है और ऐसे प्रस्तावों का समर्थन किया है जो सामान्यत: न्यायपूर्ण ढंग से समस्याओं का समाधान चाहते थे। हमारे प्रतिनिधि-मण्डल ने शान्ति-परिषद् के सामने उपस्थित प्रत्येक समस्या को मानवीय दृष्टिकोण से स्पष्ट रूप से अपने सामने रखा है।

"दो कारणों से हिन्दुस्तान इटली की क्षतिपूर्ति के मामले में अलग-थलग ही रहा है। पहला तो यह है कि जिन देशों को क्षति-पूर्ति की रकम पाने का अधिकार है और उन्हें मिल रही है उसे घटाने के बारे में हिन्दुस्तान कुछ नहीं कहना चाहता और दूसरी बात यह है आर्थिक क्षति-पूर्ति के लिए जो बोझ लेकर इटली को ऊँची चोटी पर चढ़ना है उसको और भारी बना देने की इच्छा हिन्दुस्तान की नहीं है। तो भी प्रतिनिधि-मण्डल ने अपने इस अधिकार को सुरक्षित रखा है कि इटली को हिन्दुस्तान से जो कुछ पावना है उसके बारे में हिन्दुस्तान अपनी युद्ध-विषयक राष्ट्रीय क्षति-पूर्ति की मांग की रकम मुजरा ले सके तथा और भी अन्य दावों की पूर्ति कर सके।

"इटली के जो उपनिवेश अफ्रीका में उसके हाथ से निकल गये उनके बारे में हिन्दुस्तान का भावी रुख पूर्णत: प्रकट कर दिया गया है और इस मामले पर कल बहस समाप्त हो गई है, फिर भी कोई आखिरी फ़ैसला करने के पहले यह विश्वास दिलाया गया है कि उसपर हिन्दुस्तान की सलाह ली जायगी। अन्य देशों से हिन्दुस्तान के सम्बन्धों के बारे में पं० नेहरू ने निम्नलिखित विवरण उपस्थित किया।

पूर्वी अफ्रीका

"पूर्वी अफ्रीका के तीन उपनिवेशों में जो इमिग्रेशन (प्रवासी) बिल पेश हुए हैं उससे हिन्दुस्तान में तथा उन उपनिवेशों में रहनेवाले प्रवासी हिन्दुस्तानियों में बहुत बड़ा आतंक फैल गया है। राजा सर महाराजसिंह के नेतृत्व में प्रतिनिधि-मण्डल ने उन उपनिवेशों के हिन्दुस्तानियों, अफ्रीकनों, यूरोपियनों और अन्य जातिवालों से सम्पर्क स्थापित किया है और भारत सरकार उनकी रिपोर्ट की प्रतीक्षा कर रही है।

लंका

"दुर्भाग्यवश उस समय से हमारे और लंकाके सम्बन्धों में एक तरह की अड़चन उपस्थित हो गई है। हाल के महीनों और वर्षों में उसके कारण वहाँ बहुत-सी घटनाएँ हुई हैं जिनका असर यह हुआ है कि हिन्दुस्तानी लोकमत आंदोलित हो उठा है।

"फिर भी हमने भरसक कोशिश की है और करते रहेंगे कि हम लंका निवासियों और वहां की सरकार से मित्रतापूर्ण व्यवहार रखें, क्योंकि यह अनिवार्य है कि भविष्य में लंका और

हिन्दुस्तान के निवासी साथ-साथ आगे बढ़ें और हम नहीं चाहते कि हम में किसी प्रकार की अनबन हो।

पं० नेहरू ने कहा कि वे लंका जाने के लिए हर कोशिश से काम लेंगे पर वे निश्चित रूप से नहीं कह सकते कि कब जा सकेंगे।

बर्मा

मेजर-जनरल यांगसेन की अध्यक्षता में बर्मा में नई सरकार स्थापित करने के प्रस्ताव का स्वागत करते हुए पं० नेहरू ने कहा—हम अनेक दृष्टियों से इसका स्वागत करते हैं। पहले तो इस आशा से कि इसके द्वारा बर्मा को जल्द आजादी मिल जायगी और दूसरे इसलिये कि हमें आशा ही नहीं विश्वास है कि हमारी सरकार और नई बर्मा सरकार के साथ मित्रतापूर्ण और हार्दिक सम्बन्ध स्थापित हो जायगा।

पं० नेहरू ने बर्मा के नये गवर्नर के प्रति कृतज्ञता प्रकाशित की कि उन्होंने कुछ हिंदुस्तानियों के खिलाफ़ चलनेवाले मामलों को रोक दिया है।

मलाया

"यहाँ भी अवस्था बहुत अच्छी नहीं है। भारत-सरकार और कांग्रेस ने जो मिशन वहाँ भेजे थे वे बहुत अच्छा काम करके लौट आये हैं। सरकार ने वहाँ के प्रवासी हिन्दुस्तानियों की सहायता के लिये १० लाख रुपये भेजे भी हैं।"

हजयात्रा—पं० नेहरू के विभाग ने हिन्दुस्तान से इक्कीस हज़ार हज यात्रियों के सफ़र का प्रबन्ध किया है पर अभी चार या पांच हजार यात्री जाने को तैयार हैं। जब से पं० जी ने अपना पद सँभाला तब से और जहाज़ों का प्रबंध करने की चेष्टा की गई है और आशा है कि बारह सौ या पन्द्रह सौ यात्रियों के लिये एक और जहाज़ मिल जायगा। कुछ यात्री हवाई जहाज़ से भी भेजे गये हैं। अमेरिकन अधिकारियों से भी जहाज़ के लिये लिखा-पढ़ी हो रही है और उन्होंने कोशिश करने का वादा भी किया है पर सफलता कब मिलेगी, नहीं कहा जा सकता।

हिन्दुस्तान के वैदेशिक सम्बन्ध के बारे में प्रश्नों का उत्तर देते हुए पं० नेहरू ने कहा—"यह स्पष्ट है कि भविष्य में हमें दो बातें करनी पड़ेंगी; एक तो अधिक संख्या में कूटनीतिज्ञ प्रतिनिधि रखने होंगे और दूसरे उनसे सीधा व्यवहार रखना पड़ेगा। यह स्वाभाविक है कि अक्सर हम अपनी कार्य-शीलता की सूचना सम्राट् की सरकार को देते रहेंगे। लेकिन खास बात यह है कि आदेश और सलाह हिन्दुस्तान से हमारे प्रतिनिधियों को दी जाया करेगी; लन्दन के वैदेशिक-कार्यालय से नहीं। हमें आशा है कि शीघ्र ही कुछ देशों में हम अपने कूटनीतिज्ञ प्रतिनिधि रख सकेंगे और उसका श्रीगणेश अमेरिका और चीन से करेंगे। इस समय हमारे एजेन्ट-जनरल नानकिंग और वाशिंगटन में हैं और हम इस सम्पर्क को बढ़ा सकते हैं। हम उन्हें ऊंचा दर्जा दे सकते हैं और उन सरकारों से सीधा सम्बन्ध कायम कर सकते हैं।

"इसी प्रकार का सम्बन्ध हम रूससे भी चाहते हैं पर इस समय तक वह स्थापित नहीं हो सका है, क्योंकि हम उसके लिये अभी कोशिश ही कर रहे हैं। हम सभी दृष्टिकोणों से इस संबंध का विकास करना चाहते हैं क्योंकि रूस का महत्त्व आज सारे संसार में प्रधान है। सोवियट संघ हमारा पड़ोसी है और पड़ोसियों के साथ पड़ोस का सम्बन्ध रखना सदा वांछनीय होता है।" यह पूछने पर कि नानकिंग और वाशिंगटन में हमारे प्रतिनिधियों का क्या दर्जा होगा। पं० जवाहरलाल नेहरू ने कहा कि "अभी तक उनके पदों का निर्णय नहीं हुआ है पर सम्भवतः उन्हें राजदूत बनाया

जायगा। भारत-सरकार विधि विहित ढंग से योरप के विभिन्न देशों से सम्पर्क स्थापित करेगी, जिसमें फ्रांस भी सम्मिलित होगा और इस बात का निश्चय भी हो जायगा कि वे देश हमारे साथ किस प्रकार के प्रतिनिधियों का विनिमय करना चाहते हैं। रूस और एशिया के विभिन्न देशों पर भी यही बात लागू है। मध्यपूर्व के देशों—मिश्र, ईरान, इराक़ को भी सरकार अपना स्वेच्छ-मिशन भेजना चाहती है, जिसका उद्देश्य कोई खास राजनैतिक सन्देश ले जाना नहीं, बल्कि शुभेच्छा, मित्रता और घनिष्ट सम्बन्ध के लिए हमारी इच्छा और कूटनीतिक तथा सांस्कृतिक मामलों में हमारे सम्पर्क-स्थापन का सन्देश ले जाना हैं।

"हमें आशा है कि मौलाना अबुलकलाम आज़ाद इस मिशन के नेतृत्व के लिये हमें प्राप्त हो सकेंगे। युरोप भेजे जानेवाले मिशन के व्यक्तियों का नाम अभी चुना नहीं गया, पर आशा की जाती है उसके बारे में कृष्ण मेनन (इण्डिया लीग लन्दन के अध्यक्ष) भी सहायकों में एक होंगे। मैं नहीं जानता कि श्रीयुत मेनन रूस जा सकेंगे या नहीं। यह बाद की व्यवस्थाओं पर निर्भर करेगा।

यह पूछने पर कि क्या हिन्दुस्तान अंतरराष्ट्रीय परिषद् के लिये कोई और स्त्री-प्रतिनिधि भेजना चाहती है क्योंकि श्रीमती पंडित को तो राष्ट्रसंघ की आम एसेम्बली के लिये भेजा जा रहा है, पं० नेहरू ने कहा "हम स्त्रियों को न केवल अन्तर्राष्ट्रीय परिषदों में भेजना चाहते हैं बल्कि उन्हें स्थायी रूप से मिनिस्टर और राजदूत भी नियुक्त करना चाहते हैं।"

लन्दन के हाई कमिश्नर के दफ्तर की बाबत सवाल करने पर पं० जी ने कहा कि, "अभी तक इस कार्यालय ने मुश्किल से किसी राजनीतिक मामले को हाथ में लिया है। अभी तक तो वह, तनखाहों, पेन्शनों और कुछ इधर-उधर के कामों में ही व्यस्त रहा है, पर अब यह स्पष्ट है कि परिवर्तित परिस्थित में यह दफ्तर—चाहे इसका नाम कुछ भी क्यों न रखा जाय—भूतकाल की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण बन जायगा।

यह पूछनेपर कि क्या अन्तर्राष्ट्रीय-परिषद्में कोई ऐसी अनिश्चित घटना आप पहले से देख सकते हैं जिसको लेकर हिन्दुस्तान की नीति ब्रिटेन की नीतिके विरुद्ध पड़े? पं० जी ने कहा "भूत-काल में भी भारतने कुछ हदतक ब्रिटिश प्रस्तावों के विरुद्ध वोट दिये हैं? यह पहले भी हो चुका है और अब भी ऐसे अवसर आ सकते हैं। यह स्वाभाविक बात है कि भारत किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् में या अन्यत्र लोगों से लड़ने-झगड़ने नहीं जाता बल्कि जहाँ तक हो सके अपना काम अपने ढंग से करने के लिये जाता है। यह हमेशा सम्भव नहीं है कि ऐसी परिषदों में कोई अपने ही ढंग से काम कर सके, क्योंकि उसमें सभी ढंगों और दलों के लोग होते हैं और जो मामला बहुत सीधा-सादा होता है वह वास्तव में ऐसा नहीं है, क्योंकि उसकी पृष्ठ-भूमि बड़ी कठिन होती है; पर ऐसे भी मौके आ सकते हैं जब हिन्दुस्तान किसी भी देश—जिसमें इंगलैण्ड भी शामिल है—के विरुद्ध खड़ा हो।

पं० नेहरू ने बतलाया कि "अगर नई सरकार पेरिस-परिषद् में गये हमारे प्रतिनिधि-मंडल के सदस्यों के नामों में कुछ अदल-बदल करना चाहती तो वह वैसा कर सकती थी। पर परिषद् की तत्कालीन स्थिति समझते हुये उन्होंने उसमें कोई परिवर्तन करना ठीक नहीं समझा। किन्तु प्रतिनिधि या डेलीगेट चाहे जो हों और उनकी पृष्ठ भूमि चाहे जैसी हो, यह तो स्पष्ट है कि वे यहाँ से भेजे हुये आदेशों के अनुसार काम करते हैं। हो सकता है कि कुछ मामलों में उन्हें कोई आदेश न प्राप्त हो, क्योंकि परिषद् की कार्यवाही में बहुत से संशोधन सहसा और अधिक संख्या

में आजाते हैं, और इसलिये उनके साथ चलना मुश्किल हो जाता है। ऐसी अवस्था में हमारे प्रतिनिधि बड़े आदेशों की सीमा में रहते हुये अपनी इच्छा का उपयोग कर सकते हैं।

पं०नेहरू ने फिर कहा कि विभिन्न देशोंमें भारत के प्रतिनिधियोंका कार्यकाल या तो समाप्त हो चुका है या शीघ्र होने जा रहा है और सरकार के सामने नई नियुक्तियों का सवाल पेश है। एक सवाल के जवाब में पं० जी ने बतलाया कि अन्य देशों में हमारे प्रतिनिधियों का दर्जा वही होगा जो उन देशवालों के प्रतिनिधि का हमारे देश में होगा। अगर हम वाशिंगटन या नानकिंग को अपने राजदूत भेजेंगे तो अमेरिका और चीन भी अपने राजदूत नई दिल्ली भेजेंगे। आस्ट्रेलिया के वैदेशिक सचिव ने भारत-सरकार को सूचित किया है कि वहां की सरकार यहाँ रहनेवाले अपने हाई कमिश्नर का दर्जा मिनिस्टरों के समान बना देना चाहती है। यह इसलिये स्वाभाविक है कि आस्ट्रेलिया में भेजा गया हमारा प्रतिनिधि भी मिनिस्टर के समान दर्जे का हो जायगा। यह पूछने पर कि क्या हम अन्तर्राष्ट्रीय-परिषद् में औपनवेशिक देशों के सहयोग से एक संगठन के रूप में काम करेंगे? पं० नेहरू ने कहा कि इस मानी में तो हम एक संगठन के रूप में जरूर काम करेंगे कि जिस ओर यह संगठन जायगा उसका हम अनुसरण करेंगे। हम इस संगठन के देशों से सलाह लेंगे और उसे अपने विचार का बनाने की कोशिश करेंगे। अगर हम सफल न हुए तो अपना मतभेद प्रकट करेंगे और अपने रास्ते का अनुसरण करेंगे।

पं० नेहरू ने आगे कहा कि, "भूतकाल में हिन्दुस्तानी प्रतिनिधि ब्रिटिश प्रतिनिधियों का अनुसरणमात्र करते रहे हैं। लगभग पन्द्रह-बीस वर्ष पहले इन प्रतिनिधियों की नियुक्ति या तो भारतमंत्री भारत-सरकार की सलाह से किया करते थे अथवा भारत-सरकार भारतमंत्री के परामर्श से। पर यह बात धीरे-धीरे दूर होती गई है। यद्यपि इसका अंश अभी तक शेष है। मेरा विश्वास है कि इन परिषदों में हिन्दुस्तानी प्रतिनिधि एशिया के अन्य देशों के प्रतिनिधियों से अधिक परामर्श करने लगे हैं, क्योंकि वे इस बात का अनुभव करते हैं कि कुछ हित ऐसे हैं कि जिनकी रक्षा वे सब मिलकर ही कर सकते हैं। सामान्यतया अन्तर्राष्ट्रीय-परिषदों, संस्थाओं और कमीशनों में एशिया के प्रतिनिधियों की संख्या बहुत कम होती है और युरोपवालों की बहुत अधिक। जब कभी कोई ऐसा सवाल आया है जिसका सारे ऐशिया से सम्बन्ध है तो सभी एशियावासी प्रतिनिधि एक हो गये हैं और मिश्र आदि ने भी उन्हें सहयोग दिया है।

पं० नेहरू ने कहा कि यह तो बहुत स्पष्ट तथ्य है कि हिन्दुस्तान इन्डोनेशिया के प्रजातंत्र से पूरी सहानुभूति रखता है। हम चाहते हैं कि इन्डोनेशिया को पूरी आजादी मिल जाय और हम उनके इस काम में सब प्रकार की सहायता देंगे। हमने इन्डोनेशिया के प्रजातंत्र को विधि-विहित ढंग से स्वीकार नहीं किया है जैसा कि एक राष्ट्र दूसरे को किया करता है, परन्तु क्रियात्मक रूप में हम ऐसा कर रहे हैं। "हो सकता है कि इन्डोनेशिया और ईरान के बारे में हमारे विचार वही न हों जो ब्रिटिश सरकार के हैं, हमारे स्वार्थ भी एक जैसे नहीं हो सकते पर हम दूसरे देशों के मामले में टांग अड़ाना नहीं चाहते।

"ब्रिटिश साम्राज्य एक बहुत विस्तृत भूखण्ड है और यह स्पष्ट है कि उसमें सभी तरह के ऐसे स्वार्थ निहित है कि जिनसे हम सहमत न होसकें। हम दूसरे के झगड़ों में पड़ने से डरते हैं और ऐसा होने नहीं देना चाहते। अभी हमारे सब मामले परिवर्तित स्थिति में हैं; किन्तु हमारा उद्देश्य तो स्पष्ट है, पर कल हम क्या करेंगे यह वैसा स्पष्ट नहीं है।" यह पूछे जाने पर कि

पं० जी का विभाग अन्य देशों से ब्रिटिश फौजें हटाये जाने के सम्बन्ध में किस हद तक काम कर सकेगा, उन्होंने कहा —

"हम किसी भी दूसरे देश के मामले में नहीं पड़ना चाहते और न इस सिलसिले में अपने धन, जन और साधनों का उपयोग दूसरे देशों के मामले में होने देना चाहते हैं—न किसी देश के राष्ट्रीय आन्दोलन के विरुद्ध अपनी ऐसी शक्तियों का उपयोग होने देना चाहते हैं। हिन्दुस्तानी सेनाएँ जहाँ-कहीं भी होंगी हम उन्हें वापस हिन्दुस्तान बुला लेना चाहेंगे। हमें आश्वासन दिया गया है कि इस प्रकार की कार्यवाही शुरू भी हो गई है। ऐसा मालूम होता है कि इसमें जरूरत से ज्यादा समय लग गया है। पर यह सिद्धान्त मान लिया गया है कि उन सेनाओं को वापस आना ही पड़ेगा। उदाहरणार्थ इण्डोनेशिया से हमारी बहुत-सी फ़ौजें वापस आ गई हैं पर अभी काफ़ी तादाद में वहाँ रह भी गई हैं। हमें बतलाया गया है कि नवम्बर के अन्त तक वे सब वापिस आ जायगी। जब कभी फ़ौजों के वापस बुलाने का सवाल पेश होता है तो उसमें सिर्फ़ जहाज़ी कठिनाइयाँ ही बाधक नहीं होतीं बल्कि अधिक उलझनों-भरा और ठस वह दफ्तर बन जाता है जिसे युद्ध-कार्यालय कहते हैं।" पं० जी ने आगे चलकर कहा कि "इन्डोनेशिया का जो चावल हिन्दुस्तान के लिये निर्धारित किया गया था उसके लिये जावा के अधिकारियों ने जहाज़ी सुविधायें नहीं प्रदान कीं और इसके बारे में हमने सख़्त कार्यवाही की है। हमारी नीति का सारांश यह है कि सारे एशिया से उपनिवेशवाद समाप्त कर दिया जाय और अफ्रीका तथा अन्य स्थानों से भी, और जातीय एकता अर्थात् सभी जाति के लोगों के लिये समान अवसर दिलाने की सुविधा सब को प्राप्त हो। किसी के विरुद्ध कोई कानूनी बाधा जातिगत आधार पर न हो और न एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र पर प्रभुत्व स्थापन या शोषण कर सके।" एक दूसरे प्रश्नके उत्तर में पं० जी ने कहा कि "अन्ततः लन्दन स्थित भारतीय प्रतिनिधि चाहे उसे राजदूत कह लीजिये या और किसी नाम से पुकारिये, हिन्दुस्तान के मामलों में इंग्लैण्ड के साथ सीधी कार्यवाही करेगा। किसी भी अवस्था में इण्डिया आफ़िस को तो बन्द करना ही पड़ेगा, पर ऐसा कब होगा यह मैं नहीं कह सकता।

"हिन्दुस्तान, नेपाल, भूटान और सिक्किम के साथ बहुत मित्रतापूर्ण व्यवहार करने की नीति का अनुसरण करेगा।" नेपाल के बारे में प्रश्न किये जाने पर पं० जी ने कहा कि 'नेपाल जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है एक स्वतंत्र देश है। अगर भविष्य में वह भारत के साथ घनिष्ठतर सम्बन्ध स्थापित करना चाहेगा तो हम उसका स्वागत करेंगे।

यह पूछे जाने पर कि क्या चीन और अमेरिका में मिनिस्टरों या राजदूतों की नियुक्ति निकट-भविष्य में होगी ? पं० जी ने कहा कि इसमें दो या तीन महीने तक लग जा सकते हैं। पश्चिमोत्तर सीमा के कबाइलियों के प्रश्न के बारे में पं० जी ने कहा कि उनका विश्वास है कि पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त का मन्त्रिमण्डल अगस्त के अन्त तक हाल की बमबाज़ी के बारे में कुछ नहीं जानता था। जब उन्होंने २ सितम्बर को अपना कार्यभार सँभाला तो बमबाज़ी न्यूनाधिक रूप में समाप्त हो चुकी थी। शुरू से तीन-चार दिनों—६ सितम्बर तक उन्हें इसका कुछ पता नहीं था। "जब मैंने इस बमबाज़ी के बारे में सुना तो मुझे बड़ी चिन्ता हुई, क्योंकि यह बड़ा महत्वपूर्ण मामला था। और बमबाज़ी समाप्त हो जाने पर हम उसके बारे में अब कुछ विचार कर रहे हैं। मुझे आशा है कि अगले महीने के शुरू में मैं इन कबाइली इलाक़ों में खुद जाकर सम्बद्ध व्यक्तियों—गवर्नर और कबाइली लोगों तथा सरकारी अधिकारियों से मिलूं और यहाँ लौटकर औरों से परामर्श करनेके बाद उस नीतिकी रूपरेखा तैयार करूँ,जिसके आधार पर कैबिनटसे बातचीत हो सके।

पं० नेहरू ने फिर कहा कि मैं खान अब्दुल गफ्फारखां का सहयोग और प्रभाव प्राप्त करूँगा और उन्हें अपने साथ वहाँ रखूंगा।

पं० नेहरू ने बतलाया कि कबाइली क्षेत्रों के बारे में कुछ बाहरी तथ्यों पर भी निर्भर करना पड़ेगा जिनका सम्बन्ध अफ़गानिस्तान से है। मामला उलझनों से भरा हुआ है। एक ओर तो सीमाप्रान्त के लोग हैं जो कभी-कभी आर्थिक या अन्य कारणों से हमले करने और लोगों का बलात् अपहरण करने में लग जाते हैं, जो सहन नहीं किया जा सकता। दूसरी ओर यह खयाल है कि हमें इस समस्या को मित्रतापूर्ण ढंग से और दृढ़तापूर्वक करना चाहिए।

"बुनियादी बात यह है कि सम्भवतः अब पहले की तरह हम चुप नहीं रह सकते। इन सब बातों के पीछे सम्भवतः आर्थिक पृष्ठभूमि है। अगर कबाइली क्षेत्रों में खनिज पदार्थ प्राप्त हो सकें—मालूम नहीं कि वहाँ उनका अस्तित्व है या नहीं, तो हम उनका पर्याप्त विकास कर सकते हैं हम वहाँ अस्पताल, स्कूल भी खोल सकते हैं पर उनका खयाल है कि पहले की तरह बहुत ज्याद रुपया खर्च करना, रिश्वतें देना, लोगों में अच्छे मनोभाव पैदा करने का उपाय नहीं है। वह रुपया सीमाप्रान्त में ही खर्च किया जाय पर उसका उपयोग रचनात्मक प्रयत्नों में हो जिससे नया मान कायम हो और लोगों को नई रोज़ी मिले।

बलूचिस्तान के लिये सलाहकारी कौंसिल का हवाला देते हुए पं० जी ने कहा, बाद में वहाँ शासनप्रणाली को पूर्णतः गणतन्त्रात्मक बना दिया जायगा। मैं बलूचिस्तान को अच्छी तरह नहीं जानता पर जिन तीन संस्थाओं के बारे में मैंने सुना है वे हैं—अंजुमने-वतन, मुस्लिम-लीग, और जमय्यतउलेमा। वहाँ की निर्वाचन-सूची तैयार करने में छः से आठ महीने तक लग जायेंगे और निर्वाचित सलाहकारी कौंसिल परामर्शदात्री संस्था होगी पर क्रियात्मक रूप में वह कुछ और भी होगी। हम विधान का परिवर्तन सहसा नहीं कर सकते।

"राष्ट्र संघ के लिए प्रस्तावित हिन्दुस्तानी प्रतिनिधि-मण्डलके बारेमें आपने कहा कि शुरू-शुरू में सरकार ने सैयद रज़ाअली और पं० हृदयनाथ कुंजारू को आमन्त्रित किया था; पर दो में से किसी ने भी वहां जाना स्वीकार नहीं किया। बाद में श्रीयुत नियोगी आमन्त्रित किये गये और उन्होंने जाना मंजूर कर लिया; पर आगे चलकर उन्होंने भी अपनी घरेलू अड़चनों के कारण बाहर जाना स्वीकार नहीं किया। हमें कुल मिलाकर पांच प्रतिनिधि और बहुत से अफ़सर—जिसमें से कुछ प्रतिनिधि का काम भी बारी-बारी से कर सकते हैं, भेजने हैं इस तरह दरअसल हमें एक और प्रतिनिधि की जरूरत है। दो तीन व्यक्ति इसके लिए हमारे ध्यान में हैं।

रही हिन्दुस्तान में विदेशी अधिकृत स्थानों की बात, सो उसके बारे में ध्यान आकर्षित करने पर पं० जी ने कहा कि "उन्होंने फ्रांसिसी हिन्दुस्तान के गवर्नर का वक्तव्य पढ़ा है और वे फ्रांसिसी भारत के प्रजाजन का फ़ैसला ही उनके भविष्य के सम्बन्ध में मानने-योग्य समझते हैं। पं० जी ने कहा—"फ्रांसिसी हिन्दुस्तान के बारे में जहांतक मैं समझता हूँ कोई कठिनाई नहीं है। हाँ, पोर्चगीज़ भारत के बारेमें इस समय एक कठिनाई अवश्य है जो एक दुःखद स्थिति है। यह जाहिर है कि गोआ में इस तरह का मामला अधिक समय तक नहीं चल सकता। यह बात न सिर्फ़ गोआ के लिये बुरी है बल्कि उसके आस-पास के इलाकों के लिये भी। पर अभी तक मैं नहीं जानता कि सरकार ने कोई भी कार्यवाही की है क्योंकि यह स्पष्ट है कि यद्यपि गोआ हिन्दुस्तान का एक बहुत छोटा भाग है, पर उसके कारण अन्तरराष्ट्रीय मामले खड़े हो जाते हैं। अगर हमारे सामने कोई अन्तर्राष्ट्रीय मामला आता है तो हमें

उसका निपटारा करना ही पड़ेगा किन्तु हमारे सामने कई बड़ी समस्याएँ हैं और जो सवाल अपने आप खत्म हो सके उसे हमारी ओर से सरकारी तौर पर उठाना ठीक न होगा।"

मुस्लिम लीग-द्वारा अन्तरिम सरकार में प्रवेश (१५-१०-१९४६)

आज सरकारी तौर पर यह घोषणा की गई है कि मुस्लिम लीग ने अन्तरिम सरकार में शामिल होने का फैसला कर लिया है और सम्राट् ने निम्न व्यक्तियों को अन्तरिम सरकार के सदस्य के रूप में नियुक्त किया है :—

श्री लियाकतअली खां,
श्री आई० आई० चुन्द्रीगर,
श्री अब्दुर्रब निश्तर,
श्री गजनफ्फर अली खाँ,
श्री जोगेन्द्रनाथ मंडल।

मंत्रिमंडल के पुनर्संगठन के हेतु निम्नलिखित सदस्यों ने अपना इस्तीफा दे दिया है :—

श्री शरत् चन्द्र बोस,
श्री शफात अहमद खाँ,
सैयद अली जहीर।

वर्तमान मंत्रिमंडल के ये सज्जन बने रहेंगे :—

पंडित जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभभाई पटेल, डा० राजेन्द्र प्रसाद, श्री आसफअली, श्री सी० राजगोपालाचारी, डा० जान मथाई, सरदार बलदेवसिंह, श्री जगजीवन राम और श्री सी० एच० भाभा।

विभागों का वितरण आगामी सप्ताह के शुरू में किया जायगा और तभी नये सदस्य शपथ ग्रहण करेंगे। इस बीच वाइसराय ने उन सदस्यों से, जिन्होंने इस्तीफे दे दिये हैं, अपने पदों पर बने रहने का अनुरोध किया है।

कांग्रेस-लीग वार्त्तालाप पर जिन्ना का मत

पत्र-व्यवहार प्रकाशित (१६-१०-४६)

आज इण्डिया मुस्लिम-लीग के प्रेसीडेण्ट मि० जिन्ना ने निम्नलिखित वक्तव्य पत्रों में प्रकाशनार्थ भेजा है—"कांग्रेस और मुस्लिम-लीग के वार्तालाप और इसकी समाप्ति के बारे में पत्रों ने तरह-तरह की अटकलबाजियाँ की हैं और बहुत ही गलत बातें कही गयी हैं।

"इसलिए पं० जवाहर लाल और मेरे बीच यह समझौता हो गया है कि जनता के सामने सच्ची बातें रखने के लिए हमारे बीच हुए पत्र-व्यवहार को प्रकाशित कर दिया जाय, और इसी के अनुसार मैं उसे प्रकाशित कर रहा हूं।"

पं० जवाहर लाल नेहरू का मि० जिन्ना के नाम पत्र

(ता० ६-१०-४६)

"कल हमने जो बहस की है उसके बारे में मैंने अपने कुछ साथियों से सलाह ली है और यह विचार भी किया है कि कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच किस प्रकार समझौता हो सकता है। हम सब इस बात से सहमत है कि पहले की तरह यह संस्थाएं फिर परस्पर मित्रवत् मिलें, और किसी प्रकार का मानसिक दुराव किये बिना अपने मतभेद पारस्परिक परामर्श-द्वारा तय करें तथा वाइसराय के द्वारा ब्रिटिश सरकार या अन्य विदेशी शक्तियों का हस्तक्षेप न स्वीकार

करें। इसलिए हम लीग के अन्तरिम सरकार में एक संयुक्त रूप में सम्मिलित होने के फैसले का स्वागत करेंगे।

"हमारी बातचीत में कल आपने ये ख़ास बातें रखी थीं :—

(१) वह फार्मूला जो गांधीजी ने आपको बताया था;

(२) सूचीबद्ध जातियों और अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधि-सदस्यों के प्रति लीग का उत्तरदायी न होना;

(३) सूचीबद्ध जातियों के सिवा अन्य अल्पसंख्यकों के वर्तमान प्रतिनिधि-सदस्यों में किसी की जगह खाली हुई तो क्या होगा ?

(४) मुख्य रूप में साम्प्रदायिक कहे जानेवाले मामलों की कार्रवाई करने का ढंग;

(५) वाइस-प्रेसीडेण्ट का बारी-बारी से रखा जाना।

"नं० १ के सम्बन्ध में हमारा ख़याल है कि फार्मूला की शब्दावली ठीक नहीं है। हम उसके भीतर अन्तर्निहित ध्येय के बारे में सन्देह नहीं करते। चुनाव के फलस्वरूप हम मुस्लिम-लीग को हिन्दुस्तान के मुसलमानों के अत्यधिक बहुमत की प्रतिनिधि-संस्था मानते हैं और इस रूप में तथा प्रजातंत्रीय सिद्धान्तों के अनुसार उसे भारत के मुसलमानों का प्रतिनिधित्व करने का अधिकार है, बशर्ते कि इन्हीं कारणों से लीग भी कांग्रेस को (सभी) गैर-मुस्लिम और ऐसे मुस्लिमों की प्रतिनिधि-संस्था मानती है जिन्होंने अपने भाग्य को कांग्रेस पर छोड़ दिया है। कांग्रेस अपने सदस्यों में से किसी को भी अपना प्रतिनिधि चुनने में किसी भी प्रतिबन्ध या सीमितता को नहीं मान सकती। इसलिए हमारी सलाह है कि कोई भी फार्मूला ज़रूरी नहीं है और हर संस्था अपने गुणों पर खड़ी हो।

"नं० २ के बारे में मुझे यह कहना है कि यहाँ लीग के उत्तरदायित्व का तो सवाल ही नहीं उठता; चूँकि आप सरकार के वर्तमान विधान के बारे में कोई आपत्ति नहीं उठाते इसलिए हल करने के लिए कोई सवाल है ही नहीं।

"नं० ३ के बारे में मुझे कहना है कि अगर ऐसी कोई जगह खाली होती है, तो सारा मंत्रि-मंडल इस बात पर विचार करेगा कि उस स्थान पर किसको नियुक्त किया जाय और वाइसराय को उसी के अनुसार सलाह दी जायगी। इन अल्पसंख्यकों के बारे में लीग से सलाह लेने के अधिकार के बारे में तो कोई सवाल किया ही नहीं जा सकता।

"नं० ४ के बारे में आप जो संघीय अदालत की बात कहते हैं वह समझ में नहीं आ सकती। मन्त्रिमण्डल के सामने आनेवाली बातें अदालत में पेश करने की नहीं हो सकतीं। ऐसे मामलों का निबटारा हमें आपस में कर लेना चाहिए और जिस प्रस्ताव पर सहमत हों उसे मंत्रि-मण्डल के सामने रखें। अगर किसी मामले पर सहमत न हो सकें तो हमें अपनी पसन्द का पंच चुन लेना चाहिये। तो भी हमें आशा है कि हम ऐसे पारस्परिक विश्वास, सहिष्णुता और मित्रता के साथ काम करेंगे कि ऐसे पंच तक जाने की ज़रूरत ही न पड़ेगी।

"नं० ५ के बारे में वाइस-प्रेसीडेण्ड-पद पर बारी-बारी से नियुक्ति का तो सवाल ही नहीं उठ सकता। अगर आप कैबिनेट या मन्त्रिमण्डल की सहयोगी समिति का वाइस-चेयरमैन-पद बनाने की इच्छा करें तो हमें उसमें कोई आपत्ति न होगी, क्योंकि वह (चेअरमैन) इस कमिटी की अध्यक्षता समय-समय पर करता रह सकता है।

"मुझे आशा है कि अगर आपकी कमेटी अन्ततः राष्ट्रीय मंत्रिमण्डल में सम्मिलित

होने का फैसला करती है तो वह साथ ही विधान-परिषद् में शामिल होने का निश्चय करेगी या आपकी कौंसिल को सिफारिश करेगी कि वह ऐसा करे।

"मेरे लिए यह ज़िक्र करने की ज़रूरत मुश्किल से है कि जब हम कोई भी समझौता करेंगे तो वह पारस्परिक सहमति से ही, अन्यथा नहीं।"

मि० जिन्ना का पं० जवाहरलाल नेहरू को पत्र

ता० ७-१०-१९४६

"मुझे आपका ६ अक्तूबर १९४६ का कृपा पत्र प्राप्त हुआ जिसके लिए मेरा अनेक धन्यवाद। आपने अपने पत्र के पहले पैरे में जो भाव प्रकट किये हैं मैं उनकी क़द्र करता हूं और अपनी ओर से भी वही भाव प्रकट करता हूं।

"आपके पत्र के दूसरे पैराग्राफ में पहली बात है नं० १ का फामूला, जिसे गांधीजी और मैंने स्वीकार किया था, और उसके आधार पर हमारे बीच अन्तरिम सरकार-सम्बन्धी अन्य-अन्य विषयों पर विचार करने को मीटिंग की व्यवस्था हुई थी। फामूला इस प्रकार है:—

"कांग्रेस मुस्लिम लीग के इस दावे पर आपत्ति नहीं करती कि वह भारत के अत्यधिक बहुमत का प्रतिनिधित्व करती है। इस प्रकार और प्रजातन्त्रीय सिद्धान्तों के अनुसार उसे मुसलमानों का प्रतिनिधित्व करने का आपत्तिशून्य अधिकार है। पर कांग्रेस यह नहीं मान सकती कि कांग्रेस को अपने सदस्यों में से किसी को अपनी इच्छा के अनुकूल प्रतिनिधि चुनने में कोई प्रतिबन्ध या परिसीमा लगायी जा सकती है।

"और अब आपने अपने इस पत्र में न केवल अदल-बदल कर दिया है बल्कि आप समझते हैं कि 'फामूला' की ज़रूरत ही नहीं है! मुझे अफसोस है कि मैं भाषा में या अन्य किसी भी तरह का परिवर्तन स्वीकार नहीं कर सकता, क्योंकि वह तो हमारी अन्य विषयों की बहस के बाद एक स्वीकृत आधार था। न मैं यही मंजूर कर सकता हूं कि फामूले की कोई ज़रूरत ही नहीं है। उस पर गांधीजी के दस्तख़त हुए थे और उसे मैंने स्वीकार किया था।

"चूँकि हमारी बातचीत का सारा दारोमदार गांधीजी के स्वीकार किये हुए फामूले पर था, इसलिए मैं नहीं समझता कि जब-तक आप उसे इस रूप में न मान लेंगे हम कुछ भी आगे बढ़ेंगे। इस आधार पर ही हम उन अन्य बातों पर बातचीत चला सकते हैं जिन पर हम ज़बानी बहस कर चुके हैं, और अब मैं आपको उन विषयों की एक प्रतिलिपि इस पत्र के साथ भेज रहा हूं जो मैंने बहस के समय आपके सामने लिखित रूप में रखी थी।

"जिस फामूले के बारे में मैं ऊपर विचार प्रकट कर चुका हूं, उनके अतिरिक्त अन्य चार विषयों में से आप किसी से भी सहमत नहीं हैं। मैं अभी इच्छा रखता हूँ कि यदि आप फामूले का आधार कबूल कर लें, तो आपके पैराग्राफ १ में प्रकाशित भावनाओं के अनुसार अन्य बातों पर आगे बातचीत चलाकर फैसला किया जा सकता है। मुझे फिक्र है कि हम अनुचित विलम्ब किये बिना अपना फैसला खुद कर डालें।

(१) कार्यकारिणी के सदस्यों की कुल संख्या १४ हो।

(२) कांग्रेस के छः नामज़द सदस्यों में एक सूचीबद्ध जाति का प्रतिनिधि भी सम्मिलित होगा, पर इसका मतलब यह नहीं लगाया जाना चाहिए कि मुस्लिम लीग ने सूचीबद्ध जाति के प्रतिनिधि का चुनाव स्वीकार या पसन्द किया है। उसका अन्तिम उत्तरदायित्व तो गवर्नर-जनरल और वाइसराय पर होगा।

(३) यह कि कांग्रेस अपने शेष पांच सदस्यों में अपनी पसन्द का कोई मुस्लिम सदस्य नहीं रख सकती।

(४) संरक्षण—यह एक रिवाज हो जाना चाहिए कि मुख्य साम्प्रदायिक मामलों पर अगर कार्यकारिणी के हिन्दू या मुस्लिम सदस्यों का बहुमत विरोध प्रकट करे तो उसके बारे में कोई फैसला न किया जायगा।

(५) संयुक्त राष्ट्र (यू० एन० ओ०) कान्फरेंस की भांति दोनों मुख्य सम्प्रदायों के प्रति औचित्य के खयाल से बारी-बारी से या सिलसिलेवार वाइस प्रेसीडेण्ट की नियुक्ति होनी चाहिए।

(६) तीन अल्पसंख्यक जातियों—सिख, हिन्दुस्तानी ईसाई और पारसी के प्रतिनिधियों के चुनाव के बारे में मुस्लिम लीग से परामर्श नहीं लिया गया। और ऐसा नहीं समझना चाहिए कि लीग को उनका किया गया चुनाव पसन्द है। पर भविष्य में किसी की मौत, इस्तीफे या अन्य तरीके से यदि कोई जगह खाली हुई तो इन अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधियों का चुनाव दोनों मुख्य दलों की राय से होगा।

(७) विभाग—सब से अधिक महत्वपूर्ण विभागों का विभाजन दोनों मुख्य दलों—मुस्लिम लीग और कांग्रेस में समान रूप से किया जायगा।

(८) यह कि उपर्युक्त व्यवस्था में तब तक परिवर्तन या रद्दोबदल न होना चाहिए जब तक कि दोनों ही प्रमुख दल—मुस्लिम लीग और कांग्रेस उसे स्वीकार न करलें।

(९) लम्बी योजना की व्यवस्था का सवाल तब तक हल नहीं हो सकता जब तक कि अन्तरिम सरकार का पुनर्निर्माण होकर उसका अन्तरिम रूप बना लेने के बाद अच्छा और अनुकूल वातावरण पैदा नहीं होजाता, और ऊपर बताये विषयोंके बारेमें समझौता नहीं होजाता।"

पं० जवाहरलाल नेहरू का पत्र मि० जिन्ना के नाम

(ता० ७-१०-४६)

"मुझे आपका ७ अक्टूबर का पत्र कल शाम को उस समय मिला जब मैं बड़ौदा हाउस आप से मिलने जा रहा था। मैंने उस पर सरसरी निगाह डाली और यह देखकर हैरान रह गया कि वह हमारी कलकी बात-चीत से विरुद्ध है। फलतः हमने अनेक विषयों पर बात-चीत की और दुर्भाग्यवश एक-दूसरे को विश्वास दिलाने में समर्थ नहीं हुए।

"वापसी में मैंने आपके पत्र को बड़ी सावधानी से पढ़ा और अपने साथियों से भी सलाह ली। वे भी न सिर्फ उस पत्र से बल्कि उसके साथ नत्थी फेहरिस्त से बहुत परेशान हुए हैं। इस सूची पर न तो हमने पहले बातचीत की थी और न उस पर विचार किया था। हमारी बातचीत के बाद वह बहुत ही अल्परूप में प्रासंगिक रह गयी है।

"हमने सारी बातों पर फिर से विचार किया और हम अनुभव करते हैं कि हम उस पत्र-द्वारा स्पष्ट की गयी अपनी स्थिति को उससे अधिक स्पष्ट नहीं कर सकते जितनी मैंने अपने ६ अक्टूबर के पत्र में करदी है—हां, कुछ विरोध ऐसे हैं जिन पर मैं नीचे प्रकाश डालूंगा। इसलिए मैं आपको अपने उस पत्र का हवाला देता हूँ जिसके द्वारा हमारे आम और खास दृष्टि-बिन्दु प्रकट किये गये हैं।

"जैसा कि मैंने आपको बताया है मेरे साथी और मैं आपके उस फार्मूला से सहमत नहीं हुए जिस पर गांधीजी और आप एकमत हुए थे। जहाँ तक मैं जानता हूँ और आपके और मेरे बीच मुलाकात की व्यवस्था उस फार्मूला के स्वीकृत आधार पर नहीं हुई थी। हम उस

फामूले को जानते थे और उसके सार से सहमत थे जैसा कि मैंने अपने ६ अक्टूबर के पत्र में लिखा भी है, उस फामूले में एक और पैराग्राफ भी था जिसे आपने उद्धृत नहीं किया और जो इस प्रकार है—

"यह मानी हुई बात है कि अन्तरिम सरकार के सभी मिनिस्टर सारे भारत के हित के लिए एक संयुक्त समूह के रूप में काम करेंगे और वह किसी भी मामले में गवर्नर-जनरल के हस्तक्षेप का आह्वान नहीं करेंगे।"

"यद्यपि हम अब भी समझते हैं कि फामूले की शब्दावली ठीक रूप से नहीं रखी गयी है, पर चूँकि हम समझौते की बड़ी इच्छा रखते हैं इसलिए हम उसे उस पैराग्राफ-सहित स्वीकार करने को तैयार हैं।

"ऐसी अवस्था में मैं आशा करता हूँ कि हम अपनी आगे की स्थिति बिल्कुल स्पष्ट कर दें। निश्चय ही यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि कांग्रेस को अपने लिए निर्धारित सीटों में से एक पर किसी मुसलमान की नियुक्ति करने का अधिकार है। और जैसा कि मैंने अपने पहले पत्र में लिखा है, राष्ट्रवादी मुसलमानों और छोटी अल्पसंख्यक जातियों के बारे में कांग्रेस की स्थिति के बारे में आपको आपत्ति नहीं करनी चाहिए।

"मेरे ६ अक्टूबर के पत्र की दूसरी, तीसरी और चौथी बातों के बारे में मैंने हमारी स्थिति स्पष्ट कर दी है और उनके बारे में मुझे और कुछ नहीं कहना है। आपकी बात मानने के लिए हम जितना भी आगे बढ़ सकते थे, बढ़े और अब हम इससे और आगे नहीं बढ़ सकते। मुझे विश्वास है कि आप स्थिति को समझेंगे।

नं० ५ (वाइस-प्रेसीडेण्ट का सवाल) के बारे में आपने कल यह राय दी थी कि वाइस-प्रेसीडेण्ट और केन्द्रीय असेम्बली का लीडर एक ही व्यक्ति नहीं होना चाहिए। वर्तमान स्थित में इसका यह मतलब हुआ कि केन्द्रीय असेम्बली का लीडर मंत्रिमंडल का मुस्लिम लीगी सदस्य होना चाहिए। हम इससे सहमत हैं।

"मैं सभी मामलों पर पूर्णत: और सावधानी के साथ विचार करने और अपने यहाँ स्थिति साथियों से सलाह ले लेने के बाद आपको यह पत्र लिख रहा हूँ। मैंने तर्क जारी रखने के लिए यह पत्र नहीं लिखा, बल्कि इसलिये लिखा है कि हम हृदय से समझौता चाहते हैं। हम इन मामलों पर काफी बहस कर चुके और वह समय आ गया है जब हमें इसका फैसला अन्तिम रूप में कर लेना चाहिए।"

पं० जवाहरलाल को मि० जिन्ना का पत्र
(ता० १२-१०-४६)

"मुझे आपका ८ अक्टूबर १९४६ का वह पत्र कल मिला जो आपने मेरे ७ अक्टूबर १९४६ के पत्र के जवाब में लिखा है।

"मुझे अफसोस है कि आप और आप के साथी गांधीजी और मेरे बीच तय पाये फामूले को स्वीकार नहीं करते। गांधीजी तथा मैं इस बात से भी सहमत थे कि आप तथा मैं मिलकर शेष अन्य बातों का फैसला वार्तालाप-द्वारा करलें जिससे अन्तरिम सरकार पुनर्निर्मित हो सके। उसी के अनुसार ५ अक्टूबर को हमारी मुलाकात की व्यवस्था की गयी।

"मुझे आपसे यह मालूम करके आश्चर्य हुआ है कि जहाँ तक आपको मालूम है उस फामूले के आधार पर मुलाकात की व्यवस्था नहीं हुई थी। गांधीजी और मेरे बीच जिस

एकमात्र फार्मूले के आधार पर समझौता हुआ था इसका जिक्र मैंने अपने ७ अक्टूबर १९४६ के पत्र में किया था। मैंने अपने पत्र में इस बात का जिक्र नहीं किया था जिसका हवाला आपने 'पैरा २' के रूप में दिया है, क्योंकि वह तो उन बातों में से एक थी जिस पर आप और हम आगे वार्तालाप करनेवाले थे। यह व्यवस्था वास्तव में लिपिबद्ध करली गयी थी।

"हमारी ५ अक्टूबर की पहली मुलाकात में हमने सभी विषयों पर बातचीत की थी और आपने मुझे सूचित किया था कि आप अपने लिए कल मिलने के अनुकूल समय से मुझे अवगत करेंगे; पर उसके बदले मुझे आपका ६ अक्टूबर का पत्र मिला है। इस पत्र में आपने स्वयं उस फार्मूले का हवाला दिया है जिसका जिक्र मेरे ७ अक्टूबर के पत्र में किया गया था, और अपने विचार भी प्रकट किये कि फार्मूला की शब्दावली ठीक नहीं है और नीचे लिखी व्यवस्था और जोड़ देने की सलाह दी--

"बशर्ते कि ऐसे हो कारणों से लोग कांग्रेस को गैर-मुस्लिमों और ऐसे मुसलमानों का प्रतिनिधित्व करने की अधिकृत संस्था मानलें जिन्होंने अपना भाग्य कांग्रेस पर छोड़ दिया है।

या अगर यह स्वीकार न हो, तो आपने सलाह दी कि फार्मूले की आवश्यकता न होगी। आपके पत्र में उस बात का हवाला नहीं है जिसे आप स्वीकृत फार्मूले का पैरा २ कहते हैं, और आपने अपने पत्र के आरम्भिक पैराग्राफ में उस पर अलग विचार किया है जो इस प्रकार है :—

'हम सभी इस बात से सहमत हैं कि इस देश के लिए इससे अच्छा कुछ न होगा कि दोनों संस्थाएँ पहले की तरह मित्र-भाव से मिलें और कोई मानसिक दुराव न रखते हुए पारस्परिक परामर्श-द्वारा ऐसी स्थिति बनादें कि वाइसराय-द्वारा ब्रिटिश सरकार अथवा अन्य कोई विदेशी शक्ति हमारे मामले में हस्तक्षेप न कर सके।'

"सार रूप में यही उस 'पैराग्राफ २' का मतलब था, जिसका आपने ज़िक्र किया था और जिस पर अन्य बातों के साथ बातचीत होनी थी। मैंने अपने जवाब में भी इसका हवाला देते हुए कहा था कि मैं ६ अक्तूबर के पत्र के पैरा १ के आपके भावों की क़द्र करता हूँ और आपके प्रति भी वही भाव व्यक्त करता हूं।

"मैं यह बात समझने में असफल हूं कि आप और आपके साथी मेरे ७ अक्तूबर के पत्र से ही नहीं, बल्कि उसके साथ की सूची से भी परेशान हुए होंगे। उस सूची में ऐसा कोई विषय नहीं था जिस पर हमने पहले दिन बातचीत न की हो, जैसा कि आपके ६ अक्तूबर के पत्र से स्पष्ट है। आपने स्वयं स्वीकार किया है कि मेरी सूची की सभी बातों पर आपने विचार किया है। मैं आपको भेजी हुई सूची की प्रत्येक बात को एक-एक करके लूंगा :—

(१) कुल संख्या १४—इस पर कोई विवाद नहीं हुआ।

(२) सूचीबद्ध जातियों का प्रतिनिधित्व—यह समझा जाना चाहिए कि इसके चुनाव को लीग ने स्वीकार या पसन्द नहीं किया।

(३) कांग्रेस की निर्धारित सीटों में मुसलमान की नामज़दगी—इस पर बहस हुई थी।

(२) संरक्षण इस पर बहस हुई थी जैसा कि आपके पत्र के विषय नं०-४ से स्पष्ट है।

(५) बारी-बारी से या सिलसिलेवार वाइस-प्रेसीडेंट—इस पर भी बातचीत हुई थी और आपके पत्र में इसे विषय 'नं० ५' लिखा गया था।

(६) अल्पसंख्यक प्रतिनिधियोंकी जगहें खाली होनेकी बात—इस विषय पर बहस हुई थी।

जिसका हवाला आपके पत्र में 'विषय नं० ३' के रूप में आया है।

(७) विभाग—इस पर बहस हुई।

(८) दोनों मुख्य पार्टियों की स्वीकृति के बिना व्यवस्था में कोई परिवर्तन न करना—इस पर भी बातचीत हुई थी और इसका हवाला आपके पत्र के अन्तिम पैराग्राफ में है।

(९) लम्बे समय के सवाल—इस पर भी बहस हुई थी और इसका हवाला आपके पत्र में अन्तिम से एक पहले पैरे में दिया गया है।

"इन सभी विषयों पर वार्तालाप हुआ था जैसा कि मैंने ऊपर स्पष्ट कर दिया है, और वह सूची तो आपको सुविधा और विधियुक्तता के लिये भेजी गयी थी।

"आपने अपने पत्र में लिखा है कि जिन विभिन्न विषयों पर हमने बहस की है उन पर आपकी स्थिति केवल कुछ को छोड़ कर अब भी वही है जैसा कि आपके ६ अक्तूबर से पत्र से स्पष्ट है।

"ये हैं वे परिवर्त्तन और उनके प्रति मेरी प्रतिक्रिया :—

(१) यह कि आप फामूला को तब स्वीकार कर लेंगे जब उसमें पैराग्राफ २ जोड़ दिया जाय—यह उस मौलिक फामूले से भिन्न है जिसके आधार पर मैंने आपसे बहस करना स्वीकार किया था। मैं इस परिवर्त्तन को स्वीकार नहीं कर सकता।

(२) बशर्ते कि मुस्लिम लीग यह आपत्ति नहीं करती कि कांग्रेस अल्पसंख्यकों और राष्ट्रवादी मुसलमानों का प्रतिनिधित्व करती है', जैसा कि आपके ६ अक्तूबर के पत्र में स्पष्ट किया गया हैं और उस पत्र में हवाला दिया गया है जिसका यह उत्तर दिया जा रहा है।—यह भी स्वीकृत फामूले से गम्भीर रूप में विलग हो जाता है। इसके अतिरिक्त यह मामला सम्बद्ध अल्पसंख्यकों से सम्बन्ध रखता है।

"मैं आपके ६ अक्तूबर के पत्र में कहे गये विषय नं० २, ३ और ४ के बारे में आपके कथन की ओर लक्ष्य देता हूं।—अर्थात् सूचीबद्ध जातियों के प्रतिनिधि और अन्य अल्पसंख्यकों के बारे में भविष्य में खाली होनेवाली जगहों के बारे में तथा मुख्य सांप्रदायिक मामलों के बारे में इन विषयों में भी हमारे बीच कोई समझौता नहीं हुआ है।

"विषय नं० ५—वाइस-प्रेसीडेण्ट पद के बारे में आपने जो कुछ लिखा है उसकी ओर मेरा ध्यान गया है।

"चूंकि आपने सभी सम्बद्ध विषयों पर सावधानी के साथ पूर्ण विचार करके और साथियों से सलाह करके अपनी स्थिति स्पष्ट की है, मेरी धारणा है कि यह आपका अन्तिम विचार है। मुझे गम्भीर खेद है कि हम अपने ऐसे किसी समझौते पर नहीं पहुँच सके जो दोनों पार्टियों के लिए सन्तोषजनक हो।

पं० जवाहरलाल नेहरू का मि० जिन्ना को पत्र

(ता० १३-१०-४६)

आपके १२ अक्तूबर के पत्र के लिए धन्यवाद। इस पत्र में अनेक गलतबयानियाँ हैं। आपने जो कुछ कहा है, वह हमारे वार्तालाप-सम्बन्धी मेरी याददाश्त से या गत कई दिनों की घटनाओं से मेल नहीं खाता, फिर भी अब मुझे इस मामले में नहीं पड़ना है, क्योंकि मुझे वाइसराय ने सूचित किया है कि मुस्लिम लीग ने अन्तरिम सरकार में अपनी ओर से पाँच सदस्य नामजद करना स्वीकार कर लिया है।

मि० जिन्ना का लार्ड वेवेल को पत्र

(ता० २८-१०-४६)

मुस्लिम-लीग के प्रेसीडेण्ट मि० एम० ए० जिन्ना और वाइसराय (लार्ड वेवल) के बीच हाल की बातचीत के सिलसिले में निम्नलिखित पत्र-व्यवहार हुआ है :—

मि० जिन्ना का पत्र वाइसराय को

ता० ३ अक्तूबर १९४६

"प्रिय लार्ड वेवल, हमारी २ अक्तूबर १९४६ की मुलाकात के अन्त में यह तय हुआ था कि मैं आपके सामने उन प्रस्तावों को अन्तिम रूप में रखूं जो हमारे वार्तालाप के परिणामस्वरूप प्रकट हुए हैं जिससे आप उन पर विचार करके उनके उत्तर दे सकें। उसके अनुसार मैं इस पत्र के साथ वे विभिन्न प्रस्ताव भेजता हूँ जिनका मैंने सूत्रबद्ध किया है।

मि० जिन्ना के सूत्र :—

१. शासन-समिति के सदस्यों की संख्या १४ हो।

२. कांग्रेस के छः नामज़द सदस्यों में एक सूचीबद्ध जाति का होगा; किन्तु इसका मतलब यह नहीं कि मुस्लिम लीग ने उस सूचीबद्ध जाति के प्रतिनिधि का चुनाव स्वीकार या पसन्द कर लिया है। इसका अन्तिम उत्तरदायित्व गवर्नर-जनरल और वाइसराय पर होगा।

३. यह कि कांग्रेस अपने निर्धारित कोटे के शेष पाँचों सदस्यों में अपनी पसन्द का कोई मुसलमान न शामिल करे।

४. संरक्षण—यह कि ऐसा रिवाज हो जाना चाहिए कि मुख्य साम्प्रदायिक मामलों का अगर हिन्दू या मुस्लिम सदस्यों का बहुमत विरोधी है तो फैसला नहीं किया जायगा।

वाइसराय का पत्र मि० जिन्ना को

ता० ४ अक्तूबर, १९४६

प्रिय मि० जिन्ना, आपके कल के पत्र के लिए धन्यवाद। आपके ९ सूत्रों का जवाब निम्नलिखित है :—

वाइसराय के उत्तर :—

यह स्वीकार है।

मैं आपके कथन को नोट करता हूं और स्वीकार करता हूं कि उत्तरदायित्व मेरा है।

मैं इसे स्वीकार करने में असमर्थ हूं। हर पार्टी को अपना प्रतिनिधि नामज़द करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए।

किसी संयुक्त सरकार में नीति-सम्बन्धी प्रमुख विषयों का निबटारा असम्भव है, जब संयुक्त सरकार की मुख्य पार्टियों में से एक, किसी भी प्रस्तावित कार्यपथ के विरुद्ध है। मेरे वर्तमान साथी और मैं इससे सहमत हैं कि प्रमुख साम्प्रदायिक मामलों का निबटारा कैबिनेट के वोट-द्वारा करना घातक होगा। अन्तरिम सरकार की निपुणता और प्रतिष्ठा इसमें है कि कैबिनेट की मीटिंगों के पहले ही पारस्परिक मित्रतापूर्ण वार्तालाप-द्वारा मतभेद समाप्त कर

लिए जायँ। संयुक्त सरकार या तो पारस्परिक सामंजस्य के आधार पर कार्य करती है या फिर बिल्कुल काम नहीं करती।

५. दोनों पक्षों के प्रति न्याय करने के लिए बारी-बारी से या क्रमशः वाइस प्रेसीडेण्ट की नियुक्ति की जाय जैसा कि संयुक्तराष्ट्र-परिषद् (यू० एन० ओ०) में पास हुआ है।

बारी-बारी से या क्रमशः वाइस-प्रेसीडेण्ट की नियुक्ति में क्रियात्मक कठिनाइयां उपस्थित होंगी, मैं इसे अमलमें आने योग्य नहीं समझता। तो भी मैं एक मुस्लिमलीगी सदस्य को नामज़द करने की व्यवस्था करूँगा जिससे वह गवर्नर-जनरल और वाइस-प्रेसीडेण्ट की अनुपस्थिति में वाइस-प्रेसीडेण्ट का आसन ग्रहण करे।

मैं सहयोग-समिति या कोआर्डिनेशन कमेटी के वाइस-चेअरमैन पद के लिए भी एक मुस्लिम-लीगी सदस्य नामज़द करूँगा, जो बड़ा ही महत्वपूर्ण पद है। मैं उस कमेटी का चेअरमैन हूं और भूतकाल में बराबर उसकी अध्यक्षता करता रहा हूं, पर भविष्य में शायद खास अवसरों पर ही ऐसा कर सकूंगा।

६. तीन अल्पसंख्यक-प्रतिनिधियों—सिख, हिन्दुस्तानी ईसाई और पारसी-के चुनाव में मुस्लिम लीग से राय नहीं ली गई, और इसका यह अर्थ नहीं लगाना चाहिए कि मुस्लिमलीग को यह चुनाव स्वीकार या पसन्द है। किन्तु भविष्य में मौत, इस्तीफे या अन्य कारणों से यदि उनमें से कोई जगह खाली हुई तो इन अल्पसंख्यक जाति के प्रतिनिधियों का चुनाव दोनों मुख्य पार्टियों—मुस्लिम लीग और कांग्रेस से वह जगह भरने के लिए परामर्श किया जायगा।

मैं स्वीकार करता हूं कि दोनों ही मुख्य पार्टियों से इन तीनों सीटों में किसी के भी खाली होने पर उस जगह दूसरे को नियुक्त करते समय परामर्श लिया जायगा।

७. विभाग—यह कि अत्यन्त महत्वपूर्ण विभागों का बँटवारा दोनों मुख्य पार्टियों—मुस्लिम लीग और कांग्रेस में समान रूप से होना चाहिए।

वर्तमान स्थिति में तो कैबिनेट (मंत्रि-मण्डल) के सभी विभाग महत्व के हैं और किसी को अत्यन्त महत्वपूर्ण समझना तो अपनी-अपनी राय की बात है। अल्पसंख्यक प्रतिनिधियों को मुख्य विभाग के एक हिस्से से वंचित नहीं किया जा सकता और श्री जगजीवन-राम को श्रम-विभाग में रहने देना उपयुक्त

८. यह कि ऊपर की व्यवस्था में तब तक कोई परिवर्तन या हेर-फेर न किया जाय जब तक कि दोनों मुख्य पार्टियों—मुस्लिम लीग और कांग्रेस उसे स्वीकार नहीं कर लेतीं।

होगा। पर इनके अलावा शेष जगहों का बँटवारा कांग्रेस और मुस्लिमलीग के बीच समानता के आधार पर हो जाना चाहिए। इसका विवरण बातचीत-द्वारा तय किया जा सकता है।

मुझे स्वीकार है।

९. लम्बी अवधि के समझौते का सवाल तब तक नहीं उठना चाहिए जब तक कि उसके लिए अच्छा और अधिक सहायक वातावरण नहीं बन जाता और अन्तरिम सरकारके सुधार व अन्तिम निर्माण के बाद इन सूत्रों के आधार पर एक समझौता नहीं हो जाता।

चूँकि कैबिनेट (मंत्रि-मण्डल) में भाग लेने का आधार १६ मई का वक्तव्य बताया गया है, मेरी धारणा है कि लीग कौंसिल शीघ्र ही अपनी मीटिंग करके अपने बम्बई-प्रस्ताव पर विचार कर लेगी।

आपका सच्चा,
(ह०) वेवल

वाइसराय का पत्र मि० जिन्ना के नाम
(ता० १२-१०-४६)

प्रिय मि० जिन्ना—मैंने आज शाम को आपसे जो कुछ कहा था उस बात की तसदीक करता हूं कि मुस्लिम-लीग को कैबिनेट में अपने हक़ में निर्धारित सीटों के लिए किसी को भी नामज़द करने की आज़ादी है, यद्यपि किसी भी प्रस्तावित व्यक्ति की स्वीकृति उसकी नियुक्ति के पहले मेरे और सम्राट् की सरकार के द्वारा होनी चाहिए।

जब मुस्लिम-लीग और कांग्रेस से सभी नाम प्राप्त हो जाएँगे तो मेरा विचार विभागों के बारे में बातचीत करने के लिए एक मीटिंग बुलाने का है।

आपका सच्चा,
(हस्ताक्षर) वेवेल।

वाइसराय को मि० जिन्ना का पत्र
(ता० १३-१०-१९४६)

"प्रिय लार्ड वेवल—आल इंडिया मुस्लिम-लीग की कार्यकारिणी ने सारे मामले पर पूर्णतः विचार कर लिया है और अब मुझे अधिकार दिया गया है कि मैं आपकी अन्तरिम सरकार-सम्बन्धी उस योजना और निर्माण को अस्वीकार कर दूँ जिसे आपने सम्भवतः सम्राट् की सरकार के अधिकार-बल पर निर्मित करने का फैसला किया है।

"इसलिए हमारी कमेटी इस बात को स्वीकार नहीं कर सकती कि आपने जो निश्चय किया है वह ठीक है, और न उस व्यवस्था को पसन्द करती है जो आपने की है।

"हमारा ख़याल है कि उस फैसले का लागू करना ८ अगस्त के वक्तव्य के ख़िलाफ़ है, परन्तु चूँकि आपके निश्चय के अनुसार हमें शासन-समिति के पाँच सदस्य नामज़द करने का अधिकार है, मेरी कमेटी अनेक कारणों से इस नतीजे पर पहुँची है कि मुसलमानों तथा अन्य सम्प्रदायवालों के हितों के लिए केन्द्रीय सरकार के शासन का सारा क्षेत्र कांग्रेस पर छोड़ देना

घातक होगा। इसके अलावा आपको बाध्य होकर अन्तरिम सरकार में ऐसे मुसलमान लेने होंगे जिनके प्रति मुस्लिम भारत का कोई विश्वास और श्रद्धा नहीं है और जिसके परिणाम बहुत गम्भीर होंगे और अन्त में अन्य वज़नदार आधारों और कारणों से, जो स्पष्ट होने के कारण व्यक्त करने योग्य नहीं हैं, हमने फैसला किया है कि केवल पाँचों सदस्यों को मुस्लिम-लीग की ओर से नामज़द कर देंगे जैसा कि आपने अपने २४ अगस्त के रेडियो-भाषण और ४ तथा १२ अक्टूबर के पत्रों द्वारा स्पष्टीकरण और आश्वासन प्रदान किया गया है।

आपका सच्चा,
(हस्ताक्षर) एम० ए० जिन्ना।"

जिन्ना के नाम वाइसराय का पत्र
(ता० १३-१०-४६)

"प्रिय मि० जिन्ना—आपके आज के पत्र के लिए धन्यवाद। मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि मुस्लिम-लीग ने अन्तरिम सरकार में सम्मिलित होने का फैसला कर लिया है। कृपया आप अपने पाँचों सदस्यों के नाम भेज दें, क्योंकि उन्हें सम्राट् की स्वीकृति के लिए भेजना है और मैं सरकार का पुनर्निर्माण यथासम्भव शीघ्र कर डालना चाहता हूँ।

"आपने कल वादा किया था कि आप वे नाम आज मुझे भेज देंगे।

आपका सच्चा,
(हस्ताक्षर) वेवल।"

मि० जिन्ना का पत्र वाइसराय के नाम
(ता० १४-१०-४६)

"प्रिय लार्ड वेवल,—आपके १३ अक्टूबर के पत्र के लिये धन्यवाद।

"अब मैं आपको मुस्लिम लीग की ओर से पाँच व्यक्तियों के नाम भेजता हूँ जैसा कि हमारी कल की मुलाक़ात में तय पाया था।

(१) मि० लियाक़त अली खाँ, आनरेरी सेक्रेटरी, आल इण्डिया मुस्लिम लीग, एम० एल० ए० (केन्द्रीय)

(२) मि० आई० आई० चुन्द्रीगर, एम० एल० ए० (बम्बई) बम्बई व्यवस्थापिका सभा की मुस्लिम-लीग पार्टी के लीडर और बम्बई प्रान्तीय मुस्लिम-लीग के प्रेसीडेण्ट।

(३) मि० अब्दुर्रब निश्तर एडवोकेट (सीमाप्रान्त), मेम्बर वर्किंग कमेटी आल इण्डिया मुस्लिम-लीग कमेटी आफ़ ऐक्शन एण्ड कौंसिल।

(४) मि० ग़ज़नफ़र अली खाँ, एम० एल० ए० (पंजाब), मेम्बर आल इण्डिया मुस्लिम-लीग कौंसिल, प्रान्तीय मुस्लिम-लीग और मेम्बर पंजाब मुस्लिम-लीग वर्किंग कमेटी।

(५) मि० जोगेन्द्रनाथ मंडल, एडवोकेट (बंगाल) वर्तमान मिनिस्टर बंगाल सरकार।

आपका सच्चा,
(हस्ताक्षर) एम० ए० जिन्ना।

वाइसराय का पत्र मि० जिन्ना के नाम
(ता० २७-१०-४६)

"प्रिय मि० जिन्ना, अन्तरिम सरकार में मैं मुस्लिम लीग को नीचे लिखे विभाग सौंप सकता हूं—अर्थ, व्यापार, डाक और हवाई, स्वास्थ्य और व्यवस्थापक।

"यदि आप यह बता सकेंगे कि कैबिनेट में इन विभागों का विभाजन मुस्लिम लीगी प्रतिनिधियों में किस प्रकार किया जाय तो मैं कृतज्ञ होऊँगा।

मैं आज ही रात को एक घोषणा कर देना चाहता हूं और नये मेम्बरों की शपथ ले लेना चाहता हूँ जिनका मैं कल स्वागत करूँगा।

आपका सच्चा
(ह०) वेवल।"

मि० जिन्ना का वाइसराय को पत्र
(२७-१०-४६)

"प्रिय लार्ड वेवल, मुझे आपका २५ अक्तूबर सन् १९४६ का पत्र साढ़े पाँच बजे शाम को मिला जिसमें आपने लिखा था कि विभागों का फ़ैसला करके मैं आपके नाम भेज दूंगा।

मुझे अफ़सोस के साथ कहना पड़ता है कि यह विभाजन न्यायपूर्ण नहीं है; पर हमने सभी सूरतों पर विचार कर लिया है और आपने अपना अन्तिम फैसला कर लिया है इसलिये मैं इस मामले को और आगे नहीं बढ़ाना चाहता।

'मैं आपको मुस्लिम लीगी सदस्यों के नाम इस विवरण सहित भेजता हूँ कि किन-किन को कौन-कौन विभाग सौंपे जायँ।

अर्थ—मि० लियाकत अलीखाँ।
व्यापार—मि० आई० आई० चुन्द्रीगर।
डाक और हवाई—मि० ए० आर० निश्तर।
स्वास्थ्य—मि० गजनफर अलीखाँ, और
व्यवस्थापक—मि० जोगेन्द्र नाथ मण्डल।

आपका सच्चा
(ह०) एम० ए० जिन्ना।"

अन्तरिम सरकार की वैधानिक स्थिति पर ता० ५-११-४६ लार्ड पेथिक-लारेंस का वक्तव्य

भारत-मन्त्री लार्ड पेथिक लारेंस ने आज लार्ड-सभा में यह बात कही कि वाइसराय और हिन्दुस्तानी नेताओं के बीच ऐसी कोई लिखा-पढ़ी नहीं हुई है जिससे ब्रिटिश सरकार की अन्तरिम-सरकार की वैधानिक स्थिति के बारे में पहले प्रकट किये गये इरादे में कोई फ़र्क पड़ता हो।

इस प्रकार की बात इन्होंने इसलिए कही कि उनसे भारत में अन्तरिम-सरकार स्थापित करने के सिलसिले में किये गये पत्र-व्यवहार को श्वेत-पत्र के रूप में प्रकाशित करने की मांग की गई थी।

भारत-मन्त्री ने यह भी कहा कि वाइसराय भी इस बात से सहमत हैं।

इस बात को लार्ड-सभा के सदस्य मारकिस सैलसबरी ने उठाया था जिन्होंने यह भी पूछा कि गत जुलाई के बाद की हिन्दुस्तान की घटनाओं के बारे में कागजात कब पेश किये जायँगे। उन्होंने यह भी कहा कि इन कागजातों में नीचे लिखी बातें होनी चाहियें।—(१) वे पत्र-व्यवहार जिनके फल-स्वरूप अन्तरिम-सरकार की रचना हुई—खासकर यह बात कि पं० जवाहरलाल नेहरू ने अल्पसंख्यकों की रक्षा के लिए क्या-क्या आश्वासन दिये हैं, और (२) भारत

में जो हाल में दंगे हुए हैं उनका स्वरूप और विस्तार तथा (३) ऐसे दंगों में हस्तक्षेप करने के के लिये ब्रिटिश सेनाओं का उपयोग कहां तक हुआ है और यह कि क्या ऐसा सीधे वाइसराय के ही अधिकार से किया गया है।

लार्ड पेथिक लारेंस ने जवाब दिया:—

"जिस वार्तालाप के फल-स्वरूप भारत में वर्तमान अन्तरिम-सरकार की स्थापना हुई है उसमें बहुत-सी मुलाकातें वाइसराय और दो प्रमुख पार्टियों के नेताओं के बीच हुई हैं। पार्टियों के नेताओं में परस्पर भी पत्र-व्यवहार और बातचीत हुई है। यह सभी सन्देश एक प्रकार से गुप्त रखे गये हैं। और मुलाक़ातों के स्वीकृत रिकार्डों का कोई अस्तित्व नहीं है। केवल पत्र-व्यवहार इन सन्देशों के आदान-प्रदान का पूर्ण चित्र नहीं प्रदर्शित कर सकते। यह सच है कि ऐसे पत्र-व्यवहार का एक अंश पार्टी के नेताओं के कहने पर प्रकाशित किये गये हैं, पर इन कागज़ात का प्रकाशन श्वेत-पत्र के रूप में करना एक बड़ा ही अपूर्ण संग्रह होगा और पार्लीमेंट को इसका पूर्ण चित्र नहीं प्राप्त होगा जिससे कि वह किसी विचार-पूर्ण फ़ैसले पर पहुंच सके।

लार्ड पेथिक-लारेन्स ने अपना बयान जारी रखते हुए कहा—तो भी मैं आप श्रीमानों को सूचित कर सकता हूँ कि वाइसराय और पार्टी के नेताओं में जो पत्र-व्यवहार हुए हैं उनके कारण ब्रिटिश सरकार की अन्तरिम-सरकार-सम्बन्धी वैधानिक-स्थिति के इरादे में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है।

इन परिस्थितिओं में ब्रिटिश-सरकार अन्तरिम-सरकार के स्थापना सम्बन्धी पत्र व्यवहार और सन्देश का विवरण श्वेत-पत्र के रूप में प्रकाशित नहीं करना चाहती। वाइसराय इस से सहमत हैं। महाशय मारक्विस ने जो अन्य बातें पूछी हैं उनको श्वेत-पत्र में सम्मिलित करने का विचार सम्राट् की सरकार को उचित नहीं प्रतीत होता। किन्तु जहाँ तक क्रियात्मक रूप में संभव है सार्वजनिक हित के नाते मैं इस बात की कोशिश करूँगा कि श्रीमानगण इस बारे में जो भी प्रश्न करें मैं उनका जवाब दूं।

मारक्विस सेल्सबरी ने कहा कि सभा को इस उत्तर से सन्तोष हुआ प्रतीत होता है। उन्होंने भारत-मन्त्री को इस समय अधिक दबाना नहीं चाहा, पर यह अवश्य कहा कि निस्सन्देह भविष्य में जब ऐसे प्रश्न किये जायँगे तो भारत मन्त्री ऐसे सवालों का जवाब आज की अपेक्षा अधिक पूर्णता के साथ दे सकेंगे।

अन्तरिम-सरकार की स्थिति

लार्ड-सभा में ५ नवम्बर सन् १९४६ ई० को भारत-मन्त्री ने जो वक्तव्य दिया और अन्तरिम-सरकार की वैधानिक स्थिति बतलाई, उसके बाद ही भारतीय शासन-सुधार के कमिश्नर मि० एच० वी० हाडसन ने भारतीय वैधानिक कार्य पर लन्दन की ईस्ट इण्डिया ऐसोशियेशन में २५ नवम्बर सन् ४६ को निम्नलिखित पत्रक पढ़ा—

"भारत को स्वतन्त्रता प्रदान करने का वचन कानूनी और वैधानिक दोनों ही रीति से दे दिया गया था और यह एक बहुत बड़ी सफलता थी।

"भारत में कानूनी-शासन की बाधाओं के परिणाम इतने विपद्जनक हो सकते थे, इसपर जब विचार किया जाता है तो इस बात के लिए धन्यवाद देना पड़ता है कि सहसा शक्ति हस्तांतरित करने का सिद्धान्त लागू किया गया और मुख्य राजनैतिक दलों ने कम-से-कम वर्तमान समय के लिये सरकार से अपना असहयोग दूर कर दिया, और सो भी यहाँ तक कि कैबिनेट मिशन ने

इस प्रकार का परिणाम प्राप्त करने में सहायक होने की सफलता प्रदर्शित की। यह कहना कि १९४२ के क्रिप्स-मिशन की तरह कैबिनेट-मिशन भी असफल हुआ, भारी भूल है।

आगे चलकर मि० हाडसन ने अन्तरिम सरकार की वैधानिक पोज़ीशन पर यह राय जाहिर की कि यदि विधान-परिषद् भंग न हुई तो भी अपना कार्य पूरा करने में काफ़ी समय लेगी।

असेम्बली के सामने जो यांत्रिक कार्य उपस्थित हैं उसको देखते हुए राजनीतिक और साम्प्रदायिक कठिनाइयों और अड़चनों को बहुत महत्व नहीं देना चाहिए, फिर भी मि० हाडसन के खयाल में इस कार्य में दो वर्ष तो लग ही जायँगे। यह युरोप के सन्धि-स्थापन के उस कार्य से महत्व और विशालता की दृष्टि से किसी भी प्रकार कम नहीं है।

वर्तमान अन्तरिम सरकार के बारे में मि० हाडसन ने कहा कि ऐसी अन्तर्कालीन सरकार के लिये १९३५ की उस संघीय योजना की अपेक्षा (जिसको कि अमल में ही नहीं लाया गया) १९४२ का विधान बहुत कुछ सुविधा-जनक है। मुख्य सुविधा तो यह है कि इसमें द्वैध शासन नहीं है और न ब्रिटिश भारत में वाइसराय के लिये अधिकार का पृथक् क्षेत्र सुरक्षित किया गया है।

आपने यह भी कहा कि गवर्नर-जनरल की शासन-समिति केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा की शक्तियों पर विस्तृत रूप से छा जाती रही है। वे जिस तरह रेलवे और पुरातत्व विभाग के बारे में लागू हुये थे उसी प्रकार देश-रक्षा और वैदेशिक मामलों में भी।

संयुक्त अंतरिम सरकार के मुख्य मुस्लिम प्रतिनिधि मि० लियाकत अली खाँ ने कहा है कि केबिनट में संयुक्त जिम्मेवारी की बात लागू न होगी। राजनीतिक अर्थ में यह बात सच्ची है किन्तु सामान्यतः विचार करने पर मि० लियाकत अली खाँ की बात गलत मालूम होती है। ऐक्ट का अभिप्राय यह है कि गवरनर-जनरल की शासन समिति जो फ़ैसला करे वह बहुमत-द्वारा स्वीकृत होने पर भारत-सरकार का ही फ़ैसला कहा जायगा। गवरनर जनरल के प्रतिषेध-अधिकार के बारे में श्री हाडसन ने कहा कि यह तो कानूनी होने की अपेक्षा राजनीतिक और कूटनीतिक अधिक है। गवनर-जनरल इस बात के लिए बाध्य है कि वे अपनी सूझबूझ के अनुसार अपने विशेष उत्तरदायित्व और व्यक्तिगत कार्यों की पूर्ति के लिए अपने अधिकारों का उपयोग करें; किन्तु उनके विवेक का प्रतिवाद कानूनी दृष्टि से नहीं किया जा सकता और उसका जो कुछ भी निश्चय होगा उस पर इम्पीरियल पार्लीमेंट और अंतरिम सरकार के अधिकारों का प्रभाव तथ्यानुसार पड़ेगा जहाँ तक विधान-परिषद् और गवरनर जनरल के साथ उसके सम्बन्ध का सवाल है, श्री हाडसन ने कहा कि यह सच है कि विधान-परिषद् का स्वरूप, कार्य और भाग्य हिन्दुस्तानियों के हाथ में होगा गवरनर जनरल का उसमें कोई भी उपयोग नहीं होगा किन्तु क्रियात्मक रूप में इसमें सन्देह नहीं कि उनका परामर्श और सहायता सदैव अपेक्षित होगी क्योंकि विधान परिषद्को असंख्य बाधाओं को दूर कर सफलता प्राप्त करनी है।

श्री हाडसन ने कहा कि अवशिष्ट शक्तियाँ प्रान्तों के प्रदान कर देने की बात अधिक महत्वपूर्ण नहीं है। पर संकटपूर्ण तथ्य यह है कि आधुनिक सरकारें सभी विषयों को केन्द्राधीन भी देने के लिए बराबर सचेष्ट रहती है। भारत अपनी साम्प्रदायिक कठिनाइयों के कारण इस प्रकृति के विरुद्ध चलना चाहता है ऐसी दशा में संघीय अधिकारों को जिस संक्षिप्त रूप में तैयार किया गया है और विस्तार को छोड़ दिया गया है, वह बहुत उत्तम हुआ।

देशी राज्यों के सम्बन्ध में श्री हाडसन ने इस बात पर जोर देते हुए कि भारत को

आज़ादी देने की स्पष्ट प्रतिज्ञा का अर्थ ही यह है कि ये देशी राज्य ब्रिटिश भारत के अंग बनकर रहें।

श्री हाडसन की राय में देशी राज्यों के साथ की गई सन्धियाँ कोई अन्तरराष्ट्रीय कानून नहीं हैं, बल्कि यह तो एक घरेलू इन्तजाम है जो राजमुकुट के अन्तर्गत इस खयाल से किया गया था कि भारत में ब्रिटिश नीति बदलते ही इस पर भी असर पड़ेगा। यह अब उसी आधार पर है जिन पर अल्पसंख्यकों को दी गई ब्रिटिश प्रतिज्ञाएँ निर्भर करती हैं इन दोनों को ही अच्छा अवसर और आत्मरक्षा का मौका मिलना चाहिये।

उन्होंने यह भी बिचार प्रकट किया कि देशी राज्यों को तत्काल प्रजातंत्रीय बना देने से बहुत बड़ा साम्प्रदायिक संघर्ष खड़ा हो जायगा और इस तरह ,भारत के सामने उपस्थित महान् समस्याओं में एक की वृद्धि और हो जायगी।

अल्पसंख्यकों के बारे में मि० हाडसन ने कहा कि ब्रिटिश सरकार की पार्टी-गवर्नमेंटवाली प्रणाली हिन्दुस्तान के लिए अनुकूल नहीं हो सकती। इसके लिए तो स्वीज़रलैण्ड की कमेटी-गवर्नमेंट की पद्धति ठीक है जिसमें शासन-समिति के सदस्यों का चुनाव व्यवस्थापक सदस्यों के आनुपातिक प्रतिनिधित्व के द्वारा होता है। भारत की विचित्र कठिनाइयों को देखते हुये इस प्रणाली का लागू किया जाना ठीक ही है, किन्तु इसको पृथक् निर्वाचित पद्धति से मिला देना चाहिये।